अमृतलाल नागर रचनावली

4

भूमिका : डा. रामविलास शर्मा

संपादन : डा. शरद नागर

"अमृतलाल नागर ने कहानियां लिखी हैं, उपन्यास लिखे हैं, नाटक लिखे हैं और बहुत तरह का गद्य लिखा है, पर हिन्दी पाठक उन्हें मुख्यतः उपन्यासकार के रूप में जानते हैं और आगे वह इसी रूप में याद किये जायेंगे। सबसे ज्यादा परिश्रम उन्होंने उपन्यास लिखने में किया और पृष्ठ संख्या के विचार से भी रचनावली में सबसे ज्यादा जगह वही घेरते हैं। उपन्यासों के लिए गली-मोहल्ले का महत्व उन्होंने देर से पहचाना किन्तु एक बार पहचानने पर उन्होंने उससे भरपूर लाभ उठाया। प्रेमचंद और निराला में भी लखनऊ की झलक है। प्रेमचंद नये लखनऊ, गणेशगंज से लेकर हज़रतगंज तक के लखनऊ से ही अधिक परिचित थे। नागर जी का कथा-क्षेत्र पुराना लखनऊ है, पुराने लखनऊ का चौक मोहल्ला। वह इतिहास के साथ आधुनिकता भी देखते हैं पर उनका मन रमता है और उनकी कला निखरती है जब पुराने लखनऊ में होते हैं।

उनके कथा साहित्य की मजबूत यथार्थवादी ज़मीन यह शहरी आंचलिकता है और यह आंचलिकता एक व्यापक मानवतावाद में डूबी हुई है। इस मानवतावाद के कई स्रोत हैं, गांधीवाद, मार्क्सवाद, **खंजन नयन** के सूरदास, **मानस का हंस** के तुलसीदास, पागलों की सेवा करने वाले रामजी बाबा और इन सबके साथ लखनऊ के भिखारी।

नागरजी शहरी जीवन के छविकार हैं। शहर में उनके अध्ययन का मुख्य विषय रहता है परिवार। अंग्रेजी में जेन ऑस्टिन को छोड़कर किसी ने पारिवारिक जीवन का ऐसा सघन चित्रण नहीं किया।

प्रकाशन के विचार से अमृतलाल नागर का लेखन तीन चरणों में बंटा हुआ दिखाई देता है। 1935 में कहानी-संग्रह **वाटिका** के प्रकाशन से पहला चरण, 1956 में **बूंद और समुद्र** से दूसरा चरण, 1972 में **मानस का हंस** से तीसरा चरण आरम्भ होता है। **मानस का हंस** से लेकर 1989 में **पीढ़ियां** तक इस तीसरे चरण की सारी कृतियां "राजपाल" द्वारा प्रकाशित की गईं। 1935 से वह बराबर लिखते रहे पर बीस साल तक उनकी किसी बड़ी कृति के प्रकाशन की नौबत न आई। **बूंद और समुद्र** के बाद उन्होंने एक बड़ा उपन्यास **अमृत और विष** लिखा। ऐसे ही और छोटी-बड़ी कृतियां इधर-उधर से छपीं। **सात घूंघट वाला मुखड़ा** 1968 में प्रकाशित हुआ। यह नागर जी के छोटे उपन्यासों में हैं। बड़ा उपन्यास **मानस का हंस** उन्होंने चार साल के अन्तराल के बाद छापा। मोटे तौर से कह सकते हैं, सन् 70 से 90 तक बीस वर्षों का समय नागरजी को जमकर लिखने के लिए मिला। 1970 से पहले प्रकाशन संबंधी अनिश्चयता के कारण उनका लेखन विषम गति से चला। रचनावली की पृष्ठ संख्या देखें तो आधी से ज्यादा इन बीस वर्षों में प्रकाशित पुस्तकों की हैं। ये बीस वर्ष उनके जीवन का सघन रचनाकाल है।"

— डा. रामविलास शर्मा

(भूमिका से)

पुस्तक—वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

अमृतलाल नागर

र प्रदेश भाषानिधि के सौजन्य से"
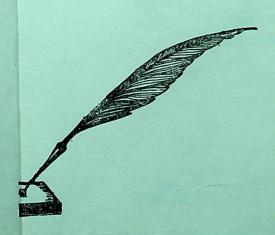
खण्ड . 4

अमृतलाल नागर का रचना-संसार बारह खण्डों में

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

अमृतलाल नागर रचनावली

खण्ड : 4

भूमिका

डा० रामविलास शर्मा

सम्पादन

डा० शरद नागर

राजपाल एण्ड सन्ज़

निवेदन

जब मैं छः-सात बरस का था आदरणीय बाबूजी ने मुम्बई में आदरणीय बा (मां) को उनके जन्म-दिवस के अवसर पर हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, मुम्बई द्वारा प्रकाशित 'शरत्-साहित्य' (शरत्चन्द्र चटर्जी की समस्त रचनाओं का हिन्दी अनुवाद) का सेट भेंट किया था। उन्हीं दिनों उन्होंने अपने लिए 'रवीन्द्र रचनावली' (मूल बंगला) का पूरा सेट भी खरीदा था।

अपनी मृत्यु से चार-पांच बरस पहले बा बार-बार मुझसे कहतीं, 'अब तेरे बाबूजी की इतनी किताबें हो गई हैं और फुटकर सामग्री भी तूने सहेज रखी है। तू एक बार जुटकर मेहनत कर डाल और शरत्-ग्रन्थावली और रवीन्द्र-ग्रन्थावली की तरह अपने बाबूजी की ग्रन्थावली भी तैयार करके प्रकाशित करा डाल।' उनकी आज्ञानुसार अपनी नौकरी की व्यस्तता के बावजूद समय निकाल कर पुस्तक रूप में असंकलित (अप्रकाशित एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित) सामग्री को अलग-अलग शीर्षकों की फाइलें बना कर वर्गीकृत करने, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं के जीर्ण-शीर्ण पन्नों को टंकित कराने अथवा किन्हीं रचनाओं के पत्रिकाओं में प्रकाशन के सन्दर्भ मिलने पर उनके सम्पादकों से पत्राचार करके उनकी प्रतियां मंगाने की दिशा में कार्यवाही आरम्भ कर दी थी, किन्तु अनेक व्यवधानों के कारण ये कार्य बा के जीवनकाल में पूरा न हो सका। 28 मई, 1985 को उनका स्वर्गवास हो गया। अप्रैल, 1985 में उन्होंने एक दिन कहा था—'बेटा तू अपने बाबूजी की ग्रन्थावली का काम साल भर जुटकर किसी तरह से पूरा कर डाल।' उनके स्वर्गवास के बाद मैं रचनावली के अनुष्ठान को सम्पन्न करने के लिए कृत-संकल्प होकर जुट गया।

प्रकाशित उपन्यासों एवं विभिन्न फुटकर रचनाओं के संकलनों को रचनावली में सम्मिलित करने में कोई कठिनाई न थी। आकाशवाणी के लिए लिखी गई रचनाओं में से बहुतेरी वार्ताओं, रेडियो-नाटकों तथा रेडियो-रूपकों की तो प्रतियां ही उपलब्ध नहीं थीं क्योंकि पहले तो अक्सर बाबूजी को लिखने के बाद प्रतिलिपि करने-कराने का अवसर ही नहीं मिलता था, प्रसारण के समय मूल पाण्डुलिपि का उपयोग करके उसे आकाशवाणी केन्द्र में ही जमा कर देते थे। 35-40 वर्ष पुरानी वह सामग्री आकाशवाणी से प्राप्त कर पाना सम्भव न था। फिल्मी-लेखन की सामग्री भी उपलब्ध होना असम्भव था। वह सारी सामग्री जो कदाचित् 5000 मुद्रित पृष्ठों में समाती, काल के गाल में समा गई। साहित्य-अध्येताओं की उपयोगिता की दृष्टि से समस्त उपलब्ध असंकलित, अप्रकाशित एवं अधूरी रचनाओं को रचनावली में शामिल करने का मैं अपना मन बना चुका था, किन्तु बाबूजी ने एक दिन कहा, 'मेरी राय है कि सिर्फ चुनी हुई सामग्री ही रचनावली में जानी चाहिए।'

अन्य भाषाओं से हिन्दी में अनूदित, रूपान्तरित रचनाओं को रचना-शिल्प और शैली की विकास-यात्रा का अनुशीलन करने की दृष्टि से रचनावली में रखने का मेरा सुझाव भी बाबूजी ने स्वीकार नहीं किया। यहां तक कि अपने प्रारम्भिक दो कथा-संकलनों 'वाटिका' तथा 'अवशेष' की तेईस रचनाओं में से केवल चार को ही रचनावली में सम्मिलित करने की अनुमति दी। अपनी कविताओं, कविताओं के विडम्बन, फिल्मी गीत, अधूरे उपन्यासों एवं बहुत से लेखों को भी रचनावली में सम्मिलित करने से मना कर दिया।

रचनावली का सम्पूर्ण सम्पादन-संकलन कार्य मार्च-अप्रैल, 1987 तक पूर्ण हो गया था और रचनावली बाबूजी के जीवनकाल में ही प्रकाशित हो सके ऐसी कामना थी, किन्तु कदाचित् प्रभु की इच्छा उनके अन्तिम उपन्यास 'पीढ़ियां' को भी इस रचनावली में सम्मिलित करने की थी। रचनावली के निमित्त ही संपादित चार संकलन 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान', 'चकल्लस', 'साहित्य और संस्कृति' तथा 'एक दिल हजार अफसाने' तो दिसम्बर, 1987 तक प्रकाशित हो गये थे। इन संकलनों के प्रकाशन ने उन्हें बड़ा आत्मसंतोष दिया और 'पीढ़ियां' को पूरा करने के लिए उनकी जिजीविषा को उद्दीप्त करने में सहायता पहुंचाई।

एक दिन मैंने बाबूजी से निवेदन किया कि आप एक लम्बी प्रस्तावना रचनावली हेतु लिख दीजिए जिसमें आपकी जीवन-यात्रा और साहित्य-यात्रा के प्रमुख पड़ाव रेखांकित हों। पहले तो उन्होंने हँसकर कहा, 'सम्पादक तुम हो, तुम लिखो।' फिर बोले, 'अच्छा ज़रा तबियत ठीक हो जाए तो लिखवा देंगे।' किन्तु वह अवसर नहीं आ सका। मुझे इस बात का सन्तोष है कि रचनावली की समस्त सामग्री का चयन बाबूजी के परामर्श से ही हो सका और वे आश्वस्त हो गए थे कि रचनावली शीघ्र प्रकाशित हो जायेगी। सामग्री-संकलन तथा लेखों का अनुक्रम निश्चित करने में श्रद्धेय ज्ञानचन्द्र जैन का मार्गदर्शन और आशीर्वाद मुझे पग-पग पर मिला।

श्रद्धेय डॉ० रामविलास शर्मा ने रचनावली की भूमिका लिखने के मेरे निवेदन को कृपापूर्वक स्वीकार कर रचनावली के अनुष्ठान को पूर्णता प्रदान की है—ये कार्य केवल उन्हीं के मान का था।

किताब महल, लोकभारती, भारतीय ज्ञानपीठ, राजकमल प्रकाशन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस तथा कल्पना प्रकाशन के संचालकों ने अपने यहां से प्रकाशित नागरजी की पुस्तकों को 'अमृतलाल नागर रचनावली' में सम्मिलित करने के लिए अपनी सहमति प्रदान कर सहयोग दिया जिसके लिए मैं उनका अनुग्रहीत हूं। रचनावली में जिन चित्रों का उपयोग किया गया है उनके छायाकारों के प्रति हार्दिक धन्यवाद! सामग्री-संकलन एवं टंकित सामग्री के संशोधन में दोनों बेटियों ऋचा एवं दीक्षा तथा पत्नी विभा ने मेरा हाथ बंटाया।

रचनावली के प्रकाशन के स्वप्न को साकार रूप देने का श्रेय राजपाल एण्ड संज़ के अधिष्ठाता श्री विश्वनाथजी को है। उन्होंने इस रचनावली को नागरजी के अमृत-महोत्सव वर्ष (75वीं वर्षगांठ, 17 अगस्त, 1991) में प्रकाशित कर इस अवसर की गरिमा को बढ़ाया है।

—**शरद नागर**

अमृत और विष में कथाकार अरविन्द शंकर सोचते हैं, वह थक गए हैं और उन्हें अपने पिता के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। खुद से कहते हैं : "अब तुम थक गए हो, प्राणहीन हो गए हो, कुछ न कर पाओगे। मुझे लगा कि मेरी अनन्त कुंठाओं को समाप्त करने का केवल एक ही उपाय है, वही जो मेरे पिता ने किया था—आत्महत्या! अरविन्द शंकर ने तो आत्महत्या नहीं की, उनके आई० सी० एस० बेटे उमेश शंकर ने कर ली।"

"1963 में अमृतलाल नागर की मां का देहान्त हुआ, उसके बाद 1966 में छोटे भाई रतन की मृत्यु का जबर्दस्त आघात लगा। रतन अभी कुल पैंतालीस वर्ष के थे। इनकी मृत्यु के बाद नागरजी ने **सात घूंघट वाला मुखड़ा** उपन्यास पूरा किया, वह 'स्व० रतन' को समर्पित है।"

—डॉ० रामविलास शर्मा की भूमिका से
(देखें खण्ड 1)

इस खण्ड में

अमृत और विष

एक

ऐन कानों के पास अलार्म इतनी ज़ोर से घनघना उठी कि कानों ही के क्या, मेरे अन्तर तक के पर्दे हिल उठे। आंखें खोलते ही माया का हंसता मुखड़ा देखा, बोली : "उठिये शिरीमान्, उमर के साठ बज गए।"

इस मज़ाक और मज़ाक करने वाली की रसीली चितवन पर मैं रीझ गया। शरीर में जवानी की सी फ़ुर्ती दौड़ गई, उठकर बैठ गया, कहा : "यह क्यों नहीं कहती साफ़-साफ कि सठियाये बुड्ढे, हट, सेज से उतर।"

माया झेंप गई : "जाओ, बड़े वो हो।" फिर आप ही नयनों का रसवाण छोड़कर बोली : "साठा तो पाठा होता है।"

मन अपनी और पत्नी की आयु भूलकर जवान हो गया। माया बोली : "अब जल्दी से तयार हुइ जाओ। उमेशो कहत रहे कि भाभी, आज तुम्हाए-के-हियां बड़ी भीड़ आवैगी।"

"अंहं, तुम क्या यह समझती हो, जिस भीड़ की बात उमेशो ने तुमसे कही है, वह लेखक अरविन्द शंकर को बधाई देने के लिए आएगी ?"

"तो और किसके लिए आएगा ?"

"वो सरकारी दरबारी कांग्रेसी भेड़ों की भीड़ होगी, जिन्हें नगर कांग्रेसाध्यक्ष महोदय मेरी खुशामद में हांककर लाएंगे। उन्हें गलतफहमी है कि मैं पंडित जवाहरलाल जी का दुलारा हूं। इस जमीन वाली बात याद करो। अब समझीं ? और ये जो परसों मेरा षष्टिपूर्ति समारोह ये लोग धूमधाम से मनाने जा रहे हैं, उमेशो के द्वारा जिसके लिए मुझे इतना-इतना घेरा गया है—"

"अच्छा-अच्छा, अब आज के शुभ दिन अपने को इतना तपाओ न भाई। आज हमैं तुमरा हंसता चेहरा देखन को जी चाहत है।"

जीवन-संगिनी जीवन-सर्वस्व पर अपना जादू मारकर चली गई। मन मैदानी नदी-सा हल्के बहाव में उतर तो आया, पर दार्शनिक बन गया। इकसठवां जन्म-दिवस भी उसके लिए मनोवैज्ञानिक आसन बिछाने लगा।···सा वर्ष इस दुनिया में बिता दिए—अनुभवों का जुलूस दिल्ली में निकलने वाले गणतंत्र दिवस के रंगारंग दृश्यों की अविराम गति से चल पड़ा। एक विशाल कनवेस पर एक साथ अनगिनत चित्र उभर पड़े, वर्ष, ऋतुएं, गलियां-सड़क, पहाड़, कश्मीर का गुलमर्ग सोवियत यूनियन के देश, जेल, चरखा, स्वयंसेविका-बाज़ी, कलकत्ता, कोल्हापुर, मद्रास, बम्बई, घर, माया-बच्चे, मां-बाप-बाबा, नाते-गोतिये, दोस्त-अहबाब,

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएं—विविध अनुभवों भरे सारे जीवन ने एकाएक धावा बोलकर मेरे ध्यान का साम्राज्य जीत लिया। मन भर उठा। आदमी जनम से लेकर मरन के दिन तक इतना सारा दुख-सुख भोगता है, हजारों चेहरे, रूप, रंग वातावरण देखता है, सुनता है, सहता है—आखिर किस लिए? व्यक्ति के जीवन की ढेर सारी उपलब्धियां, जिन्हें प्राप्त करने के लिए वह जान लड़ाता है, अन्त में निकम्मी होकर नष्ट हो जाती हैं। उसमें कितनी ही उपयोगी होती हैं···सोचता हूं कि अपनी जीवन-कहानी लिख डालूं। जनम भर उपन्यास और कहानियों में दूसरों के देखे-सुने और अपने गढ़े हुए किस्से लिखे, एक अपना भी लिख कर रख जाऊं!···लेकिन अभी तो एक उपन्यास लिखने का नैतिक भार भी पिछले दो वर्षों से मेरे ऊपर लदा है न, पहले उसे तो सिर से उतार दूं। इधर मैं कुछ लिख ही नहीं पा रहा; मन पुरानी नदी के पाट-सा सूखा पड़ा है। सोचता हूं, अपनी कलम को स्फूर्ति देने के लिए आज से कुछ लिखना शुरू कर ही दूं। आत्म-कथा के संक्षिप्त नोट्स लिखते-लिखते सम्भव है; मेरी सरस्वती फिर से जाग उठें और उपन्यास भी आरम्भ हो जाय। बहरहाल आज से कुछ न कुछ लिखूंगा अवश्य—आत्मकथा, डायरी, उपन्यास। ४ मई को जन्म लेने वाले रवीन्द्रनाथ ठाकुर कितने गज़ब के मेहनती थे, सदा कुछ न कुछ लिखते ही रहते थे। आज उनकी जन्मशती का पुण्य दिन है। उसके उपलक्ष्य में आज सारे देश में उत्सव किये जाएंगे। मेरा षष्टिपूर्ति समारोह इसी लिए दो दिन बाद मनाया जा रहा है। उनके श्रीमन्त पुरखों का इतिहास एक प्रदेश के इतिहास का गौरव है··· लेकिन मेरे पुरखों का इतिहास भी रोचक है, सुन्दर है, लिखने लायक है···।

दो

मलिका विक्टोरिया का राज था। उन्नीसवीं सदी बूढ़ी हो चली थी; बूढ़ा भारत देश गुलामी की नयी और कठिन बेड़ियों से जकड़कर भी जवान हो रहा था, एक नयी राह पर दौड़ रहा था। 'लोहे की सड़कों' का जाल धीरे-धीरे फैलता ही जा रहा था, उन पर 'धुआं-गाड़ियां' भी माल-मुसाफिर लेकर दौड़ने लगी थीं। मगर चौपहियों, ऊंटगाड़ियों, शिकरमों और घोड़ा-गाड़ियों के दिन तब भी दोपहर की धूप से निखर रहे थे। मेरठ वाले गंगाधर की गाड़ियां आगरे तक दौड़ती थीं। आगरे के सोजीराम बस्तीराम का काम भी जोरों पर था।

फकीर मुहम्मद राधेलाल का काम भी बहुत ऊंचा जा रहा था। उन्होंने कलक्टर की सलाह से घोड़ों की डाकगाड़ियां और शिकरमें चलाने का नया बन्दोबस्त भी अपने पुराने काम के अलावा आरम्भ किया था। आगरा से मथुरा और मथुरा से कोसी तक डाक लाने-ले-जाने की व्यवस्था की। एक बंगला किराये पर लिया। टिकट बांटने, हिसाब-किताब रखने और तार पाकर सीट बुक करने के काम पर एक मेम को नौकर रखा। उसे चार सौ रुपया महीना दिया। पटने से

एक अंग्रेजी पढ़ा-लिखा किरानी बंगाली बाबू आया। नौकर-चाकर-साईस सबके लिए वर्दी-बिल्ले बने। लाला राधेलाल ने इस नये धन्धे को फकीर मुहम्मद राधेलाल एण्ड कम्पनी नाम दिया। अंग्रेजी ठाटबाट से दफ्तर सजाया। अंग्रेजों से चालीस रुपया टिकट की दर बांधी। मेम साहब का दफ्तर, यात्रियों की आरामगाह और अपना दफ्तरवाला कमरा इस ठाठ से सजाया कि देखकर लगता था, मानो आगरे में लन्दन का एक टुकड़ा लाकर रख दिया हो।

शेख फकीर मुहम्मद अधिकतर अपने गांव ही में रहते थे। सूफी तबीयत के थे, साधु-संन्यासी और शाह-फकीर दोनों ही प्रकार के सन्त पुरुष उनके यहां आते थे। दिन-रात आध्यात्मिक चर्चे चला करते थे। दान-पुण्य करने में उनका हाथ खुला था, हिसाब-किताब देखने-सम्हालने में उन्हें तनिक भी रुचि न थी। लाला जो जबर्दस्ती घेरकर हिसाब समझाने और सलाह-सूत लेते थे। अंग्रेजी ठाठ का दफ्तर सजाने पर लालाजी ने एक जश्न मनाने का आयोजन किया। उसके लिए वे 'बड़े भैया' को आप जाकर गांव से लाये। शेखजी ने नया दफ्तर देखा-भाला, सन्तोष प्रकट किया। लालाजी ने फोटोग्राफर को बुलवाकर उनकी और अपनी तस्वीर उतरवायी, एक फोटो पूरे स्टाफ के साथ भी खिंची। उन दिनों इसका चलन नया-नया ही चला था।

अंग्रेज कलक्टर तथा हाकिम-हुक्कामों में और सेठ-साहूकारों में लाला राधेलाल की बड़ी आवभगत थी, इसलिए इस अवसर पर उन्होंने अंग्रेजों को एक शानदार दावत देने का आयोजन भी किया था। बहुत ज़ोर देने पर भी वे अपने बड़े भैया को उस अवसर पर उपस्थित रहने के लिए राजी न कर सके। शेखजी बोले—"यह सिर अब दिन-रात खुदा की बादत में ही झुकने का आदी हो गया है। मुझे इस जंजाल में मत फंसा।" नये दफ्तर वाले बंगले ही में लालाजी ने शेखजी के रहने का प्रबन्ध भी किया था; पर वे वहां न रहे, कहने लगे—"यहां मेरा जी नईं लगेगा। मैं गद्दी पे ही उतरूंगा। वां अपने हिन्दुस्तानी भाइयों का साथ है, सन्तों-फकीरों को भी यहां आते हुए अच्छा न लगेगा और हर घड़ी इंग्लिशों की सूरतें देखने से भी बचूंगा। सवारी मंगा दे। सूरज ढल रह्या है। मेरी नमाज का बखत हो रया हैगा।"

उस अहाते में, जहां चौपहिये किरांचियों का कारबार चलता था, एक इमारत भी बनी थी! उसके नीचे के खन के द्वारे के अगल-बगल दो बड़े-बड़े दालान थे, एक में आने वाले गाड़ीवान, ऊंटवान रैनबसेरा किया करते थे और दूसरे में एक धेला फी रात की दर से भाड़ा देने वाले यात्री। अन्दर एक टके से दो आने रोज तक के किराये वाली बारह कोठरियां थीं और इमारत के ऊपर वाले भाग में शेखजी ठहरा करते थे। इस बार भी वहीं आकर दम लिया।

पिछले सोलह बरसों से गाड़ियों के पहियों से पिसते-पिसते अहाते के अन्दर वाले बड़े मैदान की मिट्टी भुरभुरी हो गयी है; ऊंटों, बैलों और घोड़ों के खुर मिट्टी में धंस-धंस जाते हैं; अभी आयी-गयी गाड़ियों की लकीरों से रेखा-गणित के अजब-अजब नक्शे बने हुए हैं। बायीं ओर कोने में तीन-चार ऊंट खूंटों से लम्बी डोरों में बंधे खड़े हैं। उसी ओर दूसरे छोर पर तबेलों में कुछ घोड़े और बैल भी नज़र आ रहे हैं। दाहिनी ओर इमारत है। सांझ के बढ़ते धुंधलके में दस तरह के मानुस चेहरे वहां दिखाई दे रहे हैं। यहां के लगे-बंधे नाऊ-कहारों के चिरपरिचित चेहरे भी दिखलाई पड़ रहे हैं। अहाते के फाटक में फिटन के प्रवेश

करते ही शेखजी का चेहरा खिल उठा, आंखों में जोत आ गई। डाक स्टेशन यानी अपनी नयी कम्पनी के साथ ही साथ आए हुए बड़े मुनीम गुपालदास से कहा—"हमारा तो ठिकाना येई हैगा भैया। यां अपनापन तो लगे है। वांपे वो सब लालम्हों वाले फिरंगी आवें-जांय हैं। और एक वो रांड़ की गोरे चामवाली सुफेद हथनी पाली है राधे ने। वो बार-बार सलाम करै है तो मैं शरम के मारे पानी-पानी हो जाऊं हूं। इस कौम के अगाड़ी झुक के सलाम करना ही सीखा था, और वो भी नादिर-शादिर ही। सदा बचताई रया इस कौम से। मैंने तो कह दीना राधे से कि तेराई जिगरा है भैया, तू निभा सके है। मैं तो अपनी गद्दी पे ही ठहरूंगा।"

फिटन चबूतरे के पास आकर खड़ी हो गयी थी। नौकर-चौकीदार सब बड़े मालिक को देखते ही गाड़ी का दरवाजा खोलकर सलामें झुकाने की उतावली में बड़े मालिक और मुनीमजी की बात पूरी हो जाने तक खड़े रहे। शेखजी ने बात पूरी की और इन लोगों की तरह 'कहो भाई, सब खैरसल्लाह तो है' कहते हुए अपनी छड़ी और डग सम्हाले।

नये कारबार, से विशेष करके उस चार-सौ रुपये माहवार की सफेद हथनी से मन ही मन मुनीमजी को बड़ी-बड़ी शिकायतें थीं। दोनों मालिक तो उनका अदब करते थे; मगर वो कल की आयी मेम सदा हुकुम ही चलाती थी। मुनीम गुपालदास की शान में बट्टा लगता था। नयी कम्पनी के सारे बहीखाते विलायती थे। अस्सी रुपये महीना और क्वार्टर मुफ्त देकर पटना से एक बंगाली बाबू को बुलवाया गया था, उससे हर साल पांच रुपये महीने की तरक्की का करार भी हुआ था। मुनीमजी को यह सब देख-देखकर खौलन होती थी, सोचते कि यहा तो सोलह बरस नौकरी करते हो गये और अभी तक पचपन रुपल्ली पर ही पड़े हैं। जान होमकर अपना काम समझकर दिन-रात इनका काम सम्हालते हैं। कभी एक कौड़ी का भी फरक नहीं डाला। उसका इनाम ये मिला कि अंग्रेजी के आगे अब उनकी कोई कदर ही नहीं रही। उनके मन ही मन में रह-रहकर बड़ा उबाल आता था। शेखजी फारिग होकर नमाज़े-मगरिब अदा करने के बाद फुरसत से बैठे, तो मुनीमजी उनकी सेवा में पहुंच गए। घुमा-फिराकर बात छेड़ी, कहने लगे: "छोटे भैयाजी ने विलायती कारबार चलाया तो है···देखिए! बंगले का भाड़ा, बैरा, अर्दली, धोबी, नाई, बंगाली बाबू और वो मेमसाहब, सब मिला के सात सौ बयालिस रुपौं का खर्चा तो खाली दफ्तर का बंध गया है। घोड़े-गाड़ी, सहीस, नौकर, बग्घियों की टूट-फूट, मरम्मत के लिए मिस्त्री, दाना-घास रातिब वगैरे से कोई मतलब ही नहीं। छोटे भैयाजी ने मेरे अगाड़ी कम्पनी की आय-बै का नकसा जो रक्खा था, सो तो मेरी समझ में आया था, पर अब का हाल कुछ भी समझ में नईं आवे है।"

शेख फकीर मुहम्मद ने एक हाथ से तस्वीह के दाने और दूसरे हाथ से अपनी दाढ़ी पर कंघी करते हुए गुपालदास पर पैनी नज़र डाली और पूछा: "तुम्हारी समझ में क्या खराबी हैगी? क्या वजह है कि राधे का तखमीना और नए कारबार का खयाल तो तुम्हे उम्दा जंचा था और अब उसमें शिकायतें पैदा हो गईं?"

मुनीमजी सावधान हो गए, कहने लगे—"छोटे भैयाजी ने मुझसे कही थी कि गुपालदास, ये धंधा फसल के आमों जैसा है। आठ-दस बरस जब तक यहां पे रेलगाड़ी नईं आवैगी, तभी तलक ये अपना पूरा कारोबार है, अब लग एक ही

हाथ से दुह रये थे, अब दोनों हाथों से दुहेंगे; दस वर्स में डवल म्हैनत से बीस वर्सों की कमाई करेंगे। मैंने भी बात समझ के कही कि ठीक है पर अब ये बात हैगी भैयाजी, कि बोई आपकी केहनावत कि मेम निगोड़ी से मुझे भी डर लगी हैगा।"

"क्यों?"

"औअल तो बड़ी घमण्डन और चरबांक है। सारा दिन जब मुसाफिरों से फ़ुरसत पावे है, तो सीधे जाके छोटे भैयाजी के पास ही बैठ जावे है। विलायती लिखत-पढ़त है—हर तरह सब कुछ उसी के काबू में है।"

"तुम समझते हो कि राधे की नज़र में उसकी वजह से कोई ऐब आ रया हैगा? मैं साफ-साफ सुनना चाहूं हूं।" शेखजी कहते-कहते तकिये से उठकर सीधे बैठ गए।

"कृश्ना कृश्ना!" मुनीमजी ने दोनों हाथों से कान पकड़ कर कहा—"छोटे भैयाजी का मन तो स्यामा गौ के दूध जैसा हैगा, सो भी आंखों के अगाड़ी का कढ़ा हुआ। वे मेरे मालक हैं, झूठ बोल के मुझे नरक में नई जाना है।"

शेखजी शान्त सन्तुष्ट मुद्रा में कहने लगे—"गुपालदास, उम्र में तुम मेरे राधे से बड़े ज़रूर हो और अपने फन के उस्ताद भी हो। मगर बुरा न मानना, मेरे राधे का दिमाग बहुत ऊंची सतह पर दौड़े हैगा। तुम उस मेम पर चार सौ रुपये का खर्च देखो हो। मगर आज मैं भी करीब-करीब सारा दिन राधे के दफ्तर में ही बैठा रहा, और जैसा कि तुम कहो हो, वह मेम भी ज्यादेतर वईं पै बैठी रही। राधे उसे अपने पास बिठला के जो काम करावे हैगा, वो इसलिए कि नज़रों ही नज़रों में उसके काम का तरीका भांपे हैगा। विलायती ब्योपाराना तरीकों को समझे हैगा। चार सौ में ये तजर्बा हासिल करना कुछ भौत म्हैंगा नई है। तुम मेरी आज की बात रखना मुनीमजी, बरस छै महीने ही में राधे उसे हवा कर देगा यां से।"

गुपालदास निरुत्तर हो, सिर झुकाये बैठे रहे। शेखजी ने भांपा कि अभी कुछ और शिकायत है; पूछा—"तुम्हें मेम से खास शिकायत क्या है? वह तुम्हारा माकूल अदब नहीं करती?"

"जी हां, यही बात है।" गुपालदास खुल पड़े।

दूसरे दिन सवेरे लालाजी के आने पर शेखजी ने उससे गुपालदास को कार-बार में चार आने का पत्तीदार और छोटे मुनीम को दो आने का पत्तीदार बना देने को कहा। लालाजी को भी यह राय पसन्द आयी।

राधेलाल मथुरा के एक सम्पन्न साहूकार परिवार में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता वल्लभ कुल के वैष्णव थे। किसी के साथ बहाने से कलकत्ते गए। वहां उन्हें सट्टा-फाटका खेलने का रोग लग गया। उसके पीछे ऐसे दीवाने हुए कि कौड़ी-कौड़ी को मुहताज हो गए और उसके बाद ही संन्यासी होकर कहीं चले गए। लाला राधेलाल को बचपन ही से कसरत-कुश्ती का बड़ा शौक था। उन दिनों भले घरों के लड़के भी दंगलों में उतरा करते थे। शेख फकीर मुहम्मद के छोटे भाई दीनमुहम्मद भी उस समय पहलवानी में नये-नये उठ रहे थे और इस बात का बड़ा चर्चा थी कि आगरा ही नहीं, आस-पास के तीन-चार ज़िलों में किसी भद्र परिवार का नौजवान उनकी जोड़ का न था। मथुरा के हिन्दुओं ने आगरे के मुसलमानों का मानमर्दन करने के लिए आगरे के एक दंगल में राधेलाल से उनकी

जोड़ करा दी। राधेलाल ने दीनमुहम्मद को आसमान दिखा दिया। कलक्टर की मेम ने उन्हें सोने का तमगा दिया। बड़ी वाहवाही हुई। दीनमुहम्मद भी अपना जोड़ीदार पाकर ऐसे रीझे कि उसी दिन से दोनों आपस में गहरे दोस्त हो गए।

महीने दो महीने में एक बार मिले बिना दोनों को चैन नहीं पड़ता था राधेलाल उनके गांव जाकर हफ्तों रह आते थे, रसोइया और कहार साथ जाता था। दीन-मुहम्मद को हराने के लिए मथुरा में लालाजी ने अपने घर वालों की आज्ञा से एक किराये का घर लिया था। दीनमुहम्मद का बावर्ची उनके साथ आता था। कलकत्ते से लालाजी के पिता एक अंग्रेजी पढ़े-लिखे बंगाली बाबू को एक बार अपने साथ मथुरा ले आए थे। वे राधेलाल को अंग्रेजी पढ़ाते थे, उनके-साथ अन्य दो-चार सम्पन्न परिवारों के लड़के भी पढ़ते थे। राधेलाल की देखा-देखी दीनमुहम्मद को भी शौक लगा और फिर वे भी मथुरा ही में अधिकतर रहने लगे। शेख फकीर मुहम्मद कभी-कभी अपने भाई से मिलने के लिए मथुरा चले आते थे। राधेलाल तभी से उन्हें दीनू की तरह 'बड़े भैया' कहने लगे।

सन् 1851 के अगस्त के महीने में दीनमुहम्मद पन्द्रह दिनों के तेज बुखार के बाद अचानक स्वर्गवासी हो गए। कुछ समय के बाद ही उन्हें कलकत्ते से समाचार मिला कि पिताजी अपना दिवाला निकलने के कारण संसार का त्यागकर संन्यासी हो गए हैं। मथुरा में महाजनों ने इनकी जायदाद कुर्क करा ली। उन्नीस वर्ष की आयु में लाला राधेलाल खाली हाथ और खाली मन से अपनी माता, छोटी बहन, पत्नी और गोदी के बच्चे को लेकर आगरा आ बसे। एक किरांची चौपहिये वालों की फर्म में आठ रुपए महीने पर नौकरी कर ली। बड़ी मेहनत से काम किया; मालिकों ने दो बरसों बाद इन्हें पन्द्रह रुपए देना शुरू कर दिया, क्योंकि इनका अंग्रेजी ज्ञान उन्हें लाभ कराता था। सन् 1857 के सिपाही-विद्रोह में इन्होंने कई अंग्रेज परिवारों को अनाज के बोरों में छिपाकर अपने मालिक की गाड़ियों पर सुरक्षित स्थान पर भिजवाया। गदर के बाद अंग्रेजों ने इन्हीं के कारण इनके मालिकों को मान दिया। उसके बाद इनका वेतन तीस रुपए मासिक कर दिया गया। रुपया रोज़ पाकर लाला राधेलाल बड़े सन्तुष्ट हुए; पर इनका सौभाग्य इस स्थिति से ही सन्तुष्ट होकर नहीं बैठना चाहता था।

मालिकों के यहां पितृ-पक्ष में श्राद्ध था। ये प्रबन्ध कर रहे थे। किसी काम से घर के अन्दर गए। कोई स्त्री कह रही कि ब्राह्मण जीम चुके, अब राधे को भी इसी पंगत में बैठा दो। मालिक के बेटे का उत्तर भी इनके कानों में पड़ा। उसने कहा कि उसकी चिन्ता छोड़ो, वो घर का 'नौकर' है। 'नौकर' शब्द इनके मन में चुभ गया। उल्टे पांवों लौट पड़े और सीधे अपने घर पर आकर ही दम लिया। प्रण कर लिया अब तो मालिक बनकर ही रहूंगा। उपाय चिन्ता के बीच में घूमते-घूमते इनके मन में अचानक अपने स्वर्गीय मित्र के बड़े भाई शेख फकीर मुहम्मद का ध्यान आया। दूसरे दिन बड़े तड़के ही गौरीगणेश मनाकर ये उनके गांव की ओर चल पड़े।

भाई के मरने के बाद शेखजी आधे विरक्त से रहने लगे थे। कोई सन्तान न थी, कामकाज की ज़िम्मेदारी तो किसी प्रकार उठा लेते थे, बाकी समय शाहों-फकीरों और साधु-सन्तों की संगत में ही बिताते थे। राधेलाल के प्रस्ताव को सुन कर शेखजी को लगा कि जैसे दीनमुहम्मद ही उनसे सहायता मांग रहा है। बोले—"रुपया ले जाओ और खुदा का नाम लेकर काम शुरू कर दो। घाटा हो तो

मेरा और नफा हो तो हम दोनों का होगा। मेरे लिए भी आमदनी का एक नया सीगा खुल जाएगा। जमीदारी में पता नहीं, ये अंग्रेज हमारे जीने की खातिर कुछ गुंजाइश रक्खेंगे भी या नहीं, कुछ समझ में नहीं आवे हैगा। आबपाशी की दरें भी सुना है, बढ़ने वाली हैं। लगान वसूल करने में जो सख्तियां बरती जावे हैं, वो अब बर्दाश्त से बाहर होती जा रही हैं। मैं तो अपनी रैयत पर जुल्म हर्गिज नहीं कर सकूं हूं, जो दूसरे जमीदार कर रहे हैंगे। और अगर न करूं तो घर से कहां तक लगान भरूंगा। कुछ समझ में नहीं आवे है मेरी। कभी-कभी तो लगान में बढ़ाई गई रकम गांव की पैदावार से भी ज्यादा हो जावे है। महकमा जंगलात जमीनों को दनादन हड़प रया हैगा। चरागाहों को भी नहीं छोड़ते। जानवर भूखों मरे हैं। किसान जमीनें छोड़-छोड़ के भाग रहे हैं। अकाल बार-बार न पड़ेंगे तो और भला क्या होगा। खैर, जो खुदा की मर्ज़ी।''

सन् 1861 ई० में फकीरमुहम्मद राधेलाल फर्म खुल गई। लाला राधेलाल ने तेज़ी से अपना काम जमाया और बढ़ाया। भाग्य भी साथ दे रहा था। इनके चौपहिये जब मेरठ तक दौड़ने लगे, तो मेरठवाले गंगाराम का काम ठप्प पड़ गया। इनके पुराने मालिक भी इनकी मेहनत और व्यापार-संगठन की कुशलता का सामना न कर सके। सात-आठ वर्षों के भीतर ही फकीरमुहम्मद राधेलाल की फर्म का काम बड़ी उन्नति कर गया। सोलह-सत्रह वर्षों में तो उसकी ऐसी साख पुजने लगी कि उस धन्धे की ओर कोई भी फर्म इनके मुकाबले में ठहर ही नहीं पाती थी। अंग्रेजी भाषा की जानकारी, गोरा रौबीला स्वरूप, और बातें करने का ढंग राधेलाल को अंग्रेज व्यापारियों और हुक्कामों के निकट सम्पर्क में ले आया। लालाजी अपने धरम-करम के तो कट्टर रहे; पर धन्धा-परस्त होते-होते वे अंग्रेजपरस्त भी हो गए। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि जो कारबार अंग्रेज़ी ढंग पर और अंग्रेज़ों की संरक्षता में चलेगा, वही फलफूल भी सकेगा, बाकी सारे धन्धे मिट जायेंगे। वे जानते थे कि रेलों का जाल तेज़ी से बिछ जा रहा है और अगले आठ-दस बरसों के भीतर ही किरांचियां लादने का सदियों पुराना धन्धा समाप्त हो जायगा। वो यह भी जानते थे कि बंगाल बैंक की शाखाएं नगर-नगर में खुलते ही यहां के साहूकारों का धन्धा भी कम रह जाएगा। इसीलिए लालाजी किसी नए धन्धे की ताक में थे। तभी एक दिन कलक्टर साहब ने बुलाकर कहा कि कोसी-मथुरा तक आने-जाने के लिए प्रबन्ध अच्छा नहीं और तुम घोड़े-गाड़ियां चला सको, तो अच्छा होगा। अंग्रेजों को सहूलियत हो जाएगी। सरकारी डाक भी जाया करेगी। लाला राधेलाल ने कम्पनी चालू कर दी। दिन पर दिन उनका काम बढ़ने लगा।

उधर दिन पर दिन मुनीम गुपालदास का क्षोभ भी बढ़ने लगा। छोटे मुनीम हरसुखमल को भी उन्होंने अपने ही मत का बना लिया था। व्यवसाय में पत्तीदार हो जाने से भी उनके मन में चैन नहीं मिला था। उन्हें लगता था कि मुनीमत के हुनर का अपमान हो रहा है, लालाजी विलायतीबही-खातों का चलन अधिक पसन्द कर रहे हैं बंगाली बाबू की निगरानी में दो अंग्रेजी जानने वाले लड़कों को 'लेजर वाउचर' लिखना सिखा रहे हैं। गुपालदास और हरसुखमल दोनों ही मेम से भी अधिक बंगाली बाबू से जलते थे। उनके काम में ढिलाई आने लगी। गद्दी के नौकरों-चाकरों में भी वे असन्तोष भरने लगे। लालाजी कामकाज में किसी की भी ढीलढाल नहीं सह पाते थे। उन्होंने कसना शुरू कर दिया। मुनीम

गुपालदास ने जब अपनी दाल गलती न देखी, तो एक बार शेखजी के आगरा आने पर दोनों मालिकों की मौजूदगी में कहा कि अब बुढ़ापे के कारन मुझसे काम होवे नहीं है, छुट्टी चाहूं हूं । दोनों मालिकों ने समझाया, पर मुनीमजी माने नहीं, मुक्त हो ही गए ।

इसके कुछ दिन बाद ही शहर के सुप्रसिद्ध बंगाली बाबू जमनादास विश्वास ने छापाखाना खोला, उर्दू का अखबार चलाया । मुंशी शौनरायन रईस ने हरसुखमल को उनके यहां मुनीम बनवा दिया, वो भी छोड़कर चले गए । लोगों का अनुमान था कि दोनों पुराने मुनीमों के चले जाने से फकीर मुहम्मद राधेलाल के कारबार को झटका लगेगा; पर लालाजी ने मुनीमों के जाने को चुनौती के रूप में स्वीकार किया । अपने दोनों दफ्तरों में बैठने लगे । इस परिस्थिति से उनके स्वभाव में कुछ चिड़चिड़ापन अवश्य आ गया था । कभी-कभी नौकरों पर बेजा सख्ती भी कर जाते थे । मिज़ाज में अंग्रेज़ों की सी हुकूमत की बू भी आ गई थी । नौकर आतंकित और परेशान थे । शेखजी के पास हल्की-हल्की शिकायतें बराबर पहुंचने लगीं । आगरा आने पर वे खुद भी यह देखते और अनुभव करते थे कि नौकरों का काम पहले से अधिक बढ़ गया है और उन पर सख्ती भी ।

रसोई और घर में नहाने-धोने के लिए लालाजी के यहां रोज़ एक गाड़ी भरजमना-जल के कलसे आते थे । स्वयं उनके पीने के वास्ते अनूपशहर के राजघाट से गंगाजल आया करता था । छः महीने में एक बार गाड़ी अनूपशहर जाकर चौबीस बड़े-बड़े तमेड़े भरकर गंगाजल लाती थी । वह तो ख़ैर साल में दो बार का झंझट था; पर जमना-जल भरने वाले नौकरों को बड़ी मेहनत पड़ जाती थी । लालाजी के घर पानी पहुंचा कर पहले उन्हें छुट्टी मिला करती थी, अब वो भी नहीं । जमादार शेखजी के आगे अपना दुखड़ा रोने गया । शेखजी को दया आ गयी । एक दिन लालाजी से बोले—"राधे, पानी का खर्च तेरे यां भौत होवे हैगा भैया, ज़रा कम करवा ।"

लाला राधेलाल किसी कारण से उस दिन कुछ उखड़े-उखड़े से थे । उन्हें शेखजी की बात लग गई, बोले—"हिन्दू का घर ठैरा । पानी तो लगेगा ही बड़े भैया ।"

"नहीं । एक रोज छोड़ के दो दिनों के ताईं मंगा लिया कर । नौकरों विचारों को भी थोड़ा दम मारने की फुरसत मिल जावेगी ।"

"किसी ने आपसे कुछ कहा है ?" लालाजी ने ज़रा तुनुक कर पूछा ।

शेखजी ने बात को सम्हालते हुए बोले—"अरे मुझसे कहेगा कौन ? खुद मेरे ही मन में ये बात आयी । गरीबों-दुखियों की हाय अच्छी नई होवे हैगी भैया । अंग्रेजों की बात न्यारी है । उनके रंग-ढंग अपनाना हम लोगों के लिए कुछ ज्यादे मुनासिब बात नहीं है ।"

लालाजी ने उत्तर न दिया । चुपचाप उठकर चले आये । दूसरे दिन शेखजी के पास पहुंचे, उन्हें अलग कमरे में ले जाकर, कमरा बन्द करके कहा—"बड़े भैया मेरी तबियत अब ठीक नई रहवे है, इसलिए आपको हिसाब समझा देना चाहूं हूं ।"

शेखजी ने पैनी कनखियों में लालाजी का रुख देखा, समझ गए कि बीस-इक्कीस बरसों की बात आज टूट रही है । मन को धक्का लगा, फिर भी अपने को सम्हालकर गम्भीर स्वर में बोले—"हिसाब की क्या बात है । तेरी बदौलत भौत

रुपया मिला। अब जो कुछ है तेरा है, तेरी म्हैनत की कमाई हैगी।"

लालाजी बोले—"मैं दान नहीं लेता। मैं चिट्ठा तैयार करा रया हूं। आप देख लीजिएगा।"

"अच्छा-अच्छा देख लूंगा।" कहकर शेखजी उठकर कमरे में चले आये। फिर वे शहर में भी न ठहरे, सीधे गांव चल दिए।

छः-सात महीने बाद उनका फिर आगरे आना हुआ। लालाजी ने कुल हिसाब का चिट्ठा सामने रख दिया। शेखजी ने सोचा था कि अब राधे का दिमाग ठण्डा हो चुका होगा, लेकिन इस व्यवहार से उन्हें सदमा पहुंचा। फिर भी कुछ न कहा, चिट्ठे का कागज उठाया और लालाजी की जेब में उसे ठूंसकर कहा—"देख लिया।"

"नहीं, आपको देखना ही पड़ेगा।" लालाजी ने कहा।

"क्या देखूं भैया, इन कागजों पे हर कहो मुझे दीनमुहम्मद की तस्वीर नजर आवे है।" शेखजी की आंखें छलछला उठीं।

एक क्षण दोनों मौन रहे, फिर दोनों आंखें पोंछकर शेखजी कहने लगे—"तेरी बदौलत मैंने हज़ारों रुपया पाया है। मेरे कोई आस-औलाद भी नहीं है। तेरे अगाड़ी फज्लेखुदा से तीन बेटे हैं। ये नक्द रुपया तू बच्चों की ताईं अलग रख दे। तेरी म्हैनत है, तू ही रख।"

"साझे में तो ये सवाल नईं उठे हैं कि म्हैनत किसकी है। आपको हिसाब समझना ही पड़ेगा और रकम भी लेनी पड़ेगी।"

शेखजी बोले—"खैर तेरी मर्ज़ी। तू कम्पनी के दफ्तर हो आ, शाम को समझ लूंगा।" लालाजी के जाते ही शेखजी उसी समय अपने गांव चल दिए।

आगरे में बंगाल बैंक की शाखा नयी-नयी ही खुली थी। लाला राधेलाल ने कम्पनी के रिजर्व फण्ड से शेखजी के हिस्से का तेईस-चौबीस हज़ार रुपया निकालकर बैंक में उनके नाम से जमा कर दिया और पासबुक जमादार के हाथों शेखजी के पास भिजवा दी और कहलवाया कि बैंक में शिनाख्त के लिए आपके दस्तखत की दरकार है, आगरे चले आइए।

शेखजी इस बार अकेले नहीं आए। उनकी बेगम साथ थीं। इस बार शेखजी गद्दी पर न उतरकर एक सराय में उतरे। लालाजी ने सुना तो नाराज़ हुए। तुरन्त अपनी फिटन पर बैठकर सराय में पहुंचे। इतने वर्षों में शेखनीजी के दर्शन उन्होंने पहली ही बार किए थे। उन्होंने उनसे पर्दा नहीं किया। न जाने कैसा भाव उमड़ा कि उन्होंने झुककर उनके चरण छू लिए। बोले—"भाभी, बड़े भया को लेकर चलिए।"

शेखजी ने फौरन अपनी पत्नी से कहा—"पहले इससे पूछो कि ये मेरे बच्चों का पैसा छीन के ज़बर्दस्ती क्यों मुझे देना चाहे है? एक ज़बर्दस्ती विन्होंसे और एक मुझसे? ये भला कहां का इंसाफ है?"

शेखानीजी भी कहने लगीं—"देवरजी, तुम्हें अपने भाई की बात माननी चाहिए। हमारे और कौन बैठा है। ये तो अपनी ज़मीदारी तक तुम्हारे लड़कों के नाम लिख चुके हैं।"

"नहीं भाभी। बड़े भैया का एहसान यों ही मुझ पर भौत—।"

"क्या कही? एहसान! फकीरमुहम्मद ने दीनमुहम्मद पर एहसान किया? तुझे मैंने अलग नहीं समझा कभी। तेरी खिदमत को इसीलिए अब तक मैंने अपना

और तेरा हक मानकर ही कबूल किया हैगा। मैंने तो एहसान नईं माना। क्या भाई भी भाई पे एहसान करे है?···एहसान! सुनती हो बेगम, अब ये आगरा शहर मुझे काट हैगा। दो-तीन बार से ऐसा ही होवे है कि यां आऊं हूं और आते ही उल्टे पांवों मुझे लौटना पड़े हैगा। अब नईं आऊंगा अकबराबाद में। ये बैंक की किताब उठा ले राधे, मुझे दस्तखत-वस्तखत की फुरसत नईं है।"

शेखजी फिर गांव लौट गए। लाला राधेलाल को लगा कि इनका रुपया अब किसी हालत में भी मेरे पास नहीं रहना चाहिए। ये तो अपनी भलमंसी में यों ही टालमटोल करते रहेंगे, पर मेरे ईमान में भी दम होना चाहिए। उन्होंने उसी दिन बैंक से सारा रुपया निकालकर शेखजी के गांव भेज दिया। शेखजी रुपयों की थैलियां अपने सामने देखकर फीके फक्क पड़ गए, टूट गए। कुछ देर तक बोल न फूटा, फिर कहा—"ये काले नाग थैलियों में भर-भर के राधे ने मुझे डसने के लिए भेजे हैं।"

शेखजी घुटनों में अपना सिर गड़ाकर एकदम बुत हो गए। दिन-भर अपनी जगह से हिले तक नहीं, ऐसे खो गए थे। दो-एक बार लोगों ने उनका ध्यान खींचकर अपनी बातों से उन्हें सन्तोष देने का प्रयत्न किया। उनकी आंखों की पुतलियां क्षण दो क्षण के लिए ही बाहर किसी वस्तु पर टिक पाती थीं और फिर कहीं भीतर ही खो जाती थीं। एक बार बस इतना कहा—"मैंने समझा था मेरा दीन-मुहम्मद है, पर ये राधे निकला।" शेखजी को बहुत तेज़ बुखार चढ़ आया और तीसरे दिन सूर्योदय होते न होते उनका जीवन अस्त हो गया।

लाला राधेलाल उसके बाद फिर अपने ही प्रेत बनकर रह गए।

तीन

लाला राधेलाल के तीसरे पुत्र सदानन्द उनके सुख-चैन से भरे-पूरे दिनों की सन्तान थे। बड़े लाड़ले। पढ़ने-लिखने में विशेष प्रगति न कर पाए। घर में मुलिया नाइन अपनी विधवा बेटी दुलरिया के साथ अक्सर ही आया करती थी। बड़ी चरबांक, पूरी छत्तीसी। ढोलक बजाने और गाने में उसने नाम पाया था। जादू-टोने में मां-बेटी किंवदंतियों की लोना चमारिन के टक्कर की मानी जाती थीं। सदानन्द सुन्दर गबरू जवान थे। दुलरिया की उन पर तबीयत आ गई। गांजे-सुलफे की शौकीन थी। सदानन्द को अपने हुस्न व कमाल से भेड़ बना लिया।

लालाजी ने दुखी होकर सदानन्द को अपने कोसी के दफ्तर में भेज दिया। वहां से रातोंरात भागकर फिर दुलरिया के घर पहुंच गए। लालाजी ने बहुत जांच-पड़ताल करके फर्रुखाबाद में अपनी बिरादरी की अनिंद्य सुन्दरी बाला से उनका ब्याह कर दिया। कुछ दिनों तक सदानन्द बतासो बीबी पर लट्टू रहे, पर बाद में फिर जस के तस हो गए। उन्हें छोटे लोगों की सोहबत, दुलरिया के साथ दम लगाने का जो चस्का लग गया था, वह छूट न सका। उन्हें जितना समझाया

जाता, उतने ही वे नासमझ होते जाते थे। हाथ-खर्च रोक दिया तो उधार लेना शुरू किया। बाप-भाई सभी दुखी हो गए। जेठानियां निठल्ले की जोरू पर रौब का राज चलाना चाहती थीं, लेकिन बतासो उनके पानी में न घुलीं। घर में आठ पहर की कलह बैठ गयी। लालाजी ने अन्तकाल में अपनी वसीयत में सदानन्द को केवल सौ रुपया महीना हाथ-खर्च के लिए ही दिया और बीस रुपए बतासो बहू के लिए रोटी-कपड़ों के अलावा बांध गए। पोते किशोरीलाल के लिए, जो उस समय पांच वर्ष का था, यह लिख गए कि उसकी पढ़ाई-लिखाई में और बच्चों के बराबर ही खर्च हो और बालिग होने पर यदि समझदार निकले तो उसके बाप का हिस्सा उसे दे दिया जाय। लालाजी के गोलोकवासी हो जाने पर उनके किरिया-करम से निबटने के बाद बड़े भाई ने वसीयत पढ़कर सुनाई। सदानन्द सिर झुकाए सुनते रहे, फिर उठे, कहा कि हमें इस घर की फूटी कौड़ी भी हराम है। आज तक का अन्न-जल था, नाता भी था। आज से दोनों छूटे। तुम्हारे लिए हम मर गए, हमारे लिए तुम। लड़के से यही कह दूंगा कि बालिग हो के अपने बाबा-ताऊओं की ड्योढ़ी पे एक बार खड़े-खड़े मूत आना, बस इत्ता ही हक लेना।

बतासो बीबी और किशोरी को लेकर सदानन्द अपनी ससुराल पहुंचे। वहां कुछ ठीक डौल न जमा। बतासो बीबी बोलीं कि लखनऊ चलो। वहां उनकी ननिहाल थी। ऊंटगाड़ी, बैलगाड़ी, शिकरम गाड़ी, रेलगाड़ी में फर्रुखाबाद से लखनऊ तक की यात्रा की।

सन् 1887 ई० में जिस दिन ये लखनऊ पहुंचे, उसी दिन अखबारों के द्वारा वाजिदअली शाह के मटिया बुर्ज में स्वर्गवास होने का समाचार भी पहुंचा था। नगर के छोटे-बड़े हिन्दू-मुसलमान अवध के कन्हैया जाने आलम का सोग मना रहे थे। नाना-मामा सहानुभूति से पेश आए। छोटे नाना सद्दीमल चिकन का धंधा करते थे। उनके कोई आस-औलाद न थी, नतदामाद से बोले : "हमारी दुकान पे बैठना भैया। जमाना बड़ा बुरा आय लगा हैगा। सरकार ने पारसाल से आमदनी में भी टिक्कस बांध दिया हैगा। ससुरी लूट की भी हद होती है। अपनी विलायत को सोने की लंका बनाय रहे हैंगे। अमीर यों मरे और गरीब···क्या कहैं रुपै में से भी चांदी खींचकर मिलावट कर दी, पर भाव वही रक्खा। नतीजा ई भया कि चांदी ससुरी रुपै तोले से नीचे गिर गई है। छोटे मंझोले सौदागर-दूकानदार टें बोल गए हैं। बिचारे ! उनका धन्धा तो कुछ सोने पे नहीं, चांदी पे ही होत रहा न ! और जब रुपै का माल दस-ग्यारा आने ही का रहा गया, तो बताओ कोई आदमी नए धन्धे में अपना रुपैया कैसे फंसावै।"

सदानन्द समझ गए कि यह भूमिका छोटे ननिया-ससुर साहब ने इसलिए बांधी है कि वे उनसे किसी नए धन्धे के लिए रुपया न मांगें। बड़े यानी अस्ली ननियाससुर साहब तो अपना काम-काज लड़कों को सौंप कर पहले ही माया-मोहमुक्त हो चुके थे। उन्होंने भगवान् पर भरोसा रखने का उपदेश दिया और कहा कि जो कुछ रूखी-सूखी से सेवा हो सकेगी, वह तुम्हारे ममियाससुर लोग बराबर करेंगे। रहने के लिए छोटे नाना ने अपने घर में जगह दे दी।

सदानन्द ने सराफे में सोने-चांदी की दलाली शुरू की। तकदीर ने साथ दिया। धीरे-धीरे अच्छे दलालों में गिने जाने लगे। नवाबों के दारोगा और बांदियों को पटाने में सफल हुए। धीरे-धीरे उनकी आमदनी बढ़ती गई। मुहल्ले-बिरादरी में अपनी मिलनसारी और रीत-बरताव से उन्होंने अपने लिए

अच्छी जगह बना ली। केवल उनके सगे ममियाससुर और उनके बेटे, बीवियां ही इन लोगों से जलन रखते थे। बतासो बीबी ने अपने छोटे नाना की बड़ी सेवा की और उनका मन जीत लिया। बच्चा किशोरी भी उनके प्राणों का बन्धन बन गया था, और लाला सद्दीमल अपना घर और मालमता किशोरी के नाम ही लिख जाने की सोचने लगे थे। भतीजों को जलन होने लगी, अगर ये लोग न आते तो चाचा का माल उन्हें ही मिलता। सदानन्द की बदनामी उन लोगों ने फैलानी शुरू कर दी। सदानन्द भी उस समय एकदम भूखे-नंगे न थे, ढाई हजार रुपयों में एक तीन दुकानोंवाला मकान खरीद लिया। पर जब लाला सद्दीमल का घर छोड़ने की बात आयी तो वे रोने लगे, कहा कि किसोरी को हमसे अलग न करो। बतासो बीबी भी रोने लगीं। मकान न छोड़ा जा सका, पर बाहर सदानन्द का मुंह उजला हो गया कि वो पराए धन से नहीं चिपके हैं, बल्कि पराया धन स्वयं ही आकर उनके बेटे और पत्नी के चरणों में समर्पित हो गया है।

सद्दीमलजी से सदानन्दजी का एक खिचाव किसोरी की पढ़ाई के सम्बन्ध में भी आया। वे अपने बेटे को अंग्रेजी पढ़ाना चाहते थे, सद्दीमल की राय उसे धन्धे में डालने की थी। उसका कहना था : "बाबूमिस्टर बनाय के अगर लड़के को अपने हाथ से खोना चाहते हो, तो इससे अच्छा है कि स्वामी जैनाथजी महाराज की सेवा में सौंप देओ। कह भी रहे थे कि इसके नित्रों में भगवद जोती है, जो इस जलम में संजोग पा गया तो इसी जलम में, नहीं तो अगले में बड़ा सिद्ध जोगी बनैगा।"

सदानन्द कुछ जवाब न दे सके। रात में लेटे थे, बतासो उनके पैर दबा रही थीं, खुशामदी स्वर में बात उठाई : "छोटे नाना से तुमरी बातें भयी रहीं आज ?"

"हूं।" सदानन्द ने बेरुखी दिखलाई !

"बड़न की बातन में तत्त और तजरबा होत हैगा। अब देखौ घनस्याम महाराज के यहां कैसी तिरा-तिराह मची हैगी। लल्लू अंगरेजन मुसलमानन के संग बैठत-उठत, खात-पियत हैंगे। रण्डी-बरण्डी—"

घनस्याम महाराज का बेटा बुरा निकला तो कइयों के सुधर भी गए। अंग्रेजी पढ़े बिना तरक्की भी कहां धरी हैगी आजकल। इलाहाबाद के मदनमोहन मालवी को देखो, कैसा नाम कमा रहे हैंगे। अरे हमारे बाबू को देखौ। यहां नवाबों तक के दुइ-चार लड़के अंग्रेजी पढ़ के आला हाकिम बन गए। जो नहीं पढ़ा रहे, उनके लड़के बटेर बने डोल रहे हैंगे साले। किशोरी की बौआ, इस मामले में तुम चुप रहो। छोटे नाना की तो पुराने लोगों जैसी बातें हैंगी। नया जमाना उनके जैसों के मते तो चलैगा नहीं। मैंने पढ़ने-लिखने से जी चुराके क्या अंजाम पाया, देख ही रही हौ।"

बहरहाल सदानन्दजी ने अपनी इच्छा के अनुसार ही अपने बेटे को शिक्षा दी। दस-रुपए महीने का बंगाली मास्टर रक्खा, उन्हें छः पैसे रोज इक्के के भी देते थे। कुइन्स स्कूल में भरती कराया। लाला सद्दीमल मुंह से तो कुछ न बोले, पर सदानन्द मन ही मन खिच गए। किशोरीलाल उनके सूने जीवन की रौनक था और किशोरी भी अपने 'बाबा' से बेहद लगाव रखता था। धीरे-धीरे वही उन्हें अंग्रेजी की ओर से निर्भय बनाने लगा। पढ़ाई में अच्छा चला। हर दर्जा दूसरे या तीसरे नम्बर से पास किया। विशेष बड़ाई की बात यह थी कि वाद-विवाद-सभाओं में

वही सबसे तेज लड़का माना जाता था। पांच बार आला हाकिमों की मेमों के हाथों से स्कूली इनाम पाए। एक बार स्कूल की तरफ से इलाहाबाद की एक प्रान्तीय स्कूली वाद-विवाद-सभा में गया। वहां भी अव्वल इनाम मिला। छोटे लाट साहब ने अपनी ओर से भी एक सोने का मेडिल इनाम में दिया और हाथ मिलाया। 'पायनियर' अखबार में उनकी प्रशंसा भी छपी।

किशोरीलाल के इलाहाबाद जाने के दिनों में लाला सद्दीमल मरनखाट पर पड़े हुए थे। उनकी दशा देखकर बतासो बीवी तो क्या स्वयम् लाला सदानन्द भी लड़के को भेजने से हिचक रहे थे। कुछ ऊंच-नीच हो गया तो जनम भर के लिए कलंक लग जायगा। पर किशोरीलाल अड़ गए, मां-बाप से कहा : "मेरे न जाने से लोग कहेंगे कि किशोरीलाल घर ही के शेर हैं, बाहर जाते उनकी नानी मरती है।"

मां बिगड़ गईं, बोली : "अरे तुम्हें जाना है तो जाओ, हमारी अम्मा बिचारी का बुरा काहे को चेतत होंगे।"

"बुरा न मानो बौआ—"

"हम काहे को मानेंगे बुरा। बुरा मानें तुमरे बाबू जिनकी इज्ज़त तक का धियान नाहीं हैगा। अबहीं तो दुइयै अच्छर अंगरेजी पढ़े है ऊमें इत्ता सुआरथ आय गया है तो आगे जो दिखाओगे सो भी देखैंगे।" बतासो बीवी तेज़ी से दालान छोड़कर चली गईं। पिता भी फिर वहां न रुके। किशोरीलाल सोचते रहे, पर अन्त में इलाहाबाद चले ही गए। चलते समय पिता से कहा : "आप मुझे गलत न समझें बाबू। ये मेरी ही नहीं, स्कूल की भी उन्नति का सवाल है। खुद छोटे लाट और उनकी मेम सभा में आवेंगे। सरकारी 'डिबेट' है।"

सदानन्दजी को छोटे लाट का बहाना मिल गया। सद्दीमल के पूछने पर भी यह बतलाया कि छोटे लाट ने उसका 'लिक्चर' सुनने के लिए बुलाया है। लौटने पर किशोरीलाल नायक बने हुए थे। मां के नाना ने लाट साहब का दिया हुआ मेडिल देखा, अखबार की तरीफ पढ़वाकर हिन्दी में उल्था करवा के सुनी और इतना जोश आया कि दोहती से बोले : "बतासो, अब मैं नहीं मरूंगा, निसाखातिर रहौ। अब तो किसोरी की बहुरिया का मूं देखूंगा।"

उनकी इच्छा यहीं तक फलवती न हुई, बल्कि ब्याह के चार बरस बाद 8 मई सन् 1900 ई० के दिन सुबह आठ बजे अपने प्रपौत्र के पुत्र जन्म का सुखद समाचार भी पाया। पड़ोस के लाला गेनमल सरावगी की कोठी का बंदूकधारी चौकीदार उनके दरवाजे पर बन्दूक दागकर इनाम ले गया। हैसियत से अधिक शान से ज्याफत की, अपने द्वारे पे रण्डी का नाच भी कराया। अंत में उसी साल सर्दियों में, उन्नीसवीं सदी समाप्त होने से दो दिन पहले अट्ठासी वर्ष की जरा-जीर्ण काया को त्यागकर वे कैलासवासी हुए।

यही मेरे पुरखों का पूर्ववृत्तान्त है। आज मई सन् 1960 को आयु के साठ वर्ष पूरे होने पर आज के बुढ़ापे को भुलाने के लिए मुझे पुरखों के बहाने अपने जन्म का क्षण याद आ रहा है। पुरखों की याद करो तो स्मृतियों में डूबकर अपना मन बच्चा बन जाता है।

लेकिन यों बच्चा बनकर अपने आज के बूढ़े जीवन की जिम्मेदारियों से बच क्योंकर सकता हूं। दिन भर हठपूर्वक उन तीन पत्रों का ध्यान तक अपने मन से निकाले रहा, जो कि मेरे कलेजे में बर्छियों की तरह चुभे थे, अब तक चुभे हुए हैं।

एक रजिस्टर्ड पत्र मेरे मंझले बेटे भवानी शंकर के ससुर का है, दूसरा रजिस्टर्ड नोटिस मेरे प्रकाशक पद्मनाभ के बेटे ऋषिकुमार ने भेजा है और तीसरा पत्र··· कल एक महाशय मेरी बेटी वरुणा को देखने के लिए अपने बेटे के साथ आयेंगे।··· होगा। कवि भवानीप्रसाद मिश्र की एक पंक्ति है, 'दर्द जब उठे बहाना करो।' बूढ़े अरविन्दशंकर सो जाओ। न सो सको तो सोने का बहाना करो।···

चार

हॉल खचाखच भरा था। द्वार से लेकर मंच तक साठ नर-नारी, बच्चे-बूढ़े-जवान, हर पेशे के प्रतिनिधि, जानेवाले मार्ग में दर्शकों की कुर्सियों के किनारे-किनारे फूल-मालाएं लिए खड़े थे। शहनाई पर बधावा बज रहा था। मैं सपत्नीक आगे बढ़ता चला और क्रमशः दो-दो फूल-मालाएं हमारे गले में पड़ती चलीं। प्रेस फोटोग्राफरों और सरकारी डाक्यूमेण्टरी फिल्म वालों के कैमरे क्लिक-क्लिक खरखर करते रहे। सभा में उत्साह था, तालियों पर तालियां पड़ रही थीं।···लेकिन मेरे ऊपर इस तमाशे का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था।

मुझे लग रहा था, जैसे सुखद सपना देख तो रहा हूं, लेकिन उस सपने में भी मेरे जीवन का कटु यथार्थ अपनी प्रखर चेतना के साथ विद्यमान है, और वह मुझे इस नशीले सपने से बहलने नहीं दे रहा। मंच पर पहुंचते ही इकसठवीं माला स्वयम् प्रदेश के राज्यपाल ने मुस्कान में राजगौरव भर कर मुझे अपने करकमलों से पहनाई। दनादन बड़े-छोटे प्रकाशों के बम हमारे ऊपर बरस पड़े; प्रेस और फिल्मी कैमरे ने धावा बोल दिया; हाल तालियों की गड़गड़ाहट से भर गया।

मैं डर रहा था कि अभी हाल के किसी कोने से मेरे पुत्र भवानी के ससुर चिल्लाकर कहने ही वाले होंगे : "यह व्यक्ति पूजा पाने के योग्य नहीं। इसके लम्पट बेटे ने मेरी सुन्दर सुशीला और साध्वी बेटी को पहले तो अपने प्रेमपाश में फंसाया; मुझे उसके अन्तर्जातीय विवाह के लिए सजातीय कलंक सहना पड़ा, और अब उसे तथा अपनी दो सन्तानों को निराधार छोड़कर उसने एक कुलटा प्राध्यापिका को अपना तन-मन अर्पित कर रक्खा है। और ये महान् लेखक, उदार और न्यायवान कहलानेवाला नीच अरविन्द मेरे बार-बार लिखने पर भी अपनी पुत्र-वधू और पोतों को अपने पास बुलाकर नहीं रखता। मेरे पत्रों का उत्तर नहीं देता। मेरे जैसे दीन-हीन बूढ़े क्लर्क की गृहस्थी पर खर्च का एक अतिरिक्त बोझ डालते हुए इसे शर्म नहीं आती।

मुझे लग रहा है कि हाल के दूसरे कोने से अभी एक पुस्तक-प्रकाशक अपने कड़े स्वर में ललकारेगा : "ये नीच डेढ़ साल से मेरे दो हजार रुपये डकारे बैठा है, न अभी तक उपन्यास लिखकर दिया और न मेरे पत्रों के जवाब ही देता है। मैंने भी आज इसके षष्टि-पूर्ति समारोह का दिन साध कर ही इसे नोटिस भेजा

है। आप सब जब इसका यशोगान कर लेंगे तब मैं इस महापुरुष से अपने आगे नाक रगड़वाऊंगा और उसकी फोटो खिंचवाकर छपाऊंगा।"...

मुझे लग रहा है कि स्वयम् मेरा ही अन्तर-सत्य अभी-अभी इस हाल में गूंज उठेगा : "तू मानवता और ईमानदारी के झण्डे उठाता है ! तूने अपनी पत्नी और लड़कों के दबाव में आकर, केवल अपनी लड़की का सुख ही सामने रखकर, कल उसे देखने के लिए आए हुए प्रस्तावित वर और उसके पिता को यह नहीं बतलाया कि इस लड़की को पहले क्षय रोग हो चुका है। तू युधिष्ठिर के समान 'नरो वा कुंजरो वा' कहकर ही झूठ-सच बोल देता। कहता, हालांकि इस समय यह पूर्ण स्वस्थ है, पर इस रोग को लेकर कभी कुछ नहीं जा सकता। तू स्वार्थी है, कायर और श्रीहीन है। तुझे अपनी षष्टि-पूर्ति पर समाज से यह सम्मान पाने का अधिकार नहीं।"

मन में हीनता का तीव्र बोध लेकर बैठा हुआ मैं अपने माहात्म्य सुन रहा था। अन्दर और बाहर की आवाज़ों से दबकर मैं घुट गया। जीवन भर अपने अंग्रजों के स्वागत-अभिनंदन समारोह कराते हुए अकसर मैं भी अपने लिये इसी जन-सम्मान की कामना किया करता था। आयोजकों ने सचमुच यह अभूतपूर्व दृश्य उपस्थित किया है, लेकिन मेरे दुर्भाग्य की भीषण गर्मी में यह सारी शीतलता सूखी चली जाती है, मेरे मन की गर्मी में बढ़ती चली जाती है।...किसी तरह इस सभा से मेरे प्राण छूटें और घर पहुंचकर मैं अपने कमरे में दुबककर बैठ जाऊं। अपनी घुटन की ऊब से मेरे ध्यान की एकाग्रता भग हुई। वामांगिनी माया मेरे पास ही बैठी थीं, सन्तोष और आनन्द की दिव्य प्रभा शारदीया चांदनी की तरह उनके व्यक्तित्व से प्रस्फुटित होकर फैल रही थी...काश कि मैं भी किसी प्रकार यों ही सन्तोष और आनन्द की अमृत-घूंटें पीकर छक सकता।

साठ ! साठ ! साठ ! हर भाषण में मेरी आयु के साठ वर्षों पर ज़ोर दिया जा रहा है। मैंने साठ क्या पूरे किए, मानो एवरेस्ट की चोटी पर पहुंच गया। आखिर इन साठ वर्षों में मैंने पाया क्या, दिया क्या ? देने के नाम पर छोटी-बड़ी अड़तीस किताबें हैं—पहले भावों की उछालों में लिखी थीं, फिर नाम की महत्वाकांक्षाएं बाद में अपने परिवार के भरण-पोषण की समस्या हल करने के लिए। मुझे फुरसत ही कहां मिली, जो अपने से उबरकर दूसरों के लिए सोचता। मैं अपने इकतालीस वर्षों के अनुभव से यह कह सकता हूं कि माया ने कभी अपने सुख-दुख के सम्बन्ध में कुछ नहीं सोचा। मुझे ऐसा एक भी दिन याद नहीं आ रहा, जब माया ने मुझसे अपने लिए एक पैसे की चीज़ भी मंगवाई हो। गृहस्थी की केवल वे ही चिन्ताएं, जिन्हें दूर करना उनके वश की बात नहीं होती, मेरे सामने वे लाती हैं और वह भी इस तरह, जैसे कि बड़ा भारी अपराध कर रही हों। कोई उन्हें लाख बुरा-भला कह ले, हजार कष्ट दे ले, मगर मेरी प्रशंसा में यदि एक बात कह दे, तो सब कुछ भूलकर आनन्द-मगन हो जाती हैं। उन्होंने मेरे दोषों को बहुत दूर तक दोष नहीं माना, उन्होंने मुझसे आज तक कभी मेरी एक भी शिकायत नहीं की। उनकी यह स्वामिभक्ति मुझे ठीक पशु जैसी लगती है। पहले तो अनेक बार मैं इससे चिढ़ भी चुका हूं, अब हारकर मैंने अपने-आपको समर्पित कर दिया है। पर क्या यह पराजय भरा समर्पण सच्चा समर्पण कहा जा सकता है ? यह क्या ठीक वही भाव है, जो माया ने मुझे दिया है।

गवर्नर साहब का समय चुक गया था। उन्होंने मुस्कराकर मुझसे क्षमा मांगी, एक बार फिर जन्मतिथि की बधाई दी, हाथ मिलाया, माया को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और चले गए। मंच से कई लोग उठकर उन्हें पहुंचाने गए। आगे की पंक्ति में बैठे हुए अस्सी प्रतिशत अफसर जोड़े चले गए। और तो और पत्र-कार भी उठ चले। अंगरेजी के तो खैर गए ही हिन्दी के भी बहुत से चले गए। लगभग दो मिनट तक सभा का कामकाज ठप पड़ा रहा।...कितना बुरा लग रहा है यह व्यवधान! आखिर राज्यपाल और मंत्रियों का इस मजमे में काम ही क्या था? इन्होंने मेरा लिखा एक भी अक्षर नहीं पढ़ा, केवल आयोजकों के घेरे-चपेटे चले आए। पिछड़े हुए समाज की पिछड़ी हुई भाषा का एक साहित्यिक डिमॉक्रेसी के इन कर्णधारों के लिए केवल शतरंज का एक मोहरा भर है, जिसे चलकर वे विरोधी पक्ष की ओर से पड़ती हुई शह बचा लेते हैं। ये पिछड़ों को अपनी भव्य उपस्थिति से और पिछड़ा जाते हैं, जैसे अंग्रेज किया करते थे।

अंग्रेज़ों का ध्यान आते ही, पलक झंपाते ही—'भयंकर दृश्य'—एक शीर्षक का विस्फोट हुआ। मुझे मन ही मन में हंसी आ गयी। बचपन में हमारे घर एक साप्ताहिक पत्र 'आनन्द' आया करता था। मैं छपी खबरों और बातों को इतने ध्यान और चाव से पढ़ता था कि अकसर शीर्षक से लेकर मैटर तक करीब-करीब क्रम से दिमाग पर छप जाता था। मैं अपने सहपाठी मित्रों को बड़े चाव से वह सब सुनाया करता था। 'भयंकर दृश्य' भी एक ऐसा ही शीर्षक है, जिसमें सन् सात-आठ के लगभग जितेन्द्रनाथराय चौधरी नामक अठारह वर्षीय नवयुवक ने हरिसन रोड कलकत्ता की एक सभा में बंगाल के छोटे लाट पर गोली चलाने का प्रयत्न किया था।

'भयंकर दृश्य' शीर्षक पर हंसी आने के साथ ही वर्तमान सभा में आवागमन के विघ्न से उपजी हुई खीझ हवा हो गई। आस-पास बैठे लोगों पर, सामने हॉल में दर्शक-वृन्द पर एक बार ध्यान से नजर दौड़ गई। हॉल में आगे की पंक्ति में एक कला-संस्कृति और हिन्दी-प्रेमी आई० सी० एस० महोदय सपत्नीक विराज-मान थे। मुझे खुशी हुई, कम से कम एक तो गवर्नर-मन्त्रियों के लिए नहीं, बल्कि लेखक के सम्मानार्थ आया है। बाकी और सामाजिक पेशों और श्रेणियों के अनेक चिरपरिचित और सम्भ्रान्त चेहरे नज़र आ रहे थे। हिन्दी-उर्दू पत्रों के संपादक एक अंग्रेजी पत्र के भी; विश्वविद्यालय के उपकुलपति और अनेक प्रोफेसर, व्यवसायी, विद्यार्थी, अमीर-गरीब, सब मिलाकर हजार-नौ सौ व्यक्तियों का मजमा था। मेरा अपराधजड़ित मानस अपने लिए आई इस रंगारंग भीड़ को देखकर श्रद्धा-विभोर हो उठा। कितना कम देकर कितना अधिक पा रहा हूं।

...अभी...मान लो अभी, इसी वक्त, भवानी का ससुर...? मेरे इस मिथ्या-भय को मन ने बड़ी जोर से लताड़ा। लड़के ने जो कुछ किया, उसके लिए मैं दुखी और लज्जित अवश्य हूं। पर उसका लांछन मुझ पर नहीं आता। बहू और पोतों को अपने घर नहीं बुलाया, इसके लिए दोषी अवश्य हूं...पर...क्या बतलाऊं, मैंने इस माया की बच्ची से न जाने कितनी बार कहा होगा कि बहू-बच्चों को बुला लो, बुला लो। आखिर समधी भी मामूली मिडिल-क्लास आदमी हैं। बेचारे पर अपनी ही गृहस्थी का बोझ कम नहीं...मगर ये माया हमेशा अपना खर्च बढ़ने के डर से टाल-मटोल करती रहीं। आखिर जीवन भर निर्द्वन्द्व रहने वाले व्यक्ति को बुढ़ापे में एक मिथ्या अपराध-भावना से बांध दिया न! पास

बैठी माया को नजर उठाकर क्रोध से देखा, वह सानंद मेरी प्रशंसा में होता हुआ भाषण सुन रही थीं... उन्हें देखकर मन स्निग्ध हुआ—यह बेचारी भी क्या करें ? खर्च करने की सामर्थ्य ही नहीं। बड़ा बेटा विनयशंकर रेलवे विभाग में है, गोरखपुर में सपरिवार रहता है; मंझले भवानी ने तो पिछले तीन वर्षों से कोई सम्पर्क-सम्बन्ध रक्खा ही नहीं। छोटे उमेश ने दूसरी बार आई० ए० एस० की आरंभिक परीक्षा दी है। इस बार उसने अपने 'पूज्य पिताजी' के 'परिचितों' और 'मित्रों' में से किसी भी महत्वपूर्ण व्यक्ति की सेवा करने में किंचित् मात्र भी कोताही नहीं की। इसलिए इस बार उसे पास तो हो ही जाना चाहिए। पर मैं यह अच्छी तरह से जानता हूं, मेरी यह चौथी सन्तान भी अपने अयोग्य पिता को अधिक सहायता न दे सकेगी। उमेश से बड़ी अरुणा का विवाह छह वर्ष पहले कर चुका, अब तक उसका कर्ज पाट रहा हूं। सबसे छोटी वरुणा चार वर्षों से क्षयग्रस्त है, उसके इलाज में पाई-पाई लुट जाती है। फिर कहां से भवानी की बहू और उसके बच्चों को अपने पास बुलाकर रक्खूं ? पिछले वर्ष-सवा-वर्ष से मन इतना खाली और तन इतना लाचार है कि जमकर काम करने बैठ ही नहीं पाता। और फिर मनुष्य के श्रम करने की भी एक सीमा होती है। इक्कीस वर्ष की आयु से लेकर अब तक कभी इच्छामत विश्राम ही नहीं कर पाया, या बीमार होकर ही बिस्तर पर लेटा और या फिर इसी प्रकार दिमाग ठप पड़ जाने पर ही निकम्मा बनने को मजबूर हुआ। इसके अतिरिक्त सन् इक्कीस, तीस और बयालीस में जेल जाकर कलम, अर्थजनित श्रम न कर पाने के लिए मजबूर हुई। लेकिन इस प्रकार का विश्राम मन को शान्त और स्वस्थ करने के बजाय और अधिक अशान्त और उद्विग्न बना देता है। तन के ठेले पर लदा हुआ यह जीवन का भारी बोझ खींचते मेरे प्राणों का भूखा अशक्त भैंसा अब बेदम होकर जेठ की चिलचिलाती धूप में तपती हुई सड़क पर गिर पड़ा है; नियति की चाबुकों से उत्तेजित होकर भी उसमें उठने की ताब नहीं रही। अब सदा के लिए मेरी आंखें मिच जायं, मैं लकड़ियों पर सो जाऊं ! मन की आग से भस्मीभूत हो चुका अब मेरे ज्येष्ठ तनय के हाथों यह तन भी फुंक जाय तो अच्छा हो। इससे बड़ा कोई पुरस्कार, कोई सम्मान अब मैं नहीं चाहता !

...वाह रे नियति का व्यंग ! ठीक उसी समय माइक्रोफोन पर मयंक जी मेरे शतायुष्मान होने की कामना कर रहे थे : "मैं कामना करता हूं कि अरविन्द शंकर जी की जन्मशताब्दी पर डाक-टिकट छपें, उनके नाम पर सरकार नये कलाकारों को छात्रवृत्तियां प्रदान करे।"...भाड़ में जाय मेरी जन्मशताब्दी। जहन्नुम में जाय ये बेपेंदी का सरकार और इसके कर्णधार। इन्होंने चालीस करोड़ आदमियों को कुत्तों का-सा जीवन बिताने पर मजबूर कर रक्खा है। इन्होंने व्यक्ति का आत्माभिमान नष्ट कर दिया है। अंगरेजी राज में कम से कम हम तप तो लेते थे, उस गुलामी से जूझने के लिए हम अपने सिर तो तान लेते थे। मगर अब...? पिछले पचास-पचपन वर्षों में धीरे-धीरे करके हमने एक शक्ति अर्जित की थी।—अनेक बमकांड हुए, अनेक सामाजिक क्रान्तियां आईं, त्याग और तपस्या का महत्व बढ़ा, पैसे वाले तथाकथित बड़े आदमियों की जगह निःस्वार्थ देशवासियों और ईमानदार व्यक्तियों की साख बढ़ी...लेकिन आज सब उलट गया। ईमानदार लोग मूर्ख माने जाते हैं, जो मोटरों पर न दौड़ सके, सरकारी परमिट न दिला सके, वह भला देशसेवी कैसे कहा जाय ? जो समाज की जड़ रूढ़िवादिता पर कुठाराघात

करे या अन्ध श्रद्धा को गलत बतलाए, वह नास्तिक कम्युनिस्ट। अच्छी गाली बना रक्खी है।···हद कर दी है इन लोगों ने! ये लोग अपने हलवे-मांडे की सुरक्षा के लिए स्वदेश को मूर्ख, कमजोर, कायर, निकम्मेपन से त्रस्त प्रलापी पागलों का देश बनाये रखना चाहते हैं।

मेरा मस्तिष्क उत्तेजित खीझ भरा, थका-हारा था। अपने सम्मान में होने वाले इस सार्वजनिक समारोह की प्रतिक्रिया मुझ पर स्वस्थ न हो सकी थी। बैठे-बैठे ऊब गया था। सोचता था, किसी तरह यह उत्सव समाप्त हो तो घर भागूं। मगर आज घर जाने का डौल भी तो न था। सभा के बाद एक पुस्तक-प्रकाशक ने मेरे सम्मान में एक प्रीतिभोज का आयोजन भी कर रक्खा था। मुझे बतलाया गया था कि उसमें मुख्यमन्त्री और अनेकानेक राजपुरुष पधारेंगे।···उंह, पधारा करें। मुझे क्या मिलेगा? ये राज्यपाल, मुख्यमन्त्री आदि मेरे लिए थोड़े ही आए हैं! इस सभा का आयोजन, मैं जानता हूं, नगर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष ने अपने चार खुशामदी साहित्यिकों को घेर कर कराया है। लगभग दो वर्ष पहले मेरे घर के पीछे वाली मेरी पैतृक जमीन अध्यक्ष महोदय के एक रिश्तेदार रईस ने जबर्दस्ती अपने हिस्से में मिला ली थी। मैंने उन्हें नोटिस दी, वे उसे घोलकर पी गए। मुझे बड़ा क्रोध आया, पर अपनी विवशता को भी अनुभव कर रहा था। मुहल्ले के चार भले मानसों में भी बात फैल गई। उक्त डाकू सेठ ने कहा कि जमीन के हजार-पांच सौ दे दूंगा, पर जमीन अब वो नहीं पा सकते, जो करना हो, कर लें। नगर कांग्रेसाध्यक्ष मेरे साथ सन् '42 में जेल जा चुके थे। डाकू सेठ से उनकी रिश्तेदारी और उन पर उनका प्रभाव देखकर मैंने उन्हें पत्र लिखा। अपने दुर्भाग्य से उन्होंने उसका उत्तर लिख भेजा। लिखा कि सेठ हरपाल दास को उस जमीन की जरूरत है, इसलिए आपको अपना समझकर ही उन्होंने आपकी जमीन ले ली है। वे आपको उसका मुआवज़ा देने को भी राजी हैं। आप तो समाजवादी हैं; आपको जमीन की आवश्यकता नहीं और उन्हें है, इसलिए उन्हें ले लेने दीजिए। आप तो महान् आत्मा हैं, इतनी उदारता दिखला दीजिए।

इस पत्र ने मेरे इत्ते-पित्ते सुलगा दिए। अध्यक्ष महोदय ने सेठ के अन्याय पर जिस तरह से मुझे समाजवाद का न्याय समझाया था, वह मेरे लिए असह्य हो उठा। मैंने उसी समय एक प्रकाशक को उपन्यास देने का वचन देकर उससे दो हजार रुपये मंगवाये और सेठ पर दावा ठोंक दिया। सेठ की सारी हेकड़ी इसी विश्वास पर थी कि मैं मुकदमा न लड़ सकूंगा। दावा ठोंकने पर उन्होंने यह धमकियां दीं कि सारे खान्दान को कत्ल करवा देंगे और सुप्रीम कोर्ट तक मुकदमे को घसीट ले जाएंगे, देखूं कहां तक इस लेखक की दुम में मुकदमा लड़ने की शक्ति है। मैंने उन धमकियों की परवाह नहीं की, क्योंकि कानून से मेरा ही पक्ष प्रबल था। सेठ साहब कचहरी वालों को चटा-चुटू कर पेशियों पर पेशियां बढ़वाने लगे। मैं सचमुच तंग आ गया। कांग्रेसाध्यक्ष महोदय एक दिन मेरे भले बनकर मुझे उपदेश देने के लिए घर पधारे। मैं चिढ़ गया। वे भी गर्मा गये, कह गये: "अरविंद जी, कानून चाक पर चढ़ी मिट्टी है, पैसे वाला उसे जैसा रूप देना चाहेगा, दे लेगा, और आप कुछ न कर पाएंगे।" मैंने कहा, अच्छा अब मेरी जमीन जाय तो जाय, पर उससे पहले मैं आपका पोलिटिकल कैरियर तो सदा के लिए चौपट कर ही दूंगा। अध्यक्ष महोदय गर्माकर मुझे कम्यूनिस्ट घोषित करके चले गये। मैंने सोचा, ये बेईमान राजसत्ता का दुरुपयोग मेरे विरुद्ध करवा सकता है। यह मेरी

विवशता का लाभ उठाकर अपने रिश्तेदार के लिए मेरे गले पर छुरी फेरने में कोई कोर-कसर न उठा रक्खेगा। पहले उत्तेजना में इच्छा हुई कि इस अन्याय के प्रति आमरण अनशन साधूं, फिर अकस्मात् ही मुझे अध्यक्ष के पत्र का ध्यान आया। मैं उस पत्र को लेकर सीधे दिल्ली दौड़ा। प्रधानमन्त्री तक पहुंचने के साधन जुटाये। वे उस पत्र को देखकर स्वाभाविक रूप से बहुत नाराज हुए। उनकी नाराजी का परिणाम अध्यक्ष महोदय के लिए अच्छा साबित न हुआ। वे घबराये हुए मेरे पास आए, क्षमा मांगने लगे। अपने रिश्तेदार के सिर से अपने वरदहस्त की छाया फौरन हटा ली। सेठ महोदय भी उसके बाद ही समझौता करने के लिए दांत निपोरने लगे। मैंने साफ कह दिया कि पहले मेरी जमीन से अपनी इमारत हटाइए, तब आगे की बात होगी। अन्त में मेरी ही टेक रही। तब से अध्यक्ष महोदय मेरे परम भक्त हो गए हैं। अभी दो मास पूर्व ही संयोग से मुझे साहित्य अकादेमी पुरस्कार भी मिल चुका है। इससे भी उनकी यह धारणा और पुष्ट हो गई कि मैं 'दिल्ली-दरबार' का दुलारा हूं। वे तो मेरे पुरस्कृत होने पर ही मेरा अभिनन्दन करने पर तुले हुए थे, मेरे नम्रता पूर्वक अस्वीकार कर देने पर वे सप्रेम आमरण अनशन तक करने पर उतारू हो गए थे, फिर मेरे आई० ए० एस० पदाकांक्षी पुत्र उमेश के सुझाव पर यह समारोह करने का आयोजन किया।

मैं इस तमाशे का टेसू नहीं बनना चाहता था। कारण स्पष्ट था, पर उमेश इस आयोजन द्वारा अपने भविष्य को चमकाना चाहता था। उसकी मां ने मुझे मनाया। माया के अश्रुसिक्त आग्रह से मैं यह अपमान सहने के लिए विवश हो गया। माया-मोहित होकर मैंने ये दो गलत काम किए हैं। खैर, इस सम्मान-मण्डित असम्मान को तो सह भी जाऊंगा, पर वरुणा के होने वाले पति को धोखा देकर जितने दिन जिऊंगा, उतने दिन प्रति पल जल-जलकर भस्म होता रहूंगा।···नहीं, यह हरगिज न होगा। मेरा सारा अस्तित्व ही झूठा और निरर्थक हो जाएगा।

···अपने भाषण में अपने से केवल कुछ महीने छोटी बीसवीं सदी की षष्टि-पूर्ति का प्रस्ताव उठाते हुए उसके विकास का ब्यौरा देने के बहाने अपने जीवन का सारा पाप-पुण्य जन-जनार्दन के श्रीचरणों में अर्पित कर दिया।

लोग कहते थे, मेरा भाषण प्रभावशाली हुआ। माया उदास हो गई, अकेले में कहने लगीं : "तुम्हें इतना सच भी न बोलना चाहिए था। आखिर अपनी ही इज्जत गई।······लेकिन······खैर, तुमने जो ये किया तो कुछ सोचकर अच्छा ही किया होगा।"

पांच

मेरे भाषण का प्रभाव सरकारी नेताओं पर भी अच्छा न पड़ा। रात के प्रीतिभोज में मुख्यमन्त्री तथा अन्य मन्त्रिगण न आए। भोजोत्सव के आयोजक अपने सदल-बल निस्तेज हो गए। सर्वसाधारण जन के मन में मेरे उक्त भाषण की बड़ी ही स्वस्थ और शुभ प्रतिक्रिया हुई थी, यह मैं प्रत्येक के व्यवहार और बातों ही से स्पष्ट देख रहा था। मेरे कान में यह डाल दिया गया कि मुख्यमन्त्री जी मेरे भाषण के कुछ अंशों से असंतुष्ट हैं। कुछ लोगों ने जाकर उनसे मेरे खिलाफ शिकायत जड़ दी है। मैंने अपने भाषण में किसी के प्रति अपशब्द का व्यवहार नहीं किया। हां, मैंने यह अवश्य कहा था कि सरकार में जाने के बाद हमारे बड़े-बड़े नेताओं में अब वह भावनिष्ठा और सिद्धांतवादिता नहीं रह गई, जो उनमें आज़ादी मिलने से पहले दिखाई देती थी; उसी पर तो हम, उस जमाने के युवक, रीझे थे। हमने आत्मबल पाया था; तरह-तरह की रचनात्मक शक्तियां हमारे अन्दर जागी थीं। आज अपने इन्हीं प्रेरणा-पुरुषों को देखकर हमारी वही शक्तियां हमसे उनके संबंध में सवाल कर उठती हैं—ये लोग वही हैं ? एक समय वह भी था जब कांग्रेस-कमेटी के दफ्तर में जाकर हमें आत्मसंतोष और जूझने की प्रेरणा मिलती थी, आज वहां जाने पर मुझे ऐसा लगता है, जैसे कि जुए के अड्डे में पहुंच गया होऊं। मैंने कहा था कि आज़ादी के बाद सैकड़ों निःस्वार्थ देशसेवक भावनात्मक रूप से एकदम बेकार हो गए। जो इलेक्शन लड़ाने और परमिट दिलाने में पटु हुए, वे महत्वपूर्ण नेता बन गए। बुद्धि उस गलियारे में जाकर भटक गई, जहां पैसा भगवान और सत्ता जगदम्बा है। मैंने कहा था, अगर यह व्यवधान न पड़ जाता तो आज भारत का रूप ही कुछ और होता। इन्होंने भूखे-नंगे किन्तु तपस्वी भारत की तपस्या छीन ली और भूखे-नंगेपन की हाय-हाय को अपने नये रियासती जोम से भड़का दिया है।

मैंने यह बातें कहते हुए भी अपने भाषण में अनेक बार हर किसी से बुरा न मानने की अपील की थी। मैंने बीसवीं सदी के आरंभ से सन् साठ तक का मानसिक लेखा-जोखा रखते हुए देश के बौद्धिक वर्ग के मानस-विभाजन का एक चित्र यथामति प्रस्तुत किया था। उसमें केवल मंत्रीगण का ही नहीं, वरन् अध्यापक, लेखक, कलाकार, पत्रकार और सभी राजनीतिक दलों का उल्लेख किया था। मैंने स्वयम् अपनी कमजोरियों को भी नहीं बख्शा था। फिर मंत्रियों ने या नगर के कुछ कांग्रेसी नेताओं ने ही खास तौर पर बुरा क्यों माना ? खैर, बुरा मान गए तो अब मैं क्या करूं ? मन से जो सच उबले, उसे न कहूं ?

डिनर से घर लौटा तो मेरे साथ उपहारों के कुछ बण्डल और सभा तथा प्रीति-भोज के अवसर पर प्राप्त फूल मालाओं का भारी बोझ था। एक प्रोफेसर महोदय आग्रहपूर्वक अपनी कार पर मुझे और माया को घर छोड़ गए। सड़क से गली में अपने घर तक अपना यशोभार उठाकर लाने में यदि दो-एक परिचित सज्जन हमारे सहायक न बन जाते, तो हम मियां-बीवी को अपनी-अपनी नानियां

याद आ जातीं। पड़ोसी श्याम बाबू का नौकर पन्द्रह तारों के लिफाफे दे गया; चौदह बधाई तारों के रंगीन लिफाफे और एक सादा भी था। मैंने सादा लिफाफा पहले खोला। पद्मनाभ—उसी प्रकाशक का तार था, जिसकी नोटिस मुझे दिन में मिली थी। तार में बधाई देने के बाद लिखा था, कि उनके लड़के द्वारा दी गई नोटिस उनकी जानकारी में नहीं भेजी गई थी। 'नोटिस' का नोटिस न लें और मेरे पुत्र की नादानी को क्षमा करें। आप चाहे दस वर्षों में भी अपना उपन्यास हमें लिखकर दें, तो तगादा नहीं करेंगे। हम आपसे व्यवहार रखना चाहते हैं, आपकी आगामी सभी रचनाएं छापना चाहते हैं, आपकी कृपादृष्टि और आशीर्वाद चाहते हैं,—इत्यादि बहुत कुछ लिखा था। तार क्या पूरा पत्र ही था।···हालांकि मैं गम्भीरतापूर्वक ईश्वर को मानता तो नहीं हूं, पर उस समय अनायास ईश्वर के प्रति और पद्मनाभजी के प्रति भी अनन्त कृतज्ञतावश मैं फूट-फूटकर रो पड़ा।

माया घबरा गई। रोते-रोते ही मैंने उन्हें सान्त्वना दी। सचमुच, यह तार पाकर मेरा जी बेहद हल्का हो गया। मेरी नैतिकता स्फूर्तिवन्त हो उठी। तय किया कि उपन्यास भी लिखूंगा, भवानी के बहू-बच्चों को भी अपने पास बुलाकर रक्खूंगा और बढ़ने वाले खर्च को पूरा करने के लिए किसी प्रकाशक से अनुवाद-कार्य भी ले लूंगा। अभी मुझमें दमखम है। अकादेमी पुरस्कार में मिले पांच हज़ार रुपयों में साढ़े तीन हजार पुराना कर्ज पाटने में चले गए। हज़ार रुपया अभी मेरे पास है। पांच सौ रुपए घर भर के कपड़े-लत्ते और गृहस्थी की वे आवश्यक वस्तुएं खरीदने में चुक गए थे, जो धनाभाव के कारण कई वर्षों से अब तक खरीदी न जा सकी थीं। खैर, इन हज़ार रुपयों के खर्च होने तक मैं किसी अनुवाद कार्य से नई रकम ले आऊंगा। कम से कम ढाई महीने की मोहलत तो मिल ही जाती है इस तरह।—यह सब सोचकर मैं अपने मन में बहुत आश्वस्त हो गया। बात को कागज पर लिखने में जितना समय लगता है, उतना बातों के मन में उठने और निश्चय का रूप धारण करने में न लगा।

उसी समय बाहरी मौन को भंग करते हुए सहसा माया बोलीं: "सुनो जी, तुम बांकेलाल को लिख दो कि चाहे तो बहू और बच्चों को यहां छोड़ जाएं और या फिर सत्तर-पिछत्तर-अस्सी, जितने रुपये हमसे बन पड़ेंगे, हम हर महीने भेज दिया करेंगे।"

सुनकर सन्तोष मिला। पूछ ही बैठा: "रुपये कहां से लाओगी?"

"सोचती हूं, सिलाई का काम शुरू करूंगी। चालीस-पचास उससे निकल आएंगे, बीस-पचीस इधर से निकालूंगी। अब सिर पर जब भार पड़ ही गया है तो समेटना ही पड़ेगा। भगवान् करे, उमेश की नौकरी पक्की हो जाए तो फिर इतनी परेशानी न रहेगी। बाहर रहेगा तो भी पचास-साठ रुपए तो हर महीने भेज ही सकेगा।"

मैंने कहा: "शाबास, यही मन अगर तुमने साल भर पहले कस लिया होता, तो आज बांकेलाल जी से यह पत्र पाने की नौबत ही न आती। खैर, होनी इस प्रकार ही बदी होगी। लेकिन तुम्हें सिलाई का श्रम न करना पड़ेगा, मैंने अपना उपन्यास लिखने के साथ इस समय अनुवाद का काम भी लेने का निश्चय कर लिया है। इस हफ्ते के भीतर भी किसी न किसी प्रकाशक से बात तय कर लूंगा। और उमेश से भी तुम फिलहाल आर्थिक सहायता की आशा न रखना। अगर

उसे यह नौकरी मिल भी गई तो फिलहाल उसे बड़ी तनख्वाह नहीं मिलेगी; जितनी मिलेगी वह उसकी शान-शौकत में ही शायद पूरी न पड़े। बहरहाल तुम चिन्ता न करो। आज मैं सठियाया नहीं, बल्कि पठियाया हूं। पद्मनाभजी के तार ने मुझे इस समय बड़ा मनोबल प्रदान किया है।"

मैंने जान-बूझकर इस समय वरुणा के रिश्ते के सम्बन्ध में बात नहीं उठाई। यदि वे लोग इस रिश्ते को स्वीकार करेंगे तो उस समय मैं लड़के को सच्चा हाल लिख दूंगा। उसके बाद अगर बात बिगड़ेगी तो मैं इसे आगे पढ़ने का प्रबन्ध करूंगा। बी० एस-सी० इस साल हो ही जाएगी, सब्जेक्ट्स सौभाग्य से इसने बायोलॉजी ग्रुप के ही ले रक्खे हैं; एम० बी० बी० एस० में भरती करवा दूंगा। रुपयों की चिन्ता अभी से करना फिजूल है। 'सत्यः श्रमाभ्याम् सकलार्थ सिद्धिः।' इस आधार पर टिके हुए आत्मविश्वास का नाम ही ईश्वर है—और वह ईश्वर मेरे साथ है।

मन सचमुच जवान हो गया था। अनेक साहित्यिक मित्रों और प्रेमियों के बधाई-तार आज दिन भर मुझे मिलते रहे थे। दिन में मेरे मन में उत्साह नहीं था, इस समय इन चौदह तारों के बहाने वे साठ-पैंसठ तार भी मन को उमंग दे गए और साथ ही कृतज्ञता का सात्विक भाव भी। मैं तार भेजने वाले प्रत्येक व्यक्ति के बहाने मानवता के प्रति कृतज्ञ था।

दिन भर की थकान के कारण लेटते ही थोड़ी देर में नींद आ गई। नींद मुझे अब भी स्वप्न मुक्त निर्द्वन्द्व आती है। मेरे लिए बुढ़ापा इस अर्थ में अब नहीं आया कि छह-सात घण्टे की गहरी नींद सो लेता हूं और दिन में झपकी तक लेने की आवश्यकता महसूस नहीं होती।

सबेरे देर से उठा। ताजा और आनन्द-मग्न था। आंख खुलते ही आदत के अनुसार हथेली में अपनी मत्स्य रेखा को देखकर सिर से लगाया, हाथ चूमा और फिर अनायास मेरी आंखें छत की ओर उठ गईं। अन्तर्प्रेरणा सहसा लहराने लगी—छत की धन्नियों की सामानान्तर रेखाओं में मुझे सहसा विद्युत गति का आभास मिला। अचल सचल लगा, धन्नियों पर निराकार साकार गति की एक बरात गुजर गई और उसे शब्दों का गुंजन भी सहसा सुलभ हो गया।

हिन्दी-अंग्रेजी के अखबार मेरे सिरहाने ही रक्खे थे, पर आज उन्हें देखने की इच्छा न हुई। मैं तुरन्त तैयार होकर लिखने बैठ जाना चाहता था। मन में गजब की फुर्ती थी। अभी परसों-नरसों ही शाम को बाजार से घर लौट रहा था। बरातों पर बरातें निकल रही थीं। एक बहुत ही भारी शोभायात्रा के जलूस ने सारा मार्ग घेर रक्खा था। मैं एक दूकान के सामने, किनारे पर खड़ा हो गया। दो नवयुवक पास ही खड़े थे। शायद वे लोग भी किसी होने वाली शादी के प्रबंध की चिन्ताओं से कुण्ठित थे। रईस वर की शोभायात्रा देखकर उनकी कटूक्तियां फूटी थीं। इस समय वही दृश्य और बातें मेरे मन में उभर आईं। उपन्यास का श्रीगणेश उसी दृश्य और बातों से करने की इच्छा हुई और इस बहाने मन में यह भी स्पष्ट हुआ कि नौजवानों की आशाओं-आकांक्षाओं और कुण्ठाओं को चित्रित करना ही मेरा प्रमुख उद्देश्य होगा। आखिर आने वाली दुनिया है तो उन्हीं की।

गुस्लखाने में मंजन करते हुए ही मैंने घण्टी का स्विच दबा दिया, यानी माया को चाय बनाने का आदेश दे दिया। पिछवाड़े की ज़मीन जब उस किस्से-कजिए

के बाद फिर से मेरे अधिकार में आई थी, तभी मैंने तुरन्त उसकी चहारदीवार खिचवाकर उसमें अपने लिए एक छोटा-सा कमरा, शौच, स्नानगृह और छोटी-सी बगिया तैयार करा ली थी। अब इसी में घर से एकदम स्वतंत्र होकर रहता हूं और गरीबी में भी बड़ी बादशाही का अनुभव करता हूं।

माया चाय-नाश्ता लेकर यथासमय आ गईं। उनका चेहरा मुझे अपार शोकमग्न लगा। देखते ही बादशाही उड़नछू हो गई, पूछा : "क्या बात है माया ?"

"कुछ नहीं। दूध अलग पाट में नहीं ला सकी आज। चूल्हे का कोना टूट गया, पतीली टेढ़ी हो गई, दूध गिर गया।"

"उह ! इसी के कारण उदास हो ?"

"न—हीं।" माया के चेहरे पर दुःख की छाया गहरी हो गई। मेरे 'छठे बोध' को किसी अमंगल का आभास हुआ, लेकिन मैंने फिर प्रश्न न किया, चुपचाप टोस्ट खाया, चाय के दो घूंट पिये, बीच-बीच में कनखियों से माया का मुख देखता रहा—उस पर शोक और चिन्ता की गहरी एकाग्रता अंकित थी।

"माया !"

माया ने हताश, शून्य, बर्फ जैसी ठंडी दृष्टि से मुझे देखा।

"क्या बात है ?"

फिर वही जड़ मौन, जो मेरे तिबारा पूछने से पहले ही घुटनभरी निःश्वास में परिणत हुआ; फिर स्वर फूटा : "उमेश घर छोड़कर चला गया।"

'कहां' शब्द मन ही मन में उछलकर रह गया, क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर तत्क्षण मेरे अन्तर्बोध को भासित हो गया था। उमेश अपने स्वार्थवश हो मुझे छोड़कर गया होगा। मेरे कल के भाषण के प्रति सरकारी रोष से वह अपने-आपको बचाना चाहता होगा।...जो भी हो, फिर कुछ पूछने की इच्छा न हुई। माया का चिन्ता-शोक-मग्न अन्तर मेरे अन्तर में समाहित हो गया। चाय के घूंट बेहोशी में हलक के नीचे उतरते रहे।...वह प्रेरणा की विद्युत भरी फुर्ती, लिखने का संकल्प, बरातों का सीन, वो दो युवक जो मेरे उपन्यास के पात्र बनकर आने-वाले थे...उनकी, नवयुवकों की समस्या...लेकिन वही तो है मेरे सामने। भवानी में बड़प्पन की बू, फैशन की भूख, चुटकी बजाकर ढेर सारी रकम पैदा कर लेने की भूख, औरत को ललचाकर अपने बस में करने का दम्भ, दूसरों के सामने शाही खर्च करने की शेखी—यही सब डायन इच्छाएं अपना इन्द्रजाल फैलाए हुए उसे नचा रही हैं।

उमेश में इस प्रकार का कोई ऐब नहीं, मगर दुनियादारी की दृष्टि से अति सफल व्यक्ति बनने की चाह है। वह अपने महल्ले-पड़ोस के लड़कों और अनेक सहपाठियों से कई बातों में अलग है, उसका हर काम बड़े व्यवस्थित ढंग से होता है, हर काम ठीक समय से करने का पाबन्द है। मेरे बच्चों में विविध साहित्य और साधारण ज्ञान-विज्ञान की बातों में गहरी रुचि और जानकारी रखने वाला केवल यह उमेश ही है। दुनियादारी और मिलनसारी बरतने में एक नम्बर। हर इतवार को दो-चार लोगों के यहां अवश्य जाकर मिल-जुल आएगा। मेरे पास जब-तब ऊंचे वर्ग के लोग भी आने की कृपा करते ही रहते हैं। उमेश मेरे परिचय के सहारे उनमें से बहुत के साथ घनिष्ठता बढ़ा लेता है। पढ़ने में शुरू ही से तेज रहा। पुरस्कार-प्रोत्साहन स्वरूप सरकारी वजीफे पाने में भी यह लड़का

अपने मंझले भाई भवानी के समान ही बड़ा भाग्यवान् रहा है। इसकी पढ़ाई पर भी मुझे अधिक खर्च करना पड़ा। बी० ए० आनर्स गोल्ड मेडिलिस्ट है। अंग्रेजी में तेज, हिन्दी के प्रति अवज्ञा या अश्रद्धा का भाव भाव नहीं, क्योंकि पिता के प्रति श्रद्धालु है। मां के प्रति भी सच्चा भक्ति-भाव है। लेकिन यह सब होते हुए भी दो ट्यूशनें पढ़ाने से होने वाली अपनी डेढ़ सौ रुपए महीने की आमदनी में से पिछले दो वर्षों में कभी एक छदाम भी घर में नहीं दी। हां, यह अवश्य है कि दो समय खाने के अलावा उसने अपना और कोई खर्च भी हमसे नहीं मांगा।··· लेकिन आई० ए० एस० की इण्टरव्यू में अपनी सफलता निश्चित करने के लिए, 'सरकार विरोधी' पिता से अलग होने का निश्चय करने के लिए उसे शायद एक पल भी न लगा होगा। वाह री स्वार्थी दुनिया! स्वारथ के लिए बेटा बाप को भी त्याग सकता है।

माया ने खाली प्याले में दुबारा चाय ओजी, शक्कर मिलाई और प्याला मेरी ओर बढ़ाते हुए मौन भंग किया, बोली; "बहुत-बहुत रोता रहा। रात में डेढ़ बजे तो घर आया था। हम दोनों पल भर के लिए भी नहीं सोये। कहने लगा, "भाभी, मेरी भगवान् में इतनी भगती नहीं जितनी की बाबूजी में है···"

"हां, हां, वह सब मैं समझता हूं। मुझे शिकायत भी नहीं। दुनिया की परवाह करने वाले को दुनिया के सभी नाटक करने पड़ते हैं। मैं अपने बच्चों को वह सब कुछ न दे सका, जो आज के नौजवान चाहते हैं। भवानी की कमजोरियां मेरी ही अनबुझी प्यासें हैं। उमेश के अन्दर यह सत्ता की जो चाहना है, वह भी मेरी ही एक सुप्त आकांक्षा है। दोष इन लड़कों का नहीं मेरा ही है।" कहकर मैंने एक गहरी निःश्वास ढोल दी। माया अपने पुत्र की ओर से हर सफाई देकर उसके प्रति मेरे भाव को सदय रखने के लिए व्यग्र थीं। कहने लगीं: "तुम्हारी तो ऐसी तारीफ कर रहा था कि कहने लगा कि सब जने, ऊंचे-ऊंचे क्लास के लोग कह रहे थे कि उमेश, तुम्हारे पिताजी जैसा आदमी होना मुश्किल है। रात के ग्यारा बजे राजकिशोर बाबू खुद उसे अपनी गाड़ी में बिठला के शिवकुमार मिनिस्टर के यहां ले गए और उनसे कहा कि बाप से रूठने का बदला बेटे से न लिया जाए। मुख्यमन्त्री को संभालने का और उनसे दिल्ली वाली सिफारिश इसके लिए कराने का जिम्मा आपका ही है। और जब तक इसका काम सिद्ध नहीं हो जाता, तब तक ये आप ही के यहां रहेगा भी। इस पर शिवकुमारजी बोले—तुम्हारा नाम लेके कहा कि हमारे साथ जेल में रहे थे। सन् '42 में जैसा काम उन्होंने किया, वो कोई कर नहीं सकता। उनके लड़के के साथ न्याय होना ही चाहिए। फिर राजकिशोर जी ने कहा कि वो जो कहते हैं सो कुछ झूठ नहीं कहते। और हमारे साथ दुश्मनी बरतते हुए भी नहीं कहते।···उमेश इतना रोया है, इतना फूट-फूट के रोया है कि कहते नहीं बनता। बोला, भाभी, बाबूजी मुझे स्वार्थी समझेंगे, पर एक बार नौकरी मिल जाए, फिर मैं दिखा दूंगा कि उनका कितना लायक बेटा हूं।"

बातें मेरी ऊपरी चेतना को केवल स्पर्श भर करती हुई निकलती चली गईं; मेरा मन गहरे शून्य में खोया हुआ था। माया की बात थमने पर मुझे अपने खोयेपन में वैसा ही धक्का लगा, जैसा एक बार बरसों पहले नदी किनारे कगार पर खड़े प्रकृति की शोभा निहारते हुए सहसा जमीन नीचे धसकने से हुआ था। समय रहते ही मैं उछलकर पीछे आ गया था। इस समय भी शून्य में खोए रहने के

लिए माया का स्वराधार होते ही मैं सहसा सावधान हो गया; विचार आया कि जवाब में कुछ कहना चाहिए, कह दिया, "वो सब ठीक है। दुनिया के ये गरब-गुमान और स्वार्थभरे खेल-तमाशे देखते हुए ही साठ बरस बिताये हैं। तुम भी ये सब चिन्ताएं छोड़ो, आखिर साहित्यिक की बीवी हो। मेरा उपन्यास अब आरम्भ होना ही चाहता है। मुझे उसी की चिन्ता करने दो। तुम्हारी गृहस्थी चलाने के लिए आज ही दिल्ली के दो प्रकाशकों को कोई अनुवाद का काम भेजने के लिए पत्र लिखता हूं। अभी तो खर्च चलाने के लिए तुम्हारे पास हजार रुपये हैं ही। भवानी की बहू को चिट्ठी लिख दो कि चली आए। अबकी जुलाई में उसे यूनिवर्सिटी में और वरुणा को मेडिकल कालेज में भर्ती करा दूंगा। पांच-छह वर्षों में दोनों ही लड़कियां अपने-अपने पैरों पर खड़ी हो जाएंगी। अड़सठ, उनहत्तर हद सत्तर की आयु पाने तक मैं शर्तिया इन सब सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त हो जाऊंगा। तब फिर हम-तुम हनीमून मनाने निकलेंगे।"

कर्तव्य-भावना से प्रेरित होकर माया और खुद अपने-आपको तसल्ली देने के लिए भी कहता तो चला गया, पर बात समाप्त होने पर मुझे लगा कि मेरा दम फूल आया है—झूठ की मंजिल तक अपने अन्तर्सत्य को नाथ कर घसीटता हुआ मैं ले तो आया, परन्तु सारा श्रम और उत्साह निरर्थक और बेदम हो गया। मन कहने लगा, झूठ है। अब तुम थक गए हो, प्राणहीन हो गए हो, कुछ न कर पाओगे। मुझे लगा कि मेरी अनन्त कुण्ठाओं को समाप्त करने का केवल एक ही उपाय है, वही जो मेरे पिता ने किया था—आत्महत्या!

छः

मेरे पिता मास्टर किशोरीलाल बी० ए० अपने समय के बड़े समाज-सुधारक 'नवीन बाबू' माने जाते थे। समय के बेहद पाबन्द और विलायती पोशाक के शौकीन थे। घर पर भी नंगे बदन रहने का औसत हिन्दुस्तानी चलन बरतना उन्हें पसन्द न था। घर में बहुत कम बोलते थे, हरदम लिखते-पढ़ते ही नजर आते थे। अपनी पत्नी मन्तो बीवी का नाम बदलकर उन्होंने मदालसा देवी रख दिया था और उन्हें इसी नाम से पुकारते भी थे। घर में दूसरी औरतों के अभाव का लाभ उठाकर उन्होंने अपनी मां के सामने मदालसा से खुलेआम बातें करने और नाम लेकर पुकारने का ढर्रा बड़े रौब से चला लिया था, केवल 'पिताजी' और बाबा साहब के सामने वे अपनी पत्नी से बातें न करते थे। गौने के बाद घर आते ही उन्होंने अपनी पत्नी को हिन्दी पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। उन्हें वे इतनी निष्ठा से पढ़ाते थे कि जरूरत पड़ने पर बेंत का प्रयोग करने से भी न चूकते थे। वे स्वयं जब एफ० ए० और बी० ए० पास करने के लिए इलाहाबाद चले, तो मां के बहाने पिता को यह प्रार्थना भरा आदेश दे गए कि किसी देसी ईसाई मास्टरनी को मदालसा बहू को अंगरेजी पढ़ाने के लिए नियुक्त कर लिया जाय। इधर के

महल्लों में एक ही बड़े धनी सज्जन के यहां काली मेम मास्टरनी आया करती थी, उसकी मेमियत और उसकी मोटी अम्मा की अकड़-फूं भरी साहबियत के बड़े-बड़े और बड़े रोचक रंगीन किस्से आम जवानों पर फैले हुए थे। यह भी कहा जाता था कि बाबू ब्रजभूषण लाल के ऐशोइश्क का शाही लुक्मा उनकी बहुओं और बेटियों को अंगरेजी पढ़ाने आया करती थी। वे ही मिस 'रोज़रैम' मेरी माता श्रीमती सौभाग्यवती मन्तो बीवी उर्फ मदालसा देवी को दस रुपये मासिक गुरु-दक्षिणा पर पढ़ाने आने लगी। सबसे बड़ा विरोध लाला सद्दीमलजी की ओर से आया, मगर सफल और प्रतिष्ठित नत-दामाद लाला सदानन्दजी के हठ के आगे उनकी चल न पाई। अन्त में समझौता यों हुआ: लालाजी की बैठक ही के एक दर में पर्दा टांगा गया, मेज-कुर्सियां लगीं, और बहू फुस-फुस स्वरों में ईसाइन मास्टरनी से अंगरेजी पढ़ने लगी। जब वह जाती तो मेरी मां परदा एक ओर समेट पट बांध देतीं ताकि छूत न लगे और कमरा कुर्सी-मेज धोकर आप नहातीं, पढ़नेवाले कपड़े धोकर सुखातीं, तब ऊपर जाकर घर की चीज-बस्त छुआ करती थीं। मदालसा देवी को अंगरेजी पढ़ाने से बतासो बीवी के मामा-मामियों की ओर से बड़ा कज़िया हुआ, महल्ले-बिरादरी में घर-घर चर्चे उठे। कहा जाने लगा किशोरीलाल अपनी बहू से भी मास्टरी कराएगा, उसे मेमों के साथ घुमाएगा। इतनी-इतनी बातें हुईं कि मदालसा देवी अपनी सास के सामने रो-रो पड़ती थीं; पर सास बेचारी क्या करे, म्याऊं के ठौर से कौन लड़े? हारकर सौभाग्यवती मदालसा देवी ने अपने पति को हिन्दी में एक लम्बा पत्र लिखकर प्रार्थना की कि उन्हें ईसाइन से अंगरेजी पढ़ने से मुक्त किया जाय—"अगर प्राणनाथ अपनी दासी को घुला-घुला के मार डालना चाहते होंवें तो वैसा ही हुकुम दासी पर देवें। मैं हंस के आपकी आज्ञा का पालन करूंगी। वैसे जब आपके साथ रहने का मौका श्री भगवान्जी देंगे तो आपसे अंगरेजी जरूर पढ़ लूंगी।"

इस प्रकार मदालसा देवी को काली मेम से मुक्ति मिली और अंगरेजी से भी, क्योंकि बाद में भाग्य या परिस्थितियों ने किशोरीलाल जी का मानसिक नक्शा ही बदल दिया। वे बी० ए० पास हो जाने के बाद डिप्टी कलक्टर या डिप्टी इंस्पेक्टर जैसे किसी ओहदे पर पहुंचना चाहते थे। उनके पास केवल एक ही 'सोर्स' यानी सीगा था। अपने अंगरेज प्रोफेसरों और उनमें भी प्रभावशाली प्रोफेसरों को तन-मन-धन से भगवान् मानकर एकनिष्ठ पुजारी की भांति उनकी सेवा में वे समर्पित रहते थे। किशोरीलाल को इसकी वाहवाही भी मिली हुई थी। लखनऊ आने पर वे इलाहाबाद के प्रोफेसरों या उनकी मेम साहबों के विशेष प्रेम-पत्र यहां के हाकिम मित्रों के नाम लाया करते थे और इनके पत्र वहां तक ले जाया करते थे। यों साहबों से परिचय बढ़ा लिया था। लाला सदानन्द ने बेटे की ऊंची पहुंच का लाभ उठाकर जवाहरात और क्यूरियो के माल लेकर 'ज्वेलर एण्ड क्यूरियो डीलर' बनकर अपनी पहुंच बढ़ा ली। डालियां तो बाप-बेटे बात-बहाने से पहुंचाते ही रहते थे। सदानन्दजी में यह विशेषता थी कि मुनाफे की आय का आधा और कभी-कभी उसके भी ऊपर अपने ग्राहकों पर तरह-तरह से निछावर कर दिया करते थे। ऊंचे से ऊंचे सेठ साहूकारों, नवाबों और हिन्दुस्तानी हाकिमों तक तो उनकी पहुंच-प्रतिष्ठा थी ही, पढ़े-लिखे अफसर होने का नसीबा रखनेवाले होनहार की बदौलत गोरे हाकिमों और उनकी मेमों तक पहुंच गये और धीरे-धीरे उनके बीच भी अपनी साख बना ली। सदानन्दजी

जमा करते तो अच्छी-खासी रकम की पुड़िया बना लेते, चाहते तो स्वयम् सर्राफ बन जाते और लखेसरी हो जाते, परन्तु उन्होंने तीन लगाकर छह कमाने की अपनी एक लीक नीति कभी न छोड़ी। चार ग्राहकों और समाज-बिरादरी के ऊपर खर्च करते थे, एक से रोज का खरचा चलता था और एक वे नियम से जमा किया करते थे। खैर, किस्मत के खेल के आगे बाप-बेटे की सारी दुनियादारी के कर्तब बन्दरों की बेकार उछल-कूद बनकर ही रह गए। किशोरीलाल जिन मैत्री पूर्ण पत्रों की विशिष्ट पोस्टमैनी किया करते थे, उनमें उनके अनजाने में, लखनऊ के डिस्ट्रिक्ट जज साहब बहादर और नवाब आलीजाह जनाब लेफ्टिनेंट गवर्नर उर्फ छोटे लाट बहादर के एक बूढ़े ए० डी० सी० बहादर की जवान मेम महोदया के इश्कनामे भी सीलमुहर बन्द हुआ करते थे। उनमें ए० डी० सी० साहब बहादर के बुढ़ापे का स्वांग पेश किया जाता था और आशिक हुजूर जज साहब बहादर ए० डी० सी० साहब बहादर को बूढ़ा बन्दर लिखकर अपनी माशूका साहिबा बहादर को यह समझाया करते थे कि कुछ बरस और गम खाओ, आखिर यह बूढ़ा बन्दर रिटायर होगा, और मर जायगा, तब तक तुम हुजूर लाटनी साहिबा और ऐसे दूसरे लोग जिन्हें तुम मुनासिब समझो और खुद हुजूर छोटे लाट बहादर सर लाटूश के सामने मेरी तारीफें करती रहो, मैं यहां अपनी ड्यूटी और राज्य-भक्ति से अपना भविष्य शीघ्रातिशीघ्र चमकाने में कोई कसर न उठा रक्खूंगा और एक न एक दिन 'मेरी बरी दुलारी पियारी' को अपनी सेज पर लाकर ही रहूंगा। एक पत्र में जज साहब ने अपनी प्रेमिका को अपने पति को मारने की अनोखी तरकीब बतलाई थी। जज साहब ने लिखा कि अगर बूढ़ा बन्दर अपनी बुढ़भस से तुम्हारी सुन्दर कोमल देह को सताता है तो, अब तुम उस पर रोना-बिसूरना छोड़कर अक्लमन्द बनो। बजाय इसके कि वह बूढ़ा बन्दर तुम्हारे ऊपर रसाक्रमण करे, तुम आक्रामक बनो। उसे प्रतिदिन रात में पिला-पिलाकर दो-दो तीन-तीन बार उसका वीर्य स्खलन अपने शरीर को बेदाग रखते हुए बराबर कराती रहो। या तो हज़रत फिर तुमसे बाज ही आ जायेंगे या फिर खुद ही अपनी मौत पा जायेंगे। सुनते हैं, इस पत्र ने हुजूर ए०डी०सी० साहब को बौखलाकर रख दिया था और जबरन अपनी पत्नी की वस्तुओं की तलाशी लेकर उन्होंने जज साहब के सारे प्रेम पत्र बरामद कर लिए और लाटसाहब के हुजूर में पेश कर दिये। सर लाटूश, सुना जाता था कि आखिरी पत्र पढ़कर बहुत हंसे और ए० डी० सी० साहब की बुढ़भस को मीठी फटकारें दीं और फिर उनकी लाज भी अपने अनुशासन के अंकुश से बचा ली। जज साहब ने अपने उज्ज्वल भविष्य के लिए यह प्रेम-सम्बन्ध तोड़ लिया। उन प्रेम-पत्रों में पत्र-वाहक के तौर पर दो-चार जगहों पर किशोरीलाल की तारीफ में एकाध वाक्य और उसका भविष्य उज्ज्वल बनाने की कामना भी मेमसाहबा ने अपने प्रेमी से की थी। लिखा था कि शीघ्र ही यह बी० ए० पास कर लेगा और इसके लिए तुम लखनऊ ही में अभी से कोई उपयुक्त जगह बनाओ। यह काम का आदमी है और सच्चा राजभक्त, अंग्रेज-भक्त है। ए० डी० सी० साहब जब कहावती धोबी की तरह अपनी धोबिनियां पर बस न चला सके, तो गधे के रूप में किशोरी लाल ही के कान उमेठकर संतोष कर लिया। हुजूर कमिश्नर साहब बहादर पर हुजूर ए०डी० सी० साहब का कुछ ऐसा दबाव पड़ा कि किशोरीलाल बी० ए० के वास्ते उम्दा सरकारी नौकरी के फाटक ही बन्द हो गए। गुल्फाम बेगुनाह मारा गया। बाद में

प्रायश्चित के तौर पर एक एंग्लो वर्नाक्युलर स्कूल की एक रिक्त सेकंड मास्टरी के पद पर उन्हें आसीन करा दिया गया।

मास्टर किशोरीलाल ने बड़ी शान से इस करारे आघात को ऊपरी तौर से सह तो लिया, मगर अन्दर ही अन्दर अपने मन में टूट गए। उनके जीवन का उत्साह भंग हो गया। हां, अध्यापकी में उन्हें भागते भूत की लंगोटी हाथ आ जाने का-सा संतोष अवश्य मिल गया। कुछ न होते हुए भी मास्टर समाज में एक प्रतिष्ठित पद माना जाता था। तब तक अंगरेज के बाद बंगाली बाबू ही अधिकतर प्रोफेसर हुआ करते थे। वे अपने क्षेत्र से सेकंड मास्टर के पद पर नियुक्त होनेवाले पहले नौजवान थे। बाहर से इज़्ज़त ढंकी रह गई और एक तरह से यश भी मिला, सदानन्दजी इतने ही से सन्तुष्ट हो गए। फिर भी लड़के के नसीब पर अकारण ग्रहण लग जाने से वे भी मन ही मन कुछ टूट अवश्य गए थे। उनमें विरक्ति आ गयी। धीरे-धीरे उन्होंने अपना दलाली का कारबार छोड़कर शहर से डेढ़ मील दूर अपनी जातीय पंचायत के बाग के पास ही एक एकड़ ज़मीन ले ली। उसमें तरकारियां और आम उगाये। साल में खा-पीकर गांव के दीन-दुखियों, साधु-संतों और गांवों की सेवा करके वह घर के लिए कुछ मुनाफा बचा भी लिया करते थे। पंचायती बाग की दशा और आय सुधार कर उन्होंने जातीय यश भी कमाया। उन्होंने फिर घर से कोई सम्बन्ध न रक्खा, कभी छठे-छमासे ही दिन में दो-चार घण्टे के वास्ते आ जाया करते थे। घर में उनका मोह केवल अपने पौत्र के लिए ही शेष बच रहा था। सन् '42 में प्लेग फैलने पर वे परिवार के सदस्यों को शहर से बाहर अपने गांव में ले जाना चाहते थे। किशोरीलाल राजी न हुए, कहा, यहां रहकर समाज की सेवा करूंगा। मदालसा देवी अपने पति को और बतासो बीबी अपने पूत-पतोहू को छोड़कर जाने के लिए राजी न हुई। लाला सदानन्द क्रोध में किसी को कुछ न कहकर अपने पौत्र यानी मुझे गोद में लेकर अपने बाग में चले गए।

शहर में प्लेग का ज़ोर बहुत विकट था। सन् एक के नवम्बर मास ही से मौतें होने लगी थीं। दिसम्बर और जनवरी में तो त्राहि-त्राहि मच गई। एक-एक महल्ले से दिन में चार-चार पांच-पांच बार 'राम नाम सत्य' की आवाज़ें उठने लगीं। कहीं अंग्रेज डॉक्टर, कहीं बंगाली डॉक्टर आ-जा रहे हैं। हर एक के होश-हवास उड़े हुए हैं। हेल्थ अफसर के आदेश बराबर जारी हो रहे हैं—'घर-बाहर की सफाई रखिये, चूहों के बिलों को बन्द कीजिए, मकानों को फिनाइल या रस-कपूर से पुतवाये, नालियों में फिनाइल और जेबों में नेप्थिलीन की गोलियां रखिये, बदन गर्म रखिये, पैरों में मोजे पहनिये। खाना कम खाइये, नमक अधिक खाइये, सीलन में मत रहिये।' लेकिन सीलन से आखिर कहां तक बचाव रखा जा सकता था। गलियों दर गलियों के मकानों में सैकड़ों ऐसे भी थे, जहां कभी सूर्य की एक किरण तक प्रवेश नहीं कर पाती थी।

संयोग की बात थी कि प्लेग का ज़ोर हिन्दुआनी महल्लों में अधिक था। इस बात पर विचार करने के लिए मिस रोज़ रैम की सलाह से उनके प्रशंसक बाबू ब्रजभूषण रईस ने अपनी कोठी पर एक सभा आयोजित की। मास्टर किशोरीलाल बी० ए० उसके अध्यक्ष बनाए गए। कोट-पतलून-वास्कट में सुनहरी चेनदार घड़ी, बूट और फेल्ट टोपी पहनकर, छड़ी हिलाते हुए बड़े गम्भीर भाव से मास्टर साहब सभा में पहुंचे। डाक्टर देवीशंकर एल०एम०एस०, बाबू श्योपरशाद नायब

तहसीलदार, पंडत दीनानाथ मसलदान, मुंशी बिंदरावन साहब पेशकार सभी पढ़े-लिखे लोग बाबू ब्रजभूषण लाल रईस के बैठकखाने में जुटे। यह पहला ही अवसर था जबकि ब्रजभूषण बाबू ने किसी सभा-सोसाइटी के काम में दिलचस्पी दिखलाई थी। ईसाई मास्टरनी मिस रोज़ रैम अध्यक्ष महोदय की मेज़ से जरा हटकर एक छोटी मेज़ पर मीटिंग की कार्रवाई लिख रही थीं। भाषण सब अंग्रेजी भाषा में हुए। 'मिस्टर चेयरमैन, आनरेबिल मिस रैम, एण्ड आनरेबिल मेम्बर्स आफ द हाउस' को सम्बोधित करते हुए हर वक्ता ने यह राय जाहिर की कि हिन्दू समाज में छुआछूत, अशिक्षा और कुशिक्षा इतनी अधिक है कि उसके कारण हमारे यहां गंदगी बहुत रहती है। लोग देवी-देवताओं के मन्दिरों में सड़ते हुए गंदे कुण्डों का नीर श्रद्धापूर्वक आंखों में लगाकर उसका आचमन करते हैं और उस गंदे पानी के कीटाणु पेट में जाकर तरह-तरह की बीमारियां पैदा करते हैं। लिहाजा सबसे पहला काम तो यह होना चाहिए कि इन गन्दे नीरकुण्डों को मंदिरों से तुड़वा डालना चाहिए। अगर यह नहीं तो वहां कम से कम पोस्टर तो अवश्य लगाने चाहिए। धर्म के नाम पर जरा-जरा-सी छुआछूत में हमारे घरों की औरतें इन सर्दी और प्लेग के दिनों में भी दिन भर में तीन-चार बार नहाती हैं···वगैरा-वगैरा। समाज की अचेत और पतित स्थिति का रूप एक के बाद एक वक्ता के भाषणों में खराखर खिंचता चला। बाबू श्योपरशाद नायब तहसीलदार साहब ने अपनी फेल्ट टोपी उतारकर और उसे मेज पर रखकर, फिर दायें पंजे से अपनी जाकेट का कॉलर मुलायमियत से दबाकर, हर दो-चार शब्दों के बाद 'अ्ऽअ्ऽ' करके कहा, पंडित दीनानाथ मसलदान ने बरफ़-सोड़ा फैक्टरी के मिस्टर पिम्पलसन साहब के पर्सनल सेक्रेटरी होने के दम्भ के साथ कहा। अपने गोरे खूबसूरतपन, भूरी तिलोई हुई मूंछों की गुमानी अदा में गलत अंग्रेजी फराफर बड़ी शान से बोलते ही चले गए और पतित हिन्दू समाज की नानी को ठीक ठौर-ठार मार के ही दम लिया। पन्द्रह-बीस जोड़े हाथों की तालियों ने हाल को गुंजा दिया। इसके बाद पेशकार मुंशी बिंदरावन साहब ने नक्की सुरों में अपने भाषण का चर्रख-चूं छकड़ा चलाया और हर बात के आरम्भ में वे यह अवश्य जोड़ते थे कि ··एण्ड ऐज़ आवर डी० एम० डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट साहब सेड टु मीं वेरीं-अंऽ अंक्सर-यांनी यांनी आंई मींन आंफ्टेंन···" पेशकार साहब ने हिन्दुओं में इस बढ़ते हुए प्लेग का कारण, अपने डी० एम० साहब की राय में यों बतलाया कि हिन्दू जब तक देवी-देवताओं के चक्कर में फंसे रहेंगे, तब तक उनका यों ही सफाया होता जाएगा। 'गॉड' नहीं चाहता है कि ऐसी नेशनें अब दुनिया का बोझ बनी रहें, जो 'हाइली सिविलाइज़्ड' बीसवीं सदी की आमद के बाद भी जाहिल ही बनी रहना चाहती हैं। पेशकार साहब की लम्बी अचकन पर घोड़े की नाल के ढब से बड़े सफेद बुताम चमक रहे थे। वे अपनी गोल टोपी सिर से उतारकर दोनों हाथों से थामे खड़े-खड़े सुनाते रहे। पीछे मिस रोज़ रैम और बाबू 'खरदूषणलाल' पेशकार साहब के निहायत बेमजा भाषण पर कनखियां मिलाके मजाक करते रहे। पंडत मसलदान भी अपनी बड़ाई में मगन, गुमानी अदा से मिस रैम और ब्रजभूषण बाबू के मज़ाक में शरीक हो गए। बाकी लोग कुर्सियों पर करवटें बदलते रहे। फिर डॉक्टर देवीशंकर एल० एम० एस० साहब बोलने के लिए बुलाये गए। ये अपनी छाप अलग ही रखते थे। लम्बे-चौड़े दुहरे गठीले बदन के, गोरे चिट्टे, बड़ी-बड़ी काली मूंछें, घनी भवों के नीचे बड़ी-बड़ी काली पैनी आंखों वाले डॉक्टर साहब अंगरेजी लिबास कभी नहीं

पहनते थे, हरदम पानों से उनका मुंह भरा रहता था। हिन्दुस्तानी नाच-गाने और दो हिन्दू देवता यानी महादेवजी और हनुमानजी को छोड़कर उन्हें तमाम हिन्दुस्तानी वस्तुओं से घिन थी। एक खालिस विलायती गोरी, जो बच्चोंवाली विधवा थी, को ढाई सौ रुपये महीने पर उन्होंने अपना सेक्रेटरी और साथी बना रखा था। उसी को नुस्खे बोलकर लिखाया करते थे। डॉक्टर साहब ने पहले तो 'माई लर्नेड फ्रेंड' कहकर पेशकार साहब के भाषण की कच्चाइयां दिखलाकर उनके कान उमेठे, फिर पंडत मसलदान साहब की गलत अंग्रेजी पर इतनी चुटकियां लीं कि उनका चेहरा चुकंदर हो गया। इसके बाद वह बा-अदब अध्यक्ष की कुर्सी पर बैठे हुए मास्टर किशोरीलाल की योग्यता पर नश्तर लगाने लगे कि आज की सभा एक बीमारी में जकड़ी हुई जाति का उद्धार करने के लिए बुलाई गई थी। उसका अध्यक्ष एक मास्टर-पेशा आदमी भला क्योंकर हो सकता है? यह विषय तो वैज्ञानिक है। और इस तरह वैज्ञानिकता का चाकू हाथ में लेकर वे एक सिरे से सभी सभासदों की सर्जरी कर गए। यहां तक कि बड़े मीठे और रोचक तरीके से अपने व्यंगों की कड़वी कुनैन मिस रैम को भी जबरन पिला दी। उन्होंने घुमा-फिराकर कहा कि "खालिस अंग्रेज क्रिश्चियनों को हिन्दू-मुसलमान धर्मों में वैसी ईर्ष्याभरी दिलचस्पी कतई नहीं होती, जैसी कि हमारे हिन्दुस्तानी ईसाइयों को होती है। भारतीय ईसाई हिन्दू समाज से भी गए-बीते हैं। न उनसे पुराने संस्कार ही छूटे हैं और न नए संस्कारों को सही तौर पर अपना सकने की तमीज़ ही उनमें आई है।"

इसके बाद मामला चहुदिशि से गहन गम्भीर हो उठा। अपने अध्यक्षीय भाषण में राख-ढंकी चिनगारियों से शब्द इस्तेमाल करते हुए मास्टर किशोरीलाल ने डॉक्टर देवीशंकर के दम्भ को लताड़ा। उपस्थित ईसाई महिला की उपस्थिति में उसके समाज को लांछित करने के अपराध को किशोरीलाल जी ने हीनतम बतलाया और इसी लपेट में इंग्लिस्तानी ईसाइयों की अंध धार्मिक निष्ठा, उनके द्वारा अन्य धर्मावलंबियों पर किए गए अत्याचारों को सप्रमाण बखाना। उपस्थित मंडली तो खुश हो गई, लेकिन डॉक्टर साहब ने जल-भुनकर किशोरीलाल को यह कहकर बदनाम करना शुरू किया कि वह राजभक्त अंग्रेज भक्त नहीं हैं। किशोरीलाल जी की तकदीर ही शायद खोटी थी। उसके बाद अंग्रेजों का मन उनकी ओर से फिर गया। किशोरीलाल के जीवन में फीकापन बढ़ने लगा। एक बार नव-ज्योति जागी—अपने क्षेत्र में जातीय मिडिल स्कूल खुलने पर वे उसके हेडमास्टर नियुक्त हुए। उन्होंने स्कूल की उन्नति करने में दिन-रात एक कर दिए। कुछ वर्षों के बाद उन्हीं की प्रेरणा और दौड़-धूप से वह स्कूल मिडिल से हाई-स्कूल बना, तो बड़ी ऊंची सिफारिश के एक एम० ए० पास सजातीय सज्जन बर्दवान से आए और हेडमास्टर की कुर्सी पर बैठ गए। किशोरीलाल फिर वही सेकंड मास्टर हो गए। अन्तर केवल इतना ही हुआ कि पद का नाम इस बार असिस्टेंट हेडमास्टर रख दिया गया, और वेतन भी बढ़ा दिया गया। प्रबन्ध-समिति के सभी सदस्यों को इनके हेडमास्टर न हो पाने का बड़ा दुःख था, सब ही इनका बड़ा आदर करते थे, पर भाग्य की महिमा के आगे किसी की महिमा इनकी महत्वाकांक्षा को सफल न बना सकी। किशोरीलाल आरम्भ में हिन्दू देवी-देवताओं से एकदम फिरंट, कुछ आर्य-समाजी और कुछ विलायती विचारों के सुधारक थे, अब पूर्णरूपेण तेंतीस कोटि देवों के वश में हो गए थे। योगेश्वर श्रीकृष्ण उनके परमाराध्य थे। घण्टों

उनकी मूर्ति को अपनी छाती से चिपकाये एकान्त में रोया करते थे और जब रोने के इस आध्यात्मिक रूप से भी उन्हें संतोष प्राप्त न हो सका, तो योगेश्वर भगवान् में लीन होने के सात्विक बहाने से उन्होंने अपनी कुण्ठाओं का अन्त करने के लिए आत्म-हत्या कर ली।

□

क्या मेरा आंतरिक जीवन इतना कुण्ठित नहीं ? क्यों न पिता की लीक पर चलकर मैं भी संखिया या अन्य कोई विष खा लूं ? यह झूठा आशावाद, यह नव-जीवन की प्रतीक्षा अब कब तक करूं ? सारा जीवन यों ही मन बहलाते-बुझाते बीत गया।···बस एक बचपन ही का आलम था जब कि मैंने बेफिक्री के मज़े पाए थे। बाबा घर से दूर अपनी जातीय पंचायत के बगीचे में रहा करते थे—मैं और वह। बाबा के साथ उनकी कोठरी, दालान और हनुमानजी के मन्दिर की सफाई-धुलाई करना; पुजारीजी के आने पर आरती के समय घड़ियाल बजाना, गाय के बछड़े के साथ खेलना···वह भी पट्ठा बड़ा मस्त था। मुझे देखते ही खूंटे से खुलने के लिए मचलने लगता था। और जो मैं उसे खोलकर चुपचाप खड़ा हो जाऊं, तो अपने मस्तक से मुझे ढकेल-ढकेलकर दौड़ने के लिए बाध्य करता था। बछड़े के साथ अपनी रेस के वे क्षण मुझे अब भी याद आते हैं। गाय की ममताभरी आंखें स्मृति की खिड़कियों से अब भी वैसी सजीव होकर झांक रही हैं। पुजारी बाबा ने न जाने कितने श्लोक और दोहे मुझे रटा दिए थे। पूरी हनुमान चालीसा और रामयण की अनेक चौपाइयां मुखस्थ हो गई थीं। दिन भर बगीचे में माली के साथ उसके काम में हाथ बंटाता डोलता। बाबा लेटते तो उनके पैरों पर मुक्कियां लगाता। पशु-पक्षियों की बोलियों की नकलें करता···क्या मस्ती भरा जीवन था! घर में मुझे दो-चार दिन भी रहना खल जाता था। चचेरे-भाई-बहन, पास-पड़ोस के बच्चे ये सब मुझे अपने बछड़े दोस्त के सामने नकली मालूम देते थे। किसी में वो प्यार नहीं। घर में, गली में कांव-कांव-कांव। मुझे अच्छी तरह से याद है, घर में दो-चार दिन रहने के बाद ही मैं अपने बाबा के पास जाने के लिए हठ करने लगता था। अपने बचपन के वे शान्त, एकान्त, आनन्दमग्न दिन फिर मुझे कभी नहीं मिले। एक बात यह भी अच्छी तरह से याद है, कि पढ़ने-लिखने से मैंने एक दिन के लिए भी जी नहीं चुराया। इसके लिए अपने बाबा के प्रति मन में इस क्षण तक कृतज्ञता का अनुभव कर रहा हूं। उन्हीं के कारण पढ़ाई-लिखाई मेरे लिए कभी जूजू-हौआ न बन सकी। काम सदा खेल के समान ही लगा। लेकिन इधर दो-ढाई वर्षों से वही प्रवृत्ति मेरे अन्दर से चली गई है। मुझे अब कुछ भी करना अच्छा नहीं लगता है···'कहिबो न कछू करिबो न कछू···मरिबो ही रह्यो है।' लगता है सारा जीवन खोखला हो गया, न कुछ दिया न लिया। ये सेंतिस-अड़तिस छोटी-बड़ी किताबें जिन्हें मैंने पूरी निष्ठा और तन्मयता के साथ रचा, अब मुझे बेकार का श्रम मालूम पड़ती हैं। जीवन भर देश-प्रेम, मानवता, सत्य, न्याय और ईमानदारी को ही भला समझता और समझाता रहा, पर अब ये सब बातें निस्सार लगती हैं। इनसे न तो वह संसार ही बदला, जिसे बदलने की भावना से मेरे मन में सदा उथल-पुथल मचकर नये से नये विचार और कल्पनाएं स्वतः स्फूर्त होती रहीं और न मुझे सुख ही मिला। लड़के-बच्चों को पढ़ाया तो अवश्य पर बड़ी सांसत में!

मुझे याद है बड़ा लड़का विनय स्कूल जाता था—नंगे पैरों। छः महीनों

तक मैं उसे जूता-चप्पल न दिला सका। हां, उसके स्वाभिमान में कमी न आए, इसलिए उसे बड़े जोशीले उपदेश दिया करता था। आन्दोलन का ज़माना था, इसलिए बड़कू मेरी बातों से बंधा रह सका। हाईस्कूल पास करने के बाद ही वह ट्यूशन करते हुए स्वावलंबी बना। मेरे बाबा के बनवाये हुए चार दूकानों वाले एक मकान से तीस रुपये की बंधी हुई आमदनी आती थी। केवल उसी आधार पर अपने परिवार को छोड़कर मैं जेल चला जाता था···क्या सुख पाया, क्या सुख दिया? जो आज़ादी मिली भी वह मेरे काम की सिद्ध न हुई। मैं उंगली उठाकर खुद अपनी गली, आस-पास के चार-छः मुहल्लों और नगर के ऐसे कई लोगों को बतला सकता हूं, जो सन् उन्नीस सौ बयालीस तक आभ्यन्तर अंग्रेज-भक्त या कायर दुमदब्बू थे, वे आज देश-भक्त हैं और मुझे कम्युनिस्ट और नास्तिक तक कहने लायक गज़ भर की ज़बान रखते हैं। ज़माना उनका है।···

मन उदास था। उदासी भी शराब के नशे सी फुरक-फुरक चढ़नेवाली नहीं, मुर्दनी की सी उदासी थी। उमेश के घर से जाने का धक्का मुझ थके हुए को और थका गया। मन सुन्न हो गया। लेकिन जिसको हम सुन्न या शून्य कहते हैं, वह क्या दरअस्ल सूना या खाली होता है?

इस उदासी और मुर्दनी में मन कुछ खोजता है। खुली दृष्टि के आगे से प्रकाश और बहिर्जगत का पूर्ण लोप हो जाता है—धूल-धुआंसा श्याम वर्ण, न रात न दिन, चारों पहर की सी सूनी कान्ति मेरी आंखों के आगे दमक रही है ·· घुटन और उसकी प्रतिक्रिया में अमूर्त का मूर्त होना···एक पालदार नाव तैरती हुई, झलकती-ओझलाती, फिर झलकती मेरे दृष्टि-तट की ओर बढ़ रही है······ हेमिंग्वे का 'बूढ़ा मछेरा और समुद्र' ··ध्यान का 'शून्य' जादू-सा आलोप! मेरी बहिर्चेतना में अब उक्त उपन्यास का नायक बूढ़ा मछेरा स्पष्ट रूप से विद्यमान था।

···वह बूढ़ा मछेरा जिसे चौरासी दिन लगातार श्रम करने के बाद भी तकदीर ने एक मछली का शिकार तक न दिया; जो दूसरे जवान सफल मछेरों के बीच अभागेपन का प्रतीक है, हंसी और हिकारत का पात्र है; जिसकी नाव झंझरी है; जिसके पैबन्द टंके पुराने पाल 'स्थायी पराजय के झण्डे' की तरह फरफरा रहे हैं; जिसके एकमात्र शुभचिन्तक साथी और शिष्य को उसके मां-बाप ने गुरु के अभागेपन से बचाए रखने के लिए दूसरी भाग्यशाली नाव पर नियुक्त करा दिया है···बूढ़ा मछेरा बाहरी परिस्थितियों से हर तरह टूटा और हारा, लेकिन अपने भीतर से न वह टूटा है, न हारा है। वह अपने अगले दिन की लड़त के नक्शे बनाता है। अस्सी-बयासी बरस का जराजीर्ण, अकेला अभागा मछेरा किस सहज दृढ़ता के साथ कुण्ठा के दिग्भ्रमित, अथाह और तूफानी सागर से अपने क्षत-विक्षत भीमकाय भाग्य शिकार को खींचकर किनारे लाता है। हाथ लहूलुहान है, शरीर चूर-चूर है, मगर काम चौकस पूरा करता है; नाव को किनारे पर बांधना, डांडों और कड़ों को अपनी झोपड़ी तक उठा कर लाना और फिर सोना।···वाह री विजय भरी नींद! शाबास हेमिंग्वे! सलाम हेमिंग्वे!

मैं सावधान होकर बैठ गया। स्फूर्ति ने सारी मानसिक गिरावट चमत्कारी रूप से सम्हाल ली। अपनी मेज के पास पहुंच गया। दराज़ से सादे कागज़ निकाल। बूढ़ा मछेरा अपने काम के कड़े-कांटे-हार्पून सम्हाल रहा है। बूढ़ा लेखक अपने काम पर जम रहा है···हाशिए के लिए कागज़ मोड़ते हुए मैं अपने-आपको

बूढ़े मछेरे के मनोबिम्ब से प्रेरित कर रहा हूं। मछेरे के शून्य आकार में मेरी कल्पना अर्नेस्ट हेमिंग्वे की छवि प्रतिबिंबित करके देख रही है; बस, शरीर ज़रा और दुबला, बूढ़ा और झुर्रियोंदार। कल्पना में मछेरा, अर्नेस्ट हेमिंग्वे, मशीनी ताकत और तेज़ी से तूफानी लहरों को अपनी नाव से चीरता हुआ मेरे कलेजे की ओर बढ़ा चला आ रहा है · दौड़ने और उड़ने की तैयारी में गर्माते हुए हवाई जहाज के पंखों की गूंज···बैण्ड बाजे, बैग पाइप, झय्यम-झय्यम, शहनाई और भीड़ की सम्मिलित गूंज कान के भीतर पर्दे में सुरसुरी सी उठ रही है। अपार्थिवता पार्थिव होने लगी, अव्यक्त व्यक्त होने लगा, मैं बरात का दृश्य लिखने जा रहा हूं। उस दृश्य के साथ मेरे पास ही दुकान के पास साइकिलें लिए दो युवक पैसेवालों की शान और अपनी परेशानियों पर झुंझलाते हुए···बस, इन्हीं दो नवयुवकों को लेकर उपन्यास का श्रीगणेश करूंगा? इन दोनों में से एक को मंगड़ पाधा का बेटा बनाऊंगा ··मंगड़ पाधा मेरे पड़ोसी। उनके नाम से ही हंसी आ गई···और प्लॉट? नहीं, अभी प्लॉट आदि की चिन्ता में न पड़ूंगा। मेरे जीवन भर के अनुभव-सिद्ध औपन्यासिक संस्कारों को इन नवयुवक पात्रों के सहारे अपने-आप युग-कथा में प्रवेश पाने दो।···फाउण्टेनपेन खुल रहा है, सहालग की सारी धूमधाम भरी चिंताएं देखे, सुने और समझे हुए वातावरण से यों उमड़ रही हैं, जैसे मधु-मक्खियां अपने छत्ते के इर्द-गिर्द भनभना रही हों। सहालग के दिन हैं··· मुझे उस वर्ष की सहालग का ध्यान आ रहा है, जब मेरी अरुणा का व्याह हुआ था। बरातियों और समधियों से प्राप्त अपमानों के तीर स्मृति के तरकस से निकल और कार्य-संकल्प के धनुष से छूटकर मेरी कल्पना में बिंध गए। स्फूर्ति ने शब्दों का रूप ले लिया—उपन्यास चल पड़ा।

सहालग के दिन हैं। गर्मी का मौसम। बेटीवालों के लिए बावले दिन आए हैं। जनवासे नहीं मिल रहे। बरफ़, फूल, फल, तरकारियों के भाव आसमान को छूने लगे हैं। मोटरें जहां-तहां बुक हो चुकीं; रईसों की घोड़ियों के लिए मंगौवे आ चुके, वादे हो चुके और अब इक्के-तांगेवालों की खुशामदों में लोग-बाग़ दौड़ रहे हैं। बिजलीवालों के नखरे मिनिस्टरों के जल्वों की तरह रौनक़ अफरोज़ हैं। टहलुए, कहार-मजूर तक खाना और दो रुपया रोज़ मांग रहे हैं। हलवाई-दर्जियों के पास दौड़-दौड़ के जाओ और यही सुनने को मिलता है कि अभी आठ रोज़ फ़ुर्सत नहीं और पन्द्रह रोज़ फ़ुरसत नहीं। पत्तलें क्या हो गईं, अपने हिसाब पान की ढोली हो गईं, पौने दो, दो रुपए सैकड़े से कम मिलती ही नहीं। कुल्हड़-सकोरे भी मानो अब राकेट पर चन्द्रलोक भेजे जाने लगे हैं, उनके भी भाव ऊंचे चढ़ गए हैं। शहर की गली-गली में मीठे से मीठे फिल्मी गानों के रेकार्ड लाउड-स्पीकरों की चें-चें, भों-भों और घरघराहट के साथ चिग्घाड़ते हुए सुननेवालों के कानों के परदे फाड़ रहे हैं। फटे-चुंथे तम्बू-कनातों तक के किराए बढ़ गए हैं। हर शाम को सड़कों पर हाहाकार बैण्ड, झय्यम-झय्यम बाजे, मशक बाजे और शहनाइयों की शोर की परतें दर परतें चढ़ने लगीं। कागज़ के कलात्मक हंसों-मोरों या घोड़ों की सजावट से सजकर बिजली के नन्हें-मुन्ने रंगीन बल्बों से जगमगाती मोटरों पर काले, गोरे, दुबले, मोटे, भिंगे, टिपंखे, फबीले, अकड़ू, शरमीले, मूंछ-दाढ़ीवाले, सफाचट चेहरों के दुलहे, ढाई

दिन के बादशाह बने, अपने बाप-ससुरों की हैसियतें जतलाने लगे। सहालग क्या आई, गोया राह-चलतों को तरह-तरह के तमाशों का बहाना मिल गया। दुलहों को देख-देखकर यार लोग फ़बतियां कसते, 'अच्छा है। अमा लौंडा है। क्या मुछक्कड़ है। ये देखो, दुल्हऊ राम हैं तो बुहारी की सींक से भी पतले, मगर तलवार यों कन्धे पर रक्खे हैं कि मानो राणा सांगा ही चले आ रहे हों।'...

पुत्ती गुरु की लड़की का ब्याह है। फर्रुखाबाद से बरात आएगी। तेरस का ब्याह है और आज तीज हो गई, मगर अभी तक कोई भी जतन-जुगाड़ नहीं हो पाया। उनका लड़का रमेश अपने मित्र लच्छू के साथ साइकिल पर तीन चौथाई शहर नापकर निराश लौट रहा है, कहीं भी बरतनों का प्रबन्ध न हो सका। खत्री भण्डार के लिए लाला लल्लूमल से सिफारिशी चिट्ठी लिखवाई, अग्रवाल भण्डार के बरतनों के वास्ते लाला बरातीलाल की खुशामद की, सारस्वत, गौड़, कान्य-कुब्ज, नागर सभी जातियों के अपने-अपने पंचायती बरतन-भण्डार हैं। पहुंच होने और आवश्यकता पड़ने पर ब्याह, बरातों के सबको ही बरतन मिल जाते हैं मगर रमेश अपनी बहन के विवाह के लिए कहीं से भी एक गिलसिया तक न पा सका। झुटपुटे समय लच्छू, रमेश दोनों थके-थकाए लौट रहे थे, सामने से एक बरात आ रही थी, मोटर पर कागज़ का हंस इस तरह सजाया गया था कि मोटर दिखाई नहीं पड़ रही थी। बड़ी भीड़भाड़, तरह-तरह के बाजे, पी० ए० सी० बैण्ड, बैग पाइप, हाहाकार बैण्ड, शहनाई, हरी-पीली झण्डियां, हाथी-घोड़े और मोटरें, बड़ी भारी बरात निकल रही थी। पूरा रास्ता घिर गया था। दोनों मित्र साइकिल से उतर पड़े। बरात का जुलूस गुजर रहा था। इतनी झय्यम-झय्यम देखकर रमेश का मन ईर्ष्या के कोठे पर चढ़ गया, काश कि वह भी अपनी बहन का विवाह ऐसी ही धूमधाम से कर पाता। वर की मोटर सामने से गुजरी, काला भुजंग मोटा शरीर और उमर भी तीस-पैंतीस से कम नहीं। उसकी अकड़ देखकर रमेश को हंसी आ गई, बोला : "देखो साले को, गोबर का पुतला है, मगर अकड़ क्या मार्के की है?"

लच्छू बोला : "दुहाजू है दुहाजू।"

भीड़ में खड़े एक लालाजी बोले : "दुहाजू तो है ही पर बहोत बड़े खान्दान का है। इनके मुनीम तक मोटरों पर चढ़ते हैं बाबूजी। लोहे का व्योपार है—इनके यहां। लाला झम्मनलाल ऐसा घर नहीं पा सकते थे अपनी लड़की के लिए। उनकी हैसियत इन लोगों के मुकाबले में कुछ भी नहीं।"

रमेश बोला : "झम्मनलाल कम से कम पांछ-छः लाख के असामी तो होंगे ही।"

"अरे, पर इनकी हैसियत साठ-सत्तर लाख की है। कोई मुकाबला है दोनों का! ये कहो कि इन लोगों को लड़की नहीं मिल रही थी तबियत की अपने मार-वाड़ियों में, सो जयपुर से यहां आए।"

"आए होंगे स्साले", रमेश ने चिड़चिड़ाकर बात को पूर्ण-विराम लगाया और अपनी साइकिल आगे बढ़ाते हुए लच्छू से बोला : "इ कैपीटलिस्टों के कम्पिटीशन में हम जैसों की मट्टी-पलीद हो गई है। इतना खर्च बढ़ गया है कि समझ में नहीं आता इज्जत कैसे बचेगी।"

बरात का जुलूस आगे बढ़ चुका था। सड़क बाज़ार का औसत प्रकाश गैस के हण्डों की भीड़ गुज़र जाने के बाद अब मद्धिम-मद्धिम लग रहा था और लग-

भग आधी फर्लांग दूर पर सामने ही गैस के हण्डों की एक और पंक्ति नज़र आ रही थी। उसे देखकर लच्छू बोला : "कितनी शादियां हो रही हैं आज के दिन। ढाई मील के रास्ते में बस बरातें ही बरातें देखते चले आए हम लोग।"

"जलन हो रही है क्यों बे ?" रमेश ने मुस्कराकर पूछा।

"नहीं, बल्कि फिकिर कर रहा था कि तुम्हारे लिए इस सहालग के बाद कोई लड़की बचेगी भी कि नहीं ?"

"अमां मेरी चिन्ता छोड़ो। यहां तो अभी अपनी और राजू की पढ़ाई का प्रश्न है, पन्नो की भी पढ़ाई का प्रश्न है, फिर उसके विवाह की चिन्ता है—इन्हीं सब चिन्ताओं में बुढ़ापा आ जाएगा यार। और अभी तो सबसे पहिले बरतनों की चिन्ता है, कहां से आएंगे ?"

"अमां आ जाएंगे बरतन।" लच्छू जेब से सिगरेट का पैकेट निकालते हुए बोला—"सरोज का ब्याह होना ही है, तब बरतन-भांडे, अनवासे-जनवासे का भी कुछ न कुछ प्रबन्ध होकर ही रहेगा। लो, सिगरेट पियो।"

सिगरेटें सुलगाकर दोनों मित्र आगे बढ़े। लच्छू ने बात की अगली कड़ी जोड़ते हुए कहा : "जनवासा तो हम लोग अपने संघ में दे देंगे—"

"मगर उसमें पचास आदमियों को ठहराने की जगह ही कहां है ?"

"अमां जगह क्यों नहीं है। औरतें तो आएंगी नहीं बरात में। पचास आदमियों के लिए इतनी बड़ी बारादरी कम नहीं है। बगलवाली कोठरी में समधी साहब अपना रखना-ढकना कर लेंगे। सोने के लिए इतना बड़ा मैदान पड़ा है।"

रमेश सिगरेट का एक कश खींचकर बोला : "अमां तुम अपनी सोच रहे हो, वहां से सरोज के फ़ादर इनला का चार पन्नों का लेटर आया है अंग्रेजी में। लिखा है कि हमारे साथ बरात में बड़े-बड़े सेठ और अफ़सर लोग आ रहे हैं, सो हर एक के लिए पंखों का इन्तजाम हो, निवाड़ के पलंग हों, अगर अधिक नहीं तो कम से कम एक दर्जन नाऊ रात में पैर दबाने के लिए इंगेज कर लिए जाएं··· तुम्हीं बताओ बारादारी में ये सब प्रबन्ध कैसे हो सकेगा ?"

लच्छू बोला : "क्या तुम सचमुच इतना प्रबंध करने की सोचते हो रमेश ? कर सकोगे ? निवाड़ के पलंग इस समय अठन्नी-बारह आने रोज़ से कम किराए पर नहीं मिल रहे हैं। पचास पंखे भी मिलना दूभर हैं। और फिर कौन वो बड़े लाट साहब हैं जी, अरे रेल गोदाम के बड़े बाबू ही हैं न। जिन सेठों और अफसरों का जिक्र वो कर रहे हैं, वे सबके सब चरकटे होंगे, उन्हीं की हैसियतवाले।"

"अरे यार, कैसी भी हैसियत हो, मगर हमसे लाख दर्जे बेहतर हैं। दोनों बाप-बेटों को मिलाकर ऊपर की आमदनी ही पांच-छह सौ रुपयों की होती है, तनख्वाह से कोई मतलब नहीं।"

"अमां होती होगी, जो हमारी हैसियत है, हम उसी के हिसाब से चलेंगे। बरातियों सालों के नखरे हमने खूब देखे हैं। मैंने तय कर लिया है, जनवासे का इन्तज़ाम संघवाली बारहदरी में ही करूंगा। जब कोई जगह मिलती ही नहीं तो 'ताजमहल होटल' कहां से लाएंगे हम उनके लिए।"

"अरे यार, तुम समझते नहीं हो, सरोज के ससुर हमारे फ़ादर से भी ज़ादा तगड़ा गोला छानते हैं। ज़रा भी मन माफ़िक काम न हुआ तो वे सचमुच ही खड़ा खेल फरक्काबादी दिखला देंगे। मैं तो सच मानना लच्छू, बेहद नरवस हो रहा हूं। इधर बाबू के मिजाज ठिकाने नहीं, उधर समधी साहब का ये हाल है।

अम्मा हमारे आगे रोती हैं और हम किसके आगे जाएं, ये समझ में ही नहीं आता।"

"तू मेरे आगे रो बेटा।"

रमेश ने हंसकर उत्तर दिया : "हां-हां—अन्धे के आगे रोए और अपने नैन खोए। तुम तो वह इलाज बतला रहे हो कि समधी बरात ही लौटा ले जाएंगे।"

"ऐसी की तैसी उनकी, बरात लौटा के ले जाना कोई हंसी-खेल है। हम 'बेस्ट' इन्तज़ाम करेंगे, मगर जो अपनी हैसियत में होगा; वही करेंगे। दो पैडेल्ट्रल पंखे दूंगा और एक टेबुल-फैन समधी की कोठरी में दूंगा। पचास खटियां मैदान में डलवाऊंगा और बारादरी में दरी-चांदनी बिछवाऊंगा। इसके बाद भी बकबक करेंगे तो देख लूंगा। अब जनवासे की चिन्ता मेरे आगे रिपीट मत करना रमेश, बस खाली बरतनों की समस्या और रह गई है, सो उसके लिए···उसके लिए··· उसके लिए भी—ब्रेनवेव आ गई।"

"क्या?"

"अब ये न पूछो, पहले आध पाव मलाई खरीद लेने दो।"

"किसके लिए?"

"बसन्तू हलवाई की --"

"वाह पट्ठे, क्या स्कीम भिड़ाई है। तो पटाओगे किसको? ललाइन को कि लाला को?"

"लाला भला कहीं पट सकते हैं? जैसे पाताल के देव की जान हीरामन तोते में बसती थी, वैसे ही बसन्तूमल की जान अपनी हलवाइन में है। आओ चलो, आज ही पटा लें उसको। अगर बात बन गई तो बहुत-सी मुश्किलें एक साथ ही हल हो जाएंगी पट्ठे।"

लाला बसन्तूमल हलवाई ने कुछ बरस पहले एक बरतनवाले की दूकान कुड़क कराई थी। बाद में अपने मनचीते दामों पर चूंकि वे सौदा न कर सके, इसलिए माल उनके घर में ही रह गया। उनके पत्नी नहीं, कोई आस-औलाद नहीं। विधवा भावज बड़ी तबीयतदार हैं, इनके और अपने बुढ़ापे को सदा चंग पर चढ़ाए रखती हैं। लाला के यहां कई मकानों और दुकानों का किराया आता है। अपना हलवाई-पेशा वर्षों से प्रायः बन्द सा ही करके उसी दुकान में लेन-देन का काम करते हैं। अच्छी आमदनी है। लाला यों हर तरह से बड़े मक्खीचूस हैं, पर अपने और अपनी प्रेमिका भौजी के ऊपर लागत लगाने में उन्हें हौसला आता है। घर में डेढ़ हज़ार रुपए का कूलर लगा रक्खा है। अच्छे से अच्छा फर्नीचर, तस्वीरें, बड़े-बड़े आइने, बड़ा भारी रेडियोग्राम, उनके घर में क्या नहीं है! हर कमरे में सामान ही सामान अटा पड़ा है, भले ही वह तरतीब से न सजा हो और मकान के सब कमरे बजाय कमरों के गोदाम लगते हों। लाला की भौजी और तो किसी के घर आती-जाती नहीं, पर सिनेमा हफ्ते में दो-तीन बार अवश्य देखती हैं। सिनेमा के दृश्यों में जो सामान उन्हें पसन्द आ जाता है, उन्हें ही ला देने की फरमाइश वह कर बैठती हैं। लाला-भौजी की जोड़ी परम विख्यात है। शाम को

बुड्डे-बुढ़िया दोनों जने अफीम का अमल करते हैं और अपनी जबान को तरह-तरह से चटोरी बनाते हैं।

लच्छू और रमेश जब लाला बसन्तूमल की नयी हवेली पर पहुंचे, तब ललाइन ऊपर की छत पर बैठी बरफ में रखे खरबूजे काट-काटकर उदरस्थ कर रही थीं। लाला कानपुर गए हुए थे। लच्छू को नौकर ने ललाइन से मिलने का अवसर न देना चाहा, मगर लच्छू कब माननेवाला था। नीचे से ही "दादी-दादी" की गोहार लगाई। ललाइन इस शब्द से ही हुलस उठीं, ऊपर से चिल्लाईं : "अरे, कौन है ?"

"हम हैं दादी, लच्छू।"

"अरे, कौन लच्छू ?"

"बाबू सतनारायन के लड़के। औ' पुत्ती गुरु के लड़के भी आए हैं।"

"अरे, तो ऊपर चले आव बेटा, तुमरे लिए कोई रोक-टोक है भला।"

लच्छू और रमेश छत पर पहुंच गये। दादी अपनी चारपाई के नीचे चटाई बिछाकर दाहिनी ओर खरबूजों का डला और बाईं ओर बीज डालने के लिए हंड़िया तथा छिलके रखने के लिए एक थाली रखकर बैठी हुई अफीम के अमल में प्रेम से एक के बाद दूसरा खरबूजा खाती चली जा रही थीं। लच्छू ने लपककर उनके पैर छुए; रमेश के ब्राह्मणत्व को एक बार तो संकोच हुआ, पर गरज बावली के आगे मन के बन्धन टूट गए और उसने भी लच्छू के बाद ही दादी के घुटने छूकर प्रणाम किया। बुढ़िया मन से गद्‌गद होकर भी बाहरी तौर पर हड़बड़ा उठी, बोली : "अरे-अरे ई का करत हौ भैया, गुरु बांभन हुइके—"

"अरे ब्राह्मन होने से क्या होता है—दादी हौ तुम हम लोगों की। हमरा हक हैगा।" लच्छू ने सामने बैठकर मलाई के दोनों चप्पन सामने रख दिए। दादी की आत्मा खिल उठी। लच्छू ने फिर पूछा : "बसन्तू बाबू कानपुर कब गए दादी ?"

अपने अवैध रिश्ते के कारण और अपनी ससुराल के पुराने पेशे के लगाव से लाला बसन्तूमल और उनकी भौजी महल्ले के सम्पन्न प्रतिष्ठितों के समाज में अपने लिए सदा से एक कटाव महसूस करते आए हैं। बिरादरी से अलग हैं। महरी-प्रजाजन और प्रेमी देवर मात्र ही उन्हें पूछते हैं--और कोई नहीं। उम्र भर कसी रहने के बाद अब कहीं अपने दबे हौसलों से हारती भी हैं। लाला ननद के पोते के ब्याह में इतने बरसों बिरादरी से अलग रहने के बाद भी बुलाए गए, बस वही न पूछी गईं। मन सुबह ही से बड़े अलमस्त स्वभाव के बावजूद खिन्न था। पास-पड़ोस के लड़के आए, दादी कहकर पुकारा, पैर छुए, इससे मन मगन हो गया। बोलीं : "अरे उनकी बहन के पोते का बियाव है आज, सबेरे ही चले गए। कल अइहैं कौनो बखत, कोई काम हैगा बेटा।"

"ना—हीं, ऐसे कोई खास काम नहीं रहा उनसे। हम तो सच्ची पूछो अपनी दादी के पास आए हैं इत्ती बखत। राधे के यहां गए थे दूध पीने सो वो बोला कि भैया मलाई बहुत अच्छी बनी है। हमें खट से तुम्हारा ध्यान आ गया कि हमरी दादी को मलाई बहोत पसन्द है, सो हमारे मन में आई कि लाओ उनके और बाबा के लिए ले चलें।" दादी का मन चिकना हो गया, गद्‌गद् स्वर में बोलीं : "जीते रहो बच्चा, तुम लोग हमार घर आये, यही हमें बहुत-बहुत लगा। लेव खरबूजे खाव। ठैरौ अभी थाली मंगाइत है, काट-काट के खिलावँगे तुम दोनों को।"

"नईं दादी, इस बखत तो बड़े झंझट में हैं। इनकी बहन, पुत्ती गुरु की बिटिया का ब्याह है।"

"किसका पन्नो का कि मन्नो का ?"

लच्छू रमेश की ओर आंखें चमकाकर बोला : "देखा ? दादी हमारी कहीं आती-जाती न होएं पर खबर सब रखती हैं। मन्नो का ब्याह हैं दादी, फर्रुखाबाद से बरात आ रही है।" रमेश बोला।

"चलो अच्छा है। लड़का क्या करत हैगा ?"

"पार्सल बाबू है दादी, उसके बाप भी रेल गोदाम के ही बड़े बाबू हैं।"

"तब तो अच्छा है, ऊपर की अच्छी आमदनी हुइहै। मन्नो हमरी सुख मां जइहैं, चलो अच्छा है।"

"अरे सुख तौ बाद में उपजैगा दादी, अभी तो जान सांसत में है। ये हमारे दोस रमेश, पुत्ती गुरु के लड़के, अभी पक्के पुल से गोमती में फांदे पड़ रहे थे।"

"काहे-काहे बेटा ? राम-राम, हाय ऐसा कबी न करियो।"

"यही तो मैं इन्हें घण्टा भर से समझा रहा था दादी कि तुम जो अपनी बरमहत्या करौगे तो हम सारे महल्लेवालों को नरक में जाना पड़ेगा।"

"ई तो है ही बेटा, अरे बाम्हन का रोयां दुखेगा तो धरती हिल उठैगी। काहे ई नादानी की बच्चा ? हाय, तुम्हारे महतारी-बाप के ऊपर कैसा गजब पड़ जाता ई बखत, राम-राम।"

"हां दादी, गजब तो बहुत होता, पर ये भी बिचारा क्या करे, दुखी है। गरीब आदमी, बाम्हन बिचारा, न अभी तक जनवासा मिला है न बरतन मिले हैं, कुछ भी तो नहीं ठीक-ठाक हो पाया नदी में न डूबे तो बिचारे की इज्जत कैसे बचे। मैं इन्हें समझा के लाया हूं कि चलके दादी से बात कर लो पहले। अगर वो मदद नहीं करेगी तो हमें दोनों ही आकर गोमती में डूब मरेंगे।"

दादी अस्त-व्यस्त हो उठीं, बोलीं : "क्या मदद चाहिए बेटा। अरे बाम्हन के लिए तो हमरी जान तक हाजिर है। क्या बात भई।"

फिर तो बातों-बातों में दादी ऐसी पटीं कि बरतन-भांडे, दरी-कालीनों और यहां तक कि अपने नौकरों-चाकरों को भी सेवार्थ अर्पित कर दिया। बस, एक शर्त रक्खी : "ब्याह में मैं आऊंगी, मेरी कोई बेइज्जती नहीं करेगा।"

रमेश इस अप्रत्याशित सहारे से, एक दीर्घ चिन्ता और थकन जादू की तरह सहसा उतर जाने से भावस्तब्ध हो गया था। दादी की शर्त सुनते ही गद्‌गद् वाणी में सहसा पूर्ण उत्तेजना भरने के प्रयास में हकलाते हुए बोला : "अ-अगर कोई आपका अ-अपमान करेगा तो मैं उसी दम घ-घ-घर त्याग दूंगा।"

"नईं भैया, तब मैं नहीं आऊंगी। मैं ये कलंक नहीं लेऊंगी कि ब्राह्मण का बेटा मेरे कारन घर से लड़ के निकल गया।" दादी का सारा उत्साह सिमटकर खरबूजों के साथ ही माथ बरफ की पेटी में लौटने लगा। लच्छू बोला : "इसका मतलब तो ये है दादी, न आपका अपमान हो सकता है और न कभी इनका घर छूट सकता है। औ' हमाई समझ में ही नहीं आता दादी कि अपने ही घर-मोहल्ले में तुम्हारा अपमान कौन कर सकता है। और फिर तुमने पाप ही कहां किया है। अरे, देवर माने दूसरा वर। सब शास्त्रों का प्रमाण दिलवा सकते हैं हम लोग। संस्कृत और अंग्रेजी तक से ये सिद्ध कर सकते हैं कि आप सती हैं,

आपने शुद्ध सनातन धरम का मारग अपनाया है। आखिर हम लोग एम० ए० में पढ़ते हैगे दादी, एम० ए० में।"

अफीम के अमल में दादी को अपना महत्त्व बहुत ऊंचा उठता अनुभव हुआ, संतुष्ट होकर बोलीं : "अच्छा, अब हम सोएंगे। चार बड़ी दुइ छोटी परातें, पचास थाली, सौ कटोरियां और पचास कलई के गिलास हमरे के हियन से मंगाय लेना। औ' दुइ बड़े हण्डे भी देंगे, दुइ दरी, एक चांदनी, एक गलीचा भी देंगे। औ' जो देंगे सो गिनाय के वापिस लेंगे। इसमें कोई मेल-मुलाहिजा नाहीं चलैगा! औ' हम आवैंगे, जो हमरा जिउ परसन भया तौ कन्यादान में जो हमरी मर्जी में आवैगा सो देंगे।"

दादी की हर बात में हांजी-हांजी करके दोनों मित्र जब बाहर आये तो बड़े प्रसन्न थे।

रात में रमेश जब घर पहुंचा तब पुत्ती गुरु बीचवाले खन में ज़ोर-ज़ोर से गरमा रहे थे : "मैं तो ससुर काम करते-करते मरा जा रहा हूं और यहां कोई सुनवाई नहीं। आठ दिन बरात आने को रह गए हैं। छः बार रमेश से कहा होगा कि भैया सेर भर भांग लायके रख देव, ठण्डाई, मिर्च-मसाला लै आव। हमारे समधी साहब अपने घर में दो-ढाई रुपये रोज़ की छानते हैं, फिर यहां बेटा ब्याहने आ रहे हैं। बस यही ज़रा-ज़रा-सी वातें होती हैंगी, जिनमें समधी-बराती का मन बिगड़ जाता हैगा। कल को मैं रमेश की बरात लैके जाऊं और भांग-ठण्डाई का इन्तजाम चौकस न होय तो मुझे कैसा क्रोध चढ़ैगा, ई नहीं सोचते हैंगे ई लड़के औ' न तुम कुछ सोचती हो।"

"हां-हां, अब हमैं यही सब सोचने को रह गया है न। औ' रमेस बिचरऊ कहां तक दौड़ें।"

"वो कहां दौड़ रहा है, दिन भर मटरगस्ती करता रहता है। उसे अब करने को रहा ही क्या है। सब कुछ तो मैंने कर लिया है।"

"क्या कर लिया है तुमने, ज़रा बताओ तो सही। जनवासा ठीक करने को कहा सो ऊ न कर सके, न चिट्ठियां छपाय कर लाए, न मर-मसाला लाए, बस भांग लके बैठ गए और कुछ करत-धरत न बना। सब कुछ हमरा रमेस ही कर रहा हैगा बिचारा।"

पुत्ती गुरु ताव खा गए। पान लगाते-लगाते एकाएक खड़े हो गये, बोले : "क्या किया तुमरे रमेस ने, बोलौ। ससुर जब देखौ तब अपने लड़कन का पच्छ। सारे खोट मेरे ही हैंगे। रांड को इस बात का भी होस नहीं कि मैं न होता तो ये लौंडे ससरे कहां से आते।"

"खबरदार जो गाली दी हमैं, कहे देती हूं।" रमेस तव तक ऊपर पहुंच चुका था। उसे देखते ही पुत्ती गुरु और भड़के—हाथ बढ़ाकर बोले : "ये आए तुमरे लाड़ले। कौन-सा सनीमा देख के आय रहे हैंगे बाबू साहब।"

रमेश ने पिता की बात का कोई उत्तर न देकर अपनी बहन से कहा : "मन्नो जरा ठण्डा पानी तो पिलादे बहना। न हो तो कुएं का ही खींच ले। अम्मा, जनवासे और बरतनों का इन्तजाम कर लिया, दरी-कालीनें हो गईं। कार्ड छप रहे

हैं, कल सबेरे दस बजे तक मिल जाएंगे और अब तुम किसी तरह की फिकर मत करना।"

अम्मा सुनकर सन्तुष्ट हुईं, पूछा : "जनवासा कहां देओगे बेटा ?"

"अपने संघ की बारहदरी में ।"

पुत्ती गुरु के माथे पर बल पड़े, आंखें चमकीं, बोले : "कहां ? केशोराय की बारादरी में ? ससुर खंडहरे में मेरे समधी ठहरेंगे ।"

"जी हां, वहीं ठहरेंगे।"

"मैं नहीं ठहराऊंगा अपनी बिटिया की बरात वहां ।"

रमेश को ताव तो आया, मगर उसे रोककर बोला : "फिलहाल तो यही तय है बाबू । आगे कोई अच्छी जगह आपको मिल जाए तो बतला दीजिगा, वहीं टिका देंगे ।"

"हां-हां सो तो टिकाना ही है । बड़े-बड़े लखपती, बड़े-बड़े अफसर आ रहे हैं मेरे दरवज्जे पर, और उन्हें टिकाऊंगा ससुर खंडहरे में ?"

"अरे जब तुम्हें रुप्पन का घर नहीं मिला तो ये बारादरी क्या बुरी हैगी। ऊलोग बड़े आदमी होंगे तो अपने घर के होंगे, हमसे जौन कुछ बन पड़ेगा वही तो करेंगे ।"

रमेश की मां ने अपने पति को उत्तर दिया । सरोज पानी ले आई, रमेश पीने लगा । इतनी देर में मां ने दूसरा प्रश्न कर दिया : "औ' बरतन पूरे मिल गए भैया ?"

"हां अम्मा, बसन्तू लाला हलवाई के यहां तय किया । चार बड़ी परातें, दो छोटी परातें, दो बड़े हण्डे, पचास कलई की थालियां, गिलास, कटोरियां, दो दरियां, चांदनी-गलीचा—कल सब तुम्हारे यहां दिन में आ जाएगा।"

अम्मां की आंखें प्रसन्नता से चमक उठीं, बोलीं : "बसन्तू ने खम्मन लाल की जो दुकान कुड़क कराई थी, वही बरतन होएंगे । कुछ किराया लिया बेटा ?"

"नईं अम्मा, बल्कि बसन्तूमल की बुढ़िया तो ब्याह में हमारे यहां आएगी भी और कन्यादान में भी लम्बी रकम कराएगी ।"

"क्या कहा; वो पाप की पोटली मेरे यहां आवैगी ? ये हरगिज़-हरगिज़ नहीं होयगा । जिसे उसकी बिरादरीवालों तक ने अलग कर रखा हैगा, वो मेरे यहां आवेगी ?"

"हां-हां आवैगी और हज़ार बार आवैगी, हमने कह दिया बस । अरे हम तो परसो हलदात् रतजगे में ही उसे बुलावेंगे। जो हमारी मदद करैगा, उसे हम दिलोजान से आदर देवेंगे । यही भलमनसई है । और एक बात तुम अबहीं से सुन लेव रमेश के बाबू, हमने जिनगी भर तुम्हाई सब सही है और सहेंगी, बाकी मेरे लड़कन-बिटियन के काम-काज के औसर पर घर में मेरा हुकुम चलैगा । तुम अपने समधी लोगन को भांग-बूटी, अतर-पान बांटो, ऊमे कुछ न बोलूंगी ।"

पुत्ती गुरु का विजयामण्डित ब्रह्मतेज कलेजे से तो लट्ठमार मुद्रा में उठा, आंखों में उसका टेलीविज़न भी आ गया, पर अपनी ब्राह्मणी के फीके गोरे पीले, ढले मुखमण्डल पर स्थिर गौरव तेज देखकर सहम गए । रमेश की मां जब नई-नई गौने में आई थीं, तो सास से भी एक दिन ऐसे ही अटकी थीं । कहा था, "अम्मा जी मैं तुम्हारी सब सहूंगी, पर उनसे मेरी झूठी सिकैतें करके मेरी मारपीट कराउन चाहोगी तो मैं हरगिज-हरगिज न सहूंगी, कुतवाली में चिट्ठी भेज के कुएं

में परान दे दूंगी।" और कर भी दिखाया था; लेने के देने पड़ गए थे। मजा ये हुआ कि बहू का एक-मुंह से मुहल्ले भर की औरतों-मर्दों ने बखान किया, पुत्ती गुरु और उनकी अम्मा को सबने पुलिस के सामने मुंह पर थुड़ी-थुड़ी किया, मगर कह-सुनकर बचा भी लिया, मामला दवा दिया गया। तब से पुत्ती गुरु की एक कोर दबती है। मन के क्रोध ने जब मनचाही गति न पाई तो खिझला के बोले : "तो क्या मैं तुम्हारा गुलाभ बन के हांजी-हांजी बजाऊंगा?"

"तौ क्या हम सब तुमरी हांजी-हांजी नईं बजाउत हैंगे। जलम भर मरी कथा बांचा किए कि प्रेम से भगवान् और भगत दोनों एक-दूसरे के बस में होत हैंगे और आज मुझसे पूछत हैंगे कि गुलाम बनाओगी। जाओ, अपने काम से लगौ, आजकल भम्भड़ के दिनन में मुझसे और मेरे रमेश से न अटकना। अरे रमेस, जा बेटा नहाना-धोना होय तो जल्दी से निबट आ और खाना खा ले। सबेरे की बासी पिराउंठी ही खाके चला गया था। अरे राजेस, जा बेटा दौड़ के महरा की दुकान से बरफ लेआ भैया के लिए।"

रमेश सन्तोष और थकन भरी एक अंगड़ाई ले ऊपर गया। पुत्ती गुरु भी अपनी प्रतिष्ठा जमाने के हेतु पाव भर दूध मंगा देने का आर्डर देकर तथा दालान में पड़ा पंखा उठाकर ऊपर छत पर लेटने के लिए चल दिये। सीढ़ी भर बड़बड़ाते चढ़े : "शास्त्रकारों ने झूठ नहीं कहा, ब्राह्मणी महा कुटिला होती है। बड़े-बड़े आचार्यों तक पर शासन किया हैगा सालियों ने। होगा जी! का तव कांता कस्ते पुत्र···! छि: छि:! शम्भोहर।··· ज्ञात्वैतत्क्षणभंगुर: सपदि रे त्याज्यम् मनो-दूरतः। हर! हर! ···द्वारम् किमेकन्नरकस्य नारी। ससरी कहीं की, मैं आया तो मेरे लिए बरफ नहीं मंगाई। अरी पन्नो! ओ मन्नो! बरफ आवै तो पहले पानी बनाय के मुझे पिलाय जाना, सुन लिया?"

रमेश अंगौछा लपेटे, लुंगी-तौलिया लिए अपने कमरे से निकला। सीढ़ी के दरवाजे तक पहुंचकर एकाएक पिता की ओर मुड़कर देखा। वे अपनी खटिया बिछाते हुए कुछ अस्पष्ट बड़बड़ा भी रहे थे। रमेश बोला : "रबड़ी ले आऊं बाबू। सूखी भांग छानते हैं, गला तड़क रहा होगा।"

पुत्ती गुरु का अन्तर चिकना गया, गद्‌गद स्वर से बोले : "अरे बेटा रबड़ी! हिं-हिं: मगर रहने दो, अब मैं क्या खाऊंगा, तुम लोग खाओ रबड़ी। बाकी अब तुम जोर दै रहे हो तौ छिटांक भर मंगवाय लेओ मेरे लिए भी। ससुर पांच-छै महीने से नहीं खाई।"

रमेश के नीचे जाते ही पुत्ती गुरु का भोला मन क्रोध त्याग कर तरावट में आ गया। बड़े संतोष से खटिया पर लेटकर वे पंखा झलने लगे।

ब्याह के छह दिन पहले से घर में भम्भड़ फैलने लगा। हलदात् रतजगे की रस्म हुई। पुत्ती गुरु की पत्नी अपनी सन्तानों में से एक का विवाह-कार्य आरम्भ करते हुए अपने महत्व से आप ही उमगी-उमगी पड़ती थीं। सगे-संबंधियों की अनेक स्त्रियां हलदात् के लिए आई हैं, कोई उन्हें पुत्ती की बहू, कोई चाची, कोई भाभी, कोई जिठानी जी पुकार कर उनसे कामों के आदेश लेती हैं—कहां क्या रखना है, क्या उठाना है, किसे देना है किससे लेना है—सब कुछ उन्हीं से पूछा जाता है।

धुर बचपन से लेकर अब तक जो महत्व औरों का देखा, वह आज स्वयं भोग रही हैं। हलदात् की रस्म आरम्भ हुई। गणेश नवग्रहों के सामने मन्नो को लेकर पूजन कराने बैठीं। चावल, मूंग, नमक, जौ, पिसी हुई पिट्ठी, पीढ़ा, मूसल, चक्की सब संजोई गई। सात सुहागिनी ने चक्की में नाज पीसा, पीढ़े पर बड़ियां तोड़ीं। मन्दिर वाले दालान में दीवार पर गेरू पोतकर ऐपन से थापे की चीतनकारी हुई, वहां 'औलंग' चढ़ाई के गीत हुए, लड़की को ब्याह का कंगना बांधा गया। दूसरे दिन से बाने के नहान पड़ने लगे। नाइन जौ पीसकर लाई, उसका उबटन बना। दही, तेल, मेंहदी, रोली, उबटन मिलाकर, दूब मौली की कूंची से सात बार लड़की के पैरों, घुटनों, कन्धों और माथे पर तेल चढ़ाया गया। स्नान हुआ, फिर कुंवारे लड़के-लड़कियों ने मन्नो के ऊपर चंदोआ ताना। चंदोवे में मन्नो की मां ने आटे-शक्कर की बनी सात 'पुलड़ियां' डालीं जिसे बाद में मन्नो ने चंदोआ ताननेवाले कुंवारे लड़कों को दिया। हंसी हुई कि जो पुलड़ी खा लेगा उसका साल भर में ब्याह हो जाएगा फिर आरती हुई 'मरवट' चीता गया। रोज़-रोज़ बाने के नहानों की क्रिया सम्पन्न होने लगी। फिर मामा के घर से भात आया 'मंढे' का पूजन हुआ, रस्मों पर रस्में होने लगीं।

उंगलियों की पोरों पर दिन गिनते ही उड़ गए। कल दिन में दस बजे बरात आ जायगी। शाम से ही जनवासा ठीक करने में आठ लड़के और दो कहार जुटे। राजा केशोराय की बारहदरी नई दुल्हन सी जगमगाने लगी। मकड़ियों के जाले साफ हो गए किवाड़ों पर तेल-पानी हो गया। फर्श धुला सूखा, दरियां बिछीं सिंगारदान की दो मेजें लगा दी गईं बिजली के तार, बल्ब, पंखे लगे। सिगरेट, बीड़ी, मंजन, तेल की शीशियां, साबुन, तौलिया आदि जनवासे का कुल सामान समधी साहब के कमरे में रखकर उसे दरी-चांदनी-गलीचे से सजाकर उसमें ताला बंद किया। झंडियां कटीं-चिपकीं बारहदरी में तो लग भी गईं पर बाहर लगाने का काम बाकी रह गया। बाहर कोठरी में पत्तल, सकोरे और कुल्हड़ भी भरवा दिए। कम्मी और बिरजू के घरों के पिछवाड़े से बारहदरी के मैदान का लगाव था, सो दोनों के यहां से रबर के नल लगाकर पानी का प्रबंध भी कर लिया गया। कहारों को दस बजे छोड़ दिया। छोटे लड़के भी झंडियां तैयार कर बारह बजे तक अपने घरों को चले गए। प्रेम और कम्मी बिजली वाले के साथ जुटे रहे। लच्छू-रमेश सामान लेकर बार-बार आते-जाते रहे। उनके लिए घर हलवाई-खाना बारहदरी एक हो रही थी। होते-करते रात के डेढ़ बज गए, लाइट-पंखे लैस हो गए। बाहरी फाटक पर रंगीन बल्बों की झालर लगाना बाकी रह गया, सो वह काम सबेरे हो जाएगा। बिजली वालों के जाने पर प्रेम और कम्मो ऐसे ढेर हो गए कि तन-बदन का होश न रहा। करीब पौने दो बजे लच्छू और रमेश जब सोने के लिए बारहदरी में आए तो सारी बत्तियां और पंखे खुले हुए थे, फाटक खुले थे, एक कुत्ता अन्दर टहल रहा था और प्रेम कम्मी गहरी नींद में खर्रखों-खर्रखों कर रहे थे। लच्छू ने सोने वाले मित्रों को गाली दी। कुत्ता निकाला, फाटक बन्द किए। रमेश ने साथ लाई हुई अलार्म में चार पर सुई रखकर चाभी भरी। सुबह मंडी से तरकारियां लानी हैं, फिर खोयामंडी जाना है फिर ये करना है और वो करना है। लच्छू से ये सब चर्चे भी चलते रहे। जमुहाई लेकर लच्छू बोला : "अच्छा, अब लाइट बन्द करो और सो जाओ, दो घण्टे की नींद भी न होगी, तो कल हाथ-पैर ढीले हो जाएंगे।" रमेश ने एक को छोड़कर और बत्तियां बुझाईं, पंखे

चलते रहे। लच्छू तब तक नाक बजाने लगा था। कितनी जल्दी सो गया। इस समय लच्छू की बदौलत ही रमेश जग जीत रहा है उसके प्रति स्नेह सहानुभूति की तरलता दौड़ी। वह भी लेट गया। लेटा तो हड्डी-हड्डी बज उठी, बड़ी थकन एकदम से व्यापी। मगर आंखों में नींद न थी, दिमाग की नसें चिन्ताओं से तनी हुई थीं। बरात बस से दिन के ग्यारह-बारह बजे तक आएगी। आते ही भोजन फिर नाश्ता-शरबत, फिर द्वार-चार, डिनर···उसकी मिठाई के वास्ते खोया लाना है।···मगर वो तो तय हो गया। तब ?और क्या लाना है, और क्या करना है ? चिन्ताओं से तनी हुई दिमाग की नसें इसी नई चिन्ता को लेकर सन-सनाने लगीं धन्नियों से एकटक लगी आंखों की पुतलियों पर भी चिन्ता का कसाव-सधाव चढ़ा पर ये सनसनाहट केवल पथराकर ही रह गई, कुछ न सूझा, दिमाग एकदम सूना —फिर बेहद भारी···आस-पास खर्रखों-खर्रखों टिकटिक-टिकटिक ! ··दोनों आवाजें चिन्ता से जड़ीभूत मस्तिष्क को नींद की ओर लह-राती गति देने लगीं। जमुहाई, गहरी जमुहाई, अंग-अंग निढाल हो गया। फिर जमुहाई आई, चेतना जंट की सी शक्ति से पीछे छूटी और पट से नींद आ गई।

पिछले तीन दिनों से यही हाल है। नींद हराम है। पैरों में चक्कर बंध गया है, न लू लगती है, न भूख-प्यास। काम का भूत सवार है। समधियों के प्रोग्राम पर प्रोग्राम बदले। पहले सवेरे की ट्रेन से पहुंचने की बात लिखी, फिर शाम को बस से आने का प्रोग्राम लिखा। फिर एक्सप्रेस चिट्ठी आई कि दिन में लू चलती है, इसलिए तड़के पांच बजे बस से चलकर दस-ग्यारह बजे तक पहुंचेंगे। खाना तैयार मिले। पन्द्रह आदमी कच्ची रसोई जीमेंगे, उनके लिए टेबिल-कुर्सी रहेगी; बारह लोग पुरानी चाल के पक्की खाएंगे। जनवासे में ठण्डक-तरावट का भरपूर प्रबंध रक्खा जाय। समधी साहब का हर पत्र अंग्रेजी में आता है और आज्ञा-आदेशों से भरा रहता है। रमेश की मन ही मन में भय से सिट्टी-पिट्टी गुम है। जाने कैसी बीते, कैसी न बीते। लच्छू के दम पर दम आता है। उधर यह भी तय है कि तीन हजार से कौड़ी-बेशी खर्च न होगी। उधार के प्रति रमेश की घोर अनास्था है और समधी साहब ने लिखा है कि रेडियो, घड़ी और फाउन्टेनपेन तो लड़के के लिए अनिवार्य है, और आपकी लड़की के वास्ते मेरी राय में निम्न-लिखित सामान अवश्य होना चाहिए, एक सिलाई की मशीन, एक सिंगार मेज, एक गोदरेज की अलमारी, जिसमें कि हमारे यहां से पाई हुई बहुमूल्य साड़ियों को सहेज कर रख सके।' इसी पत्र में उन्होंने बरातियों के लंच, डिनर और चाय का ठीक समय साधने पर जोर दिया था। जाने क्या-क्या खर्चे अनिवार्य बतलाए थे। समधी साहब की अनेक इच्छाएं न पूरी कर पाने के कारण रमेश यह डर रहा था कि सामना पड़ने पर जाने कैसी बीते। अपने पिता से भी भय लगता था कि उनके अकड़ने पर अगर ये अकड़ गए तो बनी बात बिगड़ जाएगी, कैसे लाज बचेगी। आबरू के भय से रमेश के प्राण सनसना रहे हैं। अभी उसका बाईसवां साल ही तो चल रहा है, पहले आबरू की ऐसी आफत स्वयं अपने ऊपर कभी पड़ी नहीं, हां औरों की आफतें झेली अवश्य थीं। रमेश सतर्कता के पीछे दीवाना हो गया था।

दूसरे दिन सवेरे से ही सब ठीक-ठाक कर दस-साढ़े दस बजे से ही चौराहे पर बरातवाली बस की प्रतीक्षा होने लगी। ग्यारह बजे, बारह बजे, एक, दो, फिर जब तीन बजे, तो ये समझ में आया कि बरात के न आने की चिन्ता तो है ही,

पर कच्ची रसोई की दाल-भात, कढ़ी सारी सामग्री व्यर्थ जाने का धक्का भी लगा है।

चिन्ता के मारे घर भर के चेहरे फीके फक्क। मोहल्लेवाले पूछ गए, पड़ोसिनें पूछ गयीं : "अरे अभी बरात नहीं आई ?" नाते-रिश्तेदारों और उनकी घर आई औरतों ने तो सहानुभूति क्या दिखलाई, दिन भर घर वालों का दिल ही दहलाया। गट्टू की अम्मा गंभीरता की पुतली बनी ठोढ़ी पर हाथ रखकर पूछने लगीं : "हैं रमेस की महतारी, ऐसा तो नहीं कि किसी दुश्मन ने भांजी मार दी होय और बरात चलीयै न होय।"

"क्या जानूं बहना ! फरुक्काबाद में हमरा कौन दुश्मन हुई सकत है।"

"चाचीजी, दुस्मनी की बात नहीं। हमरी जान में कहीं इक्सीडंड हुई गया है। तबहीं लेट हुई गई बरात।"

"अरे राम न करैं। बहू ब्या-कारज के घर में कुलच्छनी बात मूं से नहीं निकालनी चाहिए।" इसी पर थोड़ी देर चखचख चला की, मुंह फूले-पचके, निन्दा-कटूक्तियां खुस-खुस हुईं।

बस की बाट जोहते रमेश और लच्छू दिनभर लू-धूप की चिन्ता बिसारकर खड़े रहे। चार बज गए, घड़ी की सुइयां और आगे बढ़ीं। दिन भर का भूखा-प्यासा रमेश पथराई आंखों से सामने सड़क निहारते-निहारते गुम हो गया। उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया, मन बिना कुछ कहे-सुने ही डूबने लगा, पांव लड़-खड़ाने लगे। लच्छू की खोई दृष्टि उधर सधी, फौरन पलटकर दोनों हाथों से उसे थामा और झिझोड़कर कहा, "रमेश ! रमेश !…" रमेश की चेतना ठिकाने पर आई। वह कातर दृष्टि से उसे देखने लगा। लच्छू बोला : 'इसी बखत तुम भी हमें दगा देओगे ? जाइए, घर जाकर सोइए। मैं अकेले ही निबटाय लूंगा सब कुछ।"

लच्छू की डांट बहाना बन गई, रमेश का दिल उमड़ उठा, आंखें कटोरी सी भर गईं, भरे कांपते कण्ठ से इतना ही कहा : "बरात—" और आंसू उमड़ पड़े। लच्छू बोला : "अरे आती होगी बरात भी। किसी वजह से गड़बड़ हो गई होगी, मगर तुम जो यों नरवस होगे, तब तो हमारा सब खेल ही बिगड़ जाएगा। जाओ, सामने मुक्ता महराज के यहां मूं धो के शरबत पी लो एक गिलास। जाओ, तुम्हें मेरी कसम है।"

पुत्ती महाराज अपने घर में बैठे परेशान हो रहे थे। सबसे बड़ी परेशानी ये थी कि उनका ठण्ढाई छानने का समय हो गया था। समधियों की कृपा से आज दूध-गुलकन्द में उत्तम छनी थी। कब तक बाट देखें ? घर में चारों ओर बरात न आने के कारण व्याप्त चिन्ता उनके मन को भी थोड़ा-बहुत उलट-पलट कर तो रही थी, पर 'भांग छानूं या न छानूं" के मनोसंघर्ष से ही वे विशेष रूप से परेशान थे। अन्त में हाथ गोले पर पहुंच ही तो गया। अपना भाग लिया, फिर दो-तीन बार लोटे से हण्डे में रखी ठंडाई उछालकर निकाली। शिवजी को भोग लगाया, रामजी, जानकीजी को भोग लगाया, सालिगराम की बटिया पर दो छींटे दिये और बड़बड़ाते रहे : "दीनानाथ, आपके भरोसे पर जोग साधे बैठा हूं। समधी साला मेरी इज्जत लेने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रहा। दिन भर रसुइयां भिनकती रही, भांग-ठण्डाई का टेम भी निकाले दे रहे हैं ससुरे। चौदा रूपौं की लागत लग गई है। अब मैं ग्रहण करता हूं भगवान, उनको तुम सम्हालना।" दो

बार में भांग का गोला चढ़ाकर पुत्ती गुरु गुलकन्दी ठण्डाई का लोटा उठाकर गले में धार छोड़ने लगे। रिश्ते की बड़ी बहन गन्नो जिया नीचे आईं, पुत्ती गुरु को देखकर बोलीं, "इन्हें कौनो चिन्ता-फिकर नाहीं है, सबेरे-शाम भांग छानी और छुट्टी पाई।"

लोटे की ठण्डाई की अन्तिम बूंद पेट में पहुंचाकर पुत्तो गुरु ने अपने तने हुए पेट पर हाथ रक्खा और बोले : "ये सिद्धी है सिद्धी, गुन्नो जिया। इसका नाम मैंने रखा है — तत्व चिन्तामणि — क्या समझीं। बेटी-बेटे, ब्याह-बरात तो सबमाया-मोह हैगा। किमदानेन धनेन वाजि करिभिः प्राप्तेन राज्येन किम्। किंवा पुत्र-कलत्र मित्र पशुभिर्देहेन गेहेन किम्··· ।

तभी कम्मी ने घर में प्रवेश किया और कहा : "बरात आय गई है चाचा।"

पुत्ती गुरु के चेहरे पर प्रसन्नता की चमक आ गई, बोले : "देखा, ये है मेरी बूटी का प्रताप। छानते ही आय गई बरात।"

घर भर में उत्साह की लहर दौड़ गई। जनवासे में रमेश, लच्छू और पांच-सात लड़के बरातियों के बिस्तरे-बकस रखवा रहे थे और बराती फब्तियां कस रहे थे : "ये जनवासा दिया है सालों ने।···ये लखनऊ की कल्चर है साहब कि अपने मेहमानों को खंडहर में टिकाते हैं।···ऐ साहब, यहां कौन है इन्तजामकार ?"

"जी बोलिए, क्या आज्ञा है ?" रमेश ने पूछा।

"अजी आज्ञा क्या, घण्टा भर हम लोगों को आए हो गया, अब तक न चाय है, न शरबत-नाश्ता—क्या भूखे मारने का इरादा है आप लोगों का ?"

"नहीं साहब, अभी लीजिए। पांच मिनट में सर्व करता हूं चाय।" लच्छू ने उत्तर दिया।

वर के संगी-साथियों को इस बात की सख्त शिकायत थी कि उनके लिए अलग प्रबन्ध नहीं है। यहां सबके सामने न तो वे आजादी से हंस-बोल सकते हैं, न सिगरेट पी सकते हैं। बरात का मजा ही किरकिरा हुआ जा रहा है। वर के एक मित्र ने रमेश को उंगली के इशारे से बुलाया। वह लपककर आया, बोला : "कहिए साहब, क्या हुकुम है ?"

"अबे हुक्म के गुलाम, यही इन्तजाम है ? हम लोग यहां नहीं रह सकते। आखिर यंग जेनरेशन और ओल्ड जेनरेशन को एक साथ रखने का क्या तुक है ? हमारा अलग इन्तजाम कीजिए।"

रमेश सकपका गया, फिर संभलकर कहा : "असल में आज के दिन इतनी बरातें हैं कि हमें दूसरा जनवासा नहीं मिल सका—"

"तब फिर बारात बुलाने की आवश्यकता ही क्या थी ? शादी पोस्टपोन कर देते।" वर के एक मित्र जीवनलाल ने त्योरियां चढ़ाकर जवाब दिया—और फिर वर की ओर देखकर उसने कहा : "राजकिशोर भई या तो दूसरी जगह हम लोगों का अरेंजमेंट कराओ, वरना कम से कम मैं तो इसी वक्त स्टेशन चला जाऊंगा।" एक दूसरे साथी रूपनरायन ने भी तुरन्त इसका समर्थन किया। वर महोदय अपने साले को कड़ी दृष्टि से देखते हुए बोले : "सुन रहे हैं न आप ? अनलेस एण्ड अन-टिल आप इन लोगों के लिए कोई सुटेबुल अरेंजमेंट नहीं करते, तब तक मैं शादी के किसी भी काम में शरीक नहीं होऊंगा, बतलाए देता हूं।"

रमेश रुआंसा हो गया, हाथ घिसते हुए बोला : "राजकिशोरजी, हमको आप

लोग क्षमा कर दीजिए। हमारे बस में होता तो आप लोगों को ये शिकायत करने का अवसर ही न दिया जाता।"

"खैर तो ठीक है। आपके बस में अरेंजमेंट करना नहीं है तो न सही, कम से कम यहां से चले जाना तो हमारे बस में है ही। मैं अपने फ्रेन्ड्स को नाराज नहीं कर सकता।" रमेश चुपचाप वहां से चला गया। बरातियों में दाढ़ी बनवाने के लिए कोई नाई की फर्माइश कर रहा था, कोई जूतों पर पालिश करने वाले की। किसी को पंखों का प्रबन्ध कम लग रहा था। कोई इसी समय कहीं जाना चाहता था—और वहां तक पहुंचा देने के लिए किसी आदमी की फर्माइश कर रहा था। समधी साहब अपने कमरे में बड़ों का दरबार लगाए बैठे हुए तिनग रहे थे। रमेश उनके दरवाजे के सामने से गुजरा, तो उनकी आवाज आई - "क्योंजी पुत्तीलाल कहां हैं ? ये क्या इन्तजाम किया है तुम लोगों ने ? शरम नहीं आती है तुम लोगों को। भिखारी भी इससे बढ़िया अरेंजमेंट कर सकते थे। आपको लिख दिया गया था कि अरेंजमेंट ठीक रखिएगा ! यही है आपका अरेंजमेंट; कुंजड़े-कबाड़ियों की बरात है क्या, जो इस तरह मुसाफिर खाने में डाल दी ?" लच्छू तब तक सामने आ गया, बोला : "बाबू जी, हमने अपनी शक्ति भर दौड़-धूप कर ली। कोई जगह ही नहीं है आस-पास।"

तब तक पुत्ती गुरु एक नौकर के सिर पर ठण्डाई का हण्डा रखवाए हुए फूल के कटोरे में भांग का गोला लेकर पहुंच गए। हाथ उठाकर गद्‌गद् स्वर में बोले : "जै शंकर की, महाराज दीनानाथजी। बब्बूजी महाराज, दण्डवत। बड़े भाग्य हमारे जो आप सब महानभावों की चरण-रज हम दीनों के घर पड़ी—"

"अभी घर कहां पहुंचे हैं आपके। अभी तो यहीं जनवासे में आन के चित्त अघा गया है। ये-ये-ये-क्या है ?" लड़के के पिता पण्डित दीनानाथ गौड़ ने आंखें निकालकर हाथ बढ़ाते हुए दीवार में फटी हुई एक दरार को दिखलाया।

पुत्ती महाराज ने तरंग चढ़ी हुई दृष्टि उधर डाली और बेफिकरी से हाथ बढ़ाकर बोले : "ये राजा केशोराय की बारादरी है, महाराज। यहां बसरे की रण्डी का सात घूंघट का नाच भया रहा महाराज, सवा लाख का इतर फानूसों में जला था उस रात।"

खण्डहर जनवासे की शिकायत पर बसरे की रण्डी के सात घूंघटों का पर्दा पड़ गया। समधी साहब के चचेरे बड़े भाई बब्बूजी महाराज को रस आ गया, पूछा : "सात घूंघट का नाच नाची रही बसरे की रण्डी ?"

'अरे, सात घूंघट तिस पर भी नंगी। राजा केशोराय आंखें मीचे बैठे देखा किए महाराज। ये भारती संस्कृती थी हमारी उस समै। लच्छू बेटा, कुल्हड़ों में ठण्ढाई भरना शुरू करो और एक गड़ुआ इधर देना पहले। आज हमारी और दीनानाथजी की छनैगी।" कहकर अंगोछे के एक छोर में बंधे दो चांदी के गिलास निकाले, कहार को पानी और उगालदान लाने को कहा और दूसरे छोर में बंधा फूल के कटोरे में रक्खा भांग का गेंद बराबर गोला हाथ में उठाकर बोले : "भाई साहब, छान दूं या —"

गोले को देखकर पण्डित दीनानाथ के नेत्रों में स्निग्धता आ गई, बोले : "छान दीजिए।"

भांग-ठण्ढाई के फेर में जनवासे की शिकायत बड़े लोग तो भूल गए, पर वर और उसके मित्रों ने चाय इत्यादि कोई भी वस्तु स्वीकार न की। रमेश रुआंसा

होकर बाहर बरामदे में आया। लच्छू, विनोद और प्रेम ठण्डाई के कुल्हड़ भर रहे थे। रमेश ने आकर अपना दुखड़ा रोया, लच्छू भुंझला गया : "लौट जायं। मैं क्या करूं? बरात में क्या आते हैं कि सभी लाट साहब के बच्चे हो जाते हैंगे साले।"

"इतने बदमिजाज बराती तो मैंने देखे नहीं। और मन्नो का दुलहा तो सबसे जादा बदजबान है। अरे पूछो, बहन दे रहे हैं तुम्हें, कोई अपनी इज्जत तो दे नहीं रहे।" रमेश का मार खाया हुआ स्वाभिमान मित्र के सामने निष्क्रिय रूप से उबल रहा था।

प्रेम और विनोद को ठण्डाई देकर अंदर बिदा करने के बाद लच्छू ने बांह से अपने मुंह का पसीना पोंछकर मैदान के सामने कम्मी के घर की ओर देखा और रमेश से कहा : "कम्मी से कहके उनका यह पीछे वाला कमरा ले लो।"

"मगर उसका दरवाजा तो बहुत ऊंचा है यार इधर से, बांस की सीढ़ी उन लोगों को शायद—"

"चार-पांच छोटे-बड़े तखत-चौकी किराये पर ले आओ श्यामलाल के यहां से। एक पर एक करके रख दिए जाएंगे। उसी पे से चढ़ जाएंगे।"

एक लड़के ने मैदान की तरफ से आकर कहा : "लच्छू भैया, वो जो मोटे से काले-काले बराती नहाने के लिए बैठे हैं, वो कहते हैं कि सन्दल सोप मंगवाओ, लक्स से उनकी चमड़ी फटती है।"

"सन्दल नहीं, साले को धोबिया साबुन दूंगा—चोर कहीं का। जाओ। बकने दो उसको। अबकी जब मांगे तब कह देना कि आदमी को बाजार लाने के लिए भेजा है।"

बरात की अगवानी और द्वारचार के लिए निमन्त्रण-पत्र में छह बजे का समय दिया गया था। साढ़े आठ बजे की लगन थी। सात बजे से मेहमान आने लगे। घण्टे-सवा-घण्टे तक प्रतीक्षा करने के बाद भी दरवाजे पर बरात आने के कोई आसार नजर नहीं आए। कन्या-पक्ष के मेहमानों का उचित रूप से स्वागत-सत्कार नहीं हो पा रहा था। लोग ऊब रहे थे, कइयों का ध्यान बार-बार अपनी-अपनी घड़ियों पर जाता था। वकील साहब ने पम्मी को बुलाकर पूछा : "जनवासे से बरात चलने में अब कितनी देर है भाई?"

पम्मी बोला : "जी अब चलने ही वाली है। बात ये है कि बरात आने में ही देर हो गई, इसीलिए सारा प्रोग्राम गड़बड़ा गया। बस, एक दस-पन्द्रह मिनट तक आप लोगों को और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, आती ही है बरात।" एक-एक करके न जाने कितनों ने यही प्रश्न किया और वो इसी तरह के उत्तर देता रहा। कुछ लोग बोर होकर खिसकने की तैयारी करने लगे। यह देखकर लड़कों के हाथ-पांव ढीले पड़ने लगे। पम्मी ने मिद्धू को जनवासे की तरफ दौड़ाया।

बराती बन-ठन रहे थे। कहीं सूटों की फबन थी तो कहीं मलमली कुरतों की बांहों पर चुन्नट दी जा रही थी। पुरानी चाल के लोग माथे पर टीका लगाए हाथ में अंगौछे लिए इधर-उधर अपने-आपको हवा करते डोल रहे थे। बच्चों में अब भी छह-सात के सिरों पर जरी-गोटे की टोपियां नजर आ रही थीं। समधी साहब अभी निवृत्त होकर लौटे न थे। लच्छू स्वयं पौन घण्टे से हाथ धुलाने के लिए उनकी प्रतीक्षा में खड़ा था। एक व्यक्ति पहले से ही यह चेतावनी दे गए थे कि समधी साहब बरफ के पानी से हाथ धोते हैं और मिट्टी में गुलाब का इत्र अवश्य

छिड़क दिया जाय। वर और उसके मित्र चाय पीने के लिए किसी रेस्ट्रां में गए थे। स्वयम् रमेश उन्हें लेकर गया था। रीति के अनुसार वर को भूखा रहना था, पर वह आमलेट खाकर ही पाणिग्रहण करने पर आमादा थे। साथ ही यह भी आदेश था कि उनके पिता को इस बात की खबर न लगने पाए। बारातियों के, विशेषकर वर और उसके मित्रों के अक्खड़पन और तुनुक-मिजाजी से लच्छू और रमेश रो-रो दिए। बड़ी मुश्किल से वर के बहनोई अपने नाई और पाधा को लेकर कन्या के घर में मंढे में बन्दनवार बांधने के लिए गए। मान्य को तिलक हुआ, 'झूठ' की रस्म हुई। उभय पक्ष के पुरोहित पाधाओं को दक्षिणा मिली और उनके साथ ही साथ 'बटहरी' का सामान भी जनवासे गया। एक बड़ा हण्डा, गड़वा सात बाल्टियां, जिन पर ऐपन की चीतनकारियां की गई थीं, दोहे लिखे हुए थे। उनमें से किसी में चावल, पापड़, बड़ियां, मुंगौड़ी आदि भरी हुई थीं। मैदा की बनी हुई पांच परातनुमा 'छाक', उनमें 'मगद के लड्डू', लड़के का जोड़ा, घड़ी, अंगूठी, रुपए और 'ढाई तीयल' की दो साड़ियां, ब्लाऊज़, दुपट्टा, नहाने की चौकी, पूजा की थाली आदि सामान था।

जनवासे में बटहरी का पूजन हुआ। वर को तिलक करके उसके पल्ले में जोड़ा इत्यादि दिया गया। रमेश बरात के स्वागत के लिए चूंकि घर चला गया था, इसलिए उसके छोटे भाई ने समधियों से हाथ जोड़कर कहा : "चलिए, फेरों का बुलावा है।" राम-राम करके नौ बजे बरात चली। तब तक लड़की वालों के अनेक मेहमान ऊबकर चले जा चुके थे।

रस्में होने लगीं। मिलनी, जयमाल आदि हुई। विवाह की निश्चित लगन चूंकि टल चुकी थी, इसीलिए भोजनोपरान्त बरात जनवासे लौट गयी।

वर के कुछ मित्र और देखादेखी कुछ अन्य बरातियों ने द्वाराचार के बाद सिनेमा जाने का प्रोग्राम बनाया। समय चूंकि चूक चुका था, इसलिए वे लोग खिन्न और झुंझलाए हुए थे—"ये तो साली अजब बोरियत हो गयी। क्या किया जाय?" कुछ लोग ताश पीटने बैठ गये, कुछ मैदान में बिछी हुई चरपाइयों पर बैठ गये। वर के मित्र शम्भूनाथ को दूर की सूझी। यह तय किया कि किसी बड़े बुजुर्ग को हुस्काकर किसी नाचने-गानेवाली को बुलाया जाय। लड़के के चाचा बब्बूजी रंगीले थे। पट से राजी हो गये, भंग की तरंग में लहककर बोले, "पुत्तीलाल" बताते रहे कि राजा केसोराय के जमाने में हियां बसरे की रण्डी का नाच भया रहा। कहैं कि ससरी सात-सात घूंघट में नंगी झलकैं। तौ फिर हुई जाय एक बार और।"

रण्डी के नाच की फर्माइश ने लच्छू और रमेश का भेजा गर्मा दिया। रमेश बोला : "यार इनकी ये नवाबी तो अब बर्दाश्त नहीं होगी। लच्छू, तुम इनसे जाकर कह दो कि यहां लड़कों का संघ लगता है। रण्डी किसी हालत में नहीं आ सकती, जिसको जो करना हो करे।" लच्छू ने जाकर संदेशा दे दिया, वर के मित्र खूब झौं-झौं करते रहे, मगर उनकी इच्छा न पूरी हुई।

रण्डी के नाचवाले प्रस्ताव पर बरातियों की बोलती बंद करके लच्छू जब रमेश के घर आया, तब कन्यादान हो रहा था। पुत्ती गुरु मण्डप में बैठे थे। उनकी

पत्नी ऊपर छज्जे में औरतों से भिड़ी बैठी थीं। उनके एक हाथ में कलावे की डोरी बंधी थी, जिसका दूसरा सिरा नीचे पुत्ती गुरु के कंधे पर पड़ा था। पाधाजी मंत्र पढ़ रहे थे औ' नशा उतरने का समय होने के कारण पुत्ती गुरु को जमुहाइयों पर जमुहाइयां आ रही थीं। उनकी यह दशा देखकर उनके फुफेरे भाई पंडित रामलाल ने ऊपर की ओर मुंह उठाकर कहा : "अरे भाभी, पुत्ती भैया की भांग उतर गई है, गोला पिसवाय के भेजौ जल्दी से, नहीं तो नींद के झोंके में कन्यादान के बजाय पुरोहितजी का दान न कर डालैं ये।" इस पर बड़ी जोरदार हंसी हुई, पुत्ती गुरु हड़बड़ाकर चेते और अपनी झेंप मिटाने के लिए कहा : "मेरी भांग कभी नहीं उतरती रामलाल, अपने लिए जी चाहे तो घुटवाय लेव। हांजी, कोदात् कस्मादात् कामोदाता कामः···" पाधा के साथ-साथ पुत्ती गुरु भी अपने नित्य के पेशे की लहर में आकर मंत्र बोलने लगे।

रमेश दालान में एक कोने में दीवार के सहारे चुपचाप बैठा था। लच्छू उसके पास बैठकर खुसफुस स्वर में जनवासे में हुई गर्मागर्मी का प्रसंग सुनाता रहा। रमेश अब बरातियों के व्यवहार से ऊब चुका था, बोला : "मरने दो सालों को। मुझे तो सच पूछो, इन पढ़े-लिखे कहलाने वाले लोगों से घृणा हो गयी है। इनसे बढ़कर नीच और स्वार्थी दुनिया भर में कहीं ढूंढे न मिलेंगे। इनसे तो करोड़ों गुना अच्छी अपनी हलवाइन दादी हैं यार।"

"क्या आयी है ?" लच्छू ने नये प्रसंग के उत्साह में भरकर पूछा।

"हां-हां, अभी थोड़ी देर पहले मेरे साथ ही आयी हैं। जानते हो, क्या-क्या सामान दे रही हैं—गोदरेज की आलमारी, सोफ़ा-सेट, फ़िलिप्स का रेडियो, लड़के के लिए सोने की जंजीर और अंगूठी और मन्नो को एक सोने का सेट। मैं तो देखकर दंग रह गया।"

लच्छू आंखें फाड़कर रमेश को देख रहा था, बात सुनकर वह उचक पड़ा, खुश होकर बोला : "अमां बाहर चलो, सिगरेट पियेंगे। इस बुढ़िया ने तो कमाल कर दिया। दो हज़ार से कम का माल न होगा।"

रमेश उसके साथ ही उठते हुए बोला : "ऊपर अम्मा के पास ही बैठी हुई हैं इस वक्त। मैंने ऊपर सबके सामने ही अम्मा को बतलाया कि क्या-क्या सामान दे रही हैं। सारी औरतें उनकी हांजी-हांजी में लगी हुई हैं। तुम्हारे जाने के बाद ही उनका नौकर आया और कहने लगा कि बहूजी कन्यादान की रसम देखेंगी। मैं फौरन दौड़ा हुआ उनको लिवा लाने के लिए गया। इससे बड़ी सन्तुष्ट हुईं। गहनों के बक्से मेरे हाथ में दिये और कहने लगीं : "तुमरे बाबू और अम्मा के लिए मिठाई और फल मंगवाय लिये हैं। कन्यादान के बाद हमारे हियां की मिठाई खाएंगे वो लोग, समझे। और नीचे सब सामान रक्खा है सो देख लेव। तुमरे घर में जगह होती तो हम अबहीं सब हुवैं पहुंचाय देते।"

"ग्रेट है यार ये बुढ़िया।"

गली से निकलकर इधर-उधर देखकर दोनों ने सिगरेट सुलगाई।

विवाह-कार्य सम्पन्न होने के बाद वर-वधू अन्तःपुर में गये। मन्नो की दो फुफेरी बहनें कित्तो और श्यामो तथा उसकी तीन सहपाठिनें रानीबाला राठोर, शर्मिष्ठा निगम और सरोज शर्मा हंसते हुए आगे आईं। सरोज शर्मा मन्नो का घूंघट उठाकर उसके अन्दर झांकती हुई बोली : "बधाई है मिसेज राजकिशोर, अच्छा बन्दर पाला है।" लड़कियां हस पड़ीं।

कित्तो बोलीं : 'तो क्या जीजाजी बन्दर लगते हैं? राजकिशोर तुरन्त मुस्कराकर बोले "क्या! करें भाई, बंदरियों के बीच में इन्सान की यही वक्त होती है, इसलिए माने लेते हैं।"

रानी बोली: "बड़ी जल्दी मान गये आप। बन्दर हैं तो दुम कहां छोड़ आये?" राजकिशोर फिर हाजिर जवाब हुए, बोले: : "ये दुम लग तो गयी और क्या कसर रही।"

थापे के सामने बड़ी औरतें लड़कियों को थामकर वर-वधू को बिठलाने के लिए आदेश देने लगीं। श्यामो बोली: "जीजा जी बड़े हाजिर जवाब लगते हैं। देखना है, अभी छनकहाई में इनकी अक्ल की थाह लग जायगी।" सरोज बोली: "अजी देखिएगा, कैसे टके-टके पर पट्टे बेटू से बोलते हैं, हां बोलिए जीजाजी, पहले टके पर।"

बड़ी-बूढ़ियों के रहते हुए भी राजकिशोर कहने से न चूके, बोले: "अजी टका क्या देखें, हमारी टकटकी तो आप पर लगी हुई है।" बड़ी-बूढ़ियों ने मुस्कराकर मुंह फेर लिया। दूर के रिश्ते में मन्नो की बड़ी बहन लगनेवाली एक स्त्री बोली: "आप छन सुनाइए छन। ये लीजिए दो रुपए खन-से हाजिर हैं। फिर अपनी छन-खन की तुकबंदी पर वह आप ही जोर से हंस पड़ीं।

राजकिशोर उनकी ओर देखकर बोले: "दो रुपए वाली सुनिएगा? तो लीजिए, सुनिए: छन पकाई-छन पकाई, छन के ऊपर कत्था। सालियां हमारी ऐसी हैं जैसे भिड़ का छत्ता।"

इस पर बड़ी हंसी हुई। सालियों की जवानें भिड़ों के डंक की तरह राज-किशोरजी को छेदने के लिए बढ़ने लगीं। रमेश की मां एकाएक बोलीं: 'अच्छा-अच्छा, काम चलन देव आगे का। रानी बिटिया, तुम हमारा एक काम कर देव लपक के, लच्छू, रमेश और उनके सब साथी-संगिन को बगलवाले घर में खाने के लिए बैठाल देव।" रानी चली गयी। कित्तो की मां ने राजकिशोर से कहा: हां बेटा, एक छन कहके रह गये, और सुनाओ ई तौ तुमरे फायदे का बखत हैगा।"

"सुनिए: और सुनिएगा? छन पकाई-छन पकाई, छन के ऊपर सेम। सास हमारी ऐसी जैसे लाट साहब की मेम।"

खूब हंसी हुई, फिर छन्द पर छन्द सुने गये और दो, चार या पांच रुपए तक हर छन्द पर बराबर दिये जाते रहे।

रानी उस समय दूसरे घर में रमेश के पास खड़ी हुई थी। बाहर दालान में दरी बिछा दी गई थी। पत्तलें भी प्रायः परोसी जा चुकी थीं। लच्छू काम-काज करने वाले लड़कों को बुलाने गया था। रानी और रमेश ने मिलकर यहां पत्तलें परोस दी थीं। पूड़ियां गर्म मिलें, इसके लिए आटा अलग गुंधा हुआ रक्खा था। मोरी के पास बैठे हुए दो कहार बरतन मांज रहे थे और सब सन्नाटा था। रमेश को आज पहली बार इतने एकान्त में रानी के पास होने का अवसर मिला था। इस अवसर के प्रति प्रायः दोनों ही अपने अन्दर एक अपेक्षित पुलक-कम्प और नये अनपेक्षित भय-कम्प के प्रति सजग से थे। पिछले आठ-दस महीनों में क्रमशः आमना-सामना पड़ जाने पर दोनों की आंखों में आकर्षण की चमक आ जाती है। फिर रानी की आंखें तुरन्त लाज-संकोच से झंप जाती हैं और रमेश की आंखें प्यासी, तकती सी रह जाती हैं। बस इतना ही नाता है। रानी मन्नो की सह-पाठिनी है। मन्नो, मालती, शर्मिष्ठा और रानी का चौगड्डा कालेज से लेकर

मल्लाहों तक में प्रसिद्ध है। उसमें भी मन्नो और रानी अभिन्न मानी जाती थीं। रानी रद्धूसिंह राठौर की मंझली लड़की है। उसकी मां मर चुकी है। छह वर्ष पहले सोलह वर्ष की आयु में ही वह विधवा हो चुकी थी। बीच के दो साल खोकर उसने फिर से पढ़ना आरम्भ किया और अब भी मन्नो के साथ ही साथ इण्टर-मीडिएट की परीक्षा दी है। उसका परिवार एक समय बड़ा सम्पन्न था, अब उतनी ही विपन्नावस्था में है। पिता बेकार हैं। रानी की दयनीय आर्थिक दशा का पता रमेश को भी है। रानी ने मन्नो के विवाह में पिछले चार दिन से अथक परिश्रम किया है। सब एक मुंह से तारीफ करते हैं। अकेले में और कुछ बात न सूझने पर रमेश ने यहीं से बात उठाई, बोला : "तुमने बहुत मेहनत की।"

रानी को भी सारे संकोच के बावजूद बात कहने का चाव था। एक बार पलक उठाकर रमेश को देखा और पूछा : "किसी पर एहसान किया।"

"मुझ पर।"

"क्यों ?"

"क्यों का जवाब नहीं।"

फिर दोनों के बीच दस-बीस पल चुप्पी के बीते। आज अकेलेपन में दोनों के मन का हौसला भारी-भारी साबित हो रहा था और ऊंचे आकाश में उड़ने के लिए आतुर भी, मानो इच्छारूपी गजेन्द्र के पंख उग आए हों। लेकिन क्या बोलें, क्या पूछें ?

रमेश ने पूछा : "तुमने खाना खा लिया ?"

"आपने ?"

"जानती तो हो।"

"तब फिर मेरा भी यही समझ लीजिए।"

"बात फिर खतम हो गयी। अब क्या करें ? सामने पत्तलें संजोई हुई रक्खी थीं। बस पूड़ियों की कसर थी। यही प्रसंग मिल गया, रमेश ने पूछा : "पूड़ियां क्या तुम उतारोगी ?"

"नहीं, कोई आपकी जातवाले ही बैठे हैं भट्ठी पर।"

"और तुम्हारी जात क्या है ?"

"इन्सान।"

रानी का जवाब सुनकर रमेश का जी खुश हो गया। बरबस रानी की पीठ थपथपाने के लिए उसका हाथ बढ़ गया। यदि आस-पास मन्नो, उसकी माता या परिचित लोगों में से कोई वहां उपस्थित होता तो रानी को यह शाबाशी सहज लगती, पर इस समय अकेले में अपनी देह पर रमेश का यह कर-स्पर्श लाज और अनजाने भय की बिजली जैसी सिहरन से भर गया। रमेश का हाथ अपनी पीठ पर पहुंचने के साथ ही शाबाशी की पहली थपकी पड़ी; वह छिटककर अलग खड़ी हो गई और उनकी दृष्टि अनायास बरतन मांजते हुए कहारों पर जा पड़ी; ये दोनों ही उस ओर से विमुख थे। आश्वस्त होकर रानी ने एक बार फिर नजर उठाकर रमेश को देखा, वह अपलक मुग्ध नयनों से उसे ही देख रहा था। बड़ी लाज, बड़ी पुलक और स्फूर्ति एक साथ ही उमड़ी, पलकें झुकीं और फिर उठीं, इस बार उसकी आंखों में आकर्षण मुक्त होकर खेल रहा था। चार आंखों की टकटकी बंध गयी। वातावरण बिसर गया, भय और लाज गई, अपना अस्तित्व ही लुप्त हो गया, केवल पारस्परिक आकर्षण का अनन्त सौन्दर्य ही वहां तन-मन

में उजागर था। लच्छू और दूसरे साथी बातें करते हुए दरवाजे में घुसे। दोनों को होश आ गया।

लच्छू का मूड़ उखड़ा हुआ था, चेहरा तमतमा रहा था। रमेश का मन इस समय हर थकावट से दूर, हर चिन्ता से मुक्त रंगीन उमंगों से भरा-पूरा था, मित्र को जोर से अपनी बांहों में बांधकर पूछा : "चेहरे पर ये तरबूज क्यों लटकाया है मेरी जान ?"

उसके आलिंगन से मुक्त होते हुए लच्छू चिड़चिड़ाकर बोला : "तुम्हारे बराती साले अब यहां से पिटकर ही जायेंगे। मैं 'इन सो मेनी वर्डस' उन लोगों से ये कह के ही आ रहा हूं।"

कारण पूछने पर लच्छू ने बतलाया : "अभी एक मन दूध और बरफ की फर्माइश आई। मैंने कहा कि मन भर दूध पीने के लिए शाम ही को भिजवाया जा चुका है। बोले कि अब लस्सी बनेगी। मैंने कहा कि रात के डेढ़ बजे इतना दूध कहां से लाऊं ? वे लोग वाही-तबाही बकने लगे। मैं फिर भी बड़ी नम्रतापूर्वक उन्हें समझाने लगा। राजकिशोर के दोस्तों में वह जो जीवन बाबू नाम का टिपंखा रंगीन चश्मेवाला है न, वही साला सारी ख़ुराफात की जड़ है। उसने मुझे भद्दी गाली दी। इस पर मैं ताव खा गया। मैंने कहा, लड़कीवालों की तरफ से जो काम करने आते हैं वो किसी के बाप के नौकर नहीं होते। ये इंसानियत का कर्तव्य है और हम इंसानों की सेवा करने के लिए हरदम मुस्तैद हैं। आज सेवा की हमारी पारी है तो कल आपकी भी पारी आ सकती है। मैंने कहा, उस समय मैं जो आपको इसी तरह गाली दूंगा तो आपको कैसा लगेगा ? मैंने कहा कि अबकी जो गाली दीजिएगा तो फिर गाली भी खाइएगा और मार भी खाइएगा, फिर हमें दोष न दीजिएगा, मैंने कहा।"

रमेश भीतर ही भीतर तमतमाने लगा, पूछा : "फिर क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं। दो-चार लोग समझाने-बुझाने लगे। राजकिशोर के फादर आ गये। वे बेचारे बड़ी अच्छी तरीके से पेश आए। मुझे हाथ पकड़कर अलग ले गए। बहुत समझाने-बुझाने लगे, माफी मांगने लगे, तो मैंने उनके पैर छू लिये और चला आया। मगर यार, सच कहता हूं कि अभी तक रह-रह के गुस्सा आ रहा है। ऐसे बेहूदा बराती मैंने आज तक नहीं देखे थे।

रानी तब तक औरों को गर्म पूड़ियां परोसकर इनकी बातें सुनने लगी थी, बोली, "गांव की बरातों में तो इससे भी बढ़कर बेढब बराती आते हैं लच्छू भैया। हमारे ठाकुरों और कनौजिया ब्राह्मनों की बरातों में तो लाठियां तक चल चुकी हैं। अच्छा, अब आप लोग भी बैठ जाइए, पूड़ियां ठंडी होने लगी हैं। आप भी आइए रमेश—"

बरसों की आदत का 'भैया' शब्द एकाएक गले में अटक गया। सम्बोधन ने बड़ा अटपटा विराम पाया। इसकी झेंप में वह तेजी से लड़खड़ाते पैरों भागी। रमेश सब-कुछ भूलकर उसी ओर देखने लगा।

दूसरे दिन विवाह के बाद की रस्में पूरी होने लगीं, दोपहर में लड़का, 'कंगना' खेलने के लिए आया। कंगना खिलाने की रस्म भावज करती है, लेकिन रमेश का विवाह तो हुआ न था, इसे लेकर पुत्ती गुरु की रिश्ते की बहन गुन्नो जिया ने थापे के पास बैठी हुई रमेश की मां और आंगन में खड़े रमेश को सम्बोधित करते हुए कहा : "इसीलिए कहा जाता हैगा कि पहले टेले करन वाली बहू

घर में लै आवै तब बिटिया का ब्याह करै। अगली सहालग में रमेश का ब्याह कर देना पुत्ती की बहुरिया।" कंगना खिलाने की रोचक रस्म देनेवाली भीड़ में रानी पीछे खड़ी थी। रमेश की मां ने उसके वैधव्य की परवाह न कर उसे विवाह-कार्य में सम्मिलित तो होने दिया था, पर ये भी समझा दिया था कि रस्मों के समय वह सामने न पड़े, वरना उसे शायद किसी पुरानी ढंग की बड़ी-बूढ़ी के बोल-कुबोलों का सामना करना पड़ जाय। रानी पीछे खड़ी थी। रमेश आंगन में सामने खड़ा था। पिछली रात से दोनों की दृष्टि में एक-दूसरे से मिलने के लिए उजागर उतावली दिखलाई देती थी। आज सुबह से न जाने कितनी बार आंखों का मिलना और होंठों पर पुलक का दौड़ जाना दोनों के बीच में खेल सा जम चुका था। कंगना खेलने के लिए भावज की तलाश में अपने विवाह के प्रसंग पर स्वाभाविक रूप से रमेश की दृष्टि रानी की ओर उठ गयी, पर रानी न उठा सकी, मानो वह जानती हो कि रमेश उसे देखेगा और उसका देखना इस समय उसे बहुत भारी पड़ जायगा। विवाहित युगल जोड़ी की रस्म देखते हुए वातावरण के संस्कारों के आवद्ध, अपने वैधव्य की चेतना से रुद्ध और पिछली रात के नवजीवन स्पर्श से पुलकित रानी का मन स्वयम् अपने ही संस्कारों की आकर्षणी शक्ति से दोनों सिरों पर चिपक गया। उसके मन में अनायास ही उपजी यह पुलकमयी आस्था कि वह अब मन से अपनी सखी की भाभी है, चेहरे पर कान्ति बनकर छा गयी। वह विधवा है, दूसरी जाति की है, यह चेतना भी मन में बराबर उसी तरह बनी रही, जैसे कि पूनों के चांद की होती है। चन्द्रमा का सौन्दर्य तनिक भी कम नहीं होता, पर धब्बा तो रहता ही है—ठीक यही स्थिति थी।

रमेश सारी थकान और जनवासे की बदमज़गियों के बावजूद कल रात से हरा-भरा हो रहा था। आज सुबह से ही वह हर काम-काज से बचता और एक बार घर में झांक जाता। बहाने से रानी को खुले आम आवाज देकर कुछ काम के लिए कह जाना, बहाने सिर बेभान होकर कहीं घर के निराले में या भीड़ में भी नजरों के खेल खेल जाना, बस यही खिलवाड़ आज उसके मन को अधिक बांध रहा था। विवाह की सारी व्यवस्था का अधिनायक बना हुआ, अति व्यस्त रहते हुए भी उसका एक ध्यान योगी की तरह रानी में अपना कैवल्य सिद्ध करता ही रहा।

क्रमशः चबेनी, स्तुतिवाचन (विनती), बड़हार, सिरगूंथी आदि की रस्में हुईं। दोपहर से रात हुई। घर से अब विवाह की अन्तिम रस्म हो रही थी। मन्नो के दुलहा राजकिशोर भट्ठी को लात मारने के लिए गए। एक गुम्मे को ठोकर से गिराकर भट्ठी तोड़ दी। काम पूरा हुआ, दरवाजे पर मिलनी हुई। लड़की विदा होने लगी। महर्षि कण्व के शकुन्तला की विदाई वाले प्रसंग से लेकर आज तक इस अवसर पर घर-घर में जैसे सहज आंसू बरसते हैं, वैसे यहां भी बरसने लगे। लड़की की विदा और मौत में बस इतना ही अन्तर होगा है कि यहां जीते जी पराई होकर भी वह और उसके आगे की सन्तति दृश्यमान् होती रहती है, जीवन साक्षात् दर्शन देता है। विदा के समय भी ऐसे बानक बने कि रानी को रमेश के ठीक पीछे खड़े होने का अवसर मिला। सखी की विदाई के समय रानी के उमड़ते हुए आंसू झूठे तो कदापि नहीं हैं, मगर उसी समय रमेश के सान्निध्य की चेतना एक अजीब-सी खुशी भी उसे दे रही है। मन्नो जा रही है, मन्नो के कारण ही वह इस घर में आई, लेकिन आज उसके अपने घर विदा होते-होते तक रानी का मन अपने वैधव्य की चेतना के बावजूद ढीठ होकर इस घर से अपना नाता जोड़ रहा

था। एक अजब ढंग से उसके मन में इस विवाह के वातावरण से अपना यह नव-प्रेम अपने जादू से अन्धा बनाते हुए भी उसे मानसिक रूप से वस्तु-स्थिति की सूझ भी दे रहा था। वह जानती थी कि यह प्रेम कोरी छलना है, विवाह असम्भव है और इस होश में रहते हुए भी, उसका अन्त: हठ यह कहता था कि दोनों के बीच अनजाने तौर पर महीनों से चल रहा नाता अब सत्य की तरह प्रकट हो गया है और यह सत्य मिट नहीं सकता, टल नहीं सकता। वह हठ के साथ स्वयम्-समर्पिता सी सिमट कर रमेश के शरीर से सटकर खड़ी हो गई। रमेश ने गर्दन घुमाकर बहन के स्नेह स्वरूप आंसू भरी आंखों से देखा और देखते ही मानो पानी में आग लग गई।

सात

ब्याह-बरात के दृश्य पूरे हुए। कथा का जो सूत्र लेकर मेरा उपन्यास आगे बढ़ा था, वह चुक गया। ऊपरी तौर पर न सोचकर भी मेरा सृजन-क्रीड़ारत अन्तर्मन अनिवार्य औपन्यासिक तार में नायक को बांध चुका, उसे नायिका मिल गई। अन्तर्जातीय विवाह और वह भी विधवा-विवाह—दो क्रान्तिकारी पहलू सामने आ गए, प्रेम में दो अजानों को एक रिश्ते की पहचान करा दी।···और इस तरह मेरे उपन्यासकार ने मेरे व्यक्ति को निजी अनुभव की कचोट दे दी। मेरा भवानी भी प्रेम-समस्या का ही शिकार है। उपन्यास का नायक रमेश मेरी आनुमानिक आयु के अनुसार तेईस-चौबीस वर्ष का है और मेरा बेटा भवानी अब अट्ठाइसवें बरस में चल रहा है। उसका पहला प्रेमकाण्ड चार-पांच वर्ष पहले हुआ था—ठीक इसी तरह—अरुणा की शादी पर। उषा अरुणा की सहपाठिनी थी।··· मुझे वे दिन याद आते हैं। भवानी एम० ए० के अन्तिम वर्ष में पढ़ रहा था। बी० ए० ऑनर्स, गोल्ड मेडिलिस्ट, वज़ीफेदार, होनहार लड़का, क्या से क्या हो गया! उस पर एक भूत-सा सवार था, न किसी से बोलना न चालना, न हंसी न बात, हरदम खोया-खोयापन और जरा डांटो-फटकारो तो आंखों से गंगा-जमना बहने लगती थीं। भवानी और उषा का प्रेम महल्ले भर की चर्चा का विषय बन गया था आबरूदारों की नैतिकता को खलता, उनकी जातिगत चेतना को भी बड़ी उलझन होती थी। हम खत्री, उषा ब्राह्मण। उषा की मां, चाची और बुआ दो बार हमारे यहां चढ़ाई करके माया को परास्त कर गईं। बड़ी बदनामी हुई थी। मैं न चाहते हुए भी इस पक्ष में था कि दोनों का विवाह हो जाय। न चाहने का कारण खास तौर से आर्थिक था और आम तौर से सामाजिक। मैं भवानी को यही समझाता था कि तुम अपनी दीवानगी पर कुछ महीनों और काबू रक्खो, एम० ए० प्रथम श्रेणी में पास कर लो। तुम्हारा भविष्य सुरक्षित हो जाय, फिर विवाह कर लेना। अपने गम्भीर क्षणों में वह मेरी बात को मानता था, खुद उसके मन में भी यह बात आती थी कि उसके कैरियर को आंच न आए, पर होनी

होके रही। उषा उससे भी अधिक दीवानी थी। उसको हिस्टीरिया के दौरे पड़ने की खबरें, मां-बाप आदि घरवालों द्वारा कटुक वचन सुनाए जाने की खबरें, झट-पट और जबर्दस्ती उसका सजातीय ब्याह कर देने की जुस्तजू में वर-ढुंढौवे की सनसनीखेज की खबरें, इन सबने और हम-जोलियों की रोमानी सहानुभूति तथा उषा की सहेलियों के चुपचाप सहयोग ने भवानी के मन को हर दिशा से घेरकर प्रेम-दीवाना बना दिया। महल्ले में मेरे लड़के का कैरियर बिगड़ता देखकर कुछ लोग हमारे पक्ष में थे और लड़की को दोषी करार देते थे और कुछ लोग पं० बांकेलाल के पक्ष में थे, कुछ उभयपक्ष को निर्दोष बतलाकर नये ज़माने और पढ़ाई लिखाई को दोष देते थे। इसी बीच में एक दिन मित्रों के सफल षड्यन्त्रवश भवानी और उषा का आर्यसमाजी और रजिस्टरी विवाह हो गया। लड़कों ने चोरी के बाद सीनाज़ोरी का कार्यक्रम भी बना रक्खा था। विवाह के बाद महल्ले के एक शिवाले में, जिसके दालानों में उनका छोटा-सा पुस्तकालय, वाच-नालय और मनोरंजन केन्द्र था, वर-वधू के स्वागत में एक छोटी-सी जलपान और संगीत गोष्ठी भी आयोजित की। महल्ले में बड़ी कांव-कांव मची। पं० बांकेलाल मेरे घर के द्वारे खड़े होकर लाखों गालियां मुझे सुना गए।

असली समस्या इसके बाद सामने आई। उषा के लिए अपने घर के द्वार बन्द हो चुके थे। मुझे अपने घर उन्हें रखने में आपत्ति न थी, पर भवानी स्वयम् यह नहीं चाहता था। उन दोनों के यहां रहने से उमेश और वरुणा के आगामी सम्बन्धों पर आंच आ सकती थी। यूनिवर्सिटी के पास ही किसी मित्र के घर पहले कुछ दिनों मुफ़्त में, फिर कुछ किराया देकर रहने लगे। पिछत्तर रुपए भवानी को छात्रवृत्ति के रूप में मिलते थे, पचास मैं प्रतिमास देने लगा। पहले उसके पास साठ रुपये मासिक की एक ट्यूशन भी थी, पर प्रेमदीवानगी के दिनों में न सध पाने के कारण वह छूट गई थी। दोनों को अर्थसंकट और उखड़े जीवन का बोध लेकर अपना नया संसार बसाना पड़ रहा था। माया ने बेटे-बहू की गृहस्थी को जमाने में यथा-शक्ति सहायता दी। वरुणा और उमेश भी वहां बराबर आते-जाते रहते थे। यह सब कुछ हुआ, पर भवानी का कैरियर बिगड़ गया। पढ़ाई में सदा से तेज़ और ऊंचे नम्बरों से पास होनेवाला नौजवान तीसरी श्रेणी में एम० ए० पास हुआ। उसकी आखिरी डिगरी चौपट हो गई, रिसर्च और यूनिवर्सिटी के लेक्चरार होने की सम्भावनाएं हाथों छूटे शीशे की तरह चकनाचूर हो गईं। और उषा के दिन चढ़े थे।

उषा के पिता पं० बांकेलाल तब तक अपना तबादला कराके गृहस्थी समेत सीतापुर जा चुके थे। विवाह की घटना तब छह महीने पुरानी हो चुकी थी। इसलिए गर्भवती पतोहू को माया ने घर लाकर रखना ही उचित समझा।

यूनिवर्सिटी की पढ़ाई पूरी हुई। सपने टूट गए। भवानी अब जिन्दगी के चौराहे पर खड़ा था—किधर जाए। क्या करे। मैंने सलाह दी, कहीं मास्टरी कर लो, दुबारा एम० ए० की तैयारी करो अगले साल शर्तिया अच्छे नम्बरों से पास होगे। मैं एक हायर सेकेण्ड्री स्कूल की प्रबन्धक समिति का सदस्य हूं, स्कूल में एक जगह खाली थी और उसके लिए भवानी कुपात्र भी न था; हो जाता, पर भवानी को स्कूल-मास्टरी का विचार तक रुचिकर न लगा। वह अपने लिए कम से कम इण्टरमीडिएट कॉलेज की लेक्चररशिप चाहता था। वह मिली नहीं, यह मास्टरी भी हाथ से निकल गई। निराधार पढ़ाई में जी न लगता था।

घर से उड़ा-उड़ा रहने लगा। सुबह नौ-दस बजे तक घर से निकल जाता, रात में दस-ग्यारह बजे लौटकर आता। अब उषा से उसकी खटपट भी अक्सर होने लगी। यथासमय उसका पहला पुत्र जयन्त हुआ। एक साल बेकारी में बीत गया।

भवानी के प्रति अब मेरी चिन्ता के क्षण गहराने लगे। इस लड़के के स्वभाव में सहसा अनेक नई-नई बातें दिखलाई पड़ने लगीं। अक्सर देखता कि भवानी नए-नए सूट पहनकर बाहर जा रहा है। कहां से आए ये सूट? माया की मार्फत जानकारी की। बहू ने बतलाया कि सूट उनके नहीं, किसी दोस्त के पहन आते हैं। यह सूचना मुझे और भी परेशानी में डाल गई। मुझे लगा की इस लड़के का स्वाभिमान लुप्त हो रहा है। फिर बाहर के लोगों से सुनने में आया कि भवानी 'गोल्डेन ईगल' बार में अक्सर बैठा हुआ दिखलाई देता है। मुझे चिन्ता सताने लगी। मैं यह समझता था कि अपनी असफलता से उसकी जमी-जमाई आस्था विचलित हो गई है। भवानी उमेश की तरह सत्ताभिलाषी न था। वह शुरू से ही प्रोफेसर बनने के सपने देखा करता था। अंग्रेजी तेज थी, अंग्रेजी का भक्त भी था। कभी-कभी मेरे सामने हिन्दी को नीचा दिखलाने का जोम भी बरत लेता था। उसे हिन्दी और कांग्रेस दोनों से ही चिढ़ थी। उसकी इस चिढ़ को मैं समझता था। कांग्रेसी आन्दोलन के कारण, मेरे जेल-जीवन और हिन्दी-लेखन के कारण मेरी आमदनी थोड़ी और अनियमित रही। भवानी का मानस बचपन से ही इन कारणों से संत्रस्त हो गया था। इसी कारण से मेरे प्रति अवज्ञा की थोड़ी-बहुत भावना उसमें शुरू से ही रही। मेरे साथ ही अपनी प्रतिभा से आस्था ग्रहण करके वह अपनी पढ़ाई-लिखाई में बड़ा चौकस रहा। किशोर और युवाकाल में वह शेखी के साथ लोगों के सामने कहा करता था कि वह किस्से-कहानियां नहीं वरन् गम्भीर और ठोस ज्ञान की पुस्तकें लिखकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित करेगा। अध्ययन के क्षेत्र में अपनी उत्तरोत्तर सफलता के कारण उसने अपने-आपको अपने पिता-माता से बड़ा मान लिया था। बड़े भाई विनय को वह बुद्धू कहता था और छोटे भाई-बहन तो छोटे थे ही। यों तो मेरे सभी बच्चे देखने में सुन्दर लगते हैं, पर भवानी का नाक-नक्शा इन सबमें सुन्दर है। जवानी आने के साथ-साथ उसे अपनी सुन्दरता का गुमान भी होने लगा था। मैं समझता हूं, अलक्ष्य में मैं ही उसका शत्रु हो गया।

मुझे रात-दिन भवानी ही की चिन्ता सताने लगी। उषा से बोलता तक न था; जब बोलता भी था तो झिड़ककर, उसे अपने जीवन का अभिशाप बतलाता था। माया से यह स्थिति जानकर मेरे मन की उलझन और बढ़ गई। मैं अन्तर्जातीय प्रेम-विवाहों के दो दु:खान्त प्रकरण देख चुका हूं। यह अन्तर्जातीय प्रेम, विवाह से पहले रूढ़ियों के प्रति बगावत तरके मनुष्य को संकीर्णता से व्यापकता के दायरे में ले जाता है, लेकिन विवाह के बाद यही संकीर्ण, जातिगत चेतना पति-पत्नी के बीच कभी-कभी बेतुकी और चुभन भरी स्थितियां ला देती है। मेरे साथियों में एक 'गुप्त' महाशय ने, सन् बाईस-तेईस के लगभग एक 'शर्मा' कुमारी से प्रेम किया, फिर ब्याह किया। वह जमाना और भी पुराना था। शहर के सभी किस्म के ब्राह्मणों ने आपसी भेद और ऊंच-नीचपन को भुलाकर इसे अपने वर्ण का अपमान माना और वैश्यों को भी यह लगा कि पूज्य कुल की कन्या लाकर 'गुप्त' कुलांगार ने वैश्य मात्र को अपराधी बना दिया है।

सन् तेईस-चौबीस के उस ज़माने को जब आज की दृष्टि से देखता हूं तो पहली

नज़र से ऐसा लगता है, मानो वह दुनिया ही और थी। आज अनेक ब्राह्मण-कन्याएं पुरानी मान्यता के प्रतिकूल अपने से 'हीन' वर्णों की भार्या बन रही हैं और उनके पिता या पति कुलों के लोग अपने-आपको अपराधी नहीं मानते। अब तो मैं पिछले दो वर्ष से अपने इन पुराने रूढ़ संस्कारों से जकड़े हुए गली-महल्लों के समाज में भी अन्तर्जातीय विवाहों के धूमधाम देख रहा हूं। और ऐसे विवाह माता-पिताओं की सम्मति से हो रहे हैं।

लेकिन मेरे जमाने के अन्तर्जातीय विवाह करने वाले गुप्ताजी अपनी बिरादरी से निकाल दिए गए थे। सरकारी नौकरी में प्रवेश पाने की उनकी इच्छा और प्रयत्नों को एक ब्राह्मण अफसर ने बदले की भावना से एक ही कलम से साफ कर दिया था। हां, हम लोग, जो राष्ट्रीय और सुधारवादी विचारों के युवक थे, उन्होंने गुप्ता-दम्पति को बड़ा नैतिक सहयोग दिया। गुप्ता दम्पति आर्यसमाज और राष्ट्र-सेवी बन गए। मगर सरकारी नौकरी न पाने का क्षोभ गुप्ताजी के मन से कभी उतर न सका। विवाह के दो ही तीन वर्षों बाद उन्होंने अपनी प्रेमिका पत्नी को छोड़ दिया। आर्यसमाजी से मुसलमान बने, फिर दो बरस बाद अपनी मुसलमान पत्नी के साथ शुद्ध होकर हिन्दू बने। उनका सारा जीवन स्त्री-लोभ में गैरजिम्मेदार ढंग से ही बीता। उनकी शर्मा पत्नी आज भी जीवित हैं, एक प्रतिष्ठित प्रधानाध्यापिका के पद पर आसीन हैं। उनके स्वभाव में क्रोध और कठोरता आ गई है।

मैंने अभी हाल ही में हुए दो प्रेम-विवाहों की असफलता को भी देखा है। ये प्रेमिका पति-पत्नी प्रेम का नशा उतरते ही एक-दूसरे को अपनी जाति जतलाने लगते हैं। आर्यसमाजी और सिविल मैरेज कानून से किए गए विवाह-कर्म का बन्धन उनके मन में बच्चों के खेल का समान ही फुसफुसा और बेबुनियादी हो जाता है। हां, जो युवक या युवतियां छोटे शहरों में बंगले वाले समाज से या बड़े शहरों में फ्लैटों वाले समाज से जुड़े हुए हैं, उनमें यह जातिगत भावना किसी भी स्तर पर नहीं सताती। महल्लों के संस्कारों से घिरा हुआ मेरा भवानी जब अपना कैरियर चौपट हो जाने के बाद प्रेम से अघा गया, तो अपनी पत्नी के ब्राह्मणत्व को बात-बात में तुच्छ बताने लगा। मैंने एक दिन उसे समझाने की कोशिश की, कहा कि पश्चात्ताप करना या दुखी होना अच्छी बात नहीं। तुम किसी भी समय अपने को फिर से सफलतापूर्वक तक खड़ा कर सकते हो। मैंने उससे यहां तक कहा कि कमाने की चिन्ता छोड़ दो, तुम पढ़ो। और अपना इच्छित कैरियर पाओ। मैं खुशी से तुम्हारा सारा खर्च उठाऊंगा।

भवानी भावावेश में आकर रोने लगा, बोला : "मुझे एम०ए० करने से पहले अपने-आपको शादी से बचना चाहिए था, गलती तो तभी हो गई। मैं एक गलत चीज़ के प्रेम में फंस गया।"

मैंने कहा : "छुटकू अगर तुम्हारा प्रेम सच्चा था तो तुम्हें पछतावा न होना चाहिए।"

"पछतावा मुझे इस बात का है कि मेरा सच्चा प्रेम इसके झूठे प्रेम के धोखे में आ गया।"

"इसके प्रेम में झूठ क्या था भाई ?" मैंने पूछा।

"आप माडर्न माइण्ड को नहीं समझ सकते पिताजी। ये मेरे जैसे कल्चर्ड और रीफाइण्ड टेम्परामेन्ट के आदमी को सूट ही नहीं करतीं।"

"अब तुम ज्यादती कर रहे हो छुटकू, उस समय जब मैं तुम्हें समझाता था, तब तुम्हें ऊषा में सारे गुण ही गुण दिखलाई देते थे।"

"वह इन्फक्चुएशन था।"

"खैर, मैं तुमसे बहस नहीं करूंगा, मगर तुम अपने जीव-कर्म की चिन्ता करो।"

"अब मैं पढ़ तो सकता नहीं पिताजी। वह उमंग गई। अब तो भला या बुरा जैसा भी हो, मेरे ऊपर एक गृहस्थी का भार है। मैं जल्द से जल्द किसी सर्विस की तलाश में हूं।"

"खैर वही सही, मैं तुम्हारे लिए एक सीमा तक अपने सिद्धांत से समझौता करने को भी तैयार हूं बेटे। किसी से कहना-सुनना पड़े तो—"

"आपको उसकी जरूरत न पड़ेगी, मैं अपना रस्ता आप ही बनाऊंगा।"

"ठीक है, इससे बढ़कर खुशी की बात ही क्या हो सकती है?"

और रस्ता उन्होंने उम्दा खोज निकाला। अपने गुरु अंग्रेजी के एक सम्मानित भूतपूर्व प्रोफेसर की एक लेक्चरर लड़की के रखैल बन गए। मेरी एक सन्तान श्रमजीवी नहीं शिश्नजीवी है—यह कटु यथार्थ मेरी अहंता को लातें मारता है।

अजीब बात है कि दुनियादारी की सफलता में इसे सारी दुनिया के सभ्य समाज में आम तौर पर पुराने समय से लेकर आज तक बरता जाता है। वात्स्यायन के कामसूत्र में भी धनी एवम् सत्ताधिकारिणी कामवल्लभाओं के माध्यम से अपना नसीबा चमकाने की बात लिखी हुई है। सफलता पा लेने पर मनुष्य के सारे कलंक धुल जाते हैं। मिस दास गुप्ता के यहां रहकर भवानी ने गत वर्ष एम० ए० कर लिया, और अब वो प्रकाशन के धन्धे में उतर रहे हैं। मिस दास-गुप्ता और यूनिवर्सिटी के दूसरे प्राध्यापकों के बनाए हुए नोट्स छाप रहे हैं। मिस दासगुप्ता और भवानी दोनों साथ-साथ खुले आम घूमते हैं, रहते है, अपने समाज में पूरा औपचारिक आदर-मान पाते हैं, उन्हें भय किसका है। हां, अपने इस नए 'कैरियर' में प्रवेश करने से पहले उन्होंने अपनी मां और मुझ पर एक महत् 'आर्थिक कृपा' की थी कि अपनी गर्भवती बहू और बच्चे को अपने ससुर के घर सीतापुर छोड़ आए थे। पंडित बांकेलाल और उनके परिवार वालों का क्रोध तब तक शान्त हो चुका था और वे उसे बुला भी रहे थे। भवानी ने एक तीर से दो शिकार किए—सास-ससुर पर यह एहसान लादा कि उनसे उनका बेटी-दोहता मिला दिया और मां-बाप पर यह कि दो का खर्च कम करवा दिया और स्वयम् मिस दासगुप्ता के दासानुदास हो गए। भवानी के दूसरे पुत्र अनन्त का जन्म अपने ननिहाल में ही हुआ। अब वह सवा साल का हो चुका है, हमने अभी तक उसे देखा नहीं है···। सोचता हूं, ये बच्चे बड़े होकर अपने बाप के संबंध में क्या सोचेंगे और बेचारी ऊषा का क्या होगा? आजकल के लड़कों की समस्या सचमुच उनके मां-बापों के लिए बहुत ही जटिल हो गई है।

नन्हीं (वरुण) डाक लेकर आई। उसके चेहरे पर खुशी की बिजलियां कौंध रही थीं। बायें हाथ से मेज पर डाक रक्खी और दाहिने हाथ की खुली चिट्ठी मेरे हाथ में रखते हुए उल्लसित स्वर में बोली: "पिताजी, मेरे उमेश भैया आई० ए० एस० हो गए···" कान सुन रहे हैं, आंखें पत्र पढ़ रही हैं 'पूजनीया माताजी आपके और पिताजी के आशीर्वाद से मेरा चुनाव हो गया। कल रात को पूज्य शिवकुमार जी के पास दिल्ली से ट्रंककाल आया था। मुझे बुलाकर कहा,···

"मैं आपसे घड़ी जरूर लूंगी पिताजी"—'सवेरे मुख्यमंत्रीजी के चरण स्पर्श कर आना और अरविन्दशंकर जी'—"मैंने अभी तक बिट्टी बहन जी की उतरन पहनी है। अब मैं नई जरूर खरीदूंगी। ये अब बहुत स्लो भी चलती है पिताजी। पिछली बार जब घड़ीसाज को दी थी तो उसने कहा था कि इसकी मशीन अब बहुत ओल्ड हो चुकी।"

कान और आंखों का रस एक ही था, पर बेटी का उलहना बेटे की लिखी सूचनाओं की जिज्ञासा से अधिक आकर्षक और मीठा लगा। मैंने उमेश के पत्र की ओर से नज़र हटाकर बेबी को मुस्कराते हुए देखा। मेरी वात्सल्य भरी दृष्टि को वह अब भी निरी बच्ची ही लगी। नहीं मचलकर बोली: "जब तक आप हां नहीं कहेंगे, तब तक मैं आपका पीछा नही छोड़ूंगी।"

"वाहरी तेरी जबर्दस्ती! अरे आई० ए० एस० तो तेरी माताजी का बेटा हुआ है। उनसे मांग घड़ी। जब मेरी बेटी एम० बी० बी० एस० पास करेगी तब मैं इनाम दूंगा।" मैंने उमंग में बात बनाई। वरुणा बिलकुल डिक्टेटरशाही अदा में सिर हिलाते हुए बोली: "घड़ी तो आपको प्रॉमिस करनी ही होगी। माताजी से तो मैंने अंगूठी और टाप्स का प्रॉमिस झटक लिया है। उमेश भैया की पहली और दूसरी सैलरी में से वो बनवा देंगी और उमेश भैया से अबकी सर्दियों में ओवरकोट का वादा कराऊंगी। और-और अभी तो मेरा बी० एस-सी० का रिजल्ट आने पर एक ड्यू आप लोगों पर और चढ़ेगा। उसके लिए तो मैं बड़े भैया और बिट्टी बहन जी से भी ले मरूंगी।"

"अरे तो मरने की क्या जरूरत है बिटिया। लड़कियां तो लेने के लिए पैदा ही होती हैं। घड़ी मैं तुम्हें दूंगा। अगस्त में दूंगा भाई, जब मेरी रायल्टी के पैसे आ जायेंगे।" मैंने उसकी पीठ थपथपा दी, वह चली गई। नन्हीं का मुहावरे के तौर पर भी 'मरूंगी' कहना मुझे हल्का सा धक्का दे गया था। हमारे यहां अभी तक 'कब मरोगी चुड़ैलो' कहकर लड़कियों का लाड़ लड़ाया जाता है, मगर मुझे यह शब्द सहन नहीं होता, खास तौर से वरुणा के प्रसंग में। इस यक्ष्माग्रस्त बेटी को मैं बड़ी कठिनाई से यमपाश से छुड़ा पाया हूं। और इस समय खास तौर पर अपनी ख़ुशी में हल्की सी चुभन भी नहीं चाहता। नजरें उमेश के अधूरे पढ़े पत्र पर फिर झुक जाती हैं—"और अरविन्दशंकरजी के पास कल शाम को तुम्हें लेकर मैं खुद चलूंगा। पुराने मित्र से कुछ मिष्ठान्न वसूल किए बिना उनका लड़का उन्हें वापस नहीं करूंगा। आज सबेरे मुख्यमंत्री जी के चरण छू आया। प्रसन्न थे। मुझ से कहा कि मेरी ओर से अपने पिताजी को बधाई दे देना। माताजी, दिन भर का वचन बन्धन है, नहीं तो रात ही से पिताजी के और आप के श्रीचरणों में लौटने के लिए तड़फड़ा रहा हूं। बाकी आज शाम को घर आने पर। नन्हीं अपने वास्ते किसी चीज की फरमाइश अभी से सोच रक्खे। पिताजी शाम को कहीं जायें नहीं।"··· पढ़कर मन पर नशा छा गया। मेरा बेटा आई० ए० एस० हो गया। अब अवसर पाकर वह एक दिन भारत का सेक्रेटरी जनरल तक हो सकता है। मैं अब हाकिम का पिता हूं। मेरा अहं इस समय राजसी वेग पर आरूढ़ है, हाकिम की मां को देखने के लिए बेताब है। आप खबर देने न आईं हाकिम की माता जी, अभी से ही मेरा मान गुमान चढ़ा है उनको। ठीक है भाई, आज उनका दिन है। पितृसत्ताक समाज में भी मां का पद एक जगह पिता से बड़ा है। पिता की गया एक बार करने ही से पितृऋण से मुक्ति मिल जाती है, पर मां की गया सात बार में भी पूरा नहीं

होती । चलूं, मैं ही अपनी माया रानी को बधाई दे आऊं।

माया को घर में धोबीखाने की धुली हुई किचन की धोती पहने घूमते हुए आज मैंने बरसों बाद देखा। जब मैं ऊपर पहुंचा तब वह रसोईवाले दालान के जंगले से सामनेवाले घर की सुषमा से कह रही थीं: "ए बिटिया, तनी भंगड़ महा-राज के यहां आवाज दे के कह देओ कि घर से निकलें तो हमरे यहां होते भये जायें। कल पुर्नमासी है, सो हमें सतनरायन की कथा करानी है।"

"अभी कहे देती हूं चाची !"

"और तुमरी महतारी कहां हैंगी, उनसे कह देओ कि उनके उमेशो आई० ए० एस० पास हुइ गए। अब कलक्टर होयेंगे।"

मैं मुग्ध दृष्टि से माया को देख रहा था। माया झुककर गली में देखने लगी, मैंने छेड़ने के लिए कहा : "मैंने कहा, कलक्टर की महतारी खुश-खबरी सुनाउन खातिर गली में शिकार ढूंढ़ रही हैंगी।"

मेरी बात पूरी होते तक भीतर के आनन्द से हरा-भरा उनका मुखड़ा लाज का गहरा गुलाबी निखार भी पा चुका था। मुझसे उनकी तुष्टिमग्न खिलखिलाती आंखें मिलती भी हैं और अपने-आपको चुरा भी रही हैं—लाज भरे संकोच की थिरकन उनके कन्धों, कमर, घुटनों और पैर के पंजों-उंगलियों तक पर दौड़कर थम गई। और इस लाज के बावजूद होंठ रसढीठ होकर खुले हैं, मुस्कान की चपलता स्थिर मग्न होकर दांतों को मोतियों की सी मनमोहिनी आब दे रही थी। काश कि मैं कवि या चित्रकार होता ! नारी अपने पुरुष को उस दृष्टि से देख रही थी जिसे पाकर वह त्रिलोक विजयी हो जाता है। मेरी बात पूरी होने पर उन्होंने 'हटो' कहा और फिर सामनेवाले दालान में खड़ी नन्हीं को एक नजर देखकर बोलीं : "मजाक उड़ाउत हौगे बेकार में। अरे जिसे खुशी होयगी वह दूसरों से कहेगा नहीं।"

"हां, हां भाई, अवश्य कहो, ये कहना-सुनना तुम्हें मुबारक हो। तुम्हारे ही भाग्य से ये सुख का दिन आया है।"

"भगवान ने मेरी अरज सुन ली, तुम्हारे चरनन के पुन्न प्रताप से। इसीलिए, हमने देखा कि कल पुर्नमासी भी है, सो भंगड़ पाधा को कथा के लिए कहलाय दिया, औ अभी थोड़ी देर में नन्हीं, सामने वालों की सुषमा, और कामिनी वगैरे लड़कियन को इधर-उधर चार घर भेजकर कहलाय देंगे, मन्नो बाबू, लल्ला बाबू के हियन कहलाय देंगे और तुम भी जिन्हें खिलाना-पिलाना होय—"

"हां ठीक रहेगा, कल दो-चार साहित्यिक मित्रों को, अपने हजामत अली को और बाकर मिर्जा और एकआध कोई अफसर मित्रों में से भी इस बार बुला लूंगा। लेकिन हमारा खान-पान भारतीय न होकर इंटरनेशनल होगा, समझीं। साठ-सत्तर रुपये खरच सकती हो तो इन सबको बुलाऊं।"

"बुलालो। उमेशो से भी कह दूंगी कि अपने दोस्तों को बुलाले। सौ-सवा-सौ हद डेढ़ सौ तक कल के दिन खरच कर दूंगी।"

"ऐ शाबाश। ये श्रीमती मायारानी बोल रही हैं या कलक्टर की महतारी ?'

माया हल्की लाज भरी गुमान में मुस्का के बोलीं : "हां कलक्टर की महतारी तो अब हम हुइयै गए, बाकी महतारी हम सब की हैं—चाहे कलक्टर होय, हेड-किलर्क होय और चाहे···" माया रुक गईं, सुन्दर इबारत मिटाई गई स्लेट के समान चेहरा निर्भाव हो गया। माया-मुखदपूर्ण में वही निर्भावना मैंने अपने अन्दर

भी देखी—देर से एक रजोगुणी मदभरी आनन्द-लहरी हमारे मनों में, मुखों पर छा रही थी वह माया की बात से सहसा पर्दे में छिप गई—कलक्टर की मां से शिश्नजीवी भवानी की मां तक का भाव-फैलाव हो गया। भवानी की स्मृति के स्पर्शमात्र से हमारे मन की स्लेटें साफ हो गईं। रजोगुण से उन्नत मन को तमस के आभास ने नीचा दिखाने का जतन किया, लेकिन हमारे मनों के किसी भीतरी हठ ने अपनी लाज-उदासी भरी स्थिति को उभरने से रोक लिया। माया की जो मनो-छवि मेरी दृष्टि में समाई थी, वह अभिन्न रूप से मेरी भी थी। कैसे होता है ये मनोयोग ? क्या होता है ये मन ?

नन्हीं बात को अपने मन की खीझ-खिसियान में वैसे ही घसीट ले गई, बोली : "तो आप सिर्फ अपने बेटों की ही मां हैं माताजी ···"

"अरे नहीं री ! तू तो पगली है। जब ब्या होगा, बाल बच्चों की मां बनेगी—

"नहीं-नहीं, मैं अभी इसे ब्या-ब्या के चक्कर में न डालूंगा। ये मेरी बेटी थोड़े ही है, बेटा है मेरा। मेरी इच्छा है यह डाक्टरी पढ़े और इंग्लैण्ड- अमेरिका से ऊंची डिगरियां लेकर आये और प्रैक्टिस करे। अरे दस-बारह बरसों में ही चारों तरफ डाक्टर मेहरोत्रा—डा० कुमारी वरुणा मेहरोत्रा के नाम की धूम होगी, देख लेना तुम्हारे सब लड़कों से अधिक लाखों कमाएगी, मेरी नन्हीं। क्यों न बिटिया ?" मेरे मन ने उचित परिस्थिति देखकर नन्हीं के सम्बन्ध में अपनी नयी योजना बातों ही बातों में प्रस्तुत कर दी। माया को देखा, उनका गम्भीर चेहरा मुझे अपने प्रस्तुत मन के प्रतिकूल लगा; नन्हीं को देखा, उसके चेहरे पर मेरी बात से प्रेरित उमंग अपना रंग चढ़ा रही थी, वह हुलसकर बोली : "हां पिता जी, मैं बनूंगी तो कुछ अवश्य, पर डाक्टर बनूंगी या साइंटिस्ट, प्रोफेसर, ये आपको सोचकर बताऊंगी··· लेकिन ये आपने अच्छा किया पिताजी कि मेरी शादी की बात माताजी के सामने ही केंसिल कर दी।"

"अच्छा, अब रहने दे। ये बातें तेरे कहने-सोचने की नहीं हैं—"

"क्यों नहीं हैं। मेरे पिता जी से पूछिए—क्यों न पिताजी ?"

"तुमरे पिताजी ने तो सदा दुनिया से अपनी मत अलग रक्खी हैगी। उसइ के फेर मै मेरा छुटकू आज भटक गया।" माया ने आक्रोश से झनझनाते स्वर में कहा। इन्होंने इस तरह मेरा विद्रोह बहुत ही कम किया है ? कहकर वे ठिठकीं, फिर एकाएक भण्डार घर में चली गईं। मैं नीचे उतर आया, बैठके में आ गया।

बैठके का छोटा-सा कमरा और उसके आगे चहारदिवारी से घिरी हुई मेरी छोटी-बगिया ऊपर से लौटकर आने पर ऐसी लगी कि मानो जान में जान आई हो। नन्हीं का ब्याह न करके उसे डाक्टर बनाना माया को पसन्द नहीं। शायद उनके मन को यह ठेस पहुंची कि पहले मैंने उनसे इस सम्बन्ध में कुछ भी कहे-सुने बिना सीधे वरुणा के मन में ही स्वतन्त्र जीवनवाले प्रस्ताव की प्रेरणा क्यों भरनी शुरू कर दी। माया मुझसे सचमुच तप गई हैं। भवानी के प्रेम-विवाह के सम्बन्ध में मेरा इतना ही अपराध है कि मैंने उसे एम० ए० की परीक्षा देने के बाद प्रेम-विवाह करने की सलाह दी थी। मैंने माया के सामने ही उसे समझाते हुए कहा था : "मैं तेरे फर्स्टक्लास एम० ए० पास करने में स्वाभाविक रूप से अधिक दिल-चस्पी रखता हूं। अपनी जीविका का साधन सिद्ध कर लो. फिर मौज से विवाह करो। मैं वचन देता हूं कि तब तुम्हारे विवाह-समारोह में स्वयं सम्मिलित होऊंगा और शहर के बड़े-बड़े लोग भी आएंगे।" उसने बाद में खुद मुझसे भी छिपाकर

चुपचाप विवाह रचा लिया……इसमें भला मेरा क्या अपराध है ? मैंने भवानी को भी गलत उकसावा नहीं दिया और न नन्हीं को ही दे रहा हूं। माया नन्हीं की शादी पर जोर देती हैं; नन्हीं जैसी सुन्दर लड़की स्वतन्त्र जीवन में भवानी की ही बहन साबित होगी। उन्हें लड़की की बदनामी लड़के से भी अधिक खलेगी, और इसी आशंका से वह उसे व्याहकर दूसरों के सिपुर्द कर देने की उतावली में हैं। कुछ भी हो, आज खुशी के दिन माया नाराज हो गयीं। क्या किया जाय, हमारे जीवन में परिस्थितियों के संयोग ही कुछ ऐसे बैठे हैं कि एक बेटे की यशोगाथा के साथ-साथ दूसरे बेटे की कलंक-गाथा अमृत और विष के समान प्राणों में घुलती है। हम इस समय सौभाग्यशाली हैं, किन्तु अभागे भी हैं।…लेकिन ये भाग्य आखिर है क्या ? क्या सचमुच विधाता का विधान नाम की कोई वस्तु है ?

मेरा एक दुर्भाग्य यह भी है कि भाग्य, पुनर्जन्म, धर्म, दर्शन आदि विषयों पर कभी गम्भीरतापूर्वक सोच ही नहीं पाया। लोग माया और ब्रह्म और मेंटाफिज़िक्स आदि की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, पर इनमें से एक भी बात मेरे पल्ले नहीं पड़ती। बचपन में हनुमानजी की आरती, रामायण आदि के संस्कार पड़े थे। वो अब भी मन के सूनेपन में या पीड़ादग्ध क्षणों में कभी-कभी किसी अदृश्य शक्ति की उपस्थिति का ठीक उसी तरह से भ्रम या आभास करा जाते हैं, जैसा कि बाज-बाज उजाड़ महल-हवेली के सूने खण्डहरों में घूमते हुए अक्सर हो जाया करता है। मेरी किशोरावस्था, सारी नौजवानी और जवानी विद्रोह में ही आस्था रखकर बीती है। मुझे अभी तक अपने सुख-दुख में कभी ईश्वर या भाग्य के सहारे की गम्भीर आवश्यकता ही नहीं पड़ी। मुझे दैव या दैवभेदी दर्शन धर्म से न तो प्रेम है, न नफरत…लेकिन आजाद भारत में ये बारह-तेरह वर्ष बिता लेने के बाद अपने अवसाद के गहरी घुटन भरे क्षणों में ऊबकर अक्सर जी यह चाहता है कि अकेलेपन में सहारे के लिए मैं भी अशरण-शरण दीनबन्धु जगन्नियन्ता के अस्तित्व को सादर स्वीकार कर लूं।…पर ये चाहने से होता ही क्या है, दर्शन और ब्रह्म का कोई ओर-छोर ही मेरे पल्ले नहीं पड़ता।

मेरे बचपन से लेकर सन् बयालीस तक भारत जुझारू भारत था। ये तो 42 में हम लोग जेल क्या गए कि हमारा सारा नैतिक बल और सत्य के लिए हमारा साहस-संगठन और कर्मशूरता ही अंग्रेजों के पहले 'भारत छोड़ो' नारे को मानकर चली गई। आजादी के बाद आया फूट, असंगठन, विलास, व्यभिचार, लूट, डाके, खून और काले बाजार का जमाना। ऊंह, होगा। छोड़ूं इस शिकायती चर्के को। कौन अपना दिमाग खराब करे। अपने उपन्यास की बात सोचूं…। रमेश और रानी का प्रेम-नाता जुड़ चुका। रमेश की आर्थिक पारिवारिक स्थिति का आवश्यक परिचय भी दिया जा चुका। अब उपन्यास की हीरोइन 'रानी' का पारिवारिक वातावरण सामने आना चाहिए। रानी ठाकुर है…… अभी कुछ ही दिनों पहले मुझे अपने स्कूल-जीवन के एक सहपाठी मित्र कुंवर बच्चूसिंह मिले थे। उनके पिता पहले पुलिस दारोगा थे, बाद में कोतवाल तक बन गए थे। बच्चूसिंह के बड़े रुआब थे। स्कूल में हास्टलवार्डेन मास्टर शंभूसहाय की दूसरी बार की जवान पत्नी को एक दिन दोपहर में, वार्डेन के बंगले में घुसकर दबोच लिया था। उसके दो-तीन 'मुसाहब' मित्र बाकायदा बंगले के आसपास पहरा दे रहे थे। फिर यह बात शायद तमाम लड़कों और मास्टरों में भी फैल गई थी। बच्चूसिंह और उसके साथी रात-रात भर होस्टल से गायब रहकर ऐश किया करते थे। मैंने बच्चूसिंह

का शाही जमाना देखा था और अब उसकी फटेहाल, सूखी पीली, दाढ़ी बढ़ी और चिन्ताओं में जड़ी सूरत भी देखी।······बड़ा दुखी और कटु था। कहता था, मेरे जिन भाईबन्द और रिश्तेदारों को मेरे बाप ने पुलिस में नौकरी दिखाई, वे ही अब ऊंचे-ऊंचे ओहदों पर पहुंचकर मुझसे रुख तक नहीं मिलाते। बेटे की चाह में दो शादियां कीं, लेकिन दोनों ही से उसे केवल छह कन्यारत्न ही प्राप्त हुए।···रानी के पिता की कल्पना में बच्चूसिंह के चरित्र को संशोधित-परिवर्धित रूप में मैंने अपना लिया। रानी के घरेलू वातावरण और पिता की कल्पना फौवारे के पानी की तरह उठकर उछलने लगी। लिखने के लिए मन में फुरफुरी उठने लगी। मेरी मेज-कुरसी अब मेरे लिए शान्त रम्य तपोवन के समान है, जिसमें बैठते ही मन हर विघ्न-बाधा से मुक्त होकर, अपनी कल्पना और अनुभव के ताने-बाने से मगन होकर नयी सृष्टि करने लगता है। लिखने का काम, मेरे लिए साक्षात् अशरण-शरण, निर्बल के बल राम जैसा ही है। मेज पर बैठ गया। अपने उपन्यासवाली फाइल उठाई, पांच मिनट सरसरी नजर से पिछले आठ-नौ दिनों के श्रमस्वरूप पांच परिच्छेदों को देखता रहा···सहसा एक सूझ की बिजली सी कौंध गई। बरसों पहले कलकत्ते में देखे हुए एक लालाजी ध्यान में आए, अपनी गली के बाद वाले तिरमुहानी बाजार में 'लेडी डाक्टर मिसेज···नर्स एण्ड मिडवाइफ' का साइनबोर्ड नाच गया। स्वयं लेडी डाक्टर-नर्स मिडवाइफ श्रीमतीजी की सूरत और सीरत भी मेरे ख्यालों में चमक उठी। नए पृष्ठ पर बीच में अध्याय छः लिखा। एक विचार मन में व्यवधान सा उठा—उपन्यास का नाम तो अभी रक्खा ही नहीं—ओह, ये नकली और ऊपरी पचड़े। मेरे सामने रानी का पिता कुंअर बच्चूसिंह—नहीं रद्धूसिंह अपने मकान और मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के साथ सामने खड़ा है।···

एक बार तो मैं मेज पर जम गया। तेजी से लिखना भी आरंभ कर दिया। दस-बारह पंक्तियां लिखता चला—एकाएक लगा, यह तो बच्चूसिंह की छवि है, रद्धूसिंह की नहीं। मेरा पात्र रद्धूसिंह अब मेरे मन में अपनी स्वतन्त्रता के लिए हुल्लड़ मचाने लगा था। मुझे लगा कि मैं रद्धूसिंह को जिस प्रकार अपने सहपाठी बच्चूसिंह की फोटोग्राफ कापी बना रहा हूं, यह जल्दबाजी आगे चलकर मेरे इस पात्र को कहीं बांध देगी। समाज में एक नमूने के अनेक चरित्र होते हैं, उनकी कुछ झलकियां एक साथ मिलाकर देखने से एक नया पात्र ही सामने आ खड़ा होता है। सचमुच आ खड़ा होता है। मेरा पात्र कंवर रद्धूसिंह इस समय हूबहू मेरी अन्तर्दृष्टि के सामने खड़ा है।···ये 'विज़न'—ये-ये सन्दर्शन—छाया—अपच्छाया – आभास इन तमाम पढ़े-लिखे शब्दों के अर्थस्वरूप मेरा कल्पित दृश्य कभी-कभी इतना मांसल हो उठता है कि वस्तुजगत की चीज का आभास करा देता है।···मैं विश्वास कर सकता हूं कि वैदिक ऋषि मन्त्रद्रष्टा होते थे। खैर होगा, अब इस समय मूड उखड़ गया। घुटन मालूम दे रही है। कहीं बाहर डोल आऊं।···

कल फिर लिख ही न सका। मेरा रद्धूसिंह जिस लाला और मिडवाइफ के पड़ोस में स्थित हो गया था, वह स्थिति मुझसे उसका चरित्र झलकने से पहले उसकी पारिवारिक स्थिति की भी मांग कर रही थी। उपन्यास का पात्र मेरी कल्पना की सृष्टि भले ही हो, पर मेरे बाप का गुलाम तो नहीं। सृष्टि अपने ही नियम से चलती है। रद्धूसिंह के मानस में प्रवेश करने के लिए जब तक उसके

बाह्य जगत् के अन्तरंग यथार्थ को न देखूंगा, तब तक उसके मन का यथार्थ मुझे क्योंकर मिल सकेगा? अपना-अपना तरीका है। मैं यथार्थ की गति स्थूल से सूक्ष्म मानकर चलता हूं—मेरी बिम्बध्वनियों या ध्वनिबिम्बों का अभिन्न अटूट तार अब तो अपनी बहिर्चेतना द्वारा बिना किसी प्रकार का श्रम कराए हुए ही मेरे पूर्व-श्रम के अर्जित फलस्वरूप संस्कार बनकर, बिम्बावलियों की स्वत: गति के साथ घुलमिलकर एक हो गया है। यथार्थ के स्थूल से सूक्ष्म नहीं खोता और इस सूक्ष्म से फिर एक नये यथार्थ की स्थूल अनुभूति तक कभी-न-कभी होकर ही रहती है। एक चक्कर है—चक्करदार सीढ़ियां—पता नहीं लगता, गति ऊपर होती है या नीचे, दाएं होती है या बाएं; पर गतिचक्र अवश्य है।

□

दोपहर। उहूं···। आलस है। लिखने, सोचने, कुछ भी करने को जी नहीं चाहता। बस सो जाऊं, यानी थोड़ी देर के लिए मर जाऊं। आज कढ़ी बनी और स्वादिष्ट इतनी थी कि भात अधिक खा गया। अफरन के कारण लिखने की इच्छा नहीं। वैसे भी चालीस की आयु के बाद मनुष्य को भोजनोपरान्त 'वाम कुक्षि' नींद लेनी चाहिए, आयुर्वेद का प्रमाण है—मैं तो इकसठ का हूं।—धत्! बेकार ही अपने इकसठ की आड़ ले रहा है। कल, परसों, नरसों इकसठ का नहीं था? नहीं लिखता तो न सही, बहाने क्यों बनाता है।

शाम। सोकर उठा। मेरे अनन्य मित्र बुलबुल-परिवार के नरों की मधुर संगीतमयी चहक से मेरी बगिया गूंज रही थी। बाहर आकर बैठ गया। बुलबुल मुझसे इतने हिलमिल गए हैं कि मेरी गोद में, कन्धे पर, बांहों पर बेझिझक आ विराजते हैं। हरसिंगार के वृक्ष पर उनके घोंसले हैं। मेरे बगिया बनवाने के कुछ ही रोज़ बाद किसी का पालतू बुलबुल उड़कर वहां आ गया। कुछ दिनों बाद वह अपने एक साथी को लेकर वहां आया। दोनों फिर स्थायी रूप से वहीं रहने लगे इस समय उस जोड़े के अलावा पांच बुलबुल और हैं, जिनमें तीन नर हैं। फुट्टैल जोड़े का नर-पट्ठा ऐसी विरह-तड़प लेकर चहकता है कि मानो सरजनहार से न्याय मांग रहा हो। जब एक साथ चहकते हैं, तो मेरी यह छोटी सी बगिया नन्दन कानन बन जाती है। जब अवकाश मिलता है, तो इन्हें अपने हाथ से आटे की गोलियां चुगाता हूं।

मैं मगन मन अपनी बगिया में बुलबुल-परिवार से घिरा बैठा था, तभी गली में जाते हुए लड़कों की ज़ोर-ज़ोर से चलनेवाली बातों से मुझे यह अन्दाज़ मिला कि इण्टरमीडिएट का परीक्षाफल आज ही निकलनेवाला है।

एकाएक इच्छा हुई कि चौराहे पर जाकर लड़कों और उनके अभिभावकों के चेहरे देखने चाहिए। मन में विचार उठा कि दृश्य की और बातों की ताज़गी से मेरे उपन्यास का नया परिच्छेद अनुप्रेरित हो जाएगा। कुर्त्ता डाला और चौराहे पर पान खाने के बहाने चल पड़ा।

गली से बाहर निकलते ही तिरमुहानी बाज़ार के चौराहे से ही उत्सुक लड़कों के झुण्ड मिलने आरम्भ हो गए। रिज़ल्ट आ रहा है। रिज़ल्ट आ रहा है। 'नेशनल हेरल्ड' अखबार के फाटक पर सैकड़ों-हजारों का मजमा जुटा हुआ है—इसी प्रकार की बातें हो रही हैं। नेशनल हेरल्ड, नवजीवन और कौमी आवाज़ में काम करनेवाले लोगों से अपनी जान-पहचान के सूत्र निकालनेवाले लड़के अधिक जोश दिखला रहे हैं। कोई कह रहा है कि मैंने इतनों-इतनों के रोल नंबर अमुक-

अमुक को लिख दिए हैं, वो अभी देख के बतलाते ही होंगे। किसी को शिकायत है कि जब से वह नम्बर मिलाने की कोशिश कर रहे हैं, तब से टेलीफोन हर बार 'इंगेग्ड' की 'कं कूं' से ही उन्हें बोर कर रहा है। हर चेहरे पर घबराहट, बौखलाहट और परेशानी अंकित है।

ये हाईस्कूल और इण्टरमीडिएट के परीक्षार्थियों की भीड़ मेरे देखते ही देखते बढ़ी है। मेरे ज़माने में कुल जमा तीन-चार हज़ार लड़के इम्तहान में बैठा करते थे और अब लाखों का मजमा लगता है। शिक्षा कित्ती फैल गई है, यानी पढ़े-लिखे अशिक्षितों का हुजूम कितना बढ़ गया है। पर पढ़ाई वाकई निकम्मी है। अंग्रेज़ों ने अपने सेक्रेटेरियट के क्लर्क बनाने के लिए जिस ढर्रे को चालू किया था, वह आज़ाद भारत के नवयुवकों के लिए विनाशात्मक हो उठा। प्रतिवर्ष लाखों, निकम्मे गुलाम हम आज़ाद भारत में भी पैदा करते चले जा रहे हैं। दुहाई है हमारे पढ़े-लिखे नेताओं की। दुनिया के किसी भी पिछड़े-से-पिछड़े देश के नेताओं में शायद ही इतने विचारशून्य राजनीतिक गुटबाज़ मिलें। इस संकीर्ण स्वार्थ भरी दम्भ भरी गुटबाजियों में पड़कर पढ़ा-लिखा और चतुर-भोला सामान्य सभ्य सुप्रतिष्ठित जन समझ से नासमझी की ओर आंखें मीचे बढ़ा जा रहा है। उसका वेद है : "ज्योति से तम में, सद् से असद् में, अमृतत्व से मृत्यु में ले चलो!" अपनी वैचारिक तल्लीनता में मेरे मन से बाहरी दुनिया का, चलते-फिरते देखते-सुनते हुए भी, भान बिसर गया। परीक्षाफल की उतावली में भागे जाते एक नवयुवक ने मुझ नव-वृद्ध को अनचेता धक्का दे दिया। मैं सावधान होकर चलने लगा। सहसा मेरी नज़र उन दो लड़कों पर पड़ी, जो मुझे अपने उपन्यास के 'रमेश' और 'लच्छू' की कल्पना देने के लिए शुरू-शुरू मे आलम्बन बने थे। मैं उन लड़कों को तनिक भी नहीं जानता, पर उस दिन बरात निकलते समय चूंकि मेरे पास ही खड़े थे, काफी देर तक सूरतें देखी थीं और प्रेरणा भी पाई थी, इसीलिए उन्हें इस समय देखकर मुझे बड़ी ही खुशी हुई। तुरत खयाल आया कि रमेश रानी और अपनी बहिन के रिज़ल्ट की उत्सुकता में आया है। इस खयाल से ही मेरा मन फुरफुरा उठा; तसवीरें सधने लगीं। मैं कल्पना करने लगा कि रानी के पास होने पर रमेश क्योंकर उसे बधाई देने पहुंचेगा। विचार मन में घूमने लगा; कल्पनाएं मुझे बेहोश बनाने लगीं; मैं घर लौट आया। रास्ते भर सोचता रहा, नया दृश्य रिज़ल्ट आने की प्रतीक्षा में शुरू करूं या रानी बाला के पैतृक इतिहास से? अन्तिम क्षण तक मन इस अनिश्चय में ही रहा, लेकिन लिखना आरम्भ करते ही उपन्यास का छठा अध्याय शायद मेरे अवचेतन मन की सुनिश्चत योजना के अनुसार कागज़ पर अबाध गति से अवतरित होने लगा।

रानी बाला के बाबा शहर कोतवाल थे। अंगरेजी राज में ठाकुर रघुवर सिंह ने अपनी नमकहलाली के लिए सरकार में बड़ा नाम पाया था। उन्होंने डाकू पकड़े, क्रान्तिकारी पकड़े, कांग्रेसी आन्दोलनों में बेदर्दी से लाठियां, गोलियां बरसाने के लिए सरकार में नाम-इनाम भी पाए। रिश्तेदारों को पुलिस में नौकरियां दिल-वाईं। हजारों रुपए रिश्वत में पैदा किए। चार-चार घोड़े, मोटर, एक रण्डी,

एक रखैल रक्खी, अपनी तीन-तीन गृहस्थियों के लिए मकान, नौकर-चाकर सब-कुछ अलग-अलग रक्खे। बड़े ठाठ किए। रानीबाला के पिता रद्धू सिंह अपने मां-बाप के इकलौते बेटे होने के कारण बड़े लाड़-दुलार में पलकर बिगड़ गए, किसी लायक न बन सके। बाप ने लारियां खरीदकर इन्हें धन्धे में डाला। वह भी न सम्हाल सके। बाप के मरने के बाद कई धन्धे किए। सबमें रुपया बिगड़ा। बुरे दिन आए। रानी की मां बच्चा होने में मर गईं, बच्चा भी मर गया। ठाकुर रघुवरसिंह के मरने के बाद आठ-दस बरस में ही कुंवर रद्धू सिंह ने मकान बेचा, बाग बेचे, गहने बेचे, फिर जब इज्जत सम्हाले न सम्हली, तो सीतापुर छोड़कर लखनऊ आ बसे। यहां आकर एक बिसाताखाने की छोटी दूकान खोली। चल निकली। जीवन में नया उत्साह आया। यथाशक्ति धूमधाम से रानी का ब्याह किया, मगर साल भर के भीतर ही वह विधवा हो गई। मां को पोते का मुंह देखने की बड़ी हौंस थी, सो उनके दबाव में आकर दूसरा ब्याह भी कर लिया। ब्याह में आमंत्रित होकर रिश्ते का एक भतीजा आया था। उसके पिता हाल ही में मरे थे और माया छोड़ गए थे। रद्धू सिंह ने भतीजे को अपनी बातों के शीशे में उतारा और दस हजार रुपयों की एवज़ में साझेदार बनाया। बड़ी दूकान खोली। बड़ी मेहनत की। दूकान चल निकली। फिर गुलछर्रे उड़ने लगे। रण्डी-शराब फिर से शुरू हुई। मगर भतीजा भी कच्चा न था, धीरे-धीरे काम सीखकर इनका चचा बनने लगा। डेढ़ बरस हुआ, उसने इन्हें साझेदारी से निकाल दिया। अन्तिम हिसाब-किताब में इनके नाम इतनी रकमें चढ़ी हुई निकलीं कि कुल जमा पांच हज़ार रुपए ही इन्हें मिले। रद्धू सिंह भतीजे को सब जगह कलंकित करते फिरे और फिर मूषक के मूषक बन गए। महंगाई की बाढ़ में ज़िन्दगी के थपेड़े खाते हुए छह महीने पहले खर्चे घटाने की नीयत से उस घर की दूसरी मंजिल में किरायेदार बनकर आ गए हैं। रुपया पांच हज़ार से क्रमशः चुकते-चुकते अब कुल जमा तीन सौ ही बच रहा है। रद्धू बाबू दिनोंदिन चिड़चिड़े होते जा रहे हैं। घर में घुसते हैं तो डर एक थरथर कांप उठता है। रानी की दादी ऊपर महराजिन के घर चली जाती हैं, उसकी गर्भवती सौतेली मां का कलेजा दहलने लगता है और हुल्लड करनेवाली दोनों छोटी सौतेली बहनें रीतू, सीतू ऐसी दुबक जाती हैं, जैसे बिल्ली को देखकर चुहियां। केवल रानी के प्रति रद्धू सिंह सदय हैं, वही उनके सामने आती है।

आज भी प्लास्टिक प्रॉडक्ट्स लिमिटेड की एजेंसी लेने के लिए रायबहादुर मेवालाल की व्यक्तिगत जमानतें दिलाने, तथा दूसरे निष्फल प्रयत्नों में अपना सारा दिन गंवाकर रद्धू सिंह जब घर पहुंचे, तो बेहद उखड़े हुए थे। स्व० पिताजी के हरदोई के पुराने साथियों में से एक रायबहादुर मेवालाल आजकल यहीं रहते हैं। 'रायबहादुर मेवालाल एण्ड सन्स' के नाम से उनका लोहे का भारी कारोबार है। तीन-चार रोज़ पहले राधा-रमण जी के ठाकुरद्वारे में स्वामी समन्वयानन्द जी का प्रवचन हुआ था। वो उन्हीं के साथ ठाकुरद्वारे में आए थे। रद्धू बाबू घाघ रायबहादुर को अपने घाट न उतार सके। उसके बाद भी किसी नए धन्धे की स्कीम बनाकर रुपया लगानेवाले साझीदार की टोह में बाकी दिन इधर से उधर चक्कर मारते रहे, अपनी निराशाओं पर वे मन ही मन किटकिटा रहे थे। इधर घर में खुशी छायी हुई थी। अम्मां, पत्नी, रानी-रीतू-सीतू सभी दालान में बैठी हुई थीं। अम्मा ऊपर वाली महराजिन से ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रही थीं।

सीढ़ियां चढ़ते हुए रद्धू सिंह ने महराजिन की आवाज़ सुनी : "फस्ट आई रानी, वाह ! चलौ भाई हमैं बड़ी खुशी भयी।" उदासी के घटाटोप आकाश पर खुशी विजली सी तड़पी-चमकी। वहीं खड़े हो गए। फिर अम्मा की आवाज आई : "अब भाई चाहे पोता कहौ चाहे पोती कहौ, हमरे कुनबा मां तौ रानी ही पहले-पहल एफे पास किहिन और उहौ फश्ट नम्बर से। जौ इनके बाबा आज होते तो मारे खुशी के नाच और जाफत जानै का-का कर डालते। उहौ अपने आठ काका-पित्ती के भाइन मां पहले इंट्रेंस पास किहिन रहैं।"

रद्धू सिंह अपने कोतवाल बाप की तरह खुशी की रौब से साधे, जीने चढ़ने लगे और दरवाज़े पर आते ही बोले : "अम्मा, सन्दूकची में से सवा पांच रुपै निकाल के देव। हनुमान जी को लड्डू चढ़ाऊंगा।"

रद्धू सिंह के आने से अम्मा की बूढ़ी छातियों में मानो दूध उमड़ आया। पति की स्मृति, पोती की सफलता—करुणा और आनंद का मिश्र भाव पुत्र-प्रेम के रूप में उमड़ा, पर सवा पांच रुपए की मांग से उमंग की दौड़ में हल्की सी ठोकर भी महसूस हुई। 'सवा पाँच रुपैया बहुत होत हैं, पर चुन्नू राजा का इत्ती बिरिया को समुझावै। सैंकड़न-हज़ारन यही हाथन से खरच किहिन है।' इस भाव का आशय मन में विचरित हुआ और उसकी सुरसुराहट से वाणी फूट पड़ी : "वह्, ई ताली लेव बेटा। निकाल देव। आजु बड़े दिनन के बाद भगवान खुशहाली का मौका दिहिन हैं। बस आजै से अच्छे दिनन का महूरत लागिगा। ई के बाद अब हम पोता का मुंह देखब औ चुन्नू राजा का काम-काजौ सुरू हुइ जाई।"

चुन्नू राजा—कुंवर रद्धू सिंह—इस समय हठपूर्वक सन्तोष-मग्न थे। रानी को पास बुलाकर उन्होंने अपने कलेजे से लगा लिया और देर तक उसके सिर पर हाथ फेरते रहे—उसकी मां की याद में, पैसे के अभाव में अपने मन के सारे हौसले शान्त स्नेह में लय करके हाथ फेरते रहे।

रीतू-सीतू भी वहुत दिनों बाद अपने पिता को प्रसन्न पाकर अपना लाड़ का हक पाने के लिए होड़ में आकर बाप के दोनों ओर चिपटकर खड़ी हो गईं। पितृसत्ताक संस्कारों का धनी गृहस्वामी उस क्षण सम्पूर्ण रूप से अपनी दरिद्रता दीनता के हीन भावों से मुक्त था।

गर्भवती पत्नी सुमित्रो सास से ताली लेकर रुपये निकालने गई। नोटों की तीन-चार गड्डियां अब सन्दूकची में एक कोने में बच रही थीं, कहां एक बार यह नोटों की गड्डियों से भर रही थी। मन में कचोट खाई : 'सवा पांच रुपै का परसाद बहुत है, सवा पांच आने का चढ़ाय देते। पर कहै को ? कितनौ कहौ, हमरे ऊपर सौतेलेपन का कलंक आय जायी। अरे होई, भगवान देहैं। हमका का. कमावैवाला आप चिन्ता करी।' मन में विचारों के उलटफेर के साथ-साथ नोटों की गड्डी से एक दस का नोट निकालकर सन्दूकची में ताला लगाकर काठवाले बक्से की तह में यथावत रक्खा और धीमी चाल से पति के सामने उस समय पहुंचीं, जब वे अपनी तीनों लड़कियों से घिरे आनन्दमग्न थे। पति के चेहरे ने पत्नी के कलेजे में तरावट कर दी। नोट ढ़ाते बहुए अब उसके हाथों में तनिक भी संकोच न आया।

सीढ़ी पर रमेश की आवाज आई : 'रानी।" रानी को बिजली का करेन्ट छू गया। उद्दाम प्रसन्नता चेहरे पर छलक आई। दरवाजे की ओर दौड़ी। गोपनीय आह्लाद-दृष्टि के धनुष पर तीर-सा चढ़कर छूटा और रमेश के नयन-प्राणों

को बींध गया। दूसरे ही क्षण उसका होश संभल गया, जोश की गंगा को बनावटी नहर से बहाकर ऊंचे स्वर में बोला : "शाबाश रानी। तुमने तो कमाल कर दिया फर्स्ट डिवीज़न लाकर।"

रानी ने अपने पिता की ओर आंखें उठाकर फिर नीची कर लीं, अधपलकियां उठाईं फिर झुक गईं; फिर मुंह से बोल फूटे, "मन्नो, मेरी क्लासफेलो के भाई हैं, पुत्ती महराज के लड़के। आओ राजेश, वहां क्यों खड़े हो? मन्नो भी तो पास हो गई।"

रमेश अपने छोटे भाई राजेश को अपने मन की आड़ बनाकर लाया था, वही रानी के मन का सहारा भी बना। कुंवर रद्धू सिंह ने भी आवभगत दिखलाई। बातें होने लगीं : "मन्नो थर्ड डिवीजन पास हुई, उसकी जनरल इंग्लिश और होम-साइंस शुरू से ही वीक थी। सरोज शर्मा को भी थर्ड ही मिला, हालांकि उसका आल राउण्ड सेकिण्ड क्लास कैरियर रहा। बेचारी बड़ी रो रही होगी। कल उसके यहां जाऊंगी। शर्मिष्ठा ने सेकिण्ड क्लास अच्छा पाया। कल उसके यहां भी जाऊंगी। और मन्नो को आप तो चिट्ठी लिखेंगे ही, मैं भी लिखकर भेज दूंगी आपके पास, उसी लिफाफे में पोस्ट कर दीजिएगा। राजू भैया, तुम कल सबेरे आके मुझसे चिट्ठी ले जाना।"

"राजू क्यों, तुम्हीं आके दे जाना। अम्मा तुम्हें कई बार याद कर चुकी हैं।" रानी से इतना कहकर रमेश ने उसके पिता और दादी की ओर मुंह उठाकर पूरी सावधानी से बेलौस भाव साधते हुए कहा : "हमारी मन्नो की शादी में इन्होंने ऐसा काम किया, ऐसा काम किया कि मेरी मां और सब लोग अब तक याद करते हैं। रानी, तुमने अपने भविष्य का क्या प्लान बनाया? बी० ए० ज्वाइन करोगी या सी० टी०?"

रानी चुप। रद्धू बाबू के आनन्द पर यथार्थ के मच्छर ने डंक मारा और भनभनाने लगा। वे उठने लगे, बोले : "अम्मा, मैं हनुमानजी के दर्शन कर आऊं, आधे घण्टे में आता हूं फिर खाके कीर्तन में जाऊंगा।"

रद्धू बाबू उठ खड़े हुए। रमेश बैठे ही बैठे उनकी ओर देखकर बोला : "मैं आप लोगों से भी यह प्रार्थना करने आया था कि रानी की आगे की पढ़ाई के सम्बन्ध में चिन्ता न करें। उन्हें पहले सी० टी० कराना आवश्यक है। पास कर लेंगी तो कहीं मास्टरी मिल जाएगी, बाद में बी० एड०, एम० एड० कुछ कर लेंगी तो इनके लिए कैरियर खुल जाएगा। ये, इंडिपेन्डेण्ट के एडिटर खन्ना साहब जो हैं न, नाम सुना होगा आपने—"

"हां हां, यही जो मेनरोड पर नुक्कड़ वाले मकान में रहते हैं।"

"जी हां, जी हां, वही। फर्स्ट क्लास लड़की के लिए सरकारी स्कॉलरशिप दिलवा देना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं। डॉ० आत्माराम उनके घर आते-जाते हैं। उनकी पत्नी भी बेचारी बड़ी दयालु हैं, गरीब स्त्रियों को सिलाई-बुनाई एम्ब्रायडरी वग़ैरा सिखाने के लिए फ्री स्कूल चलाती हैं। उन्हें काम दिलवाती हैं। उनके तो बस मुंह से बात निकलने की देर होगी और कोई सेठानी इनकी पढ़ाई में सहायक बनकर खड़ी हो जाएगी। मुझे पति-पत्नी दोनों ही मानते हैं, मेरी बात टाल नहीं सकते। रानी की पढ़ाई का जिम्मा पूरी तरह से मेरा है, आप लोग बस इन्हें पढ़ने की आज्ञा दे दें।"

रद्धू सिंह गद्‌गद हो गये, बोले : "भगवान आपका बड़ा कल्याण करेंगे।

आप ब्राह्मन हैं, मैं किस मुंह से असीसूं। इसकी पढ़ाई मैं भी जारी रखना चाहता हूं, पर यही था कि क्या कहूं। एक जमाना वो था जब तीन-चार लड़के हमारे घर से अपनी पढ़ाई का खर्चा पाते थे। समय की बलिहारी है।" कहकर रद्धू बाबू ने सांस भरी।

रमेश भी उठ खड़ा हुआ, बोला : "अच्छा तो फिर मैं चलता हूं—" निगाहें रानी की ओर उठीं। वह भी उसे ही देख रही थी। देखते रहने की चाहत को दोनों ने ही दबाया। रानी की नज़रें नीची हो गईं। उसके लाज भरे मादक मुखड़े को अपनी बात के जोर से ऊंचा उठाकर आंखें मिलाने की छिपी नीयत से कहा : "तो रानी, कल तुम आ रही हो न चिट्ठी ले के ? मैं अम्मा से कह दूं ?"

लेकिन रानी का सिर ऊंचा न उठा, बायें हाथ की उंगली पर आंचल का कोना लपेटते-खोलते हुए उसने धीरे से कहा : "हां।" जब ये लोग चले गए तो रानी एकबारगी मन से हल्की हुई। 'हाय राम, सबके सामने उन्हें देखना, उनसे बातें करना और अपना मन ठीक-ठिकाने रखना हूबहू आग की लपटों के संग नाचना है।'—लेकिन एक मन हल्का हुआ, दूसरा ललक-पुलक भरा ऐसा उमड़ा कि मां-दादी के सामने बैठते न बना। आंखों में नेह बरबस बरसा पड़ता था; होंठों पर मुस्कान खिली-खिली पड़ती थी, उससे रहा ही नहीं जाता। उठकर कमरे में भाग गई और गली की तरफ पड़ते आधे बन्द जंगलेदार किवाड़े से लगकर बैठ गई, खयालों में उड़ने लगी : 'हाय कैसी चालबाजी से आए। राजू को साथ लाए। कैसे बहाने से मुझे आगे पढ़ने के लिए इंस्ट्रक्शन दे गए। मैं पढ़ूंगी। जब वो जिम्मा लेते हैं तब क्या डर है ? मैं सी० टी० करके तो आजाद हो जाऊंगी। उधर वो भी एम० ए० कर लेंगे। हमें तब रोक कौन सकता है ? अब तो कितने ही प्रेम-विवाह होने लगे, विधवा-विवाह भी होने लगे। नाम को व्याह हुआ था मेरा। अब तो उस पति की सूरत भी याद नहीं आती। खुल के देखा ही कब ? बातें ही कब हुईं ? और तब उमर भी क्या थी मेरी, तेरहवां साल था। उंह अब पुरानी बातों में क्या धरा है ? मैंने तो जीवन में पहली बार इन्हीं को अपना माना। 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।'...फिर बन्द होठों इस गीत की धुन गुनगुना उठी। फिर अपने 'गिरिधर गोपाल' के ध्यान-सागर में डुबकी मारकर बैठ गई।

बाहर दालान में दादी के ऊंचे स्वर ने ध्यान भंग किया। वो चिल्ला रही थीं : "अरे तो कह काहे नाहीं देत्यू कि बाबू दरसन करै गये हैं, थोड़ी देर मां अई हैं।"

सीतू की आवाज आई : "कह तो दिया। वो कहते हैं कि तुमसे मिलेंगे। कहते हैं, सत्रोहनसिंह नाम है, तुम्हारे भतीजे हैं।"

रानी लपककर बाहर आई, दादी तब उठकर धीरे-धीरे दरवाजे की ओर जा रही थीं। रानी उनसे पहले वहां पहुंच गई, देखा कि सीढ़ियों पर कमीज-पतलूनधारी कोई बड़े रौबीले सिख सर्दार जी खड़े हैं। रानी सोचने लगी : 'ये कैसे हो सकते हैं दादी के भतीजे ?' तब तक दादी भी आ पहुंची। सर्दार जी नुमा आदमी ने उनके पैर छुए और कहा : "हमें पहचाना नहीं काकी ? हम हैं सत्रुघन, भैरोंसिह के—"

"अरे, आओ-आओ मोर पूत ! आज बड़ भाग जो तुम हमरे घर का रास्ता भूल पड़े। तुम्हार तो दाढ़ी-मूछें अस बाढ़ी हैं कि हम पहचानै न सके। अरे रानी,

जल्दी से दरी-वरी बिछाव बेटा। अपनी अम्मा से कह देओ सरबत बनावैं। जनती हौ, ई कौन हैं? ई सहर के—"

"ये सब अभी बच्चों को बताने की जरूरत नहीं काकी। तुमसे हमें अकेले में कुछ पूछना है।" शत्रुघनसिंह ने कहा।

"हां-हां, आओ, कमरा महियां चलौ। आजु ई फस्ट आई है तुमरी रानी एफे में, तौन चुन्नूराजा हनौमान जी का परसाद चढ़ावैं गए हैं।"

शत्रुघनसिंह ने रानी की ओर ताका, फिर जेब से पर्स निकाली, दस-दस के पांच नोट रानी की ओर बढ़ाकर कहा : "लो बेटो, मिठाई खाना।"

रानी को संकोच हुआ। शत्रुघनसिंह ने आगे बढ़कर वे नोट उसके हाथ में ठूंस दिए। इतने सारे नोट देखकर दादी का मन मोम हो गया, हरखकर बोलीं : 'लै लेव बिटिया। तुम्हारे कक्कू आंय। एकैं कुनबा आय हमार पंचन का।"

दादी और शत्रुघनसिंह कमरे में चले गए। दादी जमीन पर बैठीं, शत्रुघनसिंह कुरसी पर। बातें शुरू हुईं : "क्या बेढब जगह में रहने आए हैं चुन्नूराजा भी तुम सबको लेके। शहर में और कोई मकान नहीं मिला उन्हें?"

"का करैं बेटा। तुम्हरे काका साहेब क्यार जमाना तौ रहा नाहीं अब जनतै हौ—" काकी की बात काटकर शत्रुघनसिंह ने पूछा : "तीन किरायेदार हैं शायद इस मकान में?"

शरबत बनकर आ गया। शत्रुघनसिंह ने गिलास लेकर रानी से कहा : "जाओ बिटिया। तुम्हारे फादर आएं तो भीतर भेज देना।" रानी चली गई। उसकी दादी ने अपने भतीजे से झुककर पूछा : 'सत्रोहन, का कोनों तलासी गिरफदारी----"

"हूं। किसी से कहना मत काकी।"

"अरे राम भजो बेटा। अरे हम आहिन कुतवाल साहेब की घरैतिन दुइ-दुइ कुतवालन की काकी।—" शत्रुघनसिंह अपनी काकी की बात काटकर उनसे ऊपर वाली महराजिन, नीचे वाले बैजू लाला और आसपास के लोगों के हालहवाल पूछने लगे।

इस मकान के पीछे पुराने रईस सेठ भजगोविन्द दार की पुरानी सतखण्डी हवेली की ऊंची दीवारें हैं। हवेली की बाहरी दीवार से लगे हुए ये चारों घर भी दरअस्ल इसी हवेली से सम्बद्ध हैं। पहला बड़ा मकान मुनीम जी की कोठी कहलाता है और उससे कुछ छोटा छोटे मुनीमजी की कोठी कहलाता है। उसके बाद के दो मकान छोटे-छोटे हैं। ये दो घर गुमाश्तों के थे। ये मकान अब हवेली-वालों की मिल्कियत नहीं, बल्कि इन्हीं मूल ओहदेदारों के वंशजों की हैं। छोटे मुनीम की कोठी के बाद वाला छोटा घर अब लावारिस है। उसे दूसरे गुमाश्ते के वर्तमान वंशज लाला बैजनाथ ने हड़पने का प्रपंच फैला रक्खा है। छोटे मुनीम जी के एक वर्तमान वंशज से मुकदमेबाजी चल रही है। दोनों ही अपने को लावारिस गुमाश्ते का निकट सम्बन्धी और वारिस सिद्ध करने में लगे हैं। लाला बैजनाथ की उमर अब बासठ-तिरसठ साल की है। भगवान की दया से अब पिछली दो पीढ़ियों से बड़े लखपती सराफ हैं। दोनों लड़के काम सम्हालते हैं। आप पुरखों के इसी घर में नीचे वाले कमरे में रहते हैं। दिन में एक बार रोटी खाने के लिए घर जाते हैं, बाकी यहीं पड़े रहते हैं। बैजू लाला बड़े यारबाश आदमी हैं। इनकी दो ही लतें हैं। पतली तो ये कि महीने में एक या दो बार अपनी कोठी पर बड़े-

बड़े हाकिम-हुक्कामों, मंत्रियों की शानदार दावतें करते हैं। आप न पीते हैं, न गोश्त खाते हैं, पर अपने मेहमानों को कीमती से कीमती शराबें पिलाते हैं, मनपसन्द शाही खाने खिलाते हैं और मज़ेदार बातें करते हैं। इनकी दूसरी लत ताश है। कोई न होगा तो अकेले ही खेलेंगे, वरना यों तो सबेरे से रात तक मिलने-जुलने वाले अच्छे लोग, हिन्दू मुसलमान आया ही करते हैं, उनके साथ खेलते हैं। घर के एक दालान में दिनरात चाय-नाश्ता-शरबत का प्रबन्ध एक नौकर करता ही रहता है। खातिरदारी में लाला बैजनाथ दो-तीन हजार रुपया महीना फूंकते हैं।

इस घर की दूसरी मंजिल में तीन दालान और दो छोटे कमरे हैं। गली के रुख वाले कमरे में रद्धूसिंह का पलंग बिछा है, दो कुरसियां हैं। पुराने ज़माने का एक पीतल के फ्रेम का मटमैला शीशा टंगा है। बीच वाले दालान में रसोई होती है और पीछे वाले कमरे में गिरस्ती का रखना-ढंकना है, रानी के पढ़ने-लिखने का स्थान है। उसके आगेवाले दालान में अम्मा अपनी तीनों पोतियों को लेकर सोती हैं।

तीसरी मंजिल पर एक छोटा-सा हवादार कमरा और एक जालीदार सायवान पहले का था, पर अब ऊपर वाले किरायेदार कृपाराम शर्मा ने अपने खर्च और बैजू लाला की सहमति से लावारिस घर की दीवाल में नाली बनवाकर अपना अलग शौचालय और एक छोटा-सा कमरा भी बनवा लिया है। ऊपर वाले किरायेदार के सम्बन्ध में कुछ उंगली उठाने लायक बातें भी रद्धूसिंह की मां ने गिनाईं। एक तो यह कि घर-घर मीटर पढ़ने वाले बिजली कम्पनी के नौकर कृपाराम ने गैरजात की औरत से ब्याह किया है, जो पेशे से नर्स है और हमल गिराने की कमाई खाती हैं। औरतें छिप-छिपकर यहां भी आती हैं। नया कमरा उसी काम के लिए बनवाया है। दूसरे यह कि वो नर्स अपने मर्द की सच्ची नहीं। सात-आठ महीने से एक कोई बड़ा जमींदार उसका दोस्त बना है। उसी के खर्चे पर ये ठाठ बने हैं। कृपाराम पर तो जाने क्या जादू करवा दिया है कि उसकी अक्ल मारी गई है। उसको नौकर की तरह झिड़कती है और उसकी मां को कभी मजदूरनी-रसोईदारिन से बढ़कर मान नहीं दिया। ज़मींदार आठ-आठ दस-दस दिन तक यहां रह जाता है, पति और सास की नाकों पर दिया बालकर खुले-खजाने उसके साथ रहती है। ऊपरवाली महराजिन का जी जब कभी बहुत दुखता है, तो रद्धूसिंह की मां के आगे सब कुछ रो जाती हैं। परसों रात में वह ज़मींदार यहां आ गया है। एक कोई मरीज औरत भी है। जमींदार भी बीमार है। रात में डॉक्टर आया था, कई लोग आए थे। सबेरे महराजिन आग लेने आई थीं तो बताती थीं कि कुछ गड़बड़ है।

वह गड़बड़ी ही तो ठाकुर शत्रुघनसिंह डिप्टी सुपरिंटेण्डेण्ट पुलिस को आज अचानक इस जगह पर घसीट लाई है। उत्तरप्रदेश, राजस्थान और मध्यप्रदेश में अपने आतंक से जनमन को थर्रानेवाला कुख्यात डाकू बूटासिंह चार दिन पहले उत्तरप्रदेश और राजस्थान की सीमा के एक कस्बे में एक सेठ के घर डाका डालकर, सेठपुत्री को उड़ाकर लाते समय पुलिस से एक ज़बरदस्त मुठभेड़ में बुरी तरह घायल हो गया था, पर पकड़ाई में नहीं आया था। सेठ की लड़की भी नहीं छुड़ाई जा सकी थी। पुलिस अपनी इस हार पर खीझी हुई थी। जी तोड़ परिश्रम के बाद पुलिस के गोयन्दे यह पता लगाने में सफल हुए कि बूटासिंह लखनऊ में छिपा हुआ किसी बड़े सर्जन से इलाज करा रहा है। लखनऊ पुलिस ने सर्जनों पर कड़ी

निगरानी रखकर बूटासिंह के चिकित्सक डॉक्टर ब्रोकर का पता लगा लिया। पिछली रात को दो बजे, सुप्रसिद्ध गंजी खोपड़ी वाले अंग्रेजनुमा गोरे सर्जन डॉ० ब्रोकर का इस आठों पहर गुलजार रहनेवाले पुराने सराफे की सकरी सड़क में आना एकाएक छिपा न रह सका। डॉ० ब्रोकर तब से अब तक अपने घर नहीं लौटे थे। यह लखनऊ पुलिस की दूसरी चिन्ता थी। घर का पता भी पुलिस को अनुमान से ठीक हीलग गया। उस मकान के किरायेदारों में एक कुंवर रद्धूसिंह राठौर का नाम कुंवर शत्रुघनसिंह राठौर के दिमाग में अटक गया। उन्हें बुलवाने के लिए दो बार आदमी भेजा, पर वे न मिले। मूसाबाग से खबर आई कि उसके खण्डहरों के पास आज सुबह एक बरात आई है। उस क्षेत्र में किसी के भी घर से उसका सम्बन्ध नहीं जुड़ा। बराती कहते हैं कि गलत पता देकर उन्हें धोखा दिया गया है। मोटर बस साथ है, तीस आदमी हैं। राजस्थान पुलिस से वायरलेस सन्देश आया है कि बूटासिंह के दो कुख्यात लेफिटनेंट वक्का और जंगी पांडे अपने गिरोह के चुने हुए आदमियों के साथ कल रात आठ बजे ट्रेन पर बरात के भेस बनाकर मथुरा के लिए रवाना हुए थे। मथुरा स्टेशन पर किसी बरात के उतरने का पता न चल सका। लखनऊ पुलिस को रेडियो सन्देश दिया गया। बक्का और जंगी पांडे को पहचानने वाले दो सी० आई० डी० सब-इंस्पेक्टरों को राजस्थान पुलिस ने रवाना किया था। गिरोह के साथ ही जासूस भी लापता थे। मूसाबाग में ठहरी हुई बरात ने शत्रुघनसिंह का आनुमानिक चित्र पूरा कर दिया। उन्हें विश्वास हो गया कि बूटासिंह का ज़ख्म अब भी किसी प्रकार की चिन्ताजनक स्थिति में है, तभी सर्जन ब्रोकर को आजाद नहीं किया। उन्हें यह भी लगा कि सर्जन ब्रोकर को अपनी कैद में रखकर बक्का और जंगी पांडे अधिक दिन यहां बूटासिंह का इलाज कराते रहने की मूर्खता हरगिज न करेंगे। शत्रुघनसिंह की यह निश्चित धारणा बंध गई कि गिरोह बूटासिंह को आज ही यहां से कहीं बाहर निकाल ले जाने के लिए आया है। उसकी दशा शर्तिया चिन्ताजनक है। डॉ० ब्रोकर या तो बूटासिंह के वहां से चले जाने के बाद फौरन छोड़ दिए जाएंगे या फिर बूटासिंह की देखभाल के लिए सुरक्षा की दूसरी जगह तक साथ ले जाया जाएगा। सूर्यास्त होते न होते तक शत्रुघनसिंह रद्धूसिंह की बाट में चुपचाप बैठे न रह सके, स्वयं मौका देखकर मोर्चेबन्दी करने के लिए छिपकर यहां आए। इस घर के किरायेदार रद्धूसिह उनके सगे चाचा के लड़के ही हैं, यह धारणा भी यहां आकर पुष्ट हो गई। इससे उन्हें लगा कि तीन राज्यों के आतंकरूप दस हजार इनाम के इश्तहारी डाकू और उसके गिरोह को पकड़ने का सेहरा आज अवश्य ही उनके सिर बंधेगा।

रद्धूसिंह घर आए। नकली दाढ़ी लगे अपने चचेरे भाई को पहचान पाने के बाद वे मन ही मन मान से भर उठे। प्रसाद के लड्डू दिए। शत्रुघनसिंह ने संक्षेप में अपने आने का कारण बतलाकर आदेश दिया : "चुन्नूराजा, बहू-बच्चे और काकी आज रात यहां नहीं रहेंगी। बायें हाथ के दूसरे चौराहे पर मेरी काली गाड़ी खड़ी है। मेरा पी० ए० देवीलाल उसमें बैठा होगा। उसे बुला लाओ और औरतों को गाड़ी पर मेरे यहां भेज दो। मैं अब यहां से काम सिद्ध करके ही बाहर निकलूंगा।"

रानी बड़ी मुसीबत में पड़ गई। उसने दूसरे दिन रमेश के यहां पहुंचने का वचन दिया था। वे न जाने क्या सोचेंगे। कितना इन्तज़ार करेंगे मेरा।—रानी ने बड़े बहाने साधकर दादी से प्रस्ताव किया कि वह पुत्ती महाराज के घर चली जाएगी। आखिर मन्नो के ब्याह में भी तो वहां चार दिन रही थी। दादी राजी भी

हो गईं, पर उनकी हां पर कोतवाल साहब की ना पत्थर सी पड़ी : "नहीं, सब लोग मेरे घर जाएंगे।" शत्रुघनसिंह अपने खेल को गोपन रखने के लिए बेहद सतर्क थे।

लगभग घण्टे डेढ़ घण्टे के बाद ही रद्धूसिंह दस मजदूरों के सिर पर कच्ची रुई के बोरे लदवाकर आए। बोरे ऊपर जाने लगे। कृपाराम शर्मा भी संयोग से उसी समय घर में दाखिल हुए अपनी नई 'लम्ब्रेटा' मोटर साइकिल नीचे बंजू लाला के दालान में रखकर ऊपर जाने के लिए बढ़े, लेकिन मजदूरों से जीना घिरा होने के कारण उन्हें रुकना पड़ा। अन्तिम मजदूर के पीछे-पीछे ऊपर आए। रद्धूसिंह अपने दरवाजे पर खड़े हुए मजदूरों को कमरे के अन्दर बोरे रखने के आदेश दे रहे थे। उनके दरवाजे और अपनी सीढ़ियों के बीच की चौड़ी जगह में खड़े होकर कृपाराम ने जयरामजी की कही और बोरों का हवाल पूछा। रद्धूसिंह हंसकर बोले : "कच्ची रुई है शर्माजी। लखीमपुर मारकिट के लिए खरीदी है। क्या करें, बाल-बच्चों के पेट पालने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही पड़ता है। और आपके क्या हालचाल हैं? मोटर सइकिल तो बड़ी जोरदार खरीद डाली है आपने।"

"जी हां, मेरी वाइफ ने प्रेजेण्ट की है बेचारी ने अपनी मेहनत की कमाई के छब्बीस सौ रुपये मेरे लिए लम्ब्रेटा खरीदने में खरच कर दिए। मैंने लाख कहा कि अपने लिए कोई ज्वेलरी-वेलरी खरीद लो, मगर प्रेमा ने कहा कि मेरे तो रियल ज्वेल तुम्हीं हो।"

"हां साहब, बड़ी फेथफुल वाइफ हैं आपकी भी। आजकल क्या कोई बीमार है आपके यहां? कल रात में डॉ० ब्रोकर आए थे, इससे लगा कि कोई आपरेशन का केस है। और परसों रात भी कोई आया था। मैंने सोचा कि शायद आपके वो ज़मींदार फ्रेंड साहब ही आए होंगे।"

"जी हां, जी हां। बात ये है कि वो मेरे बड़े फास्ट फ्रेण्ड हैं। पहले रियासत ग्वालियर में बड़े जागीरदार थे। अब तराई में एक बड़ा फार्म खोल लिया है। करीब-करीब पांच लाख रुपै साल की नेट बचत होती है, मगर भोगनेवाला कोई नहीं। आप शादी नहीं करते। एक छोटा भाई था, वह भी मर गया। मुझसे कहते हैं, कृपाराम अब तो तुम और प्रेमा ही मेरे भाई-भयेहू हो। मेरे बाद भोगना। अभी तपिस्या करो, करम करो जिससे संयम आवे और तुम लोग पचास लाख की माया को पाकर पागल न हो जाओ। बड़े हाईक्लास विचारों के आदमी है। बेचारों को कारबंकिल हो गया है—"

"कारबंकिल? कहां पर?"

"जी जांघ-पीठ में पीठ में।"

"क्या दो-दो जगह कारबंकिल निकला है?"

"जी हां जी! ! (गड़बड़ाहट को गहरी निःश्वास में भरकर) केस सीरियस हो गया है। ईश्वर के अधीन है। अच्छा साहब, जै रामजी की।" कृपाराम चले गए। रद्धूसिंह ने दालान में दबकर खड़े मजदूरों से फिर जोर-जोर से बातें कीं। मजदूरों से मजदूरी पर खींचातानी और रार बढ़ने लगी। कृपाराम की नर्सपत्नी प्रेमा ऊपर से दौड़ती हुई आई : "रद्धू बाबू, ऊपर मेरी पेशेण्ट है, शोर मत कीजिए।" रद्धू बाबू ने झेंपकर : "आई एम वेरी सारी डॉक्टर साहब।" कहा प्रेमा जैसे आई थी, वैसे ही चली गई। बूटासिंह जैसे नामी डाकू की प्रेयसी के रूप में प्रेमा उन्हें एकदम नई-नई सी लग रही थी—"कट बड़ा मारू है, आंखें बड़ी गजब की हैं।"

अपनी कारगुजारियों की सफलता में डाकू प्रेयसी को पीठ पीछे रसीली नजरों से देखकर रद्धूसिंह का मन लपका – 'साली को दबोच लूं ।'––दरवाजे बन्द करके जब वे कमरे के अन्दर पहुंचे, तो शत्रुघनसिंह ने भी कृपाराम से होनेवाली बातचीत के लिए उन्हें शाबाशी दी। रद्धूसिंह का मान जागा, बोले : "आखिर कुंवर रघुवर सिंह डी०एस०पी० का बेटा हूं।" वह इस समय अपने-आपको शत्रुघनसिंह से बड़ा और अधिक योग्य समझ रहे थे। शत्रुघनसिंह ने उधर कोई ध्यान न दिया। पलंग के सिरहाने वाली आलमारी के निचले खाने से अपना छोटा 'मॅनपॅक' वायरलेस सेट रखवा रहे थे। रुई के बोरों से मजदूर बने-बने सिपाहियों ने अपनी बन्दूकें और वर्दियां भी निकाल ली थीं। दिखावटी बोरे एक कोने में रखे जा रहे थे। कुछ सिपाही वर्दियां पहनने में व्यस्त थे। छोटे से कमरे में बड़े अफसर की मौजूदगी और परिस्थिति की संगीनी से खामोश भीड़ कार्यव्यस्त चींटियों के हुजूम सी लग रही थी।

पुराने सर्राफा बाजार के दोनों नुक्कड़, सतखण्डी हवेली के दोनों ओर की गलियां, पीछेवाले नाले तक, इंच-इंच पर पुलिस का खुफिया जाल बिछा हुआ था। हथियारबन्द पुलिस के काफी दस्ते बुला लिये गये थे। उन्हें कहीं छिपा दिया गया था। शत्रुघनसिंह उनसे, कोतवाली से और मूसाबाग के आसपास डाकूदल की निगरानी के लिए स्थित पुलिस दल से वायरलेस पर बराबर सम्पर्क स्थापित कर रहे थे। रात में सवा दस बजे के लगभग मूसाबाग से सन्देश मिला की 'बराती' मोटर पर स्टार्ट हो गये। शत्रुघनसिंह ने हथियारबन्द दस्तों को सचेत रहने का आदेश दिया, लेकिन उनकी समझ में न आया कि इतनी जल्दी मूसाबाग से चल देने के पीछे डाकुओं का इरादा क्या है––सतर्कता से पीछा करने का आदेश दिया। बीस-पच्चीस मिनट बाद खबर मिली कि 'बरात' की मोटर मुसाहबगंज के एक घर में बरातियों को उतारकर चल दी है। "मकान पर नजर रक्खो और बस का पीछा करो।" पौने बारह बजे घर में तीन आदमी आये, दो साफे जोधपुरी पहने और एक काला हैटधारी लम्बा साहब, जिसका हुलिया डा० ब्रोकर का शुबहा दिलाता है। कमरे के अन्दर के सिपाही 'अटेंशन' की मुद्रा में खड़े हो गये। फिर समय बीतने लगा, पुलिस-दल मचान में बैठे शिकारियों जैसा शेर की प्रतीक्षा में सनसनी भरा, उकताहट भरा समय बिताने लगा। घड़ी की सुइयां बढ़ती रहीं। एक बजे मुसाहबगंज से सन्देश मिला कि पच्चीस आदमी पैदल घर से निकलकर दो-दो, चार-चार की टुकड़ियों में हुसैनाबाद मार्ग की ओर बढ़ रहे हैं। दस मिनट बाद दूसरा सन्देश आया, हरे रंग की एक कार पर पांच आदमी उसी तरफ रवाना हुए हैं। शत्रुघनसिंह ने आदेश दिया : "उस घर की तलाशी ली जाय, घरवालों को हिरासत में ले लिया जाय। सारा काम यथा-सम्भव बड़ी खामोशी से हो। वायरलेस की गाड़ी वहां से हटाकर रामगंज थाने के सामने खड़ी की जाय। वह बस कहां खड़ी की गई है, पता लगाओ।"

ढाई बजते न बजते तक हरी गाड़ी आकर दरवाजे पर खड़ी हो गई। शत्रुघनसिंह ने जंगले से झांककर नीचे देखा, चार आदमी उतरे, एक घर में घुसा, तीन दाहिनी ओर चले गये। मोटर घर के दरवाजे से जरा आगे बढ़ाकर खड़ी कर दी गई। शत्रुघनसिंह ने हथियारबन्द दस्तों को आगे बढ़ने का आदेश दिया। दस मिनट बाद एक लाश ले जानेवाली गाड़ी सवारियों से भरी हुई आई और बड़े मुनीम जी की कोठी के सामने खड़ी हो गई। शत्रुघनसिंह ने अपने

आदमियों को गाड़ियों पर घेरा डालने की हिदायत दी। रुई के दो बोरे कमरे से निकालकर दालान में रख आये। रद्धूसिंह रसोईवाले दालान से पानी के दोनों घड़े एक-एक करके इस दालान में ले आये। एक सिपाही ने रुई के बोरों पर पानी डालने के लिए घड़ा हाथ में उठाया ही था कि ऊपर के छज्जे से पहला शाट हुआ। रद्धूसिंह बाल-बाल बचे, कमरे में घुस गये। शत्रुघनसिंह के आदेश पर पुलिस ने अब खुल्लमखुल्ला हरी कार और लाश की गाड़ी पर धावा बोल दिया। गोलियां सनसनाने लगीं, भारी-भारी गाड़ियों के पहिये सड़क के दोनों ओर से रात के सन्नाटे को अपनी घड़घड़ाहट से मनहूस बनाने लगे। पड़ोस और आसपास की गलियों में घर-घर में जगार हो गई। गोलियां सावन की झड़ी सी बरस रही थीं। पुलिस ने हरी गाड़ी के ड्राइवर को जख्मी करके गाड़ी को अपने अधिकार में ले लिया। लाशवाली गाड़ी के डाकुओं में से उतरकर कुछ लोग गाड़ी की आड़ से गोलियां चला रहे थे, बाकी बन्दूकें दागते हुए उतरने का प्रयत्न कर रहे थे। पुलिस के दस्ते और गाड़ियां क्रमशः घेरे को तंग करती हुई आगे बढ़ रही थीं। तभी कृपाराम की छत से सड़क पर फायरिंग शुरू हुई। घर के अन्दर रद्धूसिंह के दालानों में, काठ के खंभों पर, छज्जे की लकड़ी पर गिलास भर-भरकर पेट्रोल और मिट्टी का तेल फेंका जा रहा था और प्रेमा जलती हुई मशालें एक के बाद एक तीनों तरफ बराबर फेंकती ही चली जा रही थी। इस मार से दो-तीन जगह आग लग गई। सिपाहियों ने ऊपर वाले छज्जे की तरफ बाढ़ें दागनी शुरू कीं, तीनों दालानों से मोर्चा साधा तब कहीं दो आदमी बोरों और बूटों से पीट-पीटकर आग बुझाने में सफल हो सके। कृपाराम की छत से नीचे बरसनेवाली गोलियां पुलिस को अपने बचाव के लिए पीछे हटने को मजबूर कर रही थीं और यही इस समय उचित न था। डाकू फिलहाल एक ही जगह सिमटे रहने के लिए मजबूर थे। शत्रुघनसिंह ने सोचा, ऊपर हैं ही कितने लोग, गोली-बारूद भी कितनी होगी, फिर भी ऊपर की मार नीचे का कार्यक्रम बिगाड़ सकती है। उन्होंने पुलिस रेडियो गाड़ी को आदेश दिया : "पीछे से चार आदमी किसी भी तरह सामने वाली किसी छत पर भेजो। घेरा टूटने न पाये। एक भी डाकू हमारी गिरफ्त से निकलने न पाये। मैं अब फाइनल एक्शन के लिए ऊपर जा रहा हूं।"

शत्रुघनसिंह ने दालान में निकलकर जोर से आदेश दिया : "फायर"। धीरे से आदेश दिया, "मेरे ऊपर पहुंचते ही आठ आदमी ऊपर आयेंगे। दो यहीं तैनात रहेंगे।" रुई का बोरा गीला होकर भारी हो गया था, लेकिन ऊपर का दरवाजा तोड़कर अन्दर जाने तक आड़ के लिए ऊपर ले जाना आवश्यक था। दो आदमी उठाकर ले चले, लेकिन जीना सकरा था। किसी तरह बोरा ऊपर चढ़ाकर दरवाजे के पास खड़ा किया गया। शत्रुघनसिंह ने दरवाजे को कुल्हाड़ी से तोड़ने का हुक्म दिया। चोटें पड़ने लगीं। पुलिस को ऊपर आने से रोकने के लिए प्रेमा को कुछ न सूझा तो दरवाजे पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी। कुल्हाड़ी की चोटों ने तब तक कुण्डी तोड़ डाली थी।

बक्का और जंगी पांडे अपना मसाला चुकते जाने के होश को एकदम भुला नहीं बैठे थे, वो पहले जोश में गलती कर चुके थे। जब दरवाजे पर कुल्हाडी पड़ने लगी, तो प्रेमा और कृपाराम के हाथ-पांव फूले। कृपाराम बक्का और पांडे को सावधान करने दौड़े। इधर प्रेमा ने आग लगाने का निष्फल प्रयत्न कर

डाला। बानक ऐसे बने कि दरवाजा टूटने के साथ ही साथ सड़क पर सामने वाली छत से, मुंडेर की आड़ से इस छत पर गोलियां बरसने लगीं। कृपाराम उधर पहुंचते ही पहली गोली का शिकार हुआ। बक्का और पांडे बैठकर सरकते हुए नए कमरे की दीवाल की तरफ बढ़े। दरवाजा खुला, गीली रुई का बोरा सामने आ गया। नए कमरे और दरवाजे के गलियारे में एक हाथ में मिट्टी का तेल का गिलास और जलती लकड़ी लिये प्रेमा शेरनी जैसी चमकती आंखों से देख रही थी। उसका चेहरा और सारा शरीर प्रतिहिंसा के प्रचण्ड भावावेग से थर्रा रहा था, वह कस-कर दांत पीस रही थी। दरवाज़े और छज्जे के बीच रुई का बोरा अड़ा और उसने अपना एकमात्र हथियार चलाया—गिलास बोरे पर उलीचा और लकड़ी उछालने के लिए हाथ उठाया ही था कि शत्रुघनसिंह की गोली उसकी मुट्ठी पर लकड़ी से टकरा कर उसकी दो अंगुलियां घायल करती हुई कमरे की दीवार से टकराई। जलती लकड़ी छज्जे के नीचे बैजू लाला के आंगन में गिरी। प्रेमा पूरे हिस्टीरिया के आवेग में एक बड़ी कर्कश चीख के साथ गिरकर बेहोश हो गई। तब तक आठों सिपाही कोतवाल साहब के पीछे से गुजरकर सतखण्डी हवेली की पुश्त से लगे कमरे की ओर आये। बक्का और पांडे के लिए अब कोई चारा न रहा। सिपाही छज्जे के इस पार से गोलियां बरसा रहे थे, सड़क के उस पार की छतवाले सिपाहियों ने यह देखकर मार बन्द कर दी। बक्का और पांडे कमरे और मुंडेर के कोने में बैठे थे, उन्हें अब कोई आड़ नहीं मिलती थी। कमरे के दरवाज़े की तरफ बढ़ते थे, तो शत्रुघनसिंह को गोली भी बढ़ती थी। दोनों जने बन्दूकें तान-तान कर ही रह गये, दागने का हौसला न रहा। नीचे सड़क पर भी अब बन्दूकें खामोश हो चुकी थीं। 'हैण्ड्स अप। हथियार फेंको।" शत्रुघनसिंह के आदेश के साथ ही साथ दोनों ने छत पर बन्दूकें फेंक दीं। शत्रुघन ने अपने आदमियों को उंगली से आगे बढ़ने का इशारा किया। छज्जे के उस पार सायाबान की तरफ से होकर सिपाही उधर बढ़े। शत्रुघनसिंह ने बढ़कर इधर वाले कमरे का दरवाजा थपथपाया। दरवाजा बन्द था। शत्रुघनसिंह ने रद्धूसिंह के दालान में खड़े दोनों आदमियों को ऊपर आकर दरवाज़ा तोड़ने का आदेश दिया। अन्दर से तुरन्त कुण्डी खुल गई। महराजिन सिर से पैर तक कांपती हाथ जोड़े खड़ी थी। उसके मुंह से बोल नहीं फूट रहा था। शत्रुघनसिंह के कमरे में घुसते ही वह थर-थरा-कर गिर पड़ी। कफन से लिपटी लाश चारपाई पर पड़ी थी। आदत की चौकन्नी नज़र कमरे में, बाहर तक लपकाकर शत्रुघनसिंह लाश पर झुके। मुंह खोला तो मुर्दनी न पाई। सांस धीमे-धीमे चल रही थी। शायद ले जाने के लिए बेहोश किया है। एक सिपाही को नीचे भेजकर वायरलेस से कोतवाली को फौरन डॉक्टर भेजने का आदेश दिया। फिर महाराजिन पर दृष्टि गई : "बाहर बैठ बुढ़िया।" फिर आप बाहर निकले। छज्जेवाली छत पर दोनों डाकुओं के हाथों को पीठ पीछे डबल हथकड़ियों से कसा जा चुका था। जंगी पांड़े की कमर में रस्सी लपेटी जा रही थी। बक्का बंध चुका था। शत्रुघनसिंह के कदम इस समय इस तरह उठ रहे थे, जिस तरह जापान को हराकर अमरीकी सेनापति मेकार्थर राज्य के बड़े-बड़े सेनाधिकारियों और सत्ताधारियों को अपने बन्दियों के रूप में देखने के लिए चला होगा। पास आकर शत्रुघनसिंह ने बक्का और पांडे पर बड़ी तुच्छ दृष्टि डाली। मेकार्थर मेकाडो से मिलने के लिए चला। बूटासिंह को तब तक

यमदूत ले जा चुके थे। कालिख से पुते अरबी लिबास में डा० ब्रोकर हाथ पर ठोढ़ी टेके हुए अपनी सफेद चमकती हुई पथराई पुतलियों वाली आंखों से एकटक होकर शत्रुघनसिंह को देख रहे थे। शत्रुघनसिंह ने आगे बढ़कर हाथ मिलाया : "आपको बहुत तकलीफ हुई डा० ब्रोकर।"

बच्चे के हाथ से सहज खिंची पेंसिल की लकीर जैसी मुस्कान डा० ब्रोकर के पतले होंठों पर पसर गई : "हूं ! दैट्स आल राइट। एन एक्सपीरियंस। थैंक्यू !" डा० ब्रोकर के तीन अस्फुट उद्‌गारों में पिछले छब्बीस घण्टों की यातना फूटी। आंखों और चेहरे का तनाव बाढ़ के पानी की तरह क्रमशः उतरने लगा।

डाकुओं की गिरफ्तारी होते ही जनता आसपास के घरों से निकल कर घटनास्थल पर भीड़ लगाने लगी। कृपाराम शर्मा और बूटासिंह की लाशों के सम्बन्ध में कागजी कार्यवाही पूरी करने के बाद ऊपर हर कमरे में ताला-मुहर लगवाकर शत्रुघनसिंह नीचे आये। लाला बैजू ने तब तक शरबत और चाय दोनों ही तैयार करवा कर रखी थी।

रद्धूसिंह बाहर लोगों को ये बताते घूम रहे थे कि शत्रुघनसिंह उनके सगे चाचा के लड़के हैं, रद्धूसिंह के पिता ने ही उन्हें पुलिस में नौकर रखाया था और आज की सारी मोर्चेबन्दी रद्धूसिंह की सलाह के कारण सफल हुई है। उनकी आत्मप्रशंसा के नशे को झटका तब लगा जबकि शत्रुघनसिंह रद्धूसिंह से बिना बात किए ही अपनी मोटर पर चल दिये। कैदी डाकुओं, लाशों, महाराजिन, प्रेमा और बन्दिनी सेठ पुत्री को लेकर पुलिस दल भी चला गया। भीड़ लौटने लगी। रद्धूसिंह घर लौटे, सूना घर, थोड़ी देर पहले की वारदात से मनहूस घर उन्हें खाने सा लगा। उनका मन बेहद बुझा हुआ था—"सत्रोहन साले को इतना घमण्ड हो गया है कि चलते समय शिष्टाचार तक न दिखलाया। हे ईश्वर, इस साले का घमण्ड नीचा करना, कभी मेरी बेरी में भी फल लगाना।"

रद्धूसिंह बड़े दुखी, निराश और अकेले थे।

राधारमण के मन्दिर में सावन की झांकियों और कीर्तनों की बड़ी धूम रहती है। किसी दिन भगवान् का फूलों का सिंगार होता है, किसी दिन मोतियों का, किसी दिन चांदी, किसी दिन सोना और किसी दिन गंगा-जमुनी छटा से भगवान् अपने भक्तों का मन मोहते हैं। यों तो यहां बारहमासी कीर्तन होता है, परन्तु सावन-भादों में बड़ी-बड़ी दूर से कीर्तनिये आते हैं। मन्दिर के प्रतिष्ठापक लाला राधेरमन पुराने करोड़पति हैं। संगमर्मर का यह मन्दिर अभी पांच-छः साल पहले ही बनवाया है, इसलिए यहां जैसे उत्सव नगर भर में कहीं नहीं होते। आज फूलों का सिंगार है। गुलाब, चमेली और बेले की महक से ठाकुरद्वारा गमगमा रहा है। आरती हो चुकी है। भक्तमण्डली हरिकीर्तन की प्रतीक्षा में बैठी हुई जग-चर्चा में लीन हो रही है। दालान में लगभग साठ-सत्तर लोग जमा हो चुके हैं और लोग आते ही जा रहे हैं। ठाकुर जी के नीचे संगमर्मर का बड़ा सा सिंहासन रखा है। यह व्यास गद्दी है। पुरुष समाज इसके दाहिनी ओर बैठता है और स्त्रियां बांई ओर। दालान इतना बड़ा है कि उसमें चार-पांच सौ की भीड़

सुगमता से बैठ सकती हैं। पत्थर के नक्काशीदार खंभे और मेहराबें मन्दिर की भव्यता को दोबाला करती हैं। बिजली के झाड़-फानूस और मर्करी रॉड सपने की सी छटा प्रस्तुत कर रहे हैं। व्यास गद्दी अभी खाली है। सेठजी भगवान् की आरती कराके ब्यालू करने गए हैं, नौ बजे महान् कीर्तनकार मधुर जी के साथ पधारेंगे। तब कीर्तन आरम्भ होगा। मधुर जी के नाम पर कीर्तन-प्रेमी जनता क्रमश: बढ़ती जा रही है, साठ-सत्तर से धीरे-धीरे अस्सी नव्बे हुए और भी लोग, लुगाइयां आती ही जा रही हैं।

एमेचर कीर्तनिये कुंवर रद्धूसिंह, पंडित शिवशंकर लाल और बाबू किशन मोहन ने भी मन्दिर में प्रवेश किया। पंडित शिवशंकर लाल संस्कृत के श्लोकपाठ करने लगे, जिसके आरंभिक शब्द ज़ोर-ज़ोर से सुनाई पड़ते थे और फिर स्वर कम होते-होते बुदबुदाहट तक पहुंच जाता था। फिर दो-चार शब्द ज़ोर-ज़ोर से फूटते और फिर क्रमश: होंठों की बुद-बुद में छिप जाते —"वन्दे नव घन श्यामम्··· मुन मुन मुन मुन मुन। सानन्दम् सुन्दरम्···मुन मुन श्रीकृष्णम् मुन मुन मुन!"

रद्धू बाबू ने आंखें मूंद, हाथ जोड़ होंठों की बुदबुद में ही अपना भजन-भाव अर्पित किया और बाबू किशनमोहन एक बार भगवान को हाथ जोड़कर दाहिनी ओर खंभे के पास बैठे हुए मुंशी हरसुख सहाय पेशकार के पास जा विराजे। रद्धू बाबू भी पास ही आकर बैठ गए। पण्डित शिवशंकर लाल भक्ति भाव के नाम पर भगवान की साखी में संस्कृत भाषा की टांग तोड़कर अब मातृभाषा में ज़ोर-ज़ोर से ललकार रहे थे:

माया युत माया रहित हरि को करौं प्रणाम,
जाको मोह न नाम को ताको मोहन नाम ॥
प्रेम हरी को रूप है, त्यौं हरि प्रेम को रूप।
एक होय दुइ यौं लसें ज्यों सूरज अरु धूप ॥
सेवक-सेव्य-भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि ॥
सियाबर रामचन्द्र की जै शरणम्।
ओम् गोविन्दाय नमो नम: श्री राधारमणाय नमो नम:
भूल चूक माफी चहौं अरज सुनौ करतार।
कृपा दीन पर कीजिए जग के पालनहार ॥

एक बड़े चोटीधारी नवयुवक ने दालान में प्रवेश किया। उसे देखते ही बाबू किशनमोहन बोले—"लेव, दुल्लर आय गए, अब पंडितजी से चौगुनी आवाज़ में शिलोक सुनावेंगे।"

दुल्लर ने बाबू किशनमोहन की बात का उत्तर मुस्कराकर दिया। और ठाकुर जी के सामने आंखें मूंदकर खड़े हो गए। पंडित शिवशंकर लाल के दोहे अभी चल ही रहे थे कि दुल्लर गुरु की दहाड़ती हुई आवाज़ बुलन्द हुई। लोगों को मजा आने लगा। पंडित शिवशंकर लाल और दुल्लर गुरु की लाग-डांट चलती है। भक्तजन मज़ा लेते हैं, पर आज दोनों का कम्पिटीशन बहुत देर तक चल न पाया, क्योंकि पंडित शिवशंकर लाल किसी और ही मूड में थे।

मुंशी हरसुख सहाय पेशकार ने रद्धू बाबू की ओर मुड़कर देखा, पूछा, "आज तो आपको कोतवाली में देखा था मैंने; खैरियत तो है?"

कुंवर रद्धूसिंह खोये हुए से बैठे थे। चारों ओर की चहल-पहल और मन्दिर

की जगर-मगर में उनका संताप भरा वर्तमान और ऐश्वर्य भरा भूतकाल अगल-बगल की आततायियों की तरह खड़े होकर लगातार भाले घोंप रहे थे। अंग्रेजी ज़माने के कोतवाल ठाकुर रघुवरसिंह के इकलौते लाड़ले बेटे रद्धूसिंह आज बेनी-सिंह, सत्रुघनसिंह, गजराजसिंह आदि बड़े-ओहदेदार और निकटतम सम्बन्धियों (जिन्हें कभी रघुवरसिंह ही ने पुलिस में भरती कराया था) के बंगलों पर अर्दलियों के साथ तिपाई पर बैठकर, उनके बाहर निकलने की, उनके रूखे उत्तर सुनने की प्रतीक्षा में सारा दिन बरबाद करके थके-हारे सांझ को घर लौटे—वह घर कि जिसमें बड़ों के उपवास का आज दूसरा दिन है। दोनों छोटी बच्चियों को छोड़कर किसी ने अन्न का दाना भी मुंह से नहीं लगाया था। भूखे पेट और टूटे मन में घर भर की भूख करारे मुक्के सी लगी—आगे कैसे चलेगा? मां ने यह दूसरी शादी कर बुढ़ापे में और रोग लगा दिया है। पत्नी का यह तीसरा गर्भ है, पूरे दिन हैं, जाने और कौन अभागा रद्धूसिंह के दुर्भाग्य में शामिल होने आ रहा है। रद्धूसिंह का मन कबूतर बहलावे के तौर पर क्षण में भूतकाल की किसी सुखद कोटर में विश्राम करने जा बैठता—वेश्याओं का नाच, शराब, हंसी-किलकारियों से भरे विलास के खेल, पुलिसमैनों के हथकण्डों में उड़ाई हुई औरतों के मजे लूटने वाले दिन, दोस्तों और मुसाहबों से घिरे हुए दिन, नोट भरी जेबों वाले दिन!—पर उन सुखद मादक स्मृतियों भरे भूत में वर्तमान का नाग सहसा अपना फन तान देता, मन कबूतर फिर घुटन भरे निःसीम आकाश में मंडराने के लिए बाध्य हो हो जाता है। रद्धूसिंह के मुंह से घुटन भरी 'एक्ज़हास्ट फैन' जैसी क्रिया होने लगी। वे मन की घुटन के लम्बे फुफकारे छोड़कर मानो बाहर निकलने का प्रयत्न सा कर रहे थे। तभी पेशकार साहब की बात, विशेष रूप से 'कोतवाली' शब्द कानों में पड़ा। रद्धूबाबू ने तुरन्त अपना आबरूदार मन संभाल लिया। हंसकर बोले: "अजी कुछ नहीं, वो ठाकुर शत्रुघनसिंह 'डी एस्पी' मेरे कज़िन हैं, उन्हीं के यहां चाची-वाची से मिलने चला जाता हूं कभी-कभी। मेरे सगे चाचा का लड़का है शत्रुघन। तीन बरस छोटा है मुझसे। मेरे ही फादर ने उसको पुलिस में नौकर रखाया था। आज भगवान की दया से 'डी एस्पी' है। तकदीर इसको कहते हैं। अभी मेरे ही घर से तो उसने डाकू बूटासिंह के गिरोह के खिलाफ मोर्चा बनाया था, सुना होगा आपने।"

"जी हां, जी हां, मुझे मालूम है कि वो आपके कज़िन हैं। बूटासिंह को तो यों पकड़ा है, ज्यों अंधे के हाथ बटेर लगा हो। तकदीर की बात है साहब।" शिव-शंकरजी ने कहा।

बाबू किशनमोहन बोले: "अजी तकदीर-वकदीर क्या, ठाकुर पिरथीसिंह होम मिनिस्टर और बी० पी० सिंह आई० जी० पुलिस। ठाकुरों का राज है। दो सीनियर्स का क्लेम मारकर इन्हें डीएस्पी बना दिया। अन्धेरखाता है बाबूजी। और अब तो तकदीर ने बूटासिंह-विजेता भी बना दिया है इन्हें। पालिटिक्स इसको कहते हैं।"

मुंशी हरसुखसहाय नाक चढ़ाकर बोले: "हूं···ऊं, ये तो भाई सदा से चलता रहा है और चलता रहेगा। पर इससे किसी की योग्यता को नजर-अंदाज न कर देना चाहिए। होशियार को गधा कहने से आप ही गधे साबित होंगे पंडित जी, बुरा न मानिएगा। शत्रुघनसिंह बहुत जोरदार आदमी हैं। जब से आए हैं तब से शहर में शांति और अमन कायम कर दिया है इन्होंने, वर्ना जनाब, लास्ट इयर

की याद कीजिए, दिन दहाड़े कत्ल हुए हैं और चोरी-डकैतियों की बात तो खैर मामूली ही थी। और ये अभी हाल के बूटासिंह केस में तो कमाल ही कर दिया उन्होंने। दिल्ली तक के अखबारों ने बड़ी कीर्ति छापी है उनकी और आप कहते हैं कि अन्धे के हाथ बटेर लग गई। वाह वाह वाह!" मुंशीजी की बात का जोरदार प्रभाव पड़ा।

पास ही बैठे एक बैंक के क्लर्क बाबू हर्षनाथ अपनी जेब से पान की डिबिया निकालकर मुन्शीजी, पण्डितजी आदि की ओर बढ़ाते हुए बोले : "हां, खैर नये कोतवाल साहब की तारीफ तो करनी ही होगी। मैंने तो सुना है कि रिश्वत, मुरव्वत कोई ऐब इनमें नहीं है। सुना है अट्ठारह-अट्ठारह घण्टे वर्दी पहने कोतवाली में बैठे रहते हैं। लीजिए रद्धूबाबू पान खाइए।"

खाने के नाम पर पान सामने आए, यह देखकर रद्धूबाबू का मन कुड़मुडा उठा। बातों के क्लोरोफार्म से बेहोश भूख पान देखकर आत्म-पीड़ा से बावली हो तड़प उठी। उन्होंने अपने को संभाल लिया, ऊपर से हाथ जोड़कर कहा : "नहीं इस समै नहीं!"

हर्षबाबू ने डिबियावाला हाथ खींचकर आप दो पान निकालते हुए खुशामदाना लहजे में हंसकर कहा : "रद्धूबाबू, ये तो बड़ी खुशी की बात है कि आप डीएस्पी के कज़िन हैं। मैं तो कल शाम से बड़ा परेशान था कि उनसे मिलने के लिए सोर्स कहां ढूंढूं। मेरे लड़के का कैरियर चौपट कर दिया है एक सब-इंस्पेक्टर साले ने।"

बाबू किशनमोहन बोले—"क्या हुआ हर्षू बाबू?"

"अरे हुआ कुछ नहीं साहब, युनिवर्सिटी में त्योरस साल जो कम्युनिस्टों का कुछ हंगामा मचा था न, उसमें सी० आई० डी० रिपोर्ट में मेरे लड़के का नाम भी किसी दुश्मन ने लिखवा दिया है। अब ब्लाक डेवलपमेण्ट आफिसर की पोस्ट के लिए सब तरह से उसका चुनाव हो गया है, मगर ये सी० आई० डी० रिपोर्ट की बुरी पख निकल आई है। बड़ा अन्धेर है। रद्धूबाबू आप इतना विश्वास उनको दिला दें कि लड़का मेरा गऊ है, पढ़ने-लिखने के अलावा उस ससुरे को किसी बात में रस नहीं। अजी मैं तो कहता हूं कि हाथ कंगन को आरसी क्या। रद्धूबाबू, आप सुशील को अपने साथ ही ले जाइए, वे खुद अपनी आंखों से देख लें कि लड़का सूरत से कमूनिस्ट लगता है?"

पाल्थी खोल और दाहिनी टांग फैलाकर अपना अकड़ा हुआ घुटना सहलाते हुए मुंशी हरसुख सहाय हंसकर बोले : "ये सूरत से कम्युनिस्ट लगने की बात खूब रही। खैर, लड़के को कल चार बजे मेरे पास कचहरी में भेज दीजिएगा। इस अड़चन की वजह से उसका कैरियर खराब नहीं होगा, मैं वचन देता हूं।"

बाबू हर्षनाथ की आंखें प्रसन्नता और आश्चर्य से चमक उठीं। तेजी से आगे बढ़कर उन्होंने मुंशीजी के घुटने पर अपने दोनों हाथ टेक दिए और गिड़गिड़ाकर बोले : "अरे पेशकार साहब, आपको मेरा रोयां-रोयां असीसेगा। आप सच मानिए, कल शाम से, जब से कि बैंक में मेरे एक सी० आई० डी० ब्रांच के टाइपिस्ट क्लर्क दोस्त हैं, उन्होंने आकर मुझे बताया कि आपके लड़के की बुरी रिपोर्ट जा रही है, तब से सच मानिएगा, न उसकी मदर ने खाया है न सुशील ने, न मैंने। आज तो चूल्हा ही नहीं जला। पेशकार साहब, मन्दिर में बैठा हूं, सत्त कहता हूं। (रद्धूबाबू के पेट में वायु नागिन-सी दौड़ गई) पर ये भी कहूंगा कि

वाह-वाह भगवान की माया। जाको राखे साइयां, मारि सके न कोय। वो टाइपिस्ट बाबू रमापरशाद, मेरे बैंक के एक कलीग हैं, बाबू गुरुचरन उनके बहनोई हैं। कई बार उन्हीं के यहां भेंट हुई। जरा याराना-सा हो गया है। तो साहब जब रिपोर्ट की नकल टाइप होने को आई, बाप की जगह मेरा नाम देखा, फिर पते से भी कुछ-कुछ शक हुआ तो उन्होंने कागज दबा लिया और शाम को आकर मुझसे कहा। मैं आज दिन भर बैंक में बठा-बैठा सोर्स भिड़ाता रहा, पर—वाह रे भगवान्। पेशकार साहब आप कायस्थ हैं तो क्या हुआ, जी चाहता है आपके पैर छू लूं।''

मुंशीजी हंसे और झेंपकर टांग सिकोड़ने लगे। आस-पास का मजमा उन्हें देखने लगा। बाबू हर्षनाथ उनके पैर छू बिजली की सी फुर्ती से खड़े हो गए, बोले : ''मैं एक बार घर में कह आऊं, अभी आता हूं।'' फिर चलते-चलते रद्धूबाबू की पीठ पर हाथ रखकर बोले —''बारे रद्धूबाबू, आज आपके बहाने भगवान् मिल गए।'' हर्ष बाबू के पैरों में पंख उग आए थे।

लोग-बाग इस घटना को लेकर भगवान् की महिमा बखानने लगे। पंडित शिवशंकरलाल ने कहा : ''जो बात बनने वाली होती है, वो यों बनती है। (रद्धूबाबू के मन में हूक उठी) बाबू हर्षनाथ को पता भी न चलता और इनका लड़का बेचारा बेमौत मारा जाता। हर सरकारी नौकरी के लिए रिजक्ट कर दिया जाता। सच ही कह गया बेचारा, उसके लिए तो मुंशीजी और उस टाइपिस्ट के रूप में भगवान् ही आ गए। बड़ा उपकार करोगे हरसुखसहाय, तुम्हारी सैकड़ों रिश्वतों का पाप इस एक उपकार से धुल गया बेट्टा।''

मुंशी हरसुख सहाय सहित आसपास के लोग हंस पड़े। रद्धूबाबू को अनायास ही मुंशीजी की इस व्याज-निन्दा से बड़ा संतोष मिला। एक क्षण के लिए वे अपना दुख-दर्द भूल गए।

तभी सेठजी और उनके परिवार के लोग भक्तराज मधुर जी के साथ पधारे। सभामण्डप में नई व्यवस्था आई। लोग-बाग शांति से बैठ गए। सेठजी ने भक्तराज मधुर जी को व्यासगद्दी पर लाकर बिठलाया। उनके मस्तक पर केसरिया चन्दन कनपटी तक थोपा, बढ़िया गुलाबों का गजरा पहिनाया। एक सेवक उसी समय हारमोनियम लाकर भक्तराज के पास रख गया। सेठजी ने हारमोनियम पर फूल चढ़ाए। शेष फूल भक्तराज के चरणों में अर्पित करके वे अपने स्थान पर जाकर बैठ गए।

भक्तराज मधुर अट्ठाइस-उन्तीस वर्ष के हैं। छरहरा बदन, सांवले, बड़ी-बड़ी शरबती आंखें और लम्बे घुंघराले बालों से मधुर जी का व्यक्तित्व मधुर ही बन गया है। धोती, बगलबन्दी, गले में कृष्णनाम का दुपट्टा, मस्तक पर वैष्णव तिलक, गले में तुलसी की कण्ठियां पहने हैं। भक्तराज इधर साल-दो-साल से नगर के भक्तजनों में बड़ी प्रसिद्धि पा रहे हैं। इस छोटी-सी आयु में ही उन्होंने भगवान् के दर्शन पा लिये, यह चर्चा धार्मिक स्त्री पुरुषों में व्याप्त है। कहते हैं कि किसी स्त्री से इनका प्रेम हो गया था, उसने दुतकार दिया। ये वहां से लौटते हुए राधाकृष्ण जी के मन्दिर में पहुंच गए। बस, वहीं प्रभुकीर्तन सुनते हुए कुछ ऐसी लौ लगी कि खड़े-खड़े गिर गए, बेहोश हो गए और जब तीन दिन के बाद होश में आए तो हरिकीर्तन करते हुए ही उठे। मधुर जी के स्वर में करुणा गूंजती है, कम्प उठता है, आंसू उमड़ते है, रास की गुदगुदी भरी अठखेलियों-सी मधुर गिटकिरी भी

लगती है। मधुर जी संस्कृत के श्लोकों, उर्दू की गजलों और हिन्दी के फिल्मी गीतों का ऐसा मधुर कीर्तन करते हैं कि तरुण-तरुणियों को मजा आ जाता है; बूढ़े-बूढ़ियों के सूखते शृंगार रस को भी हरिनाम से सनी शौक की तरावट मिल जाती है। जब वे हारमोनियम पर गाते हैं, तो श्रोता-मण्डली उनके स्वर के झोंकों से झूमती है। मधुर जी ने संस्कृत भाषा में गुरु-गोविन्द को पांय लगाकर दो मिनट आंखें मींच पद्मासन साधा, फिर हारमोनियम पर हाथ रखकर थोड़ी देर तक सरगम से खेलकर अपना प्रवचन प्रारम्भ किया—

"राधाकृष्ण स्वरूप भक्तजनो, सांवरे के बावरो! देखिए तो जरा यह कैसी दिव्य छटा छाई है। श्रावण का परम पुनीत मास है। काशी विश्वेश्वर कैलास-वासी, नग्न निःसंग, त्रिगुणातीत, योगेश्वर भूतभावन के मन को यह सावन सुहाता है और इसी हेतु शंकरजी के परम आराध्य और परमोपासक परम सच्चिदानन्द, परमोज्ज्वल शक्तिस्वरूप परमानन्द, आनन्दकन्द व्रजचन्द्र, नन्द-नन्दन गोपी पीन-पयोधर-मर्दन-चंचल करयुगशाली, बांकेबिहारी, नटनागर, मुरलीधर श्री श्री राधारमण, गोपीरमण, कोटि-कोटि कन्दर्प लजावनहारे श्री श्री यादवेन्द्र सरकार मनमोहन, जगन्मोहन के मन को भी यह सावन सुहाया है। तभी तो सावन में घर-घर झूले-झांकियां सजती हैं।" हारमोनियम बज उठा, भक्त महाराज ने गाना आरम्भ किया :

"आज झूलें बनवारी हमारे अंगना।"

भक्तराज ने गाते हुए तानों के उतार-चढ़ाव की खूब छटा दिखायी और जब उनका स्वर-झूलन समाप्त हुआ, तो श्रोतागण कृष्ण भगवान् से अधिक भक्तराज के भक्त नजर आने लगे। स्त्रियों की तरफ से कुछ मांग हुई जिसे भक्तराज ठीक तरह से सुन न पाये। उन्होंने कान के पास हाथ लगाकर तनिक झुककर मुस्कुराते हुए पूछा— "कृष्णप्रिया क्या वरदान मांगती हैं मुझसे?"

एक भक्त ने भक्तिन मण्डली की ओर आवाज फेंकी —"अरे भाई, किस देवी ने महराज से क्या मांगा, बोलती क्यों नहीं?"

भक्तिन मण्डली में पीछे की ओर कौआरोर मचा, "अरे तुमहीं कहि देव। हम काहे कहें, तुमहीं कहो। कहो ना? अरे महाराज फिल्मी चाल का कीर्तन—!"

भक्त-मण्डली के एक सज्जन भक्तिन-मण्डली की बातों से सार तत्व छांटकर खड़े हो, हाथ जोड़कर भक्तराज से प्रार्थना की—"महाराज फिल्मी चाल का कीर्तन सुनाने की प्रार्थना कर रही हैं देवियां।"

महाराज मुस्कराए। शरबती आंखों में रस का एक ताव और चढ़ा, बोले— "फिल्मी चाल का कीर्तन? अरे व्रजबाला, तू तो युगों-युगों से फिल्म ही देखती चली आ रही है। सांवरा तेरे को रिझाने के लिए माया रूपी रजत पट पर मोह रूपी फिल्म दिखा रहा है और तू अब भी सन्तुष्ट नहीं हुई।" महाराज की इन शायरी भरी बातों ने सभा के गले में अहा और वाह वाह के ढोल मढ़ दिए, एक प्रकार की आनन्दलहरी-सी व्याप्त हो गई। महाराज भी हंसे, बोले : "अच्छा, तेरी इच्छा पूर्ण होगी। भक्तजनो, ये फिल्म जो है, जिसका मोह आज इस व्रजमण्डल रूपी भारतवर्ष के कोने-कोने में व्याप्त है, विशेष रूप से ग्वाल-वालों और गोपियों में इसकी बड़ी महिमा है, तो इसका कारण क्या है? और फिर दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस फिल्म के मोह में पड़कर हमारे देशवासी कोटि-कोटि गोप-गोपी जन, क्या इसके कारण रसातल को जा रहे हैं? क्या इस देवप्रिया

भारत भूमि की संस्कृति का नाश हो रहा है? सो, हे गोपाल के प्यारो, इस विषय पर हमने बहुत सोच-विचार किया। जगन्नियन्ता जगदीश्वर, जग के पालनहार, गोपियों के चीर खींचने वाले प्यारे माखनचोर से एक दिन सुरति महल में बैठे इस वार्तालाप के प्रसंग को हमने छेड़ दिया। भगवान् ने क्या कहा, इसे सुनने की इच्छा हमारे प्रेमीजनों को अवश्य ही होगी, यह मैं जानता हूं। भगवान् बोले कि अरे मधुर, तू किस सोच में पड़ा है? जान पड़ता है कि तेरे ऊपर भी मिथ्या मोह का आवरण पड़ गया है! अरे भोले, जहां प्रेम की चरचा हो, वहां तो मैं आप विराजमान रहता हू। फिर संस्कृति के पतन का भय क्या है रे? प्रेम में जो वासना है, वह कलुष है। जब तू सिनेमा देखने जाता है तब मुझे भूलकर, तू लौकिक प्रेम की बात सोचकर उसकी भलाई-बुराई की विवेचना में पड़ जाता है। यह मिथ्या मोह है। प्रेमी नायक के रूप में हर फिल्म में तू मुझे देख और नायिका के रूप में तेरी जो आत्मारूपी राधा है, उसके दर्शन कर और खलनायक के रूप में मिथ्यामोह भरे वितण्डावाद को ही देख, उसे पहचान उससे जूझ, उसका नाश कर। तो यह सुनकर मैंने निवेदन किया कि प्रभु, श्री चरणारविन्द की दया से मैं तो आपके श्री मुख से सुने हुए उपदेश का ही पालन करूगा, किन्तु कोटि-कोटि भारतीय जन इस तत्व को कैसे समझेंगे? इस पर श्री-श्री बांकेबिहारी, गिरिवरधारी, नटखट नन्दकिशोर हंसे, बोले कि अरे मधुर मूढ़, जब तू इतना ही नहीं समझता तो कवि क्यों हुआ? और जो कवि हुआ भी तो साधारण क्यों न हुआ? अरे, वाणी के वरदपुत्र, तू मेरा जीवनसर्वस्व क्यों बना? जा, अब तुझसे मैं नहीं बोलूंगा, तेरे पास भी नहीं आऊंगा।···भक्तजनो, भगवान के कठोर वचन को सुनकर मेरे हृदय पर क्या बीती होगी, इसकी तनिक कल्पना तो कीजिए। मैं बेसुध होकर कटे पेड़ की तरह गिर पड़ा और बोला कि —(हारमोनियम पर गाकर)

सखेति मत्वा प्रसभम् प्रयुक्तम्
हे कृष्ण! हे यादव! हे सखेति।
अजानता महिमानम् तवेदम्
मया प्रमादात्प्रणयेनवापि॥

और मेरे इस रुदन-प्रलाप का उत्तर भगवान् ने कैसे दिया, जानते हैं? आ-हा-हा, नटखट नन्दकिशोर ने अपनी जादूभरी खिलखिलाहट से मेरे अन्तर के गगनमण्डल में अनहदनाद गुंजरित कर गायन आरम्भ कर दिया—(उंगलियां फिर हारमोनियम की बारह खड़ी छूने लगीं और भक्तराज गाने लगे :)

"कैद में है बुलबुल सैयाद मुस्कराए,
कहा भी न जाए चुप रहा भी न जाए।"

भक्तराज मधुर घण्टे-डेढ़-घण्टे तक फिल्मी कीर्तन सुनाते रहे। भक्त जन उनकी अनूठी व्याख्याओं से प्रभावित मन्त्रमुग्ध बैठे रहे। जब प्रवचन समाप्त हुआ, तो भक्तराज मधुर जी एकाएक बेहोश होकर व्यास गद्दी पर गिर पड़े। चारों ओर कोहराम मच गया, पंखा, गुलाबजल और भक्तिनियों की हाय-हाय से भक्तराज का उपचार होने लगा। लोग-बाग मधुर जी के व्यक्तित्व में चैतन्य महाप्रभु तक के दर्शन करने लगे। सेठजी ने तथा भक्तराज से परिचित अन्य कुछ भक्त-भक्तिनियों ने तुरन्त ही कीर्तन आरम्भ करने की गोहार की। रद्दू बाबू पकड़े गए, उनका कण्ठ सुरीला था और कीर्तन करने के कारण वे थोड़ा-बहुत नाम

भी कमा चुके थे। परन्तु रद्धूबाबू इस समय गाने-बजाने के उत्साह में नहीं थे। पेट भूख से कुड़मुड़ा रहा था, मन चिन्ताओं के मारे उड़ा जा रहा था। फिर भी आबरूदारी के मारे वे कुछ कह न पाते थे। कीर्तन करने बैठे, तन, मन की थकन को करुणामय की प्रार्थना में लय करते हुए अगम पीड़ा से करुण होकर वे इतने भावावेश में आ गए कि सचमुच बेहोश हो गए।

लोग-बाग कहने लगे कि मधुर जी को देखकर रद्धूबाबू ने भी नाटक कर डाला। बेहोश मधुर जी के चारों ओर भक्तिनें घिर आई थीं, कोई हथेलियां सहला रही थीं, कोई पैरों के तलवे, कोई सिर। होश में आने पर मधुर जी और भी सबके आकर्षण का केन्द्र बन गए, रद्धूबाबू की बेहोशी का मजाक उड़ने लगा। फिर भी शिवशंकरजी आदि उनके साथी उनकी देखभाल करने में जुट गए।

घर लौटते समय अपनी बेहोशी पर हंसी-मजाक होने से रद्धूबाबू मन ही मन बेहद चिढ़े हुए थे। उन्हें मंदिर, मधुर, कीर्तन और सारे भक्तजनों के प्रति वितृष्णा हो रही थी। बार-बार जी चाहता था कि सबको छोड़कर कहीं भाग जाएं, मगर उनके पैर अपने और अपने साथियों के साथ-साथ घर की ओर ही बढ़ते रहे। अन्तर के सच की तड़प बाहरी मजाकों की तेज चलती मथानी से और भी उफन-उफन कर करुणा का नवनीत बनकर चुटैली चेतना को चिकनाने लगी—"मेरे मन की सच्चाई को भी परगट कर देना भगवान। मेरी बेरी में भी एक बार फल लगा दो!—इन सब ससुरे पेटभरों की बोलती बन्द हो जाए! राम! हे नारायण!"

रद्धूबाबू के तन-मन की शरण के दो ही स्थल हैं—घर और भगवान। लाख खीझे होने पर भी इन्हें छोड़कर और कहां जाएं?

अपनी गली में प्रवेश करते हुए रद्धूबाबू ने नुक्कड़वाले घर के वकील साहब की घड़ी का एक टकोरा सुना। बाबू किशनमोहन बोले: "साढ़े ग्यारह बजे कि साढ़े बारह? एक तो नहीं हो सकता।"

पंडित शिवशंकरलाल ने कहा: "अमा, वैश्य के घर जन्म लेकर भी तुम्हें हिसाब नहीं आया समय का? देख रहे हो, अभी सामने वाली हलवाई की दुकान पर दूध पीनेवाले खड़े हैं। साढ़े ग्यारह का टाइम होगा।"

रद्धूबाबू हंसकर बोले: "अब किसी भी जात-बिरादरी में अपने पुराने गुन नहीं रह गए पंडितजी। न अब वो आपके ब्राह्मन रहे, न वो हमारे ठाकुर और न इनके वे बनिये। समय ऐसा बुरा आ लगा है कि कुछ पूछिए मत। शरीफों को खाने के लाले पड़ गए हैं।" कहते-कहते सारा शरीर कांप गया, आवाज, आंखें छलछला आईं, उन्हें छिपाने के लिए उबलकर बोले: "सब साले अपनी शराफत छोड़कर कमीनेपन पर उतर आए हैं, किसी के दुख-दरद में भी लोगों को हंसी सूझती है। अब मैं इस मंदिर में कभी नहीं जाऊंगा।"

बाबू किशनमोहन रद्धूबाबू के कंधों पर हाथ रखकर बोले: "अरे नहीं यार ठाकुर साहेब, ऐसी भी नाराज होने की क्या बात है?"

"नहीं गुप्ता जी, मेरा चित्त फट गया आज। अगर असल ठाकुर का बच्चा हूं तो अब से राधारमण के मंदिर में आप मुझे कभी नहीं देख पाएंगे। करें साले

मधुर का कीर्तन। शरीफों की औरतों-बिटियों को फंसाता है, झूठे नाटक करता है, उस ससुरे के सब पैर पूजते हैं और मैं कमजोरी के कारण बेहोश हो गया तो मेरी बेहोशी का मजाक उड़ाया। अपना वक्त बुरा है, नहीं तो एक-एक साले को समझ लेता।" रद्धूबाबू की भरी-निसास की गूंज अगल-बगल के दोनों मित्रों का मन स्पर्श कर गई। शिवशंकर रद्धूबाबू को अपनी बांह में खींचकर भाव भरे स्वर में बोले : "तुम भी यार रद्धूबाबू, बड़े सेन्टीमेंटल हो। अमां भूलो इन बातों को, मन्दिर जाते हैं तो भजन-भाव में दो-तीन घण्टे का अच्छा वक्त निकल जाता है, सत्संग हो जाता है। और जीवन में धरा ही क्या है ? भैया, पौने दो सेर का आटा मिल रहा है। सेठों, रिश्वतखोरों की बात छोड़ दो, वरना किसका अच्छा दिन जा रहा है आज के जमाने में ? घर-घर मटियारे चूल्हे हैं, अपनी-अपनी धोतियों में सभी नंगे हैं।"

रद्धूबाबू ने फिर भी गरदन झटकारकर कहा : "ये सब तो ठीक है पर अब वहां नहीं जाऊंगा पंडितजी। अब तो यहीं मोहल्ले में गोपी महराज के शिवाले में कीर्तन जमाऊंगा। साली घर की देहरी छोड़कर बाहर का पहाड़ पूजने क्यों जाऊं ? आप लोग अगर राजी हो जाएं तो नीमखार के स्वामी नारदानन्द जी महाराज से प्रार्थना करूं जाके और एक बार बिन्दराबन से बिन्दू जी महाराज को ले आऊंगा। मेरे ऊपर बड़ी ही किरपा करते हैं बेचारे। यह ससुरे कल के लौंडे मधुर-मधुर भगवान के नाम पर फिल्मी तर्ज के कीर्तन करते हैं—ये मुख में राम, बगल में छुरी वाला तमाशा नहीं कहलाएगा तो और क्या कहलाएगा।" जोश में दम भर आया, पेट का खालीपन तन तोड़ने लगा।

बाबू किशनमोहन बोले : "यार कहते तो ठीक हो ठाकुर साहब, गोपी महराज के शिवाले में कीर्तन जमाना चाहिए; अपने मोहल्ले की रौनक बढ़ेगी। क्यों पंडितजी ? अरे हमारे रद्धूबाबू सबके यहां कीर्तन करने जाते हैं। इनके बुलाने पर दूसरे नामी-नामी लोग भी खट् से आ जाएंगे, यह बात तो सही है।"

बाबू किशनमोहन की बात से फिर ताजा जोश आया, पेट को भुलाने के लिए 'चुन्नू राजा' बात पर सवार हुए, कहा : "और हम लोग एक बात का ढिंढोरा और पीटेंगे कि हमारे यहां फिल्मी चाल का संकीर्तन नहीं होगा। जिन्हें भगवान् की आड़ में सस्ती गलेबाजी और आंखें लड़ाने का चाव हो, वे किरपा कर हमारे यहां आने का कष्ट न करें ! हमारे यहां तो सन्त-महात्माओं के ही भजन-पद गाए जाएंगे और संसकिर्त भाशा के शिलोक गाए जाएंगे और सिद्ध-महात्मा ही हमारे यहां प्रउचन करने के लिए बुलाए जाएंगे। जिनमें भक्ती की लगन हो, वही गोपेश्वर महादेव के शिवाले में आवें।" रद्धूबाबू ने ऐसे सात्विक जोश में आदेश दिए कि सांस खाली पेट से गुजर गई।

पंडित शिवशंकर बोले : "वाह यार रद्धूबाबू, तुमने ये गोपेश्वर महादेव नाम खूब निकाला। बिचारे गोपीनाथ महाराज की आत्मा बैकुण्ठ में तर जायगी। सब मिलाकर विचार बुरा नहीं है। छोटी-सी जगह है अपनी, चुने-चुने लोग ही आवेंगे, भजन-भाव सच्चा होगा। मुंशी हरसुख सहाय हैं, वो लड़का दुल्लर है हमारा जोड़ीदार—ये जो दस-पांच रियल याने के खालिस—यानी···यानी कि—वही तुम्हारी बात रद्धूबाबू, कि भीड़ नहीं। अच्छा, तुम लोग भी क्या कहोगे यारो, मैं कल ही अपने ऑफिस के पेन्टर से गोपेश्वर संकीर्तन मण्डल का साइनबोर्ड बनवाए डालता हूं।"

"अरे हां यार पंडितजी, तुम्हारे यहां तो पब्लिसिटी का इतना वर्क होता है

कि मुफ्त में ही सब काम बन जाएगा। ये आइडिया अच्छा रहा, तुम साइनबोर्ड के साथ-साथ एक नोटिसबोर्ड भी बनवा लेना। आज है बिरहस्पत, कल शुक्कर, सनीचर, नरसों इतवार - चार दिन मिलते हैं। ठाठ से मन्दिर की सफाई, लिपाई करवा लेंगे। चार भले आदमियों से कह भी देंगे और सोमवार से गोपेश्वर संकीर्तन मण्डल का कारक्रम चालू हो जायगा। अरे वारे रद्धूबाबू, सब शंकर जी की माया है यार, उन्हें अपने यहां की महिमा बढ़ानी थी, सो तुमको बेहोश डाल दिया और दुष्टों को पीछे छोड़ दिया।"

बाबू किशनमोहन की बात पर दोनों मित्रों के मन खिल उठे। शिवशंकर जी बोले : "किशनमोहन, क्या बात कह गए मित्र। मैं तो कहता हूं, भगवान को जो करना होता है वो इस प्रकार करते हैं।"

रद्धूबाबू का मन चामत्कारिक प्रसन्नता से भर गया। उनका घर आ गया था। वे थम गए परन्तु इस समय घर के आगे का घूरा और घर के अन्दर की विषम स्थिति उनके मन को कलपा न सकी, वे भगवान के प्रति आस्था से भर उठे थे। परन्तु एक डग और आगे बढ़ते ही —

ऐन घर के द्वार पर पहुंचते ही मन की भक्तिभाव जनित शान्ति कपूर-सी जल उठी। रद्धूबाबू के दरवाजे के पास ही आज आठ-दस रोज से ही किसी ने जबर्दस्ती घूरा बना रक्खा है। बाहर आते-आते रद्धूबाबू बिगड़ते हैं। घर के दरवाजे के सामने खड़े होकर जोर-जोर से गर्माते हैं : "वाह अच्छी शराफत है मुहल्लेवालों की; जो न बोले वही मार खाय। एक बार देख भर पाऊं, फेंकनेवाले साले की हड्डी-पसली तोड़ के फेंक दूंगा। जब तक नहीं बोलता तब ही तक···।" रद्धूबाबू एक सांस में सभ्यता, धर्म, शराफत के हथौड़े से स्वराज्य और पूंजीपतियों को ठोंकते ही चले जाते हैं। आज तो कूड़े का ढेर रोज से अधिक ऊंचा था और कोढ़ में खाज की एक मरी बिल्ली भी उस पर पड़ी थी। रद्धूबाबू ने फौरन घृणा से मुंह फेर लिया और दरवाजे का कुण्डा खटखटाते हुए बड़बड़ाने लगे : "यह लखनऊ वाले साले ··· (गाली) मेरे जले नसीब पर नमक छिड़कते हैं! देख लूंगा सालों को। कभी तो मेरी बेरी में भी फल लगेंगे। एक-एक को न समझा तो रद्धूसिंह असल बाप का नहीं, चमार।" कहकर कुण्डी खटखटाई।

मां ने ऊपर से 'आइति है' कहकर धीरे-धीरे जीने से उतरकर द्वार खोला। तब तक रद्धूबाबू दोनों हाथों से कुण्डी थामे, उसके सहारे अपना सिर टेक कर क्रोधावेग के बाद विवशता के आंसू बहाते हुए मौन खड़े रहे। भूख के ऊपर अपमान भरा वातावरण सारा दिन उन्हें घुटाता-तड़पाता ही रहा—निकट के नातेदार भाई रुख से बोले नहीं, उनके चपरासियों के पास बैठना पड़ा, मन्दिर में मज़ाक उड़ा, ये द्वारे का घूरा और मरी बिल्ली भी मानो उनका मज़ाक ही उड़ा रही थी। आंसू अविरल धारा में बहते रहे। मां ने द्वार खोला।

धीरे-धीरे सीढ़ियां चढ़ते हुए मां ने बतलाया कि आज बहू की तबीयत ठीक नहीं है, न जाने किस समय शुभ घड़ी आ जाय।

ऊपर जाकर अम्मा हांफते हुए दालान में बैठ गई। लड़कियां दालान में सो रही थीं। रसोईवाले दालान में रद्धूबाबू का बिस्तर बिछा था। उन्होंने कमीज खूंटी पर टांगी, झज्झर से पानी उंड़ेलकर पिया और भूख से जर्जर होकर दालान के एक कोने में मां के सामने सिर झुका कर बैठ रहे।

नवाबी जमाने के छोटे घेरे के घर की दूसरी मंजिल का, दो दालान, एक कमरे

और एक कोठरी वाला कुंअर रद्धूसिंह का किराये का घर, चौमासे की रात की सांय-सांय से भरा था। जैसी आकाश में घुटन थी, वैसी ही घर में भी। कमरे वाले दालान के कोने में रक्खी हुई ढिबरी सिन्दूरी ज्योति और काला धुआं साथ-साथ फैलाती हुई इस घुटन भरे वातावरण के विपरीत लिप्त और अलिप्त भाव से अपना क्रम साध रही थी। दो दालानों के त्रिकोण में एक रेखा के दो बिन्दु से बैठे हुए मां और बेटे अपने भूतकाल में लीन हो गये थे। अठत्तर वर्ष की मां अपने वैभवशाली भूतकाल में खोई हुई थी। पाव भर सोने के कड़े उनके दोनों हाथों में पड़े रहते थे। नित्य के पहनाव में हल्की-सी रामनामी गले में पड़ी थी, सो भी आधपाव खालिस सोने की थी। उसमें मोती पन्ने मानिक के लटकन लटकते थे। सच, बुढ़िया ने अपनी जवानी में सेर भर सोने की हसली और सब मिलाकर पक्की पसेरी भर की तौल का सोना अपनी गठी हुई देह पर अलंकारों के रूप में ढोया है। चांदी के बिछुए और कड़े-छड़े, झांझों को छोड़कर कोतवालिन की कमर से लेकर सिर के बालों के नई चाल के क्लिपों और चिमटियों तक में सोना ही सोना चमकता था और वह भी अपना वजन लेकर। बिरादरी-समाज में दूर-दूर तक कोतवालिन की धाक थी। पति बड़े दरोगा थे, फिर कोतवाल बने। अंगरेज हाकिम उन्हें ऐसा मानते थे कि रघुबरसिंह कोतवाल सात खून कर आवें तो भी माफी मिल जाय। जहां बैठ जायं वहीं लच्छमी आय जाय। ब्याज-बट्टा से पैसा आवै, नजराने-सुकराने से आवै। रद्धूसिंह के कहे से तीन मोटर लारियां मोल ले ली थीं तो संझा के बखत पैसे, रेजगारी, रुपये-नोटन का पहाड़ आंखिन के सामने लग जात रहा। बड़े-बड़े कुत्ते पले भए रहे। चांदी की थाली, कटोरी, गिलासन मां खांय, पियें—रोजिउ घिउ-दूधू फल-मेवा के इत्ते-इत्ते ढेर लागे रहैं कि देखि-देखि कै अघाय जाय।...हे राम क्या हुई गया वो सब? क्या होयगा आगे, कैसे पार पड़ेगा?......

रद्धूसिंह बैठे रहे – उनके मन-प्राण ऊबे थे—पत्नी की प्रसूति की चिन्ता में वे जड़ीभूत हो गए थे। थोड़ी देर बैठे रहे, फिर एक निसांस डाली और जाकर अपनी खटिया पर पड़ रहे।

डेढ़ और दो बजे के बीच में रद्धूबाबू की मां ने सहसा उन्हें झिंझोड़ कर जगाया। बहू के दर्द उठ रहे थे, मां ने दाई बुलाने के लिए कहा। कच्ची नींद से एकाएक उठाए जाने पर रद्धूबाबू को लगा कि मानो पहाड़ से ढकेल दिए हों; उनके सिर और तलवों की नसें पानी विहीन पौधे की तरह झुरझुरा उठीं। रद्धूबाबू दो क्षण तो किंकर्तव्य-विमूढ़वत बैठे रहे, फिर मां से बात दुहराने को कहा और बात समझ में आने पर वे फिर सुन्न हो गए। उनके सामने कहां और कैसे की एक नई और विषम समस्या उपस्थित हो गई। वे बैठे तो बैठे ही रह गए। दुबारा-तिबारा झिंझोड़ा, कहा: "जल्दी जाव बेटा, रम्मोदाई नाई बाड़े में कहूं रहती है।"—

"अरे तौ एकाएक मैं किसके घर की कुंडी खटखटाऊंगा अम्मां। दिन होता तो किसी से पूछ के पता लगा लेता, पर रात में जब मुहल्ले भर के दरवाजे खटखटाऊं तब रम्मोदाई के घर का पता चले।"

"कुच्छौ करौ, दाई को बुलाय के लाओ और जल्दी से जल्दी आयौ बेटा।"

मां तो बेटे पर हुकुम लगाकर फिर कमरे के अन्दर चली गयी, पर रद्धूबाबू के पैर मानो बंध गए। अवसर जितनी ही जल्दी चाहता था, उतनी ही उनके पैरों

में जड़ता समा गई थी। घर में झंझी कौड़ी नहीं, दो दिन से उपवास चल रहा है, नए जीव के स्वागत के लिए पैसा कहां से आएगा? अंधेरी रात में उधार भी मांगा जाय तो किससे?

रद्धूबाबू सोच-विचार में बंधे बैठे रहे। अन्दर के कमरे से फिर अम्मा की आवाज आई: "अरे भइया, गए नहीं, जल्दी से बुलाय लाओ बचवा, घण्टा भर के अन्दरै अन्दर लोटि आयौ नाहीं तो ध्वाखा होइ जाई।" कहते हुए अम्मा फिर बाहर निकल आईं। रद्धूबाबू तब तक उठकर दालान में खूंटी से अपनी कमीज उतार रहे थे। अम्मा ने पास आकर धीमे किन्तु उमंग भरे स्वर में कहा: "अबकी जानि परति है कि भगावन हमार सुनि लिहिनि हैं। पोते का मुंह द्याखै क मिली। तुम दाई का बुलाय लाओ, पइसे की फिकिर न करौ।"

मां की अन्तिम बात पर रद्धूबाबू कौतूहल पूर्वक उनकी ओर देखने लगे। मां-बेटे की बाह्य दृष्टि सशक्त थी, अम्मा ने रद्धूबाबू की ओर देखते हुए अपनी बात का स्पष्टीकरण किया: "हम रानी का बहिन जी के हियां भेज रहे हन।"

"कौन बहिन जी?"

"अरे उइ बहिन हैं नाहीं जौन गरीबन का असकूल खोलिन हैं। जहां ते रानी फीस पावति हैं, उन्हीं की घरवाली बड़ी भली हैं बिचारी। तुम घबराओ ना, हमका विश्वास है। तुम बस रम्मो दाई लै आओ। और हाली लौटि आयो बचवा।"

पुत्र-प्राप्ति की आशा ने रद्धूबाबू की भूख-प्यास, नींद, आलस्य और चिन्ता सब भुला दी। उनके पैरों में मानो पंख लग गए। पुत्र की इच्छा पिछले सत्ताईस वर्षों से, रानी के जन्म ही से उन्हें मन ही मन तड़पाती रही है। उनके पिता इसी इच्छा को लिए हुए इहलोक से चले गए, माता ने इसी इच्छा से अधेड़ आयु में रद्धूबाबू को फिर विवाह करने के लिए बाध्य किया। चार पुत्रियों के जन्म की निराशा के बाद यह दिन आया है, इसलिए नाईबाड़े जाकर चाहे घर-घर की कुण्डी बजानी पड़े, चाहे सोते लोगों की गालियां भी खानी पड़ें, फिर भी अपने वंश को चलानेवाले, पुरखों को पानी देनेवाले प्रत्याशित कुल-दीपक के स्वागतार्थ रम्मोदाई का घर खोज ही निकालेंगे।— 'वह जो मांगेगी दूंगा, चाहे उधार लेना पड़े। बहन जी तो हैं ही; पण्डित जी हैं, किशनमोहन हैं··· अरे, होने को तो सब हैं, जो वक्त पर काम आए, वही अपना है, बाकी सब माया-मोह है। उंह, होगा······यह बहन जी कौन हैं। कभी दर्शन नहीं हुए। खैर, हमारे लिए तो भगवान हैं। सीटी की फीस देती हैं रानी को। राम करे उनके यहां से इस समै भी मदद मिल जाय।··· मिल तो जाएगी, अम्मा ने किसी विश्वास पर ही कहा होगा और फिर कुछ आनेवाले का नसीबा भी तो होगा। हमरे मुनुआ के धरती पर आते ही हमारा भाग बदल जाएगा—जरूर बदलेगा।—अवश बदलेगा।'—

दो दिन के भूखे टूटे हुए शरीर को पुत्र-प्राप्ति के हौसले से खींचते ही चले गए। अंधेरी गलियां, कमजोरी के चक्कर या तेज चलने के प्रयास में थके पैरों का लड़खड़ाना—कुछ भी उन्हें रोक न सका। वे पुत्र के पिता बनने जा रहे थे, उन्हें अपना जीवन सार्थक लग रहा था। उनका पितृ-सत्ताक पुरुषत्व, क्षात्रत्व अपनी अहम्पूर्ति पा रहा था। उनके अहम् का एक बड़ा पुराना और गहरा अभाव मिट रहा था। उन्हें विश्वास हो रहा था कि इस अभाव के साथ उनका अर्थ-संकट भी दूर हो जाएगा।

नाईबाड़े में घुसते ही गली में खटिया पर सोए हुए एक बूढ़े व्यक्ति को रद्धूबाबू ने निःसंकोच, किन्तु सविनय जगाकर रम्मोदाई का पता पूछा। वह वृद्ध रम्मोदाई का पति निकला। नुक्कड़ ही पर उसका मकान था। कठिन समस्या इतनी सरलता से हल हो गई, यह देखकर रद्धूबाबू अपने भाग्य पर स्वयम् ही निहाल हो गए।

आठ

रद्धूसिंह का चरित्र इतने आकस्मिक रूप से लिखते हुए विकसित हो गया कि अब तो खुद मुझे भी इस चरित्र के प्रति आकर्षण हो गया है। अपने जिस सहपाठी कुंअर बच्चूसिंह के ध्यान से मेरे मन में इस पात्र की कल्पना आई थी, वह अब इस चरित्र से बहुत दूर चले गए। मेरे कुंअर रद्धूसिंह अपनी रूपरेखा में अब खुद मुझे एकदम नए से लगते हैं। यह नयापन क्या ऐसा है, जिसे पहले कभी नहीं देखा?—ना, लगता तो नहीं। यह कीर्त्तनकारी रद्धूसिंह, मन्दिर में उसके बेहोश होने की घटना शायद मैंने कभी खुद नहीं देखी। 'शायद' शब्द जान-बूझकर ही प्रयुक्त कर रहा हूं, मैंने कभी सुनी भी नहीं। हां, कीर्तनिये मधुर स्वर के समान ढोंगभरी 'स्पिरिचुअल' बेहोशी मैंने जरूर देखी है; हिन्दू कीर्तनकारों की भी और मुसलमान कव्वालों की भी। उस बेहोशी के विपरीत रद्धूसिंह की भूख और कुण्ठाजनित बेहोशी, मन्दिर वाले दृश्य को संजोते हुए मेरे अचेतन मन में शायद विद्रोह के कारण ही अंकित की है। लेकिन दुबारा पढ़ते हुए मुझे अपनी यह कारगुजारी अनुचित नहीं लगी, बल्कि ऐसा लगा कि एक सत्य प्रसंग के साथ जुड़ जानेवाला यह उपप्रसंग भी अनिवार्य रूप से सत्य ही है।

लेकिन क्या ये कला पर मेरा आरोपण नहीं हुआ? मुझे तो नहीं लगता। सृष्टि विभिन्न तत्वों का आधार लेकर ही होती है, लेकिन उस सृष्टि का रूप अपने मौलिक तत्वों से एकदम भिन्न हो जाता है। बाप-बेटे आपस में कितना ही गुण, रूप साम्य क्यों न रखते हों, लेकिन उनमें एक मौलिक दृष्टि-भेद होता ही है। इसे बेटे की बाप के प्रति अवज्ञा नहीं माना जा सकता—और आरोपण तो वह किसी भी तरह है ही नहीं। फिर भी मेरी इस रचना-प्रक्रिया में भी इस प्रकार का दोष नहीं माना जा सकता।

पर ये विचार, ये कल्पनाएं एकाएक आती कहां से हैं? प्रेमचन्द के बारे में यह विदित है कि वे आम तौर पर अपने गांव या शहर के समाज से अधिक घुलते-मिलते या रीति-व्यवहार नहीं करते थे। फिर भी उनकी तमाम कहानियां और उपन्यास, चरित्र, घटनाएं, अधिकतर इतने सजीव और यथार्थ लगते हैं, मानो उन्होंने मौके पर बैठकर ही वह तमाम बयान कलमबन्द किया हो। उनसे अगर पूछा जाता कि आपके अमुक पात्र के पीछे यथार्थ जीवन का कौन सा चरित्र है, तो शायद वे उसका सही-सही जवाब न दे पाते—यानी अपने प्रसंग में आते हुए इसका मतलब यह

हुआ कि खुद मैं भी इस सवाल का जवाब नहीं दे सकता। हर छोटे-बड़े लेखक के साथ में कमजोरी होती है कि वह यथार्थ जीवन के कुछ चरित्रों, घटनाओं और कुछ भावों से ऐसा बंध जाता है कि नये-नये रूपों में उनकी बार-बार विभिन्न परिस्थितियों में पेश करने की बान बना लेता है। कलाकार एक मूल बिम्ब से पचासों और कभी-कभी सैकड़ों विभिन्न पात्र-पात्रियों का सृजन कर डालता है। शरदचन्द्र चट्टोपाध्याय के साथ तो यह सीमा उनके पूरे साहित्य को ही घेर लेती है। क्या यही एकता में अनेकता वाला सत्य है ? जी तो चाहता है कि हां कह दूं, पर ये कहना फिलहाल, सहसा, आसान नहीं मालूम होता। खैर !

ये पिछले चार दिन इसी मेज-कुरसी पर अपनी कलम समाधि में बड़े स्फूर्तिदायक आनन्द-मग्न बीते। सोचता हूं, योगियों की ब्रह्म समाधि क्या इससे ज्यादा अच्छी चीज होती होगी ? मैं भी अपनी ध्यान सृष्टि में लय होकर अपने मन से उतनी देर के लिए मुक्त हो जाता हूं। फिर भी मैं रहस्यवादी ब्रह्म की महिमा बखान सकने का, या कोरे पढ़े हुए दार्शनिक मसलों पर घंटों गप हांककर ब्रह्मवादी आस्तिक होने का दावा नहीं करता। मैं योरोपीय या भारतीय, साकार या निराकार किसी भी तरह के ब्रह्मवादी रहस्यमय कलाकारों जैसा स्वरूप नहीं रच पाता, भले ही वे लोग मुझे और मेरे साहित्य को अपनी कृतियों से हीन मानते हों, लेकिन इससे मेरे चरित्र में या मन में अपने प्रति किसी प्रकार की स्थायी हीनता का बोध अब तक नहीं आ पाया। अस्थायी तौर पर यदि कभी बाहरी झकोलों से विचलित होता हूं, तो भी उसकी तेज प्रक्रिया में मेरा मन छन-छनकर अपने ही जनम भर के साधे हुए इस सिद्धान्त के प्रति सतत गहरा आस्थावान ही होता है।

पिछले चार दिनों से बराबर लिख ही रहा हूं। सिर्फ एक शाम और एक पूरे दिन का हर्ज हुआ। मंगलवार को दिन में ढाई-तीन घण्टे तक लिखा, पर शिक्षामन्त्री शिवकुमारजी और राजकिशोर बाबू उमेश को लेकर बधाई देने पधारे। घण्टे डेढ़ घण्टे उनकी खातिरदारी में बीते, फिर उमेश के साथ बातें होती रहीं, फिर रात तक दिमाग उन्हीं बातों को अपनी चलनियों में छानता रहा। दूसरे दिन सुबह से शाम तक महल्ले वाले, सगे-सम्बन्धियों में से अनेक लोग मुझे बधाई देने के लिए आते रहे। फिर सत्यनारायण की कथा का मजमा रहा। फिर शाम मित्रमण्डली के साथ बातों, ह्विसकी और मुर्गमुसल्लम के मजों में बीती और वह रात नशे में निकम्मी बीती। इस तरह सच पूछा जाय तो कल और आज तीसरे पहर तक, सब मिलाकर सत्रह-अठारह घण्टों में उपन्यास के तीन अध्याय पूरे हुए हैं ! कल और आज दिन भर में किसी बाहर वाले से मिला ही नहीं; इस कमरे और अपनी बगिया से बाहर की दुनिया से मेरा कोई नाता ही न रहा। चाय, भोजन, पान यथासमय आते रहे। माया, नन्हीं, उमेश सभी बारी-बारी से मेरी ये सब सेवाएं कर गए और मेरे चिन्तन का रसभंज किए बिना खामोशी से चले गए। अलक्ष्य में इस तरह मेरा पितृ-सत्ताक अहम् तुष्ट होकर मुझे अपने काम में तन्मय रहा था।...

कुछ विचारक लोग कहा करते हैं, लेखक को भूखा रक्खो तभी वह लिखेगा। मैं समझता हूं कि यह एकांगी हकीकत है। अनुभूति चाहे अभाव की हो या भाव की, चरम स्थिति छूते ही लेखक को सृजनात्मक स्फुरण मिल जाता है। सुख और दुःख, दोनों ही स्थितियां अपने चरम बिन्दु पर पहुंचकर उसे अपने लिए चुनौती सी लगने लगती हैं। मेरा काम ऐसा है, जो सुख और दुःख से ऊपर उठकर होता ही

है। मैं समझता हूं कि मैं सुख और दुःख से भी बड़ा हूं। खैर।

कल सुबह चार बजे जब हिदायत ने मुझे झिझोड़कर जगाया तो बेहद बुरा लगा। रात के साढ़े ग्यारह, पौने बारह बजे तक तो हम लोग बातें करते रहे। करीब दस बजे और सब अतिथि लोग बिदा हुए, हिदायत को मैंने रोक लिया। मैंने क्या, उमेश ने बहुत जोर देकर कहा तो इस शर्त पर वह रुका कि ठीक चार बजे आई० ए० एस० भतीजे के हाथ की बनी चाय पर मिल जाय; सवा चार तक वह यहां से चल दे और पांच बजे ही पहली ट्रेन से सीतापुर चला जाय। उमेश ने हिदायत चचा की हिदायतों को अक्षर-अक्षर पालने का वचन दिया। हिदायत अली मेरा स्कूली साथी तो है ही, सन् '21 के जमाने का 'जेलिया' साथी भी है। सन् '42 तक हमने साथ-साथ पोलिटिकल मूवमेंट में काम किया। हमारी दोस्ती शब्द की सीमाओं से परे, अर्थ में व्यापक और गहरी है। कोई छल-कपट.दुराव नहीं। बड़ा खुशदिल, सच्चा और जोशीला आदमी है। इसने मेरा नाम बिगाड़कर 'अरबी शक्कर' रख दिया, तो मैं भी इसे हजामत अली कहकर पुकारने लगा। इसकी सबसे बड़ी ट्रेजेडी यह हुई कि पाकिस्तान बनने के बाद इनके ससुर साहब को वहां कोई ऊंचा ओहदा मिला। उन्होंने अपनी बेटी यानी बेगम हिदायत को यह सलाह दी कि अपने बच्चों की भलाई देखकर यहां से चली चलो। बेगम इनसे लड़-झगड़-कर बाल-बच्चों, जमा-पूंजी के साथ चल दीं। हिदायत बारह-तेरह वर्षों से एकदम अकेला है। अधिकतर अपने गांव में रहता है। इसका एक अपना छोटा-मोटा फार्म है। साल में अच्छी आमदनी हो जाती है। खेतों में मजदूरों के साथ खुद भी जमकर काम करता है। हर एक के सुख-दुख में सहज साथी। स्त्री-बच्चों के चले जाने के बाद अपने ताव में आकर दिन ब्रह्मचर्य की कसम ले ली। सचाई उसके चेहरे पर लिखी है। चार-छह महीनों में जब कभी अपने संयम सधे ड्यूटी बंधे जीवनक्रम से बोर हो जाता है, तो मेरे या अपने चचेरे भाई हैदरअब्बास के साथ दो-चार दिन शराब पीकर इल्मी बहसें करता है, कव्वालों या सत्संगी टोलियों को बुलाकर हक्कानी कव्वालियां या भजन सुनता है और फिर ताजे जोश के साथ अपने फार्म के काम में जुट जाता है। खैर।···तो ठीक सवा चार बजे हिदायत मुझसे और माया से बिदा लेकर चला गया। उमेश उसका झोला लेकर रिक्शे तक पहुंचाने गया।

सेवा और विनय से यह लड़का जहां तक बनता है, अपने गुरुजनों को सन्तुष्ट रखता है। शिवकुमार आदि आजकल के अनेक प्रभावशाली आदमियों से इसने मेरे पुराने परिचय या यश का लाभ उठाकर नए सिरे से अपने रिश्ते कायम किए हैं, अपने सेवा-व्यवहार और मधुर बानी से उनको अपने वश में कर रक्खा है। यह गुण मुझमें भी था और अब भी है, लेकिन मैंने अपने इस गुण की बदौलत कोई दुनियावी लाभ नहीं कमाया। चाहता तो आज मिनिस्टर होता···पर होता कैसे, भाग्य भी आखिर कोई चीज है। फिर वही भाग्य—भाग्य क्या सचमुच कोई चीज है? क्या मैंने स्वयं अपना भाग्य नहीं बनाया?

एक तरह से 'हां' कह सकता हूं और दूसरी तरह से 'नहीं'। मैं स्वेच्छा से राष्ट्रीय आन्दोलन में पड़ा, काम किया, जेल गया, यातनाएं सहीं, उपन्यास-लेखक बना। सन सैंतालिस के बाद अपने उन बुजुर्ग नेताओं के पास कुछ मांगने नहीं गया, जो मुझे बेहद चाहते थे और उस समय अपने आत्मीय और प्रियजनों के भाग्य-विधाता बन गए थे। मैं अपने स्वाभिमानवश घर ही में बैठा रहा, सोचता था, वे

मुझे अब बुलायेंगे, अब बुलायेंगे और मैं भी कोई पद पा जाऊंगा। पर ऐसा न हुआ। मैं खिन्न हो गया, फिर राजनीति में खुशामदी कौवों और गधों की भरती होते देखी, उन्हें शान-शौकत और रौबदाब के ओहदों पर देखा तो गहरी वितृष्णा हो गई। राजनीति से एकदम विमुख होकर मैं साहित्य के क्षेत्र में दत्तचित्त होकर काम करने लगा। यह सच है कि मेरे स्वाभिमान ने मुझे स्वेच्छा से दुनियाबी सफलता की ओर बढ़ने से रोक लिया, चाहता तो वैसा सौभाग्यशाली बन जाता।

पर यह न चाहना क्या किसी भाग्यविधान के वशीभूत होकर नहीं हुआ? मुझमें इतना तीव्र स्वाभिमान न होता? या मान लीजिए उस समय ब्रह्मदेव जी मुझे बुलाकर कोई सम्मान सौंप देते और एक बार उस सम्मान को पाकर उसे बनाए रखने की चेष्टा में उसी तरह क्रमशः बदलता चला जाता, जैसे कि डाक्टर नारायण बदल गए।···और हां, यह भी क्या संयोग की बात नहीं कि ब्रह्मदेवजी ने डा० नारायण को बुलाकर इलेक्शन में खड़ा किया और सभासचिव बना दिया। ब्रह्मदेवजी मुझे भी बुला सकते थे। आखिर मेरी, डाक्टर नारायण और शिव-कुमार की त्रिपुटी मशहूर थी। एक जमात में हिदायत अली भी हमारी जांबाज़ों को टोली में शरीक था। सन् '42 में न आ सका। सन् बयालीस में हम तीनों के नाम बच्चे-बच्चे की जबानों पर थे। फिर कैसे मेरा नाम ही इनाम पानेवालों की सूची से छूट गया? मैं अच्छी तरह से जानता हूं, जान-बूझकर न तो ब्रह्मदेवजी ने ऐसा किया और न मेरे इन दो मित्रों ने।—बस छूट ही गया—और छूटा तो मेरे मन में गलतफहमियां भरीं, कुण्ठा और क्रोध आया और मैं विद्रोही बन गया। ब्रह्मदेवजी का सबसे उग्र आलोचक बन गया और इस तरह सदा के लिए अपनी किस्मत को दफन कर दिया। यह परिस्थितियां भाग्य से ही बनीं। यह मेरे भाग्य का ही दोष है, जो मेरा एक पुत्र इस प्रकार पतन के मार्ग पर चला गया और एक लड़की राजरोगिणी हो गई। खैर होगा, ये 'गैबी' मसले मेरी समझ में नहीं आते और···वैसे देखा जाए तो मैं किस भाग्यशाली से कम हूं। इतना यश और मान पाया, एक लड़का आई०ए०एस० हो गया, एक बेटा और एक बेटी गो छोटी हैसियत में सही, पर खाते-कमाते खुश हैं, पोते-पोतियां, दोहते-दोहतियां—सभी कुछ तो है, गृहिणी सुशीला और आज्ञाकारिणी है। मैं सचमुच भाग्यवान हूं।

नौ

कल रात की गाड़ी से उमेश अपने भतीजों और भावज को लाने के लिए सीतापुर गया है। आज शाम तक उन लोगों के आ जाने की संभावना है। अपने पोतों के आने की प्रतीक्षा में मेरा मन उल्लसित हो रहा है। बड़कू के बच्चे आमतौर पर गोरखपुर में ही रहते हैं। अरुणा के बच्चे साल में भी हमारे यहां महीना पन्द्रह रोज के वास्ते आ जाते हैं। भवानी का बड़ा लड़का जयन्त अवश्य ही कुछ दिनों मेरे पास रह सका। लेकिन कभी ऐसा नहीं हुआ कि मुझे अपने सब पोते-पोतियों,

दोहते-दोहतियों के साथ कुछ दिन रहने का अवसर मिला हो। यों तो मुझे दूसरे बाबा-नानाओं की तरह बुढ़ापे में सिर्फ बच्चे खिलाने की ही तमन्ना नहीं रही। फिर भी इच्छा तो होती ही है कि दिन में कम-से-कम घण्टे-दो-घण्टे के लिए मैं उनके साथ खेलकर हरा-ताजा हो सकूं। मैं अपने किसी पोते को अपने बाबा की तरह रख सकता हूं ? शायद, यह असंभव है। मेरे बाबा को कोई और काम नहीं था। वे हर घड़ी मेरा ध्यान रख सकते थे, लेकिन मैं इतना खाली कभी रह ही नहीं सकता; मेरे पोते अगर बराबर मेरे साथ रहें, तो वे दो ही दिनों में ऊब जाएं।···कितना अन्तर आ गया है जीवन में।

मेरे देखते ही देखते पचास-पचपन वर्षों में पुराना नया हो चला। वो कूड़े-कचरे और अंधेरे भरी गलियां अब हू बहू वैसी नहीं रहीं। शाम को सात-आठ बजते न बजते तक आम घरों के दरवाजे बन्द हो जाया करते थे। न सिनेमा थे न आज के से हजरतगंज, कनाटप्लेस के सामान सैर करने लायक चहल-पहल भरे बाजार ही। बड़ा अन्तर आ गया जीवन में। साल दो बरस में कभी-कभी कोई पारसी नाटक कम्पनी आ जाती थी। वहां गैस के हण्डों की सजावट देखकर मेरे मन पर ऐसा चमत्कार छाता था कि मानो मेरी रही-बसी दुनिया में एक नया दिन उग आया हो। आज जब कि विज्ञान की अनेक सुलभ सुविधाओं का उपभोग करता हूं, तब वह उमंग नहीं होती। अपनी दुनिया के इस नयेपन को अब हम स्वीकार कर चुके हैं। पुरानी दुनिया बड़ी तेजी से गायब हो रही है, इस बात को भी अब पूरे विश्वास के साथ अनुभव-दृष्टि से देखने लगा हूं। मेरे बाबा ने बचपन में एक बार मुझे हवागाड़ी यानी मोटरकार दिखलाने के लिए विशेष श्रम किया था। शायद छः वर्ष की आयु थी मेरी। एक बड़े नवाब साहब के यहां मोटरकार आई थी। बाबा मुझे गोद में लेकर उनकी ड्योढ़ी के आगे खड़े रहे। मोटरकार निकली और सरसराती हुई चली गई। तमाशाइयों में आश्चर्य-उत्साह भरा शोर मच गया, हवागाड़ी, हवागाड़ी। ऐसा उत्साह इधर केवल उस दिन आया, जिस दिन पहली बार रूस के स्पुतनिक उड़ने की खबर आई थी।

अपने बचपन के दिन याद करता हूं तो लगता है, कि वह दीन-दुनिया ही और थी। यह माना कि बहुत-सी गलियां और मकान अभी ज्यों के त्यों मौजूद हैं, पुराना लिबास, शहरी रहन-सहन अब भी बहुत कुछ वही नजर आ जाता है, पर इस सबके बावजूद हिन्दुस्तान अब वह नहीं रहा, जो आज से पचास-पचपन वर्ष पहले मेरे होश में समाया था।

मैंने अपना होश आरंभ होने के समय से ही लोगों के सिरों पर दुपल्ली टोपी और पगड़ी के अलावा फैल्ट हैट टोपियां देखी थीं। मैंने बड़े-बूढ़ों को भी जरी की कामदार मखमली गोल या किश्तीनुमा टोपियां पहने देखा है। हम बच्चे तो ऐसी टोपियां पहनते ही थे। नंगे सिर मैंने उस समय आमतौर पर किसी को नहीं देखा। घर से निकलने पर चाहे पैरों में जूते-चट्टी न हों, पर टोपी जरूर होनी चाहिए। हम बच्चों को समझाया जाता था कि नंगे सिर पर शैतान सवार हो जाता है। शैतान क्या होता है, यह हम नहीं जानते थे, पर यह धारणा किसी तरह हमारे मन में घर कर गई थी कि जो हिन्दुओं का ब्रह्मराक्षस है, वही मुसलमानों का शैतान है। उसके सिर पर सींग होते हैं, बड़े-बड़े दांत और नाखून होते हैं, जिसके सिर पर शैतान सवार होता है, उसे पहले बुखार आता है, फिर सन्निपात होता है, फिर वह मर जाता है और उसके बाद भूत बनकर हज़ारों-लाखों बरसों

शैतान की सवारी के काम आता है। जैसे इक्के-बहली वाले अपने घोड़ों और बैलों को चाबुक से मारते हैं, वैसे ही शैतान भी अपने भूतों को लोहे की कांटेदार चाबुक से ऐसा सड़ासड़ मारता है कि भूत लहूलुहान हो जाते हैं। मेरे मन में इस बात का ऐसा डर समा गया था कि कभी नंगे सिर घर से बाहर निकला ही नहीं। मुझे याद है, ग्यारह-बारह की आयु में जब पहली बार बंगाली बाबू वकील को अपनी गली के अन्दर नंगे सिर मांग संवारे देखा, तो ऐसी अचरज भरी खुशी की तेज फुरफुरी मेरे कलेजे से उड़ी थी कि क्या बतलाऊं। मैं मोह गया—धोती कुरता, दुपट्टा सब नफीस चिकन तंजेब का, चुन्नटदार, यानी और सब कुछ हमारे पहनावे जैसा मगर पगड़ी, फेल्ट या दुपल्ली गायब। मैंने तय किया कि अब मैं भी टोपी नहीं पहनूंगा। बाबा मर चुके थे। पिताजी थे, स्कूल में वे मास्टर भी थे। उनकी दीठ से बचना मुश्किल था। कई दिन मानसिक ऊहापोह में बीत गए। उससे तीन-चार वर्ष पहले अपनी सात-आठ की आयु में मैंने एक बार दिन में, पिताजी की अनुपस्थिति में उनके शेविंग ब्रुश और 'थ्रोटकट' उस्तरे को इस्तेमाल करने का चाव बढ़ाया। पिताजी हमारे महल्ले के उन कुछ आदमियों में से थे, जिन्होंने अपनी हजामत आप बनाने का फैशन चलाया था। मुझे उनका साबुन के गाढ़े झाग मुंह भर में ब्रुश से फैलाना, फिर उस्तरा साधकर छोटी उंगली ऊपर उठाए हुए शेव करना बहुत अच्छा लगता था, इसलिए मैंने भी अपनी कलम दुरुस्त करनी चाही। साबुन के फेन पोते, रेजर को पत्थर फिर चमड़े पर तेज किया और कलम पर उसे चला दिया—ऐसी लहरदार कलम बनी कि कई बिल्लियां पड़ गईं, कान कटा सो घाते में। मैंने तुरन्त अपना प्रयोग रोककर हजामत का सामान झटपट उठाकर जहां का तहां रख दिया और मुंह धो डाला। मगर चोरी दूसरे दिन पकड़ी गई। इसके बाद पूरे डेढ़ वर्षों तक मेरी खोपड़ी हर पन्द्रहवें दिन उस्तरे से मूड़ी जाती रही। पिताजी ने मेरी फैशनपरस्ती के जोश पर इस तरह अनुशासन का ठंडा छींटा मार दिया। अपने नंगे सिर निकलने की योजना के पीछे मुझे यही सता रहा था। सोचता, इस बार जाने कौन-सी नयी सजा मिले। मैंने अपने दो-एक सहपाठियों को, जो मेरे साथ ही साथ बंगालियों के बमबाजी भरे क्रान्तिकारी कारनामों की खबरें पढ़-पढ़कर मेरे ही समान बंगाली-भक्त हो गए थे, नंगे सिर रहने के लिए प्रेरित किया। न जाने कैसे अपनी बात के समर्थन में यह तर्क मेरे मन में समा गया कि टोपी से अक्ल बंध जाती है, खुले सिर रहने वाले लोग अधिक बुद्धिमान होते हैं, साधु-संन्यासी नंगे सिर रहते हैं, इसीलिए उनकी खोपड़ी में दिव्य विचार आ-आकर समाते रहते हैं। अंग्रेज भी नंगे सिर ही काम करने बैठते हैं, इसीलिए उनमें हुकूमत करने की बुद्धि खूब है और बंगाली जो कि हर क्षेत्र में इतने बुद्धिमान साबित हो रहे हैं, अपनी सफलता के लिए केवल खुले सिर रहने की आदत को ही यश दे सकते हैं। मेरे साथियों में बिस्सो ही सबसे पहले आगे बढ़ा। वह दूर के रिश्ते में मेरा चाचा लगता था और इस कारण वह जगत चाचा हो गया था। अखाड़े, फुटबाल के खेल और तैराकी में वह हम सबसे अधिक तेज था। मारपीट करने में हमसे बड़े लड़के की टोली में भी वह तेज माना जाता था। चाचा ने कहा—ठीक है कल से हम दोनों नंगे सिर स्कूल आएंगे। इस निश्चय से उसी दिन हमारे क्लास में सनसनी फैल गई। सभी लडके हमसे पूछते थे, "कल से बगैर टोपी के आओगे ? औ जो मास्टर साहब या हेड-मास्टर साहब कुछ कहें तो ?" यह 'तो' वाला प्रश्न रात भर मेरे मन में नाचता

रहा। कायरता की सिहरन उठती और मेरा निश्चय उसे दबा देता। घोषणा हो जाने के बाद अब मुझे पिताजी या दूसरे बड़े-बूढ़ों से अधिक चाचा और अपने सहपाठियों के तानों का भय था। दूसरे दिन स्कूल जाते समय मैंने एक चालाकी की। पुराने सन्दूक में मेरे बाबा की दो-एक दुपली टोपियां अब भी रक्खी थीं, मैंने उनमें से एक निकालकर रूमाल की तरह तह करके अपनी जेब में रख ली। लेकिन उसे पहनने का अवसर न आया। चाचा की निर्भीकता ने मुझे बड़ी प्रेरणा दी। क्लास में मेरे पिताजी ने देखा, कुछ न बोले। एक-दो मास्टरों ने हम दोनों पर छीटाकशी की। मैं तो चुप रहा, लेकिन चाचा ने ऐसे जवाब भी दिए, जिनसे सारा क्लास और खुद मास्टर साहबान तक हंस पड़े। पूरे स्कूल में चर्चा फैल गई। बहुत से लड़कों को हमारा यह विद्रोह पसन्द आया और बहुतों को यह लगने लगा कि अब शीघ्र ही किसी समय शैतान मेरे और चाचा के सिर पर सवार होकर हमें परेशान करेगा और हम अपने किए का फल भोगेंगे। खैर, वह कुछ भी न हुआ। मुझे सबसे बड़ी तकलीफ तो यह हुई कि बड़ों से जो विरोध पाने की आशा मैंने की थी, वह फलीभूत न हुई। केवल कुछ बड़े-बूढ़े छींटाकशी करके ही रह गये। मेरी विद्रोह की प्यास अधबुझी ही रह गई।

विद्रोह मेरे बचपन का नारा था। आर्यसमाज के रूप में यह विद्रोह खूब फल-फूल रहा था। मेरे पिताजी आर्यसमाजी तो नहीं थे, पर उसके बौद्धिक समर्थक अवश्य थे। उन्हें हिंदू धर्म के ढकोसलों से सख्त चिढ़ थी—पढ़ते भी खूब थे। मेरे घर में दो-तीन पत्र-पत्रिकाएं बराबर आती थीं। पिताजी उन्हें बहुत सहेजकर रखते थे। मेरे पड़ोस में ही पंडित शिवनाथ शर्मा का छापाखाना था। उनका 'आनन्द' साप्ताहिक निकला करता था। पंडितजी अध्यापक थे, सुधारक भी थे, किन्तु आर्यसमाज के कट्टर विरोधी भी थे। मेरे पिता शायद अपने पिता आदिक के विरोध के कारण आगे चलकर आर्यसमाज से दूर हट गए। आर्यसमाज ने कोरे सुधार की ही नहीं, वरन् खरी क्रांति की लहर हमारे दिलों पर दौड़ाई थी। हमारे क्षेत्र में आर्यसमाज की स्थापना होने के बाद हम किशोरों और नवयुवकों में बड़ा जोश फैल गया था। ये काली जी-वाली जी हनुमान-वनुमान सब ढोंग-धतूरे हैं—महर्षि दयानन्द ने देखा कि जो शिवजी अपने सिर पर चढ़ी हुई चुहिया को झटका देकर नहीं गिरा सकते, वो हिन्दुओं के सिर से मुसलमानों और अंग्रेजों का बोझ कैसे हटावेंगे। यह तर्क उन दिनों हमें सारे हिन्दू धर्म को कानी कौड़ी का बतलाने के लिए अपार बल दिया करता था। आर्यसमाज के पंडित बड़ी-बड़ी सभाओं में सनातनियों, मुसलमानों और क्रिस्तानों से एक साथ मोर्चे लिया करते थे। हमें इनके शास्त्रार्थों से बड़ा बल मिलता था। हवन से वायुमंडल शुद्ध होता है, वेदों में संसार का सारा ज्ञान समाया हुआ है। जर्मनी वाले हमारे वेद उठा ले गए और उन्हीं की बदौलत ये गैस के हण्डे, रेल के इंजन, सरसराती हुई जाने वाली हवा-गाड़ी या मोटरकार सब कुछ वेदों से ही आविष्कृत हुआ है। सबसे मजे की बात तो यह थी कि हम लड़के नहीं, हमारे कुछेक मास्टर लोग भी बाबू देवकीनन्दन खत्री की चन्द्रकान्ता सन्तति का हवाला देकर बड़े जोर-शोर से ये कहा करते थे अंग्रेजों की साइंस के मुकाबले में हमारे पुराने तिलिस्म भी कुछ कम नहीं थे। मुझे याद है, सन् '10 की इलाहाबाद वाली नुमाइश में हवाई जहाज के आगमन के बाद हमारे अंग्रेजपरस्त लोगों ने जब उनकी तारीफों के पुल बांधने शुरू किए, तो हमारे आर्यसमाजी जोशीलों ने पुष्पक विमान से लेकर सभी देवताओं के

विमानों तक का हवाला देकर हवाई जहाज बनाने का यश विलयातियों से छीन-कर वेदों को सौंप दिया।

क्या जोश के दिन थे वे भी। जिधर देखिए उधर ही शास्त्रार्थ। कहीं कांग्रेस, फीरोज़शाह मेहता, तिलक, गोखले, बनर्जी और वाचा की खबरें गर्माती थीं, कहीं नयी-नयी स्थापित होनेवाली मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा की; कहीं ये धार्मिक वाद-विवाद आपस में तूल पकड़कर हम लोगों में गर्मी लाया करते थे। सनातनी और आर्यसमाजी एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए कोई कोर-कसर न उठा रखते थे।

एक खैरातीलाल सुनार थे। वे जाति के तो शायद कुछ और थे, मगर अनाथ होने के कारण एक स्वर्णकार के द्वारा पाले-पोसे गये थे। स्वर्णकार महोदय की इकलौती मातृहीनता कन्या बालविधवा थी। स्वर्णकार महोदय को स्वाभाविक रूप से उसकी बड़ी चिन्ता रहती थी। आर्यसमाज की जाति-पांति-तोड़क तथा विधवा-विवाह-समर्थक नीतियों ने स्वर्णकार महोदय को बड़ा बल दिया। अपनी लड़की के भविष्य का ध्यान करके ही शायद वे विधिवत आर्यसमाजी बन गये और उनके साथ ही साथ खैरातीलाल भी। आर्यसमाजी हो जाने के बाद उनका नाम वेदलाल आर्य हो गया था। स्वर्णकार महोदय ने उन्हीं से अपनी बेटी का पुनर्विवाह कर दिया। वेदपाल आर्य मुझसे लगभग चौदह-पन्द्रह वर्ष बड़े, दुबले-पतले रूखे-सूखे स्पिरिचुअल चेहरेवाले व्यक्ति थे। आर्यसमाज के वेतनभोगी प्रचा-रक थे। उनका सारा समय वेद-प्रचार के काम में ही जाता था। अकसर दौरे पर बाहर ही रहा करते थे। उनकी पत्नी को सन्तान की बड़ी कामना थी और इसी फेर में वे छिपकर किसी साधु या मौलवी की शरण में गयी थीं, जहां से उनके पति के दो-एक मित्र उनको मनाकर लौटा लाए। मेरे बचपन की बात है, इसलिए ठीक-ठीक तो मालूम नहीं, पर उस जमाने में सनातनियों ने जो हुल्लड़ मचाया, उसके अनुसार घटना यह घटी कि वेदलालजी के आर्यसमाज सहयोगियों ने उनकी धर्मपत्नी को नियोग धर्म की महिमा समझाकर गर्भवती बना दिया। जब पतिदेव को यह पता चला, तो उन्होंने अपनी पत्नी को कलंकिनी कहकर लांछित किया। नियोग द्वारा धार्मिक रीति से सन्तानवती होनेवाली आर्यपत्नी ने अपने पति की दुर्बलता को खुलेआम लताड़ा। वेदलालजी की बड़ी जग-हंसाई हुई और इसी प्रतिक्रिया में वे मुसलमान हो गये।

ये सब पुरानी-पुरानी बातें याद आती हैं, तो आज के जीवन में मुझे कहीं एक प्रकार का खोखलापन भी लगता है। एक ओर जहां मुझे अपना आज का भारत पहले से कहीं अधिक उन्नत और वैभवशाली लगता है, वहीं मुझे अपने बचपन और जवानी के दिनों से यह देश कहीं अधिक खोया हुआ निष्प्राण और निकम्मा लगता है। मेरे बचपन में सदियों से सोता हुआ राष्ट्र फिर से करवटें बदलने लगा था। परिवर्तन के क्रम से अच्छाइयां और बुराइयां दोनों ही साथ-साथ तेजी से आगे बढ़ रही थीं। हम अपने लिए बहुत तेजी से नयी दुनिया ला रहे थे। ''लेकिन आज ?—आज़ादी मिल गयी है, बड़े-बड़े बांध, नदी घाटी योजनायें, बड़ी-बड़ी कल-पुरजे बनानेवाली फैक्ट्रियां यह सब कुछ थोड़ा बहुत अवश्य हो रहा है, लेकिन आमतौर पर हमारे शहरी बाबू और नौजवान किस कदर निष्क्रिय, अस्वस्थ, विचार-शून्य, निकम्मे और परावलम्बी हो रहे हैं। मुझे हैरत होती है कि आज हर तरफ मांगे पूरी करने के नारे ही अधिकतर लगते हैं, स्वयम्

हमारे भी कुछ कर्त्तव्य हैं, जिन्हें पूरा करने की बात दिमाग से एकदम भुला दी जाती है।

भवानी के बच्चे आ गये। आज सुबह से वहाने-ब्रे-बहाने से में कई बार घर के अन्दर हो आया हूं। ननिहाल अभी बच्चों के लिए एकदम नई है। उनकी ज़िद और चीख-पुकार से मेरा घर गूंज रहा है। उषा को मैंने ध्यान से देखा, यहां आ जाने से उसके चेहरे पर निश्चय ही संतोष की कुछ रौनक सी आ गई है। इन औरतों का मन भी अजब होता है। विवाह होते ही स्वयम् उनके मनों में भी अपने पीहर के लिए परायेपन का भाव आ जाता है। लेकिन ऐसा मानस-परिवर्तन शायद सब स्त्रियों में नहीं हो पाता। बहुत सी औरतें मैंने ऐसी भी देखी हैं, जो जन्म भर अपने मैके के माहात्म्य को नहीं भूल पातीं। मेरा ख्याल है कि धनाधीशों अथवा सत्ताधारियों की लड़ैती बेटियां ही शायद अधिकतर इस मनोवृत्ति की होती हैं। जो हो, बहुओं की दृष्टि से मैं अब तक सौभाग्यशाली हूं। बड़कू की बहू शोभा भी मेरे और माया के प्रति बड़ी श्रद्धा रखती है। यह ऊषा विजातीय होने पर भी हमसे खूब घुल-मिल गयी। जिन दिनों भवानी उससे पहले-पहल विमुख हुआ था, उन दिनों उसके प्रति मेरा ममत्व अगाध रूप से बढ़ा। आज सुबह से ही भवानी की ओर मन बार-बार दौड़ जाता है। इतना नालायक निकला···लेकिन क्या अकेला मेरा बेटा ही नालायक है? कुण्ठित और असन्तुलित अभिलाषाएं न जाने कितने अच्छे भले लड़कों को तबाह कर देती हैं। कैसी अजीब बात है कि मेरा भवानी अच्छी-भली राह पर जाते-जाते एकाएक गलत रास्ते पर मुड़ गया। यदि वह प्रेम के चक्कर में न पड़ता, ऊषा के किसी दूसरे से विवाह हो जाने की आशंका उसे न रहती, वर्ष दो वर्ष के बाद उससे विवाह करता, तो शायद यह बुरी नौबत न आई होती। हमारी सामाजिकता में लड़के-लड़कियों का दोस्त बनकर रहना बुरा माना जाता है। जातिगत बन्धनों से भी नौजवान लड़के-लड़कियां अधिकतर सनसनाए-थर्राए हुए रहते हैं, यह विपरीत परिस्थितियां यदि हमारे समाज से चली जाएं, तो मेरे भवानी जैसे अनगिनत जवानों को इस तरह विकृत विद्रोही बनने की नौबत न आये।···क्या करूं कि ऐसा सुनहरा दिन हमारे समाज में जल्दी से आ जाए।

मन में अपने उपन्यास की युगल जोड़ी रानी और रमेश की कल्पना जाग उठी। अपने उपन्यास का नया परिच्छेद लिखने की इच्छा भी जाग उठी।

पास होने की बधाई देने के बहाने रानी से मिलकर तथा उसके पिता और दादी को 'बहन जी' से रानी को आगे की पढ़ाई के लिए सरकारी या ग़ैर-सरकारी सहायता दिलाने का आश्वासन देकर रमेश सीधे खन्ना साहब के घर गया।

खन्ना साहब—श्री आनन्द मोहन खन्ना सुप्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक 'इण्डिपेण्डेण्ट' के सम्पादक, शहर की एक मानी-जानी हस्ती हैं। प्रदेश के सर्वमान्य नेता और 'इण्डिपेण्डेण्ट' के संस्थापक—डॉ० आत्माराम के दाहिने हाथ हैं। उनके घर पर प्रति रविवार नवयुवकों का अध्ययन-चक्र चलता है। रमेश पिछले डेढ़ वर्षों से उसमें बराबर सम्मिलित होता है। अपने क्षेत्र के इस एकमात्र अध्ययनशील औ-

लगनवाले नवयुवक सदस्य के प्रति खन्ना साहब के मन में एक कोमल भाव घर कर चुका है। श्रीमती खन्ना भी उसके प्रति ममत्व रखती हैं। श्रीमती कुसुमलता खन्ना, जिन्हें इस क्षेत्र के सभी छोटे-बड़े आदरपूर्वक बहनजी कहते हैं, अनन्य लगन वाली सामाजिक कार्यकर्त्री हैं। पिछड़े महल्लों की पिछड़ी हुई लड़कियों और औरतों के लिए वे साक्षात् मसीहा है। खन्ना दम्पति चूंकि निःसन्तान हैं, इसलिए उनका वात्सल्य भाव उमड़कर हर नौजवान लड़के-लड़की को सहज ही प्राप्त होता है।

रमेश ने बहनजी से कहा कि मेरी बहन की सहेली है। बड़ी सुशील, बड़ी प्रतिभावान, एकदम भारतीय नारी का प्रतीक, सदा फर्स्ट-सेकेण्ड आनेवाली बाल-विधवा है बेचारी, और गरीब तो इतनी है कि पूछिए ही मत।

सहायता का केस बनाते हुए श्रीमान् रमेश गौड़ साहब ने रानी की भावभीनी प्रशंसा ऐसी तन्मयता के साथ की कि बहनजी सत्य स्पर्श किए बगैर न रह सकीं, बोलीं : "जान पड़ता है कि श्री शिरीमान गौड़ साहब को उस लड़की से प्रेम हो गया है, तभी जनाब कविता में उसकी वकालत कर रहे हैं।"

शर्म के मारे रमेश का चेहरा लाल हो उठा, खन्ना साहब भी वहीं बैठे थे। उनकी उपस्थिति से भय की सकपकाहट के कारण उसके माथे और होंठों पर पसीने की बूंदें झलक आईं, उत्तर देते न बना, "नहीं बहनजी, नहीं बहनजी" करने लगा। बहनजी बोलीं : "धत्तेरे की, बैकवर्ड हिन्दुस्तानी लड़का कहीं का। प्रेम जैसी पवित्र चीज भला, अपने मां-बाप से छिपानी चाहिए।" राकिंग चेयर पर मद्धिम-मद्धिम झूलते हुए खन्ना साहब बोले : "ओ विलायती मां, तू चौक में बैठकर चौक ही के एक नौजवान को ये उपदेश दे रही है?"

बहनजी सधे स्वर में बोलीं : "चौक हो या दिहात, हिन्दुस्तान भी अब बदल कर ही रहेगा। तुम नहीं समझ सकते जी, ऐसी बातें छिपाई जाने के कारण ही हमारी सोसाइटी में इतनी गन्दगियां फैल रही है। मैं उन गंदगियों के मुहाने बन्द कर देना चाहती हूं।"

खन्ना बोले : "ये गन्दगियां आज की तो हैं नहीं—"

"तुम क्या जानो, ये गन्दगियां आज ही की हैं। और बीते हुए कालों की बुराइयों को भी अपने अन्दर समेटे हुए हैं। कल तक या तो बलात्कार होते थे या चोरी-छिपे के पाप। और करनेवालों की चेतना में वे पाप के रूप में ही रहते थे। मगर आज उस पाप को प्रेम कहकर नकली पालिश से चमकाया जाता है। ये गन्दगी तभी दूर होगी जब कि हमारे लड़के-लड़कियां झूठी शर्म का ढकोसला तोड़कर खुलेआम अपनी दोस्ती को बढ़ावा दें।"

खन्ना बोले : "लता, तुम्हें लन्दन में हाइड पार्क की वह शाम याद है जब हमने घूमते हुए एक-दो नहीं, लगातार चार-पांच ऐसे नौजवान जोड़े देखे थे, जो बेंचों पर बैठे या गलबहियां डाले पेड़ों की कतार के किनारे से गुजरते हुए दस-दस कदम पर रुककर आपस में एक-दूसरे के बावले चुम्बन ले रहे थे। तब तुमने—"

'हां, तब मैंने जो कहा था वो याद है। प्रेम के ऐसे रूप को मैं एकांत ही की चीज़ मानती हूं, बिल्कुल पूजा ऐसी ही चीज़ मानती हूं और उसका दिखावा मुझे बेहद-बेहद बुरा लगता है—उतना ही बुरा जितना कि नये हिन्दुस्तान के अपने इन पिछड़े क्षेत्रों के अन्दर मुझे लड़के-लड़कियों की दोस्ती छिपाना या फौरन ही

पाप-चेतना के साथ जोड़ देना बुरा लगता है। हम हिन्दुस्तानी अगर इसे आदर्श बात मानते हैं—और मानते ही हैं—तो हम शर्तिया असभ्य हैं, जाहिल हैं, पापी हैं। किसी भी हालत में हम भले आदमी नहीं हैं, चाहे हिन्दू हों या मुसलमान।''

बहनजी ऐसे झड़पदार स्वर में बेझिझक बोलती हैं। उनके तेज के आगे बड़े-बड़े बहसियों के छक्के छूट जाते हैं। बहरहाल रमेश के मन पर बहनजी की इन बातों की अभूतपूर्व प्रतिक्रिया हुई। वह सोचने लगा, ठीक ही तो है। मैं रानी के प्रति अपने इस पवित्र भाव को सामाजिक चोरी या मानसिक पाप की वस्तु क्यों बनाऊं? अन्तर्जातीय विवाह या विधवा-विवाह अभी हमारे यहां बुरे तो माने जाते हैं, लेकिन इतने बुरे भी नहीं माने जाते। होने तो लगी ही हैं ऐसी शादियां। काश कि मैं और रानी योरपीय जवानों की तरह खुले आम साथ-साथ घूम सकें। एक दूसरे को सहायता दे सकें, शादी से पहले इतने घुल-मिल जाएं कि हमें अपना संसार चलाने में तनिक भी भारीपन या अड़चन न महसूस हो।···यहां तो हालत यह है कि अगर जवान भाई-बहन भी साथ निकलते हैं, तो लोग उन्हें पहले शक की निगाह ही से देखते हैं और ऐसा करनेवाले लोग अपने-आपको श्रेष्ठ, कुलीन और परम पवित्र हिन्दू-मुसलमान धर्मों का मूर्तिमान प्रतीक मानते हैं। अपने हिन्दू-मुसलमानों की इन करनियों से ही यदि हम अपने सामाजिक आदर्शों को नापें, तो यह लगता है कि ये दोनों ही धर्म निहायत ही गन्दी मनोवृत्तियों से अपने अनुयायियों की आत्माओं का हवन करने में ही आर्थिक मदद देते हैं···

रानी के प्रति अपनी प्रेम-भावना को सामाजिक चोरी बनाने की खीझ अपने देश के सामाजिक सदाचार की मान्यताओं पर उतरता हुआ रमेश जब रानी के घर पहुंचा, तो रद्धूबाबू से मालूम हुआ कि रानी अपने चाचा के यहां चली गयी है। रुई के बोरों के बहाने उस समय रद्धूबाबू के घर में पुलिस के सिपाही मजदूर बने हुए अपने हथियार ला रहे थे। रमेश निराश लौट गया। दूसरे दिन रानी के घर से ही डाकू पकड़े जाने की खबरों ने उसे ऐसा उल्लसित किया, मानों स्वयं उसकी रानी ही ने बूटासिंह डाकू को पकड़ा हो। रद्धूसिंह को बधाई देने के बहाने रमेश उनके घर गया, रद्धूबाबू गली में ही मिल गये। मजमे से घिरे थे। शाम को सरदारजी के भेस में अपने डी० एस० पी० कजिन की घर आने की घटना से लेकर बूटा के मारे जाने तक की सारी बातें बड़े जोश से सुना रहे थे। सारी बातें इस ढंग से बखान रहे थे कि मानो पूरी योजना बनाने और डाकुओं के पकड़ने का श्रेय उन्हीं को हो! रमेश रद्धूबाबू की इन शेखियों पर भी निछावर हो रहा था। क्यों न हो, रद्धूबाबू आखिर उसकी रानी के पिताजी थे। हालांकि रद्धूबाबू ने विशेष रूप से उसकी ओर ध्यान न दिया। बड़ी देर के बाद, भीड़ छंट जाने पर ही उसे रद्धूबाबू से बातें करने का अवसर मिला। पहली बात गद्गद स्वर में यही कही थी कि आपकी बहादुरी के चर्चे इस समय घर-घर में फैले हैं। बूटासिंह जैसे अन्तरप्रादेशिक कुख्यात डाकू के गिरोह को पकड़ना कोई आसान काम नहीं था। रमेश के द्वारा की गयी अपनी इस गहरी खुशामद से रद्धूबाबू स्वाभाविक रूप से बड़े ही प्रसन्न हुए और उस प्रसन्नता के जोश में उन्होंने दुबारा अपना आल्हा अलापना शुरू किया। रमेश इस समय उनकी प्रशस्तियों में रुचि नहीं रखता था। वह रानी के सम्बन्ध में सुनना चाहता था, सुनाना चाहता था। बोला: ''मैंने

अभी-अभी ये तमाम बातें आप ही के श्रीमुख से सुनी हैं। सच मानिए, मेरे तो रोंगटे खड़े हो गये थे। मैं समझता हूं, शायद इसीलिए रात में रानी और परिवार के लोगों को अपने कजिन के यहां भेज दिया गया था आपने।

"हां और नहीं तो क्या—"

"जी हां, वही तो, ये सब बड़ी दूरन्देशी की बातें हैं। आप जैसे अनुभवी बुजुर्ग ही सोच सकते हैं।"

"और भई, हमारे फादर जो थे वो डी० एस० पी० थे। ये सत्रुघन, अंगद वगैरा हमारे कजिन लोग सब उन्हीं के सिखाये-पढ़ाये हुए हैं।"

जल्दी से रमेश बोला: "जी हां, वो तो मैंने आपकी बेटी को अपनी बहन के ब्याह में काम करते देखकर ही समझ लिया था कि ये संस्कार किसी बहुत ऊंचे खानदान के ही हैं। मेरी माताजी और भी तमाम औरतें रानी की तारीफें करते अब तक नहीं अघाती हैं। मैंने कल बहन जी यानी यही कि अपनी मिसेज़ खन्ना से जब इनकी स्कालरशिप के लिए बात चलाई, तो फौरन बोलीं कि वही लड़की, जो तुम्हारे यहां बहुत काम कर रही थी। मैंने कहा: "जी हां, वो कुंअर रद्धूसिंह-जी की लड़की है, ग्रैण्डफादर उसके डी० एस० पी० थे" तो बड़ी खुश हुई, कहा, कि रानी बाला को उसकी मदर या ग्रैण्ड-मदर किसी के साथ फौरन ले आओ, मैं बात कर लूं, वो जो सहायता चाहेगी, मैं दूंगी।

रद्धूबाबू सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, कहा, "भैया, आप जीते रहें, बड़ी मदद की हम लोगों की आपने। सी० टी० कर लेगी तो मास्टरी करके अपना भी गुजारा कर लेगी और अपनी बहनों को भी पाल लेगी। बड़ी फिकर रहती थी इस बात की मुझको। मैं मरना नहीं चाहता फिलहाल, लेकिन भैया तुमसे सच्ची कहता हूं, इस बात की चिन्ता तो होती ही है कि अब मैं छप्पन बरस का हो गया हूं।" कहते हुए उनका चेहरा गहिर गंभीर हो उठा। कहने के बाद वे खोई आंखों से ऊपर की ओर ताकने लगे। रमेश के संवेदनशील मन को रद्धूबाबू की वेदना भरी गम्भीरता ने छू लिया। रानी के सम्बन्ध से रानी के पिता का दर्द अपना सा लगा। अपनेपन में आते ही मनोबिन्दु में रानी के पिता अपने पिता होकर झलके। विरोधाभास में स्वयं अपने पिता की निष्क्रियता खल गयी—हमारे बाबू अपनी फैमिली के लिए इस तरह नहीं सोचते। इस तरह सोचनेवाले रद्धूबाबू उसे उस क्षण महान् लगे और एक 'महान् आत्मा' को पीड़ा-मुक्त करने के लिए जोश भरे स्वर में रमेश ने कहा: "ये सब बातें आपको अभी सोचनी भी न चाहिए। अस्सी पिचासी बरस तक के बुड्ढे गली-गली में नज़र आते हैं और फिर हम लोग आखिर हैं किस दिन के लिए। हर तरह से आपकी सेवा करेंगे।"

रद्धू बाबू ने भावावेश में आकर रमेश को अपने कलेजे से चिपका लिया, बोले: "जीते रहो भैया, दुनिया अब भी सतजुगी लोगों से खाली नहीं हुई। यही तो मन का एक सहारा है। ऐसे ही लोग साकछात नारायण सरूप होते हैं।"

दूसरे दिन रानीबाला अपनी दादी के साथ बहनजी से मिलने गई। बड़ी बातें हुईं। बहनजी ने कहा कि रानी अगर शाम को दो घण्टे उनकी एक संस्था के कागज-पत्र संभाल दिया करे, तो वे उसे पच्चीस या तीस रुपये की रकम छात्रवृत्ति के अलावा और दिला दिया करेंगी। अन्धे को आंखें मिल गयीं। रानी की दादी ने बहनजी को जी भरकर असीसा।

दूसरे दिन से रानी बहनजी के यहां जाने लगी। रमेश को इससे बढ़कर अपने

श्रम का और कोई पुरस्कार मिल ही नहीं सकता था।

पिछले पांच-सात वर्षों से, जवानी का होश सम्हलने के साथ ही साथ रानी का मन एक ऐसे डिब्बे में बन्द हो गया था—जिसके तले में जीवन का स्पर्श था और ढक्कन में मृत्यु की घुटन। उसकी संग-सहेलियां अपनी जवानी का स्वागत करती हुई रसलचीली होने लगी थीं। आपस में परनिन्दा से घुसफुस बातें शुरू होतीं : "मालती के पास गब्बोमल के हाते वाले किशन की चिट्ठियां आती हैं।—अरे नहीं, झूठी बात।—अरे सच्ची, तेरी कसम, तोशी ने अपनी आंखों से देखी हैं। उसके जामेट्रीवाक्स में रक्खी थीं। तोशी पढ़ने लगी तो इतने में मालती ने देख लिया। झपटकर छीन ली।···हिं: हिं: लिखा था, मेरी प्राण प्यारी मालती—हाय राम, मालती ऐसी भुतनी को प्राण प्यारी लिखा?—तो किशन ही ऐसा कौन-सा बड़ा सुन्दर है।—खैर बड़ा सुन्दर न सही, मगर सुन्दर तो है ही।—क्या तुम्हारा भी जी ललच आया?—मेरा क्यों, तेरा ही ललचा होगा।' इस तरह की बातों का बाहुल्य आयु के साथ बढ़ता गया। रानी सुनती, उदास हो जाती। उसके लिए यह बातें दुखदायी थीं। उसकी सहेलियां कहती हैं, अब विधवा होना समाज में कोई पाप नहीं माना जाता। फिर से शादियां हो जाती हैं। रानी का विधवा होना उसकी सखियों को विद्रोहिणी बनाता था। सच ही तो, उसके वैधव्य के माने ही क्या आखिर? तेरह बरस की उमर में विधवा हो गई। झलक भर देखे हुए पति की झांई-सी सूरत भी उसके मन से मिट चुकी थी। अपने अन्तर विद्रोह के क्षणों में रानी अपने-आपको विधवा न मानकर कुंवारी कन्या ही मानती थी। लेकिन यह विद्रोह चमत्कार की तरह फौरन गायब भी हो जाता था। वह जानती है कि कुंवारी कन्या की तरह उसका फिर से ब्याह नहीं हो सकता। उसके पिता ऋषि-मुनियों के पवित्र धर्म और अपने स्वर्गीय कोतवाल पिता के ऊंचे नाम की दुहाई देकर बाल विधवा रानी का पुनर्विवाह न करने की घोषणा चार बार प्रसंग-वश कर चुके थे। और पिता की मर्जी के विरुद्ध वह कुछ भी नहीं करती, हालांकि कई बार उसके मन में यह बात उठ चुकी है कि बाबू ने फिर अपना पुनर्विवाह क्यों किया। पुरुष के लिए यह पाप क्यों नहीं है? अम्मा आखिर मुझसे कौन बहुत बड़ी हैं, मैं उनसे सिर्फ एक ही साल तो छोटी हूं···इस प्रकार का गुप्त विद्रोह उसे मन ही मन कभी-कभी सताता था और उसके बाद ही उसे अनुभव होता कि वह एकदम अशक्त है, दीन है—उसकी अपनी कोई भी मर्जी होकर भी नहीं है।··· दसवें दर्जे की परीक्षा देने के बाद उसकी पड़ोसिन और सहपाठिनी उर्मो की शादी हुई। उर्मो का पति उसे बहुत प्यार करता है। रानी ने स्वयं देखा है, वह उर्मो को हाथों पर रखता है। उर्मो राजरानी की तरह हुकुम चलाती है। वह भी उसी के समान बिना मां की लड़की है, अपने मैके में, सौतेली मां के अनुशासन में उपेक्षिता-सी, दबकर रही। अक्सर दुःख के मारे अपनी सहेलियों के आगे घुटघुट कर रोया करती थी, मगर अब कितनी सुखी है। इण्टर में सरोज शर्मा उसकी सहपाठिनी हुई। सारे घर की इच्छा के विरुद्ध उसके पति ने उसे हाईस्कूल का इम्तहान दिलाया, रोज़ उसे साइकिल पर बिठला के कालेज पहुंचाया करता था। सरोज और उसके पति दोनों ही एक-दूसरे पर अपनी जान निछावर करते हैं, एक-दूसरे के बिना खाते तक नहीं, कोई काम नहीं करते, वो कहती है, उनसे पूछ लूं, वह कहते हैं, उनसे पूछ लूं। रानी अपने ही घर में देखती, रुपया-टका घर-गिरस्ती की कुंजियां सब उसकी सौतेली मां के ही अधीन रहती हैं; दादी का हुकुम चलता

अवश्य है, मगर अम्मा की मर्जी का मूल्य भी घर में कम नहीं। अकेले में दादी अपनी बहू से खीभकर कहा करती हैं कि दुहाजू की जोरू जब तलक सब के सामने मरद के पलक हिंडोले चढ़के न दिखलावे, तब तक पता कैसे लगे कि दुहाजू की घरैतिन है। अपने चारों ओर आशाओं-विश्वासों से फले-फूले प्रेम-चाहना के बाग-बगीचों को देख-देखकर उसके मन में हूक उठती और जीवन निःसार लगता था, अपने अकेलेपन की पीड़ा उसे बरछी की तरह भेदती थी।

लेकिन रानी अपने-आपको बरबस उस ओर से मोड़कर अपने सांस्कारिक ठकुरैती हठ के साथ पढ़ने-लिखने में ध्यान लगाती थी। बिना किसी के सिखाए हुए ही उसने नीची नज़रों स्कूल की राह पर आना-जाना आरंभ किया। वह किसी को देखेगी ही नहीं। वह अपने मन को भरमने-भटकने नहीं देगी। रास्ता चलते हुए अपनी सहेलियों के साथ उसे भी मनचले आवारा लड़कों की फब्तियां सुनने को मिलतीं। फर्स्ट इयर तक किसी लड़के ने विशेष रूप से उसकी ओर ध्यान न दिया। यह उसे और भी खलता था। उसे अपनी आकर्षणी शक्ति के प्रति अनास्था हो गई थी। सखियां भले ही निन्दा के रूप में सही, अपने प्रति आकर्षित होने वाले लड़कों का जिक्र करतीं—'अमुक तो मेरे घर के दरवाज़े से ही मेरा पीछा करता है, अमुक ने राह चलते मेरी बांह में चुटकी काट ली या अमुक बीच की दो छतें फलांगकर अपने घर से मेरे घर एक रात आ गया था। बड़ा बदमाश है। वह जानता है कि ऊपर वाले छोटे कमरे में मेरा स्टडीरूम है। दैया रे दैया, उसकी खुशामदों से तो मैं तंग आ गई।' अपनी कई सहेलियों द्वारा बखाने जानेवाले ऐसी छेड़छाड़ के अनुभवों से भी वह शून्य थी। और जैसे उसकी इस मनोभावना की पूर्ति के लिए ही नियति ने फर्स्ट इयर में उसका पीछा करनेवाला एक आवारा युवक भेज दिया।

रानी उसकी दीवानगी से तंग आ गई थी। सुबह घर से निकलते ही गली में वह उसकी प्रतीक्षा करते हुए मिलता, कॉलेज तक साथ-साथ जाता, शाम को वहां से छुट्टी होने पर फिर दिखलाई पड़ता था। गली में उसके घर के सामने ही सुबह से रात तक प्रायः वह डटा ही रहता। रानी उससे तंग आ गई थी। आरंभ में उसके पीछा करने पर उसे एक प्रकार का सन्तोष अवश्य मिला था, परन्तु शीघ्र ही वह डरने लगी, ऊब गई। उस लड़के की बातें भी इतनी भोंडी होती थीं कि उसे सुनकर अच्छा नहीं लगता था। झुंझलाहट होती थी।

एक दिन रानी ने अपने घर के ऊपर वाले कमरे से छिपकर उस लड़के की एक झलक भी देखी। बड़ा छिछोरा, मुहांसों से भरे फीके चेहरे वाला, छैल चिकनिया, बत्तमीज-सा छोकरा था। एक बार मन्नो के यहां गई थी, रास्ते भर उस लड़के ने उसके साथ-साथ चलने और अपनी विरह रामायण बखानने का नया पैंतरा दिखलाया। रास्ते भर रानी का जी चाहता रहा कि चप्पल उतारकर उसे मारे। लेकिन यह कर न पाई। सोचा, बेकार का हंगामा खड़ा हो जाएगा। ज्योंही वह मन्नो के घर में घुसने लगी कि नितान्त सूनी गली का लाभ उठाकर विरह व्यग्र प्रेमी ने उसकी बांह पकड़ ली। रानी ने उससे जूझते हुए जोर से मन्नो को आवाज़ दी। महीनों से पीछा करते-करते प्रेमी महोदय उस दिन कुछ हठ पर ही चढ़ गए थे। रानी के चिल्लाने पर भी उन्होंने अपने आलिंगनाग्रह की लपटा-झपटी न छोड़ी। तब तक मन्नो-पन्नो आ गईं, राजेश और रमेश भी उसके पीछे भागे। गली के नुक्कड़ पर प्रेमी महाशय गिरफ्त में आ ही गए और फिर तो वे

जनक्रोध की लपटों से झुलस-झुलस गए। इतने तमाचे पड़े कि मुंह सूज गया। बुशशर्ट फटी, पतलून गली की धूल-कीचड़ में लिपटकर घिनौनी हो गई। रमेश ने उसे यहीं तक न छोड़ा, उसकी गरदन पकड़कर पीछे से ढकेलता हुआ अपने दरवाजे तक लाया। रानी को ऊपर से बुलाकर उसके चरणों में दण्डवत प्रणाम करवाया और तभी उसे मुक्ति दी। एक मजनू की पिटाई से बहुत दिनों तक गलियों में शान्ति रही। रानी के मन में रमेश के प्रति आदर की भावना ने तो उसी दिन से घर कर लिया था, किन्तु उसके प्रति यह प्रेमाकर्षण स्पष्ट रूप से मन्नो के विवाह के दिनों ही में जागा और एक बार नारी-जीवन की भूख जग उठी, तब उसे रोकना कठिन हो गया। रमेश के अन्दर उसने अपना इच्छित नायक देख लिया था। बात उसके मन में इतनी स्पष्ट हो चुकी थी कि अब तो पिता की अनिच्छा का भय भी उसके मन से जूझते-जूझते क्रमश: भागने लगा था। उसके सामने अपने भविष्य की कल्पना करीब-करीब साकार हो चुकी थी। उसकी बड़ी तबियत होती थी कि किसी तरह घंटे भर का एकान्त समय मिले और वह रमेश से बात कर ले। मन में यह भय भी कभी-कभी उपजता था कि उसका यह जीवनाधार उससे छूट न जाए।

बहनजी के घर जाने का क्रम चल पड़ने पर एक बात उसके हक में यह अवश्य हो गयी थी कि कम से कम प्रति शनिवार की शाम खन्नाजी के अध्ययन-चक्र में रमेश से उसकी भेंट हो ही जाती थी, हालांकि बात करने का कोई खास अवसर नहीं मिलता था। इसलिए आंखें बड़ी तड़प के साथ एक-दूसरे के दिलों में अपनी मनोव्यथा उंडेला करती थीं। बहनजी के यहां जाते हुए लगभग तीन सप्ताह बीत चले थे। रानी के घर में पैसों के अभाव से फाके की नौबत आ गई थी। तीसरे हफ्ते के शनिवार को रानी भूखी ही काम पर आती थी। उस दिन वो बड़ी बेसब्री से रमेश के आने की प्रतीक्षा करती रही। रानी के मन में आंसू उमड़-उमड़कर लाचार घुट रहे थे। उसका जी चाहता था कि रमेश की छाती पर सिर टिका-कर वह फूट-फूटकर रोये। रमेश आया, हाथ में जामुनों का दोना था। रमेश का नियम था, इस घर में आते ही वह बहनजी के दफ़्तर वाले कमरे में जाकर 'हलो रानी' कर आता था। आज भी पहुंचा, बहनजी कमरे में नहीं थीं, रानी अकेली थी, बहुत खुश हुआ। जामुनों का दोना आगे बढ़ाकर बोला : "लो चखो, बहुत ही उम्दा हैं।"

रानी का कलेजा मुंह तक आया और फिर लौट गया। धन-जनित विवशता से भूखी रानी को यह पांच-सात जामुन खाकर अपनी अन्तर्पीड़ा को और भी अधिक बढ़ाने की तनिक इच्छा न हुई—मगर लानेवाले के हाथ जहर खाने में भी उसे सुख मिलता। पहली बार ही तो उसे यह अनमोल अवसर मिल रहा था। हाथ बढ़ा, एक जामुन पर पहुंचा और आंखें तुरन्त रमेश की आंखों से जा लगीं। उसके अन्तर में करुणा और आनन्द घुल-मिलकर ऐसे वेग से उमगे कि वह भावविभोर हो गया। रमेश उसकी आंखों में देखता ही रह गया। रमेश के लिए रानी का वह अन्तर सौन्दर्य अनन्त शक्तिशाली चुंबक के समान था। मन रानी की आंखों में विद्युत् गति से बैठकर उसके मन से बंध गया। चार आंखों की टकटकी में एक प्राण संचरण कर रहे थे। सहसा रमेश को यह चेतना मिली कि रानी मन में असुखी है, अशान्त है; कोमल चेहरा सूखा हुआ और निढाल है। धीमे मीठे स्वर में पूछा : "क्यों, आज उदास हो?"

रानी का होश ठिकाने पर आया। बीते क्षणों के जादू के झटके साथ मुक्त होते हुए अधखोये लड़खड़ाये से स्वर में जवाब दिया : "कु-कु-कुछ नहीं, ठीक तो हूं।"—एक जामुन दोने से उठकर उनके मुंह में चला गया। भूख से सूखे स्वाद-हीन मुंह में चटपटापन आया। अपने अन्दर वाले सच को बाहरी अभिनय के परदे से छिपाते हुए आंखें नचाकर बोली : "सच बहुत ही मीठे हैं। मसाला भी अच्छा पड़ा है।" चूसकर गुठली मुठ्ठी में ले ली।

रमेश ने एक जामुन उसके मुंह की ओर बढ़ाते हुए कहा : "और लो।"

"उहूं, अब नहीं, मेरा पेट बहुत भरा हुआ है।"

"जामुन हजम करते हैं—लो।" रमेश ने जामुन उसके होंठों से लगा दिया, परन्तु चौकन्नी नज़र दरवाजे पर डाली और फिर रसभीनी नज़रों से अपनी 'सब कुछ' को देखा। जामुन रानी के मुंह में चला गया था। रानी के होंठों से रमेश को उंगली का स्पर्श होने के कारण रमेश के सारे शरीर में बिजली का करेंट सा दौड़ गया। वह मन्त्रमुग्ध-सा देखने लगा। रानी ने लाज से नज़रे झुका लीं।

"बहनजी कहां हैं?"

"मीटिंग में गयी हैं।"

"तुम्हारा कारबार अच्छा चल रहा है?"

"हूं—ऊं···मेरा सी० टी० का फार्म कब लाइएगा?"

"लाओगे कहो, तब जवाब दूंगा।"

रानी झेंप गयी, नज़र झुकाकर पैर के अंगूठे से चिकना फर्श कुरेदते हुए चेहरे पर हल्की मुसकान लाकर कुछ मचलते से स्वर में बोली : "मुझसे न कहा जायगा।"

"तब फिर मैं जवाब भी न दूंगा।"

"न दीजिए।"

"कब तक जवाब न मांगोगी?"

"जब तक आप न देंगे।"

"तुम बेर-बेर मुझे आप-आप कहकर मेरे साथ दुश्मनी करो और मैं जवाब दूं, ऐसा उल्लू नहीं हूं।"

"तो फिर कैसे हैं?"

"क्या?"

उत्तर में आंखें शरारत और मज़ाक से नाच उठीं, रानी पल्ले से अपनी मुस्कुराहट छिपाने लगी।

गोया झेंप मिटाने की नीयत से ही शोखी भरे स्वर में रमेश बोला : "अपने से पूछो ना, तुम्हीं ने तो मुझे काठ का उल्लू बना दिया है। लो ये दो और खा जाओ।"

"ऊहूं···अब न खाऊंगी।"

"क्यों?"

"जी नहीं चाहता।"

"तुम्हारे पास तुम्हारा जी है? मेरे पास तो नहीं रहा।"

"कहां गया?"

सीढ़ियों पर कई पैरों की आहट और आवाज़ें चढ़ रही थीं। रानी और रमेश दोनों ही सजग सावधान हो गये।

रमेश फ़ौरन ही कमरे से बाहर निकल गया। उस दिन खन्ना साहब के स्टडी सर्किल में फिर उसका जी न लगा। वह अपने मन की रंगीन मादकता को बिखेरना नहीं चाहता था। उसे अपने कलेजे में समेटकर, सहेजकर रखना चाहता था। उसके होंठों में मुस्कुराहट और आंखों में यह जीता-जागता सपना, जो उसने अभी देखा था, जाने का नाम ही न लेता था। आगन्तुक पत्रकारों, चावला और जुनेजा से कुछ ज़रूरी काम का बहाना बतलाकर खन्ना साहब बहनजी या और लोगों के आने से पहले ही वह चला गया। उसे एकान्त में केवल रानी के सपनों ही का साथ चाहिए था।

घण्टे भर बाद रानी जब सबका नाश्ता-चाय लेकर उस कमरे में गयी तो रमेश को न पाकर बेहद खिन्न हुई। इस समय उसने खास तौर पर रमेश के लिए ही बहनजी के रसोईघर में जाकर महराजिन से बेसन लेकर पकौड़े बनाए थे। सोचा था, उन्हें खिलाकर आप भी खा लूंगी, पर अब भूखी ही रह गयी। रसोईघर में लौटकर एक प्याला चाय तक न पी, बाकी पकौड़े महराजिन को ही उतारने का आदेश देकर वह घर चली गयी।

उसी रात उसका सौतेला भाई हुआ था। जब अम्मा को दर्द उठने लगे और पिता को दादी ने दाई के घर भेजा, तब उसके बाद अम्मा ने कराहते हुए दादी से कहा : "ई सब बिना पैसे-कौड़ी के हुई है कहां ते ? अरे राम।"

बिजली की तरह रानी के मन में बहनजी की मूर्ति जगमगा उठी। दादी से बोली : "मैं बहनजी के यहां से रुपये लाती हूं।"

"इतनी रात मां उनके घर—"

"कौन बड़ी दूर है ? उनके यहां जाये बिना गुज़ारा भी नहीं।"

दादी असमंजस में पड़ गयीं, अभी बहनजी के यहां काम करते हुए रानी को एक महीना भी पूरा नहीं हुआ।

"बहनजी को मैं जान गयी हूं। जाती हूं।" रात के डेढ़ बजे उसने बहनजी के घर का कुण्डा खटखटाया।

रद्धूसिंह की अम्मा सवेरे ही से ढोलक लेकर बैठ गयीं। तीन दिन की उपासी होने पर भी उनके उत्साह का अन्त नहीं था। बहू को सुबह पांच बजे से तेज़ बुखार चढ़ा था, परन्तु उसकी चिन्ता उन्हें इतनी नहीं व्याप रही थी, जितनी की पौत्र उत्पन्न होने की खुशी मतवाला बना रही थी। उनके पति पोते का मुंह देखने की अभिलाषा लिये हुए ही चल दिये। स्वयम् वे भी वर्षों से घुटती हुई इस ओर से प्रायः निराश ही हो चुकी थीं। उस जीवन भर की निराशा का घना अन्धकार कुलदीपक की कुंआं-कुंआं के प्रकाश से क्षणमात्र में तिरोहित हो चुका था, फिर उसके आगे पैसों का अभाव, पुत्र की बेकारी और भूख की यातना उन्हें उस समय नगण्य-सी मालूम दे रही थी। वे तो अकेली ही बैठी बड़े धूमधाम से सोहर पर सोहर गाती चली जा रही थीं : "मोरे घर नन्दलाल ने जलम लीन, मड़ैया मोरि लुटि गयी हो। परदे के भीतर जच्चा जी सुहानी बोली बोले – आंगन मां ठाढ़ी पीरैं हरैं आंगन मां। सुनु ए हमारे राजा, ननदी का बोलाव तनि छठिया धरावैं आंगन मां।"... ज़ोर-ज़ोर से गला फाड़ कर वे गा रही थीं, हाथों का बुढ़ापा न जाने कहां चला गया था। कि ढोलक उनके कर-स्पर्श की बिजली से बोलती थी। अम्मा मानो

सारे संसार के सुखियों, पैसेवालों को ढिढोरा पीटकर यह जतला देना चाहता थीं कि आज वे भी सुखी हैं, कोई उनका मुकाबला नहीं कर सकता।

साढ़े आठ बजे के लगभग बहनजी आईं। उनके दरवाजे पर दिखाई पड़ते ही रद्धूसिंह के घर में मानो चमत्कार छा गया। अम्मा ढोलक छोड़ कर यथासम्भव फुर्ती के साथ उठीं : "आइये-आइयें, बड़े भाव कि हमारे घर आपके चरन पड़े। अरे रानी, देखो बहनजी आई हैं।"

"आपको बहुत-बहुत बधाइयां माताजी, पोता आया, मुझे बड़ी खूशी हुई। सबेरे रानी ने जब जाकर मुझे यह खुशखबरी दी तो हमने कहा कि यह तो भगवान् ने माताजी पर ही कृपा की है—सचमुच बड़ी कृपा की है भगवान् ने। मैं बड़ी खुश हूं :" बहनजी अम्मा के पास ही ज़मीन पर बैठ गयीं। अम्मा उन्हें ज़मीन पर बैठते देख हड़बड़ा उठीं, रानी को फिर आवाज़ देने जा रही थीं कि वह एक फटा गलीचा लिए स्वयम् ही कमरे से बाहर आती दिखलाई दी। उसने बहनजी को देख, अपनी हंसी से मानो उन्हें प्रणाम किया। कम्मी और उसके पीछे रीतू-सीतू भी दालान में आ गयीं, कम्मी ने हाथ जोड़े और बड़ी बहन को गलीचा बिछाने में मदद देने लगी। बहनजी गलीचा बिछाती हुई रानी को : "अरे क्यों तकलीफ़ की रानी।" कहती हुई उठ खड़ी हुई और रीतू-सीतू की ओर देखकर उन्हें प्यार से पास बुलाने लगीं। दादी ने उल्लास के साथ अपनी नन्हीं पोतियों को डांटते हुए कहा : "अरे, नमस्ते नहीं की बहनजी को? नमस्ते करो जल्दी से।"

रीतू ने तो अपना बालसुलभ संकोच तोड़कर झेंपते-हंसते हुए हाथ जोड़ दिये, परन्तु सीतू रीतू की फ्राक पकड़कर उसकी पीठ पीछे मुंह छिपाने लगी। बहनजी तब तक आगे बढ़ आई थीं, उन्होंने छिपती हुई सीतू को हाथ पकड़कर घसीट लिया और हंसते हुए प्यार से बोली : "अरे-अरे, शरमाती क्यों है, मेरे पास आ। उस दिन तू रानी के साथ मेरे यहां आई थी।—आओ रीतू, तुम भी आओ। मुन्ना भाई हुआ है न तुम्हारे, मुझे खिलाने को दोगी?" बहनजी रीतू-सीतू को लेकर गलीचे पर बैठ गयीं। कम्मी भी एक कोने पर बैठ गयी, रानी खड़ी रही। अम्मा भी बहनजी के आग्रह से पास बैठ गयीं। अम्मा ने बड़ी हार्दिक भावना से उनका उपकार माना। यदि वह मदद न करतीं, तो रात में जाने उन्हें कितनी बदनामी उठानी पड़ती—रम्मोदाई के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वह पैसे के मामले में कोई मुरौवत नहीं करती। कुछ ही दिन पहले पड़ोस में एक स्त्री को बच्चा जनाने के बाद अपनी मजदूरी के सम्बन्ध में उधार की बात सुनकर वह एकदम बरस पड़ी थी। चार मुहल्ले वाले जान गये कि अमुक के घर दाई को देने के लिए भी पैसे नहीं हैं।

दाई के पैसों की बात से जुड़ी हुई दो दिन के उपवास, बेकारी और गहन निराशा की बातें भी थी। रानी रात में ही बहनजी के आगे सब कुछ रो आई थी। बहनजी बोली : "दुख-सुख सभी कुछ इन्सान पर ही आता है माताजी, क्योंकि उसमें ही झेलने की शक्ति होती है। खैर, आप चिन्ता न करें, मैंने खन्ना साहब से सब कह दिया है, रद्धूबाबू के लिए कोई न कोई उपाय जहां तक बनेगा, जल्द से जल्द हो जायेगा। और आप किसी भी तरह की चिन्ता न करें, बड़ा भागवान आया है आपका पोता, आप देखेंगी कि आज ही से आपके यहां कोई तकलीफ़ नहीं रहेगी।"

अम्मा अपने सुख-वैभव काल की कथा सुनाने लगीं। आंसू हिचकियों तक खिंचे। बहनजी ने उन्हें बड़ी सांत्वना दी, जन-प्रचलित दर्शन-ज्ञान के भावों से उन्हें उद्‌बोधित किया। इतनी ही देर में बहनजी के घर का नौकर थाली से ढका हुआ एक बड़ा सा पतीला लेकर सीढ़ी के दरवाजे पर चढ़कर आता दिखलाई दिया। बहनजी ने ही उसे अन्दर आने का आदेश दिया ओर पूछा कि बाकी सामान कहां है ?

"परसोत्तम की दूकान पर ही रक्खा है बहूजी। मैंने सोचा, इसे रख जाऊं। अभी लाता हूं।"

बहनजी ने पतीली अम्मा की ओर खिसकाते हुए कहा : "लीजिए, हलुवे से बच्चों का मुंह मीठा कराइए। और सब समान भी आता है। दस-पन्द्रह दिन आपको कोई कष्ट नहीं होगा। तब तक कुछ न कुछ और प्रबन्ध भी हो जायगा। जिम्मेदारी मेरी है, आप किसी भी तरह की चिन्ता न कीजिएगा, सब ठीक हो जायगा।

बहनजी रद्धूसिंह के घर में संजीवन बूटी-सी आई और सबमें प्राण डालकर चली गई। थोड़ी ही देर में बहनजी का नौकर आटा, दाल, चावल, घी, मसाले, जच्चा के लिए बादाम, छुहारे, पिस्ता, चिरौंजी, बताशे आदि सारा सामान रख गया। अभाव की गहरी घुटन के बाद यह रोज का राशन-पानी क्या आया, मानो कोई राजसी वैभव घर में आ गया। अम्मा, रानी, रीतू, सीतू सभी में उत्साह देख पड़ता था। "अम्माजी हेलुआ, अम्माजी बताशे, अम्माजी एक छुआरा ले लें—एक बस एक !" बच्चियों में लूट-सी पड़ गयी।

"ना सीतू ना, छुहारा नहीं खाते, भइया खाएगा।"

"भइया के तो दांत ही नहीं है।"

"अम्माजी के भी तो दांत नहीं हैं, कैसे खाती हैं। वैसे ही भैया भी खाएगा।" रानी ने अपनी छोटी सौतेली बहन को अकाट्य उत्तर दे दिया, परन्तु सीतू इतने ही से मानने वाली न थी, बोली : इत्ते सारे छुहारे, बदाम भैया ही खायगा ?"

"हां।"

"एक हम भी ले लें—अम्माजी, एक, बस, एक।"

रद्धूसिंह के घर में बरसों बाद ऐसा मंगल मन रहा था। अम्मा तुरन्त ही जच्चा के लिए गुड़ का पानी मेवा डालकर उबालने के लिए रखने गई। रानी को रसोई की तैयारी करने का आदेश दिया।

रद्धूसिंह तड़के ही घर से निकल गये थे। पुत्र-प्राप्ति से जागे हुए आत्म-विश्वास और उत्तरदायित्व की प्रचण्ड भावना और चिन्ता को लेकर वे कोई काम पा लेने की धुन लेकर घर से निकले थे। ट्रांसपोर्ट विभाग के एक पुराने अफसर से पिता के समय की मुलाकात थी; किसी समय का दोस्ताना था। भोर पहर की आधी नींद आधे जागरण में उनके पास जाने की बात मन में उठी थी और उसे भगवान् का आदेश मानकर ही गहरे विश्वास के साथ अफसर के यहां गए थे। चपरासी उनका फटा हाल देखकर बड़ी मुश्किल से उनके आने की सूचना अपने साहब तक पहुंचाने को राजी हुआ। साहब मिले तो उन्होंने बनावटी मिठास के साथ रद्धूसिंह को यह समझा दिया कि वे दोस्त क्या अब उनके मातहत बनने काबिल भी नहीं रहे। रद्धूसिंह का पढ़ा-लिखा न होना अफसर साहब की मीठी

बातों में कड़वा जहर-सा घुला—"मेरे दोनों चपरासी भी हाईस्कूल और इण्टर-मीडिएट पास है।

रद्धूसिंह करारा घाव खाकर वहां से लौटे, फिर इधर-उधर निरुद्देश्य भटकते रहे, पर पचास-पचपन घण्टे का भूख से मुरझाया हुआ शरीर अधिक न चला। रात में बहनजी के घर से आये हुए रुपयों में से अठन्नी लेकर घर से चले थे। तीन आने जाते समय बस खा गयी, तीन आने लौटने के लिए बहुत आवश्यक थे, क्योंकि पैदल चलने का दम नहीं था। बंगाली मिठाईवाले की दूकान दिखाई पड़ते ही फिर जी न माना—लड़का हुआ है जी, मुंह भी मीठा न करें। किस्मत तो पराए हाथों बनती है, भगवान् बनाता है। लड़का हमारा है, हम तो खुशी मनाएंगे। रद्धूसिंह इसी अकड़ में दूकान में पहुंचे। जब पता लगा कि दो-दो पैसे वाले रसगुल्ले अब नहीं बिकते, तो दो रसगुल्लों का आर्डर एक रसगुल्ले में ही बदल गया। इकन्नी पान-बीड़ी के लिए बचा रखना चाहते थे। मगर दो रोज की भूख एक रसगुल्ले से न मानी, हाँ-ना की रस्साकशी में बहुत इधर-उधर खिंच कर रद्धूसिंह के मन में यह विचार आया कि हमने दो रसगुल्लों का आर्डर दिया था और फिर इकन्नीं दाम सुनकर एक मंगाया। साला बैरा अपने मन में मुझे फटीचर समझ रहा होगा। पानी का गिलास भी नहीं रख गया, ससरा···"बैरा, ए बैरा, एक रसगुल्ला और लाओ।" रद्धूसिंह ने तेवर से कहा, मानो वह सारी दूकान खरीदने का आर्डर दे रहे हों। दो रसगुल्लों की तरी लेकर बस में बैठे। यात्रियों के साथ नेताओं-अफसरों और पूंजीपतियों को गालियां देकर जी की भड़ास निकालने की तसल्ली लिये हुए कुंअर रद्धूसिंह ने अपने घर में प्रवेश किया। सीढ़ी पर ही कमरे की 'कुंआ-कुंआ' ने मन मोह लिया। अन्दर आए तो रसोईघर में भी व्यस्तता देखी, मन गंगाजल-सा हो गया। अम्मा ने कहा, हलुआ खा लो। अम्मा ने बहनजी के पति से मिलने के लिए भी कहा। हलुआ खाते हुए रद्धूसिंह का मन सन्तोष और उपकार से भर उठा। उपकार की भावना में बहन जी, उनके पति, पुत्र के भाग्य और परमपिता के प्रति घुली-मिली हुई धारा-सी बह रही थी। सब भगवान् रूप हैं, भगवान् ही हर रूप में कृपा करते हैं—भगवान् अब तुम दया ही रखना। तुम्हारा बहुत-बहुत उपकार मानता हूं। अब गोपेश्वर संकीर्तन मण्डल चालू करके ही दिखलाऊंगा और लड़के का नाम बजरंगसिंह रक्खूंगा। ये सब बजरंग ही की माया है।" रद्धूसिंह ने गद्गद भाव से आंखें मूंदकर अपने इष्टदेव का ध्यान करते हुए हाथ जोड़ दिये।

संघ में पन्द्रह अगस्त के दिन सदा की तरह इस वर्ष भी उत्सव का आयोजन था। रमेश, लच्छू और कम्मी आदि बड़े लड़के अपने उत्सव की तैयारियों में पूरे जोश के साथ जुटे हुए थे। पिछले वर्ष तीन दिनों का मेला हुआ था। पहले दिन कैरम, शतरंज और वाद-विवाद प्रतियोगिता हुई थी। दूसरे दिन वालीबाल का मैच और प्रहसन तथा तीसरे दिन यानी पन्द्रह अगस्त को एक शानदार कवि-सम्मेलन। इस बार रमेश के आग्रह से लड़कियों के प्रोग्राम भी रखे गये। रानी बाला और शर्मिष्ठा को नारी-मण्डल के प्रोग्राम आयोजित करने का भार सौंपा गया। बहनजी के बिना स्त्रियों का कोई कार्यक्रम सफल हो ही नहीं सकता, यह मानकर रमेश इतवार की सुबह उनसे मिलने के लिए गया। बहनजी के पति

खन्ना साहब—श्री आनन्दमोहन खन्ना—उस समय घर ही पर थे। रमेश को देखकर उन्होंने उसे अपने पास बुलाया।

"रमेश बेटे, एक बहुत बढ़िया चान्स आया है। डॉ० आत्माराम को एक आदमी की जरूरत है। उनके साथ काम करोगे ?"

डॉ० आत्माराम का नाम बिजली के करेण्ट की तरह छूकर मन को स्फूर्ति से भर गया। देश के बड़े से बड़े नेताओं में से एक, प्रदेश के बेताज के बादशाह डॉ० आत्माराम के साथ काम करने की इच्छा भला किस महत्वाकांक्षी युवक में न होगी ? खन्ना साहब उसके चेहरे पर आनन्द स्तब्धता साथ ही पस व पेश की मुद्रा देखकर बोले : "मैं जानता हूं कि ये तुम्हारा एम० ए० का आखिरी वर्ष है, फाइनल डिग्री और कैरियर का सवाल है—"

"जी नहीं, कैरियर का तो खैर ऐसा कोई प्रश्न नहीं उठता खन्ना साहब, डॉ० आत्माराम के साथ काम करना ही—"

"हां यही बात मेरे मन में भी थी, आज सुबह ही 'डॉक्' ने मुझसे यह इच्छा प्रकट की। इस वक्त वो मलिहाबाद के समाजवादी शिविर का उद्घाटन करने गये हैं; लंच मेरे ही साथ करेंगे तब तक न हो तो तुम अपने घरवालों से सलाह ले आओ···सोच लो– सोच लो, अगर आज दोपहर तक तुमने निर्णय कर डाला, तो फिर डाक्टर साहब के साथ ही उन्हीं की गाड़ी पे सारस लेक चले जाना—"

"जी, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मेरे लिए तो ये बड़े ही सौभाग्य की बात होगी —हालांकि एम० ए०—खैर उसकी ऐसी कोई खास चिन्ता नहीं। मैं आपको अभी थोड़ी देर में आकर खबर देता हूं। वैसे इसे एक तरह से फाइनल ही समझिए।"

खन्ना साहब के घर से बाहर निकलते हुए रमेश के मानो पंख उग आये थे—पहले किसको खबर करूं दोस्तों को, अम्मा, बाबू को या रानी को ? नौकरी लग जाने के बाद फिर मेरे और रानी के ब्याह को कौन रोक सकेगा। हमारी शादी की तस्वीर डा० आत्माराम के साथ खिंचेगी।—क्या शान, क्या धूम होगी। अच्छा हो, पहले रानी को ही सूचना दूं। खुशी से उछल पड़ेगी, अब उसे सी० टी०, बी० टी० करवा के करना ही क्या है। ज्यादा से ज्यादा दो-चार महीनों में रानी बाला राठौर मिसेज रमेशचन्द्र शर्मा हो जाएंगी। सारस लेक में हम लोग शान से रहेंगे। न अम्मा-बाबू का डर, न जात-बिरादरी वालों का, तकदीर इसको कहते हैं।···संघ वाले बेचारे मुरझा जाएंगे, ऐन उत्सव के मौके पर यहां से छोड़-कर जाना—लेकिन क्या किया जाय, कैरियर का सवाल है। खुशी के मारे रमेश के पैर जमीन पर सीधे न पड़ रहे थे। वह सीधे रानी के घर की ओर ही जा रहा था।

रानीबाला रसोई में थी। उसकी दादी सौरी घर में बच्चा और जच्चे को दसवें दिन के नहान नहला रही थीं। संयोग से बात करने का अच्छा अवसर पाकर रमेश को खुशी हुई, उसे अपने भाग्य पर अधिक विश्वास हुआ। सीढ़ी पर खड़े होकर उसने बड़े उत्साह के साथ रानी को यह बात सुनाई, लेकिन रानी के चेहरे पर चमक न आई। वह गम्भीर हो गयी। यह देखकर रमेश का उत्साह ठिठका, वह उसके चेहरे की ओर देखने लगा। रानी बोली : "मेरी राय नहीं है। नाहक आठ-नौ महीने के लिए अपना कैरियर बिगाड़ रहे हो। आखिर एम० ए० की डिग्री की भी कुछ न कुछ कदर तो है ही। डा० आत्माराम बहुत बड़े आदमी

हैं, फिर भी ईश्वर तो हैं नहीं। यहां रहोगे तो एक-दूसरे की मदद से दो जिन्दगियां सुधरेंगी, तुम्हारी बदौलत मैं भी पढ़ जाऊंगी। मेरी बड़ी साध है। और आगे जैसा तुम सोचो।"

रानी की बातों से रमेश को झटका लगा। उसके मन का रंगीन शीशमहल टूट गया। ज्वार के समुद्र-सी महत्वाकांक्षा की ऊंची लहर मन में उठी और फिर पछाड़ खाकर पसर गयी। रानी की इच्छा-अनिच्छा उसकी हर मरजी से बड़ी थी, बोला : "अच्छा !······ तुम्हारी बात एक तरह से मुझे ठीक ही लगती है। हम दोनों पढ़ जायेंगे तो ज्यादा नफे में रहेंगे। फिर यहां रहने पर कम से कम तुम तो मेरी आंखों के आगे ही रहोगी।"

सुनकर रानी को सन्तोष हुआ, फिर भी कहा—"तुम अच्छी तरह सोच लो—"

"सोच लिया। मैं एम० ए० करूंगा और तुम्हें भी कराऊंगा। तुम जहां तक पढ़ोगी, पढ़ाऊंगा। डा० आत्माराम मेरे ईश्वर हों या न हों, लेकिन तुम अवश्य हो।"

रानी के घर से निकलकर एक बार तबियत हुई कि सीधे ही खन्ना साहब से जाकर ना कह दे, मगर एकाएक लच्छू का ध्यान आ गया। सोचा, वह शायद स्वीकार कर ले। एम० ए० कर लेने पर भी थर्ड क्लास से वह उठ न सकेगा और डा० आत्माराम को सन्तुष्ट कर देना उसके लिए कोई बड़ी बात न होगी। इस मामले में वह बहुत तेज है।

रमेश लच्छू के घर गया। वह उसी समय ट्यूशन पढ़ाकर लौटा था, सुबह के अखबार पर नजरें दौड़ा रहा था। रमेश को देखकर बोला : "अबे युनिवर्सिटी नहीं जाना है क्या आज ? साढ़े दस बज रहे हैं !"

"तुमसे एक जरूरी बात कहने आया हूं। डाक्टर आत्माराम के सेक्रेटरी बनोगे ?"

लच्छू ने अखबार झटककर पटक दिया और आंखें फाड़कर रमेश को देखने लगा। रमेश मुस्कुराया, बोला : "ऐसे घूरकर क्या देख रहे हो ? मैं मजाक नहीं करता।"

रमेश ने फिर खन्ना साहब से हुई बातों को विस्तार से सामने रक्खा और कहा : "डेढ़ सौ रुपये बुरे नहीं हैं। फिर सारस लेक में कोई विशेष खर्चा भी नहीं होगा। रहने की जगह मुफ्त। वहां रहकर कुछ जोड़ भी लोगे।"

लच्छू गम्भीर भाव से चिन्तन मुद्रा में यह सब सुनता रहा, फिर पूछा, "तुम क्यों नहीं जाते ?"

रमेश मुस्कराया, बोला : "मेरी मजबूरी है, रानी नहीं चाहती।"

"अबे, क्यों एक प्लैटानिक मुहब्बत के पीछे अपना कैरियर बिगाड़ रहा है उल्लू कहीं का। शादी तो आपकी होने से रही उसके साथ। पुत्ती चाचा आपको कच्चा ही चबा जायेंगे और चाची भी रो-रोके—"

"नहीं लच्छू तिरिया तेल हमीर हठ चढ़े न दूजी बार।"

"यही तो मैं कह रहा हूं नालायकदास, रानी की अब शादी नहीं हो सकती। ये सुधार-उधार के प्रॉग्रेसिव आइडियाज खाली बहस ही में अच्छे लगते हैं। सिर्फ अल्ट्रामाडर्न लोगों ही से ऐसी बातें सम्भव हैं।"

"मेरे ख्याल में तुम ये सब बकवास छोड़ो। डाक्टर आत्माराम के साथ रहने

और काम करने की कामना भी मुझे अपनी ओर खींच नहीं पाई, इसीलिए तुमसे कहने आया। ये एक चांस मिला है, मैं न सही तुम्हीं ले लो। खन्ना साहब तुम्हारी सिफ़ारिश भी उसी तरह करेंगे, जैसे मेरी करते।"

लच्छू मौन रहा। रमेश कहता रहा : "मेरा एम० ए० पास करना जरूरी है। रानी ने ठीक ही कहा, मेरे कैरियर का सवाल है और तुम बेटा कभी थर्ड डिवीजन से ऊपर न जाओगे, ज्यादा से ज्यादा आर्डिनरी सेकेण्ड क्लास। इसके अलावा मेरी आकांक्षा एजुकेशनल लाइन में जाने की है, ये तुम अच्छी तरह से जानते हो।"

बीड़ी का एक कश खींचकर लच्छू बोला : "खैर, मुझे अगर यह चान्स मिल जाय तो अपनी तकदीर को सराहूंगा, ये झूठ नहीं। डाक्टर आत्माराम को तो छै महीने में ही अपने शीशे में उतार लूंगा, तुम देख लेना। तुम खन्ना साहब से बात-चीत चलाओ।"

"मेरी राय में तुम भी मेरे साथ चलो। आज युनिवर्सिटी नहीं जाऊंगा। कम्मी मे कहे आता हूं, वो तुम्हारी अटेन्डेन्स बुलवा देगा।"

जिस समय ये दोनों खन्ना साहब के यहां पहुंचे, उस समय साढ़े ग्यारह बज रहे थे। खन्ना साहब अपने दफ्तर जाने के लिए तैयार ही खड़े थे। उन्होंने रमेश की बात सुनी और लच्छू से कहा, "ठीक है, एक डेढ़ बजे तक चले आना, डाक्साब मलिहाबाद से लौटते हुए मेरे यहां लंच करेंगे। मिलवा दूंगा। अच्छा, इस वक्त मुझे जल्दी है। दफ़्तर पहुंचना और एक घण्टे में लौट भी आना है।" कहकर खन्ना साहब ने चलने का अन्दाज दिखलाया।

रामगंज स्टेशन राम के वड़े नाम का सहारा लेकर भी एक बहुत छोटा-सा फ्लैग स्टेशन है, जो अब डॉक्टर आत्माराम के कारण ही महत्व पा गया है। सारस लेक यहां से सात मील दूर है; लच्छू को यहीं उतरना था। गाड़ी डेढ़ घण्टे लेट पहुंच रही थी। पानी मूसलाधार। ट्रेन की शीशे चढ़ी खिड़कियों से बाहर सारी दुनिया एकाकार धुंधली हो रही थी। छोटे-छोटे स्टेशनों के साइनबोर्ड वर्षा की तेजी के कारण ठीक तरह पढ़े न जा सकते थे। लच्छू को सबसे बड़ी चिन्ता यही थी कि वह जगह को क्योंकर पहचान सकेगा। सामान कैसे उतरेगा? डाक्टर साहब ने यह आश्वासन दिया था कि सारस लेक से उनकी एक स्टेशन वैगन नित्य-प्रति सबेरे-शाम गाड़ी के समय रामगंज पहुंचती है और उनके पास पहुंचने वाले लोगों को वहां से ले जाती है। इसलिए मन की घबराहट के घटाटोप में भरोसे का इतना धुंधलका अवश्य चमक रहा था। झगड़ूपुर, तुलसीपुर, हथौना, बालूगंज और फिर रामगंज स्टेशन भी आ गया। लच्छू ने उतावली से दरवाजा खोला, तेज बौछारें रेल के डिब्बे में इस तरह से घुसीं, मानो किले का फाटक तोड़कर दुश्मन की फौजें धंस रही हों। भागने के सिवा और कोई चारा न था। एक दयालु सहयात्री ने अपने भीगने की परवाह न करके लच्छू का सामान नीचे उतारने में मदद दी। एक सन्दूक, बिस्तरा और खाने की एक पोटली। सामान नीचे तो उतर गया, अब स्टेशन के बरामदे तक क्योंकर पहुंचे। कुली मिलने का कोई प्रश्न ही न था, ऐसे घनघोर पानी में स्टेशन पर आदमी तो क्या, चिड़िया का पूत तक न दिखाई दे रहा था। बिस्तर रस्सी से बंधा हुआ और वजनी था।

मां ने बहुत मना करने पर भी आगामी सर्दियों का ध्यान करके लिहाफ बांध दिया था। लच्छू ने पहले अपने बिस्तर और पोटली को ही स्टेशन से सुरक्षित स्थान तक पहुंचाने का निश्चय किया। भारी बोझ को ढोकर ले जाते हुए लच्छू को अपनी मां पर बड़ा क्रोध आ रहा था, मना करने पर भी इतना बोझ बांध दिया। सरदी आने तक तो न जाने कितनी बार लखनऊ आने-जाने का मौका मिलेगा। लाख कहता रहा, पर अम्मा न मानी, अब आफत मुझे ढोनी पड़ रही है। बौछारें सीधे मुंह पर पड़ रही हैं। आंखें ठीक तरह से खुल नहीं पातीं। एक हाथ में भारी और दूसरे हाथ में हल्के बोझ के कारण असन्तुलन भी कष्ट-दायक हो रहा था। जस-तस खींच-खींचकर लच्छू बिस्तर को स्टेशन के फाटक तक ले गया। अगल-बगल दो कमरों के बीच में बाहर आने-जाने का फाटक छत्ते की तरह बना था। पानी की बौछारें उसे आर-पार वेध रही थी। शरण वहां भी न मिल सकती थी, पर दूसरी और कोई जगह भी तो न थी। गीले फर्श पर गीला बिस्तर रखा और उसकी आड़ में पोटली, फिर संदूक लेने के लिए भागे। स्टेशन पर वही अकेली सवारी उतरी थी। लच्छू ने किसी तरह सन्दूक भी लाकर वहीं रखा और अब यह चिन्ता पड़ी कि किससे पूछने कैसे जायं; उसका कुर्त्ता-पाजामा तरबतर हो रहा था। बौछारों की उड़ती हुई तेज हवा से बदन के गीलेपन में और भी नमी भर जाती थी। बरसते पानी का सामना करते हुए लच्छू ने स्टेशन से बाहर निकलकर सारस लेक से आनेवाली गाड़ी को खोजने का प्रयत्न किया, पर वह उसे वहां न दिखलाई दी। अब घबराहट बढ़ी। स्टेशनमास्टर के कमरे के दरवाजे भीतर से बन्द थे; लच्छू ने और कोई चारा न देख, उनका दरवाजा खटखटाना शुरू किया।—कोई जवाब नहीं—फिर खटखट, जवाब नदारद—अब झुंझलाहट आई, फिर खटखट-खटखट-खटखट—दरवाजा खुला। टाई बंधी कमीज पर लुंगी लपेटे तीस-बत्तीस वर्ष की आयुवाले स्टेशन मास्टर कुछ नाराजगी के रुख से देखने लगे। लच्छू ने कहा: "बाहर बड़ी बरसात है, सवारी का प्रबन्ध नहीं, यहां बैठने की आज्ञा देंगे?"

"नो।"

दरवाजे बन्द होने लगे। लच्छू ने हाथ के दबाव से किवाड़ को बन्द होने से रोका और कहा: "यहां वेटिंग रूम तो होगा ही, वही खुलवा दीजिए।"

"इट इज़ ओनली गॅन्ट फार द फर्स्ट क्लास पैसेंजर्स।

"अरे साहब पानी बरस रहा है। आखिर इंसानियत भी कोई चीज़ होती है। मैं सारस लेक जा रहा हूं। डाक्साहब ने मुझसे कहा था कि स्टेशन पर उनकी गाड़ी आयेगी और वह कहीं दिखलाई नहीं देती। उन्होंने मुझे अपना जूनियर प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त किया है।"

अंतिम बात सुनने पर स्टेशन मास्टर का रुख कुछ बदला। इस बार हिन्दी में बोले: "तो आप उनके यहां काम करने आये हैं या—"

लच्छू कुछ झुंझला गया था, बोला: "अजी साहब, मुझे बात बनाने से फायदा, आप तो मुझे झूठा करार दे रहे हैं। मैंने इस बरसात से परेशान होकर आपसे शरण मांगी थी, आपको आदमी समझा था मैंने। लीजिए बन्द कर लीजिए दरवाजा। आपको तक़लीफ दी, उसके लिए क्षमा चाहता हूं।" कहकर लच्छू वहां से अलग हट गया और एक बार फिर सारस लेक से आने वाली गाड़ी की खोज में स्टेशन से बाहर झांकने गया। वह मन ही मन क्रोध से सुलग उठा था।

इतने बड़े नेता होकर भी गरीबों की उपेक्षा करते हैं और ये स्टेशन मास्टर, टके की औक़ात साले की, मगर अकड़-फूं में सालारजंग बना हुआ है। लच्छू मन ही मन इतना उखड़ चुका था कि अगर दूसरी कोई ट्रेन लखनऊ जा रही होती, तो वह उसी दम लौट पड़ता।

गीले कपड़ों से छनकर फ़हारों से लदी तेज़ हवा के झोंके लच्छू को ठिठुरने पर मजबूर कर रहे थे। जेब से बीड़ियों का बण्डल और माचिस निकली; दोनों ही गीलीं। ताव में आकर लच्छू ने उन्हें स्टेशन के बाहर फेंक दिया और स्टेशन मास्टर को दो गालियां दीं। नयी सुनसान जगह, उखड़ा हुआ मन, ठिठुरता तन और उस पर से बीड़ियों का अभाव लच्छू को इस समय बहुत भारी पड़ रहा था। ऊपर से न रोना लच्छू की पुरानी ज़िद रही है, मगर भीतर ही भीतर वह आंसुओं से तर होने लगा—कैसी किस्मत है मेरी कि हर जगह अभावों और अपमानों से जूझकर ही आगे बढ़ना पड़ता है। लच्छू के घर की आर्थिक स्थिति पिछले छः-सात वर्षों से विषम है। लगभग दस वर्ष पहले लच्छू की सबसे बड़ी बहन का विवाह हुआ था। लच्छू के जीजा बड़े ही नीच और कुटिल निकले। उनके माता-पिता ने भी लच्छू की बड़ी बहन के साथ भला बर्ताव न किया। विवाह के बाद साढ़े तीन वर्ष तक जीजी अपने मैके में न झांक सकीं, चिट्ठी-पत्री तक लिखने की सुविधा उन्हें न दी गयी। इस बीच में एक लड़का हुआ, दिक़ की बीमारी हुई और जब वह काम करने लायक न रहकर खाट पर पड़ गयी, तो लच्छू के जीजा उन्हें यहां छोड़ गए। यथाशक्ति इलाज करने पर लच्छू के माता-पिता अपनी बेटी को न बचा सके। उसके मरने के छः महीने बाद ही अपनी दूसरी लड़की को ब्याहने के लिए रूपकिशोर महाजन से कर्ज़ लेना पड़ा। दूसरी बहन बड़े घर में ब्याही गयी थी। लड़का छोटी उम्र का होकर भी दुहाजू था और लच्छू की बहन बहुत सुन्दर थी। इस कारण से भी उन लोगों ने इनके यहां सम्बन्ध तो कर लिया, पर इन लोगों को कभी अपनी बराबरी का न समझा। ये घरेलू अपमान और अक्सर तगादे के लिए आनेवाले रूपकिशोर महाजन के काने कारिन्दे की उजड्ड लट्ठ मार्का बातें लच्छू और उसके परिवार वालों को प्रायः रोज ही नीचा दिखाकर सताया-सुलगाया करती थीं। हलांकि लच्छू ने इन सब बातों के बावजूद अपने मन को अब तक बराबर जड़ कुण्ठाओं से बहुत बचाकर रक्खा था। फिर भी उस शाश्वत पीड़ा से एकदम मुक्त नहीं था; ऐसे अवसरों पर उसका मन नपुंसक क्रोध से तड़प-तड़प उठता था। ये भी कोई जिन्दगी में जिन्दगी है। एक-एक लोग ऐसे भी पड़े हैं जो 'मुंह में चांदी का चम्मच और हाथ में बैंक की पासबुक' लेकर ही पैदा होते हैं। हर समय उनकी हांजी-हांजी ही हुआ करती है। नौकरी भी पाते हैं तो एकदम से ऊंची शानवाली या फिर डॉ० आत्माराम की तरह शाहंशाह बनकर जीवन बिताते हैं। इन लोगों को जीवन भर न तो किसी प्रकार का अपमान ही सताता है और न अभाव। ऐसा क्यों होता है? पुराने लोग कहते हैं कि पुरबले जन्मों का कर्मफल इस जीवन में भोगना पड़ता है।

उखड़ी-उखड़ी उड़ती हुई बातों के भीतरी चक्र मे फंसकर लच्छू अपनी बाहरी ठिठुरन को तनिक भूल गया। तभी एक काली छोटी गाड़ी के लगातार हार्न बजाने से स्टेशन के फाटक के पास भीगती खड़ी हुई तीन-चार गायों के झुण्ड के साथ ही साथ, लच्छू और स्टेशन-मास्टर तक का ध्यान अपनी ओर खींच ले गयी। स्टेशन मास्टर के कमरे का दरवाज़ा हड़बड़ा कर खुला। भीगती

गायें बड़ी अनख के साथ फाटक से हट गयीं और लच्छू ने देखा कि कार स्वयम् डॉक्टर आत्माराम चला रहे थे। लच्छू फुर्ती से उठ खड़ा हुआ। स्टेशन मास्टर के कमरे से नीली कुरती वाला रेलवे का नौकर छतरी खोलता हुआ बाहर निकला। सलामें झुकने लगीं, डॉक्टर आत्माराम का रौबीला व्यक्तित्व सबमें यों जोश ले आया कि मानो सूरज निकल आया हो।

लच्छू को तरबतर देखकर डॉक्टर साहब के मुख-मण्डल पर करुणा भरी व्यग्रता झलकी, बोले—"अरे, तुम तो भई सरापा भीग गए हो । ये···ये···ये क्या नादानी कर डाली तुमने ? वेटिंग रूम क्यों नहीं खुलवा लिया ?"

लच्छू भरा हुआ तो बैठा ही था, बोला : 'स्टेशन मास्टर ने कहा कि वेटिंग रूम सिर्फ फर्स्ट क्लास पसेंजरों के लिए ही बना है।"

"कहां है वह बेवकूफ स्टेशन मास्टर ?" डॉक्टर साहब अंग्रेजी में गर्जे। स्टेशन मास्टर जल्दी-जल्दी अपनी लुंगी उतारकर पतलून की पेटी कस रहे थे। डॉक्टर साहब की गरज सुनकर हड़बड़ाहट में भागते हुए बाहर आए। डॉक्टर साहब उन्हें देखते ही फिर लाल-पीले हुए, जवाब के तौर पर उसके मुंह से निकला : "मैंने समझा था सर कि ये कोई फ़रियादी है।"

"फ़रियादी हों या कोई भी हों, आप किसी को यों बारिश में भीगने देकर खुद कमरे में आराम से बैठ क्योंकर सके। आप इन्सान हैं या हैवान हैं ? अभी-अभी आपको कोई इस तरह बरसात में खड़ा रक्खे तो आपका क्या हाल होगा ? बत्तमीज कहीं के। और-और ये पतलून इस तरह से पहना जाता है, बटन तक ठीक तरह से नहीं लगे हैं। आपको किसने स्टेशन मास्टर बना दिया ? आपमें कुली बनने लायक भी काबलियत नहीं है।" फिर लच्छू की ओर देखकर डॉक्टर साहब ने फौरन कपड़े बदलने का आदेश दिया। नीली वरदी वाला आदमी स्टेशन मास्टर के कमरे से चाभी लाकर वेटिंगरूम खोलने लगा। डॉक्टर साहब स्टेशन मास्टर के कमरे में बैठने के लिए गए। वहां कुरसी से ज़मीन तक स्टेशन मास्टर की हाल ही में उतारी गयी लुंगी फैली नजर आई, स्टूल पर शतरंज की बिसात बिछी हुई थी। डॉक्टर साहब ने यह सब देखकर फिर एक डांट बतलाई। लच्छू जल्दी ही तैयार होकर आ गया। पतलून और बुशर्ट में वह और भी चुस्त नजर आ रहा था। सामान गाड़ी में रक्खा गया ओर डॉक्टर साहब ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। डॉक्टर साहब ने बतलाया कि उनकी स्टेशन वैगन बीच रास्ते में ही खराब हो गयी, इसीलिए समय से स्टेशन न पहुंच सकी। ड्राइवर ने जब यह सूचना जाकर दी, तो डॉक्टर साहब स्वयम् ही उसे लेने आ गए। लच्छू मन ही मन डॉक्टर साहब का अनन्य भक्त हो उठा। फिर और कोई बात न हुई।

गाड़ी चली जा रही थी। कार के सामने वाला शीशा लगातार चक्कर काटते हुए वाइपरों से साफ होता रहा और फिर-फिर पनमैले होते हुए शीशे के आगे वर्षा की तेज बौछारें झूले की तरह पेंगें लेती रहीं। सड़क के दोनों ओर खड़ी पेड़ों की पांतें सरासर पीछे छूटती और आगे आती जा रही थीं। कार की खिड़कियों के बन्द शीशों पर छायी हुई नमी के धुंधलके पर बौछारों के चौधारे रेखाओं और बिन्दुओं के आकार बना रहे थे। कार की बन्द दुनिया में एक बहुत बड़े आदमी के साथ बैठे हुए लच्छू के मन में अदब का आतंक और गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। उस मानसिक सन्नाटे को तोड़ने के लिए बीड़ी की तलब जागी। एक तो बीड़ी पास में थी नहीं, दूसरे होती भी तो डॉक्टर साहब के

अदब से पी नहीं सकता था। रास्ते में स्टेशन वैगन खड़ी हुई मिली। उसे रस्से से डॉक्टर साहब की गाड़ी के पीछे बांधा गया और तब सारस लेक पहुंचे।

एक बड़े भारी ऊंचे टीले पर डाक्टर साहब की पर्णकुटी बनी हुई थी। उस पर चरखेदार तिरंगा लहरा रहा था, रोज़ ही इस पर्णकुटी और सारस लेक का नाम अखबारों में छपता है। अक्सर ही इसके सादे और रंगीन चित्र प्रकाशित होते रहते हैं। आज से यह सारस लेक लच्छू का घर बनेगा। स्टेशन वैगन की लाश को ढोते हुए गाड़ी टीले पर धीरे-धीरे चढ़ रही थी। ज्यों-ज्यों ऊपर पहुंचते जाते थे, त्यों-त्यों पूर्व दिशा में फैली हुई सारस झील का विस्तार लच्छू की आंखों में फैलता जाता था। पर्णकुटी के आसपास सचमुच बहुत ही मनोरम दृश्य था। मुख्य कोठी से नीचे दाहिनी ओर झील के किनारे डॉक्टर साहब के दफ्तरी कर्मचारियों के लिए नए ढंग की दुमंजिला इमारतों की नन्हीं नगरी बसी है। एक खुशनुमा बंगलिया उनके मुख्य सचिव सेन के लिए भी बनी थी।

एक कर्मचारी ने लच्छू को उसका फ्लैट दिखलाते हुए कहा: ' बड़ी भाग्य-शाली जगह है यह। इसमें दो आदमी रहे और दोनों ही आई० ए० एस० होकर चले गए। अब आप तीसरे आए हैं।"

लच्छू मगन हो गया। अपने जीवन में उसे अब तक इतना सुख कभी नसीब नहीं हुआ था। डॉक्टर साहब ने अपने कर्मचारियों को बड़ी सुविधाएँ दे रक्खी थीं। छोटा-सा सजा-सजाया ड्राइंग-रूम, रेडियो, टेलीफ़ोन, शावर लगा बाथ-रूम, शीशे जड़ा कबर्ड—हर चीज़ जो अब तक लच्छू की कल्पना में ही रही, इस समय उसके अधिकार में थीं। आज इतवार की छुट्टी थी, इसलिए काम से फ़ुरसत थी। पड़ोसी फ्लैट के निवासी, बुजुर्ग राजकिशन बाबू ने आज के दिन उसके भोजन की व्यवस्था अपने यहां ही की थी, उनके साथ ही उसने पूरी कोठी की सैर की। मुख्य कोठी मूल्यवान चीज़ों का अजायबघर थी। लच्छू ने इतना वैभव पहले कभी अपनी आंखों नहीं देखा था। दिनभर डॉक्टर साहब, उनके माता-पिता आदि के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें सुनता रहा।

डॉक्टर आत्माराम के पिता सर शोभाराम अपने समय के बहुत बड़े इंजीनियर थे। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति पाई थी। हिन्दुस्तान की कई बड़ी-बड़ी रियासतों में काम करके उन्होंने लगभग दो-तीन करोड़ रुपया कमाया। वे बड़े 'अंग्रेज' आदमी थे। उनका रहन-सहन एकदम विलायती ढंग का था। उनके ज़माने में इस कोठी में हिन्दी केवल नौकरों-चाकरों ही से बोली जाती थी। उनकी प्राइवेट सेक्रेटरी भी एक अंग्रेज सुन्दरी ही थी। डॉक्टर आत्माराम की मां का स्वर्गवास हो जाने के बाद उसे ही सर शोभाराम ने अपनी पत्नी भी बना लिया था। क़िस्मत की बात है कि सर शोभाराम से उसके दो लड़के हुए और दोनों ही मर भी गए, वरना आज डॉक्टर साहब की सम्पत्ति में उनका भी साझा होता।

पंडित राजकिशन बड़ी-बड़ी बातें बतलाते रहे। सर शोभाराम के समय ही से वे यहां काम कर रहे हैं। यों तो अब एक तरह से उनकी पेन्शन ही हो गई है, पर वे अब मरकर ही यहां से निकलना चाहते हैं। डॉक्टर साहब की कृपा से उनके तीनों लड़के इस समय अच्छी-अच्छी नौकरियों पर जमे हुए हैं। उनकी वृद्धा पत्नी भी अब अधिकतर अपने लड़कों के पास ही रहती हैं, लेकिन राजकिशन जी को डॉक्टर आत्माराम के सिवा और किसी से भी मोह नहीं।

जिस दिन सारस लेक आया, प्राय: उसी शाम को लच्छू अपने नये वातावरण से क़रीब-क़रीब परिचित हो गया था। पंडित राजकिशन स्टाफ़ क्वार्टर्स की ऊपरी मंज़िल के कोनेवाले फ्लैट में रहते थे। लच्छू को भी ऊपर ही दो नम्बर का फ्लैट मिला था। इसकी खिड़कियों का रुख झील की तरफ़ न होकर सड़क और खेतों की ओर पड़ता था। एक नम्बर के फ्लैट में डी० शर्मा का नामपट था और नम्बर तीन पर एस० एस० माथुर का। माथुर के नाम खन्ना साहब ने एक परिचय-पत्र भी दिया था। कोठी की सैर कर आने के बाद राजकिशन जी के साथ शाम की चाय पीकर वह माथुर से मिलने गया। दरवाजे की पुकार-घण्टी का स्विच दबाया। सिर पर डमरू जैसा जूड़ा बांधे, चटक लाल लिपस्टिक से अपने पतले होंठों को रंगे हुए, गेहुएं रंग की एक सींक सलाई सी युवती ने दरवाज़ा खोलकर एक बार सिर से पैर तक लच्छू को लय से घूर कर देखा—'हूम डू यू वान्ट ?' पूछते हुए उसका साड़ी का पल्ला बांयें कन्धे से फिसला, जिसे उसने कमर पर हाथ रखकर सिर्फ वहीं तक गिरने दिया और दाहिना हाथ उठा कर अपने डमरूनुमा जूड़े के ठीक लगे कांटों को अपने चटक रंगे हुए नाखूनोंवाली उंगलियों से ख्वाहमख्वाह दबाने लगी। जवाब में लच्छू की अंग्रेजी हकलाने लगी, गड़बड़ा कर हिन्दी में ही बोल उठा—"मैं लखनऊ से खन्ना साहब की एक चिट्ठी मि० माथुर के लिए लाया हूं।" औरत बगैर कुछ कहे पल्ला ऊंचा करती हुई चली गई और एक मिनट के बाद ही अन्दर से उसकी आवाज़ आई—"कम इन प्लीज़!"

मि० माथुर गाउन और पाजामा पहने झील के सामने वाले बरामदे में आरामकुर्सी पर बैठे हुए कोई किताब पढ़ रहे थे। मि० माथुर एक ज़माने में 'इण्डिपेण्डेण्ट' के सम्पादकीय विभाग में काम करते थे, अब डॉ० आत्माराम के भारतव्यापी सम्वाददाताओं के सूत्रधार थे। उन्होंने नज़र उठाकर एक बार सरसरी तौर पर देखा, पूछा—"यू हैव कम फ्रॉम लक्नौ ?"

लच्छू की अंग्रेजी अब सावधान होकर चल पड़ी। बीच-बीच में हिन्दी के वाक्य भी जुड़ते चले। माथुर साहब को लच्छू की नियुक्ति का समाचार उसी दिन सुबह स्वयं डॉक्टर साहब से मिल चुका था। बात चलने पर अकड़कर बोले—"आपको हमारे वर्नाक्युलर असिस्टेंट मि० सरन के मातहत काम करना होगा। उर्दू जानते हैं ?"

"जी नहीं।"

"तब फिर आप जानते ही क्या हैं ? अंग्रेज़ी ग़लत बोलते हैं, उर्दू जानते नहीं। आई० ए० एस० बनने का ख्वाब लेकर अगर आप आये हैं तो मेहरबानी करके कल सुबह ही यहां से वापस हो जाइएगा, समझे ?"

लच्छू इस फटकार से पहले तो एकदम सनाका खा गया, फिर अपने-आपको एकदम सम्हाल भी लिया। बेमतलब की फटकार वह नहीं सह सकता, मन में तीखा व्यंग फूटा; कुर्सी से उठते हुए उसने माथुर साहब की अंग्रेज़ी में कही हुई बात का हिन्दी में उत्तर दिया—"आई० ए० एस० ? लेकिन डॉक्टर साहब तो मुझे यू० एन० ओ० का सेक्रेटरी जनरल बनवाने के लिए यहां लाये हैं।"

सराहना की दृष्टि से लच्छू की ओर देखते हुए मिसेज़ माथुर खिलखिलाकर हंस पड़ी। मि० माथुर का चेहरा अपनी झुंझलाहट को दबाने के प्रयत्न में फूल उठा।

लच्छू ने दूसरे ही क्षण अपनी ग़लती महसूस की और कहा—"मैं कोई सपना लेकर यहां नहीं आया माथुर साहब, एम० ए० पार्ट टू में पढ़ रहा था कि खन्ना साहब और अपने एक दोस्त के कहने से यहां चला आया। डॉक्टर साहब के साथ काम करने से ज्यादा किसी और बड़े गौरव की मैंने कल्पना भी नहीं की थी।"

मिसेज माथुर एकटक उसकी ओर देख रही थीं। उनकी आंखों में ठीक वैसी ही चमक आ गई थी, जैसे किसी दूकान में खूबसूरत खिलौने को देखकर किसी बच्ची की आंखों में लालच भरी चमक आ जाती है।

माथुर साहब ने लच्छू से फिर अपना रुख न मिलाया, अपनी किताब की ओर ही देखते हुए रूखे स्वर में बोले—"ठीक है, तशरीफ़ ले जाइए।"

लच्छू बाहर जाने के लिए बरामदे से लौटा। मिसेज़ माथुर उसके साथ ही साथ चलीं। कमरा पार करके कारीडोर की तरफ़ बढ़ते समय मिसेज़ माथुर लच्छू के बदन से अपना बदन रगड़ती हुई उससे पहले बाहर निकलीं। घर के दरवाज़े के पास खड़े होकर उन्होंने नमस्कार करते हुए लच्छू से पूछा—"आपको इसी बिल्डिंग में फ्लैट मिला है?"

"जी, यही सामने वाला, नम्बर टू।" मिसेज़ माथुर संतोष के साथ फिर अपने डमरूनुमा जूड़े पर हाथ फेरती खड़ी रहीं।

दूसरे दिन सुबह डॉक्टर साहब ने उसे अपने 'डी० पी० एस०' मिस्टर सरन के पास जाकर काम सम्हालने के लिए आदेश दिया। लच्छू ने एक बात ग़ौर की कि कोठी में रहनेवाले प्राय: सभी कर्मचारी आमतौर पर अंग्रेज़ी ही बोलते हैं। अपने इस नए अनुभव से लच्छू एकाएक सहम गया। एम० ए० का विद्यार्थी होकर भी उसे इस प्रकार आठोंयाम अंग्रेजी बोलने का अभ्यास न था। वह अपने-आपको उस कुएं के मेढक की तरह सहमा-सहमा-सा महसूस करने लगा, जो किस्मत के डोल में पानी के साथ-साथ ऊपर खिंच आया हो, और एक नयी, भव्य और अपरम्पार दुनिया में फेंक दिया गया हो। 'एटिकेट, मैनर्स, कल्चर' आदि सैकड़ों बार सुने और बके हुए शब्द इस समय लच्छू के लिए एक मूर्तिमान अर्थ प्रतीक बन कर सामने खड़े थे। व्यवहार-बर्ताव में अगर में इनमें से किसी के भी मजाक का शिकार बन गया तो फिर उबर न पाऊंगा। ये हाई सोसाइटी वाले बड़े 'स्नाब' होते हैं।

इस आलीशान पर्णकुटी में डॉक्टर साहब अपने साथ पूरी दुनिया को बांध-कर रहते हैं। उनका एक सचिव लन्दन में है, एक वाशिंगटन में है, एक मास्को में और दो सचिव रिपोर्टर बाकी सारी दुनिया में इधर-उधर उनके काम से दौड़ते ही रहते हैं। भारत के हर प्रदेश में डाक्टर साहब के चतुर गोयन्दों का जाल फैला हुआ है। उन्हें हर प्रदेश के मन्त्रियों, सचिवालयों और राजनीतिक दलों का सारा हाल नित्यप्रति मिलता रहता है; सरकार-दरबार की एक-एक कमजोरी का पता चल जाता है। डॉक्टर साहब इस समय लगभग एक दर्जन दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों के मालिक हैं। अंग्रेजी के अलावा हिन्दी, बंगला, मराठी, तेलुगु और गुजराती पत्रों के भी स्वामी हैं। डॉक्टर साहब अपनी इसी शक्ति के बल पर केन्द्र और प्रदेशों के बड़े-बड़े मन्त्रियों और अफसरों पर जबरदस्त के ठेंगे-से हरदम सवार रहते हैं।

डाक्टर साहब अपने मातहतों को बड़ी सुविधाएं देते हैं। बहुत से जवानों

को उन्होंने किसी न किसी बहाने विदेश भ्रमण के मौके भी दिलवाये हैं। उनकी पत्र-शृंखला के हर कार्यालय में कर्मचारियों के साथ बहुत ही अच्छा व्यवहार किया जाता है। और डाक्टर साहब के अनुशासन की सख्ती भी मशहूर है। अपनी स्वाभाविक चुस्ती से लच्छू नये अनुशासन और वातावरण के अनुकूल अपने-आपको ढालने लगा, फिर भी जगह अभी नई और अनजान ही थी। पंडत साहब को छोड़कर अभी और कोई अपना नहीं बना था। पर लच्छू हफ्ते भर में ही उनसे बोर हो गया। दिन भर के बाद हारे-थके घर आओ, ठीक तरह से कपड़े उतारने का अवसर भी न मिले और पंडत राजकिशन दरवाजे की घण्टी बजाने लगते हैं। यह कठिन बोरियत सहकर भी लच्छू पंडत राजकिशन की छत्रछाया में अपने को सुरक्षित पाता है। लच्छू असिस्टेण्ट प्राइवेट सेक्रेटरी है। डाक्टर साहब के नाम आनेवाले फरियादियों के पत्रों को पढ़ता है; उनके संक्षिप्त नोट्स बनाकर डिप्टी प्राइवेट सेक्रेटरी के सामने पेश करता है; डी० पी० एस० उस सूची में से ऐसे पत्रों पर नीली पेंसिल से टिकमार्क लगा देते हैं, जिनका उत्तर खुद डाक्टर साहब ही को देना चाहिए। फिर उस सूची को पी० एस० याने प्राइवेट सेक्रेटरी महोदय जांचकर पास करते हैं। ऐसी छटी हुई चिट्ठियों को लेकर तीन बजे लच्छू डाक्टर साहब के पास जाता है। वे एक-एक पत्र सुनते जाते हैं और उसके उत्तर में मतलब की बातें नोट करते चलते हैं। बाद में लच्छू उनके ड्राफ्ट तैयार करता है। डाक्टर साहब को सख्त हिन्दी से सख्त परहेज़ है। लच्छू हिन्दी का माहिर जानकार नहीं, मगर गलत नहीं लिखता। उर्दू शब्दों के नुक्ते या तो उससे गलत हो जाते हैं या चूक जाते हैं। डाक्टर साहब को इससे बड़ी चिढ़ है। आने के तीसरे या चौथे दिन ही उन्होंने उसके पत्रों के मसविदों की तो तारीफ की, मगर इस चूक के लिए चेतावनी भी दे दी। 'सी० एस०, पी० एस०' और 'डी० पी० एस०' ने उसे अपनी अंग्रेजी सुधारने के लिए भी कहा। अंग्रेजी तो पर्णकुटी की हवा में समाई है। एम० ए० तक पढ़ने पर भी उसकी अंग्रेजी में आब नहीं, न लिखने में, न बोलने में। लच्छू अपनी इन कमजोरियों के प्रति सजग होते ही मन ही मन हौल उठा है। पंडत राजकिशन की छत्रछाया उसे अपनी नयी नौकरी की सुरक्षा के लिए आवश्यकता महसूस होती है। सबेरे से शाम तक वे अपनी बेपनाह गालियों के तकियाकलाम के साथ सारी पर्णकुटी और उसके कम्पाउंड में 'मीनियल स्टाफ' (क्षुद्र चाकरों) पर गर्माते, हुक्म देते या बतियाते ही नज़र आते हैं। बहुत अदब करने पर भी डॉक्टर साहब के सामने तक उनके एकाध तकिया-कलाम निकल ही पड़ते हैं। धीरे-धीरे लच्छू को यह भी मालूम हो गया कि अक्सर डांटते हुए डॉक्टर साहब पंडत राजकिशनजी को बैलकिशन भी पुकारते हैं। मगर डांट-फटकार के बावजूद वे ही उसके सर्वोच्च विश्वासपात्र और अन्यतम निजी व्यक्ति हैं। बड़े और 'कलचर्ड' कर्मचारी उनके बातूनी होने के कारण ही उनसे दिखावटी अदब के साथ दस हाथ दूर रहते हैं। बातें करने के लिए छोटे बाबू और नौकर-चाकर, और अब एक ये लच्छू भी मिल गए हैं।

पंडत राजकिशन लच्छू को एक विचित्र सरस और सजीव व्यक्ति लगे। वे बातें बहुत करते थे और ऐसा लगता था कि उन्हें इतनी बातें करने के लिए शायद बहुत दिनों बाद लच्छू ऐसा एक धैर्यवान श्रोता मिला था। सिर गंजा, किनारे-किनारे पर जितने बाल थे, उनमें नाम लेने को भी एक काला न बचा था। भवों पर भी सफेदी ही की बहुलता थी। नाक लम्बी सुतवां, चेहरा भी लम्बा, खुलता

हुआ स्याम वर्ण और दांत तो दूर ही से अपने बनावटीपन की झलक दे जाते थे। चेहरा देखकर कोई यह कह ही नहीं सकता था कि पंडत राजकिशन इतने बातूनी होंगे। और बातें करने के लिए उनके पास सर शोभाराम, लेडी शोभाराम, विलायती लेडी शोभाराम, उसके दिवंगत हो जानेवाले दोनों पुत्रों और डॉक्टर आत्माराम के सिवा दूसरा कोई विषय ही न था। इस पर्णकुटी वाले टीले के नीचे मानो कोई दुनिया ही न थी। उनकी अपनी गृहस्थी तो यहां है नहीं। ज्येष्ठ पुत्र 'इंडिपेण्डेण्ट' पत्र का लन्दन-स्थित संवाददाता है, दूसरे शब्दों में डॉक्टर साहब का एक प्रमुख वैदेशिक सूत्रधार है। वह सकुटुम्ब लन्दन ही में रहता है। डॉक्टर साहब एक जगह अपने से एकदम बेलौस हैं, सो पंडत राजकिशन ही अब उनके 'गार्जियन' (संरक्षक) हो गये हैं। इस घर में वह और देवा माली ही अब पुरानों में बच गये हैं। डॉक्टर साहब की निजी जायदाद महत्वपूर्ण कागज-पत्र, खास तिजोरी की चाभी, उनकी सुख-सुविधा का पूरा भार उन्होंने अब तक नहीं छोड़ा है। पंडत साहब जब बैठते तो लच्छू को यहां के पुराने वैभव ही की कथा सुनाते।

सर शोभाराम आदमी क्या थे, अपने ज़माने के शाहंशाह थे। अंग्रेजों को डांटने फटकारने के तो वे मौके ही ढूंढ़ा करते थे और इसीलिए उन्होंने अपने घर में अंग्रेज नौकरों की एक पूरी पलटन रख छोड़ी थी। सन् '23 में वो वास्तु-कला शिल्पियों और इंजीनियरों की किसी कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए इंग्लैण्ड गये थे। पहले ही से व्यवस्था करके उन्होंने लन्दन में एक शानदार कोठी किराये पर ले ली थी, जिसमें बैरा, बटलर, बावर्ची, परिचारक, परिचारिकायें, शानदार गृहस्थी के सामान आदि की सब सुविधायें मौजूद थीं। सर साहब दो महीने वहां रहे। इसके बाद एक-एक महीना अपने पूरे स्टाफ के साथ पेरिस और स्विट्जरलैण्ड में बिताया, फिर सारे स्टाफ को वे अपने साथ हिन्दुस्तान भी ले आये। उनके अंग्रेज़ बावर्चियों की तनख्वाहें आठ-आठ सौ रुपये थीं। फ्रांस से वे एक धोबी और धोबिन भी ले आये थे। उनका कोचवान और बाद में ड्राइवर भी अंग्रेज ही था। सबके वास्ते उन्होंने रहने के क्वार्टर्स बनवाये थे। अपनी अंग्रेज़ प्राइवेट सेक्रेटरी, जो बाद में उनकी पत्नी हुई, के लिए झील के किनारे, मगर पानी पर एक बड़ी ही खूबसूरत और विचित्र डिजाइन की कोठी बनवाई थी। दूर से देखने में ऐसा लगता है, मानो पानी में एक सारस का जोड़ा एक दूसरे की चोंच में चोंच डाले हुए तन्मय खड़ा है। एक ओर सेक्रेटरी रहती थी और दूसरी ओर जब-तब इच्छा होने पर सर साहब एकान्तवास किया करते थे। सर साहब बड़े शौकीन और रसिया थे। पंडत राजकिशन सुनाते-सुनाते खुद भी रसमग्न हो जाते हैं। उन्हें यह होश ही नहीं रहता कि सुननेवाला उनके सबसे छोटे लड़के से भी दो-चार बरस छोटा है।···लेकिन डॉ० आत्माराम का स्वभाव अपने पिता के एकदम विपरीत है। डॉक्टर साहब आजन्म क्वांरे रहे। जवानी में एक अंग्रेज कलक्टर की पत्नी उन पर निसार हो गयी थी। अपने पति या सजातीयों की तनिक भी परवाह न करके जादू बंधी हिरनी के समान वह इनके पीछे-पीछे डोलती रही, मगर ये परस्त्री पर न पसीजे। अन्त में इसी सारस लेक में डूबकर उसने अपनी जान दे दी। पूरी की पूरी अंग्रेज बिरादरी इनकी दुश्मन हो गयी थी। उस घटना से झटका खाकर फिर डॉक्टर आत्माराम ने विवाह ही न किया।

डॉक्टर साहब की आमदनी इस समय भी आठ-दस हजार रुपये महीने से कम

नहीं। खेत हैं, फलों के बाग हैं, मिलों के हिस्से, किताबों की रायल्टी और 'इण्डिपेण्डेण्ट' के मुनाफे की रकम भी हर माह आती है। लखनऊ में काफी जायदाद है, जिसका किराया आता है। एक दिन उनके वैभव का वर्णन करते हुए पंडत राजकिशन में खुद भी रियायती अकड़-फूं आ गई। फिर उसके बाद ही सिर घुमा के बोले : "मगर क्या तारीफ करूं इस शख्स की, वो जो हमारे पुरानों में विदेह जनक की कथा आती न, उनको ही अब हमारे डॉक्टर साहेब में देख लो, जल में कमल के समान। कोई संन्यासी बड्चो' क्या खाके मुकाबिला करेगा हमारे डॉक्टर साहब का। अब तो आप अपनी आंखों से खुद ही देखेंगे मिस्टर लक्ष्मी-नरायन, मेरे डॉक्टर साहब ने अपनी प्रैक्टिकल डे टु डे लाइफ में दुनिया भर की हाइयेस्ट फिलासफियों की मां······धर दी है बड्चो।"

सारस लेक की सारस कोठी, जिसमें किसी समय सर शोभाराम की अंग्रेज़ प्राइवेट सेक्रेटरी रहती थी, आजकल स्टाफ क्लब है। प्रतिदिन शाम को वहां दस-बारह नर-नारी मिलते हैं। छोटी-सी कैण्टीन है, पीने के मजे हैं, घर बाहर के खेलों की सुविधा भी है। कभी-कभी खुद डॉक्टर साहब भी वहां चले आते हैं।

मिसेज माथुर ने अपने नये शिकार लच्छू का पीछा नहीं छोड़ा था। एक दिन उसके दफ़्तर वाले कमरे में आकर अचानक पूछा—"आपको खेलों से भी शौक है मिस्टर खन्ना ?"

लच्छू इस सवाल से अचकचा उठा, फिर सम्भलकर बोला : "जी, वैसे बहुत अच्छा तो नहीं खेलता, मगर क्रिकेट, वैडमिण्टन, वॉलीवॉल खूब खेलता रहा हूं।"

"एण्ड ह्वाट एबाउट इनडोर गेम्स ?"

"जी, खेल तो लेता हूं कैरम, शतरंज, ताश।"

"मुझे ताश के खेल से बड़ी नफरत है मिस्टर खन्ना। आपको भी नफरत है ?"

लच्छू इस सवाल से अचकचा उठा। वह ताश का शौकीन है, बोला : "जी, नफरत कुछ इस तरह की है कि ये वैठे के खेल मुझे जरा कम ही पसन्द आते हैं।

"और डान्स करना आता है ?"

"जी ? जी नहीं।"

"हाय, ह्वाट ए ट्रेजेडी' इसके बिना आदमी सोशल कैसे बन सकता है। खैर, मैं सिखा दूंगी।" कहकर मिसेज माथुर ने लच्छू को ऐसी मादक दृष्टि से देखा कि वह सनाका खा गया।

मिसेज माथुर उस दिन से लच्छू के पीछे पड़ गईं। दिन में दो एक बार वे अपने घर से उसे फोन भी कर लिया करती थीं। शाम को उसके दफ़्तर लौटने के समय वह अपनी बालकनी में बैठी उसकी प्रतीक्षा किया करती थीं। जैसे ही वह ऊपर आता, मिसेज माथुर अपने दरवाजे पर आ जातीं, अपनी मुस्कराहट से उसका स्वागत करतीं और फिर उसके साथ ही उसके घर में प्रवेश भी करती थीं। चूंकि पंडत राजकिशन भी लगभग उसी समय दरवाजे की घंटी बजाते थे, इसलिए मिसेज माथुर के मिजाज का पारा चढ़ जाता था। तीसरे-चौथे दिन ही पंडत राजकिशन ने लच्छू से कहा : "बरखुरदार, इस छिपकली से जरा होशियार ही रहिएगा। ये निहायत ही, कहना चाहिए कि बस अव्वल नम्बर की हरामजादी है। अपने खसम को तो इसने उल्लू का पट्ठा बना रक्खा है। तीसरी बीवी है ना। तुमसे पहले यहां शौकत हुसेन ए० पी० एस० था। वह उस कोने वाली

बिल्डिंग के फ्लैट में रहता था। ये रात में अपने घर से उठकर उसके फ्लैट में पहुंच जाती थी। और ये माथुर साला खाली घूर-घूरकर देखता ही रह जाता था। एक ये लौंडिया है और दूसरी साली वो मिस्टर बोस की टड्ढो बोसिन है बड़चो। बोस और माथुर सारस लेक के दो नम्बरी चूतिए माने जाते हैं।"

मिस्टर बोस पर्णकुटी के लायब्रेरियन हैं, देवता आदमी। लायब्रेरी ही दर-असल उनका घर है : उनके दो लड़कियां थीं, जिनके विवाह हो चुके हैं। मिसेज बोस की आयु अब सैंतालिस-अड़तालिस के लगभग है। अब चूंकि बराबर की हैसियत वाले प्रेमी उन्हें नहीं मिलते, इसलिए पर्णकुटी के तीन-चार जवान नौकरों से उन्होंने अपना मनमाना हरम आबाद कर रक्खा है।

लच्छू के ऊपर पंडत राजकिशन की बात का कुछ असर तो हुआ, लेकिन वह ऐसा नहीं था कि नारी के आकर्षण से अपने-आपको अछूता रख सके। मिसेज माथुर उससे सिर्फ चार ही पांच साल बड़ी थीं और बहुत सुन्दर न होने पर भी नये फैशन में सजी-बजी, रंगी-चुंगी, कचालू-मटर की चाट ऐसी लगती थीं, देखकर लच्छू के मुंह में पानी भर आता था। इससे भी बड़ी बात यह थी कि इस 'पॉश सोसायटी' का महत्त्वपूर्ण अंग बनने की महत्वाकांक्षा खुद उसके मन में भी ऐसे बीज के समान पड़ी हुई थी, जो उचित खाद और पानी न पाने के कारण अब तक पनप नहीं सकी थी। मिसेज़ माथुर उसकी इसी गुप्त आकांक्षा को यहां आते ही जगाने लगीं। महीना पन्द्रह रोज तक लच्छू यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वह इतनी जल्दी ही अपने जीवन में मनचाहा परिवर्तन पा सकेगा। लेकिन उसे एक ही भय था, वह डॉक्टर आत्माराम की नजरों से गिरने के लिए किसी भी शर्त पर तैयार नहीं था। पंडत राजकिशन के टोक देने से उसके मन में केवल यही भय समाया कि कहीं डॉक्टर साहब तक उसकी बदनामी का यह सूत्र न पहुंच जाय। वह मिसेज माथुर से कतराने की कोशिश करने लगा। शाम को दफ्तर से घर आने के बजाय वह पर्णकुटी के पिछवाड़े से झील के किनारे-किनारे लगभग एक मील दूर सन्नाटे में जाकर बैठ जाता था। और जब तक उजाला रहता, वह रमेश, बिरजू आदि मित्रों को वहां बैठकर पत्र लिखा करता था या विरह-वेदना में सिनेमा के गीत गाता था।

लेकिन उसकी यह तरकीब पन्द्रह-बीस दिनों से अधिक चल न पाई। मिसेज माथुर उसका पीछा करते हुए एक दिन वहां पहुंच ही गईं। लच्छू उन्हें देखते ही सहम गया। मिसेज माथुर ने उसके पास बैठकर मुस्कराते हुए कहा—"तुमने अपने खयालों में दुनिया में रहने के लिए जगह बहुत नायाब चुनी है। मैं भी जब लाइफ में पहली बार प्रेम में पड़ी थी, तब इसी तरह अकेले में रहना पसन्द करती थी।"

लच्छू कुछ सकुचाते और कुछ-कुछ सहमते हुए बोला : "जी—मिसेज माथुर—"

"उमा—तुम उमा कहा करो। मुझे उस इंपोटेंट मुर्गे का नाम भी अपने साथ जोड़ना अच्छा नहीं लगता।"

किसी शरीफ औरत से इतनी खुली बात सुनने का अवसर भी लच्छू के जीवन में पहली ही बार आया था। वह अचकचा कर मिसेज़ माथुर की ओर देखने लगा। अपनी पैनी कनखियों से एकबार उसकी ओर ताककर मिसेज़ उमा माथुर बोलीं—"मेरी साफगोई पर हैरत होती है? तुम्हारा नज़रिया बहोत ही

पुराना मालूम देता है, खन्ना। इस तरह तो नये जमाने में तुम तरक्की करने से रहे। वो सती-वती वाला बोसीदा दृष्टिकोण अब भी चलाना चाहते हो ? और अपने-आपको सोशलिस्ट भी मानते हो ? ये सब वेहूदा बकवास है। औरत-मर्द का मिलना एक शारीरिक जरूरत है। भूख-प्यास की तरह 'सेक्सुअल अर्ज' (कामेच्छा) भी एक कुदरती और शारीरिक जरूरत है और उसे पूरा ही करना चाहिए।"

लच्छू को उमा की बातें ताज्जुब से भर रही थीं। एकाएक बोला : "मैं औरत को अब तक देवी समझता था।"

मिसेज माथुर उसे रसीली नज़रों से देखकर मुस्कराई : "यू आर ए किड—सिम्पली ए वेरी-वेरी स्माल किड, माई पुअर डार्लिंग, अच्छा बताओ, तुमने किसी से लव किया है अब तक ?" कहते हुए उमा ने लच्छू के गले में बांहें डाल दीं।

लच्छू झेंप गया। नारी के आक्रामक पौरुष ने उसके संकोच जड़े पौरुष को झटका दिया। जीवन में पहली बार उसे किसी नारी का एकांत साथ मिला था। पिछले कई वर्षों से मन में हिलोरें लेती हुई प्रेम-कामना जो स्वयं आक्रामक होना चाहती थी, जो किसी प्रेमिका के लाज-संकोच से लड़कर उसे जीतना चाहती थी, अब तक एक बार भी अपना दाव न पाकर इस समय स्वयं ही एक फाहशा औरत के हत्थे चढ़ी जा रही है। उसे अच्छा नहीं लग रहा, मगर अच्छा भी लग रहा है। यूनिवर्सिटी में पढ़ा हुआ मनोविज्ञान उड़े-उड़े दिमाग के लिए अड्डा बन रहा है, युग का मनोविश्लेषण सिद्धान्त 'पर्सोना, अनीमा, ईगो' तोता रटन्त पहाड़े की तरह हर सांस के साथ उठ रहा है—उसके 'पर्सोना' (चेतन व्यक्तित्व) पर उमा के अनीमा (स्त्री का पौरुष या पुरुष का नारीत्व) का आक्रमण उसके लिए बड़ा लज्जाजनक है जब कि होना यह चाहिए था कि उसका अनीमा उमा के अनीमा के प्रति आकर्षित होता। यह उसकी 'पर्सोना' बुद्धि का तक़ाज़ा है। विपरीत अवस्था में उसका ईगो (अहम्) चुटीला हो रहा है।···मगर पर्सोना, अनीमा और ईगो के निरर्थक पहाड़े से भी अधिक उस पर उमा का पहाड़ लदा जा रहा है।—और अभी वह इस खेल को जानता नहीं। ये कैसा मौका—कैसा शर्म का मौका है-—पर्सोना अनीमा···।

मिसेज माथुर की रंगीन तबियत को लच्छू की यह भोली अदा भा गयी, बोलीं—"यू आर रियली अनफार्चूनेट माई लिटिल वन। इन्सान जब तक किसी से प्रेम नहीं करता तब तक उसे अक्ल आ ही नहीं सकती।"

"मैं तो समझता हूं कि प्रेम किया नहीं जाता, बल्कि आपसे आप ही किसी को देखकर हो जाता है।"

"तुम नासमझ हो, वरना ये सवाल ही न करते। कवियों का खयाल और प्रेम की अस्लियत दो अलग वस्तुएं हैं।"

"मगर क्या इसी को आप प्रेम की अस्लियत कहती हैं ? मैं तो समझता था, प्रेम एक बड़ी पवित्र वस्तु होती है।"

"पवित्र पवित्र—माई फुट।" उमा माथुर ने घृणा से मुंह बनाते हुए कहा : "यह पवित्रता की कमजोरी सिर्फ हमारे इस जाहिल देश ही में है। तुम जानते हो, योरप-अमेरिका में क्या होता है। लड़के-लड़कियां जब तक आपस में दो-चार-छः लोगों से प्रेम नहीं कर लेते, तब तक किसी से शादी-ब्याह नहीं करते। मुझे तो कम्बख्त मेरी मौसी ने फंसा दिया। मैंने उनके लड़के से प्रेम किया तो उसकी

शादी उन्होंने एक बहुत रईस खानदान में करवा दी । मैंने बाद में इसका बदला लेने के लिए अपनी मौसी के लवर, इस खूसट माथुर को फंसाया'''एण्ड आई केम हियर विद हिम । बट ही इज नो मैन ।'''तुमसे कसम खाकर कहती हूं, दैट द फीलिंग आफ रियल एण्ड डिवाइन लव डॉण्ड बिफोर मी फार द फर्स्ट टाइम इन माई लाइफ ओनली ह्वेन आई सा यू ।" ('''मैं उसके साथ यहां आ गई । पर वह मर्द नहीं है ।'''तुमसे कसम खाकर कहती हू कि मेरे जीवन में सच्चे और दैवी प्रेम की अनुभूति केवल उसी समय जागी, जब कि मैंने तुम्हें देखा ।)

जंगल धीरे-धीरे अंधेरे में समाता चला गया—और फिर लच्छू मर्द बन गया ।

दस

गाड़ी अटक गयी, मेरे उपन्यास के सूत्र नये-नये खुलते ही चले जा रहे हैं और मैं अभी तक एक कथासूत्र की रस्सी नहीं बट सका । प्लॉट के पूर्वाग्रह से मैं अवश्य मुक्त हूं, लेकिन जैसे घुली-मिली सांसों से एक जीवन-कथा निर्मित होती है, वैसे ही पात्रों के घुलने-मिलने से एक कथा भी बननी चाहिए । शर्त उसके आप ही आप बनते चले जाने की है । अभी तक रमेश और रानी का जोड़ा अपना नैसर्गिक विकास भी न पा सका था कि लच्छू तथा उमा माथुर की कठपुतलियां खुद मुझ सूत्रधार ही को नचाने लगीं । खैर, इस बार यही लीला सही । हम भी देखेंगे, कहां-कहां विचरता है हमारा अन्तर्मन । लच्छू को जब मैं सारस लेक की ओर लाया, तब कहीं दूर-दराज़ में भी मेरी कल्पना ने उमा माथुर को देखा तक न था ।'''ये कम्बख्त उमा माथुर एकाएक मेरे मन में आ कहां से गयी ?

मगर सारस लेक का एक अपना वातावरण तो बंधना ही था और सारस लेक के डॉ० आत्माराम मेरे मन में उपन्यास का ग्यारहवां अध्याय लिखने से पहले ही स्पष्ट हो चुके थे । सारस लेक की पर्णकुटी एक आभिजात्य बुद्धिवादी की रियासत थी । डॉ० आत्माराम के सहारे मैं एक ऐसे सत्यनिष्ठ भले और भोले बुद्धिवादी का चित्रण करना चाहता हूं, जो चिराग़ तले अंधेरे की कहावत को अक्षरशः चरितार्थ करता है । उनकी ईमानदारी अपनी एक बड़ी लालच से जुड़कर ग़लत समझौते करने पर मजबूर हो रही है । शायद वो बेचारे यही सोचते होंगे कि रुपये में इकन्नी-दुअन्नी भर ही सही, देश के हृदयपटल पर उनके द्वारा समाजवाद की अमिट छाप पड़ ही जाय । उपन्यास का सारस लेकवाला अध्याय आरम्भ करते समय मेरी यह नीयत ज़रूर थी कि ऐन उनकी नाक तले गन्दगी दिखलाऊं । मगर मेरी उस नीयत की आड़ लेकर उमा माथुर और मिसेज़ बोस जैसे काम-प्रतीक सहसा अंकित हो जायेंगे, ये मैंने सोचा भी न था । ऊपरी सतह पर अपनी कल्पना की बढ़ती सृष्टि में मैं रमा था, मगर उसकी गति का संचालन मन के नेपथ्य से कोई और ही बिम्ब कर रहा था—धन्नो, धन्नो पुरतानी—

सहसा मेरे सामने इस समय मेरी कामगुरु की तस्वीर आकर खड़ी हो गई। और लच्छू के सामने अनायास उमा माथुर के आ जाने का कारण भी स्पष्ट हो गया। लच्छू अनजाने ही में खुद मेरा प्रतीक बन गया है। फ़र्क इतना ही है कि लच्छू की वर्तमान आयु मैंने लगभग तेईस-चौबीस की रक्खी है जबकि मेरी आयु तब सोलह-सत्ररह के सगभग ही थी।

मेरे बाबा का देहान्त हो चुका था। इण्टरमीजियेट में कैंनिग कालेज का विद्यार्थी था और मेरी राजनीतिक उग्रवादिता से मेरे पिताजी मुझसे बहुत परेशान और नाराज थे। उससे लगभग आठ-नौ महीने पहले ही सन् '16 की लखनऊ कांग्रेस हुई थी। लोकमान्य तिलक यहाँ आये थे। उनके स्वागत के लिए सजायी गयी फ़िटन के घोड़े खोलकर गाड़ी को स्वयं घसीट कर ले जाने वाले जोशीले नवयुवकों में एक मैं भी था। तिलक महाराज, जिन्हें हम लोग अपने यू० पी० शाही उच्चारण में तिलक कहा करते थे, उन दिनों मेरे तन-मन में समाये हुए थे। लोकमान्य के आगे कोई लीडर ही नहीं लगता था। सामाजिक क्रांति के प्रति मेरा उत्साह उग्र विद्रोह की वृत्ति से संचालित था। आर्यसमाज के मंच से सनातन धर्म के खिलाफ़ बड़े गर्मागर्म भाषण भी दे चुका था। और अपनी इन्हीं सब हरकतों से मैं अपने पिता को नाराज भी कर चुका था। मेरे बाबू तब तक हारे हुए निष्क्रिय सुधारवादी हो चुके थे। यही नहीं, वे उन दिनों धीरे-धीरे मूर्तिपूजा की ओर भी झुकने लगे थे। सनातन धर्म की महिमा तो अक्सर ही बखानने लगे थे। विधवा विवाह, खासतौर पर उस जमाने के प्रचलित नारे, यानी, 'अक्षत योनि' बाल विधवाओं के विवाह का जोशीला धारा-प्रवाह समर्थन करने के कारण मेरी 'भाभी' (मां) बहुत परेशान थीं। उन्हें डर था कि कहीं मैं ऐसी ही शादी न कर लूं। भाभी के डर ने पिताजी के डर को भी उभार दिया था। उन दिनों संयोग से हमारे महल्ले से थोड़ी ही दूर पर हमारे एक सजातीय के घर में एक ऐसी ही 'अक्षत योनि बाल-विधवा' लगभग मेरी ही आयु की थी और उसके बड़े भाई उसका पुनर्विवाह करने की इच्छा से उन दिनों एक हलचल भरी भूमिका बांध रहे थे। वे नायब तहसीलदार के ओहदे पर थे। अंगरेजी पढ़े-लिखे विचारक, सुधारक और ज़रा कुछ टर्रेखां क़िस्म के आदमी थे। हमारी बिरादरी में उन दिनों उनके रवैये के कारण बड़ी हलचल मची हुई थी। भाभी की सलाह से मेरे पिता ने मुझे अपने चचेरे भाई के पास इलाहाबाद भेजने का निश्चय किया। मैं भी घर में होने वाली रोज-रोज की कलह-किचकिच से दुखी हो गया था। फौरन ही वहां जाने के लिए राजी हो गया।

चचा नरोत्तमदास इलाहाबाद में खुशाल पर्वत पर रहते थे। चौक में उनकी किताबों की दुकान थी, छोटे-मोटे प्रकाशक भी थे। उनका घर बहुत छोटा था, इसलिए अपने घर से सटे हुए एक पुरोहितजी के घर में ऊपर छतवाली कोठरी उन्होंने मेरे लिए एक रुपये महीने किराये पर ले ली थी। दोनों घरों के बीचवाली मुंडेर इतनी छोटी थी कि बच्चे भी आसानी से आते-जाते रहते थे। इन्हीं धर्मनिष्ठ तपोनिष्ठ वयोवृद्ध पुरोहित जी की चौथी भार्या मेरी कामगुरु बनी थी।

धन्नो की वह घेराघारी, वह कामपीड़ित आक्रामक हलचल मुझे बहुत आन्दोलित करती थी। अपने आयुदोष के कारण मैं उसके आमन्त्रणभाव के प्रति आकृष्ट भी था और अपनी नैतिकता की चेतना के कारण उससे दूर भी भागना चाहता था। मुझे यह बहुत बुरा लगता था कि चाहना के वश में होकर किसी

युवक द्वारा किसी युवती को घेरे जाने के बजाय स्वयम् कोई युवती ही मुझ नव-युवक को घेरे। इससे मुझे लज्जा का अनुभव होता था। शुरू-शुरू में मैं धन्नो से आंख तक नहीं मिला पाता था। उपन्यासों में पढ़े हुए प्रेमचित्र खुद मेरे जीवन में ठीक विपरीत रूप लेकर उभर रहे थे। मैं झेंपता, कतराता और संकुचित या क्रुद्ध होता था तथा धन्नो नायक की तरह मेरी झेंप और झुंझलाहट पर मुग्ध हो-होकर बराबर अग्रसर होती थी। और, अन्त में, जैसे मेरा पौरुष झुंझलाकर आक्रामक हुआ था।···ठीक वैसा ही चित्र लच्छू और उमा के चित्र में अंकित हो गया। चूंकि इस समय मेरा मन साफ़ हो रहा है, इसलिए उमा माथुर या अब तक मेरे सारस लेकवाले अध्याय में केवल नाम मात्र के लिए ही बखानी गयी मिसेज बोस के पीछे एक चरित्र और भी है, जो मेरे जीवन में बहुत बाद में आया था।

सन् '40 के अन्त में मैं जेल से मुक्त हुआ। व्यक्तिगत सत्याग्रह का आन्दोलन उन दिनों बिखरा-बिखरा हुआ-सा ही चल रहा था। दूसरे महायुद्ध की महंगाई ने जेल से बाहर आते ही मुझे अपने घर के दैन्य से मजबूर होकर साक्षात्कार करना पड़ा। बच्चे सब छोटे-छोटे थे। बड़कू हाईस्कूल में था। छुटकू, बिट्टी उमेशो सभी तो पढ़ रहे थे। एक मेरी नन्हीं ही तब तक पैदा नहीं हुई थी। तीस रुपये मकान के किराये की आमदनी और बड़कू द्वारा की जाने वाली छः रुपये महीने की ट्यूशन ही माया का सहारा थी। बड़ी मुश्किल से खर्च चल रहा था। उन्हीं दिनों सी० एस० पी० (कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी) की एक मीटिंग के सिलसिले में मुझे बंबई जाने का अवसर मिला। साहित्य और राजनीति दोनों ही के कारण मेरा थोड़ा-बहुत नाम तो हो ही चुका था। एक प्रतिष्ठित महाराष्ट्रीय सोशलिस्ट बन्धु के द्वारा एक दिन संयोग से मेरी भेंट कोल्हापुर के एक नामी फ़िल्म प्रोड्यूसर से हो गयी। वो उन दिनों एक कहानी पर हिन्दी और मराठी की दो फ़िल्में बना रहे थे। और उनके लिए उस समय यह मुसीबत आ गयी थी कि उनका हिन्दी अनुवादक उन्हें छोड़कर उनके विरोधी गुट में जा मिला था। महाराष्ट्रीय मित्र से मेरी प्रशंसा सुनकर उन्होंने अपनी व्यथा सुनाते हुए मेरे सहयोग की याचना की। मैंने कहा, मैं अनुवाद तो कर न सकूंगा, क्योंकि मराठी नहीं जानता। हां, आपके सिनेरियो के दृश्यों को अपने मौलिक सम्वादों से सजा अवश्य दूंगा। बस, एक बार मुझे फ़िल्मी संवादों की तकनीक समझनी भर होगी।

प्रोड्यूसर महोदय इसके लिए खुशी से राज़ी हो गए बोले : "इससे तो हमारा और लाभ होगा। आपके जो 'डायलाग्स' बहुत अच्छे होंगे, उन्हें हम मराठी में ट्रांसलेट कर लेंगे और हमारे मराठी 'वर्शन' के जो डायलाग्ज़ आपको पसन्द आएं, उन्हें हिन्दी में जोड़ लीजिएगा।"

मेरे सोशलिस्ट मित्र ने सौदा तय करा दिया—आने-जाने का फ़र्स्ट क्लास का किराया और कोल्हापुर में रहने-खाने के मुफ्त प्रबन्ध के साथ-साथ पाँच सौ रुपयों की रक़म पारिश्रमिक के तौर पर भी।

कोल्हापुर के सर्वश्रेष्ठ, एक छोटे से किन्तु साफ़-सुथरे बारयुक्त होटल की पहली मंजिल में मेरे लिए एक कमरा रिज़र्व हो गया। ऊपर केवल तीन ही कमरे थे। दो यात्रियों के निवास के लिए और एक में भोजन के लिए टेबिल-कुर्सियां पड़ी हुई थीं।

फ़िल्म प्रोड्यूसर महोदय बड़े सुसंस्कृत और ख़ातिर-तवाज़ोह के आदमी थे।

उनके आदेश से होटल वाले मेरा बड़ा ख़याल रखते थे। वहां जाकर एक दिन तो मैंने अपने नये काम को समझने में लगाया और दूसरे दिन से फ़िल्म की प्रस्तुत दृश्यावली के अनुसार सम्वाद लिखने में रम गया कि दोनों समय केवल नहाने और खाने के लिए ही अपने कमरे से बाहर निकलता था। होटलवाले मेरे काम करने की शक्ति को देखकर दंग थे और फ़िल्म-निर्माता महोदय भी। चार दिन में मैंने पिक्चर के सम्वाद लिख डाले। इन चार दिन तक भोजन के अलावा मैंने होटल वालों को चार-पांच कप चाय और सिगरेट के लिए ही कष्ट दिया, उसके बाद पांचवीं शाम से मेरी ह्विस्की का दौर भी चलने लगा। दिन भर अपने लिखे सम्वादों पर बहस और आवश्यक सुधार करने के बाद शाम को होटल आता था। मेरे नहा-धोकर तैयार होते ही बैरा ह्विस्की-सोडा लिए मेरी सेवा में आ उपस्थित होता था। मैंने कह रक्खा था, भोजन से ठीक एक घण्टे पहले हाथ में गिलास आ जाना चाहिए। वारुणी की तरंग में, अपने कमरे के सामने वाली बालकनी में बैठकर उस छोटे से रियासती शहर का बाजार निहारा करता था। सुनहरी झब्बेदार लाल रेशमी पगड़ी या साफ़े या काली किश्तीदार टोपी, लम्बे कोट, कुरता, वास्कट या कमर तक का अंगरखां पहने, दुपट्टा डाले, पैरों में मोटी मजबूत कोल्हापुरी सादी या ज़रीदार चप्पलें अथवा पुरानी मुग़लिया चाल की चोंचदार घेतली जूतियां, जिन्हें महाराष्ट्र में पुणेरी और बंगाल में 'विद्यासागरी' जूती कहा जाता है, पहने हुए पुरुष और लांगदार साड़ियां, धनुषाकार नथ और कपाल पर बड़ी कुंकुम बिन्दी लगाये आने-जानेवाली स्त्रियां ही दृश्य को हमारी यू० पी० के आम दृश्य से अलग कर देती हैं, वरना उसकी मनुष्यता और आम सांस्कृतिक ढांचे में मुझे कोई अन्तर नहीं लगता था। मराठी बोली भी अपरिचय के कारण ज़रा अटपटी लगती तो थी, लेकिन इतनी अपरिचित भी नहीं थी। उस भाषा की सारी संस्कृत शब्दावली मेरी अपनी भी थी। भारत में भ्रमण करते हुए यह थोड़ा अन्तर-प्रादेशिकता का अलगाव और एकता का खठमिट्ठा मज़ा मैं अपनी बालकनी में बैठा, चुस्कियों और कशों की तरंग में लिया करता था। सामने वाले 'उपाहार-गृह' का लाउडस्पीकर रोज़ ही कुछ लोकप्रिय मराठी फिल्मगीतों के रेकार्ड बार-बार बजाया करता था :

"ज़रा हंसून — ज़रा हंसून, बघ मोहिनी,
चटक चांदणी,
राणी ग, राणी गऽ राणी गऽऽऽ

मैंने अपने ढंग से इस गीत का अनुवाद यों किया : "ज़रा हंसो, (ओ) बाघमोहिनी, चटक चांदनी, रानी री, रानी री, रानी री ई ई ई"...और बस बघ या बाघमोहिनी संबोधन का मन ही मन खूब आनन्द लेता रहा। मैंने सोचा, बघनखा धारण करने वाले शिवाजी के देश के बाघ-समान रण-बांकुरे मराठे ही अपनी प्रियतमाओं को बघमोहिनी कह सकते हैं। खैर! बाद में मुझे प्रसंगवश शब्द का सही अर्थ मालूम हो गया, 'बघ' माने 'देख'।

सातवें या आठवें दिन, रात को खाने की मेज़ पर मैंने रोज़ के दो चेहरों के अलावा एक सम्भ्रान्त मराठी महिला को देखा—आरक्त गौर वर्ण, ऊंची पूरी, गदबदे बदन वाली। चेहरा तिकोना, रौबीला, सुनहरे केश, कपाल पर बिन्दी नदारद, और होंठों पर हल्की गुलाबी लिपस्टिक की फबन थी। काले सींग के मोटे फ्रेमवाला चश्मा महिला के व्यक्तित्व को बौद्धिक गरिमा प्रदान कर रहा था।

उसके एक हाथ में घड़ी बंधी थी और दाहिने में थी एक लाल चूड़ी। उम्र अड़तीस-चालीस की लपेट में जंची।

एक महिला की उपस्थिति से हम रोज़ के तीन टेबिलसाथी आज तनिक आपस में अटपटापन अनुभव कर रहे थे। मेरे अलावा एक थे मिस्टर भाण्डुपवाला पारसी और दूसरे दाभोलकर जौहरी थे। हम तीनों ही प्रायः समान आयु के थे। भाण्डुपवाला छोटी राणी साहेब के महल में बम्बई की एक फ़र्म की ओर से फ़र्निचर पलटने के लिए आये थे और दभोलकर रनिवास और स्थानीय जागीरों की अन्तःपुरवासिकाओं को, उन्हीं के शब्द में 'लूटने' आये थे। दाभोलकर और भाण्डुपवाला दोनों ही बड़े अलमस्त। यह दोनों सज्जन पहली मंजिल से आते थे और हम तीनों ही अपने-अपने क़रीब-क़रीब आधे भरे हुए गिलास हाथ में लिये, नशे के घोड़े पर सवार होकर आते थे। तब तक डेढ़ पेग पहुंच जाने से मेरा घोड़ा औरों से फरवट होता था। भाण्डुपवाला मुझे देखते ही कहते "बा' डब-बा' मुलाज़ा होश्यार! हुजूर वन प्लस हाफ़ बाडशा सलामट का सवारी आटा हैगा।" और दाभोलकर अपना गिलास ऊंचा उठाकर, "या या साहेब, गुडईवनिंग" करते थे। मैं खादी के कुरते-पाजामे में, पारसी टिपटॉप, सूटेड-बूटेड और दाभोलकर मलमल की धोती और मलमल ही का बनियाइन नुमा छोटा कुरता पहने आता था, जिसके बटन खुले होते थे और सोने की दो लड़वाली जंजीर और यज्ञोपवीत उसके अंदर से झलकते थे। उसके बांयें हाथ की उंगलियों में पन्ने, पुखराज की दो अंगूठियां स्थायी रूप से पड़ी रहतीं और दाहिने हाथ की तीसरी उंगली में, उन सात-आठ दिनों में मैंने हर दिन नयी अंगुठी देखी।

उस दिन दाभोलकर की उंगली में एक बड़े हीरे की अंगूठी थी। शायद महिला की मौजूदगी के कारण ही उसने आज गिलास ऊंचा न उठाकर केवल हाथ ही उठाया। हीरे की कौंध मेरे हवाई मूड में चमक उठी। मैंने कहा : "वेल मिस्टर ज्वेलर, क्या यह वेशकीमत हीरा दिखलाकर तुम अपने दो ग़रीब दोस्तों का शाही मूड फीका करना चाहते हो?"

"छिः छेः! यू यू० पी० वालाज़ आर नो रियल हिन्दू। अरे, आज शुक्रवार आहे। शुक्र म्हणजे डायमन्ड, हिरा, अण्डरस्टैण्ड!—वाइन वुमन एण्ड आंवे—म्हणजे सगलेच तुम कूं मिल जायेंगा, इफ़ यू वियर डायमण्ड ऑन फ्रंइडे, अण्डरस्टैण्ड!"

एक महिला की उपस्थिति में दाभोलकर का अपनी फक्कड़ी अदा में शुक्र के साथ 'वुमन' शब्द का लगाव जोड़ जाना, मुझे भी अखरा और भाण्डुपवाला को भी। महिला, मैंने देखा, सामने वाली दीवार की एक पेण्टिंग पर निर्विकार टकटकी लगाये बैठी रही। भाण्डुपवाला तुरन्त हंस कर अंग्रेजी में बोला—"तुम्हारा हीरा हम सभी के लिए भाग्यशाली रहा मि० डाबोलकर।" एक संभ्रांत महिला की मौजूदगी से इस कमरे की गरिमा ही बदल गयी है--(महिला का रुख न बदला, केवल चेहरे से वेरुखी का कसाव उतर गया। नशे में मुझे लगा, महिला अपने कान से हम लोगों को देख रही है। पारसी हंसते मीठे तरीक़े से बोलता ही चला जा रहा था—) लेकिन शराब तो हमें बग़ैर शुक्र और हीरे के भी रोज़ ही मिलती है। मेरा प्रस्ताव है कि तहज़ीब के तक़ाजे से हम इस समय यह पीने का प्रोग्राम स्थगित कर दें!"

महिला का चेहरा दीवार पर टंगी तस्वीर से उतरा और हमारी ओर भव्य

मुस्कुराहट की खुशनुमा क़ालीन बिछाता हुआ आया; होंठों के लाल क़िले के फाटक खुले और मर्मरी-दांतों की बारहदरी-सी झलक उठी; बड़ी शालीनता, मीठेपन, आज़ादपन और बैलौसी के साथ अंग्रेजी में कहा—"मैं तो समझी थी कि आप मेरी खुशी के लिए टोस्ट प्रोपोज़ करने उठे हैं।"

मेरा नशे का परी घोड़ा तुरन्त मौके की बात ले उड़ा, मैंने उठकर दोनों हाथ बाअदब छाती पर बांधकर झुककर 'आज्ञा चाहता हूं मैडम' कहा और फिर हाथ में गिलास उठाकर नशे में, उपन्यासों में पढ़ी योरोपीय 'शिवेलरी' का अभिनय साधता हुआ बोला—"गोर्की की 'छब्बीस एक' कहानी की तरह लगभग एक हफ्ते से यहां मिलने वाले तीन परदेसियों की सूरतों में एक-दूसरे के लिए अब कोई आकर्षण न रह गया था। और हम अति परिचय के रोग से ग्रस्त होकर आपस में उतनी अभद्रता बरतने पर उतर आये थे, जितनी कि सिर्फ़ मर्द-मित्र-मण्डली ही में सम्भव है। (हंसी) मैडम, हम हर शाम के तीन निठल्लों की शराफ़त और इन्सानियत नारी की नैसर्गिक कोमलता और भव्यता से बंधकर हमें इस नशे की हालत में भी वापिस मिल रही है, और उसका सारा श्रेय आपकी दिव्य और भव्य उपस्थिति को है। अपना आभार प्रदर्शन करने की इच्छा से आपके स्वास्थ्य और सुख की हार्दिक कामना के लिए मैं यह जाम उठाता हूं।"

गिलास टकराये और तब तक सबके सामने गर्मागर्म सूप आ गया।

वह शाम पिछली शामों से अलग थी। आमतौर पर हम लोग एक-एक पेग टेबिल पर और ले लिया करते थे। आज वहीं तक सीमित रहे है। बातों के लिहाज से भी वह शाम मेरी ही रही। रियासती वातावरण के शहर में नवाबी नगर लखनऊ के बाशिन्दे के पास रिझाने के लिए बातें ही बातें थीं। लखनऊ के 'मुर्गमुसल्लम, टुंडे' के नामी कबाब, रूमाली रोटियों, आमों और रामआसरे की मिठाइयों तक का बयान ऐसा चटाखेदार और रसीला चला कि सब मेरी तरफ ही बंधी टकटकी से देखते रहे। खाने की चीज़ों के साथ जुड़कर नवाब वाजिदअली शाह और उनकी तीन सौ आठ बेगमों, उनके जोगिये मेले और इन्दर सभा के जश्न, स्कॉच-ह्विस्की की तरलता में लफ्फाजी के नौरतन बनकर मेरी वाणी पर चमकते चले। अन्दाज़े-बयां यह था कि कहीं अंग्रेजी, कहीं हिन्दी और कहीं सलीस लखनवी भाषा के लच्छेदार टुकड़े जुड़ते चलते थे। खुशगप्पी में घण्टे-सवा-घण्टे का समय नामालूम तरीके से बीत गया। वह महिला अधिक बोली-चाली तो नहीं, पर यह स्पष्ट था कि खाने से अधिक मजा उसे मेरी बातों में आ रहा था।

दाभोलकर और भण्डुपवाला रात्रि-अभिवादन करके नीचे चले गये। महिला, मैंने देखा कि मेरे सामने वाले कमरे की ओर बढ़ गई।

उस दिन मेरे नशे का कोटा तो पूरा हुआ नहीं था, जो जाते ही सोने की सूझती। थोड़ी देर बालकनी पर खड़ा रात के उजड़ते बाजार का दृश्य निहारता रहा। एकाएक बड़ी जोर से यह तबीयत हुई कि चलती सड़क पर जलती हुई सिगरेट फेंक दूं।—नहीं, नहीं—ये क्या करते हो जी? फिर अंग्रेजी में आत्म-सम्बोधन आया—ये सैडिस्ट वृत्ति क्यों? कोई जले, इसमें मजा क्या? मानो इससे जवाब ही में फिर तबियत में इस कदर जोर आया कि आखिरी कश खींच-कर सिगरेट फेंकने के लिए हाथ भी उठ गया, लेकिन पल के हजारवें हिस्से ही में

मन का कांटा नादानी से दानिशमन्दी की ओर झुक गया। हाथ ने झट से बालकनी के फर्श पर सिगरेट फेंकी और चप्पल ने उसे कुचल डाला। मेरे दिल ने राहत की सांस ली, शैतानियत की जड़ ही उखड़ चुकी थी। दूसरी प्रतिक्रिया यह हुई कि कमरे के अन्दर चला आया। दूर देस, अकेला कमरा और वह भी होटल का कमरा। याद में सपनों का हुजूम आने लगा। नींद तो आ नहीं रही थी, लेटने में भी मजा न मिला। हजामत अली की याद ने मेरे मन को अपने में लपेट लिया। फिर उसे पत्र लिखने की तलब लगी, बहाने के तौर पर यही ख्याल आया, उसे यह बतलाऊं कि बघनखाधारी शिवाजी के देश में माशूक भी 'बघमोहिनी' कही जाती है।

पत्र लिखने बैठ गया, दो पेज भर गये और फिर लिखने का जोश दूना चढ़ा। सिगरेट सुलगाई और कलम फिर तेजी से आगे बढ़ी।

टक, टक, टक ! —मुझे लगा, मेरे ही दरवाजे पर हो रही है, पर ये लगना दिमागी बात के बहाव में टल गया। दोबारा फिर—टक, टक-टक ! —और इस बार खटके जरा कुछ जोर के। मैंने नजरें उठाकर दरवाजे की सिटकनी की ओर देखा, खुली थी; बैरा समझकर मैंने रोब से कहा 'कम इन', और सिर झुकाकर लिखने लगा। द्वार खुला और उसके साथ ही मेरा छठा इन्द्रिय-बोध भी। बगैर सिर उठाये जिसे अचानक मन में देखा था, उसे ही अपने कमरे में आते देखा। मैं कुर्सी से उठ खड़ा हुआ, हड़बड़ाकर शराफत की मुस्कान पेश की।

महिला ने दियासलाई की फर्माइश की। मेरे मन में अपनी अ-सुविधा का खयाल तो आया, लेकिन 'शिवेलरी' में फौरन माचिस बढ़ा दी।

महिला ने धन्यवाद के साथ डिबिया लेकर उसमें से पांच-छः तीलियां निकालीं और मेरी और बढ़ाते हुए अंग्रेजी में कहा—"मैं अपने एक मित्र की प्रतीक्षा करते हुए बोर हो गई। सिगरेट पीने की इच्छा हुई, देखा कि दियासलाई की डिबिया खाली ! —और भी बोर हो गई। बाहर आई कि किसी बैरा को बुलाऊं, मगर नीचे तो अंधेरा गुप है, सब सो गए हैं। तब आपके कमरे की लाइट देखकर मैंने सोचा कि शायद जरूर जाग रहे हैं आप। क्षमा कीजिए, मैंने आपके काम में विघ्न डाला।" महिला रेल के डिब्बों की तरह वाक्य जोड़ती ही चली गई। मुझे ऐसा लगा, मानों बातों की उतावली में हो। मैंने भद्र मुस्कान बिखरते और '555' सिगरेट का टिन खोलकर पेश करते हुए कहा—"कोई विघ्न नहीं, मामूली खत लिख रहा था। आपने एक छोटी-सी सेवा के लिए मुझे कृपापूर्वक अवसर दिया, यह मेरा अहोभाग्य है।"

महिला की सिगरेट जलाकर मैंने अपने लिए भी टिन से एक खींची।

थैंक्यू वेरी मच।" जाने के लिए दरवाज़े की ओर मुड़ी और फिर घूमकर कहा—"बाइ द वे, आप बहुत ही मज़ेदार बातें करते हैं। आपके कारण मेरा उतना समय बड़ा सुखद बीता। वरना मैं अपने मित्र के न आने की वजह से उदास और चिन्तित थी।"

"धन्यवाद !" मैंने अंग्रेजी में कहा और स्त्री की प्रसंसा से उशंग कर बोला—"लखनवी ज़बान में मुझे कहना चाहिए कि ज़र्रानवाजी है आपकी, वरना खाकसार किस काबिल है।"

"ह्वाट ? ह्वाट ? रिपीट इट प्लीज़।" (क्या फिर से कहिए)

मैंने अपने वाक्य का अंग्रेजी ने अनुवाद कर दिया, वह दबे स्वर में खिल-

खिलाकर हंसी, बोली—"वाह क्या विनम्रता है, क्या मिठास है आपकी भाषा में क्या आप मुझे अपनी इन बहोत प्यारी बातों से कृतज्ञ न करेंगे।—प्लीज़!"

स्त्री की आंखों में लालसा की इस चमक को क्या मैं नहीं पहचानता? मेरे अन्दर का अनुभवी व्यभिचारी उस चमक में अपनी समानधर्मा जोड़ीदार को देख उल्लसित होता है, कुछ-कुछ अभियान भी जागता है। कामुक नारियों को अपने प्रति यह रीझ मैं पहले भी देख चुका था। राष्ट्रीय आन्दोलन काल के अनेक 'बहन जी-भाई जी' इन आंखों की सौदेबाजी को अंग्रेज सरकार की राजनीतिक चाल-बाजियों से कहीं अधिक गहरी पैठ के साथ समझते थे। माना कि मैं इस ओर अधिक बदनीयत नहीं रहा, पर दूध का धोया भी नहीं हूं। और चूंकि मेरे काम-जीवन का आरम्भ ही ऐसी भूखी-तरसी भिखारिन आंखों की बारहखड़ी से हुआ था, इसलिए ऐसियों से खुशामद कराने का कुछ-कुछ अन्दाजे-माशूकाना भी मेरे चरित्र में पनपा है। कुछ अपनी शारीरिक सुन्दरता का अभियान भी है, जो मुझ समान साधारण जन को बड़े से बड़े आभिजात्य समाज में कहीं मन्दमुखी नहीं होने देती। मैंने फौरन ही मान भरी रूखी-रूखी-सी अदा में जवाब दिया—"लेकिन बातों के लिए ये मौसम भयानक रूप से सूखा है।"

"ओ:ऽआइए भी, कृपया! स्काच के अलावा मेरे पास स्पेशल बीकानेरी गुलाब भी है, खास हिजहाइनेस के यहां का। मेरे मित्र ने उसकी चाहना की थी। हिज़ हाइनेस के पर्सनल सेक्रेटरी मेरे दोस्त हैं। दो बार मेरे बाम्बे के घर में मेह-मान भी रह चुके हैं। मैं जब बीकानेर गयी तो उन्हीं की मेहमान हुई। ओह क्या शाही खातिर हुई थी मेरी बीकानेर में! सब उन्हीं की बदौलत? खैर, मैंने खास तौर से अपने एक नौकर को बीकानेर भेजकर सेक्रेटरी साहब की बदौलत पांच बोतलें हासिल कीं। मैं बड़ी तबीयत से यहां लाई थी। साथ में अपने दोस्त की एयर-फेवरिट स्कॉच भी। झख को भी तो खुश करना पड़ता है न (हंसी) खैर, आइए न!"

औरत मुझे पसन्द आ गई थी। यह प्रसंग की नाटकीयता भरा अचानकपन, और घर से हजार मील दूर, बरसों यानी सात-आठ बरसों बाद ये रंगीन शिकार-बाजी की रात का कोरा खयाल ही अपने-आपमें नशीला, होता, यहां तो प्रत्यक्ष था। लेकिन इतनी आसानी से 'हां' कर देने में वकत नहीं रह जाती। औरत में तो मान-अभिमान-नखरा होता ही है, हमने खुद झेला है, उठाया भी है, रीझे भी हैं, मगर पुरुषों के मन की भव्यता ही कुछ और होती है। खैर जो हो, उस नाज के जाग उठने के साथ ही मेरी दुनियादारी का होश भी जाग उठा। शराफत का अलम-बरदार बनकर आवाज में मीठी झिड़की भरकर कहा—"मादाम, श्रीमती 'जो कोई भी हों-वो', आपको डाईनिंगरूम में देखकर—और इस समय भी मेरी धारणा यही बंधती है कि आप एक सम्पन्न और सम्भ्रान्त कुल की महिला हैं"

"और मैं भी अपनी भद्रता पर पूरा भरोसा करके ही यहां आने की हिम्मत कर सकी हूं। औरत के कलेजे के भीतर एक और भी कलेजा होता है। अगर वहां तक मुझे आपकी सज्जनता पर भरोसा न हो गया होता, तो मैं अपनी मजबूरी में आपसे भीख मांगने न आती।"

"मजबूरी में यानी प्रॉक्सी (एवजी)—"

"ओ—तुम तो बात की कविता ही समाप्त किए दे रहे हो और अगर तुम गद्य ही में सुनना चाहते हो तो सुनो—शराब औरत, शराब-मर्द—एक दूसरे की

रूह को ताजा करने के लिए जरूरी है। भद्र और समझदार स्त्री-पुरुषों में अच्छी शराब और अच्छे साथी के चुनाव को एक नाजुक खयाली और होती है, बस! सो, कम आन माई स्वयम्बर पुष्प!"

"वहां क्यों—यहीं! उस कमरे को अपने नियमित मित्र की स्मृतियों ही से भरा रहने दो।"

महिला मेरी बात पर खुश होकर हंसी, कहा—"इस खयाल में ताज़गी है—तो जाओ, मेरा अटैचीकेस उठा लाओ।"

कोल्हापुर की वह रात मेरे जीवन में अपने ढंग की अकेली है। आयु और अनुभवों से चेतनास्तर बराबर ऊंचा उठते रहने के कारण यह व्यभिचारी वृत्ति फिर मुझे नीरस लगने लगी। शुरू में लगता है कि व्यभिचार से अहम् को एक विद्रोह भरी खुशी मिलती है, पर झीनी-छनी समझ फिर यह बतलाने लगी है कि इनका अहम् से सीधा या गहरा सम्बन्ध नहीं होता। यह केवल उसका एक ऊपरी विकार मात्र है, एक मानसिक उत्पात है।

इस घटना के बरसों बाद अभी हाल ही में अलवेयर कामू के उपन्यास 'पतन' में उनके 'क्लीमेंस' नामक चरित्र की व्यभिचार-व्याख्या पढ़ी थी। वह कहता है कि व्यभिचार की वृत्ति मोक्षदायिनी है, क्योंकि दोनों पक्षों में किसी की कोई जिम्मेदारी उसमें नहीं रहती। व्यभिचार एक ऐसा जंगल है, जिसमें ओर-छोर पर कहीं भी भूत या भविष्य का लगाव नहीं होता। वह केवल वर्तमान में होता है। पुरुष केवल अपने देह-सुख के स्वार्थवश ही होता है और स्त्री अपने सुख-स्वार्थ के वश में, दोनों अपने आपमें स्वतन्त्र होते हैं। किसी प्रकार के दायित्व से उनकी सम्बद्धता नहीं, यहां तक कि यह भी जरूरी नहीं कि दो व्यभिचारी एक-दूसरे से अधिक बातें तक करने के लिए मजबूर किए जा सकें। उनका केवल एक ही दायित्व है, सम्भोग! सम्बद्धता··· मुझे याद है, इसे पढ़ते समय मेरा व्यभिचारी-मन बड़ा हलका और फरहरा अनुभव करने लगा था। मगर बाद में एकाएक उद्दालक ऋषि के बेटे श्वेतकेतु की कहानी याद आ गयी—"हे पिता, मैं सुख से अपनी मां की गोद में बैठा था, यह पुरुष मुझे मां की गोद से हटाकर उसे अपने संग ले क्यों गया?" इस काम के फलस्वरूप पैदा होने वाली, इस तरह का प्रश्न करने वाली सन्तान नाम की वस्तु यदि न होती, तो व्यभिचार-दर्शन वस्तु-जगत में मानव-मुक्ति का श्रेष्ठ दर्शन होता। किसी समाज में केवल सौ, पचास या लाख (करोड़) व्यभिचारी जोड़े ही इस प्रश्नकर्त्ता श्वेतकेतु से बचने के वास्ते गर्भ-निरोधक चीजें या दवाएं प्रयोग करने के लिए स्वतन्त्र हो सकते हैं, पर तीन साढ़े तीन अरब की आबादी वाली दुनिया नहीं। समग्र दृष्टि से देखते ही यह तर्क छिछला और बचकाना हो जाता है। तभी तो मेरी उस वासकसज्जा परकीया नायिका ने मेरे तर्क करने पर कहा था, "तुम तो बात की कविता ही नष्ट किए दे रहे हो।"

खैर, लच्छू के पीछे-पीछे मेरा अमुभव रूपी व्यक्तित्व उस समय मेरे अचेतन बहाव में बंधा हुआ पिछले अध्याय में बह आया, यह सच है, और यह प्रक्रिया गलत भी नहीं। अब? आगे?

ग्यारह

हिन्दी के उपन्यासों का पिछली एक शताब्दी का बहाव देखो। आरम्भिक उपन्यास सास-बहू-वार्ता, भाग्यवती आदि विशुद्ध उपदेशात्मक ही थे, उनमें कथासूत्र की बारीकियां एकदम निकम्मी ही मानी गई थीं।—या शायद सांस्कृतिक चेतना के ह्रास से उनमें उचित कालादृष्टि न थी। बाद में श्रीनिवासदास, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री, मेहता लज्जाराम शर्मा, जैनेन्द्रकिशोर आदि के उपन्यास आए, जिनमें चरित्रनीति समाजोन्नति के साथ-साथ कथा का रस अधिक प्रगाढ़ हुआ। प्रेमचंद, प्रसाद, कौशिक, सुदर्शन, शिवपूजनसहाय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, वृन्दावनलाल वर्मा आदि ने राष्ट्रीय चेतना से हमारे जनमानस को खूब चेताया। जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र ने व्यक्ति का मनोमंथन और यशपाल, भगवती चरण ने सामाजिक-राजनैतिक दृष्टि से विचार-मंथन किया। अश्क, नागार्जुन आदि इनके साथ हैं और समय इन सबके साथ आगे बढ़ा है। ··और अब नई पीढ़ियों के नए हस्ताक्षर (आज का फैशनेबुल शब्द) सामने है—स्व० रांगेय राघव, धर्मवीर भारती, फणीश्वरनाथ रेणु, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, नरेश मेहता, निर्मल वर्मा—इनके बाद और-और भी। कालक्रम रुकता नहीं, नया पुराने की जगह आता ही है। व्यक्ति ही नहीं, विचार भी, व्यवहार और दर्शन भी बदलता है। फिर क्यों यह पीढ़ियों के संघर्ष की चिन्ता, किस युग की नई पीढ़ी ने नहीं किया? किस सत्य की आंधी में असत्यों की धूल-धक्कड़ उड़कर जमाने के लोगों तक नहीं पहुंची? पीढ़ियों के संघर्ष में अकेले बेचारे साहित्यिक ही को क्यों दोषी ठहराया जाय। साहित्य तो व्यक्ति और समाज का दर्पण है—जो जहां तक देख ले। हिन्दी का नवसाहित्यकार यदि 'साधना तपस्या सेवा' जैसे पुराने साहित्यिक आदर्शों से चिढ़ता है तो उसका बुरा क्यों मानूं? उनकी अपनी राह है, मेरी अपनी राह! युगधर्म सदा बदलता है, हर नव सामाजिक सत्य की प्रभा से व्यक्ति का नैतिक सौन्दर्य खिलता है।

एक समय सम्मिलित कुटुम्ब सिद्धान्त का माहात्म्य था, आज उसमें हमारे समाज के अधिकाधिक व्यक्तियों को घुटन महसूस होती है। बिरादरी के बन्धन घुटन भी पैदा करते हैं और आवश्यक भी मालूम पड़ते हैं। जनसाधारण में हर व्यक्ति आमतौर पर यही शिकायत करता है कि दुनिया हमसे जलती है। ये अपना प्रदेश है, यह पराया है, ये अपना धर्म है, वो पराया है—इस प्रकार औसत व्यक्ति अपने ही सुख-दुख, हानि-लाभ स्वार्थ की दृष्टि से अपना सत्य पाता है और अपने सत्य को प्रतिष्ठित करने के लिए मारकाट मचाता है।···अभी मेरे लच्छू और उमा माथुर से पूछा जाय कि तुम्हारा यह रिश्ता किस सत्य पर टिका है, तो वे फौरन ही एक तैश भरा 'सत्य' बखान जाएंगे। खैर, लच्छू अब कुछ

दिन अपनी जिन्दगी के नए रंगों में खिलने और नई महक में निरन्तर बसे रहने के लिए छोड़ा जा सकता है।

अब रमेश और रानी को देखना चाहिए। रमेश ने अपनी रानी के लिए ही सारस लेक के महालोभ को तृणवत् त्याग दिया।···एक के भाग्य में रानी बदी थी दूसरे के भाग्य में उमा। फिर भाग्य! अरविन्द शंकर, यह शब्द आजकल जाने अनजाने तुमसे चिपका ही रहता है। क्या भाग्यवादी हो गए? ···मेरे मन, तूने टेढ़ा सवाल पूछ लिया। मैं फैशनेबुल हेकड़ी के साथ भाग्यवाद के सिद्धांत को नकार तो अब हरगिज न सकूंगा। ऐसा लगता है कि जीवन के पीछे कोई महाविधान है। और यह भी मैं मानता हूं कि मनुष्य अपना भाग्य बदल सकता है, नया भाग्य बना सकता है · और यह भी उसी महानियम के अन्तर्गत ही··· । खैर जी, भला क्या कर रही होगी मेरी रानी? कहां होगा मेरा रमेश? कहां से कथा का क्या सूत्र उठाऊं?

सोचता हूं, पुत्ती महाराज को यह खबर लगे कि रमेश ने आयी लक्ष्मी को ठुकरा दिया। डॉक्टर आत्माराम का प्राइवेट सेक्रेटरी बनने का मौका आप छोड़-कर अपने दोस्त लच्छू को दे दिया—"एमे हुइके ऐसे ससुर कौन से राजा इन्दर बन जाते कि जिनके पीछे ढाई सौ रुपये की नौकरी छोड़ दी। हम तो सुसर जिंदगी भर बाल-बच्चों के लिए मरे-खपे उनके मारे दुइ काली मिर्च, दुइ इलायची और लोटा भर पानी को छोड़ के भांग का सतरंगी नौरसिया आनन्द नहीं मिला, अब मेरे बुढ़ापे में ये नौकरी पा जाती तो लोटे भर पानी में सुसर पाव-आध-पाव दूध तो मिला सकता था। चार-चार बादाम-मुनक्के तो डालने की नौबत आती।"··· पुत्ती गुरु की ये बात भी मेरे कानों में गूंज गयी, हंसी आ गयी। कल्पित पात्र पुत्ती गुरु से लेकर उनके वास्तविक माडल मेरे पड़ोसी भंगड़ पाधा तक आंखों के आगे नाच गये। ये हमारे भंगड़ पाधा भी बेमिसाल चरित्र है। भांग के शौकीन व्यक्ति मैंने अनेक देखे हैं, लेकिन सवेरे से लेकर रात तक जिनकी हर बात में विजया उपमा बनकर सदा लहराती ही रहती हो, ऐसा व्यक्ति केवल भंगड़ पाधा ही देखा। सुबह चार बजे उनकी कागावासी छनती है। स्नान-पूजा इत्यादि से निवृत्त होने के बाद वे हाथ में भांग की गोली और छन्ने सहित एक अधसेरा गिलास लेकर भैरों अहीर के तखत पर चले जाते हैं। रास्ते भर वे शिव-ताण्डव, अपराध भंजन, रुद्राष्टक, काशीविश्वनाथ स्तोत्र आदि शिव सम्बन्धी अनेक स्तुतियों का पाठ करते ही चले जाते हैं। भैरों के तखत पर बैठकर भी जब तक वह इनके गिलास में कपड़े से छानकर धारोष्ण दूध नहीं भर देता, तब तक पाठ करते ही चले जाते हैं। शंकर जी की बूटी जब तक हाथ में है, तब तक वह किसी संसारी पुरुष से संसारी वार्तालाप कर नहीं सकते। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि गाहकों में फंस जाने के कारण या विनोदी गाहकों के इशारे पर भैरों उन्हें दूध देने में इतना विलम्ब कर देता है कि सारे शिव सम्बंधी श्लोक चुक जाते हैं। भंगड़ पाधा तब श्रीमद्शंकराचार्य रचित अपराध भंजन स्तोत्र को भैरों या उन्हें छेड़नेवाले अन्य लोगों के नामों से शुद्ध हिंदी के कोसनों और मल्लाही गालियों से संयुक्त करके दुहराने लगते हैं।

अनेक बार लोगों ने टोका है कि गुरु, धरम-अधरम एक साथ न किया करो। तब वो जवाब देते हैं कि उसका पाप उन्हीं लोगों पर पड़ता है। इस दूध के पैसे मूलचन्द्र सर्राफ के यहां से बंधे हुए हैं, सो उन्हें अदा करने के लिए गोली छान-

कर एक बार फिर नहा-धोकर सीधे मूलचन्द के यहां शतचण्डी पाठ करने पहुंच जाते हैं। दिन में जहां-तहां पूजा-पाठ जन्मपत्री बनाना-मिलाना, सत्यनारायण की कथा बांचना आदि एक न एक पण्डिताऊ काम करते ही रहते हैं। तीन बजे से फिर भांग का लग्गा और यह भांग उनकी दिव्य होनी चाहिए। रुपए बारह आने से कम लागत नहीं आती। रात की दूध-मलाई भी अनिवार्य है। अपने खर्च के तीन रुपए रोज भंगड़ पाधा को कमाने ही चाहिए, इसके ऊपर यदि कुछ मिल जाए तो वह सहर्ष अपनी पत्नी को सौंप देते हैं। यदि न मिले तो वह अपना दायित्व भी नहीं मानते। पाधन बेचारी अपनी गृहस्थी के लिए दिन-रात हड्डे ही पेला करती हैं, लेकिन पाधा को कोई मतलब नहीं। वे चौबीसों घण्टे विजयोन्माद धर्मोन्माद और शिवोन्माद ही में मतवाले बने रहते हैं।···

लेकिन सोचता हूं कि रमेश प्रकरण का नवारम्भ पुत्ती गुरु से न करूं, बल्कि रानी के घर ही यह अध्याय आरम्भ हो।

कलम उठा ही रहा था कि नन्हीं अपने छोटे भतीजे अनन्तू को गोद में लेकर आ गयी—"बाबूजी, अम्मा आपको बुला रही हैं।"

"क्यों भई, मैंने तुम्हारी अम्मा का क्या अपराध किया है?" कहकर मैंने अनन्त को हाथ बढ़ाकर अपने पास बुलाया। नन्हीं मुसकुराकर बोली—"आपको यह न बताने के लिए मुझे अम्मा ने भी मना किया है, भाभी ने भी और मेरे मन ने भी।"

"ओपफोह, इतने सारे प्रतिबन्ध? अब तो लगता है, तेरी भाभी और अम्मा दोनों ने ही मिलकर कोई खाने की चीज बनायी है। लेकिन भई, अभी घण्टा भर मत छेड़ो मुझे।"

नन्हीं बोली—"नईं-नईं-नईं। वो सब खाने-पीने का मामला है तो जरूर, लेकिन उसके लिए आपको नहीं बुलाया जा रहा। आइए, चलिए बाबूजी, ऊपर से आने पर आपका मूड और भी ज्यादा बढ़िया हो जाएगा। बस चले चलिए।"

मैं उठा, अनन्तू को अपनी गोद में लेने लगा। वह अपनी बुआ से चिपक गया। छुटकू के बच्चे अभी मुझसे पूरी तौर पर हिल न पाये।

ऊपर जाकर देखा तो रसोई के सामने वाले दालान में साड़ियों का मण्डप बनाकर उसमें जयन्त को पीताम्बर, फूलों के गहने, फूलों के मुकुट, मुरली आदि से सजाकर बैठाया गया था। देखकर मैं मुग्ध हो गया। यों तो मुझे भक्ति-भावना वाले भगवानों, राम-कृष्ण आदि में कोई दिलचस्पी नहीं, आर्य समाज और नए युग की बौद्धिकता का प्रभाव मुझे इन सब ढकोसलों से दूर रखता है, लेकिन इस समय अपने पौत्र का कृष्ण रूप देखकर मैं सौ जान से निछावर हो गया।

मेरा जयन्त बहुत ही खूबसूरत बच्चा है! क्यों न हो, आखिर उसके मां-बाप भी तो इतने सुन्दर हैं, लेकिन यह सब खूबसूरती तो केवल लौकिक दृष्टि से बखानने योग्य है। अपने पौत्र की इस बालमोहन छवि से आज पहली बार मुझे एक दिव्य सौन्दर्य का आभास मिला। मुझ नास्तिक के मन में हुस्न का जल्वा भर गया। यह केवल मेरी 'आंखों का सुख, कलेजे की ठण्डक' ही न था, बल्कि उससे भी अधिक मेरी चेतना के सातों पर्दों को अपनी भरपूर शक्ति से स्पन्दित करने लगा। थोड़ी देर के लिए मुझे ऐसा आभास हुआ, मानो आपाद मस्तक, मेरे रोम-रोम में, आंखों की तरह देखने की शक्ति और मस्तिष्क की तरह ग्रहण करने की शक्ति भरपूर रूप से अपना काम कर रही है। जयन्त मुझे देखकर हंसा—अन्धे

सूरदास का माखनचोर सचमुच ऐसा ही हंसा होगा। तुलसीदास का 'कन्दर्प अगणित अमित छबि नवनील नीरद सुन्दरम्' वाला रामदर्शन हूबहू यही होगा। सौन्दर्यानुभूति निश्चय ही एक जगह अथाह और वर्णनातीत हो जाती है। मैं अपने अन्तर में लीन हो गया था। माया मेरे कंधे पर मीठी-सी थपकी देती मुस्कुराकर बोली—"हमारे पोते को नजर न लगाना। घर वालन की नजर झट्ट लगत है।"

मैं भी अब दुनियावी होश में आ गया था —और ये होश इण्टेलक्चुअल नखरे के साथ ही आया। मैंने कहा – ये क्या स्वांग बनाया है तुम लोगों ने? किसकी सूझ है?

"हमरे-तुमरे पुरखन की। परसों जयनारायन की पोती-पोते की फूलचोटी भई रही। लोगों को अपने काले-पीले बच्चन तलक को सजाने का हौसला आउत है तो हमने सोचा कि हम अपने बच्चों को काहे न सजावें। ये अनन्तू हमरा जिदियाय गया, नहीं तो इसे भी सजाते।"

मैंने पूछा —"पर ये मंडप-अंडप क्यों बनाया है? बच्चों की फूलचोटी करके तो लोग उन्हें बाहर घुमाने ले जाते हैं।"

माया ने रूखा-सा मुंह बनाकर उत्तर दिया—"हमें अपने बच्चे को किसी जल-कुकड़े के यहां नहीं भेजना है। ऐसे ही जब से उषा और बच्चे यहां आए हैं, मार के सब जनी भला-बुरा कहत-फिरत हैंगी, इसी से हमने सोचा कि अपने हेल-मेल के आठ-दस घरन की मेहेरियन को बुलाय लेंगे और अपना आनन्द से घंटा-दुइ घंटा भजन-भाव करेंगे।"

"तुम्हारे इस भजन-भाव से तो मैं एक-न-एक दिन बदनाम होकर ही रहूंगा माया।"

"अच्छा हां-हां हुई जाना बदनाम। लेओ पहले आरती करके निछावर कर देओ हमरे भगवान की। पहली आरती तुमही से कराऊंगी।"

मेरा मन भावधारा से निकलकर तुरन्त तटस्थ हो गया। ये गम्भीर बात थी। आरती किसकी करूंगा? उसकी, जिसके अस्तित्व को मैंने अपने समय की प्रगतिशील सामाजिक और बौद्धिक मान्यताओं की निष्ठा सहित पूरी जवानी भर अस्वीकार किया है—वह, जो कि इधर सात-आठ वर्षों से मेरे मन को अक्सर झकोले दे-देकर अपना ध्यान दिलाना चाहता है और जिसे मैं अपने पूर्वाग्रहों के कारण अब तक शंका की दृष्टि से देखता हूं, उसी अलौकिक चेतना—परब्रह्म की आरती उतारूं? ना! यह साहित्यिक का मन है, इसे धोखा देना ठीक नहीं। जो माने सो पूरे मन से माने, अधूरे से क्या माने!

तब क्या अपने पोते की आरती उतारूं? बेजा क्या है? कौन जाने यही मेरा कुल-दीपक सिद्ध हो। मन में यह विचार आते ही मैं तुरन्त ही अपने जयन्त भगवान की आरती उतारने को प्रस्तुत हो गया।

तब से अब तक यह भगवान वाली समस्या मुझे तंग कर रही है। क्या भगवान वाकई कोई चीज है? लोग उसकी अचल-सचल स्थिति को तर्कातीत बतलाते हैं। भला कोई पढ़ा-लिखा मनुष्य तर्क का विज्ञान-सम्मत आधार क्योंकर छोड़ सकता है।···मैं साठ वर्ष का हो गया, आयु के चौथेपन में आ गया। मेरी जवानी के अनेक साथी जो मेरी ही तरह उस समय ईश्वरीय सत्ता को नकारते थे, अब तिलक-चन्दन लगाने लगे, परलोक की बात करने लगे, यही नहीं मुझे नास्तिक भी कहने लगे है। लेकिन मैं क्या करू? जिस बात को साफ-साफ समझ नहीं पाया

उसे समझने का ढकोसला क्योंकर कर सकता हूं ?······सच ही किस्से, कहानी, उपन्यास आदि लिखने का काम, जितना कि हम समझते हैं उससे कहीं अधिक नाजुक है। चेतना जितनी स्वस्थ, सबल और दृढ़ होगी, कल्पना उतनी ही सुन्दर और बेदाग भी होगी। मैं अपने जीवन भर के कार्य ही को ईश्वर मान सकता हूं। भावनात्मक रूप से और अधिक गतिमान और सत्यशील होते हुए मैं मनुष्य में भगवान के अस्तित्व को स्वीकार कर सकता हूं। राम और कृष्ण, पता नहीं इस धरती पर सचमुच पैदा हुए थे या नहीं, पर बुद्ध और महावीर ये दो भगवान तो निश्चित रूप से ऐतिहासिक पुरुष हैं। इस तर्क से भगवान मनुष्य के रूप ही में दिखाई पड़ सकते हैं। कौन जाने, ये मेरा जयन्त भी भगवान ही हो। ये धरती पर कोई बड़ा काम करने के लिए जन्मा हो।

···लेकिन कहीं छद्मभाव से मैंने ढोंग न किया हो ?···अपने बच्चे की आरती उतारी है और इस कामना से उतारी थी कि वह मेरा कुलदीपक बने।—मेरे उस बेटे का बेटा कुल-दीपक बने, जो अपनी पत्नी को छोड़कर स्वार्थवश एक धन-सम्पन्न औरत का रखैल बन गया है।···मेरे रोएं-रोएं में जहर बुझी सैकड़ों सुइयां एक साथ चुभ जाती हैं, जब यह खयाल भी मन में आ जाता है। बिरादरी ने भलीभांति अब तक स्वीकार नहीं किया। चूंकि जातीय पंचायतों की शक्ति अब नष्ट हो चुकी है, इसलिए सम्पूर्ण बिरादरी ने मुझसे नाता तो नहीं तोड़ा, पर पुरानी चाल के बहुत से सम्बन्धी और सजातीय हमसे व्यावहारिक नाता तोड़ चुके हैं। माया को इसी की तो कुढ़न है। सबके बेटी-बेटियों की फूलचोटी होगी तो वे पास-पड़ोस के नाते-रिश्तेदारों में भेजे जाएंगे; उन्हें मिठाई खिलाने के लिए रुपये भी हर जगह से मिलेंगे। और तो और, मेरे बड़कू के बच्चों को भी यदि वे ननि-हाल जाएं या हमसे अलग होकर रहें तो यही प्रेम मान मिलेगा। मेरी बिट्टी के बाल-बच्चों को भी ये सजातीय लोग सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं, पर छुटकू के बेटे उपेक्षित हैं। यह मैं भी नहीं बर्दाश्त कर पाता, माया की तो बात ही निराली है। यह अन्तर्जातीय विवाह आज के संक्रांति काल में हमारे समाज द्वारा एक विचित्र स्थिति पैदा कर रहे हैं। पुराने जमाने की तरह ऐसे विवाहों पर न तो कोई बिरा-दरी अब पूर्ण प्रतिबन्ध ही लगा सकती है और न उसे सहज भाव से स्वीकार ही कर पाती है। ऐसे विवाह करनेवाले युवक-युवती अपने आपको विद्रोह की सनक भरी स्थिति में पाते हैं और अपनी सनक में वे कुछ गलत काम भी कर जाते हैं। व्यक्ति समाज को गालियां देता है—उसे अस्वीकार करता है, और वह भी समाजवादी युग में, उफ; कैसी विडम्बना है। उन्नीसवीं शती के प्राय: अन्तिम दो दशकों से लेकर अब तक व्यक्तियों ने ही समाज को झकोले दिए हैं। पुराना समाज प्राय: इन्हीं झकोलों से टूट-टूटकर क्रमश: नया बन रहा है। अब किसी जाति का भी समाज हो, वह सुसंगठित समाज नहीं रहा। वह फुट्टैल व्यक्तियों का समाज बन गया है। समय जिस तेजी से बदल रहा है, उसमें निश्चित रूप से एक दिन भारतवर्ष में एक भी जाति न रह जाएगी, न हिन्दुओं, न मुसलमानों और न पारसी, ईसाइयों की ही।

बारह

बहुत चाहने पर भी इधर अपने उपन्यास को मैं तनिक भी आगे न बढ़ा सका। प्रकट रूप में इसका कोई भी कारण मुझे नहीं सूझ रहा। यों मेरा मन इन दिनों प्रतिकूल परिस्थितियों की शिकायत भी नहीं कर सकता। यह भी नहीं कह सकता कि मैं इन दिनों आलस्य में पड़ा रहा। मैं प्रायः आलसी नहीं हूं, पर अपने जीवन भर के पिछले अनुभवों के आधार पर यह अवश्य ही कहने को जी चाहता है कि कभी-कभी अकारण ही मेरी कल्पना-शक्ति जमकर काम करने से इनकार कर देती है। इस शक्ति के विकेन्द्रित होते ही मेरा मन एक असीम आकाश में उड़ने वाले पक्षी की तरह मंडराता ही रहता है :—न छांह न विश्राम और न थकन या ऊब ही। चेतना होश दिलाती है कि 'मनपंछी, अब शून्य या आकाश से उतरो। कार्य-संलग्नता में विश्राम पाओ। विचारों के घनाच्छादित वृक्ष की छांव में, अपनी लगन के नीड़ में स्वस्थ होकर आ विराजो।'—लेकिन ये आत्म-सम्बोधन चिकने घड़े पर पानी से फिसल जाते हैं। न जाने इसके पीछे क्या कारण है ? ऐसा लगता है कि मनुष्य की कल्पना-शक्ति भी चन्द्रमा की तरह घटती-बढ़ती रहती है। और उसके लिए अमावस्या भी कभी न कभी इस क्रम में आ ही जाती है।···इस अमावस्या की बात से ही सहसा यह ध्यान आ गया कि चन्द्रमा तो सदा यथावत् ही रहता है, चन्द्र और पृथ्वी के परिक्रमणों से हमें उसके घटने-बढ़ने का भ्रम-मात्र होता रहता है। मेरे जीवन का यथार्थ और कल्पनाशील व्यक्तित्व शायद इसी क्रम में मेरे काम के लिए पूनम और अमावस आते ही रहते हैं। जो हो, इधर लिख नहीं पाया, यह वस्तु-सत्य मैं अपनी आंखों से ओझल नहीं कर सकता।

इस समय बड़कू (बड़े बेटे चि० विनयशंकर) की याद आ गई। मस्त मौला, मेरे प्रति अपने विद्रोह में भी मधुर, निश्छल, अखरोट-बादाम की जाति का प्राणी, अपने ढंग का एक ही है। हमसे—माता-पिता से—यद्यपि उसका कोई वैर-भाव तो नहीं है, पर कोई लगाव भी नहीं है। उन्हें लगाव केवल अपनी पत्नी सौ० गेंदा बीबी ही से है। सन् '25 में पैदा हुआ था। उनका विवाह हुए लगभग बारह साल, रेलवे में नौकरी लगे तेरह और पिता बने लगभग ग्यारह साल हुए। इन ग्यारह वर्षों में वे छह बच्चों के पिता बने हैं। खुद मैंने समझाया, उसकी मां के द्वारा उसकी बहू को भी उपदेश दिलवाया, पर अखंड सौभाग्यवती गेंदा बीबी, अपनी सास की अनन्य भक्त होने के बावजूद सन्तान-नियोजन के उपदेश को ग्रहण करने पर राजी न हुई। उनकी मां-दादी का मत था कि भगवान के भेजे हुए जीवों को दुनिया पर न लाना पाप है।···इस पर कौन बोले ?

हमारा विनय पक्का बीबीचरणदास है। बीबी और अफ़सर ये दो ही उसके खुदा हैं। मेहनती वह एक नंबर का है। संयोग से तीन वर्ष पहले नसीब की सीढ़ियां फलांग कर वह अपने विभाग का बड़ा बाबू भी बन गया है। एक हैड-

क्लर्क पेंशन पाने से छह महीने पहले, हृदय रोग से अचानक दफ़्तर की कुर्सी ही पर मर गए, दो बड़े बाबू उनके बाद और मरे। वह कुर्सी मनहूस करार दे दी गई। दूसरा कोई उस पर चढ़ने को राज़ी न हुआ। उसके बाद इनका चांस था, ये उस कुर्सी पर जमकर बैठ गए। लोगों ने डराया तो बोले कि अगर मैं भूतों पर कंट्रोल न कर सका तो दफ्तर पर कैसे करूंगा। डट गए। अब तीन वर्ष से बड़े बाबू हैं। होम्योपैथी, बायोकैमी की दवायें मुफ्त में बांटते हैं। गरीबों की भारी भीड़ आती है। श्रीमती गेंदा बीवी पति के मरीज़ों से अपनी महाजनी फैलाए हुए हैं। एक अनाथ ममेरे भाई को पहले दस रुपया महीना भिजवाती थीं, पर महाजनी का धंधा फैलाने पर उसे अपने पास ही बुलाकर रख लिया, उसका पढ़ना छुड़वाकर उसे लेनदारों से 'रोज ही तगादा' वसूल करवाना शुरू कर दिया। वह धंधा अच्छा चल निकला। इस तरह विनय अब डाक्टर है, महाजन है और 'बड़े बाबू' तो वह है ही। बड़े बाबू संबोधन को वह 'डाक्टर' से श्रेष्ठ मानता है। इसी नाम से विख्यात भी है। जब यह पद उसे मिला तो अपनी मां को लिखा कि प्राणियों में मनुष्य, मनुष्यों में बाबू और बाबुओं में 'बड़े बाबू' ही श्रेष्ठ होते हैं। प्रतापी सरकार की अस्ली जान 'बड़े बाबू' नामक हीरामन तोते ही में बसती …है। पढ़कर मैं खूब हंसा था।

उमेशो जब आई० ए० एस० हुआ तो बड़कू ने मां को लिखा—"हो सकता है कि उमेश कभी मेरे विभाग का सचिव बने और मेरे दफ्तर का दौरा करने आए। उस समय दफ़्तर में मैं उसकी अफ़सरी का पूरा मान रक्खूंगा, पर उसे भी सनातन धर्म के अनुसार बड़े भाई का मान अवश्य रखना होगा। उसे लिख दीजिएगा कि मेरे सामने वह सिगरेट हरगिज़ न पिये और मातहत होने पर भी अपने पूज्य बड़े भाई का आदर करे।"

अपने बड़प्पन और सनातन धर्म से बढ़कर वह (पत्नीं, अफ़सर के अलावा) किसी को भी बड़ा नहीं मानता। मेरे प्रति विद्रोह भाव रखने के कारण ही उसका यह सनातन धर्म पनपा है। उसके बचपन में मैं आर्य-समाजी नास्तिक था। तब विरोध न कर पाया तो अब यों प्रकट करता है। अपने महल्ले में एक 'सर्व-धर्म सभा' खोल रक्खी है, जिसमें ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, सिक्ख, मुसलमान, ईसाई आदि सभी धर्मों के लोग व्याख्यान देने आते हैं। व्याख्यान देकर उन लोगों के जाते ही 'बड़े बाबू' अपनी व्याख्या पेश करते हैं, जिसके हिसाब से हर धर्म अंततोगत्वा सनातन धर्म से जाकर जुड़ जाता है। उनका कहना है कि पृथ्वी धर्म पर पहले-पहल हमारे ही देश में बड़े सनातन काल में उदय हुआ। चूंकि उन्होंने धर्म की व्याख्या व इतिहास को क़तई नहीं पढ़ा है (पढ़ने से विनय के अनुसार मनुष्य की मौलिक चिन्तन-शक्ति नष्ट हो जाती है) इसलिए एक बार अपने 'सनातन धर्म' की उत्पत्ति पर किसी से बहस में दब जाने पर उन्होंने मुझसे पूछा। मैंने कहा, प्राचीन काल में चार ऋषि भाई थे—सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार—इनमें सनक-सनातन ने यह धर्म चलाया।…हंसी आती है, मेरा भोला बेटा इसे सच मान भी गया।

अपने बच्चे भले ही कैसे भी हों, मनुष्य के सबसे सबल मोहपाश होते हैं। मैं बड़कू, छुटकू, उमेशो, बिट्टी या नन्हीं, किसी को भी अपने से अलग नहीं कर पाता।

उमेशो मसूरी में प्रशासन की शिक्षा पा रहा है। उसने अपनी मां को लिखा

है कि दिल्ली सरकार के बड़े आई० सी० एस० अफ़सर श्री पुरी उससे बहुत खुश हो गए हैं। उन्होंने दो बार उसे अपने यहां दिल्ली में भी बुलाया था। अपनी छोटी बेटी से उसका विवाह करना चाहते हैं, उसके भाग्य को एकदम सातवें आसमान तक पहुंचा देने का लालच दे रहे हैं।…मैं जानता हूं, उमेश राजी हो जाएगा।… होगा, मुझे क्या ? वह खुश रहे, बस।

आजकल नगर में गोमती की बाढ़ आई हुई है। एक महीने के अन्दर ही अन्दर यह दूसरा सैलाव है और पहले से बड़ा है।…उमेश—नहीं, रमेश, मान लो, इस बाढ़ में फंसे ! …मगर कैसे ? पुत्ती गुरु फंसें और रमेश उन्हें बाढ़-मुक्त कराके लाए।…चलो, यहीं से आरम्भ करता हूं नया अध्याय…

पुत्ती गुरु कल सवेरे बड़े तड़के ही एक ठाकुर साहब के नये मकान की वास्तु शान्ति कराने के लिए गौघाट के आगे किसी गांव में आ गए थे। पाधा गली के बचान महाराज भी उनके साथ गए थे। वह तो रात ही में किसी की साइकिल के पीछे बैठकर लौट आए थे और रात ही में उन्होंने रमेश की मां को यह संदेशा भी भिजवा दिया था कि गुरु सवेरे आएंगे। अब साढ़े ग्यारह बज रहे हैं। रमेश की अम्मा ने आज सवेरे जब महरी से सुना कि गौघाट, हुसैनाबाद तक पानी बढ़ आया है, तब से उन्हें चैन नहीं है। उन्होंने दो-तीन बार सोचा कि रमेश को संघ से बुलवा भेजें, मगर हिम्मत न पड़ी। उनकी घबराहट का मज़ाक उनके सभी बेटे-बेटी उड़ाते हैं, पुत्ती गुरू तो नाराज़ तक हो जाया करते हैं। पढ़ाई के समय बुलाने से रमेश बहुत गुस्सा हो जाता है। मन के इन्हीं सब दंद-फंदों में फंसी हुई बेचारी इतनी देर मन मारे बैठी रहीं पर जब पन्नो ने बतलाया कि साढ़े ग्यारह बज रहे हैं तो फिर चुप न बैठ सकीं। सुरेश सबेरे ही से घर से गायब है, इसलिए उन्होंने पन्नो की खुशामत करके उसे अपने बड़े भाई को बुला लाने के लिए भेजा। बहन से गौ घाट के पास किसी गांव में पिता के जाने की बात सुनते ही रमेश तो सनाका खा ही गया, उसके साथी भी दुश्चिन्ताओं से अछूते न बच सके। सबके सब उठकर रमेश के घर गए। मां ने कहा कि उन्हें गांव और जिजमान का नाम नहीं मालूम, बचान के घर जाके पूछो।

बचान महाराज के यहां गए, उनके घर में ताला बन्द था। चिन्ता और बढ़ी। जिस-तिस के मुंह से बाढ़ की खबर सुन-सुनकर रमेश के होश उड़ने लगे। लच्छू की याद भी आई। ऐसे अवसरों पर उसकी बुद्धि खूब सावधान होकर चलती है। कम्मी वग़ैरह सब यही कहते जा रहे थे कि नाम-ठांव जाने बिना आखिर ढूंढ़ने भी कहां जाएं। बात गलत नहीं, मगर जगह का पता तो लगना ही चाहिए। रमेश ने बचान महाराज के पास-पड़ोसियों से पूछना शुरू किया। बनवारी गुरु से पूछ रहे थे, सो बूढ़े तिल्लोकी गुरु सुनकर बोले : हमसे पूछो, हम सब बताय देंगे। तुम पुत्ती के लड़के हो न ?"

"जी हां। दण्डौत।"

"खुस रहौ। भई ऐसा है कि सबेरे बचान हमारे पास खबर सुनके दौड़ आए रहे। पुत्ती और वो कल दोनों एक ज़मींदार जिजमान के यहां उनके नए बंगले की वास्तुसान्ति कराने गए रहे। बचान को तो एक आता भया साथ मिल गया सैकिल वाले का, सो चले आए। और पुत्ती से जिजमान ने कहा कि चक्क केसरिया ठंडाई

और चौबीस बिस्वा सुद्ध घी के मालपुये घेवर का भोग लगेगा, उनके छोटे भाई आए हैं, कोई बहुत ऊंची कुर्सीवाले हाई किलास रिटैंड अफसर—"

पिता की खबर पाने की उतावली में रमेश मन-ही-मन बेचैन हो रहा था। उसे बूढ़े तिल्लोकी गुरु की यह पिनक भरी सुस्त शैली खल और उबा रही थी, मगर बात तो सुननी ही थी। तिल्लोकी गुरु पुराने ज़माने की छकड़े को भी मात करनेवाली छोटी लाइन की लोकल ट्रेन वाली स्पीड से सुनाए चले जा रहे थे। अपनी बातों को भूलभुलैयां में काफी देर तक चक्कर देते रहने के बाद तिल्लोकी गुरु ने जिजमान ठाकुर अजयपाल सिंह का नाम और गांव बतलाया। वे गौघाट से तीन-चार मील आगे सैंथा और बरौनी के बीच में कहीं रहते हैं। और बचान आज फिर स्वकलंकमोचन के लिए रमेश के बाप को निकाल लाने का हठ करके गए हैं, यद्यपि तिल्लोकी गुरु ने उसी समय प्रश्न-कुण्डली विचारकर बतला दिया था कि जाते तो पहुंच जाओगे, पर लौटने में शंका है।

रमेश उन्हें प्रणाम करके अपने साथियों की ओर मुड़ा; कम्मी के कन्धे पर हाथ रखकर बोला : "किसी नाववाले का प्रबन्ध करना होगा। क्या बताऊं, लच्छू नहीं है इस समय। उसकी जान-पहचान चारों तरफ है।"

जैकिशोर बोला : "उसकी चिन्ता न करो। मेरी और गोडबोले की लच्छू से भी ज्यादा है। गर्मी में तैरने जाता हूं, सभी वाटवालों से जान-पहचान है।"

"कुछ रुपये ले लेने चाहिए।" रमेश ने कहा और अपने घर की गली की ओर मुड़ते हुए कम्मी से बोला : "मेरी राय है कि अब तुम घर जाओ, खाओ-पियो। गोडबोले या जैकिशोर किसी नाववाले से मेरी बात तय करके लौट आएंगे। हर्रो, तुम भी जाओ।"

कम्मी बोला : "नहीं यार, ऐसे समय में घर बैठकर भला मेरा जी मानेगा ? चल बे हर्रो।"

नाववालों ने इन लोगों को गरजू देखा तो नखरे दिखलाने लगे। बड़ी मुश्किल से जयकिशोर और गोडबोले ने पचीस रुपये अवाई-जवाई पर सौदा तय किया। गोडबोले, हर्रो और कम्मी तो घाट ही से लौट आए, मगर जयकिशोर साथ चलने पर अड़ ही गया। रमेश यों सैंकड़ों बार नाव पर सैर करने जा चुका था, लेकिन आज उसका दिल एक नये तरह की धड़कन महसूस कर रहा था।

नाव छोटे इमामबाड़े के पास से चली। सड़क के किनारे खड़ी हुई तमाशाइयों की भीड़ और उनका शोर धीरे-धीरे दूर होता चला। नाव इमामबाड़े के फाटक को पार करने लगी। एकाएक रमेश की निगाहें ऊंची उठीं, सन् 1923 ई० की बाढ़ के निशानवाले पत्थर को खोजने लगीं। जयकिशोर ने पूछा, उत्तर नाविक से मिला : "पत्थर उस दर से लगा है बाबू। अभी हुअंन तलक पानी चढ़ा नहीं ना, वैसे कहते हैं कि '23 वाली बाढ़ से पानी इस बार जादा है। और अभी घटने का नाम नहीं ना बाबू। सबेरे से अब तक पानी जादा तेजी से बढ़ने लगा है। रामै रच्छा करने वाले हैं। दुइ-दुइ बार बाढ़ आई। हम गरीब-गुर्बों की तो मानो मरन ही आय जाती है, तुमसे सच्ची कहते हैं। कल रात में जैसे ही पानी की चढ़ाई भई—"

"कित्ते बजे पानी चढ़ना शुरू हुआ ?" जैकिशोर ने पूछा।

"कोई दुई-अढ़ाई का टैम रहा होगा बाबू। अरे, बड़े जोर का हल्ला भया, पानी आया, पानी आया। हमरे महतारी-बाप बड़े जोर से चीखे। अब हम जाग

तो रहे थे बाबू, पर क्या बताएं, उत्ती बेला ऐसे काम में फंसे रहे कि—

रमेश का ध्यान इन बातों से एकदम अलग था। नाव इमामबाड़े की चौहद्दी से गुजर रही थी। अन्दर छोटे इमामबाड़े का तालाब झील बन गया था और नौबतखाने की दीवारों से पानी टकरा रहा था। इमामबाड़े का दूसरी ओर वाला फाटक पार किया। दौलतगंजवाली सड़क आई, चारों ओर पानी ही पानी। नीचे दूकानें आधी-आधी पानी में डूबी हुईं; ऊपर के छज्जों और छतों पर खड़े हुए लोग-लुगाई आधी चिन्ता और आधे तमाशे के मूड में चिड़ियों की तरह चहचहा रहे थे।

छाती-छाती तक पानी में डूबे हुए अपने सिरों पर खाटें और खाटों पर गठरी, मुठरी, मटका, कनस्टर, सन्दूक लादे हुए दो आदमी, दौलतगंज से हुसैनाबाद की तरफ बढ़े चले आ रहे हैं। देखने में बाप-बेटे लगते हैं। रमेश के सूने मन में अचानक यह आस्था जागती है कि थोड़ी देर बाद वह भी अपने पिता को लेकर इसी तरह सकुशल वापस लौट आएगा।

उसकी नाव गली से रामगंज चौकी की ओर मुड़ी। कोने की मस्जिद इतनी झुकी हुई है कि लगता है अब गिरी। राम-राम करके नाव उसके आगे से निकल गई। बंधी हुई गली के अन्दर आधे-आधे दरवाजों तक चढ़ा हुआ पानी गहरी मनहूसियत का आभास दे रहा है। गली में प्रायः सन्नाटा है। बहुत से लोग रातों-रात और कुछ सवेरे तक अपना सामान लेकर चले गए थे। कुछ घरों के ऊपर वाले भागों में अब भी आदमियों की बस्ती नज़र आ रही थी। सामने से गली में एक पैंतालीस-पचास बरस का अधेड़ आदमी खटिया पर अपनी बीमार घरवाली को सिर पर उठाए चला आ रहा था। नाववाला चिल्लाया : "हुइनैं ठाढ़े रहौ भाऽय! हमार नाव बढ़ जाय देव तनिक।"

"अरे तुमका आपन नाव की पड़ी है, हियन पानी अस थपेड़ा मार रहा है कमर पै कि अपने हिसाब जैसे सिपाही की लातैं पड़ रही होयं।"

मुसीबत में भी उस आदमी का व्यंग्य-विनोद मज़ा दे गया। एक कुत्ते की फूली हुई लाश पानी में बहती हुई आ रही थी, जिसे देखकर नाव पर बैठे तीनों लोगों का जी घिना गया। लाश की टकराहट से नाव को बचाने के लिए नाववाले ने नाव को एकदम दीवार से सटाकर बढ़ाना शुरू कर दिया। नीचे शायद पानी का नल था। नाववाले का बाँस उससे टकरा गया। नाव को भी नीचे से हल्का सा उछाला मिला और वह उछल कर दीवार से टकराई। जैकिशोर ने दीवार के सहारे हाथ रखकर नाव को उससे दूर किया। तब तक नाववाला भी अपने बांस पर काबू पा चुका था : "कहां ते आय रहे हौ?"

"अऽरे, नगिचहे ते। सबेरे ते दुई दांई समान औ बच्चन का लै के लांघ चुके हैं। अब ई तीसरी दांई आपन महालच्छमी की सवारी उठाय के जाय रहे हैं। इनके बाप हमार गोड़ पूजिन रहैं तौन ई हमरै मूड़ पै चढ़ि के बदला लै रही हैं।"

नाव और जोरूधर विनोदी व्यक्ति के बीच ज्यों-ज्यों फासला होता गया त्यों-त्यों आवाज भी दूर होती गई : पति के मज़ाक पर, खटिया पर लेटे-लेटे ही रोगिणी पत्नी ने चिचियाकर कुछ कहा, जिसे रमेश ठीक तरह से सुन न पाया, लेकिन उसके चिन्ताग्रस्त मन को इससे एक तरह की राहत मिली। जयकिशोर से बोला : "बुड्ढा मस्त था पट्ठा। देखो सबेरे से तीन-तीन चक्कर किए। अपना पूरा सामान ढोकर ले गया। अब कहां जाकर रहेगा बेचारा?"

"अरे बाबू, ई तौ हम पंचन का सदा का अभियास पड़ा है बाबू। हर तीसरे-चौथे बरस गोमती मैया बढ़ती हैं। पुस्त-दर-पुस्त बाढ़ आवै तौ हमरे पंचन के पुरखे यही तरह घर छोड़-छाड़ के भागें। कहूं मन्दिर-धरमशाला, पेड़ तले चारि-छह-आठ दिन गुजर-बसर कयिके फिर अपने घर चले जाते हैं।"

नाव गली पार कर खुले में आ गई। दाहिनी ओर नदी की मूल धारा का हड़कम्पी प्रवाह हो रहा था। मीलों, क्षितिज तक पानी ही पानी। कहीं-कहीं पानी में डूबी हुई हरे पेड़ों की फुनगियां धूप की चमक में छाँव भर रही हैं, बांईं ओर शिवपुरी और गऊघाट की बस्तियां हैं। कहीं-कहीं पर छतों पर खड़े आदमियों की भीड़ भी है। दूर पर दो सरकारी मोटर नावें गऊघाट पंपिंग स्टेशन के आस-पास चक्कर लगाती नज़र आ रही हैं। पानी गाढ़ा, मटमैला। बीच-बीच में मिट्टी के जमे हुए फेनों के लोंदे बहते चले जा रहे हैं। बांस, सिरकी, कूड़ा, काँस-कतवार पानी से बड़ी तेजी के साथ भागते मंवरों में नाचते आगे बढ़े चले जा रहे हैं।

पुल! पुल! कान के पास ही पानी में कहीं कोई एक आवाज हो जाती है। एक लहर से दूसरी लहर टकराती है तो मद्धिम छप्प की आवाज़ सी होती है। नाववाले का बांस भी पानी को पीटकर उसकी एक अजीब बेसुरी आवाज़ को तरंगों के सुरीलेपन में मिला रहा है, मानो सुननेवालों को यह याद दिला रहा हो कि जल का सौम्य शान्त संगीत सुनने का समय नहीं है, उसके रौद्र और प्रलयंकर रव को सुनने का है। रमेश को ऐसा लगने लगा कि मानो नदी की मूलधारा का मारक आकर्षण उसकी नाव को अभी अपनी ओर खींच लेगा, यह सोचकर ही उसके मन में एक स्तब्धता छा गई। पानी यहां से वहां तक एक-सा ही फैला है। पर यहां, जहां नाव चल रही है, रमेश जानता है कि पानी की थाह कितनी है। नाववाला खेतों की लीक पर ही बढ़ता चला जा रहा है। उसका बांस धरती में लगता है, कहीं आधा, कहीं तीन चौथाई। यही रमेश के लिए जीवन की आस्था है। धूप ऐसी पड़ रही है कि जिसमें हिरन काले पड़ जाएं। पेड़-पौधे-जल-थल डूबे हुए, कहीं-कहीं डूबे मकानों की छतों पर दिखाई पड़नेवाले आदमी, सूने आकाश में उड़ती हुई चीलें, और दाहिनी ओर से कानों के परदों में घुमड़-घुमड़कर भरने वाला गंभीर हहर-हहर-हहर नाद। पृथ्वी यमलोक-सी लगती है, यहां जीता हुआ भी मुर्दा लग रहा है।

नाव गऊघाट से काफी आगे निकल चुकी थी। रमेश और जैकिशोर के लिए यह जगह एकदम अनजान थी। चारों ओर पानी ही पानी। धरती पानी भरी परात जैसी लग रही थी। पेड़ और पानी और कूड़ा। बड़े-बड़े मटियाले झाग फेनों के छोटे-बड़े लोंदे, फूस के छप्पर, मटकियां, बांस और चारपाइयां बहते हुए मिल रहे हैं। एक जगह दूर पर एक भारी-भरकम सांड़ बड़ी ज़ोर-ज़ोर से डकराता और तेजी से बहता जाता हुआ दिखलाई दिया। मौत की चपेट में आए हुए एक प्राणी की विवशता देखकर नाव पर बैठे ये तीनों प्राणी अपने अन्दर तिलमिला-तिलमिला कर घुट गए। किसी के मुंह से भी बोल न फटा। नाव तेजी से खेई जाने लगी।

दक्खिन-पच्छिम दूर-दूर पर टीलों के ऊपर अब बस्तियां नज़र आने लगीं। एक टीले से दूसरे टीले तक हांक-गुहारों के रेडियो बोल रहे थे। गाय, बैल, भैंस, बकरियाँ, गृहस्थी का सामान, नर-नारी और बच्चे टीलों के ऊंचे भागों पर ऐसे लगते थे, मानो शिवजी की पिण्डी पर फूल चढ़े हों। पानी के नरक में जीवन की

यह बस्तियाँ जैकिशोर और रमेश के चेहरों पर उल्लास की स्वर्गीय आभा ले आई। नाववाला बोला : "उयि जो धुर कोनेवाला टीला है न, बस वही बरौनी मेरी जान में है, पानी में अन्दाज ठीक नहीं लग पाता बाबू, पर हमारा अन्दाज इत्तौ गलत नहीं हुई सकता है बाबू।"

सामने के टीलेवाले लोग नाव देखकर हाथ उठा-उठाकर उसे बुलाने के लिए शोर मचाने लगे। गांव में मुड़ने से कुछ पहले ही नाव एक तेज भंवर की चपेट में आते-आते बची। मूल धारा से इतने हटकर भी भंवर की तेजी ने नाववाले को यह अनुमान दिया कि पानी तेजी से बढ़ रहा है और शाम तक यह बतलाना कठिन हो जाएगा कि असली धार कहां है।

रमेश बोला : "हम समझते हैं कि टीले के किनारे-किनारे ही ले चलो। उनसे बरौनी का पता पूछकर ही आगे बढ़ना ठीक होगा।"

"ये भी हो सकता है कि ये लोग इन्हीं टीलों में से ही किसी पर आ गए हों।" जैकिशोर ने कहा।

"हुइहैं तो वहीं बरौनी वाले टीले पे हुइहैं।"

नाव पहले टीले की ओर चल पड़ी। ज्यों-ज्यों टीला पास आने लगा त्यों-त्यों उसकी भीड़ भी सिमटकर नाव की दिशा की ओर ही थोड़े-थोड़े पानी तक आकर खड़ी होने लगी। नाव सरकारी है कि ग़ैर सरकारी, जा कहां रही है, आदि प्रश्न उधर से होने लगे। बरौनी के सम्बन्ध में पूछने पर यही मालूम हुआ कि नाववाले का अन्दाज गलत नहीं था। ठाकुर अजयपाल सिंह के सम्बन्ध में पूछने पर जाना गया कि वो बरौनी से आगे सैंथा के आसपास रहते हैं। सुनकर नाववाला अनख गया, कहने लगा कि सवारियों ने उसे गलत पता देकर फँसा लिया। रमेश, खास तौर पर जैकिशोर को नाववाले की यह खीझ बुरी लगी। वह उत्तर देने ही जा रहा था कि अपनी बाईं तरफ के पेड़ की ओर देखकर रमेश जोश में चिल्ला उठा : "वो देखो। वो देखो।"

"कहां, कहां?" कहते हुए जैकिशोर और नाववाले की दृष्टियां भी पेड़ की उस झुकी हुई मोटी डाल पर गईं, जो पानी की सतह से जरा ऊंचाई पर दिखाई दे रही थी। उस पर बैठा हुआ एक बड़ा काला नाग फन उठाकर सीधा इन्हीं लोगों की ओर देख रहा था और उसके पास ही दो चूहे भी सहमे हुए बैठे थे।

नाववाला गदगद स्वर में बोला—"वारे भगवान, मौत के डर से एकै डाल पर बैठे हैं।"

जैकिशोर बोला—"वो बिहारी का दोहा है न—

कहलाने एकत बसत अहि-मयूर मृग-बाघ।
जगत तपोवन सों कियो दीरघ दाघ निदाघ।......"

आगे एक जल-मग्न खेड़े से गुजर रहे थे। दाहिनी ओर पानी में डूबा एक शिवाला था। ऊंची कुर्सी पर बना होने पर भी शिवाले का खुला द्वार आधा डूबा हुआ था, और उसमें छाती तक डूबे हुए दो पुरुष खड़े थे। वो दोनों ही नाव देखकर गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ा कर उन्हें पुकारने लगे। नाव वाला उधर जाने के पक्ष में था। सैकड़ों हजारों लोग फंसे हैं, आखिर किस-किसको बचाया जा सकता है। नाव शिवाले से आगे बढ़ने लगी। पुरुषों की करुण चिरौरियां भी बढ़ीं। नढ़ी पुरुषों ने कहा कि चाहे हमें छोड़ जाओ, पर हमारे साथ के एक बूढ़े और दो उबू.

औरतों को, जो शिवाले के अंदर पानी में आठ घंटे से डूबी हुई खड़ी हैं, उस पार किसी टीले पर अवश्य ही पहुंचा दो। रमेश गिड़गिड़ा कर नाववाले से आग्रह करने लगा। नाववाले को भी दया आ गई। नाव शिवाले पर आ लगी।

शिवाले के चबूतरे पर ठीक उसके द्वार से सटाकर ही नाव खड़ी की गई। एक बसोर युवक शिवाले के अंदर से पानी में खड़ी बूढ़ी ब्राह्मणी का हाथ पकड़कर और अपनी बूढ़ी मां को गोद में उठाकर लाया। बूढ़े पंडित बाबा भी ऐसे ही सहारा देकर लाये गये। पानी में इतनी देर तक रहने के कारण उनकी चमड़ी सफेद निष्प्राण-सी हो गयी थी। सबके चेहरों पर मृत्यु का फीकापन और जड़ता थी। किसी के मुंह से बोल तक नहीं फूट रहे थे। सबके बाद एक अधेड़ साहुजी अंगोछे से मुंह बंधा हुआ एक झाबा पानी में तैराते हुए दरवाजे पर लाये। पांचों सवारियां झाबे समेत नाव पर आ गईं। भोले बाबा महामिटुंजे नाथ की जै बोलकर बसोर युवक ने पानी में डूबे हुए शिवजी को प्रणाम किया। सभी स्त्री-पुरुषों के हाथ भक्ति-भाव से जुड़ गये। नाव फिर चल पड़ी। बातों का सिलसिला चलने पर इन लोगों की आपबीती सुनकर रमेश आदि के रोंगटे खड़े हो गये।

पानी रात में ऐसी जोर से गरजता और दौड़ता हुआ बढ़ा कि चारों ओर हाहाकार मच गया। रात के नौ बजे ही गांव का कोई पल्टनवा नामक व्यक्ति किसी दूर के गांव से लौटने पर पानी की खबर लेकर आया था। जब तक लोग जागें और भागें, पानी गांव में प्रवेश करने लगा। बहुत से लोग अपना सामान और परिवार लेकर जलती मशालों की रोशनी में भागने लगे। गांव एक घण्टे के भीतर ही करीब-करीब खाली हो गया। केवल ये पांच जन पीछे छूट गये। और तब तक पानी का दूसरा रेला हड़हड़ाकर चढ़ आया। पंडित बाबा अपनी रतौंधी ग्रस्त पंडिताइन को लेकर गले-गले पानी में चिल्लाते हुए भटक रहे थे। बसोर अपनी बूढ़ी मां और जग्गू साहू को लेकर इस शिवाले के चबूतरे पर पहुंच गया था। जग्गू साहू के दोनों लड़के अपना परिवार और मालमता लेकर एक टीले पर पहुंच गये थे। वो ठिकाना खोद भी न पाये थे कि पानी ने उनके घर को घेर लिया। बसोर युवक उन्हें और पंडित-पंडिताइन को पानी से लड़कर निकाल लाया। सब लोग शिवाले में घुस गये।

अंधेरा गुप था। पानी बढ़ रहा था। पानी धड़धड़ाता हुआ बढ़ रहा था और ऐसा लग रहा था कि मंदिर हिल रहा है। बसोर के साथ कुछ झाबे भी थे। उसी पर स्त्रियों को बैठाया। पिछली रात तक झाबे भी तैरने की स्थिति में आ गये थे। फिर सबने खड़े-खड़े रात बिताई। सबेरा होने पर सबने देखा कि शिवजी की पिंडी के ऊपर एक झाबा एकदम टिका हुआ हिल रहा है। टिक कैसे गया, यह देखने के लिए बसोर बढ़ा तो देखा उसमें एक अजगर गेंडुली मारे बैठा था, जग्गू साहू ने यह सुनते ही आगे बढ़कर उसकी लटकती दुम झाबे में डालकर अंगोछे से मुंह बन्द कर दिया। कहा कि इसे बाढ़ के बाद लखनऊ के चिड़िया-घर में बेचकर टके कमा लेंगे।

नाववाले को जब मालूम हुआ कि झाबे में अजगर है तो बहुत नाराज़ हुआ। रमेश हंसकर बोला: "इस बीच में केवल एक ही ने अपना मुनाफाखोरी का

जाति-गुण नहीं बिसराया।" इन लोगों को एक टीले पर उतारकर नाव फिर आगे बढ़ी।

बातें करते ये लोग इच्छित स्थान पर पहुंच गये। गांव में मुड़ने से कुछ पहले ही नाव फिर एक तेज भंवर की चपेट में आते-आते बची। मूल धारा से इतना हटकर भी भंवर की तेजी ने नाववाले को यह अनुमान दिया कि पानी तेज़ी से बढ़ रहा है। उसके कहे अनुसार अब तो धारों से धारें फूट रही हैं—"आसौं की बाढ़ बाबू, मेरी जान में कुछ कर गुज़रेजी। यह ठीक नहीं ना।"

पानी का खिलाड़ी नाविक पानी के रंग-ढंग देखकर गहरी चिन्ता में फंस गया। एक लैम्प के खंभे के किनारे लैम्प के टीनवाले कंगूरे को हाथ से पकड़कर नाववाला बोला : "ई तो सब गांव जानो, खाली हो गया। किसके यहां जाना है बाबू?"

"ठाकुर अजयपाल सिंह के यहां।" रमेश ने कहा।

नाववाला तकिये की तरह लैम्प के सहारे टेका लेकर बैठे-बैठे ही दूसरा हाथ कान पर लगाकर गोहराया : "अरे हियां कौनौ जियत पराणी बचा है का भा ऽऽऽ य······?"

एक ही सांस में दो-तीन बार जोर-जोर से गोहराने पर कहीं गहरे से वैसे ही ललकारते-लहराते हुए स्वर पंछियों के कलरव-से-उठे।

रमेश की कुछ भी समझ में न आया। पर नाववाले ने फौरन ही लैम्प-पोस्ट छोड़कर अपना बांस संभाला और नाव को आगे बढ़ा ले चला। आगे बस्ती की गली का संकरा मोहाना आया। गली के दूसरे छोर पर उधर आस-पास की छतों पर कई आदमी खड़े थे। उनसे ललकार भरे स्वर में ठाकुर अजयपाल सिंह की कोठी का पता पूछा और जाना गया। बाढ़ में फंसे कुछ लोग नाव को अपनी ओर आने और रक्षा करने को गिड़गिड़ाहट भरा शोर करने लगे। परन्तु नाव फिर चक्कर लगाकर मुड़ गयी। दाहिनी ओर से बस्ती के पिछवाड़े खेतों की ओर चली। इधर की ज़मीन कुछ ऊंची उठी हुई थी। खेतों में डूबी हुई फसलें मटमैले पानी के बीच में जगह-जगह अपनी मुर्दा हरियाली को चमका रही थीं। लगभग आधा फर्लांग दूर पर एक नये बंगले की छत और उसके बगल में ही पुरानी हवेली का एक मंजिल डूबा हुआ भाग नज़र आने लगा। नाव को देखते ही बंगले की छत पर खड़े हुए आठ-दस आदमी एक साथ शोर मचाकर नाववाले को पुकारने लगे। रमेश और जैकिशोर की आंखें टकटकी बांधकर छत की ओर देखने लगीं। नाव छत के पास आती जा रही है। रमेश को अब अपने पिता और बचान महाराज साफ-साफ दिखलाई दे रहे हैं—"ओह भगवान्! तुम कितने दयालू हो, भगवान् कितने दयालू हो।"

नाव पर पुत्ती गुरू, बचान महाराज, ठाकुर साहब के अवकाश-प्राप्त अफ़सर भाई, उनका लड़का, उनका नौकर और सामान रखकर ठाकुर अजयपाल सिंह और उनके नौकरों ने विदाई दी। नाववाला इन नयी सवारियों को ले जाने के लिए नयी रकम की मांग करने लगा। थोड़ी-सी झिकझिक के बाद उसकी मांग पूरी हुई।

चलते समय ठाकुर साहब के भाई ने शाम तक दो मोटर-बोट लेकर बाकी लोगों को बचाने आने का वचन दिया।

अपने पिता और बचान महराज को बाढ़ग्रस्त क्षेत्र से निकाल लाने पर रमेश अपने क्षेत्र का हीरो बन गया। संयोग से उसी दिन खन्ना साहब ने किसी काम से उसे शाम को बुलवाया था और बाढ़ग्रस्त इलाके में उसके जाने की बात सुनकर उन्होंने दोबारा उसके घर में यह संदेशा भिजवाया कि रमेश जैसे ही घर आये, वैसे ही उनके पास भेज दिया जाय।

रानी बाला को खन्ना साहब के घर पर ही यह सूचना मिली थी और उसी समय से उसकी चिन्ता का पार न रहा था। वहनजी के घर काम-काज में फिर उसका जी न लगा। छुट्टी लेकर वह सीधे रमेश के घर पर ही गई। रमेश की अम्मा अपने पति और बेटे की चिन्ता में फीकी फक्क पड़ गई थीं। दो औरतें उनके पास बैठी हुई सहानुभूति के बहाने बातों में अपने भय-जनित अशुभचिन्तन को गति दे रही थीं। बहत्तर बरस की कड़ियल बूढ़ी गुलकन्दी चाची कह रही थीं : "देखौ भाई, नारायन जो करैं कि तुमरे भाग से बाप-बेटे, दूनौ राजी-खुसी से लौट के अपने घर में आवैं। बाकी बाढ़-बहिया में से बचके आवना बड़ा मुस्कल होत है।"

"हां चाची, ई बात तो सच्ची है। बाढ़ के पानी में हमने सुना है कि ऐसी जोर की भांवरे पड़त हैंगी कि उम्मे जो कोई फंस गवा, ऊ बस सीधे रसातलै में पहुंचत है जायके।"

"अरे रानी, हमरे लड़कपन की बात हैगी। कानपुर में गंगाजी की बाढ़ आई। हाय रानी, हम तुमसे का कहैं, एक आदमी विचारा न जाने कहां से बहत-बहत आय रहा था, खड़े-खड़े तमाम खिलकत देखै और पुकार-पुकार के हिम्मत दिलावै कि रस्सा फेंका जा रहा हैगा, पकड़ लेओ तो खींच लें। तब फिर रानी, क्या भया कि रस्सा फेंका गया, उन्ने पकड़ भी लिया और लोग खींचने लगे, सब खुशी होंय कि बच गया, बच गया···ए रानी बस इत्ती देर में क्या भया कि एक जहाज-ऐसा बड़ा भारी मगर पानी में से निकला और गप्प-सानी मूं फाड़ के आदमी खाय गया। बस खतम।···"

"च:-च:, राम-राम ! अरे चाची बाढ़ तो फिर भगवान का कोप ठहरा। ऊ में फंस के निकलना बहुतै मुस्कल बात हैगी।"

"हमरे तिल्लोकी मैया ने बचानौ से कहा और इनके लड़के से भी कहा कि चंदरमा खराब है, भदरा भी लगी है, ठीक नाहीं हैं। पुत्ती तो फंसे ही हैं, बाकी तुम लोग न जाओ। पर होतब्बिता को कौन रोक सकता है रानी।···हे ईसुर नाथ, भगवान।"

रानी को इन सब बातों पर अनायास ही क्रोध आ गया। अपने शान्त, गम्भीर और अनुशासनप्रिय स्वभाव के बावजूद, अपने चिंता-जंजाल-ग्रस्त मन को अशुभ आशंकाओं में भटकाने काली बातों ने उन पांच-छह मिनटों में उसे भीतर ही भीतर इतना तपाया कि वह अपना संतुलन खोकर भड़क उठी, तेजी से कहा : "जिसके मन में भगवान पर विश्वास नहीं होता, उन्हीं के मन में ऐसी अशुभ बातें भी आया करती हैं। अगर भगवान् मेरे भी हैं तो मैं कहती हूं कि अभी राजी-खुशी से आते होंगे ये लोग।"

रानी का आवेश रमेश की अम्मा के चेहरे पर विश्वास की चमक बनकर चढ़ गया। बूढ़ी गुलकन्दी चाची के माथे के बल चढ़े, आंखों में क्रोध झलका, उनकी जबान की बिजली बदतमीज रानी पर बरसने ही वाली थी कि नीचे के किवाड़

धड़धड़ाकर खुले और हर्ष की जोशीली हंफ़नी से फूले स्वर में सुरेश ने कहा : "बाबू आ गये अम्मा।"

अम्मा और रानी लपककर छज्जे पर आईं, सुरेश तब तक सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर आने लगा था। खबर ने गुलकन्दी चाची और कित्तो की बुआ की उत्सुकता को भी जगा दिया था। सुरेश ऊपर आया। उसका चेहरा खुशी से खिला हुआ था, बोला, "बाबू की सिलौटी-विलौटी जल्दी से धोय धाय कर रक्खो अम्मा, उन्हें भांग की बड़ी जोर तलब लगी हैगी।" कहकर वह हंस पड़ा।

"औ' पुत्ती कहां है ?" गुलकन्दी चाची ने पूछा।

"रूप्पन चाचा के बैठके में।"

"और भैया कहां हैं तुम्हारे ?" रानी ने पूछा, 'भैया' शब्द जोर से कहा और 'तुम्हारे' दबे स्वर में। लगभग इसी समय अम्मा ने भी रमेश ही के संबंध में पूछा। सुरेश बोला : "अरे भैया के तो इत्ती बिरियां वो ठाठ हैं कि पूछो मत। रूप्पन चाचा ने दस रुपये का नोट इनाम में दिया हैंगा उन्हें, अभी-अभी मेरी आंखों के सामने। कहा कि मिठाई खाना। पर भैया बोले कि हजारों शरणार्थी बिचारे गांवों से भाग-भाग के यहां आये हैं, उनकी मदद के लिए ये पहला चंदा मिला हैगा। सब लोग भैया की और भी तारीफें करने लगे। अरे, बेकार ही खोये रुपैं। आज रबड़ी आती मजे से।।"

सिल धोते-धोते एकाएक आंचल की खूंट से पैसे निकालने के लिए गांठ खोलते हुए खुशामद भरे स्वर में अम्मा ने सुरेश से कहा : "ए सुरेश, तनी लपक के डेढ़ पाव दूध लै आओ बेटा। पाव भर तुमरे बाबू की भांग में पड़ जायगा और बाकी तुम सबके लिए और हमरे रमेश के लिए चाह बन जायेगी। रानी, अब तुम भी चाह पी के ही घर जाना बिटिया।"

"जी अच्छा, लाइए, मैं ही बना दूंगी। दियासलाई कहां है, सिगड़ी सुलगा लूं।" रानी में इस समय बड़ा उत्साह था।

"अच्छा···हां, तुमही बनाय के देओ। मैं तब तलक तुमरे चाचाजी की बूटी पीस देंउं। थके-मांदे आवैंगे बिचारे।"

कित्तो की बुआ मुंह-छुवाई करती हुई बोलीं : "अरे, चाह हम बनाय दें, रमेश की महतारी।"

"नाहीं-नाहीं, ई लड़की बनाय लेगी। हमरी मन्नो के साथ पढ़त रही। औ' देखो बिचारी का प्रेम कि खबर सुनके जिउ न माना तौ बिचारी दौड़ी चली आई।"

दोनों स्त्रियों के जाने के बाद सिल पर धुली हुई पत्ती और गोल मिर्चें रखकर बट्टा उठाते हुए रसोई के दालान में बैठी सिगड़ी सुलगाती हुई रानी से अम्मा बोलीं : "ऐसी शुभ घड़ी में तुम आईं बिटिया कि हमारा तो बिछड़ा सोहाग लौट आया। पेट के जाये ने मेरे दूध की लाज रख ली। मेरे तो रामजी ही सहाय हैं। और ये गुलकन्दी निगोड़ी तो महा की जलापेवाली हैगी, सदा दूसरे का अशुभ ही बोलती हैगी डाइन !" कहकर अम्मा भांग पीसने में दत्तचित्त हुईं।

रानी के जी में आया कि चाय के साथ जो वह 'उनके' लिए कुछ नाश्ता भी बना सकती तो कितना अच्छा होता। दिन भर के भूखे-थके-मांदे आ रहे हैं।··· मगर अम्मा से कहे कैसे ?·· क्या हर्ज है, कह ही दे। अम्मा को भी इस समय यह

बात इतनी सही लगेगी कि उनके मन में कोई शक हो ही न सकेगा। इस विश्वास के साथ उल्लसित होकर पूछा : "अम्मा बेसन हो तो लाइए, थोड़े से पकौड़े भी—।"

"हां-हां। अरे बारी मेरी बिटिया। तू सचमुचै रानी है। देखौ...पर तुम्हें मिलैगी नहीं। ठहरो हम आते हैं—"

"नईं-नईं। मैं ढूंढ़ लूंगी; आप मुझे वहीं से बतला दीजिए।"

रमेश की अम्मा ने बतलाया और रानी आसानी से चीजें ले भी आई। अम्मा बड़ी खुश हुईं। फिर भांग पीसने में दत्तचित्त होती हुई बोलीं : "पन्नो इतनी बिरिया रोज़ अपनी सहेली के हियन पढ़न चली जाती हैंगी। नहीं तो तुम्हें हम ई तकलीफ न देते।"

"मैं अपने घर में काम कर रही हूं अम्मा, फिर तकलीफ कैसी ?" रानी सचमुच मगन हो रही थी। पास वाले दालान में पुत्ती गुरू की पत्नी अपने पति की सेवा में दत्तचित्त थीं और रसोई में...इस विचार के बाद कैसी गुदगुदी भरी आनन्द-लहरें सिर से पांव तक उसके देह-मन में लहराई हैं कि हाय राम !

रमेश घर में पहले आया। रानी हर्ष और लाज के अतिरेक में अपनी जगह से हिल न सकी, वहीं बंध गई। अम्मा नीचे से रमेश की आवाज सुनते ही फिर सिल-बिट्टा छोड़कर छज्जे की ओर लपकीं और—रमेश को तो ऊपर आकर मानो सब कुछ मिल गया। मन्नो की शादी के दिनों में रानी इस घर में काम करती हुई दिखलाई देती थी, मगर तब तो बहुत सी काम करनेवालियां थीं। आज रसोई-वाले दालान में अपने फुर्ती भरे हाथों से थाली में बेसन घोलती हुई वह रमेश को इस घर का सहज अंग-सी प्रतीत हुई। पिता को बचाकर लाने के कारण उसका सफल नायकत्व मानो अपना मनोवांछित पुरस्कार पा गया। और फिर तो जितने उत्साह से उसने अपने बाढ़-क्षेत्र में जाने और अपने पिता आदि को बचाने की कथा सुनाई, वैसा उत्साह तो रुप्पन चाचा के घर और गली में दो बार सुनाने पर भी उसके मन में नहीं उमग पाया था। इन्हीं बातों के प्रसंग में उसने बचान महराज के जाने का हाल भी बतलाया। जाते समय एक नाव में, जो सैंथा से भी आगे एक हवलदार के परिवार के रक्षार्थ जा रही थी, इन्हें जगह मिल गई। पहुंच तो गए, पर लौटते समय नाववाले ने अपने वचनानुसार इन्हें और पुत्ती गुरू को साथ न लिया। नाव उस समय ठसाठस भरी हुई थी, और इन लोगों के पुकारने पर भी वह पास न फटकी। उसके बाद बचान गुरू पुत्ती गुरू पर एहसान की धौंस जमाते और घबराते रहे। पुत्ती गुरू भी उन पर गर्माते रहे और ठाकुर साहब, जिन्हें बचान के आने पर नाववाले को दस रुपये देने पड़े थे, उन्हें बार-बार उल्लू कहते रहे। यह सुनाने पर खूब हंसी हुई।

पुत्ती गुरू को भी घर आकर और अपनी दूधिया भंग तैयार देखकर मन में तरावट आ गई, कहने लगे : "शास्त्रों में झूठ नहीं लिखा, ओछे का माल कबहीं न खाय। कल ससुर पचास बार तो ठाकुर साब ने दुलखा होयगा कि दस रुपये लागत की भांग बनी, दस रुपये लागत की भांग बनी। सुन-सुन के हमारा नसा तड़क गया। अरे, अपने समधियों को मैंने चौदह रुपये लागत की पिलाई थी। मगर हमने तो एक बार भी अपने मूं से नहीं कहा। इससे प्रेम कम हुई जाता है, नसा उखड़ जाता है। सबेरे से अब तलक भोले का प्रसाद न पाय सके ससुर। ऐसा मनहूस दिन तो आज तलक हमने अपने होश में देखा नहीं था।" और इसके बाद

गिलास लेकर नीचे रामजी के मन्दिर में जाकर स्तोत्र पढ़ते हुए भोग लगाया। उनकी पत्नी बाकी बची हुई भांग लोटे में लेकर उनके पीछे-पीछे गई! रानी-रमेश को अकेलापन मिला, रसोईवाले दालान के दासे पर बैठकर, कढ़ाई में पकौड़ियां तलती हुई रानी को मदभरी दृष्टि से देखकर पूछा: "तुम कितनी देर से यहां हो?"

"थोड़ी देर से। मुझसे कह के क्यों नहीं गए थे?" रानी की आंखों की पुतलियां शिकायती नखरे से नाच उठीं।

रमेश उसकी ओर घूरकर बोला: "उस समय कहने की भला फुरसत थी मुझे जो···सिड़ी कहीं की।"

"हांऽआं, सिड़ी तो हम हैं ही, मगर आपसे बहुत नाराज हैं।" रानी के गुस्सेवाले नखरे ने रमेश के मिजाज को मखमूर कर दिया।

नीचे पुत्ती गुरू एक गिलास चढ़ाकर पत्नी के दोबारा गिलास भरते समय सन्तोष से पेट पर अपना बांया हाथ रक्खे हुए बोले: "आऽहा! अपने घर की, अपनी गृहिणी के हाथ की भांग ऐसी अमृत समान लगी है कि क्या कहैं। ससुर दस रुपये की लागत बखानत रहे। छिः! हरिओम बोम शंकर—आ हा! आज तुम्हारे हाथ की भांग में अष्ट-सिद्धि नव-निधियों का रस उतर आया हैगा साला। अरे, आज मैं तुम्हें सपने में नौलखा हार पहनाऊंगा रमेश की अम्मा, ऐसा चित्त प्रसन्न भया है तुमसे। हरिऽओम! (डकार) गुसाईंजी का वचन प्रमाण है कि "नारी पतिव्रत जेहि घर माहीं, तेहि प्रताप से अमर डराहीं।"

पिता की इस बात ने ऊपर बैठे रमेश और रानी को साथ-साथ हंसा दिया। फिर एक बार छज्जे से नीचे झांककर खड़े ही खड़े झुककर धीरे से कहा: "सुन लिया? अब हमको भी अपनी घरवाली के हाथ की अष्ट-सिद्धियां नवनिधियां तुरन्त मिलनी चाहिए। अब नहीं रहा जाता।"

"क्या बकते हो? चले जाओ यहां से। अम्मा आती होंगी।"

चाय-पकौड़े परोसते समय अम्मा ने कहा: "आज हमारी रानी ने गुलकन्दी चाची को ऐसा झाड़ा कि हमरा जी खुस हुई गया।"

पुत्ती गुरू कान पर जनेऊ चढ़ाए चूना-तमाखू मल रहे थे; गुलकन्दी चाची के नाम पर उत्सुक होकर पूछा: "क्या भया?"

"अरे हियां बैठी भयी ऊ और कित्तो बड़ी देर से अशुभ बातें बोल रही थीं और ऊपर से राम-रामौ करत जाएं, तौ हमरी रानी कहिन कि जिनके मन में भगवान पर बिस्वास न होय, ऊ असुभ बोलैं, औ' हमरा तो बिस्वास ऐसा हैगा कि अबहीं के अबहीं आवत होंएंगे ई लोग। औ' भाई, हम तुमसे क्या कहैं रमेस के बाबू. कि जैसे सरसती जी साच्छात इसकी जिभ्या पर बोली होयं उत्ती बेला। इधर इसने कहा है औ' उधर सुरेस ने घर में आय के कहा कि अम्मा, बाबू आय गए।"

पुत्ती गुरू को यह सुनकर रानी के प्रति स्नेह हुआ, बोले: "अरे भई, सात्विक लोगन की बातें कुछ और ही होती हैंगी। इस लड़की के पिता बेचारे ऐसे भक्त कीर्तनिये और फिर सबसे ऊपर कि भगवान रामचन्द्रजी की जात-बिरादरी वाले हैंगे। औ' गुलकन्दी ससुरी, जनम की छिनट्टी। सत्तर चूहे खाय के अब चाची बनी हैंगी रंडो।"

बाबू निवृत्त होने गए। रसोईवाले दालान में रमेश की मां ने आग्रह से रानी

को भी चाय-नाश्ता करवाया और आप पकौड़ों का आखिरी घान उतारने बैठ गईं। रमेश को अपने इस घरेलू दृश्य में आज जो आनन्द-वैभव मिला, वह अपूर्व था। नाश्ते के बाद रमेश अपनी अम्मा की आज्ञा से रानी को उसके घर पहुंचाने तथा रानी के दिए हुए सन्देशानुसार खन्ना साहब के घर जाने के लिए तैयार हुआ। चार दिन पहले ही वह अपने लिए पन्द्रह रुपये की एक नई फाउन्टेनपैन खरीदकर लाया था। इस समय अचानक मन में विचार आने पर वह ऊपर अपनी कोठरी में गया और फिर फाउन्टेनपेन उठाकर अपने साथ ले आया। रास्ते में एक जगह, गली में सन्नाटा देखकर फाउन्टेनपेन रानी की ओर बढ़ाते हुए कहा : "यह लीजिए। बहनजी के घर आपको टूटे कैपवाली फाउन्टेनपेन से काम करते हुए देखकर मेरे कलेजे में ऐसे हाइड्रोजन बम फूटते रहे हैं अब तक कि क्या बताऊं।"

रानी ने सन्तोष भरे गौरव के साथ, वह कलम हाथ बढ़ाकर ले ली, छाती के भीतर प्रेम की बिजलियां कौंधने लगीं, प्राणों का सागर हिलोरें लेने लगा। गली की रोशनी में उसकी चमचमाती सुनहरी टोपी और क्लिप पर लिखे हुए अक्षर देखकर आतममग्न स्वर में बोली : "तुम्हीं रक्खो न अपने पास। तुम्हारी पेन भी तो ओल्ड हो चुकी है।"

"जी हां, मगर इतनी खराब नहीं हुई जितनी आपकी।"

रानी ने फिर आपत्ति न की, मुस्कराहट केवल उसके होठों पर ही नहीं, मुख पर, पूरे शरीर पर खेल रही थी। कलम को अपने ब्लाउज के कालर में लगाकर बात कहने के लिए रमेश के शरीर से सटकर चलते हुए धीरे से कहा : "मैं भी आज चाऽ—बाबू की तरह सपने में तुम्हें इसके इनाम में शेफर्स पैन प्रेजेंट करूंगी।" कहकर रमेश की ओर कनखियों से देखते हुए उसकी आंखों में मद लहरा उठा। रमेश कुछ इन आंखों के नशे में और कुछ अपने पिता को चाचा कहते-कहते एकाएक बाबू कहकर संबोधित करने के सुख में ऐसा मतवाला हो उठा कि उसकी बांह रानी के कंधे पर पहुंच गई। गली तब भी सूनी थी, मगर आगे तिरमुहानी बाजार झलक रहा था। रानी सहमकर छिटक गई और एक कदम आगे बढ़कर बोली : "सुरेश कहते थे कि तुम बाढ़-पीड़ितों का चन्दा करोगे। मैं भी करूं।"

"निश्चय-निश्चय। क्या बताऊं काश कि मैं तुम्हें साथ लेकर इन बेचारे शरणार्थियों की हालत दिखला सकता···लेकिन ठहरो, मैं बहनजी से इस सम्बन्ध में बात करूंगा।"

रानी को घर पहुंचाकर रमेश ने उसकी दादी और मां के सामने अपनी मां की ओर से रानी के विलम्ब से आने की सफाई दी और इस बहाने रानी की ढेरों तारीफें भी कर गया।

बाढ़ ने और भी भीषण रूप पा लिया था। सबेरे से रात तक बाढ़ की खबरों को छोड़कर कहीं और कोई चर्चा ही न होती थी। प्रादेशिक कांग्रेस के अध्यक्ष-पद को लेकर शहर के गांधी टोपीवाले हल्कों में दौड़ रही सरगर्मियां लोगों पर कोई असर न डाल सकीं। ज़िक्र छिड़ने पर लोग-बाग सरकारी, गैर-सरकारी हर तरह के कांग्रेसियों को गन्दी से गन्दी गालियां देते थे। पढ़े-लिखे और ज़िम्मेदार वर्ग के लोगों में भी यही शिकायत भरी चर्चा थी कि सरकारी अफ़सरों की

लापरवाही के कारण बाढ़ में सैकड़ों जानें तबाह हो गईं और सैकड़ों ही अरक्षित स्थानों में घिरने के लिए मजबूर हुईं; नष्ट होने के अलावा उनकी दूसरी गति ही न थी।

"अजी साहब, सरकारी अफ़सरों के पास तो चार अक्तूबर ही को बाढ़ की रिपोर्टें आ चुकी थीं। लेकिन फ़ुरसत किसे थी? अफ़सर लोग तो मिनिस्टर पार्टी की तरफ से कांग्रेस-अध्यक्ष का एलेक्शन लड़ाने में फंसे हुए थे। मन्त्रियों और मुख्य मन्त्रियों के आगे तो अपनी 'प्रेस्टिज' का सवाल था। जनता मरे या जिए, इससे उन्हें मतलब नहीं।" बाढ़ के इस महाभयातक रूप के सामने नागरिक और कुछ भी देखने-सुनने के लिए मानो तैयार न था। संयुक्त राष्ट्र संघ में नेहरू विश्व-नेता बन गए, हिन्दुस्तान के लिए उन्होंने बड़ा नाम कमाया, मगर उसका भी असर आमतौर पर लोगों के मनों पर कुल जमा एक बहुत बड़े शून्य के समान ही था। नेहरू की चर्चा आ ही जाने पर लोग-बाग उनको बखानकर बाकी कांग्रेसियों को कोसने लगते थे। बस, इतना ही लगाव उस समय लोगों को अपने राजनीतिक महापुरुषों के प्रति था।

नदी के अनैसर्गिक रूप से बढ़ आए हुए किनारों पर पब्लिक मजमा सवेरे से ही जुट जाता था। डालीगंजवाले रेल के पुल पर आर-पार तक भीड़ लगाकर, उसके थरथराते हुए खंभों पर अस्थिरता की सनसनाहट लिए हुए भी सैकड़ों लोग दिन भर खड़े रहते थे। पुल के कुछ ही नीचे पानी का हड़कम्पी नाद ऐसा लगता था, मानो कोई विकराल दैत्य भरपेट भोजन करने के बाद सन्तुष्टि की डकारें ले रहा हो। मिट्टी के संसर्ग से, तेल-सा गाढ़ा लगकर भी पानी बिजली की तेज़ी से, पुल के खम्भों से आगे बढ़ता था, तो अनेक छोटी-बड़ी तेज़ भंवरें नाचने लगती थीं और यह क्रम टूट नहीं पाता था। पुल के खम्भों से मोटे-मोटे रस्सों में बंधी हुई बल्लियां जल की उत्ताल तरंगों में ऐसी डूबती-उतराती, उछलती थीं, मानो पतली बुहारी की सीकें हों।

रमेश दोपहर में भोजन करने के बाद अपने साथियों को लेकर घूमता हुआ पुल पर आ गया। सैकड़ों का मजमा होने पर भी, थोड़ी-बहुत बातें होती रहने पर भी, पुल पर हर आदमी आम तौर पर चुप-सा खड़ा हुआ था। रेल की पटरी-पटरी और उनके नीचे बिछी हुई मोटी धन्नियों पर लोग एक-एक करके आगे बढ़ते जाते थे। पैरों के नीचे अगम पानी ही पानी था। साहसी युवक बीच धार के ऊपर खड़े होकर बाढ़ अनुभव करने लगते थे। इसलिए लोग-बाग उस जगह एक-दूसरे को उतावली में थोड़ा-बहुत धकियाते हुए ही आगे बढ़ रहे थे। लेकिन सारी उतावली के बावजूद इन धक्कम-धक्कियों में सावधानी बरती जा रही थी कि कोई गिरने न पाए। मौत के भय और मौत के तमाशे ने सबको ही एक आधारभूत समझ दे रक्खी थी। बीच पुल पर खड़े होकर बाढ़ का दृश्य देखने वाले पानी की ओर टकटकी लगाकर एक या दो मिनट से अधिक देख ही न पाते थे। गहरे पानी के तेज़ बहाव से लगातार थरथराने वाला पुल हर खड़े होनेवाले को मौत का एहसास करा देता था। जल के इस अनुचित और अन्यायपूर्ण फैलाव को देखकर रमेश के मन में अनायास ही अपने महल्ले के बड़े लखपती महाजन लाला रूपकिशोर का अचानक ध्यान आया। वह कम्मी से बोला : "इस समय गोतमी हूबहू रुप्पन चाचा की सी लग रही है। और ये भंवरें जैसे उनके तगादे करने वाले कारिन्दे हों, जो इनके चक्कर में घिरा नहीं कि उसे ऐसे ही दबोच लेते

हैं और फिर साले को उठने ही नहीं देते हैं।"

कम्मी फीकी हंसी हंसकर बोला—"तुमको ऐसे मौके पर कविता की ही सूझ रही हैगी।"

"आगे बढ़ो। आगे बढ़ते रहो भाइयो। ये तमाशा देखने का वख्त नहीं हैगा। राम-रहीम का नाम लेते रहो।" हर तमाशाई और डालीगंज स्टेशन तक जानेवाला हर उतावली भरा व्यक्ति, एक-दूसरे को गुहार कर आगे बढ़ता था। सामने लोहेवाले पुल पर भी मजमा खड़ा हुआ था।

पुल के बाद उस पार धरती पर पहुंचकर रमेश और उसके साथियों को लगा जैसे वह मौत के मुंह से निकल आये, पटरी के किनारे धरती पर एक जगह बैठकर पानी का गहन हहर-हहर नाद सुनते और सामने की ओर टकटकी बांधकर देखते हुए एकाएक हर्रो बोला—"वो देखो, वो देखो, पानी कैसा छुरी की तरह पुल की मिट्टी में घुसा जा रहा है। अहा, क्या सीन है!" कई लोगों का ध्यान एकाएक उधर गया। और देखते ही देखते दृश्य की शोभावाली भावना भय के महावेग में बदल गयी। रेलवे पुल और उससे भी हज़ार गुना अधिक लोहेवाले पुल पर खड़ी भीड़ का प्रलयंकर शोर अनगिनत बमों के एक साथ धड़ाके सा, आग लगे जंगल के छोटे-बड़े जानवरों की करुण क्रन्दन और चीत्कारों सा उठा। लोहेवाला पुल एक बार तो प्रत्यक्ष हिल उठा। —छऽऽ······छऽऽ ····छऽऽऽऽ छऽप छऽप-घऽ! ! !······हर-हर-हर-हर—पानी के अन्दर होनेवाले घनघोर धमाके लोगों के दिलों के अन्दर अपने भय की पूरी-पूरी अनुभूति कराने लगे, पांच-सात मिनट के अन्दर ही अन्दर यह भयंकर शोर और पानी की तूफ़ानी लहरों के साथ ऊपर उछलनेवाले मिट्टी के बड़े-बड़े ढोकों के उछलने-गिरने का जादुई दृश्य समाप्त हुआ। फिर लोगों ने देखा कि उनके सामने डालीगंज से लोहेवाले पुल को जोड़नेवाली सड़क टूट चुकी थी। पुल का टूटा हुआ भाग अब सबको स्पष्ट दिखाई दे रहा था। 'अऽ' करके हर ज़बान बड़ी कठिन पीर से अचकचाकर रह गयी। पानी उससे दो-तीन फ़ुट नीचे बहता हुआ दिखायी दे रहा था। पानी जैसे हर कलेजे को तोड़कर बीच से बह रहा था। जादू का सा करिश्मा हो गया, हर दिल सक्ते में आ गया। थोड़ी देर के लिए हज़ारों के मजमें में मौत का सा सन्नाटा छा गया।

लोहेवाले पुल के बहुत से लोग पुल के टूटे हुए भाग के किनारे खड़े होकर अपनी बेबसी पर चीत्कार कर उठे। रोने और विलाप करने का एक बहुत बड़ा शोर और हिस्टीरिया की सीं दौड़-भाग लोहेवाले पुल पर दिखलाई दे रही थी। लोग पुल के उस हिस्से की तरफ दौड़ रहे थे, जो दाहिनी ओर अब भी ठण्डी सड़क से जुड़ा था। लेकिन यहां भी दरार पड़ने लगी थी और पानी की तेज धार सड़क के ऊपर बिछकर ठीक उसी तरह से धंसती जा रही थी, जैसे लकड़ी में आरा धंसता है।···पुल इधर से भी घिर गया। उस पार बने घाट पर धार झरने-सी गिरने लगी। पुल के इस ओर खड़े हुए मजमें ने दोबारा भयग्रस्त हुल्लड़ उठाया।

रेलवे पुल पर खड़े हुए लोगों में सनसनाहट दौड़ने लगी—"जान पड़ता है, पानी इधर भी अंदर-अंदर काट रहा है। वे लोग पुल पर ही फंस गए बेचारे। हाय-हाय! दोनों किनारे कटने के बाद फिर पुल को बहते देर न लगेगी। हे राम, हाय राम, या अल्लाह, या परवर दिगार···" इस पुल पर खड़े हुए बहुत से लोगों में तमाशा देखने का साहस बुझ गया। रेलवे पुल की भीड़ बहुत तेजी से सुरक्षित

धरती पर पहुंचने के लिए मेडिकल कॉलेज या डालीगंज—अपनी सुविधा की दिशा की ओर बढ़ने लगी। इसी समय डालीगंज की ओर से आनेवाली ट्रेन की सीटी ने लोगों के पैरों की गति दूनी कर दी। देखते ही देखते रेल का पुल सूना हो गया। पुल के पास किनारों पर खड़े हुए लोग ट्रेन को राह देने के लिए किनारे-किनारे सिमटकर खड़े हो गये, और जगह न होने पर कुछ लोग सरक कर ढलुवां जगह पर अपने पांव रोपने लगे। नीचे अगम जल था।

शहर में जगह-जगह शरणार्थियों के कैम्प पड़े हुए थे। पानी बराबर बढ़ता ही जा रहा था। शरणार्थियों को भोजन-छाजन की सहायता देने के लिए शहर भर में सहानुभूति का ज्वार उमड़ पड़ा था। लोग झोलियां फैलाये घर-घर, सड़क-सड़क दौड़ रहे थे। बड़े-बड़े शामियाने लगाकर उनमें शरणार्थियों को ठहराया जा रहा था। उन्हें खिलाया-पिलाया जा रहा था। बाढ़ नगर के एक भाग की गलियों तक पहुंच चुकी थी। बाजार कालीजी और उसके पीछे नाले के किनारे बसी हुई बस्तियों में पानी घरों के अन्दर बह रहा था। निकलने के लिए राह नहीं थी। दिन के बारह बजे के लगभग खबर आई कि नाले के पास दो-एक पुराने घर पानी में बैठ गये हैं और वहां की आबादी में बड़ा भय समाया हुआ है। दयावान लोगों ने सरकारी सहायता दिलाने की कोशिश की पर सहायता मिलने की कोई सम्भावना एक रात बीत जाने पर भी नजर न आयी। अधिकारी कान में तेल डाले बैठे हैं। पानी तेज़ी से बढ़ रहा है। आज रात तक राम जाने कैसी बीते, कैसी न बीते।

"पचासों गरीब परिवारों के लोग मुसीबत में पड़े हैं। इनकी सुरक्षा का प्रबंध अगर हम लोग न करेंगे तो कौन करेगा ?" तरुण छात्र संघ के सभी बड़े सदस्यों में इस समय कुछ कर गुजरने की तड़प बहुत तेजी पर थी। रमेश और जयकिशोर, जो दो रोज पहले पुत्ती गुरु और बचान महराज को बचाने के लिए अपने साहस से बाढ़ के पानी को रौंद चुके थे, इस समय सबसे अधिक जोशीले हो रहे थे। शामराव गोडबोले में भी अपार जोश था। अभी थोड़ी देर पहले ही अपनी आंखों से उन्होंने लोहेवाले पुल के कटने का दृश्य देखा था। उस दृश्य से छाती पर मौत की जो सिल जम गई थी, उसे वह अपनी कर्मण्यता से तोड़ना चाहते थे।

जयकिशोर ने कहा—"सुनो जी, एक नाव लानी होगी। कुड़िया घाट में चलो।"

"कुड़िया घाट में तो इस बखत हाथी डुबान पानी है।" गोडबोले बोला।

"अरे यार मेरा मतलब है, किनारे पर किसी नाववाले को पकड़ेंगे। मुन्ना, भूरिया, परमेसरी, मोहना, सभी तो हैं।"

"मगर नाव यहां गलियों में आएगी कैसे ?" जयकिशोर सोच में पड़ गया।

"क्यों ठेले पर लादकर ले आयें।" हर्रो बोला।

"अमा, कहना आसान है, करना कठिन।" कम्मी ने झिड़का।

"यहां खड़े-खड़े बेकार की बहसबाजी में तो कुछ भी हासिल न होगा यारो। नाव लाये बिना दूसरी कोई गति नहीं। थोड़ा जान जोखों का एक्सपेरीमेंट जरूर करना होगा। और नाव को हुसेनाबाद वाले खलार से नाले में किसी तरह लाना ही होगा।" रमेश के इस निर्णय का करीब-करीब सभी ने मौन समर्थन किया। कम्मी बोला—"तब एक अक्लमंदी और करो तुम लोग, यानी गोडबोले,

जैकिशोर और तुम तो नाव लेने जाओ और मैं, हर्री, लखन और पम्मी के साथ इत्ती देर में रुपये, ठेला, गैस, रस्से सब लेके अपने स्वयंसेवकों के साथ पहुंचता हूं। लेकिन मिलें कहां ?"

"घंटाघर वाली सड़क पर आना।" जयकिशोर ने उत्तर दिया।

पानी कम्पनी बाग की ढाल पर बसे लाजपत नगर को पूरी तौर पर घेरकर अब आगे तक बढ़ आया था। घाटवालों के तखत कम्पनी बाग के ढाल पर लगे थे। रमेश अपने साथियों के साथ जिस समय पहुंचा, उस समय एक भी नाव न थी। आस-पास के डूबे हुए गांवों और मुहल्लों से लोग अब भी बचाकर लाये जा रहे थे। कई उत्साही नवयुवक घाटवाले गरीब परिवारों को अपनी जान जोखों में डालकर भी निःस्वार्थ सेवा-भाव से बचा-बचाकर ला रहे थे। कुछ नावें सैलानियों के कब्जे में थीं। रमेश और उसके मित्र उतावले हो रहे थे।

लगभग पैंतालीस मिनट तक आपसी बातों में वे अपनी उतावली की भड़ास को फोड़ते रहे। किनारे पर नर-नारियों, कन्याकुमारियों, छौने-छौनियों, छैलों, तमाशबीनों, खोन्चे-गुब्बारे वालों का मेला जैसा मजमा, आस-पास की खोखली सहानुभूति की बातों का कोहराम, तमाशे की बातें, रोमांस की घातें, उस समय को अपनी मनःस्थिति के कारण रमेश और जैकिशोर को खल रही थीं। बीड़ियां फूंकते हुए दोनों में थोड़ी देर पोलिटिकल बहस-मुबाहसा भी गर्मा गया। अमुकजी अब मुख्य-मंत्री बनकर ही रहेंगे और तमुक जी को त्यागपत्र देना ही पड़ेगा। कांग्रेस की गुटबाजी और निजी स्वार्थों के संघर्ष ने सरकारी मशीन को इतना भ्रष्ट कर दिया है कि अब आमूल परिवर्तन किए बिना वह ठीक ही नहीं हो सकती। जनसंघ छोटे व्यवसायियों और स्वतंत्रता-प्राप्ति के आसपास वाले काल में उमगनेवाले ऐसे युवकों की भीड़ से भरी संस्था है, जो राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने की अपनी हौंस पूरी न हो पाने के कारण, और अब सत्तारूढ़ कांग्रेस के अन्दर धंसकर अपनी जगह बनाने में असफल होने की वजह से, तीव्र प्रतिक्रियावादी हो गये हैं। समाजवाद का लेबिल लगाकर चलनेवाली पार्टियों में अधिकतर ऐसे लोगों का ही जमाव हो रहा है, जो एक ओर तो अपने मार्क्सवाद को कम्युनिस्टों से बचाये रखना चाहते हैं और दूसरी ओर कांग्रेस के गांधीवाद से अपने गांधीवाद को अलग साबित करना चाहते हैं। कम्युनिस्ट उत्तर भारत में तो आमतौर पर बेअसर ही हैं। अपने उद्देश्यों में कोई भी साफ नहीं। जिस देश के बौद्धिक उद्देश्यभ्रष्ट, लक्ष्यहीन और, परावलम्बी हों, सदा दूसरे देशों के दम पर अपने देश का उद्धार होने की कल्पनाओं और योजनाओं में लीन रहते हों, उस देश के जनसाधारण पर जो कुछ न बीत जाय, वही कम है। जयकिशोर ने बहस को समेटकर यहां तक पहुंचा दिया।

सैलानियों के एक दल को घुमाकर एक नाव वापस लौटती दिखलायी पड़ने लगी। रमेश, गोडबोले और जयकिशोर तीनों ही उसकी अगवानी में पहले ही सतर्क हो गये कि जिससे कोई दूसरा सैलानी दल उसके ऊपर अपना कब्जा न जमा सके। किनारे पहुंचने से पहले ही नाववाले ने किनारे पर खड़ी भीड़ की ओर देखकर गोहार लगाना शुरू कर दिया : "आठ आने सवारी—आठ आने सवारी। बाढ़ की सैर कर लो भैयो, ऐसी बाढ़ फिर कभी न आयेगी !"

रमेश ने जयकिशोर से कहा—"मैं लपक कर नाव पर चढ़ूंगा और तुम किसी सवारी को नाव पर चढ़ने न देना। ये साले चार-पांच हेकड़ीबाज सूटबूट वाले

लोग खड़े हैंगे, इन्हीं से डर है मुझको।"

रमेश ने अपनी चप्पलें और पायजामा ऊंचा उठाकर घुटनों-घुटनों पानी में जाकर नाव को पकड़ लिया और वहीं से उसके लिए सौदा करना भी आरम्भ कर दिया : "ए भैया, बड़े उपकार का काम है, तुम्हें पुत्र भी होगा और पैसे भी मिलेंगे।"

नाववाला नाव किनारे की ओर बढ़ाना रोककर रमेश से बातें करने लगा। सैलानियों को किनारे पर पहुंचने की जल्दी थी। वे उसके लिए शोर मचाने लगे। नाववाले ने रमेश को दो दिन पहले ही यों ही किराया चुकाते और नाव ले जाते हुए देखा था। बांस से नाव को किनारे की ओर गति देते हुए उसने पूछा—"वहीं गऊघाट चलना है क्या?"

"अरे नईं यार, यहीं पास ही कालिज के पिछवाड़े तक ले जाना है।"

"वहाँ? अरे वहां कैसे पहुंचेगी ये नाव? नाला ऊपरी सिरे तक भरा हुआ है। उधर जा ही नहीं सकती।"

"अरे यार मोहना, तुम चलो तो सही, हमने सारी तरकीबें कर रक्खी हैं।" गोडबोले ने परिचित नाविक को दबाते हुए कहा।

"तरकीबों से क्या होता है भैया, वहां जा ही नहीं सकती।"

नाव किनारे पर आ लगी थी। कुछ सैलानी उस पर चढ़ने के लिए आगे बढ़ रहे थे। उनसे जयकिशोर की हुज्जत हो गयी। उधर नाव की सवारियां उतर गईं। रमेश ने सोचा कि ग्राहकों की भीड़ में नाववाला उसकी चंग पर चढ़ न सकेगा, बोला—"अच्छा चलो, हुसैनाबाद के इमामबाड़े और जुम्मा मसजिद तक की सैर के दाम बताओ। हम तीन सवारियां ही चलेंगी। पांच रुपये मिलेंगे। बोलो चलोगे?"

नाववाला अचकचाकर रमेश का मुंह देखने लगा: "और जो वहां से आगे ले जाओ तौ?"

"अमां नाव तुम्हारे हाथ में है, हम पानी में बेबस रहेंगे। फिर यह सवाल ही क्योंकर उठ सकता है?" रमेश ने झिड़ककर कहा।

नाववाला पैनी नजर से रमेश की ओर देखते हुए बोला—"पांच रुपये हैं जेब में?"

"अम्मां पांच नहीं पच्चिस हैं, चलो, आगे बढ़ो।" जयकिशोर और गोडबोले ने भी नाववाले को यह बात कहने के लिए एक साथ लज्जित करते हुए नाव को पानी में घुसकर पकड़ लिया। इनके साथ ही हुज्जती सैलानी टोली के एक जोशीले बाबू भी नाव पर चढ़ने के लिए बढ़े। नाववाला बोला—"पूरी सवारी तय हो चुकी बाबू। अब दूसरी नाव पर जाइएगा, आती ही होगी।"

वह साहब तिनगते हुए आगे बढ़े और नाव पर चढ़ आए, बोले—"हम इसी नाव पर जायेंगे; रुपया सवारी देंगे।" जयकिशोर ने खूनी नजरों से उसे देखा और अपना पायजामा गीला किए बगैर ही पानी में धंसकर नाव को आगे की ओर ढकेलता ले चला। सवारी और नाववाला दोनों ही चिल्लाने लगे। जयकिशोर नाववाले से बोला—"देखो जी मोहन, हुज्जतबाजी करोगे तो हम घण्टे भर में तीन-चार सौ लड़कों की भीड़ लेके आवेंगे, और साले तुम्हारे तखत-नावें सब फूकताप कर रख देंगे, बताए देते हैं।"

सवारी के साहब त्योरियां चढ़ाकर नाववाले से बोले—"नाव किनारे पर ले

चलो जी। देखूं ये लोग क्या कर सकते हैं तुम्हारा?" रमेश आवेश में आकर एकाएक खड़ा हो गया, नाव हिल उठी। रमेश बोला—"जादा अकड़फूं दिखाइएगा तो यहीं ढकेल दूंगा पानी में। नाव हमारे साथ ही जायगी, ये नाव-वाला पानी में रहकर हम मगरमच्छों से बैर नहीं कर सकता।"

युवक नाविक समझदार था, वह स्थिति को समझ गया और साहब मार्का सवारी से बोला: "बाबू साहब, उतर जाइए, हम लोग काम से जा रहे हैं।"

बाबू साहब और भी जोर से गर्माते हुए अपनी बाबू साहबी झाड़ने लगे। जयकिशोर ने नाव पर चढ़ते हुए कहा: "नाव अब किनारे पर नहीं जायगी समझे। नहीं तो ये लोग हुज्जतबाजी करेंगे, समझे। इन्हें हुसैनाबाद वाली सड़क पर उतार दिया जायगा।"

नाववाला भी तिनगकर बोला: "हमसे भी अब हुज्जतबाजी न करना भैया। हमने कह दिया कि नाव अब तुम्हारे साथ जरूर चलेगी। पर इन बाबू साहब को हम इसी किनारे पर उतारेंगे। आज तुम्हारी सवारी है, कल इनकी। मैं गाहकों से बिगाड़ नहीं करूंगा।" और ऐसा ही हुआ भी।

नाव को लेकर ये लोग जब हुसैनाबाद की सड़क पर पहुंच गये, तब रमेश ने नाववाले से कहा: "सुनो भैया। मुहल्ले की बात है। पिछवाड़े, नाले की बस्ती पर पचासों आदमी फंसे हुए हैं और उन्हें निकालना है। पैसों की फिकर करना मत। रुप्पन लाला को जानते हो ना, खन्ना साहब 'इंडिपेंडेंट' अखबार वालों को जानते हो ना?—तुम्हारा एक धेले का भी नुकसान न होगा और जस मिलेगा सो घाते में।"

नाववाला बोला: "हम मदद तो करने को तैयार हैं बाबू, पर नाव उस पार जायेगी कैसे?"

"अरे यार, तुम धरमशाला की तरफ ले चलो, वहां ठेला-रस्सा और मदद करनेवाले आदमी सब मिल जायेंगे। नाव क्या चीज है, कहोगे तो पहाड़ उठाकर इस पार से उस पार रख देंगे। जरा इन्सानियत का ख्याल करो यार।"

नाववाला कुछ न बोला। नाव आगे बढ़ती रही। दाहिनी ओर अन्तरिक्ष तक अगम जल ही जल दिखलाई देता था। नदी के दूसरे पाटवाले पेड़ों की फुनगियों की पहली पांत ही से नदी के प्राकृतिक किनारे का कुछ-कुछ अनुमान लग पाता था। बांई ओर लाजपत नगर की डूबी हुई बस्ती में कई छतों पर चारपाइयां-बकस-बिस्तर-हंड़िया-मटके-कनस्तरों का भम्भड़ और आदमियों औरतों का हुजूम खड़ा या बैठा हुआ दिखाई पड़ रहा था। एकाध घर की छत पर बांस की चारपाइयां थोड़ी-थोड़ी दूर पर समानान्तर खड़ी करके उनके ऊपर कम्बल-रजाइयां डालकर दो अस्थायी कोठरियां-सी बना ली गयी थीं और पूरे परिवार के लोग उसी में रहते नजर आ रहे थे। सामने घण्टाघर हुसैनाबाद का फाटक, उसके आगे की दूकानें सब पानी से घिरकर एक अजीब-सी घुटन मन में पैदा कर रही थीं। जिस सड़क पर कभी नाव में चलने की कल्पना भी नहीं की थी, उसी पर ये लोग बढ़े चले जा रहे थे। नाववाला अपनी सुना रहा था—"पिछले दो दिन से हमने भी एक धेले की मजूरी नहीं की। बस इसी तरह बाढ़-पीड़ितों को बचा-बचाकर लाये हैं। मुफ्तीगंज, गऊघाट, रामगंज जाने कहां-कहां से घूम-घूमकर हमने, नन्हा और भूरिये ने लोगों को बचाया हैगा। आज सबेरे हमारे बाप ने कहा कि सबकी फिकर करते हौगे तौ कुछ अपने घरवालों की भी

फिकर कर लेओ। रामगंज में हमारा भी तो घर डूब गया है बाबू। जब बहिया खतम हो जाएगी तो उसकी सफाई-पुताई में ही सौ-सवा सौ रुपों का पलेथन लग ही जाएगा। आखिर वो रकम कहाँ से आवेगी।"

जयकिशोर बोला—"तू घबरा मत यार। तू हमारा साथ दे, हम तेरा साथ देगे।"

"अरे भैया, अपनी गरज बावली पे सब ऐसे ही कहते हैं और फिर मुकर जाते हैंगे, चन्दे के काम ऐसेई होता हैगा।"

रमेश बोला: "यार अभी तुमसे क्या कहें। जब लौट के जाते समय हर तुम्हारा जी न खुश कर दें तो कहना।"

नाव घण्टाघर के फाटक तक पहुंच चुकी थी। अब किधर जाए?

रमेश को सड़क वाले किनारे पर अपने साथी एकाएक दिखलाई न पड़े। दरअस्ल वह ठेले को अपने दिमाग में आगे रखकर ही अपने साथियों की तलाश कर रहा था, और वह उसे सामने वाले हुजूम में कहीं दिखलाई न पड़ा। वह झुंझलाकर कुछ कहना ही चाहता था कि जयकिशोर बोला: "वो रहे हर्रो, पम्मी और पुतुआ।"

"मगर ठेला नहीं है। ये सब ससरे बड़े गैर जिम्मेदारी लड़के हैं।"

नाव किनारे पर आयी। हर्रो बोला: "भइ, ठेलेवाला तो कोई भी पकड़ायी में नई आयी। अब यही होगा कि नाव को हम लोग दो-तीन रिक्शों पर यहीं से बांध के लै चलैं या रस्सों से खींचकर नाव को ऊपर—"

नाववाले ने इनकार का जोरदार हाथ हिलाया, बोला: "भैया, इन सब चकल्लसों के लिए हमारी नाव नहीं मिलेगी। अब उतर जाइए। हमें आपके पैसों की भी दरकार नहीं है।"

रमेश अपने अन्दर से हारने लगा। एक हलकी सी निसांस ढालकर ठण्डी दर्द भरी आवाज में बोला: "जा यार अगर, तेरी यही मर्जी है।" फिर जयकिशोर की तरह उसने मुड़कर कहा: "सुनो जी, उस तरफ से नाले के पास कहीं मजबूती से रस्सी बांधकर हम लोग फिर उसी के सहारे बहते हुए चलेंगे। कैसे भी हो, उन मुसीबत में पड़े लोगों की मदद तो हमें करनी ही है।"

हर्रो बोला: "लेकिन यार, उससे तो हमीं लोग पहुंचेंगे, मदद क्या कर पाएंगे!"

एकाएक नाव वाला बोला: "अच्छा आओ, तुम लोग क्या कहोगे कि हमारा भी जिगर है।"

रमेश उल्लसित होकर अपने दोनों हाथों से उसकी बांह और कन्धा दबाकर बोला: "जीते रहो मेरे दोस्त, इसको कहते हैं कि हिम्मत और मर्दानगी व सच्ची सेवा। आ जाओ जी सब जने रस्सी-वस्सी लेकर के।"

पांच-छः लड़के—रमेश, जयकिशोर, गोडबोले, पुतुआ, छैलबिहारी और हर्रो नाव पर बैठे। पानी में खड़ा नाववाला छोटे इमामबाड़े की चहारदीवारी की ओर नाव दोनों हाथों से ठेलकर फिर उस पर चढ़ने से पूर्व नाव छूकर हाथ को अपनी दोनों आंखों पर लगाकर, हाथ जोड़कर बोला: "बजरंगी लाज रखना।" कहकर जैसे ही वह नाव पर चढ़ा, एकदम से चिल्ला पड़ा: "बोल दे बजरंग —"

—"बली की जय" की गूंज छुतही बीमारी की तरह किनारे पर खड़े हुए मजमे के सौ-सौ मुखों से प्रातः एक साथ उठी और चहुंदिशि गुंजार गई। रमेश ने नाव

पर खड़े होकर भारतमाता का नारा दिया और उसकी भी जयजयकार गूंज उठी। इन नारों ने मानो एक साथ सबको जोश का जाम पिला दिया। सात्विकता इन्सनियत, शुभ काम की भावना के नशे की तरह चढ़कर सारे वातावरण ही को मयखाना बना दिया। नाव चहारदीवारी का सहारा छोड़कर बीच के गलियारे से खलार में प्रवेश करने लगी। जयकिशोर किनारे पर खड़े लड़कों से गोहार कर बोला : "तुम लोग दौड़कर बस वाले अड्डे की तरफ पहुंचो। फिर जो कुछ बताना होगा, वहीं से बताएंगे।"

इधर से कई स्वर 'अच्छा' कहने में उतनी ही जोर से चिग्घाड़ते हुए उठे। नाव पर बैठे हुए लड़के इन जयजयकारों के बहाने सबके आकर्षण का केन्द्र बन गए और किनारे पर खड़े हुए लड़कों की टोली से इस नाव यात्रा की विशेषता जानने के लिए कई लोग उत्सुक भीड़ बनकर सवाल करने लगे। किनारे पर छूटे हुए लड़कों का शेष भाग अपने नाववाले बड़े साथियों के महत्व से अपना महत्व कुछ कम नहीं करना चाहता था उनमें से हर एक ने 'हम लोग' कहकर ही सारी योजना को बखाना, केवल पम्मी ही ने दो बार 'हम लोग' शब्द की परिभाषा तरुणछात्र संघ नाम बतलाकर दी। जोश और नायकत्व के नशे में दिग्भ्रमित अपने साथियों की टोली का वह सतर्क नेता बन गया और प्रश्नार्थियों के उत्तर देने के व्यर्थ उत्साह से अपने साथियों को उबारता हुआ बोला : "अच्छा अब जल्दी उधर ही चलो। नाले की पुलिया से लेके बस के अड्डे तक हम लोग लाइन लगाकर खड़े हो जाएंगे, जिसमें कहीं से भी वो लोग इधर से आवें तो हममें से किसी न किसी की नजर में जरूर पड़ेंगे।"

वो दौड़ा, उसके पीछे कुछ लड़के और दौड़े और तमाशाइयों की भीड़ उनके साथ ही साथ इधर आने लगी।

नाव खलार में बह रही थी। यह खलार अब से पांच-छह बरस पहले एक नवाब साहब के द्वारा खजाने की खुदाई के कारण बहुत ही प्रसिद्धि पा चुका था। यहां नवाब आसफुद्दौला के बनवाये हुए महलों के खंडहर अभी भी जहां-तहां ढूह दीवार बनाकर खड़े हैं। मील डेढ़ मील के घेरे में यह खंडहरों भरे खलार का इलाका फैला हुआ है। जहां ऐशगाहें थीं, वहां अब हल चलता है—और इस समय तो नाव चल रही है। हरदोई मार्ग वाली सड़क नाव की सतह से अब भी काफी ऊंचे तक दिखलाई देती थी। वैसे नाव वाले का मोटा लम्बा बांस अब करीब-करीब डूबकर ही धरती की थाह पाता था। गाढ़ा, मटमैला तैरते हुए झागों और कूड़े-कतवार से भरा हुआ अपेक्षाकृत शान्त जल देखकर मन में एक अजब मनहूसियत और मौत के रेगिस्तान का सा भास मन में होता था। दक्षिणी-पश्चिमी कोने से पानी अनन्त असीम तक फैला हुआ दिखलाई देता था। बस, डूबे हुए पेड़ों की फुनगियां, नजर के सामने पड़ने वाले एक-आध घरों की ऊपरी मंजिल ही नजर आती थी। अन्तरिक्ष तक फैला हुआ भयावना सन्नाटा? पानी के नाम से, दर्शन मात्र से जागने वाला मौत का विवश सन्नाटा। बीच धारा की गर्जन यहां से दूर थी।

नाववाला बोला : "नाले का मोहाना देखो कित्ता सकरा हुइ गया है भैया! दूर से ऐसा लगता है कि सिर ऊपर उठाय के बैठना भी मुश्किल हो जायगा हमारा।"

"आओ चलो तो सही यार। जरा पास से चलकर गौर करें तभी तो कुछ अन्दाज बैठेगा।"

नाववाला जानकारी भरी, फीकी हंसी मुख पर लाकर बोला : "पास जाने के मतलब है बाबू, कि नाव को फिर नाले के अन्दर जाना ही होगा, वहां करण्ट है।"

रमेश और उसके मित्र अब सतर्क होकर सोचने लगे। रमेश बोला : "यार मोहना, हम लोग बजरंगबली की जय बोल के चले हैं। उनकी बेइज्जती होगी, जो खाली हाथ लौटेंगे तो। कहो तो नाव को फिर इधर ही कुतुबखाने और धरमशाला के बीच से किनारे पर लाके उसे किसी तरह उठा के उस पार ले चलें। अरे, ठेला न सही, मगर भीड़ में सैकड़ों का मजमा तो है। पच्चीस-पचास हाथ लग जाएंगे तो नाव फूल की तरह उठकर मिर्जामण्डी वाले किनारे पर पहुंच जाएगी।" नाव वाले की आंखों में चमक आई, बोला : "नई भैया, ऐसी भी क्या बात है, अरे जब बजरंगबली का नाम लिया है औ' सच्चे गुरु से खेना सीखा है तो फिर ये मेरी नाव ही आदमियों को उठा-उठा के लावैगी। आदमी इसे क्या उठावेंगे।" नाव पर बैठे सभी वाहवाही में एक साथ चहक उठे। नाववाला नाले के मोहाने से लगभग आधे फर्लांग दूर से बीचों-बीच पहुंचकर धारा की थाह लेने लगा। बीच में पहुंचकर बोला : "करण्ट है बाबू यहां। पानी तो मुहानों के खिंचाव में है उधर के खंडहरों की दीवारें पानी को बहुत हिला-डुलाकर आगे फेंक रही हैं और फिर आगे नाले वाले मोहाने का खिचाव पड़ जाता है। बोलो भई, आपमें से कौन-कौन जवां मर्द हमारे साथ चलेगा ?"

"हम-हम-हम'''—सभी की आवाज एक साथ गूंजी। नाववाले ने फिर कहा : "समझ लो भैयो। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि करीब-करीब लेट के चलना होगा। कूड़ा-करवट घुटन और भगवान न करे, एक्सीडेण्ट तक हो सकता हैगा, ये हम पहलेई बताए देते हैं। अरे, डेढ़-दो बांस की थाह तो ऐसे ही नाले में है।"

सुनकर एक बार सबके दिल सहम गए। रमेश ने तुरन्त ही अपने साथियों से कहा। "हां भइ, इसमें तकल्लुफ न करना और किसी प्रकार के शर्म-संकोच की जरूरत भी नई है। बोलो, जिसको कहो उसको बस के अड्डे पर उतारकर ही हम लोग आगे बढ़ेंगे।

नाववाला बोला : "हाँ, जाएंगे उधर से ही, नाले की दीवाल से लगे-लगे धारा के साथ अन्दर चलेंगे।"

हर्रो बोला : "भैया, तुम हमें उतारते जाना।"

जयकिशोर हंसा : "साले लच्छू होता तो इस बखत तुम्हारे जूते पड़ गए होते। कांचू कहीं का।"

रमेश हंसकर बोला : "अरे, यार जाने दो, उतार दो बेचारे को।"

छैलू बोला : "ये हरगिज हो ही नहीं सकता। इससे लच्छू की आत्मा को सुनकर बड़ा क्लेश होगा और फिर यकीन मानना कि वो इसे सारस लेक में डुबाकर ही प्रायश्चित कराएगा।"

"अरे, सारस लेक से तो अच्छा है कि इसी गोमती के नाले में साले को डुबो दिया जाय। कम-से-कम बहकर इसकी लाश कभी न कभी तो गुल्लाले केमसान में पहुंच ही जाएगी।"

नाववाला रमेश की ओर देखने लगा। रमेश ने सबकी मनेच्छा देखकर हर्रो

को सूली पर चढ़ा देने का निश्चय कर लिया, हर्रो की ओर देखकर बोला : "हर-गिज नहीं पहुंचेगी, ये बेशरम इत्ते पानी में कभी डूब ही नहीं सकता, जब डूबेगा तब चुल्लू भर पानी में।"

नाव चूंकि मोड़ लेने के लिए सड़क की ओर ही बढ़ रही थी, इसलिए हर्रो भरोसे के साथ मित्रों के मजाक पर प्रायः मौन हो रहा है। दोनों का ध्यान भी अब मजाक से हटकर अपने सामने, ऊपर सड़क के किनारे खड़े संघ के लड़कों की अनुशासनबद्ध सिपाहियों जैसी पाँत और अपनी ओर देख रही भीड़ की ओर चला गया था।

ऊपर का दृश्य देखकर रमेश ने नाववाले से पूछा : "कहो अब क्या इरादा है ?"

"इरादा अब ठीक ही हो चुका भैया। नाव को उठाने, ले जाने में बड़ी झंझट पड़ेगी, टेम भी जादा लगेगा। और ऐसे तो करण्ट में तीर की तरह एक मिनट में दनदनाते भये उस पार जाएंगे। यही है कि जरा सिर झुका-दबा के या लेट के चलना होएगा।"

"ठीक है। ठीक है। यही राय पक्की है।" जयकिशोर, गोडबोले, छैलू—एक हर्रो को छोड़कर प्रायः सभी एक ही जोश में अपनी सहमति प्रकट करने लगे। हर्रो को यह देखकर एक बार तो मानो सांप ही सूंघ गया, फिर अपने अंतर की सारी सख्ती और रौब को कसकर, भय से सनसनाते स्वर में मोहन नाववाले से बोला : "ए जी, नाव किनारे पर लगाओ। मैं नहीं जाऊंगा उस बदबू में।"

गोडेबोले बोला : तुम्हारे लिए नाव अब लौटकर नहीं जा सकती।"

गोडबोले के कसरती बदन पर सहसा ध्यान देते हुए मोहन ने कहा : "भैया तुम आगे हमारे पास आ जाओ। इधर से में बांस संभालूंगा, उधर से तुम संभा-लना। बांस को नाले को दीवाल से संटाए-संटाए थामे रहना। दिवाल पर उसका जोर भर मत देना, नहीं तो नाव को 'ब्रिक' लग जाएगा। वो तो जरूरत समझ जब हम बतावें तभी करना। समझे।"

"और ये रस्सियां—"

"अरे, अब सागर लांघनेवाले का सुमरिन करौ भैया, वही बेड़ा पार लगा-एंगे। आओ पहलवान बाबू, ड्यूटी-संभालो, और डरपोक बाबू, तुम बीच में बैठो।" मोहन ने गोडबोले और हर्रो के नए नामकरण से नए होते जा रहे अनु-भव की कल्पना भरी तीव्र सनसनाहट रस का हलका बहाव दे दिया। सड़क के नीचे खलार में किनारे-किनारे नाव बढ़ती रही, गोडबोले आगे आकर बैठ गया। हर्रो गालियां बकता हुआ रुआंसा मुंह बनाकर मित्रों की धमकियों बंधकर बीच में खिसक आया। पीछे वाले लड़के भी सावधान हो गए। सड़क के ऊपर—नाव से करीब चार फुट ऊंचे पर खड़ी हुई भीड़ नाव के साथ ही क्रमशः आगे बढ़ रही थी। कम्मी आ चुका था। रमेश ने उसे आदेश दिया : "अब सड़क के उस पार वाले किनारे पर सब लोग पहुंच जाओ। असली काम तो वहीं से शुरू होगा।"

नाव नाले के पहले मुहाने की तरफ बढ़ने लगी। ऊपर से मित्रों और भीड़ की शुभकामनाए बरसने लगीं। नीचे से उत्तर में धन्यवाद के स्वर और हाथ लह-राने लगे। नाव मुहाने पर आई। नाववाले ने फिर 'गोमा (गोमती) मैया' की, 'समुद्र लांघनेवाले' की और कालीजी की जय-जयकारें गुहराईं, ऊपर नीचे के समर्थन शोर के साथ बढ़ते-बढ़ते बंधी जगह से घूमते हुए पानी का हरहराता नाद

नाव-यात्रियों को भावना के लोक से प्रत्याशित यथार्थ के क्षण में सहसा झटका देकर घसीटता हुआ ले चला।

नाव तेजी से बढ़ी। तीन-तीन मुहानों में बंटकर भी पानी में बला की गति थी। अंधेरा, घुटन और कुछ-कुछ सड़ांध भी, जो आगे बढ़ने के साथ बढ़ती गई। पहला पाला मकड़ी के घने जालों से पड़ा। ऊपर की गोल दीवार की कुछ उखड़ी हुई ईंटों वाली दो जगहों मे चिमगादड़ों की महाघुटन वाली बदबूदार चूं-चूं भरी बस्तियां मिलीं सांस लेना दूभर हो गया। उजाले के घेरे दोनों ओर बराबर दूरी पर जिस समय दिखलाई पड़ने लगे, उस समय से तो बदबू का अन्त ही न रह गया था। रमेश का ध्यान गया कि आने वाले मुहाने की तरफ रोशनी का घेर कुछ कम है, पानी उधर कुछ अधिक ऊंचा उठा हुआ लगता है। वैसे नाव को लगा कि कुछ लौटती तरंगें पीछे ढकेलने के अपने प्रयत्नों से उसे डगमगाहट दे रही हैं। बदबू इतनी कि दम घुटा जाता है—सड़ी लाशों और कूड़े की तेज बदबू। टूट-टूटकर सिर-मुंह टपकते महा मकड़-जाल के कारण सबके सिर झुके थे, नाकों पर हथेलियां अड़ाए, सांस लेने की मजबूरी होने पर ही थोड़ी-थोड़ी हवा अन्दर खींचते और फिर भयंकर दुर्गन्ध के कारण अधिक उद्वेलित होकर सभी जने छोटी-छोटी सिसकारियों जैसी सांसें भरते चल रहे थे।

"बांस···फू···दीवाल—दीवाल···सूँऽ—टेक लो, जोर" बदबू से लड़ते हुए नाव वाले ने गोडबोले को आदेश दिया। 'से' कहते-कहते—भभके को बाहर करते हुए 'खः' का सा स्वर निकाला और फिर फुर्ती से अपना बांस संभाला। धारा की बिजली के साथ मनुष्य के श्रम-बल की बिजली का जोर लगा और नाव दौड़ पड़ी। मुहाने के निकट आने पर नाववाले का बांस पानी के अन्दर किसी पोल में सहसा धँसकर अटक गया, लेकिन गोडबोले के श्रम की गति पाकर नाव आधी मुहाने के बाहर निकल आई। नाव के दिखलाई पड़ते ही किनारे की भीड़ ने हर्ष-नाद किया। नाव वाले के कर्म जोश में दूना उबाल आ गया। बांस को अन्दर से खींचकर मुहाने की तरफ़ बाहरी दीवार से टिकाते हुए उसने जोर लगाया और नाव सर्र से बाहर निकल कर दीवाल की ओर मुड़ गई। सबने सिर तानकर मुँह फाड़-फाड़कर जी भरकर सांसें लीं, जान में जान आई। धारा से बाहर निकलकर किनारे की ओर बढ़ाते हुए मोहना बोला: "जान पड़ता है कि इधर वाल दुइ बड़ी-बड़ी जानवरों की लहासों में कूड़ा अटक के सड़ रहा हैगा। राम जाने, गाय-गधा होयं। तभी तौ पानी इधर ऊंचा हुइ गया और बदबू भी उसी से भई। बाकी वाह भगवान, वाह! खूब आए! अब बोलौ—क्या करना है?"

"भई पहले तौ एक-एक प्याला चाप पी जाएगी" गोडबोले बांस नाव पर रखकर दोनों हाथों से अपने सिर और मुंह पर लगे जाले छुड़ाते हुए बोला।

"ग्रेट आइडिया।"

किनारे पर आते ही सब लोग भीड़ से घिर गए, शेखी भरी बातचीत में लगे। रमेश चिल्लाकर बोला: "सुन लो भाइयो, दो बजकर सत्ताइस मिनट हैं। दो बजकर सैंतीस मिनट पर हम लोग अपने काम पर लग जावेंगे।"

कम्मी बोला: "यही तो मुसीबत है हमारे राष्ट्र में, चिन्दी नापेंगे और थान नापने की डींग हांकेंगे, अच्छा भाई रमेश, अब बोलो कि क्या होगा?"

"पहली बात तो हम तुमसे यही कह दें कि हमारे इस नाववाले दोस्त मोहन को कम-से-कम पचास रुपये आज घर लौटने तक मिलने ही चाहिए। इन्हीं के

हौसले से हम लोग आज का सबसे मेज़र वर्क इस समय पूरा कर सके हैं।"

कम्मी नाववाले की ओर देखकर बोला : "मोहन ये रमेश भी क्या कहेंगे कि किसी रईस से पाला पड़ा था। (जेब के अन्दर से लिफाफा और लिफाफे से नोट निकालते हुए) मैंने विदिन ट्वेंटी फाइव मिनिट्स, अस्सी रुपये पन्द्रह आने—"

"ठीक है यार, हिसाब बाद में समझाना, इन सबकी चाय के पैसे भी इसी में से दे दो।"

चाय पीने के बाद किनारे पर तैनात रहने वाले स्वयं-सेवकों की ड्यूटी बतलाकर 'हाई कमांड' के लोग नाव पर चले। नाले के किनारे की बत्तियां एक-एक मंज़िल डूबी हुई, छोटे एकमंज़िले घर तो प्रायः पूरे के पूरे पानी में डूबे हुए। उनके आस-पास के घरों की छतों, छज्जों को देखकर ऐसा लगता था कि मानो ये घर न होकर नदी किनारे के घटवालों के मज़मे जुड़े तखत हों। गली का लैंप-पोस्ट नाव के से टकराकर ही लोगों के अन्दाज़ में आया। पानी एक चौड़ी नदी के पाट-सा नज़र आ रहा था। घरों में खड़े लोगों की दृष्टि नाव पर पड़ते ही शोर मच गया। पिछले अड़तालीस घंटों में लोगों के लिए यही एक नई जीवन-दायिनी बात हुई थी, वरना बढ़ते हुए पानी के रूप में मृत्यु के बढ़ते हुए चरण निहारने के सिवा और कुछ भी नयापन उन्हें देखने को नहीं मिला था। आसमान पर ऊंचे उड़ते हवाई जहाज़ों और नील चिड़ियों के सिवा इस ओर कोई और जीवित वस्तु नहीं आ-जा रही थी। पानी से घिरा जीवन अपने-आप में हलचल भरा होने पर भी एक जगह पूरी तौर पर स्तब्ध हो रहा था।

"ए रानी, तुमरे घर चौका-पानी हुइ चुका ?"—"अरे चाची कहां हमारा पानीयैं चुक गवा है। बम्बा हमारा नीचे के खन में डूबा भया पड़ा है। औ करम की मार ऐसी भई कि एक लोहे की बालटी पानी भरन खातिर हम बम्बा खोल के टांग आए रहे कि आउन-जाउन में आंगन में भरा चहला नांघै का पड़त है। दुइ-चार बालटी एकै बार में भरके रख लेंगे, दिन भर की दौड़ बचेगी। सोई निगोड़ा पानी देखत-देखत में ऐसा चढ़ा कि जैसे परलै चढ़ आई होय। घर का दरवज्जै डूब गया। बम्बा-बालटी सब अलोप हुइ गईं। क्या बतावैं, टट्टी भी हमारी डूबी पड़ी भयी हैगी। क्या बतावैं, करम के भोग हैं।"

घिरे हुए महल्ले में अन्दर ही अन्दर युवक और किशोर वर्ग में बड़ी चहल-पहल थी। लोग चूंकि अब गली-सड़कों में मानमानी आवा-जाही नहीं कर सकते थे, इसलिए जहां तक छतों-छतों जा सकते थे, वहां तक एक-दूसरे के यहां हाल-चाल पूछने के लिए दिन भर आते-जाते ही रहते थे। बीच-बीच में पड़नेवाली सँकरी गलियों के तय करने के लिए मुंडेरों पर तख्ते रखकर पुल बनाए गए थे। सबसे बड़ी उलझन पीने के पानी की कमी और शौचालयों के डूब जाने के कारण हो रही थी। सबेरा होते ही सबसे बड़ी चिन्ता यही पड़ती थी। और इस बस्ती में बहुत से ऐसे लोग थे, जो अपने देह-धर्म पालन की इस असुविधा के कारण न तो इतने दिनों निबटे ही और न भरपेट खा ही सके। बहुत से बूढ़े, विशेषकर स्त्रियां तो आप नहाने और अपने ठाकुर को नहलाने में विवश होने के कारण दो दिनों से भूली ही थीं। बहुतों के कलेजे भय और चिन्ता से मुंह को आ रहे थे। लेकिन तब भी इन वेबस बस्तियों में बड़ी चुहल थी। आपसी छेड़-छाड़, दिन भर की छतों की आवा-जाही, बीच-बीच में और कहीं-कहीं हो जानेवाले रोमांसों के मौके भी मिलते। बड़े बच्चों में छतें फांदने का उत्साह उनके अभिभावकों के लिए अनवरत

एक चिन्ता और खीझ का कारण बन गया था। दूसरी चिन्ता चोरों की ओर से थी। पहली ही रात में कुछ घरों में कुछ चोर तैरकर घुस आए। उनकी पकड़ा-धकड़ी में सारी रात गुज़र गई। छतों-छतों टार्चों और मसालों के सितारे जगमगाते रहे। तीसरी चिन्ता यह हुई थी कि कल रात नाले के सामने बसे हुए एक के पीछेवाला पुराना खस्ता मकान एकाएक धड़धड़ाकर बैठा और अपने आगेवाले मकान को भी ले डूबा। पानी में मलबे के गिरने के धमाकों से ऐसी गड़गड़ाहट हुई कि आस-पास के मकान हिल उठे; सकता-सा छा गया। अड़तालीस घंटे इसी तरह अपने अन्दर सरगर्मियां रखते हुए जीवित रहने के बाद यह नाव इस तरह लोगों के सामने आई, गोया कठिन परीक्षा के बाद पास होने का इनाम आया हो।

अपना घर छोड़ने के लिए कम लोग ही राज़ी हुए। जिनके घर नाले में पूरी तरह डूबे हुए थे, या जिन्हें अपने घरों के धराशाई हो जाने का भय था, वे ही लोग आए, बाकी लोग अपना माल-असबाब छोड़कर आने को राज़ी न हुए। वे यही चाहते थे कि स्वयंसेवक लोग उन्हें पीने का पानी, बच्ची के लिए दूध और हो सके तो ताज़ी साग-सब्ज़ियां ला-लाकर पहुंचाते रहें: पीने के पानी की मांग सबसे अधिक थी। उसके बिना कई घरों के बच्चे बिलबिला रहे थे। ऐसे विवश परिवार भी अपने घर छोड़ने को राज़ी न थे।

रमेश और उसके मित्रों के लिए यह सचमुच बड़ी ही परेशानी की बात थी। पानी का गंगाल नाव पर लादकर डूबी हुई गलियों में चक्कर काटते थे और ऊपर से डोरियों, धोतियों और साड़ियों से बांधकर बाल्टियां लटकाई जाती थीं। ये लोग एक बाल्टी पानी से अधिक किसी को न दे पाते थे और इसी कारण जगह-जगह, विशेष रूप से स्त्रियों के द्वारा इन्हें यश के बजाय अपयश ही अधिक मिलता था। इससे कम्मी और गोडबोले खासतौर पर गर्मा उठते थे। रमेश समझाता कि बरातियों के समान ही संकटग्रस्त शरणार्थियों की सेवा करना भी अंग्रेजी मुहावरे के अनुसार 'धन्यवाद शून्य' कार्य होता है।

पूरे अठारह घंटों तक अनवरत रूप से काम करते रहने के बाद रमेश जब अपने साथियों के द्वारा जबर्दस्ती आराम करने के लिए घर भेजा गया, तब शरीर से थका हुआ होने पर भी वह ताज़ा था। उसका दिल और दिमाग अब भी पानी भरी गलियों में घिरे हुए लोगों के अन्दर ही रमा हुआ—उनके बिम्बों और गूंजों से भरा हुआ था। उसे बडा संतोष था कि वह और उसके साथी असम्भव को सम्भव बना सके।···साथी? हां, अपने साथियों का सहयोग उसके मन में अपना मूल्य रखता तो जरूर था, पर स्वयं अपना मूल्य और महत्त्व वह सबसे अधिक आंक रहा था। मन-ही-मन वह अपनी लीडरी के नशे से मखमूर था। और इस नशे में रानी का ख्याल चार चांद लगा गया। शरीर की थकन एक दम से जाने कहां जादू-सी फुर्र हो गई। और उस ताजगी में उसके पांव खन्ना साहब के घर की ओर तेज़ी से बढ़ चले। रानी इस समय वहीं मिल सकती थी।

खन्ना साहब अपनी कार से उतरकर घर के द्वारे की ओर बढ़ते हुए कदम बढ़ा रहे थे। राह चलते दो लोगों के हाथ जोड़ने का जवाब शान से एक हाथ उठाकर दिया और तब तक तीसरा हाथ जोड़नेवाला रमेश भी उनके दरवाज़े के सामने

ही पहुंच चुका था। उसे देखते ही खन्ना साहब का बुजुर्ग चेहरा खिल उठा। डग लम्बा और तेज़ भर, अपनी पूरी बांह उसके कन्धों पर डालकर स्नेह से बोले : "हलो गौड़, मैंने सुना है, तुमने नालेवाली बस्ती के लोगों को बहुत रिलीफ पहुंचाई है।"

रमेश को ऐसा लगा, मानो उसे बहुत बड़ा सम्मान-लाभ हो गया। खन्ना साहब उसके देवता हैं। ऐसे सम्मान की खुशी में बचपन के संस्कारवश उसका जी चाहा कि झुककर खन्ना साहब के चरण-स्पर्श कर ले, लेकिन फिर फौरन ही संभलकर उसके अपने संस्कार की दकियानूसियत को तिलांजलि भी दे डाली। खन्ना साहब इस पैर छूने की आदत को बेहद बुरा समझते हैं—अभी चिढ़ जाते।

घर के ऊपर वाले कमरे में पहुंचते ही रमेश का दोबारा जोरदार स्वागत हुआ। बहनजी बहुत वात्सल्य भरे हौसले में आ गईं। उसे देखते ही उन्होंने जिस तरह उठकर पुरानी हिन्दुस्तानी औरतों की तरह दोनों हाथों से उसकी बलैयां लेते हुए उसे दोनों बांहों में भरकर अपनी छाती से लिपटाया और पीठ पर अपने दोनों हाथ फेरते हुए जिस तरह असीसा, उससे रमेश को मानो मां ही मिल गई, फौरन ही अपनी मां का चेहरा ध्यान में झलक गया। वह अपने जीवन में मां के प्यार को लेकर तनिक भी दरिद्री नहीं, पर इस पाए हुए मातृत्व को वह अपनी चिरपरिचित अनुभूति से अलग भी नहीं कर सकता—जो अम्मां में है, वही हूबहू बहन जी में इस समय मिल गया। समय के ज़र्रे-दर-ज़र्रे जितनी तेज़ी से गुजरे, उतनी ही तेज़ी से मन के इतने पर्दे भी हिल गए। बिम्ब और गूंज के आकार-प्रकार जहां निराकार, विशुद्ध अनुभूति बनकर तन-मन की चेतना में छा जाते हैं, वहां रमेश को अपनी मां और बहन जी इस समय एक ही नज़र आ गए। और उसका दकियानूसी संस्कार भावावेश में खन्ना साहब सहित सारा नयापन भूलकर बहनजी के चरणों में अपना सिर टिका बैठा। फिर उसे आश्चर्य हुआ कि खन्ना साहब ने इस समय उसे डांटा-फटकारा नहीं। अलबत्ता वो मुड़कर अपने निजी कमरे में चले गए।

खन्ना दम्पति अपने आरम्भ के विवाहित जीवन में एक बार जुड़वां सन्तानों के माता-पिता बने थे। दोनों ही सन्तानें आगे-पीछे बचपन ही में परलोक सिधारीं और फिर कोई सन्तान ही न हुई। दो-एक बार खन्ना साहब ने योरप के देशों में भी अपनी पत्नी का इलाज करवा डाला, पर कोख फिर न भरी, सो न भरी। पति-पत्नी दोनों ही को एक जगह इस बात का गम है। खन्ना साहब ने अपनी आत्मतुष्टि के लिए अपने यहां नवयुवकों का एक अध्ययन-चक्र चला रखा है, और बहनजी बच्चों, लड़कियों, औरतों के शिक्षा, सिलाई और उद्योग केन्द्र चलाकर अपने सारे समय को एक विराट वात्सल्य में निरन्तर लय करती रहती हैं। यह मातृत्व जो इस समय सहसा रमेश के सामने प्रकट हुआ, देखकर उसे लगा कि यह महाभाव अब बहनजी के जीवन का सहज भाव बन गया है। रमेश ने आज पहली बार बहनजी को मानो पहचाना। वह आंखों में अचरज भरी, चमकती नेह-भक्ति से उनकी ओर गद्‌गद भाव से देखने लगा। बहनजी चलकर सामनेवाले तखत पर बैठते हुए बोलीं : "मुझे दिन भर में ही तुम लोगों के सारे करिश्मे की खबर मिल चुकी थी। ये हमारा बिन्दा (नौकर) जो है ना, वो तुम्हारे शहर के सारे प्रेम रिपोर्टरों से अधिक ताजी खबरें लाता है। पक्का नारद मुनि है। सुबह दस बजे तरकारी लाने के वास्ते इसे भेजा था और वो भी कई काले कोसों से नहीं, सामने-

वाले सिन्धी की दूकान से, सो तब के गए दो बजे घर में घुसे हज़रत, और घुसते ही यानी कि मैं नाराज़ भी न हो पाई कि ये तुम्हारी और तुम्हारे संघ की तारीफ़ें कर चले—कैसे तुम लोग नाव लाए और फिर तुम्हारे डाइरेक्शन में सबने रिलीफ़ का काम आर्गनाइज़ किया और कैसे ये डेढ़ घंटे तक तुम्हारे कैंप में खड़े तुम्हारे आने की बाट तक ताकते रहे और फिर भी जब तुम न आए, तो ये कैसे मन मार-कर घर लौटे—ये सब बातें हमारे बिन्दा रिपोर्टर ने पूरे विस्तार के साथ इस तरह से सुनाईं कि मैं उसे डांटना ही भूल गई। फिर फौरन ही फोन पर तुम्हारे 'पापाजी' को ये हाल मैंने सुनाया"—फिर कमरे की ओर मुंह उठाकर ऊंचे स्वर में 'उनसे' पूछा : "आपने मेरी न्यूज़ बनाकर दे दी ?"

अन्दर से खन्ना साहब का जवाब मिला : "ठहरो आता हूं।" गाउन और पाजामा पहनकर अपने घरेलू लिबास में पर्दा हटाकर मुंह में पाइप दबाए और हाथ में दियासलाई और पाउच लिए हुए बाहर निकले और बड़प्पन की सधी हुई मुद्रा में तनकर खड़े होते हुए एक बार गौर से रमेश को देखा। रमेश अदब से सजग हो गया। मुंह से पाइप निकालकर मुस्कराते हुए खन्ना साहब बोले : "मैं अभी तुम्हारे स्टेटमेंट को टेप पर रिकार्ड करूंगा गौड़, और इस बात का ध्यान रखना, तुम्हें अपनी बहनजी के बिन्दा रिपोर्टर का रेकार्ड ब्रेक करना है।" रमेश हंस पड़ा।

तभी रानी ने कमरे में प्रवेश किया। रमेश की आंखों में, चेहरे पर नई चमक चढ़ आई। वह उसे छिपाने के लिए प्रयत्न भी करने लगा। रानी की ओर ताकने-वाले अपने विवश 'चोर' को ईमानदार साबित करने के लिए और कुछ में सूझा तो यही पूछ बैठा : "आज तुम देर से आईं।"

रानी से नज़र घुमाकर दीवाल घड़ी की ओर देखा और मुस्कुराकर बोली : "देख लीजिए अम्मा जी, ग्यारह मिनट पहले आयी हूं ना ?" रानी के जवाब ने रमेश को किंचित लज्जा के साथ-साथ अपार सुख दिया।

अपने काम से तरुण छात्रसंघ के लड़कों ने बड़ा नाम कमाया। लखनऊ विश्व-विद्यालय के कई छात्र और प्राध्यापक भी बड़ा काम कर रहे थे। ऐसे महान् जन-संकट के समय बहुतों के दिल में कर्त्तव्य और इन्सानियत की दिव्य ज्योति जगमगा उठी थी। इस ज्योति के टार्च समान गोल दायरे के इर्द-गिर्द संकीर्ण स्वार्थों का अंधेरा उस समय भी ज्यों का त्यों मौजूद रहा। नगर में 'यारों' की टोलियां अपनी-अपनी झोलियां फैलाए बाढ़-पीडितों के नाम पर जनसाधारण को जेब-पीड़ित बना रही थीं। उन्हें पैसे दीजिए तो अधिक की मांग पर अड़ेंगे और न दीजिए तो दस कड़वी-पैनी बातें सुनाकर आपकी मनुष्यता को लताड़ेंगे। बहुत सी टोलियों ने कई दिनों तक दिन भर की इस 'मनोरंजक' कमाई से अपना सिनेमा-शराब, जुए या चाट का खर्च निकाला और शाम को आपस में जनता को मूर्ख बनाने की कला पर हंसी-ठट्ठे लगाए और ऐश किए।

कुछ रईस टाइप लोगों ने देहाती बाढ़-पीड़ितों को कम्बल और कपड़े देने की उदारता इस प्रकार प्रदर्शित की कि एक डिप्टी मन्त्री, सभा-सचिव या न मिलने पर कोई भी बड़कन्नू-छुटकन्नू सफ़ेद-टोपिये नेता को 'उद्घाटन' के लिए पकड़ लाए। उनसे कम्बलों की गांठें खुलवाईं। फिर उनसे अपनी समाज-सेवा की बड़ाई

में देहातियों को लेक्चर पिलवाया और उन्हें 'जोरदार' चाय पिलाई। इस तरह अगले दिन अखबारों में अपनी कीर्ति के लिए स्थान सुरक्षित करके, देहाती-देहातिनों को थोड़ा-सा सामान बांट दिया। बाक़ी लोगों को अगले इतवार को फलाने नेताजी के कर कमलों द्वारा बंटेगा'—कहकर धता बतलाई। जो देहातिनें नाक-नक्शे में सलोनी लगीं, उनको 'अभी ठहरो' कहकर अलग बिठलाया। उनमें जो अपने मर्दों के साथ आई थीं, उन्हें निकम्मा समझकर थोड़ा-बहुत देकर टरकाया। बाकी 'माल' को यारों ने फुसलाया-दबाया, ऐश मनाया और फिर उदारता पूर्वक एक के बजाय दो कम्बल या अधिक कपड़े देकर उन पर अपना एहसान भी जमा दिया। बाढ़ की बहती गंगा में अपने-अपने उजले या मैले हाथ धो रहे थे।

लोहेवाले पुल पर फंसे हुए करीब दो सौ लोगों को बचाने के लिए बड़े प्रयत्न हो रहे थे, लेकिन उस पानी का बहाव इतना तेज था कि कोई नाव वहां तक पहुंच ही न पाती थी। फौजी सैनिकों तक ने अपने घुटने टेक दिए।

बटलर बाँध के टूटकर बह जाने के बाद तो शहर में प्रलय का दृश्य सामने आ गया। मिसेज खन्ना दिन में एक-दो बजे के लगभग बटलर रोड पर स्थित अपने एक रिश्तेदार से फोन पर बातें कर रही थीं। एकाएक उनका बेहद घबराया हुआ स्वर सुनाई दिया : "अरे-अरे, सड़क पर पानी की दीवाल दौड़ी हुई चली आ रही है। अरे, यहाँ कुछ नहीं बचेगा। फोन डूबेगा, घर डूबेगा। रीता ऊपर भागो, भागो।" बहनजी के कानों में अपने ममेरे भाई का यह घबराहट भरा वाक्य पड़ा। दूसरे सिरे का टेलीफोन मेज पर गिरा। उसके गिरने की आवाज इनके कानों में आई। अपने घर से लगभग चार मील दूर की आवाजें, अपने ममेरे भाई के घर के आस-पास की बस्ती से सहसा उठने वाली भयग्रस्त चीत्कारें, गोहारें बहनजी के कानों को दुःख भरा सपना दिखाने लगीं। उन्होंने अपने कानों से अपने भाई के घर में घुसते हुए पानी का हर-हर नाद सुना था और फिर दूसरे सिरे की आवाजें एकाएक शान्त भी हो गयी थीं। बहनजी उस समय से बिथा-बावरी हो उठी थीं।

बाढ़ ने मानो इस बार केवल दीन-हीन-किसानों और गरीब-गुरबों ही को नहीं, बल्कि बड़े-बड़े सफेदपोश कोठी-बँगलेधारी सत्ताधीशों, धनाधीशों को भी अपनी लपेट में लेकर साम्यवाद का प्रचार करने की ठानी थी। एक दिन सुबह उठने पर कोठी-बंगलेवालों ने देखा कि उनके कम्पाउण्ड के फूल पानी में नहा रहे थे और फिर दिन चढ़ते वे डूब गए। दूसरे दिन तक उनके बंगलों की खिड़कियों, दीवारों की सन्धों और मोरियों से पानी उनके बंगलों में प्रवेश कर गया। कोठियों-कोठियों हाय-गोहार मची हुई थी। बड़े-बड़े सोफा-दीवान, अच्छी-अच्छी मूर्तियाँ तस्वीरें, सजावट का सामान, भारी-भारी रेफ्रीजेरेटर, मोटरकारें डूबीं। आखिर ऊपर की मंजिलों तक क्या-क्या बचाकर ले जाते? जो बंगले नदी की मूलधारा से केवल दो-तीन फर्लांग दूर थे, वहां तो पानी ताण्डव कर रहा था। राय बिहारीलाल रोड की एक कोठी से खन्ना साहब के परिचित एक मुसलमान सज्जन अपनी कोठी की दूसरी मंजिल से उन्हें फोन करते हुए पहली मंजिल में भरे हुए पानी का हाल बतला रहे थे : "ये खटाक-खटाक की आवाज़ें शायद आपके कानों में भी पड़ रही होंगी—हमारे ड्राइंग रूम की संगमर्मर वाली गोलमेज तैरती हुई बाहर निकल आई और इस वक्त रेफ्रिजेरेटर से टक्करें ले रही है—एऽऽ ये लीजिए, फिर चली। पानी में पत्थर का तैरना मैं अपनी आंखों से देख रहा हूं। कमरों में घूमता हुआ पानी खाली जगह में ऐसी गूंज भर रहा है कि दहशत समाती है।

सामानों की टकराहट,—ये, ये सुन रहे हैं ना आप खन्ना साहब—(तड़-तड़)! —झड़-झड़, झन-झन! ठड़ाक-तड़ाक!)—जी, ये मेरे किचन और स्टोर के सामानों में टकराहटें हो रही हैं। अभी ही नया कुकिंग रेंज लिया था। जी हां, खाना तो खैर हमें बराबर ही मिल रहा है। गैस के चूल्हे पिछली बार हमारी बेगम साहबा दिल्ली से ले आई थीं, वही इस वक्त काम आ रहे हैं। पानी भी है, ऊपर वाला नल चल रहा है। खाने-पीने की कोई तकलीफ नहीं फिलहाल। जी हां, टेलीफोन के इस ऊपर वाले प्लग की असली कीमत आजकल ही मालूम हो रही है। इसी से तो जरा मन को तसल्ली है। आप लोगों से बातें कर लेते हैं, वरना इन छत्तीस घंटों में हमारा जीना मुहाल हो जाता। पानी के थपेड़ों से हमारी कोठी मुसलसल ज़लज़लागाह बनी हुई है। कभी-कभी तो लगता है कि अब गिरी, अब गिरी।…"

खन्ना साहब, बहनजी और सभी फोनवाले लोग बाढ़ में घिरी हुई फोनदार कोठियों से निरन्तर अपना सम्पर्क बनाए हुए थे। फोन के माध्यम से बहुत से लोग बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों से अपना या दूसरों का बचाव भी किसी हद तक कर सके। आदमी सुन्न होकर जी रहा था।

लगभग आधा नगर जलमग्न था। टेलीफोन एक्सचेंज और कचहरी की सड़क तक पानी लहरें मार रहा था। हजरतगंज में नावें चल रही थीं। शाहनजफ, फैजाबाद रोड, महानगर, बनारसीबाग, राज्यपाल और मुख्यमन्त्री की कोठियों तक बाढ़ का पानी पसरा हुआ था। चिड़ियाघर के जानवर विवश होकर बहने की स्थिति में आ गए थे। एक हिरन बहते-बहते मुख्यमंत्री के बंगले तक पहुंच गया। न जाने कितने हिरनों और चीतलों को शिकारी लोग मारकर खा गये। शेर अपने कठघरे से बहकर बाहर चला आया और चिड़ियाघर के सब रखवालों की चिन्ता का कारण बन गया। उसे मारने की तदबीरें होने लगीं और अन्त में जनसुरक्षा के नाम पर बाढ़ग्रस्त सिंह मार डाला गया। अफ्रीका से लाये हुए कीमती बन्दर अपने कठघरों की ऊपर की छड़ों से लटके-लटके अपने कठघरों के चारों कोनों में चिचियाते हुए अनवरत डोल-डोलकर परेशान हो रहे थे। पानी उनसे केवल एक फुट ही नीचे रह गया था। बत्तखों, सारसों और जलमुर्गियों के लिए बहार के दिन आ गये थे। गैंडा मस्ती में अपने कठघरे के पानी में पानी के ही जोर से ऐसा तैर रहा था जैसे कि पानी में उसका वजन लिया जा रहा है। नदी में द्वीप-से एक-दो छोटे-छोटे-से ढूह खड़े थे, जिन पर चाहने पर वह लौट आता था। जार्पलिंग रोड के सूने बंगलों में छतों पर छूटे हुए कुत्तों और इधर-उधर छोटे घरों की छतों पर बकरियों, बछड़ों का करुण क्रन्दन सुनने वाले मनुष्यों के कलेजे हिला-हिला देता था।

अफवाहों ने और भी आफत ढा रक्खी थी। शहर में यही खबरें फैली थीं कि पानी अभी चढ़ रहा है। इन अफवाहों से लोगों के दिल डूबे जा रहे थे, खास तौर पर उनके, जो पुराने खस्ता मकानों में रहते थे। नालियां नदी की ओर बहने वाले मुख्य नालों में अपने पानी को न बढ़ा पाने के कारण क्रमशः चढ़ रही थीं। पानी नालों के द्वारा नदी से नगर में प्रवेश कर रहा था। और यही सबसे बड़ी चिन्ता थी। पुराने जानकार यह बतलाते हुए डर फैला रहे थे कि लखनऊ जमींदोज नालों और सुरंगों का शहर है। अगर पानी यों ही बढ़ता और भीतर-बाहर फैलता रहा तो शहर के किसी भी मकान की नींव सुरक्षित न रह पाएगी। बटलर बांध के

टूटने की खबर ने लोगों के हौसले पस्त कर दिए थे। इसी समय सहसा खबर उड़ी कि शारदा सागर के बांध को बचाने के लिए उसका पानी आज रात गोमती में छोड़ा जायगा और शहर तब डूबे बिना न रहेगा। इस अफवाह ने मन्त्रियों और अफसरों के प्रति जगह-जगह जन-क्रोध की प्रचण्ड भट्टियां सुलगा दीं। नगर के कुछ क्षेत्रों में तो यहाँ तक उत्तेजना फैल गई थी कि लोग मन्त्रियों और अफसरों के बंगले फूंकने पर आमादा होने लगे। दूध और सब्जियों के भाव बढ़ जाने से शिकायतें भी बेतहाशा बढ़ गई थीं।

जिस दिन कानपुर के प्रेमक्लब वाले साहसी युवकों और लखनऊ के मल्लाहों ने लोहे के पुल पर फंसी हुई भीड़ को बाहर निकाल लिया, उस दिन शहर एक मुंह होकर कानपुर के जवानों और अपने मल्लाहों की प्रशंसा कर उठा। जहां जाओ, जिससे सुनो, यही चर्चा थी। रमेश दिन में बहनजी के यहां पहुंचा। न बहन जी मिलीं और न खन्ना साहब। बिन्दा नौकर तक घर में न था। रानी अलबत्ता वहां मौजूद थी। बाढ़ के कारण उसका ट्रेनिंग कालेज बन्द था और वो इन दिनों यहीं रहती थी। बहनजी दिन भर इस क्षेत्र के लक्ष्मण टीले से लगाकर ठाकुरगंज और उसके आगे तक के शरणार्थी-शिविरों में दौड़-दौड़कर सारा प्रबन्ध देखा करती थीं। उनके स्कूल की चारों अध्यापिकाएं और कई लड़कियाँ अनेक शिविरों में काम कर रही थीं। रानी के ऊपर बहनजी ने अपने घर का भार छोड़ रक्खा था। दोनों बड़े सुखी मन से सोफे पर बैठकर बातें करने लगे।

किरोशिये से जाली के फन्दे बढ़ाते हुए रानी ने कहा : "आज सवेरे हम घर गए थे। कल शाम नई अम्मा यहां आई थीं। कहने लगीं कि बाबू और दादी को हमारा यहां रहना नहीं सुहाता। कहते हैं, इससे घर की इज्जत जाती है।"

"इसमें इज्जत का क्या सवाल है ? मन्नो के ब्याह में चार-पांच दिन जब तुम हमारे यहां रही थीं तब ?

"हां, आज सुबह मैंने दादी से यही कहा तो कहने लगीं, वहां की बात न्यारी थी। शादी-ब्याह का भरा-पूरा घर था और फिर बापू का नाम लेकर कहा कि पाधाजी इज्जदार आदमी है—"

रमेश को हंसी आ गई, बोला : "और बहनजी, खन्ना साहब, जिनकी सारे शहर में, देश-विदेशों तक में इज्जत है ?"

"उस इज्जत की बात इन लोगों की समझ में नहीं आती। बाबू कहने लगे, नई चाल के लोग हैं। मतलब ये कि दादी और बाबू को मेरा यहां रहना नहीं सुहाया। असिल बात ये है कि एक दिन मम्मीजी ने दादी के सामने विडो मैरेज (विधवा विवाह) की बात उठाई थी। मैं समझती, हूं उसी की भड़क उनके मन में समाई हुई है। और बाबू से भी शायद उन्होंने यही कहा होग।"

सुनकर रमेश गम्भीर हो गया, बोला : "यह तो निश्चित मानो रानी कि हमारे इस सम्बन्ध पर हम दोनों के घर वाले डटकर विरोध करेंगे।"

"यह तो मैं जानती ही हूं, इसीलिए आज मैंने इन लोगों के सामने यह रुख तो ले ही लिया। बाबू चाहे बुरा भले ही मान गए हों, पर फिर कुछ बोल न सके।" टांग पर टांग चढ़ाए सोफे के कोने पर जमकर बैठी हुई किरोशिये और उंगली की लपेट में खिसते हुए तागों की निरन्तर गति को बढ़ाते हुए, अपने गार्हस्थिक सुख-स्वप्न की समस्याओं में रानी यह निर्द्वन्द्व एकान्त पाकर तन्मय हो गयी थी। रमेश भी उसके पास बैठने के सुख-मद में मग्न-मस्त था। रानी से बातें करते-करते

एकाएक उसका ध्यान सूक्ष्म होकर अपनी मनोगति पर गया। चेहरे पर मुस्कान की रेखा खिंच गई। एकाएक बोला : "देखो रानी, बात वही रहती है, लेकिन मनुष्य के अलग-अलग मूडों का रंग उस पर अवश्य ही पड़ता है, है न ?"

अपने तार से अलग एक नयी बात का सिलसिला आरम्भ होने पर रानी नाजुक झटका खाकर रमेश की ओर देखने लगी। उसकी उंगलियों का काम तक स्तब्ध हो गया। आंखों में प्रश्न-चिह्न चमक उठा। रमेश उसी तरह सिर झुकाए ध्यानमग्न केन्द्रित स्वर में बोला : "मान लो यही बातें करने का अवसर हमें तुम्हारे या मेरे घर के किसी कोने में चोरी-छिपे उस समय हड़बड़ी में मिला होता, जबकि अपने बड़ों से सुबह तुम्हारी यह कहा-सुनी हुई थी, तब शायद हम दोनों ही मानसिक उत्तेजना में ये बातें करते—"

"हां, तो ?"

रमेश बोला : "यही कि यह मन को सुख देने वाला एकान्त हमें इन बातों पर विचार करने का सुख-चैन दे रहा है, उत्तेजित नहीं कर रहा है।"

"तो ?"

"यह कि हमारी किस्मत अच्छी है, हमारा निर्णय अनुकूल मानसिक स्थिति में होगा।"

अब रानी के चेहरे पर पहले की सी हरियाली तरावट आ गई, पूछा : "अंतिम निर्णय क्या होगा ?"

"यही कि खन्ना साहब और बहनजी हमें बड़े भाग्य से मिले हैं और इनका सहारा छोड़ना हमारे लिए बड़ा ही घातक होगा।"

"तो छोड़ ही कौन रहा है इनका सहारा ? यह बात भी आज सवेरे मैंने साफ-साफ कह दी। जब यह बात आई तो मैंने एक जगह पर बाबू से साफ-साफ कह दिया कि ईश्वर ने मम्मीजी का सहारा दिलाकर मेरे जिस दुर्भाग्य को दूर कर दिया है, उसे आप लोगों की झूठी आबरूदारी बनाये रखने के लिए मैं छोड़ूंगी नहीं। फिर न जाने कैसे तीखेपन में एक बात यह भी मेरे मूं से निकल गयी कि—मैंने कहा—आप लोग तो बूढ़े हो चुके, इसलिए मुझे अपनी सारी ज़िन्दगी इज्जत के साथ निभाने की बात को भी अब खुद ही सोचना पड़ेगा। मैंने कहा, मैं भी अब बच्ची नहीं हूं, नयी अम्मा की उमरों की हूं। सुनकर सबके सब सन्न रह गए। एक बार तो कहकर खुद मैं भी सन्न रह गई। मगर मैं तुमसे सच कहती हूं, कहकर एक दम हल्की भी हो गई। ज़रा भी उत्तेजित न हुई।"

सन्तुष्ट मन से रानी को छेड़ता हुआ रमेश बोला : "सब कुछ तो कह दिया और तब भी कहती हो कि उत्तेजित नहीं थीं।"

"तुम्हारी कसम, बिल्कुल नहीं। मैंने एक भी बात गुस्से में तो कही ही नहीं थी। तभी तो बाबू अपनी ठकुरैती पर चढ़ न सके। चुपचाप सिर झुकाकर चले गए। दादी जरूर थोड़ा-बहुत बकती-झकती रहीं। उन्हें नयी अम्मा से मेरी बराबरी करना अखर गया था। शायद नयी अम्मा को भी बुरा लगा।"

रमेश आज पहली बार रानी का अन्तरंग परिचय पा रहा था। एकाएक उसके हाथ पर नजाकत से अपना हाथ रखकर कहा : "हां रानी, यह बताओ कि अपनी सौतेली मां के साथ तुम्हारे सम्बन्ध कैसे रहते हैं ? बड़ा अजीब लगता होगा बराबर की लड़की को मां कहना, है न ?"

रानी गम्भीर भाव में मुस्कराई, जाली-किरोशिया सोफा पर रख दिया और

दोनों हाथों की उंगलियां एक-दूसरे में फंसाकर उन्हें मरोड़ती हुई बोली : "अब तो आदत पड़ गई है। शुरू में अखरा था। उन्हें भी, मुझे भी। मुझसे तो उन्हें अम्मा कहकर पुकारा ही न जाता था। मेरी अम्मा की जगह पर आकर बैठी थीं, इसलिए और भी नफरत थी। और एक दूसरी बात यह भी थी कि दादी हम लोगों का हेल-मेल पसन्द भी नहीं करती थीं। मगर ये नयी अम्मा जो हैं हमारी—हैं भई बहुत बढ़िया दिल की औरत। सीधी और छल-कपट तो जरा भी नहीं है। इन्होंने अपनी तरफ से आते ही मुझसे हमजोलीपना साधा। वो बेचारी भी मुझे अपनी लड़की कैसे मान लेतीं। और दादी के मन में कुछ अजीब-अजीब चिन्ताएं थीं।···इस वक्त पुरानी बातों को सोचते हुए लगता है कि एक तो उन्हें सुहागिन और विडो का साथ—"

रमेश के मन में एक बलुआ बवण्डर नाच गया। मन को उस अनुभूति से खींचकर बचाते हुए बोला : "बाई द वे, तुम्हारी वो शादी—"

"नयी अम्मा के आने के ढाई-पौने तीन साल पहले मेरी शादी मदर के सामने ही हुई थी। तेरह बरस की उमर थी मेरी। अम्मा टी० बी० की लास्ट इस्टेजों में थीं। उन्हें अपने बचने की आशा तो थी नहीं, इसलिए बस एक रट पकड़ ली कि रानी के हाथ पीले करके जाऊंगी। आठ जनवरी को मेरी शादी हुई, पन्द्रह फरवरी को वो लड़का टाइफाइड में मर गया। और उसी गम में आठ दिन के बाद मेरी अम्मा भी मर गईं।" सारा ध्यान भूतकाल में सिमटकर लय हो गया, रानी के जी में ऐसी सुख भरी टीस उठकर पसर गई, मानो हंसते-हंसते सूली पर चढ़ी हो।

रमेश ने स्वर में हलका पैनापन लाकर पूछा : "तुमने अपने हस्बैण्ड को देखा था ?"

रानी का सारा मुखमण्डल ही सुहागबिन्दी-सा चमक उठा। मुस्कराकर आंखों से आंखें मिलाकर, भावमग्न होते हुए भी हल्की शोखी की अदा में बोली : "अपने हस्बैण्ड को तो देखा है, उस लड़के को तो नहीं देखा था।"

और इतना कहकर उसने रमेश की तृप्त-प्यासी आंखों को अपनी रसमग्न आंखों में बरजोरी डुबा दिया। रमेश उल्लास में अपना आपा खोकर उसके पास बढ़ आया और उसके चेहरे को दोनों हाथों से बांधकर चार आंखों की एक लय में बंधे हुए रसान्दोलन की सौन्दर्य भरी उत्तेजना के साथ बोला : "तुम देवी हो—एंजिल—माई बिलवेड एंजिल।"

अपने मन के अनन्त सुख को बाहरी मर्यादा में बांधते हुए, रमेश के दोनों हाथ अपने मुख से हटाकर उन्हें पकड़े-पकड़े ही रानी बात बहलाने के लिए जोम में बोली : "अगर यहीं मैं अपने मन में साफ न होती तो आज बाबू-दादी के सामने इतनी साफ बातें भी न कर पाती।" कहते हुए रमेश के हाथ छोड़कर वह उठी और एक अंगड़ाई लेकर घड़ी की ओर देखते हुए कहा : "ओ हो, साढ़े तीन बज गए। तुम्हारे लिए चाय बना लाऊं।" कहकर रानी खिसकी। रमेश ने आंचल थाम लिया, बोला : "वह दिन कब आएगा रानी, जब हमारा घर हो जाएगा।" स्वप्न डूबी मुस्कान में प्रिय को देखकर प्रिया बोली : "आएगा-आएगा। तुम झटपट एम० ए० कर लो, अच्छे डिवीजन में। और इन 'मम्मी-पापाजी' की बांह नहीं छोड़ेंगे हम लोग, ये ही हमारे अस्ली भगवान हैं। इन्हीं की कृपा से मई-जून तक वह दिन भी आ जायगा।" रानी रसोईघर की ओर चली। रमेश छाया समान पीछे-पीछे था। रानी ने आलमारी से छोटी केतली निकाली। पोंछकर उसमें पानी

डाला। तार प्लग से जोड़ा, स्विच आन किया। यह सब करते हुए वह गुनगुना भी रही है और हिरते-फिरते अछूती कनखियों से अपने मंत्रमुग्ध मरीज की लाचारगी को अन्दाजते हुए, चढ़ते सुहाग के गुमान में नैंक-नैंक फूलती भी जा रही है। उस पर रमेश की ऐसी प्यासी जादू बंधी टकटकी लगी है कि पलक तक नहीं झपती। पानी गरम होने के लिए रखकर अपना नया काम सोचने का अभिनय करने लगी, जाने क्या-क्या करना है—इस अदा में।

बहुत देर तक दोनों में से किसी के मन में बोलने की इच्छा न जागी। दोनों के मन इतनी देर तक मुक्त भाव से साथ रहने के कारण सन्तुष्ट थे। और यह सन्तोष उन्हें अपने भावी जीवन की सारी सुखद कल्पनाओं के लिए बल और बड़ा भरोसा दे रहा था। बोलने को जी ही नहीं चाहा। पास-पास खड़े हैं। वो बीच-बीच में कभी चाय का डिब्बा, कभी शक्कर का डिब्बा, कभी प्लेट-प्यालियां, कभी दूध का बर्तन उनके यथास्थानों से उठा-उतारकर मेज पर रखती है, और यह सब करते हुए हर बार किसी न किसी बहाने आंचल या हाथ का स्पर्श भी हो जाता है। कभी इनकी, कभी उनकी गुनगुनाहट, कभी मेज पर उंगलियों की तबले सी थिरकन, कभी संकोचमुक्त आनन्दमग्न आंखों का मिलना और मुस्कराना—इन्हीं सबमें बिन बतियाए लाख-लाख बातें हो गईं। पल्ला सिर से ढलककर सरकता हुआ सिर्फ एक ही कन्धे पर रह गया, मगर लाज न आई, रमेश की मस्ती में भी कोई अतिरंजना न आई; उनकी सहजता उस समय उनके पूर्णकाम मन का परिचय दे रही थी। चाय बनी। दोनों ने वहीं किचन में खड़े-खड़े पी। रानी बोली : "आज तुम गए नहीं कैंप में ?"

"अरे, क्या बताएं, आया था कि मम्मी जी मिलेंगी तो कोई काम पूछूंगा उनसे। अब सुबह का समय तो भैया मैंने अपने पढ़ने-लिखने में ही लगा लिया है।"

"ये बहुत अच्छा किया तुमने।"

"हां, जी आपकी तो जब से युनिवर्सिटी खुली है, पढ़ाई ही नहीं हुई। स्ट्राइक ने चौपट कर रक्खा है कमबख्त। और अब ये बाढ़ आ गई। इम्तहान में कोई ये सब तो पूछता नहीं —"

"ये तो है ही। नहीं, ये तुमने बहुत अच्छा किया। अब तो तुम्हारे एम० ए० होने पर ही सारा दारोजदार है। काम तो पापा जी दिला ही देंगे, उसकी चिन्ता नहीं है। और एक बात कहूं। मम्मी जी और पापा जी को हमारे-तुम्हारे बारे में पूरा शक है।"

"अरे, वो तो मैं जानता हूं। मम्मी जी मुझे कई बार पापाजी तक के सामने छेड़ चुकी हैं।"

"मुझे भी क्या छोड़ देती हैं। मगर ऐसी औरत होना मुश्किल है।"

"इसमें कोई शक नहीं। दोनों पति-पत्नी अपना जवाब नहीं रखते। आजकल ईश्वर की दया से पापाजी मुझ से बड़े खुश हैं। परसों जो मैंने शरणार्थी कैम्पों की रिपोर्ट लिखकर दी थी, उससे बड़े खुश हुए। कहने लगे, तुम चाहो तो अच्छे जर्नलिस्ट बन सकते हो।"

हां, तुम्हारे जाने के बाद ही इन्होंने मम्मीजी से यह भी कहा था कि इस लड़के को चान्स देना मैं अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझता हूं। तुम्हारी बड़ी-बड़ी तारीफें की—बड़ा परोपकारी है, बड़ा मेहनती है, बड़ा इन्टेलीजेन्ट है—मैं खड़ी-खड़ी गुटर-गुटर सुनती रही।"

"तुम्हें जलन हो रही होगी हमारी तारीफें सुन-सुनके।"

"हां, उसी जलन ही में तो मैंने खड़े-खड़े यह भी तय कर डाला कि तुमसे कहूंगी कि ऐसी ही दो-चार बढ़िया-बढ़िया रिपोर्टिंग और कर डालो। बस ऐसी ही जो कोई दूसरा न कर सकता हो। पापाजी का यह भाव तुम्हारे लिए और मजबूत हो जाय, तो बस फिर हमारा बेड़ा पार लग ही जायगा।"

"बड़ी स्वार्थिन हो। अपने स्वारथ के लिए मुझसे खन्ना साहब की खुशामद कराना चाहती हो।"

"स्वारथ ही सही, पर ये स्वारथ क्या छोटा है? हमने आपसे कोई आंखें लड़ाने वाला प्रेम थोड़े ही किया है जनाब। घर-गिरस्ती वाली औरत को तो सभी कुछ सोचना पड़ता है।"

चाय की गर्मी के साथ ही साथ रानी की बातों से रमेश के अन्दर कर्त्तव्य-भावना की गर्म लहर दौड़ गयी। हाथ जोड़कर बोला: "सत्य वचन रानीजी, लेकिन मेरा भी यह सत्य कथन स्वीकार कीजिए कि मैंने भी आपको फस्ली जूलियट समझकर प्रेम नहीं किया, आपके चरणों का दासानुदास बनने के लिए अर्जी लगायी है।"

रानी के चेहरे पर फिर सुहाग की गुलाबी आभा आ गयी, आंखों और स्वर में मानभरी तुनुक अन्दाजी लाकर बोलीं: अच्छा अब जाओ। चार बज रहे होंगे। बिन्दा भी अब आता ही होगा। थोड़ी देर में सुखदेई भी खाना बनाने आ जायगी। इधर जनाब, मैंने तीन दिनों में तीन नानवेजेटेरियन नयी डिशेज बनाकर पापाजी को खिलाईं। बड़े खुश हुए, वो भी और मम्मीजी भी।"

"तुम्हारे यहां मांसाहार होता है?"—रमेश के स्वर में कुछ खिन्नता-सी थी, जिसे पहचानकर रानी लज्जित सी हो गई। अपराध जड़ित आवाज में जवाब दिया: "हमारे ग्रैण्डफादर सब कुछ खाते-पीते थे। हमारी दादी बहुत अच्छा गोश्त पकाती हैं। लेकिन फिकर न करो, तुम्हारे घर में ये भ्रष्टाचार नहीं करूंगी। मैंने तो जून के महीने से ही, जब से ये समझ लिया कि ब्राह्मण देवता के साथ ही मेरा जीवन बंधेगा, ये सब छोड़ दिया है।"

सुनकर रमेश के मुख पर सन्तोष की चमक आयी और अपनी उदारता व्यक्त करते हुए उसने कहा: "नहीं सरकार घर मेरा कहां, आपका होगा। जो चाहें खायें-पियें। मैं पोंगा ब्राह्मण थोड़े ही हूं, प्रोग्रेसिव व्यूज का हूं। हां, अपने माता-पिता के घर मैं मजबूर हूं। लेकिन आपके साथ तो उस घर में रहना होगा नहीं मेरा, इसलिए—"

"मेरे कारण घर छोड़ने में तो तुम्हें बड़ा दुःख होगा।"

"और मेरे कारण तुम्हें यही दुःख होगा।"

"अब तो मेरा सारा दुःख-सुख तुम्हीं में समा गया है। भले ही स्वार्थी कह ले कोई, लेकिन तुम्हें पाने के लिए सब कुछ छोड़ सकती हूं।"

आनन्दातिरेक में रमेश ने बेसुध होकर रानी को अपने आलिंगनपाश में बांध लिया। नवानुभव के धक्के के साथ स्पर्श-सुख को रानी की लज्जा सह न पाई। रमेश की छाती में अपना मुंह छिपाकर छूटने का प्रयत्न करते हुए भयमिश्रित स्वर में बोली: "छोड़ो! छोड़ोऽऽ—"

रमेश की सुख-भावना को रानी की लाज ने मर्यादित कर दिया उसकी बांहें

ढीली हो गई। लाज के मारे रानी की आंखें न उठीं, वैसे ही कहा : "जाओ, कोई आ जायगा।"

करुणा की अथाह गहराई में रमेश का दिल डूबा हुआ है। वह जी रहा है, देख-सुन रहा है, उसकी अनुभूतियां भी जाग रही हैं; लेकिन उसके भाव गूंगे हो रहे हैं, उसकी चेतना पीड़ा-कुंठित और भय से जड़ीभूत है।

सेना की जलथल पर चलने वाली नावगाड़ी मिट्टी की शक्ल वाले मौत से मनहूस गंदले पानी में बढ़ी जा रही है। ऐसा लगा नावगाड़ी बाढ़ में टूटकर बह जानेवाले पक्के मकानों के खंडहरों के ऊपर से गुजर रही है। कुशल ड्राइवर नावगाड़ी को सम्हल-सम्हल कर बड़ी सफाई से बढ़ा रहा है। टेलीग्राफ के तार नाव से कुछ ही ऊपर हैं। उनसे बचने के लिए नावगाड़ी में बैठे हुए हर व्यक्ति को बेहद सिर झुकाना पड़ रहा है। रमेश के सिर से दो तार हल्की-सी टक्कर लेकर झनझना उठते हैं। रमेश करेण्ट का हल्का धक्का खाकर दोनों हाथों से सिर पकड़ लेता है। नाव तारों के पार निकल चुकी थी। सूबेदार वरयामसिंह ने त्योरियां चढ़ाकर रमेश को देखा और कठोर स्वर में कहा : 'काश कि ये बिजली के तार होते और तुम खत्म हो जाते। यहीं पानी में तुम्हारी लाश को फेंककर चल देता। सुअर कहीं का।"

गाली सुनकर रमेश का मुख तमतमा उठा, बहुत सब्र करके उसने अपने क्रोध को पचा लिया। वह अपराधी था। धोखा देकर यह सैनिक नावगाड़ी पर चढ़ आया था। एक सिख शरणार्थी सूबेदार वरयामसिंह का नाम लेकर नाव पर आना चाहता था। उसकी बेटी डूबे हुए इलाके के एक घर में ऑपरेशन के बाद अस्वस्थ पड़ी थी। उसकी दवाएं चुक गयी थीं। बाप सुबह वरयामसिंह के साथ ही शहर आया था उन्होंने कह दिया था कि उनका नाम लेकर आती हुई फौजी नाव में लौट सकता है। सूबेदार उसी क्षेत्र में तैनात होकर डूबे हुए संकटग्रस्त मकानों की आबादी हटा रहे थे। रमेश वहीं खड़ा तमाशा देख रहा था। वह भी सरदार जी की ओर से जोरदार पैरवी करने लगा। सिपाही अन्त में यह सोचकर राजी हो गये कि सूबेदार तो वहां मिलेंगे ही शरणार्थी के साथ ही साथ रमेश भी उस नावगाड़ी पर इस प्रकार जा बैठा, जैसे कि वह भी सरदारजी का साथी हो। गन्तव्य स्थान पर पहुंचकर सरदारजी तो अलग हो गये, पर रमेश को लेने के देने पड़ गये। अपने-आपको 'इण्डिपेण्डेण्ट' का रिपोर्टर बतलाकर भी वह दफ्तरी परिचय-पत्र के अभाव में सच्चा सिद्ध न हो सका। सूबेदार बेहद लाल-पीले हुए। आदेश दिया कि उसे लौटने पर पुलिस के हवाले कर दिया जाय। रमेश तब से सन्न बैठा था। एक प्रलय बाहर थी और दूसरी मन के भीतर। उसके गिरफ़्तार हो जाने पर माता-पिता कितने परेशान होंगे, मित्र मजाक उड़ायेंगे। खैर, छूट तो वह जायगा। खन्ना साहब उसे छुड़ा लेंगे। पर इस समय मिनट-मिनट पर उसे जो अपमान सहना पड़ रहा है, वह बेहद कष्टदायक है। क्या किया जाय, अब तो यह आ ही गया है।

निगाहें उठीं। मन की मनहुसियत पर पानी की मनहूसियत छा गयी। कितनी ही एक-मंजिला कोठियां जलमग्न बतलाई जा रही थीं। कितने ही बंगलों की खिड़कियों और रोशनदानों से पानी अन्दर जा रहा है। कुछ छतों पर नौकर श्रेणी

के लोग चिल्ला-चिल्लाकर खाना भिजवाने के लिए हाथ जोड़े अरदास कर रहे हैं : "अरे साहब, हमारे मालिक लोग हमको यहां छोड़ गए। रासन चुक गया है। भूखों-प्यासों मर रहे हैं सरकार। हमारी सुध लीजिए।" रमेश उनकी गिड़गिड़ाहट सुनकर अपना दर्द भूल गया। उसका जी चाहने लगा, काश कि किसी जादुई शक्ति से वह अभी के अभी भूखों को भोजन और प्यासों को पानी दे सकता। पानी की सतह से केवल फुट-डेढ़-फुट ऊंचे टीन की छतों पर बसे हुए लोगों को वह समझा सकता कि जब अच्छे-अच्छे पुख्ता संगीन मकान बह गये, तब मामूली डेढ़-दो ईंटिया दीवारों पर टिका हुआ यह सायबान किसी भी समय उन्हें दगा दे सकता है। सूबेदार और सिपाहियों के बार-बार समझाने के बावजूद पुरुष-वर्ग अपनी जगह छोड़ने को राजी न हुए। दो प्रौढ़ाओं को पुरुषों ने नाव पर जाने के लिए मना लिया। एक बोली : भई, मैं अपनी मुर्गे-मुर्गियों को छोड़ के न जाऊंगी।" सूबेदार उसे मुर्गियों सहित ले चलने को राजी हो गये। इसके बाद गठरियां और मुर्गियों का ढाबा नाव पर उतारा गया। अब बिदाई का दृश्य आया : "नब्बू, अच्छी तरह से रहना। बकरीदिए, तू बहुत उचक-फांद करता है, संभल के रहना, भला। क्या करूं मेरी मुर्गियां भूखी मर जायंगी। इन्हीं की खातिर तुम सबको छोड़कर जा रही हूं तुम्हें अल्लाह को सौंपा। खुदा, वो दिन जल्द लाए जब यहां फिर लौट के आऊं और तुम सबको देख के आंखों सुख, कलेजे ठंडक पाऊं।" बड़ी मुश्किल से आंखें पोंछती हुई टीन से उतरीं-उतरीं क्या बड़ी हाय-तोबा के साथ उतारी गयीं। "आओ आपा, अब देर न करो।"— नीचे आकर बड़ी बी ने दूसरी बड़ी बी को पुकारा, सूबेदार भी उन्हें जल्द चलने के लिए डांटने लगे।"

"ऐ, आ तो रही हूं भैया। जरी सबर करो, एक पान का टुकड़ा खा लूं तो चलूं। यही आखिरी चार टुकड़े बच गए थे। मैं यहां बैठे-बैठे यही कहूं कि अल्ला मियां, जब ये पान भी खतम हो जायेंगे तब क्या करूंगी।···" पान और पानी और बाढ़ की हजार मुसीबतों का रस्सा बंटने के बाद पान का एक टुकड़ा खाकर और दूसरा प्रौढ़ा के लिए हाथ में लेकर, और दूसरे हाथ में अपना पानदान उठाकर बड़ी बी सायबान के किनारे आईं। पहले पान और पानदान दिए तब आप उतरीं। नाव आगे बढ़ी। नाव में दो कतरनी जैसी जबानों का नया शोर बढ़ा!

आगे दो टूटे हुए पेड़ों से उलझे हुए बिजली और टेलीफोन के खंभे भी गिरे पड़े हैं। पेड़ों की डालों पर कई सांप और पक्षी एक साथ बैठे नजर आ रहे हैं। यहां पानी के बहाव में तेजी है। डूबे हुए मकानों को देखकर अनुमान लगता है कि पानी यहां चौदह-पन्द्रह फुट से कम नहीं है। एक बल्ली का ऊपरी भाग मुश्किल से फुट-सवा-फुट बाहर निकला हुआ है। उस पर असंख्य मक्खियां और कीड़े-मकोड़े लिपटे हुए हैं। और बल्ली के पास ही एक हिलते हुए तख्ते पर एक कुत्ता बुरी तरह से भौंक रहा है। सूबेदार उम्दा अलसेशियन कुत्ते को देखकर उसे बचाने लायक इंसानियत अपनी लालच के बहाने पा लेते हैं, नाव को कुत्ते की तरफ बढ़ाने का आदेश देते हैं। मुर्गीवाली हाय-तोबा शुरू कर देती है। बल्ली के पास पहुंचते ही हजारों मक्खियां एटमबम के धुएं की छतरी जैसी उड़कर जोरदार भन्नाटा करती हैं। कुत्ता नाव के पास पहुंचते ही बड़ी आतुर छलांग मारता है। नाव पर आदमियों के बीच आ जाने पर उसकी कातर करुण आंखों में हर एक के लिए कृतज्ञता का भाव चमक उठता है, और अपने मुख्य आश्रयदाता को खोजने की श्वान-संस्कारजन्य आतुरता भी। उसी समय सूबेदार उसे अपनी ओर बुलाते

हैं। एक सैनिक से एक डबलरोटी और बिस्कुट निकालने को कहते हैं और कुत्ते के शरीर पर हाथ फेरते हैं। कुत्ता उनके पैरों में अपना सिर अड़ाकर पाये हुए प्रेम की रसीद दुम हिलाकर चुकता कर रहा है। मुर्गीवाली और उसकी 'आपा' कुत्ते के मारे सकपकाई जा रही हैं।

नाव बहुत चौड़े में आ गई है। दाहिनी ओर एक बहुत बड़ा पुराना महल है, जिसकी पहली मंजिल करीब-करीब डूबी हुई है। उसके बगीचे का विशाल मैदान गतिशील पानी की लहरों और छोटी-छोटी भंवरों से भरा हुआ है। महल के कम्पाउण्ड की आगेवाली दीवार से एक काठ की बन्द दुकान पानी के थपेड़े खा-खाकर टकराती है। बांयीं ओर एक प्रायः डूबी हुई कोठी की छत पर रेडियो एरियल के दो बांस डूबे हुए जहाज के मस्तूलों जैसे लग रहे हैं। नाव को देखकर महल के दुमंजिले से कई आवाजें एक साथ शोर मचाती हैं, "यहां आइए। यहां आइए।" नाव उस ओर बढ़ी। महल में तीस-चालीस आदमी अलग-अलग कमरों और छज्जों पर खड़े हुए दिखलाई दिये। उन लोगों को राशन की कमी न थी, केवल बाहरी सम्पर्क की तमन्ना थी सो पूरी हुई। पानी का बड़ा कष्ट है, बहुत उबालने और छानने के बावजूद पानी गन्दा और बेस्वाद मिल रहा है। एक सज्जन ने अखबार की फर्माइश की। संयोग से रमेश के पास उस दिन का इंडिपेंडेंट' मौजूद था। उसने सूबेदार को दे दिया और यह सोचा कि शायद इससे वह प्रसन्न हो जायेंगे, पर उनकी बेरुखी में कोई अन्तर न पड़ा। पर कई आदमियों ने पूरब की ओर से पिछली रात कई बार उठनेवाले शोर का जिक्र किया—"बड़ा कल्हाटा, बड़ा चीत्कार बार-बार उठता है।" सूबेदार ने दिशा का अनुमान लेकर उधर नाव बढ़ाने का आदेश दिया। पानी अगम गहरा और बहाव तेज था। बांध के फाटक वाली दिशा से गर्जन-तर्जन के घनघोर स्वर क्रमशः निकट आते जा रहे थे। रमेश सूबेदार के डर से सहमा हुआ बैठा था, पर अब उससे भी अधिक पानी का आतंक मन पर तेज होने लगा। भय दिलों पर पलस्तर-सा जमने लगा। औरतें तक हाय और अल्ला के सिवा और सब बकबक भूल गयीं। कितना भयंकर लग रहा है सब कुछ। मौत जिन्दगी से बड़ी बन गयी है। जीवन का मान-गुमान निस्तेज हो गया है। प्रलय की पढ़ी हुई कथाएं सजीव होकर आंखों के सामने दृश्यमान हो रही हैं। बायें हाथ की सड़क के मुहाने पर पहुंचकर नाव पर बैठे हुए लोगों ने सड़क के एक सिरे से दूसरे सिरे तक खड़े हुए भूत-समान मकानों और पेड़ों को देखा। गूंगे मनो पर और भी गहरी स्तब्धता छा गई। इधर कुछ नहीं है, इधर तो मुर्दघटे का-सा सन्नाटा है। शोर संभवतः दूसरी सड़क की ओर ही से उठा होगा। नावगाड़ी मुड़ चली; बांध के फाटकों की ओर से पानी का शोर निरन्तर उठकर भय को गाढ़ा करते-करते मुर्दा बनाने लगा। यहां कोई आबादी नहीं। मुर्गीवाली बुढ़िया बोली, इधर चार कोठियां थीं—उनकी और उनकी और उनकी। मगर अब केवल पानी है। एक बरगद के सिवा और पेड़ तक डूबे हुए। चारों ओर नजर उठाकर देखो, मटमैला समुद्र। मौत, और कुछ नहीं।...रमेश के मन में अब न तो भय है न आस्था, न विचार, न भावना। उसके मन के अन्दर अच्छी-बुरी, छोटी-बड़ी मानवी वृत्तियों का सारा कुनबा ही मानो एक साथ मर गया है और वह फटी सूनी आंखों से निहार रहा है।

"इधर-इधर, इधर! नाव-नाव, इधर!"

सांझ के बढ़ते धुंधलके में बाईं ओर ताड़ों के झुरमुट के पार लगभग एक

फर्लांग दूर से शोर उठने लगा। पानी का करेंट कुछ तेज महसूस होने लगा। नाव गाड़ी दो जगह पानी में टकराई। बांस डालकर अन्दाजा लिया गया तो पता लगा कि वह किसी डूबे हुए बंगले के छत से टकरा रही है। नाव उस दिशा से हटाई गई। आगे डूबे हुए पेड़ों के झुरमुट के ऊपर से डूबी हुई टहनियों की रगड़ खाती हुई बढ़ी। पेड़ों का एक घना जंगल-सा डूबा है। पानी में बड़ी खलबली है, भंवरें बहुत हैं। यह शक्तिशाली नाव तक अपने-आपको पानी के मुकाबले में अशक्त पा रही है। और अंधेरा बढ़ रहा है। वह छत पास आ गई, जहां से शोर उठ रहा था। छत एकदम पानी की सतह से लगी हुई ही है, बस उसके मुंडेरे चमक रहे हैं और अब मुंडेरों की चौहद्दी में घिरे हुए दस-बारह मर्द-औरतें नाव को पास आते हुए देख रहे हैं। छत से राहत भरी, खुदा के लिए कृतज्ञता भरी कराह भरी आवाजें आने लगीं। उस मकान के आस-पास बड़ी तेज भंवरें पड़ रही हैं। लहरों के थपेड़े मुंडेरों के नीचे-नीचे दीवारों पर जोर-जोर से पड़ रहे हैं। भारी-भरकम और मजबूत नावगाड़ी को भी उस मकान के पास पहुंचने में दिक्कत महसूस हुई। किसी तरह नावगाड़ी मकान की मुंडेर के पास पहुची। नावगाड़ी को वहां टिकना मुश्किल पड़ रहा है। रस्सा डाला गया, एक सिरा छतवालों ने पकड़ा दूसरा नाव के एक कड़े में बंधा। तब भी नाव तिरछी है। छत पर एक स्त्री प्रसव-पीड़ा से कराह रही है। एक संभ्रांत बुढ़िया की वेदना, घबराहट और प्रार्थना के मिले-जुले प्रलाप में यह बात समझ में आई कि कल रात से इसी परेशानी में गुहार लगाई जा रही थी।

जिधर रमेश बैठा था, उधर के कड़े में एक रस्सा और बांधकर छत पर फेंका गया। छत की छोटी-सी भीड़ दो ठिकानों में बंटकर रस्से खींचने लगी। युवती सम्भालकर नाव पर उतारी जाने लगी। कार्यकर्ताओं के बंट जाने से एक तरफ रस्सा खींचनेवाले कम पड़ गए। रमेश सहायता करने के आवेश में छत पर चढ़ गया और रस्सा-खींचनेवालों में शामिल हो गया। अंधेरे में काली आकृतियां रस्से छोड़-छोड़कर धड़ाधड़ नाव पर कूदने लगीं। नाव का दीवार से फासला बढ़ने लगा। रमेश वाले रस्से पर अकेला वही रह गया और दूसरे पर दो बूढ़े और एक लड़की। "रस्से छोड़ दीजिए। अब न आइए। अब नहीं। अब नहीं। खतरा है।"

रमेश रस्सा छोड़कर नाव पर कूदने के लिए बढ़ा। नाव से रस्सा खोला जा चुका था। अब खींचा जा रहा है। 'छोड़ दो, छोड़ दो' की आवाज आ रही है। रमेश छोड़ कैसे दे; छोड़ दे तो यहीं न छूट जाएगा। लेकिन उसी समय बुड्ढों ने रस्सा छोड़ दिया और बढ़ती हुई नाव और रस्से के खिंचाव के साथ रमेश की टांगें मुंडेर से टकराईं। उसके शरीर का सन्तुलन बिगड़ गया और वह मुंडेर पर पेट के बल गिर पड़ा। मौत की दहशत में कलेजा भीतर से जैसे धक्क से बैठ गया। होश-हवास सन्नाटा खींच गए। बूढ़ों और बूढ़ी ने दौड़कर उसकी टांगें पकड़ीं। उसने रस्सा छोड़कर मुंडेर के बाहरी भाग से अपनी दोनों बांहें चिपकाईं। गर्दन में दो कोमल जनाने हाथ और पीठ पर एक स्तन का गुदगुदापन उसमें सभ्य संकोचजनित नवस्फूर्ति भर गया। उसमें फिर से उठने की शक्ति आ गई।

एक नयी दुनिया थी। बीस फुट लम्बी, दस फुट चौड़ी छत जिसके चारों ओर पानी थपेड़े मार रहा है। बाहरी दीवार पर तो पानी इतने तेज थपेड़े मारता है कि छींटें छत पर उड़कर आती हैं। छत पर निवाड़ के दो पलंग, तीन सोफा, दो-

तीन छोटी-छोटी अलमारियां, कनस्तर, बर्तन, स्टोव, किताबें, गद्दे, कपड़े, स्टूल, तिपाइयां, सिंगार-मेज, कुर्सियां अटरम-सटरम गिरस्ती का सामान फैला था। उनमें चार इन्सानों की छाया आकृतियां भी थीं। रात की गहरी होती जाती कलौंस में चारों ओर आंख पसारी—पानी-पानी-पानी हिलता-डुलता, दूर पास के शोर से भरा पानी। छत नाव की तरह चलती हुई-सी लगी। सनसनी फुरफुरी के साथ और भी बढ़ गई, मानो शरीर की नींव से भावचेतना का गूंगा सोता आतिशबाजी के तेज अनार-सा फूट पड़ा हो। यह एक पुरानी स्थिति को भूलने और एक नई स्थिति को सकारने के बीच का आकाश था। वह भौचक्का होकर सबको देखने लगा।

'है है, देखो तो सही, नसीबे-दुश्मना, किस अजाब में आ फंसे बेचारे। आप पीछे कैसे रह गये?"

'अजी, आप फरमाती हैं कि रह गये?—मैं पूछता हूं कि आपके वो मादर (गाली) किराएदार, उन्हें इतनी भी तमीज नहीं कि झपाझप अपनी और अपने बाप की जोरू को लेके उतर गये बंचो और ये न सोचा कि फर्ज अदायगी का हक क्या है।"

'हमाए किराएदार बेचारे को क्यों कोसते हो? आखिर इनके साथियों को यह सोचना चाहिए था कि हमारा आदमी छूटा जाता है। क्यों बाबू जी, इन लोगों ने आपको क्या यहीं किसी कोठी से नजात दिलाई थी?"

"जी नहीं, इस टोली के साथ अखबार की रिपोर्टिंग के लिए आया था।"

"वल्लाह तो आप रिपोर्टर हैं! क्या मैं ये जान सकता हूं कि किस अखबार—"

"जी 'इंडिपेण्डेण्ट'।"

"अच्छा-अच्छा, वो सर शोभाराम के बेटे वाला परचा! तब तो बहुत अच्छा है जनाब! यहां बैठे-बैठे तूफानी नज़ारे का लुत्फ़ उठाइए और ख़यालों के खंभे खड़े कीजिए ऊंचे-ऊंचे, जैसे वो शोभाराम का बेटा करता है, चूतिया कहीं का। माफ कीजिएगा साहबजादे। मगर मैं आपके मालिक को उसके मूं पे गाली देने का हक रखता हूं। शोभाराम हमारे इंजीनियर थे, हमारे नये इन्दर महल का नक्शा व डिजाइन उन्होंने तैयार किया था। हमारे बुजुर्ग सर शोभाराम के हम-प्याला थे। ये आतमाराम बचपन में मेरे यहां—"

"रिपोर्टर साहब, एक गलतफहमी यहीं दूर कर लीजिए। इनके बुजुर्ग माने इनकी जोरू के बाप। ये तो एक भड़भूंजे से खरीदकर लाए गए थे और लाखों करोड़ों की इकलौती वारिस के इकलौते मियां बना दिये गए।"

"ये तुम थोड़े ही बोल रही हो, तुम्हारे अन्दर शोभाराम का खून बोल रहा है। जनाब रिपोर्टर साहब, यह भी नोट कर लीजिएगा। यह मेरी रण्डी वहीदन, सर शोभाराम की रण्डी मुश्तरी की औलाद है। और बाप-मां दोनों ही की औकात साफ बोलती है, इस —इस दुख्तरे इबलीस में।"

लाल साहब और बेगमसाहब की कांव-कांव शुरू हो गयी। तो इनकी और ये उनकी पोलें खोलने लगे। रमेश हक्का-बक्का! उसे लगा कि वह खाली बाढ़ ही के चक्कर में नहीं, बल्कि उससे भी कहीं अधिक भयावने घड़ियालों की दह में आ गया है। दोनों एक-दूसरे के दोष, परस्पर पैने व्यंग्यबाण छोड़ते हुए बतलाते चले और रमेश के होश नये होते चले! ये बेगम साहबा सर शोभाराम की चहेती

नम्बर दो, अपने जमाने की मशहूर नर्तकी मुश्तरी की औलाद नम्बर तीन हैं; यानी इस तरह डॉक्टर आत्माराम की सौतेली बहन हुईं। उम्र लगभग पचास-बावन और लाल साहब—लता कुंवर बहादुर पुरानी ताल्लुकेदारी रियासत बदरीपुर के इकलौते दामाद हैं, जिन्होंने अपनी ससुराली इस्टेट का बहुत बड़ा भाग भोग-विलास में फूंक दिया और जो बकौल वहीदा बेगम के "अपनी बीवी और बच्चों तक के न हुए, वो भला किसी और के क्या होंगे ?"

पोलें यहीं तक न रहीं, और खुलीं। बेगम साहबा मर्द की भूखी और शराब-कोकीन की शौकीन हैं। बाढ़ आने पर नीचे के किरायेदार इनके ऊपर वाले हिस्से में आकर रहने लगे और पानी जब ऊपर की मंजिल तक पर चढ़ आया, तो दोनों परिवारों ने छत पर बसेरा लिया। यही छत और इसी पर पिछले तीन दिनों से अभी दो घण्टे पहले तक नौ इन्सान थे। किराएदार बकौल लाल साहब के एक निहायत ही शरीफ और छोटा-मोटा अफसर भी है। ये लाल साहब परसों रात इसी खुली जगह में शराब पीकर उस किरायेदार की मां को सहसा रात के पिछले पहरों में किसी समय बेलज्जत करने लगे। बेचारी नींद में बड़ी जोर से घबराकर चीख उठीं। अफसर और सभी लोग जाग पड़े। अफसर ने इनका हाथ पकड़कर खींचा और तड़ातड़ मारना शुरू कर दिया। दूसरी ओर बेगम साहबा की विशेषता यह मालूम हुई कि वो कोकीन की कमी से दुःखी, दिन-रात शराब के नशे में गर्क, चौबीसों घण्टे इन लाल साहब और नौकर हामिद से अपना बदन दबवाती रहीं और इन पुरुषों को खुलेआम आलिंगन में बांधकर नशे के आलम में अपने खयाली महबूब अफसर किराएदार का नाम ले-लेकर आहें और सिसकारियां भरती रही थीं। लाल साहब और बेगम साहबा दोनों ही ने एक-दूसरे की घृणित पोलें खोलते हुए न जाने कितनी बार यह कहा कि वो बेचारे शरीफ लोग हमारे बारे में क्या खयाल लेकर यहां से गए होंगे। और ये बेचारे शरीफ रिपोर्टर भी क्या सोच के जायेंगे। परन्तु यह सब कहने-सुनने के बावजूद थोड़ी देर में छत पर मयखाना आबाद हो गया। बूढ़े-बुढ़िया और उनका बूढ़ा नौकर हामिद तीनों ही पीने लगे।

पानी के शोर में जहाजनुमा छत के एक मुंडेरे पर बैठा हुआ रमेश अजब घुटन-सी अनुभव कर रहा था। कहां आ फसे, लेकिन अनुभव तो वह चाहता ही था और वह उसे मिल रहा था। यहां न आता तो क्या उसे कभी यह खबर लग पाती कि डॉ० आत्माराम की एक सौतेली बहन है, जो तवायफ की बेटी और खुद भी तवायफ़ है—शरीर बेचनेवाली और खुद शारीरिक लालसाओं और वासनाओं के प्रति बिकी हुई भी। कितना वैषम्य है जीवन में। सारसलेक से आने वाले लच्छू के दो पत्रों में सर शोभाराम की ऐयाशी के कुछ चर्चे उसने अवश्य पढ़े थे, लेकिन आज उसे एक प्रत्यक्ष उदाहरण मिल गया। क्या यह खुले आम अपने-आपको सर शोभाराम की बेटी घोषित कर सकती है ? क्या डॉ० आत्माराम इसे सबके सामने अपनी बहन घोषित कर सकते हैं ? क्या वह 'इण्डिपेन्डेण्ट' में वहीदा बेगम से अपनी इस मुलाक़ात का विवरण प्रकाशित करा सकेगा ?

वहीदा बेगम गोल तकिये का सहारा लगाये बैठी हुई हैं। हामिद बीच-बीच में चुमकियां लेकर उनकी शरीर सेवा में लग जाता है। बेगम साहबा उस पर झुंझला रही हैं। हामिद के थके हाथ उनकी निर्जीव त्वचा में अपनी रगड़ से सन-सनाहट नहीं भर पा रहे। और वहीदा बेगम नशे में बड़बड़ा रही हैं, शिकायतें कर

रही हैं। उनके साथ ही साथ लाल साहब की नशीली आवाज़ भी शिकायतों का अखण्ड पाठ करती ही चली जा रही हैं। शिकायत है वहीदन से। उन्होंने बीबी का उद्धार किया था। वहीदन की बड़ी बहन हमीदन ने मुक़दमा जीतकर वहीदन को कौड़ी-कौड़ी का मोहताज कर किया था। वह दिन भूल गयी। जिस समय घर से निकाला, तो वहीदा हर तरह से लाचार और टूटी हुई थी। लाल साहब उन दिनों हमीदा बेगम के नये-नये आशिक़ हुए थे। लेकिन घर से निकाली जाती हुई वहीदन के गोरे सलोने मुखड़े पर ख़ामोश आंसुओं की बड़ी बोलती हुई रवानी पर सहसा रीझकर वे दयालु और न्यायप्रिय हो उठे। उन्होंने फ़ौरन ही वहीदन की बांह गह ली। हमीदन को नीचा दिखाने के लिए अपने बीवी-बच्चों की चोरी से तीन लाख की एक जायदाद बेचकर उन्होंने वहीदा बेगम के लिए एक कोठी ख़रीदी, कार ख़रीदी, ज़ेवर दिये, अपने दिल में और सिर आंखों पर बिठलाया ···और वही औरत उनके बुरे दिनों में उन्हें बार-बार और खुलेआम ज़लील करती है।

दूसरी बोतल खुल रही है। गिलासों में उंडलते समय वहीदन और लाल साहब दम भर के लिए एक-दूसरे के दोस्त और हमदर्द बन जाते हैं। बीच-बीच में जब चुस्की लिए हुए देर हो जाती है, तो लाल साहब या वहीदन अपना बकना-झकना छोड़कर एक-दूसरे की तरफ़ गिलास बढ़ाते हैं। नयी चुस्की के बाद फिर नयी शिकायतों का दौर शुरू होता है। किराएदार की बुढ़िया नौकरानी की छूट जानेवाली जवान पोती सकीना को हुक्म दिया जाता है कि स्टोव सुलगाकर सबके खाने लायक़ नमक-मिर्च के पराठे तैयार करे। इसी सिलसिले में वहीदा बेगम दूर बैठे हुए रमेश को यह अयाचित आश्वासन भी दे देती हैं कि वह खाने-पीने की चिन्ता तनिक भी न करे। खुदा के फ़ज्ल से आटा, दाल, चावल इतना है कि अभी महीने-दो-महीने तक खाए न चुकेगा। बस कमी पड़ेगी तो ईंधन की और शराब भी आठ-दस दिन के बाद दग़ा दे जाएगी।···और जब शराब भी नहीं रहेगी तब क्या होगा? कोकीन नहीं, शराब नहीं···तब वहीदा बेगम ज़िन्दा क्योंकर रहेंगी? उसकी ज़िन्दगी में धरा ही क्या है? ऐसी बदक़िस्मत औरत दुनिया में कोई दूसरी पैदा ही न हुई होगी?

मां की सबसे लाड़ली औलाद वहीदन ही थी। अपना सारा हुनर उसने वहीदन ही को दिया था। हूबहू मां की सी सूरत। तीनों बहनों में सबसे अधिक हसीन और सलोनी। सबसे आला फ़नकार और सबसे अधिक भोली। मां के मरते ही दोनों बहनों ने उसे निकाल दिया। क्या-क्या मुसीबतें न झेलीं। हुनर की बदौलत जब नये सिरे से नसीब खुला या चमका, नेपाल के एक राणा से लाखों कमाकर वहीदन जब घर लौटी तो हमीदन ने फिर से नेह-नाता बढ़ाया, मगर कितना नक़ली था उसका सुहागभरा जीवन। एक के बाद एक तीन सरपरस्त मिले, मगर तीनों बूढ़े। उन्होंने इस पर लाखों निछावर किए, मगर इसकी ज़िन्दगी की भूख न मिटा सके। साथ ही यह भी चाहा कि वह उनकी वफ़ादार बनी रहे। कितनी ज़्यादती थी यह उन लोगों की।···सबसे आज़ाद हो गई। शराब और गबरू जवान छोरे। माशूक ने आशिक का चोला पहना और कमाई हुई दौलत के पर लग गये। सात-आठ बरसों में लुट गई, बहन की क़र्ज़दार बनी, मुकदमा हारी, उजड़ गयी। वहीदन बेगम नशे और गुस्से के आलम में भी लाल साहब का आभार नहीं भूलीं। मगर वह आभार ऐसा कोई सात्विक नहीं कि

जिसके लिए वहीदन वफ़ादार हो। मनचले रईस यों ही रीझकर तवायफों के सरपरस्त बनते हैं।

···ज्यादती लाल साहब को भी लगती है। ये औरत जिसको उन्होंने बुरे वक्तों में सहारा दिया, जिसके ऊपर अपना तन-मन-धन निछावर किया, अब उन्हें कमज़ोर और लाचार समझकर उनकी आंखों के सामने खूबसूरत जवान छोकरों को नौकर रखकर उनके साथ बदकारी करती है।

और लाल कुंअर बहादुर साहब वहीदन को कमरा बन्द करके बेंतों से मारते हैं। उसके नौकरों को मार-मारकर भगा देते हैं। और खुद उसकी नौकरानियों तक को नहीं छोड़ते।

और वहीदा बेगम यह ज्यादती करती हैं कि जवान नौकरानियों को घर में रहने ही नहीं देतीं···सुनाने के लिए रमेश को बहाना बनाकर दोनों ही एक-दूसरे की ज्यादतियों का बयान करते चले जाते हैं और सुन-सुनकर रमेश का तन-मन घुटा जाता है। क्या जीवन का यह भी एक पहलू है ? शरीर की भूख स्त्री-पुरुष को यहां तक हीन और निर्लज़्ज बना सकती है। ये इतने ऊंचे खानदान के लाल साहब और ये सर शोभाराम की बेटी—लाखों की सम्पत्ति से खेलनेवाले वैभव-शाली लोग, पढ़े-लिखे सभा चतुर···उफ़ कितने गन्दे! शिकायतें करते-करते आवाजें तेज़ हो गईं, लाल साहब का हम-उम्र नौकर हामिद शराब के नशे, बातों के जोश और वहीदन के जा-बजा बेशर्मी से खुले अंगों को मसलते हुए बीच-बीच में एक आध ऐसी बात कह देता है कि जिससे दोनों का झगड़ा और बढ़ जाता है। दूर बैठी हुई स्टोव पर खाना पका रही है। रमेश सोचता है कि इस जवान कुआंरी लड़की के मन पर क्या कुछ न बीत रहा होगा। स्टूल के ऊपर रक्खी हुई लालटेन के मद्धिम उजाले में सकीना का मुंह बड़ा भोला और मासूम लग रहा है। अपने घर में चूल्हे के सामने बैठी हुई रानीबाला का वह मुखड़ा रमेश के मन में तेज़ी से झांक जाता है, जो अपने पिता को बचाकर लानेवाली शाम को उसने देखा था। इस गन्दगी के वातावरण में रानी का ध्यान एकदम से असीम पवित्रता और शांति का पूर्णाभास करा गया। रमेश को लगा, जैसे उसकी घुटी-घुटी सांस एक बार फिर मुक्त होकर चलने लगी। अचानक हामिद के जा-बेजा हाथ वहीदन के शरीर पर देखकर लाल साहब एकाएक भड़क उठे। लड़ाई एक नया सिरा पाकर और आगे बढ़ चली। तेज़ झौं-झौं शुरू हुई। यहां तक कि नशे में धुत्त लाल साहब की मर्दानगी सहसा उबलकर एकदम बलात्कार की मुद्रा में वहीदा बेगम पर आक्रमण कर उठी। रमेश के लिए सारा दृश्य असह्य हो उठा। एकदम उठ खड़ा हुआ और जाकर सीधा सकीना के सामने खड़ा हो गया, गोया अपनी आड़ करके वह एक क्वाँरी कन्या को निर्लज्जता के घिनौने दृश्य से बचा रहा हो। सकीना स्टोव की तरफ से मुंह फेरकर अलग बैठ गयी थी।

सारी रात रमेश एक क्षण के लिए भी न सो सका। घड़ी न होने से समय का अनुमान न लग पाने के कारण यह रात उसके लिए द्रौपदी के चीर-सी लम्बी हो गयी है। बड़ी देर तक विलासी अतृप्त प्रेतात्माओं का तांडव होता रहा, फिर उन लोगों को खाने की याद आई। तब तक सकीना या तो सो गई थी या सोने का मक्र साधकर गठरी-सी लेट गयी थी। स्टोव पर चढ़ा हुआ तवा, तवे पर सिकता हुआ पराठा सिकते-सिकते जलाँध मारने लगा। स्टोव का तमाम तेल चुक गया था। बेगम साहबा को तब भूख की एक नयी शिकायत ने अपनी गिरफ्त में ले

लिया। लाल साहब भी उसमें शामिल हो गये। रमेश उनकी ओर पीठ किए मुंडेर पर बांह रखकर उस पर अपना सिर टिकाए हुए चुपचाप सुनता रहा। वहीदन ने हामिद को आवाजें दीं, सो जानेवाली सकीना को गालियां दीं और लाल साहब बराबर उनका साथ देते रहे। ऐसा लगता था, मानो इस समय वे एक हैं और उनकी शिकायत सिर्फ़ दूसरों ही से है। भूख लग रही थी, आराम-तलबी के मारे अपनी-अपनी निकम्मी कायाओं को कष्ट देना उन्हें बहुत कठिन मालूम पड़ रहा था। और इस कठिनाई के आगे दोनों की भूख बिलबिलाती ही रह गई।

बेगम साहिबा ने खीझकर लाल साहब को अपना बदन दबाने का आदेश दिया। लाल खुद ही निढाल हो रहे थे, वो बोले: "मुझे आपसे ज्यादा आराम की दरकार है। इस वक्त अगर आप ही मुझ पर यह एहसान फ़रमाइए तो ज्यादा मुनासिब होगा।" बेगम साहब कुछ न बोलीं, उठीं, डगमग पैरों स्टोव के पास आईं, तवा टटोलकर देखा, उंगली जल गई; तवे से अधिक उनके नखरों से जली; 'उइ अल्लाह' का आशिक़फ़रेब नारा उनकी आवाज़ से बुलन्द हुआ ही था कि लाल साहब के जिस्म में जान आ गई। उठ के पास आये, मख़मूर आंखों से उंगली की जलन देखने की नाकाम कोशिश में अपनी आशिक़नुमा घबराहट के बुलबुले छोड़ने के बाद लाल साहब ने भी तवा टटोल देखा और उनका आशिक़ मिज़ाज दिल फिर दुश्मनी के कोठे पर चढ़ गया। बहादुरी और मर्दानगी के ज़ोम में आते हुए वहीदन बीबी की साड़ी का आंचल खींचकर उससे तवा उतारकर ज़मीन पर पटकते हुए बोले: "माशूकों की जात ही—(गाली) कमबख्त शरीफ़ज़ादों की दुश्मने जां होती है। अच्छा-भला लेटा था, थका-हारा, उल्लू की पट्ठी ने नखरा करके उठा दिया। अजी मानिन्दे लाश तो ठण्डा पड़ा था तवा।

वहीदन बीबी की साड़ी में तवे का काला दाग़ लग गया था, यह एक शिक़ायत, 'उल्लू की पट्ठी' कहा, यह दूसरी शिकायत, मगर पेट भूखा था इसलिए गुस्से को बनावटी बनाया और बोलीं: "देखो जी, तुमने मुझे गालियाँ दीं, मेरी साड़ी में दाग़ लगा दिया, ये सब मैंने चुपचाप सह लिया, मगर जो मेरे बाप को गाली दोगे तो न सहूंगी, बतलाए देती हूं। अरे मेरा बाप तो ऐसा था, जो ज़माने भर को उल्लू बना के ज़िन्दगी भर बड़ी शान से रहा। और उनकी औलादें भी शान से दुनिया के सिर पर ठेंगा बनकर नाच रही हैं।"

"क्या कहने हैं इस घमण्ड के।…भइ एक आइडिया आया है इस वक्त… वहीदन, हमीदन के साथ सर शोभाराम की तीसरी औलाद डॉ० आत्माराम को बिठलाकर एक फ़ोटो खिचाई जाय और उसे दुनिया के तमाम अख़बारों में छपवाया जाय। रशीदन तुम्हारी बहन, बेचारी मर गयी, वरना उसे भी शामिल किया जाता। वो क्या नाम के, प्राइवेट सेक्रेटरी मेरी जोन्स के बच्चे तो शायद मर ही गये थे, क्यों ना वहीदन!"

"उससे शादी करने के बाद ही तो हमाई अम्मी ने सारस लेक जाना-आना छोड़ दिया।"

"छोड दिया या छुड़वा दिया गया।" लाल साहब व्यंग्य से हंसकर बोले: "अरे, उसने तो बीन-बीनकर उन साईसों, घसियारों और क्लर्कों को फ़ौरन नौकरी से डिसमिस कर दिया, जिनकी बीबियों से सर शोभाराम की औलादें होने का उसे यकीन व शक था। विलायती औरत थी बीबी। हिन्दुस्तानी तवायफ़ें भले ही

अपने को बड़ी छत्तीसी समझा करें, मगर ये अंग्रेजी कौमवाली पूरी चालीसी होती हैं। खाली एक आतमाराम की मां से उसकी दाल न गल सकी। हिन्दुस्तानी शौहर की, कुछ भी कह लो, अपनी धरम पत्नी का ओहदा जितना रूहानी तौर पर क़बूल होता है, उतना और किसी का भी नहीं। सर शोभाराम ने लाख उस मेम से शादी की, मगर दिल से रखैल ही माना। यह शौहर की क़ौम साली होती बदज़ात है।"

"दिल के आईने में अपनी सूरत देखकर ही यह फ़र्मा रहे होंगे लाल साहब। (हंसी) चलो ज़िन्दगी में एक बार तो सच बोलो तुम। खुदा तुम्हारे हर गुनाह मुआफ़ करेगा। मगर इस भूख का क्या हो? अंधेरे की वजह से बाहर का सैलाब भले न नज़र आता हो, मगर पेट के अंधेरे में भी उजाला होता है दईमारा, वहां का सैलाब कैसे सहा जाय? ये हामिद निगोड़ा तो शराब के नशे में धुत्त होकर मुर्दों से भी बाज़ी लगाये पड़ा हुआ है कमबख्त। और ये निगोड़ी सकीना की बच्ची, आग लग जाये इसके सोने में···"

"बेगम, इस वक्त मैं सच बोलने पर ही आमादा हूँ। हम और आप सरे आम बेशर्मी से जिस तरह से पेश आते हैं—कम-से-कम पिछले पांच-छ: रोज़ से पेश आ रहे हैं, वह शरीफ़ों का चलन नहीं है।"

"तो आपको यह ग़लतफ़हमी हो कब से गयी? शरीफ़ कहलाने वालों में आपने आज तक कहीं शराफ़त देखी है?" वहीदन बोलीं।

लाल साहब हंसे, बोले: "यही तो अर्ज़ कर रहा हूं जानेमन, वो बेचारी ग़रीब की कुंआरी लड़की, ये बेचारा नौजवान ग़रीब रिपोर्टर या वो तुम्हारा किराएदार—ये लोग हम राजे-रईसों के अन्दाज़े ऐशो-इशरत की भला क्या दाद दे सकते हैं। ये कोई हमारे नौकर-बांदियां हैं, जिन्हें यह सब देखने-सुनने की आदत हो।"

"सुनो, इस भूख की बुलन्दी में एक सच मैं भी कहना चाहती हूं, मगर उसके लिए एक शर्त है, सुनना पसन्द करोगे?"

"तवायफ़ का सच तो हर हालत में बेशक़ीमत होगा। मेरी जान, मैं समझ गया, तुम मुझसे क्या क़ीमत चाहती हो। कनस्टर से बादाम निकाल कर फोड़ दूं।"

वहीदन हंसकर बोली: "ज़हीन हो, खुदा न खास्ता तुम्हारे बालिग़ बच्चे और तुम्हारी बीवी तुम्हाई आदतों से ऊबकर तुम्हें घर से निकाल भी देंगे तो कमा खाओगे।"

"हाय, क्या बात कह गयीं वहीदन! इतने दिनों में इस सैलाब से नहीं घबराया, जितना कि तुम्हारी इस बात से।···मगर खैर, ये तुमने सच कहा कि कमा खाऊंगा। बिगड़ा रईस जिन आदतों से बिगड़ता है, उन्हीं से नयों को बिगाड़ भी सकता है। मगर हां, तुमने अपना सच नहीं बतलाया।"

"अरे, बड़ी हल्की-फुल्की सी बात है जी। सच ये है कि दौलत का कुछ थोड़े से लोगों में इकट्ठा हो जाना ही हमारी इन तमाम खराबियों की जड़ है। इन्सान के पास दौलत उतनी ही चाहिए, जितना कि दाल में नमक होता है।" लाल साहब ने कनस्टर से ढेर सारे बादाम निकाले और उन्हें पास ही नज़र आ जानेवाले एक पेपरवेट से फोड़ना शुरू करते हुए कहा: "ये कम्युनिस्टों जैसी बात है, हम नहीं मानते। जब दौलत का यों बटवारा हो जायगा, तो फिर ज़िन्दगी में मज़ा ही क्या

रह जायगा ? अजी, ये रईसों की ऐशो-इशरत ही तो है, जो इन्सान को लुभाती है। जिन्हें वो नसीब नहीं, वो नसीबवरों को गालियाँ देते हैं। अब हमारी अपनी ही ज़िन्दगियों में देख लो, ये कांग्रेसवाले अंगरेजी राज में हम रईसों-ताल्लुकेदारों के रहन-सहन और चाल-चलन पर कैसी गालियां दिया करते थे और अब··· (हंसी) हमसे भी बढ़-बढ़कर ऐश पसन्द हो गये हैं। यही ज़िन्दगी का लुत्फ़ है। कल हमारा ज़माना था, आज उनका है, कल किसी और का होगा—यही ज़िन्दगी का लुत्फ़ है। अगर सारा आलम एक रंग में रंग जाय तो फिर मज़ा ही क्या रहा। हम भई सोशलिज़म-वोशलिज़म क़तई नहीं मानते।"

बादाम फोड़े गये, खाये गये, घी ढूंढ़ा गया, खाया गया। शराब का भी दौर चला। बातों ही बातों में वहीदन को यह दयाभरी सनक भी सवार हुई कि हामिद को उठाकर पानी में फेंक दिया जाय, क्योंकि वह निकम्मा हो चुका है। और इस सैलाब के बाद वहीदा बेगम उसे अपनी खिदमत में रखना भी न चाहेंगी। इस सैलाब के बाद वह नये सिरे से इस तरह अपनी ज़िन्दगी बसर करना चाहेंगी कि जिसमें पुरानी यादगारों का कोई निशान ही बाक़ी न रह जाय।

लाल साहब बोले : "क्यों अपने ऊपर एक पाप और चढ़ाती हो वहीदन। मैं जानता हूं कि तुम्हारी ज़िन्दगी का यही दौर बराबर यों ही चलता रहेगा। एक दिन यह तय है कि तुम मुझसे पाई हुई यह दौलत भी फूंक-ताप के बराबर करोगी। और तब यकीन मानो, दुनिया में अगर, कोई भी तुम्हारा साथी बना रहेगा तो यह हामिद ही।"

"बात सही कहते हो, मगर इस वक्त मैं किसी की जान लेना चाहती हूँ। मेरे मन का सैलाब —"

"नक़ली है, तुम न किसी की जान ले सकती हो, न अपनी जान दे सकती हो। दरअस्ल जी तो मेरा चाहता है कि सारी दुनिया को खत्म कर दूं···मगर जाने दो जानेमन, ये ख़ुदा की बनाई हुई दुनिया अपने-आप मिट रही है। आओ, हम-तुम मिलकर इस क़यामत के नाम पर एक जाम पियें।"

रमेश के लिए वह रात भारी पड़ गई। और सुबह मन की घिन और गुस्से के मारे वह लाल और वहीदन को देख भी न पाता था और सकीना से शर्म के मारे अपनी आंखें चुराता था। धूप में चमकता हुआ सैलावी पानी अपने भयावनेपन में इस छत के नरक से कम—बहुत कम दुष्प्रभावशाली था। यह बाढ़ का दृश्य उसके लिए अधिक सामान्य था और इस छत के साथी इन्सान उसके लिए अकल्पनीय रूप से असामान्य।

रमेश को घर से गये दो दिन हो चुके, आज तीसरा दिन है। संयोग की बात कि जिस दिन रमेश घर से गया उसी दिन शाम को रुप्पन लाला के बैठके में खैराबाद के एक बड़े भारी, बड़े ज्योतिषी से पुत्ती गुरू का शास्त्रार्थ हो गया। पुत्ती गुरू ने उस शाम डबल छानी थी। खैराबाद वाले पण्डितजी के सम्मान में उस दिन रुप्पन लाला की कोठी पर ही भांग-ठण्डाई का दिव्य आयोजन पुत्ती गुरू ही की निगरानी में हुआ था। लागत चूंकि पराई लगी थी, और उसके बाद भी रुप्पन लाला के यहां ही करना था, इसलिए गुरू ने डबल गोला चढ़ाया और इसी कारण से वे खैराबादी पंडित डबल-डबल प्रशंसाएं सुनकर सह न सके,

बोले : "यजमानों को मूर्ख बनाने के लिए पण्डितों के पास ज्योतिष विद्या से बड़ा और कोई हथकण्डा नहीं है।"

खैराबादी पण्डित भी गहरे छनन्ता थे, पुत्ती गुरू की इस नशा-उखाड़ बात से गर्मा उठे, बोले, "जिस ब्राह्मण को ज्योतिष विद्या का चमत्कार नहीं मालूम, वह ब्राह्मण ससुरा ब्राह्मण ही नहीं होता।"

पुत्ती गुरू और गर्माए, बोले : "तंत्र-मंत्र की शक्ति के आगे ज्योतिष विद्या कुछ चीज नहीं।' इसी पर बात बढ़ गयी, रुप्पन लाला और उनके यार मुसाहब दोनों पण्डितों को ताव पर चड़ाने लगे और होते-करते फैसला इस बात पर हुआ कि खैराबादी पण्डित रुप्पन लाला के सम्बन्ध में कोई ऐसी भविष्यवाणी करे, जो चौबीस घण्टे के अन्दर ही प्रतिफलित हो जाय। पण्डित ने चट से कागज पर मीन-मेष विचार कर बतलाया कि उन्हें चौबीस घण्टे के अन्दर कहीं से बड़ा ही शुभ समाचार मिलेगा। इस खबर ने बैठे हुए लोगों को सुखद सनसनाहट से भर दिया। पुत्ती गुरू सतेज होकर बोले : "अच्छा, हमारे सम्बन्ध में भी बताओ; जो बात सत्य हो गयी तो तुम्हें मानेंगे, अन्यथा कल तुम्हारे पोथी-पत्रे और ये पगड़ी चार के सामने हम तुमसे छीन लेवेंगे।"

पण्डितजी बोले : "स्वीकार है, मगर एक शर्त यह है कि यदि हम जीते, तो कल चार के सामने तुम हमारे पैर छूके हमें अपना गुरु मानोगे।"

पुत्ती गुरू इस शर्त्त के लिए पहले तो तैयार न हुए, पर बाद में पंचों के न्याय के आगे झुककर उसे स्वीकार कर लिया। पण्डितजी फिर मीन-मेष लड़ाने लगे और एकाएक उदास होकर बोले : "यार, तुमसे क्या बोलें, तुम तो इस समय गहरी विपत्ति में पड़े हुए हो।"

पुत्ती गुरू को उनका मज़ाक उड़ाने के लिए अच्छा बहाना मिल गया; क्योंकि उस समय वे न तो किसी विपत्ति की चिन्ता से ग्रस्त थे और न अशंकित ही। घण्टे डेढ़ घण्टे बाद ही शाहजहांपुर से टेलीफोन आया कि रुप्पन लाला के समधी का हार्टफेल हो गया है। यहां से बातों का नया शोकजनक दौर आरम्भ हुआ पुत्ती गुरू हँसकर बोले : खैराबादी गुरू की गुरुआई देख ली। रुप्पन को चौबिस घण्टों में खुसियाली बतलाई थी, सो ये अच्छी खुसियाली आई; हेः हेः हेः।"

भैरों बाबू बोले : "खुसियाली तो आई ही। अरे इनके समधी मरे सो बात और है, बाकी इनके घर में लाखों की नई माया तो आय गयी। इनके मुलायम, चन्द की बहू ही तो उस धन की इकलौती वारिस है।"

पुत्ती गुरू निस्तेज हो गए और उसी रात एक-डेढ़ बजे के लगभग जब उसकी पत्नी ने उन्हें जगाकर रमेश के घर न आने के सम्बन्ध में अपनी चिन्ता व्यक्त की तो वे सनाका खा गए। खैराबादी पण्डित की बात एकदम ध्यान में आ गयी और उसके आते ही वे एकदम खटिया छोड़कर खड़े हो गये। दालान में सिर झुकाए टहलने लगे, फिर चिड़चिड़ाए स्वर में बोले : "ये सब तुम्हारे ही कुकर्मों के लच्छन हैंगे। पहले तो लड़के को छूट दे-देकर बिगाड़ दिया और अब हमसे कहने आई होगी कि 'रा-मेस नहीं आऽया।' तुम तो कह के छूट गयीं और हमारे ऊपर घोरातिघोर विपत्ति आन पड़ी ससुरी। जाओ, तुम सब लोग हमारे घर से निकल जाओ इसी बखत। अब साला बीबी-बच्चों का मोह ही नहीं पालूंगा। तुम सबको त्यागता हूं। का तव कान्ता कस्ते पुत्रः, संसारोऽयमतीव विचित्रः,

स्साला। उसी ब्राह्मण की बात रही, मेरी नहीं रही स्साली! शंभो, ये अन्याय तुम्हारा! —देख लूंगा।"

दूसरा दिन आया। पुत्ती गुरू एकदम सनाका खाए हुए थे। सबेरे दिशा निवृत्त होकर कान पर जनेऊ चढ़ाए हुए ही घर से निकले और एक-एक करके रमेश के सब मित्रों से पूछा। जयकिशोर ने बतलाया कि कल दोपहर में रमेश हमारी साइकिल लेके बाढ़ की खबरें लेने गए थे। पुत्ती गुरू सुनकर एकदम से रो पड़े। उन्हें अकस्मात् ही पूरा-पूरा भरोसा हो गया कि उनका पुत्र बाढ़ में डूब गया। जयकिशोर के एक मुनीम गौरी बाबू उन्हें समझाने लगे, बोले: "ऐसी मनहूस बातें न सोचा करो गुरू, अरे, अभी घण्टे-आध-घण्टे में आता होगा लड़का।"

पुत्ती गुरू रोते हुए बोले: "अरे आता कैसे होगा गौरी बाबू, वहां तो उस साले खैराबादी पण्डित की असलेट लग गयी हैगी। हाय मैं नष्ट हो गया। उस साले खैराबादी पण्डित ने भविष्यवाणी की रही, सो फ़िर खैर कैसे होवे—मनहूस कहीं का, चोट्टी का।" थोड़ी ही देर में महल्ले के घर-घर में रमेश के गायब होने और खैराबादी पण्डित की भविष्यवाणी करने का समाचार पहुंच गया। रमेश के मित्र चिन्तित हुए। खन्ना साहब और बहनजी तक भी यह समाचार पहुंच गया और सुबह की तरकारी खरीदकर कुंअर रद्धूसिंह जब अपने घर पहुंचे तो, रानीबाला भी इस खबर के प्रभाव से अछूती न बच सकी।

तमाम दिन दौड़-धूप होती रही। खन्ना साहब ने पुलिस के अधिकारियों की सहायता भी ली, लेकिन कोई परिणाम न निकला। 'इण्डिपेण्डेण्ट' के सम्पादकीय विभाग में काम करने वाले मुक्तेश्वर अस्थाना ने बतलाया कि रमेश अपनी साईकिल उसके घर पर रखकर कल शाम सेना की नावगाड़ी में भैंसाकुण्ड, जापलिंग रोड की ओर गया था। खन्ना साहब ने सैनिक अधिकारियों से भी सम्पर्क स्थापित किया। सूबेदार वरयामसिंह से, उनके अफसरों ने पूछताछ की। वरयामसिंह क्रोध में झूठ बोल गये। एक तो वह लड़का धोखा देकर उनकी नावगाड़ी पर सवार हुआ, दूसरे वह बाढ़ में छूट भी गया। तीसरे यह कि अनेक अधिकारियों की तरह वरयामसिंह उस समय नेता और मंत्रियों से चिढ़ हुए थे। इसलिए डॉ० आत्माराम के पत्र से सम्बन्धित खैर-खबर लेने में उन्हें कोई दिलचस्पी न थी।

एक रात और बीत गई। पुत्ती गुरू पत्थर हो गए। सबेरे से नहाकर वह अपने राममंदिर में जा घुसे, तो फिर बाहर कदम ही नहीं रक्खा—न पान, न पानी, न भांग। पुत्ती गुरू अपने जीवन में आज ऐसे मौन कभी नहीं रहे और रमेश की मां भी गुमसुम बठी रहीं। उस दिन घर में चूल्हा तक नहीं जला। सुरेश और पन्नो को एक पड़ोसिन ने जबर्दस्ती अपने यहां ले जाकर थोड़ा-बहुत खिला-पिला दिया। घर में मुर्दनी छाई रही। मुहल्ले भर की औरतें दिन भर राजी-खुशी के समाचार जानने के बहाने रमेश की मां का जी दहलाने आती-जाती रहीं। रमेश के मित्र बीच-बीच में आ-आकर पूछते रहे। रानी भी आई, परन्तु उससे इम घर इस घर में आज अधिक देर तक बैठा न गया। उसे रुलाई-पर-रुलाई आ रही थी।

रमेश के घर से निकली, जाना चाहती थी बहनजी के यहां पर बेहोशी में पैर अपने ही घर की ओर बढ़ते गये। द्वार पर पहुंचकर होश आया, ठिठक गई। वह इस समय घर में नहीं रहना चाहती। दादी, पिता, सौतेली मां सभी परसों से

उसके चेहरे को देखकर उसके जी का हाल पूछते हैं। वह क्या बतलाये। यों भी इस समय किसी से बोलने-बतियाने को जी नहीं चाहता। खन्ना साहब के घर में शांति है, अकेलापन है। वहां रानी के जी का हाल उजागर भी है, किसी की चोरी नहीं।

ठिठके कदम मन का सधाव लेकर अपने घर के आगे बढ़ चले। रानी की सौतेली मां सुमित्रा भी उस समय ऊपर जंगले के पास ही खड़ी थी। उसने रानी को गली में बांई ओर से आते, द्वारे पे ठिठकते और फिर दाहिनी ओर बढ़ जाते हुए देखा। एक बार जी हुआ कि पुकारे, फिर मन रुक गया। उहुं, घर में ठीक नहीं, यहां खुलकर बातें करने का मौका नहीं। सुमित्रो को रानी-रमेश के सम्बन्ध में शक तो पहले से था, पर पिछले तीन दिनों में वह मन-ही-मन पक्का भी हो गया था। रानी की मनोवेदना किसी भी तरह छिप ही नहीं पाती थी···"रमेश के कारण ही ऐसी हुइ रही है रानी।" परसों रात से सुमित्रो के मन में यही विचार चल रहा है और उसे इन दोनों के जोड़े की कल्पना करते हुए बुरा भी नहीं लगता। रानी के प्रति सहानुभूति है। सुमित्रो का जी चाहता है कि रानी से खुलकर बातें करे। पहले भी, जब कभी रमेश-रानी को लेकर उसका मन भेद भरा हुआ, उसका जी रस-विनोद में रानी से छेड़छाड़ करने को चाहता रहा। वह उसके पति की लड़की भले ही हो, पर बराबर की है और इस उमर में अपनी बराबर वालियों से रस-बतियाव का जी किसका नहीं होता। पर सुमित्रो की सास अपनी बहू और विधवा पोती को सहेली भाव में बंधने से सदा बरजती रहीं।

सुमित्रो ने तय किया कि रानी के मन की थाह लेने के लिए वह खन्ना साहब के यहां जायगी, सास से बोली : "अम्मा, हम जरा बहिनजी के यहां हुई आवें। रानी की तबियत खराब है, उसे काम में सहारा मिल जायगा।" सास ने अनुमति दे दी। रानी उस समय अकेली थी, दोनों नौकर कहीं बाहर गये हुए थे। जब दरवाजे की घंटी बजी तो रानी का उठने तक को जी न चाहा, पर बार-बार किर्र-किर्र की आवाज ने उसे चिढ़ाकर उठा दिया। दरवाजा खोला तो देखा, नयी अम्मा खड़ी हैं। उनका आना बुरा नहीं लगा, दोनों बैठ गयीं।

"रमेश बाबू का कोई पता लगा ?"

"उंहूं !"

"तुमसे तो आखिर कुछ कही गये होंगे कि बिना कहे ही चले गये ?"

"मुझसे कुछ नहीं कहा, बाढ़ की खबरें लेने जाते थे सो ही गये।"

इसके बाद थोड़ी देर चुप्पी रही, फिर सुमित्रो बोली : "कुछ भी कह लो, हमारे रमेश बाबू जैसा आदमी होना मुश्किल है। भगवान् करेंगे तो वे राजी-खुशी घर लौट आवेंगे और हमारा मन बोलता है कि जल्दी लौटेंगे।" रानी को अपनी सौतेली मां की यह सहानुभूति गहरे में छू गयी। सुमित्रो संभल-संभल कर प्रसंग को आगे बढ़ाती गई। पहले रमेश की खुद तारीफ की फिर रानी को उसके सम्बन्ध में बोलने के लिए प्रेरित किया और फिर अपने बच्चे को दूध पिलाते हुए अचानक ही कहा : "देखो रानी, भगवान् चाहेंगे तो सब ठीक हुइ जायगा——यहां तक ठीक होवैगा कि तुम दोनों का ब्याह भी हो जायगा।"

रानी के अंसुआए मुख पर लाज भरी पुलक की बिजली दौड़ गयी। उसने अपने-आपको पहली बार सुमित्रो के अत्यधिक निकट पाया। कृतज्ञता में उसने सुमित्रो की बांह पर अपना गाल रखकर भावाभिभूत हो आंखें मींच लीं और

उसकी बन्द आंखों से तृप्ति के वेदना-रंजित आंसू बहकर सुमित्रो की बांह को नम करने लगे। अपने घर में रानी को आज पहला सहारा मिला था। दुःख में सबसे बड़ा सुख उसे यही मिला।

उसी दिन शाम को छः बजे रमेश खन्ना साहब के साथ रानी को ड्राइंगरूम में आता हुआ दिखलाई दिया। रानी देखकर अचक रह गई। मुंह खुल गया और कलेजे का सारा बोझ एक भरी हुई सांस के साथ बाहर निकल गया और उसके बाद ही शरीर इतना निढाल हुआ कि वह लड़खड़ा-कर आगे की ओर झुक गई।

"देखना, सम्हलना इतनी परेशानी की क्या जरूरत है?" कहते हुए खन्ना साहब ने रानी को कन्धे से पकड़कर सीधा किया और अन्दर चले गये। रानी मुक्त होकर, टकटकी बांधकर अपने प्रिय को देखने में लीन हो गई। रमेश का चेहरा नया-नया लग रहा था। तप्त अनुभवों की लू-लपट भरी लम्बी डगर पारकर मंजिल पर पहुंचने के श्रम भरे सन्तोष में इस समय रमेश का वह सहज भोला उल्लास नहीं था। वह गंभीरता रमेश के व्यक्तिव में नयी चमक ले आयी थी।

उस दिन सुबह से खन्ना साहब स्वयं दौड़े-धूपे थे। उन्होंने नगर के सर्वोच्च सेना-अधिकारी को जाकर घेरा, गरमागरमी की, पर नतीजा कुछ न निकला। फौजी अधिकारी सूबेदार वरयामसिंह के इस वक्तव्य से संतुष्ट थे कि सैनिक नाव-गाड़ी पर कोई पत्रकार कभी नहीं गया, पर 'इंडिपेंडेंट' के सम्पादक श्री आनन्द-मोहन खन्ना आज कटिबद्ध थे। उन्होंने एक मोटरबोट का प्रबन्ध कर ही लिया। नरही, जापलिंगरोड क्षेत्र के एक अच्छे जानकार व्यक्ति को मुक्तेश्वर अस्थाना के साथ लेकर वे टोह में निकले और घण्टे-टेढ़-घण्टे तक इधर-उधर चक्कर काटते हुए अन्त में रमेश के पास पहुंच ही गये। उस छत का एक भाग तब तक टूटकर पानी में बह चुका था और उसके साथ ही वहीदन बीबी का बूढ़ा नौकर हामिद भी। 'इण्डिपेण्डेण्ट' के संचालक स्वनामधन्य डॉ० आत्माराम की सौतेली बहन, तवायफ वहीदन तब से पागल-सी हो गयी थी। उस दिन शाम की चाय पीते समय रमेश ने अपने दो दिनों के जो अनुभव सुनाए, उनसे सभी को रोमांच हो आया।

तेरह

इधर तो मेरा उपन्यास डर्बी के घोड़े की तरह दौड़ा है। ये बाढ़ के दृश्य यदि मुझे—मेरी सारी चेतना को—बांधे न रखते, तो जो अपमान और आघात मुझे (और माया को) इन दिनों सहना पड़ा है, वह मन में तड़पा-तड़पाकर मुझे दीवाना बना देता।

आज छः दिन हुए, सुबह की डाक से एक निमन्त्रण-पत्र मिला। बहुत आकर्षक छपाई, बेशकीमत कार्ड, मजमून भी बड़े लोगों की भाषा अंग्रेजी में। मिस्टर और मिसेज··पुरी आई० सी० एस० ने मिस्टर और मिसेज अरविन्दशंकर को अपनी पुत्री निर्मला और उमेशशंकर आई० ए० एस० के पाणिग्रहण संस्कार के

शुभअवसर पर आमंत्रित किया था। उत्तरापेक्षियों में पांच आई० सी० एस०, आई० ए० एस० लोगों के नाम थे।

मैं धक्क से रह गया। उमेश ने अपने दो-एक पत्रों में पुरी साहब की कृपा और उनके घर वालों के प्रेम-व्यवहार का चर्चा तो किया था, पर यह नहीं लिखा था कि वह उनकी लड़की से विवाह करने वाला है। बड़ा चालाक निकला पट्ठा।

लेकिन इस पुरी को देखो, उसने हमारे साथ इतना शिष्टाचार तक बरतने की जरूरत न समझी कि विवाह से पहले हमें एक पत्र तो लिख देता। लेकिन इतने बड़े आई० सी० एस० को भला हमारी क्या परवाह हो सकती है। मैं मन्त्री या एम० पी० होता, सेठ होता, तो पुरी हरगिज मेरी अवज्ञा न करता। एक भारतीय लेखक और वह भी हिन्दी का लेखक उसकी दृष्टि में कौड़ी मोल भी नहीं है। उँह, न सही! मेरे उपन्यासों के पाठकों की दृष्टि में मेरा मूल्य है। उमेशो ब्याह गया, उसका भविष्य संवर गया। सुख पाये, फले-फूले।

माया को जब मैंने यह कार्ड-कथा सुनाई, तो पहले उनका मुख-मण्डल खुशी से चमक उठा और फिर वह उदास भी हो गई। बड़कू के ब्याह में जो कुछ थोड़ी-बहुत मन की मुरादें पूरी हुईं। भवानी ने अंतरजातीय और आर्य समाज पद्धति का विवाह किया, मन की कोई हौंस ही पूरी न हो सकी। उमेशो के ऊपर माया का बड़ा लोभ था। एक तो ब्याहने के लिए यही अन्तिम बेटा, दूसरे जब आई० ए० एस० हो गया, तो कई बड़े-बड़े लोगों के यहां से लड़के की जनमपत्री के मंगौवे आये। कई स्त्रियां माया की खुशामद करने आईं। पर उमेश साफ मना लिख चुका था। फिर भी माया सोचती थी कि लड़का जब भी ब्याह को राजी होगा, तो यों करूंगी और ऐसे करूंगी। वह कुछ भी न कर सकी बेचारी। समधी ने उन्हें समधी की तरह पूछा तक नहीं और उनके लड़के को अपना दामाद बना लिया। माया ने करारा आघात पाया। उन्हें समधी के इस व्यवहार की पीड़ा न थी, लड़के ने ऐसी बेमुरव्वती दिखलाई, इसका कष्ट था। उमेश अगर अड़ जाता कि मेरे माता-पिता, भाइयों-बहनों और सब परिवार को बुलाओ वरना विवाह न करूंगा, तो फिर समधी लाख बड़े आदमी हों, मगर वर के कुटुम्बियों की यों अवज्ञा न कर पाते। 'जब अपना ही सिक्का खोटा है तब और को क्या कहें।'

लड़के का ब्याह था और मां उदास थी। मैंने उन्हें काफी समझाया। उमेश महत्वाकांक्षी है, मगर कमजोर भी है। 'जी हजूरी' उसकी नीति नहीं, उसका चरित्र है। मैं जानता हूं, मन से उसने यह अवश्य चाहा होगा कि ऐसे शुभ अवसर पर हम सब उसके साथ हों। मगर ससुर साहब ने उत्सव की कोई योजना निश्चित कर दी होगी (और उसमें हम लोग कहीं समाए न होंगे) तब उसका यह हियाव ही न पड़ा होगा कि उसमें कुछ सुधार करवा सके। मैं जानता हूं कि मेरे बेटे ने मेरी सम्मान-रक्षा के लिए ही मुझे और अपनी मां को नहीं बुलाया; वह जानता है कि सरकारी अफसर समाज में किसी लेखक का सच्चा मान नहीं है! ऐसों को भला वह सक्रिय महत्त्वाकांक्षी कैसे बुलाए?

हमारी नई पीढ़ी में इस समय दो तरह के लोग हैं। एक सक्रिय महत्वाकांक्षी हैं, और दूसरे हताकांक्षी। महत्वाकांक्षियों की सक्रियता आजकल (या शायद सदा) खुशामद, तिकड़म, दांवपेंच और स्वार्थ भरी बदमाशियों की दिशा में रही है। उनकी आकांक्षा का महत्व केवल उसी तक सीमित है—और इसलिए वह

वर्ग अकेली लड़त लेता है। और दूसरा हताकांक्षी वर्ग कोल्हू का बैल है। उसे जो चाहे अपने काम में जोत ले, जहां चाहे जोत ले। उसके अरमान शुरू ही से कभी उमंग नहीं पाते। आर्थिक दृष्टि से निम्न निम्नतम घरों में पैदा होनेवाले लड़के अपने मन में महत्वाकांक्षाएं पालने तक के अधिकारी नहीं माने जाते हैं। कुछ तो पुराने अन्त्यज हैं और कुछ दूसरे महायुद्ध के बाद नये आर्थिक मान्यताओं वाले नये समाज के अन्त्यज हैं। मैं समझता हूं कि इन्हीं आर्थिक अंत्यजों की सन्तानें ही आज विद्रोह-पथ पर अग्रसर हो रही हैं। उनका विद्रोह दिशाहीन हो सकता है। उच्छृंखलता, औद्धत्य विचारहीनता आदि कई दोष उसमें गिनाये जा सकते हैं, पर उनकी पीड़ा सच्ची होती है। उनके विद्रोह के पीछे किसी न्याय की ईमानदारी भरी मांग अवश्य है।

अभी बाढ़ के बाद ही कई विश्वविद्यालयों में छात्र-विद्रोह हुए। हमारे यहां भी हुए थे। सोचता हूं, उन्हें ही चित्रित करूं। मगर विश्वविद्यालय की घटनाओं का इतिहास मैं नहीं लिखना चाहता। क्यों न इन लड़कों का यह सत्य विद्रोह इस वार मुहल्ले की पृष्ठभूमि पर पेश किया जाए? इन आर्थिक योजनाओं के दिनों में क्यों न एक बड़े असत्य के मोर्चे पर अपने जवानों को देखूं।…एक ऐसे ही विद्रोह की पृष्ठभूमि मेरे मन में आ रही है।

आओ अरविन्द, दुनिया के चक्कर छोड़ो, काम में रमो; इसमें सभी प्रकार की समाधियां लग जाती हैं। विम्बावली एक बार अपने ढर्रे पर सध भर जाए, फिर तो बस तमाशा देखे चले जाओ। चेतना अन्तर्मुखी होते ही सचमुच दैवी शक्ति हो जाती है। आओ, लिखो नया अध्याय…

फरवरी का महीना। शिवरात्रि का दिन। कूचा केशोराय में राजा की हवेली के विशाल खंडहर के ऊपर लकड़ी-कोयले की टाल के सामने क्यू की लंबी लाइन लगी हुई है। पचासों का शोर-शिकायतों-बातों से भरा मजमा है। अखबार का एक फटा टुकड़ा हवा से धरती पर सरकता है और फिर एक नये झोंके के साथ उड़ने भी लगता है। लाइन में खड़ा हुआ बिसनू एकाएक बचकानी उमंग में लपककर वो फटा टुकड़ा हथियाकर देखने लगता है।

"भोले, ये रानी की फोटू देखी बाबू? क्या जोर की मुस्की मारी है कि दांतों के मोती लुटा दिये देखने वालों पे?" छपी तस्वीर का रसीला मुआइना करने के बाद अपने से चार-पांच जने आगे खड़े शंभू हलवाई के बेटे भोले से बिसनू ने कहा।

पीछे खड़े खिचड़ी मूंछोंवाले काने लालता महाराज ने बिसनू का हाथ खींच कर फोटो देखी, रस की केसर चेहरे पे खिलके महक उठी, रीझ भरे गद्गद स्वर में बोले; "बड़ी खूबसूरत, बड़ी जवान है।"

"अरे इस खूबसूरती और जवानी पे सात लाख के फूल बरसाये गए थे दिल्ली में—साली फूलों की कालीन बिछा दी रानी के लिए।" बिसनू ने ऊंचे स्वर में हाथ बढ़ाकर बखाना।

"सात लाख के फूल? अमां नहीं।" गुल्लू बाबू हाथ के झोले से अपना मुंह पोंछते हुए बोले।

"जी नहीं, ये फैक्ट है। जवाहरलाल नेहरू से एक ने प्रश्न कर दिया था प्रेस

कांफ्रेंस में।" छैलू बोला।

"तो फिर क्या बोले नेहरू ?" एक ने कहा।

"अजी बोलते क्या, मजाक में टाल गए, कहा कि फिजूलखर्ची भी आखिर किसी सूरत को देखकर ही होती है।"

"हाय क्या बात कही है बाबू, जवाहरलाल ने, वाह! अरे राज्जा, सूरत पे तो लोगबाग जानें गंवा देते हैं, ये धन-दौलत क्या चीज हैगी। आय-हाय, बिसनू बाबू, वो फोटो एक बार और दिखाय देओ तनी। अरे, सात लाख के फूल बरसे हैं राज्जा!" लालता महाराज ने रंग-आशिकी घोला, लोग-बाग उनकी अदाओं पर हंस पड़े। लालता महाराज, लाला रूपचन्द महाजन के नौकर, बरसों के विधुर, महरी-मेहतरानियों के पीछे भागने के लिए परम प्रसिद्ध रसिया है। लाला रूपचन्द के वे बड़े मनबसे हैं, जिसके यहां कर्रा तगादा करना है, उसके यहां अपनी कानी आंख दिखाने सवेरे-सवेरे ही धमक जाते हैं। अपने कुटांट के लिए भी वे जाने-माने पुजे-पुजाये हैं। पिछले वर्ष तक—कई वर्षों तक—ये छैलू के घर लाला का तगादा लेकर जाते-आते रहे, इसलिए उसे इनकी सूरत से चिढ़ है। अब उसके पिता ऋणमुक्त हैं, वह अपनी नफरत दिखाने का कोई मौका नहीं चूकता। इस समय भी लालता महाराज की रसभंड़ैती उसे चिढ़ा गई, झिड़ककर बोला: "चुप बे काने, वो सिनेमा-स्टार नहीं, एक देश की रानी है। अदब से बात कर।"

"ठीक कहते हो छैलू। बड़ी कायदे की बात कही है लड़के ने; हम लोगों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए।" वयोवृद्ध हरगोविन्द मुनीम ने गंभीरता भरे स्वर में कहा और फिर बोले: "अरे, अभी कल तक तो उसके बाप राज करते रहे हम पर। मल्का टूरिया की परपोती हैगी। अंग्रेजी टैम में ललता महाराज ने ऐसी हरकत की होती, तो पुलिस इनको डंडे लगाते भये लै जाती अब तलक।"

"अब भी मुनीमजी—अब भी। हम अपने मान्य मेहमान का ऐसा मजाक नहीं उड़ा सकते। ये अपराध है।"

जनमत ऐसा बना कि लालता महराज छैलू पर केवल अपनी एक आंख का तेज बरसाकर ही रह गए, कुछ बोल न सके। क्यू की लाइन भी इसी बीच में कुछ आगे खिसकी। इस गतिशीलता में बात की गति भी वहीं से बदल गई।

"क्या लाइफ हो गई है साहब, घड़ी-छिन को भी चैन नहीं मिलता काया को। आज छुट्टी का रोज है, तो डेढ़ घण्टे से लाइन में खड़े में। और इस रफ़्तार से अभी घण्टा-पौन-घण्टा लग जाएगा हमारा नम्बर आने में। अन्धेर है, कोयले के लिए भी लाइन और परमिट।" अधेड़ उम्र, सींक-सलाई देहवाले गुल्लू बाबू ने बड़ी ऊब और खीझ के साथ कहा।

अरे कहां तक रोया जाए गुल्लू बाबू। अब देखौ, हमारा बुढ़ापे का शरीर हैगा, मगर यहां बैठे भये हैं। क्या करें? लड़कों को कोठी के काम-काज से ही फुरसत नहीं मिलती। पोतों के अब पढ़ाई के दिन आ गए। हमने कहा लाओ भाई, हमी खाली हैं, जाय के लैन में खड़े भए जाते हैंगे।" मुनीमजी ने दुःख और उलझन भरी गर्दन हिलाई।

"अब आपकी क्या उमर होगी मुनीमजी ?" छैलू ने पूछा।

"सम्मत बयालीस का जनम हैगा हमारा। पिछत्तरवां साल है।"

जवाहरलाल नेहरू से दो ही तीन बरस तो बड़े हैं, मगर देखिए आप कितने झुरझुरा गए हैं। और वो आपके सामने कितने जवान लगते हैं।" छैलू ने कहा।

"अरे भई, उनकी-इनकी बराबरी। वो लखपती के बेटे और आप भी इत्ते बड़े प्राइम मिनिस्टर, फलों के रस और विटामिन—"

"नई, देखो भई इसमें किसी का मिलान नई करना चाहिए।" गुल्लू बाबू की बात काटकर मुनीमजी बोले : "जिस आदमी में अपने सतकर्मों का तेज होता हैगा, और उमर नहीं व्यापती, फिर भाग और पुरबले जन्म का तेज होता हैगा, और फिर भैया धन-बैभो कुर्सी का महातेज होता हैगा। भगवान् की दया से जवाहिरलाल नेहरू को तीनौं तेज प्रापत हैंगे। औ' हम ससुर —अरे बारा रुपल्ली हमारे बाप पाते रहे। तीन रुपै से हमने मुनुआजी की कोठी में काम शुरू किया, पचास रुपया महीना तक पाया। फिर फालिजै गिर गया हमारे ऊपर, तो बेकाम हुइ गए। क्या करें। हमारे पास भला कौन-सा तेज हैगा ?"

"हां-हां भाई, जिनके पास तेज है, वो तप रहे हैं सूरज जैसे। हम लोग फूटे नसीब के ढोल ससुरे, इनके तेज से भुलसे जा रहे हैं। हद्द है, डालदा साले पर भी टैक्स लगा दिया, घी तो पहले ही से नापैद था।"

"अरे गुल्लू बाबू, एक डालडा ही क्यों गिनाते हैं, चाय, माचिस, कत्था, सुपारी, तमाखू, कपड़ा सभी पर तो टैक्स पड़ गया। लकड़ी, लोहा, रेशम और अल्लम-गल्लम से मतलब नहीं हमें। जीना मुहाल है साहब, क्या कहें। और ऊपर से शान बघारे जाते हैं ये लोग। लाखों-करोड़ों विदेसियों के स्वागत-सत्कार में खर्च कर देते हैंगे।"

लाइन अब फिर अपना खालीपन भरने के लिए तेजी से आगे सरकी। बैठे हुए लोग उठे, कुछ आगे बढ़कर फिर बैठ गए, कुछ खड़े रहे। दो-एक अपनी जगह दूसरे को जतलाकर हल्के होने के लिए निकल गए। बीड़ी-सिगरेटें सुलगीं। टीले के ऊपर बनी बारहदरी की टूटी चहारदीवारी पर चढ़कर एक दस-बारह बरस का लड़का चिल्लाया "छैलू भैया।"

"क्या है ?" इधर से छैलू ने पूछा।

"रमेश भैया कह रहे हैं कि कोयले यहां के लिए भी ले लीजिएगा। कार्ड और पैसे भेजते हैं।"

"अच्छाऽऽ।" कहकर नजर घूमी तो देखा कि लाला रूपचन्द, पुत्ती गुरू, हरबिलास बाबू वकील, लाला मिट्ठनलाल आदि प्रमुख लोग टीले पर चढ़ रहे हैं। उन्हें देखकर अनायास ही छैलू के मुंह से निकल गया : "ये यहां क्यों ?"

"लाला रूपचन्द इस टीले को हड़पना चाहते हैं। यहां से नई सड़क निकल रही है ना।" पास ही खड़े गुल्लू बाबू ने कहा।

"यहां क्या बनेगा गुल्लू चाचा ?" छैलू ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"मन्दिर-धरमशाला, आगे नई चाल के मकान-दुकानें—अरे कल्है तौ रात में जिकिर कर रहे थे रुप्पन हमारे सामने। चलो अच्छा है, बरसों बाद इस खंडहरे के दिन भी पलटेंगे।" मुनीमजी की दृष्टि बराबर टीले के ऊपर आती हुई पार्टी पर जमी रही और धीमे स्वर में बात भी करते रहे।

"और हमारी बारहदरी ?"

"ये सब—" मुनीमजी ने चारों ओर हाथ घुमाकर बखाना : "राजा केसोराय की जगह अब फिर से जगमगा उठेगी। मुनीमजी के चेहरे पर भविष्य की कल्पना सुखद रूप से चमक उठी। छैलू के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं, उससे खड़ा न रहा गया। लाइन छोड़कर सीधे बारहदरी की ओर भागा। जाने

के लिए टीले से उतरते समय रूपचन्द मण्डली के पास से गुजरा, उसका मन सनसना उठा। तेजी से टीले से उतरकर गली में दौड़ने लगा।

हाईस्कूल और इण्टर की परीक्षाएं अब लबेदम आ लगी हैं, यूनिवर्सिटी के इम्तहान भी सर पर भूत की तरह नाचने लगे हैं। बड़े लड़कों का हुड़दंग अब बन्द हो गया है। हनुमानजी और कालीजी के मन्दिरों में उनकी सुबह-शाम की आवा-जाही क्रमशः बढ़ चली है। शिवरात्रि का व्रत भी प्रायः सभी ने रक्खा है, इस कारण सबेरे के भोजन के लिए लड़कों में भागी-भागी भी नहीं है। राजा केशोराय की बारहदरी में स्थित तरुण छात्रसंघ के लड़कों की तीन-चार टोलियां अलग-अलग कोनों में बैठी सामूहिक अध्ययन कर रही हैं। कहीं भी शोर का नाम तक नहीं है। आमतौर पर लड़के अपनी टोलियों में फुसफुसा कर बातें करते हैं, कहीं से एकाध वाक्य जोर से भी फूट पड़ता है।

एम० ए० की छात्र टोली में इस समय अल्पविराम-सा हो रहा है। बीड़ी दगाकर एक कश खींच कर कम्मी बोला: "नवम्बर-दिसम्बर की स्ट्राइक अब साली खोपड़ी पर बोल रही है, समझ में नहीं आता, कोर्स कैसे पूरा होगा। वर्मा साहब ने तो साफ़-साफ़ कह दिया है, कि भइया मैं किताब पूरी पढ़ा दूंगा, पर एक्सप्लेन कुछ भी नहीं करूंगा, क्योंकि अब टाइम बिलकुल नहीं रहा।

"तो वर्मा यों ही कब कोर्स कंप्लीट कराते हैं। उन्हें यूनिवर्सिटी की पॉलिटिक्स से फ़ुरसत ही कब रहती है? लड़के साले फ़ेल हों या पास हों—"

"हां, एकआध-दो लौंड़ियों की फ़िक्र ज़रूर कर लेते हैं। अब की ऊषा पंडित ही फ़र्स्ट आएगी रमेश। तुम साले यहां पढ़-पढ़ के मरे जाते हो।"

रमेश ने अपना ऊनी चदरा उतारते हुए तैश में सिर झटकार कर कहा: इस वर्मा के बच्चे ने अगर लौंड़ियाबाज़ी के फेर में मेरी पोज़ीशन खराब की, तो मैं भी मैंकू को पचास रुपये चटा के साले की नाक ही कटवा दूंगा और ऐसी साफ़ करवाऊंगा कि साला प्लास्टिक सर्जरी भी न करवा सके।"

"अरे यार, क्या खुराफ़ात बकते हो। गुरू हैं आखिर हम लोगों के। कुछ तो भारतीय संस्कृति का ध्यान रक्खो।" गोडबोले ने कहा।

"सब साली भारती संस्कृत है। हम लोगों को सोलह दूनी आठ पढ़ाने के लिए भारती संस्कृत और अपने लिए हराम की तनख्वाह और ऐश। मैं तो सच कहता हूं रमेश कि ऐसे प्रोफ़ेसरों के लिए अमरीका की 'कू क्लक्स क्लान' जैसी संख्या खोलनी चाहिए। किसी लौंड़ियाबाज़ की खोपड़ी तोड़कर यूनिवर्सिटी के लॉन में उसकी लाश फेंक दी जाए, किसी को पेड़ से उल्टा टांग दिया जाय, किसी के नाक-कान काटे जाएं—तब ये लोग काबू में आएंगे। साले हम पर 'इंडिसिप्लिन' का चार्ज लगाते हैं और आप ही 'मोस्ट इण्डिसिप्लिन' स्वार्थी और क़मीने हैं।"

"मैं तुम्हारी तरह गालियां तो नहीं दूंगा, क्योंकि अपना ही मुंह खराब होता है, पर ये अवश्य कहूंगा कि अपने बड़ों पर अब वो श्रद्धा मैं भी नहीं रख पाता, जो कि कायदे से हमें रखनी चाहिए। प्रोफ़ेसर भट्टाचार्य अक्सर कहते हैं कि हमारे प्रोफ़ेसर्स ऐसे ग्रेट थे और वैसे ग्रेट थे—एक दिन मैंने कह दिया कि सर, जैसे आप लोगों के प्रोफ़ेसर्स ग्रेट थे, वैसे हमारे प्रोफ़ेसर्स ग्रेट क्यों नहीं हैं? वो झुंझला गए, बोले कि हम लोग ग्रेट थे, इसलिए हमारे प्रोफ़ेसर्स भी ग्रेट थे। इस पर मैंने कहा

कि सर, आप लोगों में ग्रेटनेस थी तो हम लोगों को क्यों न मिली ? इस पर वो एकदम से पेट्रोल की तरह भभक पड़े, पूरा पीरियड इण्डियन कल्चर पर बकवास करते ही बिता डाला।" जयकिशोर ने कहा।

रमेश बोला : "होगा यार, हटाओ इस चकल्लस को। एक बार चाय बन जाए।"

तभी छैलू दौड़ता हुआ आया : "रमेश, रमेश, हमारी बारादरी गई हाथ से।"

सुनकर छोटे-बड़े सभी लड़कों में समान रूप से कौतूहल जागा। छैलू बड़े लड़कों के बीच में जाकर चटाई पर धम्म से बैठ गया। एक बार दम लेकर उसने पूरी बात सुनाई, सुनकर सभी गम्भीर हो गए। जयकिशोर एक नाटकीय आह भरकर टांगें पसारता हुआ बोला : "हाय बकौल अकबर के जिस जगह मैंने बनाया घर, सड़क में आ गया। अब तुम्हारी आत्माराम वाली योजना का क्या होगा मित्र ?" उसने रमेश की ओर देखा।

रमेश क्रोध में भरा था। उसके अन्दर अपने पिता के विरुद्ध ज्वाला भड़क उठी थी। उसकी योजना पर यह वज्रपात उन्हीं के कारण हुआ है।

लगभग डेढ़-दो महीने पहले की बात है। डॉ० आत्माराम लखनऊ आने वाले थे। रमेश की इच्छा हुई कि डॉक्टर साहब को तरुण छात्रसंघ में मानपत्र अर्पित किया जाए। इसके लिए सभी सदस्य उत्साहित थे। खन्ना साहब से बात हुई। यद्यपि डॉक्टर साहब का कार्यक्रम बहुत व्यस्त था, फिर भी नए वर्ष के नए दिन की शाम संघवालों को दे दी गई। सन् '61 की पहली जनवरी को यह बारहदरी दुलहिन की तरह जगमगा रही थी। डॉ० आत्माराम के सम्मान में जलपान और नृत्य-संगीत का आयोजन हुआ था। दो-ढाई सौ अफ़सर, प्रोफ़ेसर, नेता और पत्रकार आए थे। इन लड़कों ने आठ सौ रुपये इकट्ठे कर लिए थे। बड़ा शानदार प्रबन्ध किया था। उसी दिन जलसे के बाद बातचीत में महापालिका के मुख्य नगर-अधिकारी ने डॉक्टर साहब को यह बतलाया कि नगर-सुधार योजना में यहीं से एक नई सड़क निकाली जा रही है। इस जगह का नक्शा ही बदलने वाला है। रमेश ने बातों-बातों में विनयपूर्वक कहा कि यदि टीले और बारहदरी को सरकार थोड़ा-बहुत सुधार दे तो हमारी संस्था यहां बड़ा काम कर दिखलाए। बात बनते-बनते कुछ ऐसी बनी कि डॉ० आत्माराम ने पुस्तकें खरीदने के लिए अपनी ओर से एक हज़ार रुपये देने का वचन दे दिया और खन्ना साहब से कहा कि वे लखनऊ, कानपुर के रईसों से मदद लेकर अपने क्षेत्र के लड़कों का यह काम कर डालें।

उसी रात घर में बड़े उत्साह से वह जब अपनी मां को यह सब बतला रहा था तो उसके पिता बोले : 'देखो रमेश, तुम्हारा समझा भया नहीं था, सो उत्ती बखत ये सब बोल गए। खैर, कोई हर्ज़ नहीं। मगर रुप्पन ने हमसे कहलाया है कि इस विचार को अब आगे न बढ़ावैं। ये टीला और बारादरी धर्मशाला और मंदिर की खातिर रुप्पन लै रहे हैंगे। समझे। रुप्पन तो खाली अपने बाप के नाम से धर्मशालै बनवाय रहे थे, मगर हमने कहा कि लावारिस 'जमीन से केशोराय का नाम मत उजाड़ो, ये अधर्म होवैगा। इस हेतु से तुम बारादरी में केशवजी का मंदिर भी बनवाओ। भगवान् के बहाने केशवराय का नाम भी अमर हो जावैगा। उनकी आत्मा तुम्हें और तुम्हारे कुल को असीसैगी। रुप्पन इस विचार से उछल

पड़े, बोले गुरू तुम्हारी बात मान ली।...सो मामला इस प्रकार है। समझ गए !"

रमेश अपने पिता या रूपचंद के विचार व्यवहार को पसन्द नहीं करता; रूपचंद महाजन से तो घृणा ही है। उसके दो मित्रों, लच्छू और छैलू के परिवार जिस तरह ऋण लेकर रुप्पन और उसके कारिन्दों द्वारा अपमानित किए गए, उसे देखकर रमेश का तन-मन 'रुप्पन चाचा' से फुंकता है। और उधर पुत्ती गुरू का सबसे बड़ा मित्र यदि कोई है तो रुप्पन। न कोई अरथ न स्वारथ जैसे और चार जगह पाठ करते हैं, वैसे उनके यहां भी। तिथि-त्योहार कुछ सीधा, फल, मिठाई वगैरा भी आ जाती है; औरों के यहां से भी आता है। विशेषता कुछ नहीं, पर बाबू के लिए जो रुप्पन हैं, वह और कोई नहीं। लड़की के ब्याह तक में खास कुछ न दिया, तो भी रुप्पन ही रुप्पन ! छिः ! रमेश तप उठा, बोला : "देश के नवयुवकों का विकास हमारे संघ जैसे संगठन केन्द्रों से ज्यादा होगा, मन्दिरों से नहीं। मन्दिर तो हमारे आस-पास में कई हैं। धर्मशाला भी तीन-चार हैं। मगर तरुण छात्रसंघ तो एक ही है। देखिए क्या काम किया हमारे सदस्यों ने बाढ़ में कैसी सेवा की। कैसी अच्छी-अच्छी प्रतियोगिताएं चलाते हैं हम लोग। सारे नगर से इतने नौजवान नेता हर साल आते हैं—आज डॉक्टर साहब तक तारीफ़ कर गए और हमारी दयनीय दशा देखकर आपके मित्र लाला रूपचन्द और यहां के सब लक्ष्मी-वाहनों की स्वार्थ-वुद्धि को लताड़ गए, तब भी रुप्पन चाचा को ये कहलाते हुए लाज न आई ! उनसे कह दीजिएगा कि हमारी बारहदरी और अब तो हमारे टीले की तरफ़ भी वे आंख तक उठा के न देखें।" रमेश की मां भी बेटे के पक्ष में बोली। बेटे ने फिर स्वारथ बखानना शुरू किया कि मन्दिर की आड़ में वह इतनी बड़ी जायदाद, जो अब सार्वजनिक है, हड़प कर जाना चाहते हैं। मां भी निन्दा करने लगी। पुत्ती गुरू की भांग उस समय चूंकि पुत्र और पत्नी के अनुकूल तरंगें ले रही थी, इसलिए वे चुप हो गए।

तब से आज तक फिर कोई प्रसंग न चला। लड़के सोच रहे थे कि इम्तहान से निबटें तो संघ को नया रूप दें। आजकल एकजुट पढ़ाई में लवलीन थे। और अचानक छैलू ने यह खबर देकर सबको चौंका दिया।

हर्रो बोला : "यार ये तो बुरी सुनाई। फिर हम लोग कहां जाएंगे।"

"हम लोग कहीं नहीं जाएंगे। यहां तो ऑलरेडी मन्दिर है।" रमेश ने गंभीर स्वर में कहा।

"यहां कहां मन्दिर है रमेश भैया ?" पास ही खड़ा हुआ पम्मी बोला।

"ये मन्दिर नहीं तो और क्या है ? यहां लड़के पढ़ते हैं, लिखते हैं, कसरत करते हैं, आत्मसुधार करते हैं। खैर, चिन्ता छोड़ो जी, एक बार चाय पीने दो, फिर जो होगा सो देखा जाएगा, आखिर हमारे ही बड़े-बुजुर्ग तो आ रहे हैं ना, कोई सरकारी अफ़सर तो है नहीं, जो हमारा कहना ही न सुनें। उठो जैकिशोर चाय बनाओ यार।"

बड़ों में चाय का दौर अभी चल ही रहा था कि फाटक से कुछ व्यक्तियों के ऊपर आने की आहट और बातों के अस्फुट स्वर सुनाई पड़ने लगे। सभी का ध्यान उस ओर गया। आने वाली टोली को देखकर लड़के चौंककर कुछ-कुछ आश्चर्य-स्तब्ध भी हो गए। बीड़ियां बुझीं और छिप गईं। लड़के करीने से बैठ गए। मुहल्ले के सबसे बड़े धनीधोरी लाला रूपचन्द, रमेश के पिता पुत्ती महाराज,

लाला मिट्ठनलाल बैंकवाले, बाबू हरबिलास वकील तथा दो-एक सज्जन और भी सीढ़ियां चढ़कर अहाते में आ खड़े हुए। बातें होने लगीं।

"ये देखो, जगह ही जगह है। अरे, मैं कहता हूं लाला मिट्ठनलाल, कि आस-पास के आठ-दस मुहल्लों में इतनी बड़ी जगह आपको ढूंढ़े से भी नहीं मिल सकती।"

"मैं तो कहता हूं कि राजा केशोराय की आतमा को अब जाय के शान्ती मिलैगी। धर्मात्मा रहे होंगे बिचारे, तभी तो लालाजी के मन में भी ये धरमभाव जागा। क्यों पंडितजी कि झूठ कहता हूं?" लालाजी ने पुत्ती गुरू की ओर देखकर कहा।

पुत्ती गुरू बोले : "सत्य कहा, अरे काया पलट हो जायगी इस जगह की। तिमंजली धर्मशाला इस वार्ड में एक नहीं है। हमारी तो यही इच्छा है रुप्पन, कि जैसी नाके हिंडोले पर शीतल धर्मशाला बनी हैगी घड़ीदार, वैसी ही यहां भी बनवाना और घड़ी में घंटे ज़रूर लगवाना कि रात-बिरात दूर-दूर तक घंटे सुनाई पड़े।" पुत्ती महाराज कहते हुए घंटों की कल्पना ही से गद्गद हो उठे।

लाला रूपचन्द का चेहरा भी खिल उठा, बोले : "ये घंटाघर का अच्छा ऐडिया रहा गुरूजी, चलो शिवरात्रि के दिन ब्रह्मवाक् निकला है आपके सिरींमुख से, तो ऐसा ही होगा। फिर, वकील साहब, बोलो भई, कैसे इसका लीगल हिसाब-किताब बैठेगा। राजा केसोराय के खानदान में तो मेरी जान में कोई बचा ही नहीं है। ज़मीन···"

"ये सब चिन्ताएं आप छोड़िए लालाजी, पहले एक प्लानिंग मोटे तौर पर कर लीजिए,"—वकील साहब बोले : "मैं तो समझता हूं कि जहां ये बारहदरी बनी हुई है, वहीं मन्दिर बनवाना उचित होगा। ये हिस्सा पूरा-का-पूरा ठाकुरद्वारे के काम में आ जाएगा और बाकी तीन तरफ धर्मशाला की स्कीम बना लीजिए, फाटक फिर इधर हो जाएगा, नई सड़क की तरफ़—"

"हां, उधर सड़क की तरफ और इधर पिछवाड़े सड़क के तरफ जहां ये फाटक बना हुआ है, यहां दूकानें आ जाएंगी। तीन साढ़े तीन सौ की आमदनी का ब्यौंत बैठ जाएगा। उससे मन्दिर, धरमशाला का खर्चा निकलता रहेगा।" लालाजी ने हिसाब-किताब फैला दिया।

पुत्ती गुरू अपनी कल्पना में भविष्य को भव्यता को देखते हुए मगनमन खड़े थे। एकाएक बोले : "भइ एक विचार हमारा भी सुन लीजिए, जहां ये बारहदरी है, वहां श्री ठाकुरजी महाराज के आगे इत्ता बड़ा हाल बनवाना चाहिए, कि जिसमें एक हज़ार आदमी बैठ सकें। औ' उसमें चारों तरफ दिवालों पे संगमरबल के पत्थरों पे वेद-मन्त्र और क्या नाम है के, गीता-पुराणों के श्लोक, ये सब होवें। बड़े-बड़े साधू-महात्मा आवें तो यहां उनके प्रवचन हों, उपदेश हों, आ हा! मेरे विचार से तब बड़ा आनन्द आवैगा! साधू-महात्माओं के लिए दस-पांच कमरे सदा रिजबड रहैं कि उनमें कोई यात्री न ठहराया जावै, क्योंकि महात्माओं के ठहरने का स्थान बड़ा शुद्ध रहना चाहिए। क्या तात्विक बहार आवैगी हमारे यहां कि वाह वा!"

लड़के बड़ी देर से सुन रहे थे। सुन-सुनकर उनके मन खौल भी रहे थे। रमेश छैलू, हर्रो, छोटे-बड़े सभी के चेहरों पर हौलदिली बोल रही थी। गोडबोले से रहा न गया। एकाएक बोला : "औ' हम लोग कहां जाएंगे, चाचा?"

वकील साहब हंसकर बोले : "हां भाई, इन लड़कों का ध्यान भी रखना होगा। इनकी लाइब्रेरी के लिए एक कमरा रिज़र्व रखना चाहिए। अबकी बार तो डॉ० आत्माराम तक को पकड़ लाए ये लोग।"

लाला रूपचन्द बोले : "अरे, लाइबरेरी का क्या है। हमने तो पहले ही लड़कों की लाइबरेरी का परबन्ध कर लिया। वो कोनेवाली कुलिया में हमारा मकान हैगा—वो जो त्योरस साल भवानी से कुड़क करवाया था मैंने—"

रमेश बोला : "रुप्पन चाचा, हमारा काम वहां नहीं चल सकता, आप सब लोग देखते हैं कि साल में हमारे तीन-चार फ़ंक्शन्स होते हैं यहां। शहर भर के लड़के आते हैं। स्पोर्ट्स होते हैं। ये सब कहां जाएंगे। और अबकी तो हम लोगों को सरकारी सहायता भी मिलनेवाली है। हम लोग संघ का रजिस्ट्रेशन कराने जा रहे हैं। हमारे लिए यही जगह हो सकती है। आपके साधू-सन्त तो सब किशोरीलाल के ठाकुरद्वारे में कीर्तन कर ही लेते हैं, फिर यहां क्या ज़रूरत है?"

रमेश के पिता पुत्तू गुरू गर्माए, बोले : "ज़रूरत क्यों नहीं। अरे अच्छे स्थान की आवश्यकता साधू-महात्माओं के लिए न होएगी तो क्या तुम्हारे लौंडों-लफाड़ियों के खेल-कूद के लिए होएगी। किशोरीलाल के ठाकुरद्वारे में कहीं जगह भी है। मुश्किल से दो-ढाई सौ भी नहीं हो पाते वहां।"

"ये आपने बिल्कुल ठीक कहा गुरूजी!" लाला मिट्ठनलाल बोले : "ससुरे, हमारे महल्ले में जगह की कमी से महात्मा लोग ठहर ही नईं पाते, न कोई सन्त सम्मेलन होने पाता हैगा ससुरा। झम्मनटोले वाले एक-से-एक बढ़के उत्सव करते हैं। कैसा भव्य संगमरमर का ठाकुरद्वारा बनवा दिया है लाला राधेरमन ने।"

पुत्ती गुरू लहककर बोले : "अरे, ज़रा बन जाने दो लालाजी हमारे यहां भी—नई सड़क, नई धर्मशाला, नया मन्दिर। आहा! तब देखना शहर भर के लोग झूले-झांकी के दर्शन करने आएंगे हमारे यहां।"

रमेश उत्तेजित हो उठा, बोला : "हमारे यहां भी शहर भर के नवयुवक आते हैं। हमारा भी यह सरस्वती देवी का मन्दिर है, यह पुस्तकालय है, वाचनालय—"

लाला रूपचन्द हंसकर बोले : "बड़ा ससुरा पुस्तकालय है तुम लोगों का। ये टूटी अलमारी में चार ठो फटी-सड़ी किताबें हैं—"

"तो दीजिए ना दान हमको। अरे, लाख-दो-लाख मन्दिर बनवाने में खर्च करेंगे, हमें दस-बीस हज़ार की किताबें ही दे दीजिए। शहर भर में नाम होगा आपका।" जयकिशोर बोला।

लालाजी फिर हंसे, बोले : "ऐसा नाम हमें नहीं चाहिए भैया। कल कहोगे चकलाखाना खुलवा देव, बड़ा नाम होयगा।" सब लोग हंस पड़े।

गोडबोले ताना देकर बोला : "डॉ० आत्माराम जैसे महापुरुष हमारे पुस्तकालया को दान दे गए। वो चकलाखाना ही होगा।"

पत्ती गुरू बोले : "अरे बेटा, नाम धर्म-कर्म से होता है। शास्त्रों में लिखा है, जो एक कुआं बनवाता है, उसे मां-बाप की गया करने का पुण्य मिलता है। और जो धरमशाला बनवाता है उसकी सात पीढ़ियां तरती हैं और जो मन्दिर—"

"तो कहीं और बनवाइए जाके, हम लोग यहां से नहीं हटेंगे। तीन-तीन तो मन्दिर खड़े हैं मुहल्ले में, पहले उनकी स्थिति सुधारिए।" रमेश ने कहा।

"अच्छा-अच्छा, बकवास बन्द करो, बड़ा आया है ससुरा पुस्तकालै। लौंडे

यहां बैठकर बीड़ियां पीते हैं, चाय पीते हैं, कैरमबोट खेलते हैं। ससुर उल्टी-सीधी पुस्तकें पढ़ते हैं, जिनमें धर्म-कर्म का नाश होय।"

रमेश अपने पिता की बात सुनकर ताव खा गया, पर संयत स्वर में बोला : "खैर, बहस छोड़िए। आप लोग बड़े हैं। हमारी इतनी प्रार्थना सुन लीजिए, कि इस जगह को छोड़ दीजिए। हमारी बातचीत हो गई है डॉ० आत्माराम से। हमें आर्थिक सहायता मिलनेवाली है सरकार से—"

लाला रूपचन्द बोले : "देखो रमेश, डॉ० आत्माराम से जो इस्कीम तुम्हारी बनी है, उसे कहीं और चलाना। यहां मन्दिर ही बनेगा।"

"जी, यहां तो नहीं बनेगा।"

"यहीं बनेगा। देखेंगे, तुम और तुम्हारे आत्माराम क्या कर लेते हैं।"

रमेश सहसा आपे से बाहर हो गया, बोला : "बनवाइए भला आप लोग मंदिर, हम साले में रोज आग लगाएंगे।"

लड़के की उत्तेजना भरी बातें सुनकर पुत्ती गुरू को अपार क्रोध चढ़ आया। सबेरे छानी हुई कागाबासी भंग के नशे में क्रोध का प्रभाव पड़ते ही उनकी आंखें गुड़हल का फूल हो गईं। बेटे को मारने के लिए झपटे : "कुलांगार! मन्दिर में आग लगाएगा। मैं तेरे प्राण ले लूंगा।"

लोग 'हैं हैं' कहते हुए बीच-बचाव के लिए झपटे। लड़कों ने रमेश को अपनी ओर घसीटा, लेकिन रमेश अत्यधिक उत्तेजित हो उठा था, बोला : "हां-हां, आग ही लगेगी बाबू। या तो मेरे हाथों इस मन्दिर में आग लगेगी और नहीं तो आपके हाथों मेरी चिता में आग लगेगी···।"

लड़के रमेश को "चुप रहो—चुप रहो—होगा।" कहते हुए घेरकर घसीट-कर बारहदरी ले गए। पुत्ती गुरू अहाते में खड़े गरजते रहे : "देख लिया न आपने! यह हैगी आजकल की शिक्षा। ससुरे न बाप को मानैं, न धरम को मानैं, न देवता को मानैं—"

वकील साहब उनकी पीठ पर हाथ थपथपाते हुए बोले : "होगा गुरू होगा, जाने दो···। रुप्पन बाबू इस वक्त चलिए। हमारे ये लड़के इस वक्त बरत के भूखे खौखियाए बैठे हैं, ठंडे में समझाइएगा तो बाद में सब मान जाएंगे।"

"अरे हां-हां, अच्छे काम में कोई भी समझदार कहीं बाधा डालता है भला?" लाला मिट्ठनलाल सीढ़ी की ओर वकील साहब का हाथ पकड़कर बढ़ते हुए बोले। बाबू हरबिलास वकील का सगा भतीजा, पम्मी का छोटा भाई कम्मी जो सीढ़ी के पास ही खड़ा था, लाला मिट्ठनलाल की बात सुनकर सहसा तीखे स्वर में बोल उठा : "औ हम लोग क्या बुरा काम कर रहे हैं चाचाजी, जो आप लोग विघन डाल रहे हैं।"

लाला मिट्ठनलाल ने हंसकर उसकी खोपड़ी के बाल अपने हाथों में दबाकर उसका सिर हिलाते हुए कहा : "तू भी बड़ा लीडर हो गया है क्यों रे?—आइए रुप्पन बाबू, अब आइए भी ना।"

बड़ों के जाने के बाद बड़े लड़कों की सभा फिर जुटी। छोटे लड़के भी उनके आप-पास ही आकर जुट गए। बड़ी गर्मागर्म बातें हुईं। मुहल्ले के बड़े-बड़ों की दुश्चरित्रमयी प्रश्नचिन्ह जैसी धार्मिकता पर युवकों द्वारा वाक्प्रहार हुए। धीरे-धीरे समय बीतता गया। एक-एक दो-दो करके लड़के अपने घर जाने लगे। बड़ों की टोली भी बातों से अघा गई, छैलू बोला : "चलो यार, घर चलें। आज इस

साले रुप्पन चाचा के फेर में मेरे कोयले भी रह गए। अम्मा डांटेंगी। चलो रमेश उठो न, ढाई बज गए यार।" "तुम लोग जाओ। मैं अभी थोड़ी देर बाद आऊंगा।" रमेश का मन पिता से वाक्‌युद्ध हो जाने के कारण खिन्न था। वह अभी घर जाने से हठात् जी चुरा रहा था।

बातों की गर्मागर्मी समय बीतने के साथ क्रमशः मन की ठंडी पर्तों में लिपटने लगी, आखिर अब घर जाने का समय जो हुआ था। घर, जहां बाबू से यहां के सार्वजनिक विरोध के बाद पहली भेंट होगी। मां के सामने बाबू अब तक नौ-नौ बांस उछल चुके होंगे। मां क्या कहती होंगी? बाबू को सबसे अधिक यही खला होगा, कि सबके सामने मैंने उनका अपमान किया।

रमेश के मन में इस विचार से बार-बार झेंप झांक रही थी। वह बड़ा परेशान था—मगर घर तो जाना ही है—घर न जाय तो कहां जाय। घर अकेले बाबू ही का नहीं, सबका है। मैं भी चालीस रुपये घर खर्च में देता हूं, कोई मज़ाक नहीं है। पिता हैं, माना, पर इसका अरथ यह तो नहीं, कि उनकी हर बात मानी जाय। पढ़े-लिखे तो हैं नहीं, पंडितपेशा सड़ियल दिमाग आदमी हैं, ऊपर से सवेरे-शाम भांग के गोले। छि! इस पिता पर श्रद्धा कैसे हो?

रमेश का मन गुमान से फूल उठा। और इसी तैश में एकदम से उठकर उसने चटाई लपेटी, किताबें उठाईं बारहदरी में एक ओर फेंककर घर चल दिया। फाटक से नीचे उतरते ही रम्मू पंसारी ने हंसकर रमेश को बुलाया और कहा: "आज तो बेटा बाप ही से उलझ पड़े, क्यों? हः हः।"

स्कूल में पढ़ा चुकनेवाले मास्टर श्यामसुन्दर उसी समय छड़ी हिलाते उसके पास से गुज़रे। रमेश ने हाथ जोड़े, वे मुस्कराए, फिर रुककर उसका चेहरा देखने लगे। रमेश झेंप गया, उसे भय लगा कि वे भी यही कहेंगे। मास्टर बोले: "अब की तो फाइनल है तुम्हारा?"

"जी हां।"

"इसके बाद क्या करोगे?"

"अभी कुछ सोचा नहीं मास्साब।"

"क्यों? यह तो सोच ही लेना चाहिए हर युवक को। फिर तुम्हारे ऐसे ब्रिलियंट लड़के को अवश्य सोचना चाहिए! फर्स्टक्लास ला रहे हो ना?" मास्टर श्यामसुन्दर ने धरती पर छड़ी ठोंककर पूछा।

रमेश हंसने लगा, बोला: "खाने को तो मास्साब मिलता है डालडा, और वो भी ट्यूशनें पढ़ाने के बाद। समय कहां मिलता है? सेकेण्ड क्लास आ जाय, वही बहुत है।"

"तुम तो हमारे, क्या नाम के, गौरव रहे हो बेटे। थर्ड से लेकर हाईस्कूल तक फर्स्ट—यू० पी० में टॉप करके दिखलाया है तुमने। लेकिन फिर बाद में··· खैर, ईश्वर की मर्जी। मगर रमेश, एम० ए० में अगर तुम फिर टॉप कर लो बेटे तो कैरियर भी बन जाएगा तुम्हारा। आई विश यू आल लक माई बॉय। ईश्वर करे तुम्हें एक दिन आई० ए० एस० देखूं।' मास्टर श्यामसुन्दर ने स्नेह से रमेश का कन्धा थपथपाया और सुखद कल्पना के साथ कदम आगे बढ़ा दिया।

ईश्वर करे! ईश्वर करे! ईश्वर का तो उसने अपमान किया है। ऐन शिव-

रात्रि के दिन। ईश्वर! ईश्वर!—और रमेश का सारा मानसिक द्रोह सहमकर दब गया।

टिपरी गली। तीन फुट चौड़ी, छह सौ फुट लम्बी, आगे जाकर बन्द। सीलन की बसांध आठो याम बारहों मास बसी रहती है। रवि और कवि दोनों के लिए अगम्या। बांये हाथ पर चौथा घर पुत्ती महाराज का है—रमेश, राजेश, पन्नो और मां का घर। मगर रमेश ने द्वार खोला धीमे से, दहलीज़ में आया तो दबे पांव, क्योंकि घर पिता का है, बड़ों का है, चेतना का यह संस्कार अब भी मन में प्रबल है।

पुराना लखौरी ईंटों का छोटा-सा मकान। आठ फुट चौड़ा, दस फुट लम्बा आंगन, दाएं दीवाल, बाएं ऊपर जाने की सीढ़ी। दहलीज़ के दाएं पक्खे की ओर कुआं और बाएं पक्खे की ओर सण्डास, सीढ़ी के पास नल। सामने दालान, दालान में कोठरी, कोठरी में श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी, एक जिजमान बनैनी बुढ़िया अन्त-काल में अपने ठाकुरजी की सेवा के लिए यह घर अपने कुलोपाध्याय, रमेश के पितामह बिद्दू महाराज को संकल्प कर गई थी। ठाकुरजी पर दृष्टि पड़ते ही रमेश दुबारा पकड़कर लाए गए फरार मुजरिम की भांति सहम गया। रमेश दहलीज़ ही में ठिठककर खड़ा हो गया, ऊपर के छज्जे की ओर देखा। आवाज़ किसी की भी नहीं सुनाई दे रही। क्यों?—खैर यह निश्चित है कि बाबू घर में नहीं हैं। रमेश ऊपर गया। कमरे में सुरेश औंधे लेटकर कुछ पढ़ रहा था। मां वहां नहीं, रसोई वाले दालान में नहीं।

"सुरेश, मां कहां है?" रमेश के पूछने से चौंककर राजेश ने सबसे पहले हड़बड़ाहट में किताब छिपाई और बैठते हुए कहा: "बड़े शिवाले।"

"पन्नो भी?"

"हां।"

"और बाबू कहां हैं?"

"पण्डित को तय करने गए हैं रुप्पन चाचा के यहां रतजगा होगा आज।" कहते हुए सुरेश ने किताब को अपनी जांघ के नीचे और भी छिपाने का प्रयत्न किया। रमेश ने देख लिया, इच्छा भी हुई कि सुरेश से पुस्तकें मांगे, परन्तु वैसे ही नीचे का दरवाज़ा ज़ोर से खुला और "अरे कहां हो" की आवाज़ आई। रमेश तुरन्त कमरे से निकलकर खट से ऊपर वाली सीढ़ी पर चढ़ गया।

बाबू ऊपर आए। सुरेश ने उसकी मां के सम्बन्ध में पूछा। पता लगा कि भैया के अतिरिक्त और कोई घर में नहीं। उन्होंने आवाज़ लगाई—रमेस।"

ढीठ बच्चे की तरह रमेश की इच्छा उत्तर न देने की हुई पर दूसरी ही आवाज पर अपने को कसकर उसने रूखे स्वर में कहा: "क्या है!"

"जरा नीचे तो आओ भैया।"

रमेश नीचे आ गया। लड़ाई के मोर्चे पर जाने वाले सिपाही की भांति मन के हथियारों से लैस होकर आया। पुत्ती गुरु सन्दूक खोलकर कुछ टटोल रहे थे। बड़े लड़के को देखकर सहज स्वर में बोले: "भांग मेरी तू घोट देगा बेटा, ससुर दौड़ते-दौड़ते पुन्हत्तर ढीले हो गये हैं मेरे।"

कोई और समय होता तो रमेश शायद मना भी कर देता, पर इस समय पिता की सेवा करने का एक अवसर पाकर उसे अच्छा ही लगा। सुरेश को बुलाकर उसने अपनी जेब से एक रुपया निकालकर उसे देते हुए दूध, बादाम और मुनक्का

लाने का आदेश दिया। पिता के चेहरे पर तरावट आ गई, बोले : "सुरेशो बेटे, बादाम छिटांक भर लाना। अब इत्ते दिन बाद बादाम ससुर छानेंगे तो आधी छिटांक में मजा नईं आवेगा। दूध चाहे आधा सेर ही कर देना। कौन असली मिलता है। क्या समय आय लगा है ससुरा कि दूध, बादाम के लिए भी तरसना पड़ता हैगा। तनिक सी केसर होत तो मजा आ जाता। ए सुरेश—नईं तुम नईं—ए रमेश, रुप्पन के यहां चले जाव बेटा, कहना बाबू ने जरा-सी केसर मांगी है। आज फिर दिव्य ही हो जाय। सन्दूक में जरा-सी पुड़िया रखी थी, पर तुम्हारी अम्मा के मारे कुछ बच नहीं पाता।"

रमेश बोला : "मैं रुप्पन चाचा के यहां नहीं जाऊंगा।" पुत्ती महाराज ने घूमकर बेटे को देखा और उसके कुछ कहने से पूर्व ही रमेश ने तनकर कहा : "बस अब आगे कुछ न कहिएगा ? आज शिवरात्रि का दिन है, मैं आपसे बहस नईं करना चाहता। केसर होली के दिन आ जायगी। सुरेश, सिल कहा रक्खी है ? भांग कहां है ?"

बाबू बोले कि सिल नीचे ठाकुरद्वारे वाले दालान में है, फिर आदेश दिया कि वहीं बैठकर पीस लो और एक-एक चुल्लू सब घर भर को देना, केसर मैं लेके आता हूं। रुप्पन ने आखिर ऐसा क्या बिगाड़ दिया, जो इत्ता बिगड़ते हौगे। अरे, इन्हीं लोगों की बदौलत पेट चलता हैगा। ससुर जिस थाली में खाओ, उसी में छेद करो। कैसी जाने मतें बिगड़ गई हैं आजकल की। रहै देव, ये मिल गयी केसर की पुड़िया ससुरी, अब मजा आ जायगा। (सूंघकर) उहूं, सुगन्ध नहीं रही इसमें, रुप्पन के घर से लानी पड़ैगी।"

"क्या जरा-सी केसर के लिए हाथ फैलाने जा रहे हैं। कह तो दिया कि होली के दिन ले आऊंगा।"

"अब तबियत हमारी आज हैगी—होली की होली पर देखी जाएगी। औ' इसमें भीख कहां मांगनी है। अरे, अपना जिजमान है, लखपती है तो हुआ करे। किसी के लिए कैसा भी होय, हमारे लिए बहुत अच्छा है। उत्ती बेला मुझको तुम्हारे ऊपर क्रोध आ गया तो रास्ते भर मुझे समझाता रहा कि गुरुजी, लड़कों के मुंह नहीं लगना चाहिए। ये नहीं बोलते, इनका एसे बीए बोलता हैगा। ये बात हम मान गए औ' तब जायके हमारा क्रोध शान्त भया।"

बाबू की बातें रमेश को अच्छी नहीं लग रही थीं। और उसकी उत्तर देने की इच्छा भी हुई पर दब गया, नीचे उतर गया। बाबू के मुंह कौन लगे—पंडित पेशा, सड़ियल दिमाग, ऊपर से भंग के गोले। दिन-रात बकबक-बकबक-बकबक। छिः भीख मांगते लाज भी नहीं आती। इसी भीख ने ब्राह्मणों की स्थिति बिगाड़ दी, छि: !

तभी पुत्ती महाराज नीचे उतरकर बाहर जाने लगे। रमेश से रहा न गया, बोला : "किसी से केसर न मांगने जाइएगा। ऐसी ही इच्छा है तो मेरे पास ये एक रुपया और है, ले जाइए खरीद लाइए।"

पुत्ती गुरू जाते-जाते थम गए और कड़ी दृष्टि से पुत्र की ओर देखते हुए बोले : "हजार बार कह चुका हूं कि मुझे शास्त्र न पढ़ाया कर। ब्राह्मण का कर्म है भिक्षा।। 'ब्राह्मण को धन केवल भिक्षा'—काव्य का प्रमाण है।"

"तो गली-गली हाथ पसारे डोला कीजिए न, ये पूजा-पाठ, संध्या, गायत्री, कर्मकाण्ड—"

"रमेश, मैं ये सहन नहीं करूंगा बताए देता हूं। मेरे मामले में मत बोला करो।"

"तो भांग भी आप ही घोट लीजिए।" कहकर रमेश उत्तेजित भाव से उठ खड़ा हुआ। पुत्ती गुरू का सूखा पीला शरीर क्रोध से पल भर के लिए आरक्त हो उठा, बोले : "नीच, यही हैगी तेरी शिक्षा। हट जा, मेरी आंख के सामने से, नइँ घुटवाऊंगा तुझसे भंग। पापी के हाथ की घुटी हुई पीने से भी पाप ही चढ़ैगा। ससुर हर बात में हेकड़ी। अरे, तेरा ये शरीर भिक्षा के अन्न से ही पला हैगा। ये इत्ता एमे-बीए कैसे पढ़े ?"

रमेश की अहंता पर यह वाक्य बरछी की अनी-सा लगा। भूखे पेट की उत्तेजना ने भी क्रोध को बल दिया। ऊपर की सीढ़ियों पर बढ़ते हुए वह चिढ़कर बोला : "आपकी भिक्षा के पैसों से मैं नहीं पढ़ा। स्कॉलरशिप—"

"तौ इस्कॉलरशिप भिक्षा नइँ हैगी ?"

"जी नइँ, वह मेरी योग्यता पर मुझे मिली थी और अब भी ट्यूशन करके ही पढ़ता हूं।"

"तो मैं कौन सी भीख मांग के खाता हूं ? मैं भी जिजमानी करता हूं, कथा बांचता हूं।"

"आपकी जिजमानी को तो मैंने कभी कुछ नहीं कहा।"

"नहीं कहा तो अब कह लीजिए दयानिधान। यही हविस क्यों रह जाय आपके कलेजे में।"

रमेश कुछ न बोला, ऊपर चला गया। पिता बड़बड़ाते रहे, पर फिर बाहर न गए, अपना सिल-लोढ़ा लेकर बैठ गए।

उस दिन सायंकाल में शिवार्चन के लिए शिवालय में जाकर रमेश का मन और भी उखड़ गया। पूजा करते हुए उसके मन में आस्था-अनास्था के भाव बड़ी तेजी से आते-जाते चक्कर मारते रहे—क्या यही वह शक्ति है, जो मुझे या किसी को पास या फेल कर सकती है, सुख या दुख दे सकती है ? गोस्वामीजी के कथनानुसार जिस विधाता के हाथ हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश देने की शक्ति है, वह यही पत्थर है ? लेकिन न दिखलाई पड़ने वाली वस्तु का भरोसा क्या ?···ये आकाश जो दूर से नीला-नीला चमकता है, इसमें कितने रंग भरे पड़े हैं, जो हमें आंख से नहीं दिखलाई देते। उस दिन 'जियाग्राफिकल मैगनीज' में हाल ही के लिए गए आकाश के चित्र देखे थे। न देखता तो रंगों पर विश्वास न होता। तब क्या साइंस अब तक न दिखलाई पड़ने वाले ईश्वर को भी न दिखला देगी ? बाबू यों तो पंडित-पेशा सड़ियल दिमाग आदमी हैं, मगर उस दिन महल्ले की कथा में वे 'कोटि कोटि ब्रह्माण्ड निकाया' वाली अर्धाली की व्याख्या कर रहे थे। उनकी बात आधुनिक व्याख्या से दूर होकर भी आधुनिक विज्ञान के प्रकाश में कितनी सच थी।···तब हे देव, हे दिवाधिदेव तुम मुझे पास करा दो। फर्स्ट डिवीजन ! एक बार फिर टॉप कर जाऊं। एक बार मैं भी इस दरिद्रता से मुक्त होकर उन्नतियों एवं सफलताओं से भरा जीवन देखूं। एक बार मेरे भी हाथों में वह शक्ति आए जिससे स्वप्न चा—रूपचन्द चोर बाजारिया करोड़पति मेरे सम्मुख दो कौड़ी का व्यक्ति सिद्ध हो जाय ! नीच···! नीच !···नीच !

आस्था, प्रार्थना, धार्मिक भावना, फिर अनास्था, खीझ और विद्रोह में बदल

गई। रमेश जस-तस पूजा करके घर लौट आया। उसे अब भूख लग रही थी और उसका मन खिन्न था।

धार्मिक आस्था से शिवरात्रि का उपवास और जागरण व्रत करने वाले हिन्दू घरों में दूसरे दिन कढ़ी का भोग लगता है। पहले जोगियों को खिलाया जाता है, फिर घर के लोग भोजन करते हैं। पहले गली-गली अनेक अलफी खप्परधारी फकीर 'जोगी बमभोलेनाथ' के नारे लगाते हुए गलियों में घूमते थे। पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों में इनकी संख्या प्रायः कम हो चली है। प्रचलित धारणा यह थी कि भीख मांगने के लिए आज के दिन अनेक मुसलमान गुण्डे भी जोगियों का भेस बनाकर गली-मोहल्लों में घूमते हैं। इसलिए लड़कों ने कुछ मजाक और कुछ सुधारवादी जोश में उन्हें भीख देने के बहाने बुला-बुलाकर कोठरियों और सण्डासों में बन्द करना शुरू कर दिया। लड़के उन्हें दिन भर इसी प्रकार सताकर रात के आठ-नौ बजे खोला करते और उन्हें मारने तथा दाढ़ी और कपड़े नोचने के लिए गोल बना कर दरवाजे पर खड़े हो जाते थे। जब ये जोगीड़े अपने बचाव के लिए अथवा दिन भर बन्द रहने के कारण क्रोध में भरकर हाथ चलाते, तो पीछे खड़े बड़े लड़कों का झुण्ड छड़ियों और हाकियों से उनकी मरम्मत करने के लिए झपटता था। जोगीड़े आगे-आगे भागते, लड़के पीछे-पीछे; लोग-बाग हंसते। लड़के धुर सड़क तक उनका पीछा करते चले जाते। इधर वर्षों से जोगियों का आना कम हो गया है, फिर दो-चार तो आते ही हैं और इनके सम्बन्ध में किन्हीं बड़ों से हंसी-हंसी में पुरानी मजाक की परम्परा सुनकर कुछ लड़कों को उन्हें पकड़ने की सूझ आई। छाती पर रस्सी लपेटे, हाथ में खप्पर लिए एक कनफटा दढ़ियल जवान लड़कों के हत्थे चढ़ गया। उसे लड़कों ने बारहदरी की कोठरी में लाकर बन्द कर दिया। संयोग की बात थी कि उस दिन शाम को संघ में बड़े लड़के नहीं आए। वे यूनिवर्सिटी में दी जाने वाली एक विदाई-पार्टी में सम्मिलित होने के लिए गए थे। जोगिया रात के सन्नाटे में आठ-नौ बजे गरज-गरजकर शाप देने लगा : "अलख-अलख ! जाग-जाग ! नाश कर सालों को। घर भर को नाश कर। इस पापी मुहल्ले का नाश कर। नाश-नाश-नाश !" तब किसी का ध्यान गया। बारहदरी में आकर देखा तो कोठरी का ताला बन्द था। राह चलते महल्लेवालों का छोटा-सा जमावड़ा जुट गया। ताला तोड़कर जोगी को निकाला। उसने छूटते ही गली के निवासियों को शाप दिया। उसके स्वर, व्यक्तित्व और आंखों में कुछ ऐसा आकर्षण था कि जिससे छुड़ाने के लिए आए हुए लोग-बाग अत्यधिक प्रभावित हो उठे। उसके क्रोध भरे स्वर ने बूढ़े रम्मू पंसारी को दहला दिया। वह एकाएक जोगी के पैरों पर गिर कर, नाक घिसकर बड़ी उतावली और गिड़गिड़ाहट के साथ बच्चों के अज्ञान के लिए क्षमा मांगने लगा। दो-एक अन्य व्यक्ति हाथ जोड़कर कहने लगे : "लड़कों से बड़ी गलती हो गयी महाराज, क्षमा कीजिए, घर चलिए, अभी भोजन बनवाते हैं। धोखा हो जाता है महाराज, असिल में गुण्डे-फुण्डे भी भेस बनाकर आय जाते हैंगे, सो उनको बच्चे तंग करते हैं। सो हम लोगों का बुरा नईं लगता हैगा। सो उसी में गलती हो गई। अज्ञान की छिमा तो मिलनी ही चाहिए महाराज।"

"क्षमा उसी से मांगो जिसने मुझसे शाप दिलवाया है, मेरी वर्ष भर की साधना, मेरे व्रत का सुफल न मुझे मिला, न तुम्हें। तुम्हारा अज्ञान उसे हम दोनों

से छीन ले गया। अलख निरंजन की माया। अलख निरंजन की दया। जोगी बम्भोलेनाथ ! मेरा मार्ग छोड़ दे भगत, शाप मैंने नहीं, भगवान ने दिलाया है। इस क्षेत्र का नाश निश्चित है। मैं यहां का अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा।"

जोगी दोनों हाथों के झटके से भीड़ को चीरकर तेजी से सीढ़ियां उतरने लगा। तीन-चार भयभीत श्रद्धालु लोग उसके पीछे-पीछे भागे और कुछ पश्चात्ताप और भरी-भरी शिकायतें करने लगे : "इन लड़कों ससुरों को जरा भी तमीज नहीं। किसने बन्द किया था ? जरा पता लगाओ, कौन-कौन थे सवेरे ?"

भीड़ में दो-चार लड़के भी आ गए थे। उनमें से हर एक ने "मैंने नहीं-मैंने नहीं—वो रद्धू ने, जग्गू ने, किसनू, रमेसर, जगेसर—" आदि सफाई भरी बातें और पराई शिकायतें आरम्भ कीं। जोगी महात्मा के तप-तेज की चर्चा भी बड़ी जोरों से होने लगी। भीड़ बारहदरी से उतरकर नीचे आ गई और रम्मू पंसारी की जोगियों के चमत्कार के सम्बन्ध में श्रद्धा भरी बातों से अपने मनों के तार जोड़कर वहीं खड़ी रही। बुजुर्गवार रम्मू पंसारी महोदय सुनाते रहे : "भैया, अब तो बात ये है कि हमारे हिन्दुस्तानी सब लोग पढ़ रहे हैं इंगलिस, तो धरम-करम का ध्यान कैसे रक्खें ? नहीं तो, हमारे बचपन की बात है कि यही पीछे भौंरों वाली गली में लाला परमेसरी दास की कोठी पर सवेरे-सबेरे एक संन्यासी आया, आवाज़ लगाई। लाला का नौकर दहलीज बुहार रहा था, बोला कि अभी से चले आए, अरे सवेरा तो होने दिया होता बाबा ! इस पर बाबा बोले कि अच्छा, अभी रात है, तो रात ही देख। ए भैया, वो नौकर हो गया अन्धा। अब तो बड़ी ले-दे मची। वो नौकर चीखा और इत्ती देर में बाबाजी गायब। सबने सुना तो फिकर पड़ी। चारों तरफ ढुंढौआ मचा तो पता लगा कि बाबाजी परतब्बे दलाल के यहां बैठे हैं। अब सब लोग उनकी खुशामद करने दौड़े। लाला परमेसरी भी दौड़े-दौड़े गए और कदमों पे सिर रख दिया। मगर बाबा बोले कि अब क्या। आज की साइत ऐसी थी कि मेरी पहली आवाज़ पर जो भिक्षा देता, तो वो चकरवरती राजा बनता, और जो दूसरी आवाज़ पर देता, वो लखपती औ तीसरी आवाज़ पर देता, वो हेडमास्टर बनता। अब मैं क्या कर सकता हूं ? चकरबरती बनना तुम्हारे भाग में नहीं था औ' इस दरवज्जे पर मैंने दुई आवाजें दीं, दोनों लड़के साथ-साथ निकले। एक लखपती बनैगा और दूसरा हेडमास्टर बनैगा। तो देखौ परतब्बे के दोनों लड़कों की हैसियत आज क्या है। औ' लाला परमेसरी के यहां नौकर झाड़ू लगा रहा था, सो उनके यहां झाड़ू फिर गई। ये जोगी-जतियों का मामला भैया, ऐसा ही बिकट होता हैगा। कहा ही है कि राजा, जोगी, अग्नि, जल इनकी उलटी रीत···आज का काम अच्छा नहीं भया।—"

खबर थोड़ी ही देर में मुहल्ले के घर-घर में फैल गई। लड़कों के दोष लोगों की शिकायती जबानों की खुर्दबीन में जर्रे से आफताब बनकर हर तरफ सबको तपाने, चमकाने लगे। और यह शिकायत का प्रकाश लाला रूपचन्द की कोठी तक पहुंचकर उनके दम्भ को दमकाने लगा, बोले : "हमारे यहां दो-तीन लड़के बिलकुल कम्युनिस्ट हो गए हैं। ये पुत्ती गुरू का लड़का और क्या नाम है के शुक्लाजी का दामाद जयकिशोर, और हमारे गुलाबचन्द का लड़का कम्मी, ये सब इस नास्तिकता के जड़ में समाए हैं। वो 'इंडिपेंडेंट' वाले 'आडिटर' खन्ना बाबू के चेले हैं न ये लोग। दुनिया जानती हैगी कि खन्ना बाबू नास्तिक हैंगे। उन्हीं के फूंके मन्तरों को ये मानते हैं—बस लिच्चरबाजी, खेलकूद और विधर्मियों-अधर्मियों

के मतों की पोथियां पढ़ना, यही इनका काम हैगा।···कोच्छ नइं, ये लाइब्ररेरी वगैरा सब बन्द होनी चाहिए। मैं कल ही से ताला डलवाए देता हूं, पहरा बैठाए देता हूं, सब बन्द। ये ससुर मुहल्ला ही बिगाड़ देंगे। इन्हें युनिवर्सिटी-कालेजों में दंगे और हड़ताल कराने का जोम हैगा। मैं इस अनसासनहीनता को दबाके ही रहूंगा।" लाला रूपचन्द क्या दहाड़े, गोया जंगल में शेर दहाड़ा। एक बड़ा जनमत जोगी के शाप से भय-क्षुब्ध था।

दूसरे दिन सवेरे ही सेठ रूपचन्द ने बारहदरी में अपना एक लठैत बिठा दिया। कुछ लड़के सबेरे बारहदरी में ही बैठकर पढ़ने के अभ्यस्त थे। जब उन्हें घुसने नहीं दिया गया तो वे झल्लाए। कम्मी ने साफ-साफ कहा: "कल की बात की आड़ लेके रुप्पन चाचा हमारी जगह पर कब्ज़ा नइं कर पाएंगे। ये तो हो ही नहीं सकता।" फिर चौकीदार की तरफ देखकर कहा: "अभी आते हैं साले, बुला रख अपने होते-सोतों को। खून की नदियां बहा देंगे यहीं पर पूंजीपति साले की।"

रम्मू पंसारी ने डांटा, लड़कों की नास्तिकता पर प्रहार किया। लड़कों ने भी झांव-झांव नुमा बहस आरम्भ की और बकते-झकते वहां से चलकर रमेश के घर पर आए।

रमेश बीच के खन में चाय पी रहा था। बाबू ठाकुरजी की सेवा करने के बाद ऊपर अपने पोथी-पत्रे उठाने और कपड़े पहनने के लिए गए थे। घर की पूजा करने के बाद वो तीन घरों में शतचंडी पाठ करने जाते थे। रमेश भी चाय पीकर पढ़ने के लिए बारहदरी में चला जाता है। उसने रात की घटना के सम्बन्ध में सुन तो लिया था, पर सबेरे के कांड की कल्पना तक उसके मन में नहीं आई थी। नीचे दरवाजे पर कम्मी की आवाज़ सुनाई दी। रमेश ज़ोर से 'आए···' कहता हुआ नीचे उतर आया। मित्रों के उत्तेजित, चिन्तित चेहरों को देखकर उसका कौतूहल जागा। ठाकुरद्वारे वाले दालान में ही चटाई बिछाकर वे बैठ गए और धीरे-धीरे बातें शुरू कीं। इतने ही में फिर दरवाजे की कुंडी बजी और पुत्ती महाराज के लिए पुकार लगी। इस बार ऊपर से पुत्ती महाराज 'आया' गोहराए और दो मिनट बाद उतरकर एक दृष्टि लड़कों की ओर डालकर द्वारे पे गए, किवाड़े खोले। रूपचन्द के एक कारिन्दे गनेसी की सूरत दिखाई दी। गनेसी ने भी इन लड़कों को देखा और देखकर ऊंचे स्वर में पुत्ती गुरू से कहा: "अच्छा, ये सब नेता लोग यहीं बैठे हैंगे, हमको सबको मारने की धमकी दे आए हैंगे गुरूजी। औ' लाला ने कहलाया हैगा कि बारादरी में लड़के अब नइं बैठ पाएंगे। इनकी चटाई, दरी, किताबों की आलमारी सब अभी मजदूरों से उठवाय के भौंरोंवाली गली के मकान में रखवाए देते हैंगे, वहीं अपना संघ चलावैं।"

सुनते ही रमेश तड़पकर खड़ा हो गया, अनुत्तेजित किन्तु दृढ़ स्वर में उसने कहा: "संघ बारहदरी ही में रहेगा, नहीं तो मैं आमरण अनशन करूंगा।"

पुत्ती गुरू अपने सामने अपने लड़के को इस तरह धमकी देते देखकर गरज पड़े: "खबरदार जो घर से बाहर निकलकर गया। अनशन करेंगे बैठो चुपचाप।"

अब रमेश की उत्तेजना बढ़ी, तीखे स्वर में बोला: "तो क्या मैं नन्हा बच्चा हूं, जो आप मुझे हाथ-पैर बांध के घर में रोक लेंगे? चलो जी कम्मी, देखूं कौन

साला हमारी जगह पर अधिकार करने की हिम्मत रखता है।"

कम्मी भी इसी सुर में गरजा, बोला : "हमाई जगह हड़पने के लिए रुप्पन चाचा को वहाना अच्छा मिल गया। लेकिन हम नेईं चलने देंगे उनकी ये बहाने-बाजी।"

सुबह की कागाबासी भांग तड़क उठी, पुत्ती गुरू के नेत्र आरक्त हो उठे। सूखे पीले शरीर में उत्तेजना की बौखलाहट इधर-उधर बिछलने लगी। ताव खाकर जो पलटे तो रमेश के गाल पर उनका हाथ तड़ाक से पड़ा : "नीच कुलांगार, बैठ घर में।" फिर ऊपर की ओर मुंह उठाकर गरजे : "सुनती हो, तुम्हारा बेटा अनशन करैगा। या तो ये ही साला आज रहेगा या मैं रहूंगा। कर साले अनशन, ले और कर।"

पुत्ती गुरू ने किचकिचाकर दूसरी बार हाथ उठाया ही था कि रमेश ने उनका हाथ पकड़कर कहा : "गाली मत दो बाबू—मैं कहता हूं गाली मत दो! हमारी बारहदरी कोई नहीं ले सकेगा। हम मन्दिर नईं बनने देंगे।"

"हात्त्छोड़—हाच्छोड़—हाच्छोड़। ससुरे तुमारी मज़ाल क्या है जो मन्दिर न बनै, ससुरे। नास्तिक! सुनती हो, मना कर लो इसे, घर से निकलने न पाए।"

"आओ कम्मी।" कहता हुआ बाप का हाथ छोड़कर रमेश दरवाजे की ओर लपका। ऊपर से रमेश की माता एक सुर में चीख-चीखकर बकती ही चली जा रही थी : "हज़ार बार कहते हैंगे कि लड़कन से ऊपर न अटकौ। ई नासपीटे कम्मी-उम्मी की सोबत में हमरा रमेस भी कर रहा हैगा। अरे, इन सबके घरन में तो चैन की बंसी बजत हैगी। औ' हमरे गरीबन के लड़कन का खराब करत फिरत हैंगे..."

ऊपर से रमेश की माता का एक स्वर में बकते चले जाना और नीचे बाप-बेटे के स्वरों का संघर्ष, हाथापाई, वातावरण में अशान्ति की तीव्र लहरें उठा रही थीं। कम्मी आदि लड़के की माता से अपने लिए कलंक सुनकर क्षुब्ध एवं उत्तेजित हो उठे थे। रमेश ज्यों ही बाहर की ओर झपटा, त्यों ही लड़के भी आगे बढ़े। पुत्ती गुरू की खीझ तीर की तरह सनसनाई। छैलू आगे था, उसकी कमीज पुल-ओवर मुट्ठी में भींचकर अस्फुट शब्द बड़बड़ाते हुए उन्होंने दांत किटकिटाए। कम्मी मित्र को बचाने के लिए आगे बढ़कर पुत्ती गुरू के आक्रामक हाथ से जूझने लगा। रमेश की माता को लगा कि उनके पति पर हमला हो रहा है। वे गला फाड़-फाड़कर चीखने लगीं : "अरे नासपीटो, अपने-अपने बाप-चाचा से जायके उलझौ! अरे रमेस, औ रमेस! अपने बाबू को बचाओ, हाय! ..." गनेसी फफड़दलाली में 'हैं—हैं क्या करते हो' कहकर आगे बढ़ा। रमेश भी दरवाजे से पलटा, पुत्ती गुरू गालियां बकने लगे थे। गनेसी के आगे बढ़ते ही कम्मी को जाने कैसे ताव आ गया कि छैलू और पुत्ती गुरू के बीच से झपटकर गनेसी के मुंह पर एक झापड़ रसीद किया। अनायास झटके से पुत्ती गुरू का हाथ छैलू की कमीज पुलओवर से छूटा और वे लड़खड़ाकर गिरने लगे। पिता को गिरते देखकर रमेश गनेसी के बाएं से होकर तेज़ी से उन्हें बचाने के लिए झपटा। झापड़ और झपेट में लाला रूपचन्द का गुमाश्ता ऐसा चकराया कि उसे इस सारी गड़बड़ से छूट-कर सीधे बाहर ही भागने की सूझी। दरवाजे पर खड़े होकर वह शेर की तरह दहाड़ने लगा : "दफन करवा दूंगा इन साले लौंडों को। बांभन, खत्री के लड़के

हुइके मन्दिर नइँ बनने देंगे। अरे, इनके सालों के बापों की भी कबर खुदवाय दूंगा।"

"कम्मी मार इस गनेसी को, मार साले को।" कहता हुआ छैलू लपका और रमेश बाप को छोड़कर दरवाजे की ओर बढ़ा।

गनेसी हाथ में अपनी चप्पलें उठाकर तेज़ी से गली के मुहाने की ओर भागा। छैलू कम्मी उसके पीछे भागे, लेकिन रमेश आधी गली में रुक गया, क्योंकि पीछे अपने द्वार पर से उसके पिता पुकार रहे थे : "अनशन करोगे तो घर में नहीं घुसने दूंगा रमेस, ये जाने रखना।"

"अब घर में मेरी लाश ही आएगी बाबू।"

रमेश की माता भी तब तक भीतर से झपटकर आंगन के छज्जे से भागकर कमरे की गली पड़ती खिड़की से बाहर झांकने लगी थीं। रमेश के लाश शब्द उच्चारते ही वे फुक्का मारकर कराह उठीं, ऐसी कराह जिसमें कि शब्दहीन पशु अपनी पीड़ा व्यक्त करता है। उस कराह में उस सिंहनी माता की दहाड़ थी, जो विवश होकर अपनी सन्तान को वधिकों की बरछी से बिंधते देखती है, गोमाता का विवश रंभाना था और कराह के अन्तिम स्वरों में निरीह चिड़ियों की सी चीत्कार और चहचहाहट की तरह निर्बल शब्द फूट पड़े—"ओ रमेश···तुझे मेरी कसस बेटा! अरे तू मुझे मरी देख! मैं मर जाऊंगी बेटा!"

रमेश ने गली से एक क्षण टकटकी बांधकर मां को देखा। आस-पास पड़ोसियों के घरों के ऊपर-नीचे से द्वारों पर स्त्री-पुरुषों और बच्चों के कौतूहल स्तब्ध चेहरे अपने द्वार पर पिता का चेहरा और चलती गली में खड़े चिर-परिचित तमाशाई चेहरे अपनी चंचल सर्वव्यापिनी तड़प में एक ही झलक में रमेश ने देख डाले और उसकी मानसिक प्रतिक्रिया यह हुई कि वह शहीद की भांति घर त्यागकर, माता का मोह त्यागकर, उपस्थित समाज की दृष्टि में बोलती अपील की करुणा को अनदेखी करके तेज़ी से गली के मुहाने की ओर बढ़ गया। रमेश की माता की करुण पुकारें, गली में खड़े हुए बब्बू भैया की आवाज़ें, उस गली की दीवालों से टकराकर गूंजती हुई रमेश के मन में उसके संकल्प को दृढ़ता प्रदान करने लगीं। वह सब अनसुना सिद्ध हुआ, उसे केवल अपने मन का स्वर सुनाई दे रहा था—"अनशन करूंगा, मन्दिर नहीं बनेगा···अनशन करूंगा, मन्दिर नहीं बनेगा, अनशन···मन्दिर।"

बारहदरी के फाटक पर रमेश, कम्मी, छैलू, गोडबोले, पम्मी और जयकिशोर चुपचाप शान्तिपूर्वक बैठे हुए थे। उनके पीछे फाटक के अन्दर ऊपर जाने की सीढ़ियों पर लाला रूपचन्द के लठैत मुन्नू मिसिर बैठे हुए डंडे को घुटने और बाईं बांह के सहारे खड़ा करके फटाफट चूने-तमाखू को फटकी दे रहे थे। बारहदरी की दीवार से लगे बैठे पीछे की नाली से अपनी कमीजों के छोर बचाकर चार-पांच लड़के अखबारों पर रुई के बत्तों को बोड़-बोड़कर लाल, नीली स्याही से मोटे-मोटे अक्षरों में पोस्टर लिख रहे थे। उनसे ज़रा हटकर दो छोटी उमर के लड़के एक बांस चीरकर खपच्चियां बनाने के लिए भोथरे चाकू और बांस का संघर्ष करा रहे थे। गली में आने-जानेवाले लोग, रम्मू पंसारी की दूकान पर खड़ी हुई ग्राहकों की भीड़ और इन लड़कों की पोस्टर-निर्माण-स्थली के बीच से होकर,

बड़ी कतराहट के साथ, करीब-करीब क्यू की तरह लाइनों ही में आ-जा रहे थे। क्षेत्र के लड़कों में संघ के लड़कों को अनशन करने की खबर बिजली से भी अधिक तीव्र गति से आनन-फानन ही फैल गई थी। उनकी भीड़ तेजी से आ रही थी। बरसों चिमगादड़ों की बस्ती बनी रहने के बाद राजा केसोराम की बारहदरी दस बरसों से किशोरों, नवयुवकों की अत्यन्त उपयोगी वस्तु होकर अब अनायास ही उनसे छुड़ाई जा रही थी। सबके मनों में बड़ी तीव्र खौलन थी। रमेश, कम्मी आदि संघ की हाई कमान के नेता पोस्टर बनानेवाले प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को यह आदेश देकर अनशन करने बैठे थे कि गली में किसी प्रकार का अनियन्त्रण न हो। पोस्टर लिखकर चुपचाप लाइन लगाकर खड़े हो जाओ। देखो ये लोग क्या करते हैं। आपस में बिना एक-दूसरे से कहे-सुने भी रमेश आदि पांचों अनशनकारी लड़के यह जानते थे कि अभी थोड़ी ही देर में उनके पिता, चाचा, गुरुजन आदि आते होंगे। अभी विरोध का क्षण आएगा, परीक्षा का समय आएगा। पोस्टर के नारे मौन प्रदर्शन का हुल्लड़ बनकर बोलने लगे: "मन्दिर पर मन्दिर नहीं बनेगा," "पूंजीपतियों को जनता की मिल्कियत हजम करने का अधिकार नहीं है", "हमारा अनशन बड़ों की अवज्ञा नहीं, वरन सत्य और न्याय की मांग के लिए है।" आदि-आदि।

लड़कों की भीड़ बढ़ जाने पर संगठन का काम शुरू हो गया। अभी लड़के एक महत्त्वपूर्ण घटना के नायक बनना चाहते थे। गली के दोनों छोरों पर, गली में मिलनेवाली गलियों के मुहानों पर आती-जाती गायों को खदेड़ने में और साइकिल-बाजों से हाथ जोड़कर 'भाई साब, भाई साब, साइकिल पर से उतर पड़िए, वहां अनशन हो रहा है हमारा।' कहकर उन्हें उतारने में बड़ी व्यस्तता दिखला रहे थे। 'काहे का अनशन हो रहा है' यह पूछने पर इतिहास शुरू होता था। एक गधे-वाले से बड़ी झांय-झांय हो गई। वह आगे की गली में किसी जगह गुम्मे ढोकर लिए जा रहा था, लेकिन लड़कों ने उसे वहीं रोक लिया। हुज्जत होने लगी, रार-तकरार बढ़ी और जब कि गधे वाला किसी तरह भी न माना तो लड़कों ने गुम्मे निकालकर गधों ही को ठोंकना शुरू कर दिया। गधे रक्षार्थ भागे, एक-दूसरे से टकराकर उन्होंने अपने बोझ को भी थोड़ा-बहुत गिराया। गधेवाला गालियां देता हुआ अपने गधे सम्हालने के लिए दौड़ा, लड़कों को इस तमाशे में मज़ा आ गया। प्रबन्ध करने की बात भूलकर वे गधों को हुस्कारने लगे।

इस घटना ने लड़कों को हुड़दंग के विरुद्ध एक सामाजिक मन्तव्य प्रचारित करने में सहायता दी। थोड़ी ही देर बाद गधेवाले के साथ वे सज्जन आए, जिनके यहां ईंटें जा रही थीं। आते ही गर्माना शुरू किया: "ये क्या हुड़दंग मचा रक्खा है तुम लोगों ने? इम्तहान सर पर है और पढ़ाई-लिखाई छोड़कर ये हुड़दंगबाजी कर रहे हो, भागो यहां से।"

लड़कों ने उत्तर में सामूहिक रूप से नारे लगाए: "हमारी मांगें पूरी हों। मन्दिर पर मन्दिर नहीं बनेगा। पूंजीपतियों का नाश हो।"

लाला रूपचन्द इतनी देर तक निष्क्रिय नहीं बैठे रहे थे। उनके यहां दस-पन्द्रह मुहल्लेवालों की सभा हो रही थी, जिसमें पांचों अनशनकारियों के पिता-गण भी उपस्थित थे। लाला रूपचन्द कह रहे थे: "मैं तो कहता हूं, ये हवा ही बुरी है और अगर हमने स्थिति को न संभाला तो आगे चलकर यह हम सभी के लिए दुखदायी हो जाएगी, ये मैं पहले ही से चिताए देता हूं।"

"नईं साब आपकी बात बिलकुल ठीक है रुप्पन बाबू, मैं सॅण्ट-परसॅण्ट एग्री करता हूं। युनिवर्सिटी में अनशन और धरने दे-देकर इन लौंडों के मुंह खून लग गया है। मास्टरों, प्रोफ़ेसरों को घोल के पी चुके, अब बाप-दादों को सबक सिखाने का हौसला दिखला रहे हैं।"

"अजी, सबक तो खैर ये क्या सिखाएंगे, आखिर हमीं से पैदा हैं। बहरहाल मेरी राय तो ये है कि इनको प्यार से समझाकर क़ाबू में करना चाहिए। मेरे कहने का मतलब ये है कि हम लोग तो वो सब कार्रवाइयां कर नहीं सकते, जो पुलिसवाले या युनिवर्सिटी वाले कर सकते हैं। हमारे तो साहब, ये बाल-बच्चे हैं। युनिवर्सिटियों की तरह घर से इनका रेस्टीकेशन नहीं किया जा सकता, इन्हें पकड़वाने के लिए हम पुलिस को भी नहीं बुला सकते।"

"नईं भई गुलब्बू बाबू, तुम्हारी इस बात से मैं सहमत नहीं। अगर ये न मानें तब तो अवश्श ही पुलिस को बुलाना पड़ेगा। मतलब ये है कि पहले ही से दारोग़ा साहब से कह देंगे कि घर के लड़के हैं, खाली धमकाना है। मगर बुलाना तो पड़ेगा ही। आखिर आप उन्हें समझाइगा क्या? वो तो कहते हैं जनाब कि हम मन्दिर नहीं बनने देंगे—"

"मेरी राय तो यही है रुप्पन बाबू कि मन्दिर की कोई खास ज़रूरत भी नहीं। धरमशाला बनवाना हो तो इतना बड़ा टीला पड़ा है, अरे, थोड़ी जगह लड़कों के लिए—"

"थोड़ी सी नईं साहब, मैं तो पूरा मकान भौंरोंवाली गली का इन लड़कों को दे रहा हूं। मगर उन्हें ज़िद्द है कि बारादरी न छोड़ेंगे। भला ये भी कोई बात है। अरे, मैं कोई अपने लिए तो मांग नहीं रहा बारादरी। धरम का कार्ज है। और मैं तो कहता हूं कि आप लोग ज़रा भारती संसकिर्त की द्रिस्टी से गौर कीजिएगा इस बात पर—अगर आपका सनातन धर्म लोप हो गया तो फिर हिन्दुस्तान में बचेगा क्या?"

"सनातन धर्म कैसे लोप हुआ? अरे इत्ते तो मन्दिर हैं भगवान की दया से, एक और न बना तो न सही।"

"जी हां, सारे संसार की उन्नति हो रही है, औ' आपका मुहल्ला खंडहरों को ही रोता रहेगा। वाह! बड़ी अच्छी लाजिक हैगी आपकी। मैं कहता हूं, एक तो रुप्पन बाबू को ये आइडिया आया कि नई सड़क के साथ-साथ इस खंडहरे की भी कायापलट हो जाय—"

"तो साब मैं कब कहता हूं कि न हो, बारादरी वाला हिस्सा छोड़ दीजिए, आगे जो बनवाना हो बनवाइए। आखिर लड़कों के लिए कोई जगह तो होनी चाहिए ना।"

"अजी कह तो दिया मैंने कि भौंरोंवाली गली का···"

"अमां भौंरोंवाली गली के तुम्हारे मकान में रक्खा क्या है? जिसको न मालूम हो, उसको कहो। यहां इतने लड़के रोज कसरत-कवायद करते हैं, फैल के बैठने की जगह है।"

रुप्पन लाला तैश में आकर ज़मीन पर मुक्का मारते हुए बोले: "ये सब फिज़ूल की बातें हैं। आप लोग सब पढ़े-लिखे एजूकेटेड हैंगे। मैं पूछता हूं कि ये झगड़ा किस बात का है? जगह का?—जी नहीं, इसमें पोइंट ये है कि लड़के दरअसल मन्दिर बनने का विरोध कर रहे हैं। ये सब कमिनिस्टी असर हैगा।

डॉक्टर आतमाराम के बल पर कूद रहे हैं। डॉक्टर साहब बड़े देशभक्त तो अवश्य हैं, पर विचार उनके नास्तिक ही हैंगे। वहीं ये लोग सीखे हैं। भाई साब, आज वो मन्दिर नई बनने देंगे, कल कहेंगे कि पूजा बन्द करो। परसों धर्माचार बिगाड़ेंगे। जातपांत तोड़ेंगे तो फिर भारतवर्ष में भारती संसकिर्त का रही क्या जाएगा ? बोलिए, नास्तिकता फैल जाएगी कि नहीं ? औ' मैं तो कहता हूं बावूजी कि ये सब चीन की चाल है। मेरे पास सी० आई० डी० के एक बहुत बड़े अफ़सर के सबूत हैं कि चीनवाले यहां के कमनिस्टों को साध रहे हैं और कमनिस्ट हमारे ही घरों में फूट डलवाकर हमें कमज़ोर बना रहे हैं कि जिससे चीनी आवें और हम लोगों को जीत ले जाएं।"

"अजी, ये तो कुछ खींची-खांची-सी बात लगती है रुप्पन बावू।" वैद्यजी, पं० गणेशगोविन्द गोडबोले ने झिड़ककर कहा।

"खींचीखांची ? अजी मैं कहता हूं सिट-परसिट फैक्ट है। आप जानते हैं कि बड़े-बड़ों में मेरा उटना-बैठना है। मैं अपने मुहल्ले में तो पाप नई बढ़ने दूंगा वैदजी। जैसे आपके लड़के वैसे मेरे बड़के हैं। इनका चरित्र अगर मैं नई संभालता तो अपने धरम से गिरता हूं। आप मेरा पाइंट समझिए बावू रसिक-बिहारी साहब ! अरे, कल तक तो मैं इन लड़कों का चाचा था और आज पूंजी-पति बन गया हूं ! हमको बदनाम करने के लिए पोस्टर निकालेंगे, नारे लगा-वेंगे। हद हो गई कि पुत्ती गुरू से ये लोग हाथापाई करने की हिम्मत करने लगे। इत्ता बड़ा हो गया मैं—ये गुरूजी मेरी बराबर के हैं, बचपन में हम लोग साथ-साथ खेले, मगर पूछिए इनसे कि इनकी पंडिताई का कैसा अदब करता हूं। दोस्ती-ओस्ती सब ठीक है, मगर मुझे तो हिन्दू संसकिर्त का भी ध्यान करना पड़ता हैगा। ब्राह्मण की ऊंची मर्यादा का ध्यान रखना पड़ता हैगा। खैर, जादा बहसबाजी की चकल्लस में नई पड़ूंगा मैं। बहरहाल, आप लोग सोच लीजिए, धरम का मामला है, या तो इन लड़कों का अनसन खतम कराइए, नई तो मैं धरम की रच्छा के लिए कल से अनसन करूंगा।"

लाला रूपचन्द के अनशन करने की बात एटमबम की तरह मुहल्ले वालों पर पड़ी। जो लोग बहस कर रहे थे, एकाएक स्तब्ध रह गए। लाला रूपचन्द अपनी बैठक से घर के अन्दर चले गये। मुहल्ले वालों की टोली आपस में खिचड़ी पकाती हुई बाहर निकली। गोडबोलेजी के साथ ही साथ दो-एक और भी इस मत के थे कि रूपचन्द जगह हथियाने के फेर में धमकी दे रहा है, दूसरे कुछ लोग उनकी धार्मिक निष्ठा का बखान करने लगे। सब मिलाकर यह तय हुआ कि लड़कों को चलकर समझाया जाय, ये आपसी लड़ाई ठीक नहीं है।

महल्ले में अनेक लोग लाला रूपचन्द के थोड़े-बहुत कर्ज़दार थे। अनेक किसी न किसी प्रकार उनके आश्रित थे। ऐसे सभी लोग उनके अनशन की खबर से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते थे। कई लोग गुट बनाकर बारहदरी के फाटक पर पहुंचे, जहां अनशनकारी लड़के बैठे थे। बड़ों को देखते ही लड़के खड़े हो गये, हरएक के मन में खलबली मची। बुजुर्गों ने बच्चों को मीठे तौर पर समझाना शुरू किया। बच्चों ने भी ठण्डे-ठण्डे जवाब दिए—"हमारा धर्म से विरोध नहीं, भगवान् से विरोध नहीं, बड़ों के लिए हमारे मनों में अवज्ञा भी नहीं, मगर चाहे जान चली जाय, पर हम अपनी बारहदरी नहीं छोड़ेंगे।" बच्चों के पास कोई तर्क ही न बचा था। कुछ लोगों ने सेठ रूपचन्द के अनशन की खबर सुनाई तो

लड़कों ने कहा ठीक है, देखें किसका अनशन ज्यादह दिन तक चलता है। पर अनशन हमारे सामने ही बैठकर करें, घर में बैठकर कुछ खा-पी लेंगे तो किसको पता चलेगा।

बहरहाल यह निश्चित हो गया कि मुहल्ले में तनातनी बढ़ेगी। बड़ों के खीझकर जाते ही रमेश आदि की कनफ़ुसकी कॉन्फ्रेन्स बैठी। वे लोग भी रूप्पन चाचा के अनशन करने की ख़बर से आतंकित हो उठे थे। आतंक इस बात का था कि बड़े-बड़े एक ओर हो जायेंगे। इसलिए लड़कों ने यह तय किया कि शाम को इसी बारदरी में लड़कों की विराट् सभा की जायगी। हम इस फ़रेब के आगे घुटने क़तई नहीं टेकेंगे। आनन-फ़ानन नेताओं के हुकुम लग गये और बीस लड़कों का बल्लमटेर दल सिखा-पढ़ा कर गली-गली में कनस्टर पीट आने के लिए भेज दिया गया।

उस दिन कई बच्चे स्कूल और कॉलेज न जा सके। गली-गली ढिंढोरा पीटनेवाले लड़कों ने खासा उत्पात मचाया। बड़ों को लड़कों का यह हुड़दंग पढ़ाई का नुकसान होने के कारण जरा भी नहीं भा रहा था। ढिंढोरा पीटने के लिए नियुक्त लड़कों में से तीन को उनके बाप, चाचा गली में से ज़बर्दस्ती घसीटकर घरों में ले गये। में राह चलते बड़े-बुजुर्ग लड़कों के बहाने पढ़ाई को कोसते थे : "आजकल की पढ़ाई में बस यही रह गया है। धरना दो, हुल्लड़ मचाओ, मारपीट करो, यही सब पढ़ाया जाता है ससुरा।" लोग-बाग साथ-ही-साथ रूपचन्द के विरुद्ध भी बातें कर रहे थे। नयी सड़क बन रही है। उसके आस-पास की करीब-करीब सभी जायदाद औने-पौने खरीदते-हड़पते चले जा रहे हैं, फिर ये मुफ्त का टीला और बारहदरी ही क्यों न हथियावें।

दोपहर आई, गली-मुहल्ले पुरुषों से प्रायः सूने हुए, स्त्रियों की चेमेगोइयां बढ़ीं। रमेश, जयकिशोर, कम्मी, गोडबोले और हर्रो के घरों में चिन्ता व्याप्त थी। किसी की माता से खाया न गया। सबकी सब रूपचन्द को कोसती रहीं। सबकी सब अपने बेटे को छोड़कर बाक़ी चारों को यही दोष लगाती रहीं कि उन्होंने मेरे लड़के को बिगाड़ दिया है। दिन में रमेश की मां बारहदरी पर अपने बेटे को समझाने आई : "चलो रमेस, अब तुम सब जने अपने-अपने घर चलौ भइया। बहुत हुइ गया भैया। अरे खाए-पिए से कौन लड़ाई ? अन्न देउता कहीं छोड़े जात हैं भैया।"

मैं अन्न से थोड़े लड़ रहा हूं चाची। मैं तो इस बनिए-बक्काल, और वो भी जाति से नहीं, उसके पेशे की अति पर पहुंची हुई आसुरीवृत्ति से लड़ रहा हूं। घबराओ मत, दो-चार दिन न खाएंगे हम लोग, तो कुछ मर नहीं जाएंगे।"

"अरे तुम न खइहौ तौ हम लोगन से भला कैसे खाया जइहै। पन्नो कहती हैं कि अम्मा हम न खाएंगे। बाबू तुमरे धमकी देत हैं कि हम भी अनसन करैंगे—सब जने अनसन करौ भैया, औ' हमरा जिउ खाव।"

छैलू की मां और चाची भी इसी बीच आ गयीं। रमेश की मां उन्हें देखते ही मानो सहारा पाकर एकदम से भड़भड़ाए स्वर में दोनों हाथ बढ़ा कर बोल उठीं : "छैलू की अम्मा, समझाव इन लड़कन का। क्या करन पर उतारू भए हैं ई लोग ?"

"अरे, हम तौ आपै घबराय रहे हैं पुरतानी जी। रूपचन्द से भला कोई पार पाय सकत हैगा। लाखोंपती, किरोड़पती। सरकार-दरबार में सब लोग उन्हीं की सुनत हैंगे। हमारी गरीबन की भला कहीं सुनवाई है? लड़के चाहे अन्शन करें, चाहे कुछ करें।"

"चाची, अपने लड़कों की शक्ति अभी तुम जानती नहीं हो। चाहे रूपचन्द हों, चाहे सोनाचन्द, चाहे हीरा-मोती-मानिकचन्द, इन सालों की फूंक सरका देंगे हम। मज़ाक नहीं है पब्लिक की ज़मीन को हड़प लेना।" कम्मी बोला।

'अरे चहे पब्लिक की होय, चहे किसी की होय, हमरी-तुमरी तो है नहीं ई जमीन—"

"जमीन हमारी-तुमारी ही है चाची, राजा केशौराय वसीयत में लिख गये थे हम लोगों के लिए।" जयकिशोर हंसकर बोला।

रमेश की मां को ये हंसी न सुहाई। खीझकर बोलीं: "अरे काहे हमें सताउत हौगे बेटा। ई मां की आतमा कलप रही हैगी। हम तुम लोगन के हाथ जोड़ें, ई देखौ पैर छुअत हैंगे "

"अरे ये क्या कर रही हो अम्मां।" रमेश अपनी मां का झुका हुआ सिर उनके कन्धे पकड़कर उठाने लगा, इसी बीच छैलू की मां और चाची के सिर भी 'हमहूं पैर छुअत हैंगे' कहकर झुके।

सामने खड़ी हुई भीड़ में से एक सज्जन बोले: "अरे, अब जाओ ना घर, शरम नहीं आती कि तुम्हारी माताएं इस तरह से गिड़गिड़ा रही हैं। अन्न से भी कहीं लड़ा जाता है? अरे लड़ना है तो रूपचन्द से लड़ो।"

"हम लोग रूपचन्द ही से लड़ रहे हैं जनाब। खाने का तो ये हाल है, कि रूपचन्द अगर सामने आ जायं तो हम लोग उन्हीं को खा जायं।" कम्मी अखबार मोड़कर उसे फाटक की चौखट पर रखते हुए बोला।

रम्मू पंसारी ने अपनी दुकान से चिल्लाकर कहा: "रूपचन्द को खाना बड़ा कठिन है बेट्टा। और खा भी जाओ तो पचा नहीं पाओगे। वो बड़े-बड़ों को पचा गए हैं।"

"अरे, तो अबकी हम लोग उसको पचा जायंगे, औ' थोड़ी-बहुत जरूरत पड़ैगी तो आपके यहां से लवणभास्कर चूर्ण लै लेंगे। बहरहाल, छोड़ेंगे नहीं चाचा को। अच्छे घर बयाना दिया है इस पूंजीपति ने।"

"वाह-वाह क्या सभ्यता हैगी तुम लोगन की। बड़े-बड़े बीए-एमे हुइ के बड़े-बुजुर्गों को गाली देते हौगे। सरम नहीं आती हैगी तुम लोगों को। ससुर सबेरे से तुफ़ान उठा रक्खा हैगा। भला कौन-सी बुरी बात कही रूपचन्द ने? कौन वो अपने लिए जमीन हड़प रहे हैंगे। मन्दिर ही तो बनैगा आखिर—"

"पर अकेला मन्दिर ही क्यों बनै। मेरी राय यह है,कि रुप्पन चाचा अगर एक मन्दिर, एक मस्जिद, एक गिरजाघर, एक गुरुद्वारा, एक बुद्ध मन्दिर, एक जैन-मन्दिर, एक आर्यसमाज का मन्दिर और अन्त में एक आदम-हौवा का मन्दिर यहां बनवा दें तो हम लोग अपना बालमन्दिर यहां से हटा ले जायंगे।"

मन्दिरों की लिस्ट सुनकर भीड़ में कई लोग हंस पड़े। जग्गी महराज भीड़ में खड़े थे, हंसकर बोले: "अरे बेटा, तीन देवताओं के मन्दिर तो छोड़ गये, एक सुअर का, एक बैल का, और एक गधे का भी मन्दिर होना चाहिए यहां पर। सुअर साक्शात भगवानजी का औतार है। बैल और गधे—"

इस बात पर लोगों में हंसी की लहर उठी ही थी कि जयकिशोर बोल उठा : "सुअर का मन्दिर अपने मुहल्ले में है तो सही—रूपचन्द की कोठी, और बैंलों का मन्दिर कैसरबाग में है। उसके बाद गधों का मन्दिर देखना हो तो सेक्रेटेरियल चले जाइए।"

जग्गी गुरु बोले : "खाली केसरबाग और सिक्रेटेरियल के क्यों, जित्ते कांगरेसी हैं, सब बैल और गधे हैंगे। तुम्हारे ससुर भी रहे—जिनकी जैजाद पर पर बैंठे हो।"

जयकिशोर बोला : "जी हां, बिल्कुल सच है। अब इस्से आगे बुजुर्गों को क्या कहूं।"

"ठीक है भैया, अपने बाप-दादों को तुम लोग गधा न कहौगे तो कौन कहेगा ?"

"उनको कहकर हम अपने-आपको भी गधा मान लेते हैंगे, जग्गी चाचा ! हमारे बाप गधे न होते तो ये चार सौ बीसिए हम पर राज करते भला ? हमारी जगह छीनकर ये सुअर लोग अपना मन्दिर बनवा सकते थे ?"

"तो मैं पूछता हूं, मन्दिर बनने में आप लोगों को आपत्ति क्या है ?"

"और मैं पूछता हूं कि संघ कायम रखने में आपको क्या आपत्ति है ?"

"संघ लड़कों को खराब करता है।"

"और मन्दिर भारत को गारत करते हैं। मैं पूछता हूं क्या रखा है इन मन्दिरों में। हिन्दू धर्म के इतिहास में जितने मन्दिर बने नहीं हैं, उतने तोड़े गये।"

"मुसलमानों ने—"

"अजी अकेले मुसलमानों ने ही नहीं, हिन्दुओं ने हिन्दुओं के मन्दिर तोड़े। इतिहास भरा पड़ा है। शैवों ने वैष्णवों के तोड़े, वैष्णवों ने शैवों के, शाक्त, बौद्ध, जैन सब एक-दूसरे के मन्दिर तोड़ते रहे हैं। इन मन्दिरों से हमें फायदा क्या है ? दूसरों को सताकर ठाकुरजी के सामने घण्टे-आरती हिलाने से लाभ ही क्या ?"

"ये तुम नहीं बोल रहे हो, तुम्हारी कमनिस्टी बोल रही है।"

"जी, ये मेरी कमनिस्टी नहीं, ऋषी दयानन्द की कमनिस्टी है, राजा राम-मोहन राय की कमनिस्टी है और ये दोनों ही ब्राह्मण थे।"

"ब्राह्मण तो रावण भी था ससुरा।"

"ब्राह्मण तो आप भी हैं जग्गी चाचा। बर मरे चाहे कन्या, जग्गी गुरु को दक्षिणा से काम। झूठे महूरत निकालैंगे, उल्टा-सीधा पाठ करेंगे, अफीम के नशे में श्राद्ध के मन्त्र कन्यादान में बोले जावेंगे—"

जग्गी गुरु की ये हरकतें जानकारों में प्रसिद्ध हैं, इसलिए लोग-बाग हंस पड़े। जग्गी गुरू चिढ़ गये, नास्तिक, अधर्मी, बदमाश आदि शब्द उनके श्रीमुख से उच्चरित होने लगे।

माताएं हार गयीं। रमेश की माता खीझकर बोलीं कि वे तब तक अनशन करेंगी जब तक कि लड़के अनशन करते रहेंगे और वे लड़कों से कतराकर फाटक के अन्दर एक कोने में बैठ गईं। छैलू की विधवा चाची भी यही निश्चय करके उनके पास जा बैठी और छैलू की मां से बोली : "जिठानीजी, तुम घर जाओ। हम तो अब लड़कन का लैके ही आवेंगे हियां से।

इन दो महिलाओं के अनशन करने की धमकी से रमेश, कम्मी, जयकिशोर,

गोडबोले, छैलू—पंचपाण्डव-विचलित हो उठे। उन्हें धीमे स्वर में सान्त्वना देने लगे, समझाने लगे। यह भी कहा कि घबराती क्यों हो, शाम तक ये लोग आप काबू में आ जाएंगे, हम लोग कोई एक-दो दिन की भूख से मरे थोड़े ही जाते हैं। लेकिन स्त्रियां न मानीं!

स्त्रियों के अनशन करने की ख़बर भी आनन-फानन फैल गई। पुत्ती गुरू ने सुना तो गरजने लगे, बोले: "मैं भी किशोरीदास के शिवाले में बैठकर अनशन करूंगा। मैं अपने जीते-जी यह कलंक सहन नहीं कर सकता कि मेरे लड़के ने ईश्वर और धर्म का विरोध किया।"

इन अनशन की खबरों ने आसपास के मुहल्लों के वातावरण को अत्यन्त गम्भीर और चिन्ताग्रस्त बना दिया।

रमेश के अनशन की खबर रानी के लिए एक और नयी चिन्ता ले आई: "आखिर इन्हें बैठे-बिठाए ये क्या सूझी? इम्तहान सिर पर सवार है, भविष्य का प्रश्न सामने है, फिर ये क्या कर डाला इन्होंने?" रानी को चिन्ता से अधिक क्रोध था। उसने एक दिन पहले 'इण्डिपेण्डेण्ट' में लड़कों द्वारा किए जानेवाले अनशन की घोषणा छपी थी और ट्रेनिंग कालेज में रानी की तमाम सहपाठिनों और उस्तानियों ने इस खबर को मजाक और नफरत से बखाना था। जिसे सुनकर रानी अपने मन मे अपराधिनी अनुभव करने लगी थी, उसे स्वयं भी कहीं पर यह चुभ रहा था कि यह अनशन मन्दिर बनवाने के खिलाफ हो रहा है। लेकिन कल शाम खन्ना साहब के यहां सब लोग रमेश और उसके साथियों को इस अनशन के लिए उभार रहे थे। इस मन्दिर-निर्माण-कार्य को पाखण्ड बतला रहे थे। पाखण्ड है? हमारे हिन्दू समाज में बेहद पाखण्ड और धर्म के नाम पर भ्रष्टाचार है। उसका विरोध किया जाना चाहिए। समाज के बेहूदा नियमों को तोड़ना भी चाहिए। यह सब तो ठीक है, पर भगवान का विरोध करना ठीक नइँ। रानी के मन में कल ही से यह बात चल रही थी, पर रमेश से कहने का मौका न मिला और आज अनशन शुरू भी हो गया। पिता, दादी, सौतेली मां, ऊपर के नये किराएदार नीचे बैजूलाला के यहां, सब मजाक उड़ा रहे थे। ऐसे ही और लोग भी उड़ाते होंगे। बाढ़ के दिनों में इन्होंने इतना नाम कमाया, वह सब इस अनशन के दिनों में धुल-पुंछ जाएगा। भगवान का विरोध ठीक नहीं।

लेकिन रानी जानती है कि उसके इन विचारों को खन्नासाहब के यहां बल न मिलेगा। वह ये भी जानती है कि रमेश अब उसके कहने से अपना अनशन हरगिज न तोड़ेगा और उसे अपने भय भरे आस्तिक विश्वासों की हौलदिली भी सता रही है। 'हाय राम क्या करूं, बड़ी अभागी हूं।...

कालेज के लिए घर से निकली, जी न माना तो रमेश के घर गयी। पुत्ती गुरू संन्यास लेने से पहले शाम की भांग बैठे हुए घोंट रहे थे। पूछने पर बोले: "भाड़ में गयी तुमरी चाची, ससुर लड़का कमनिष्ट, नास्तिक भया, सो कोई बात नहीं, पर तुम पचास बरस की बुढ़िया, भगवान का ध्यान छोड़ के जो अनशन करने बैठी हौगौ—नाक कट गई मेरी तो।...मैं पूछता हूं कि तुमको ससुरा कौन जानता है। अरे, मैं पूछता हूं कि तुम्हारे लड़के ने अंग्रेजी लिख-पढ़ के अखबारों में नाम छपाय लिया तब भी उस ससुरे को कौन जानता है। सब यही कहते हैंगे, कि

गुरूजी हमें ये उम्मीद नइँ रही। आपका लड़का और ये अधर्म करे ? शिव-शिव, राम-राम ! भगवान शंकराचार्य सच्चै कह गए हैं कि 'का तव कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः' ! अरे, मैं इन सब ससुरे नालायकों को छोड़छाड़ के संन्यास लै रहा हूं जी। मैंने रुप्पन से कह दिया है कि मेरी भार्या और पुत्र भूखे मरें तो मरें, सबके हिस्से का भोजन अकेला मैं कर जाऊंगा।" रानी थोड़ी देर खड़ी रही। और फिर वहीं से सीधी संघवाली बारादरी में पहुंची। रमेश की मां से मिलने का सच्चा बहाना तो उसके साथ था ही।

राजा केशोराय की बारहदरी का फाटक दूर-पास के आठ-दस मुहल्लों-टोलों की जनानी भीड़ से भरा था। रेंदकपेंदी छोटे-बड़े बच्चों, गली की स्थिर और गतिमान भीड़ के बीच यों तेजी से आ-जा रहे थे, ज्यों तालाब में मछलियां चक्कर काटती हैं। रम्मू पंसारी की दुकान ऐन फाटक ही के सामने थी और उस गली की सबसे बड़ी छःदरी दूकान थी। उसकी दूकानदारी में विघ्न पड़ रहा था। फाटक के सामने एक तरफ औरतों की कांय-कांय चल रही थी और दूसरी ओर रम्मू की जबान, रांड़ के चर्खे जैसी एक-सी चल रही थी। औरतों में एक ओर जोगी के शाप का भय और दूसरी ओर रुप्पन लाला के प्रति निन्दा का भाव चल रहा था। बीच-बीच में पोस्टरिये लड़के अपने पोस्टरों के नारों का घोष भी कर देते थे : "मन्दिर पर मन्दिर नहीं बनेगा।"

रानी भीड़ में धंसती हुई फाटक के पास पहुंची। चौखट का टेका लगाए पैर पर पैर चढ़ाए दोनों हाथों से एक तागे को नोचते हुए रमेश किसी गहरे सोच में खोया हुआ बैठा था। उस खोयेपन की जड़ता में अचानक एक बिम्ब झलककर उसे अपनी जानी-पहचानी बंधी-बंधाई दुनिया में ले आया। आंखों की पुतलियां आंखों की पुतलियों को देखने लगीं। रानी की आंखों में इस समय अपार करुणा थी। उसकी टकटकी रमेश की आंखों से बंध गई, लेकिन रमेश को हर्रो की चाहत भरी और कम्मी, गोडबोले, जयकिशोर आदि की जासूस नज़रों का होश था। सकपकाकर बोला : "अम्मां से मिलने आई हो रानी ? वो देखो वो, बैठी हैं सीढ़ी के ऊपर।" रानी द्रुतगति व सावधान होकर उसी के पास से कतराकर अन्दर चली गयी। रानी का आना रमेश को ताजगी दे गया। कम्मी, जयकिशोर उसे देखकर मुस्कराए। रमेश ने अपने होठों पर बरबस उमगती चली आती आनन्द-लहरी को गम्भीरता के गाढ़े आवरण से ढक लिया। जयकिशोर ने मित्रों के कानों तक ही पहुंचाने वाले स्वर अन्दाज में मुस्कराकर कहा : "उनको देखे से जो आ जाती है मुंह पे रौनक, वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।—ये-ये रमेश की—आई मीन, ये मन्नो की सहेली अगर अपने इस रूप में आने के बजाय आलू का पराठा बनकर आती तो कुछ काम भी बनता। कैसी भूखी आंखों से देखा था उसे रमेश ने।"

इनकी खुसफुस को सुनने के लिए हर्रो भी पास ही खिसक आया था। जयकिशोर की बात सुनकर बोला : मैं पहले ही से जानता था कि रानी रमेश के लिए आलू का परांठा लेके आयेगी। हम सब साले अनशन में उल्लू बन जाएंगे और ये मजे से छिपकर खा आवैंगे।" कम्मी, जयकिशोर आदि ने बड़े जोर से ठहाका लगाया।

"वा बेटा लालबुझक्कड़, तू अब खूब समझा।" कम्मी हंसकर बोला, लेकिन जयकिशोर ने गम्भीरता का जामा धारण किया : "सच्ची तो कह रहा है

बिचारा। रमेश का पेट तो इस 'आलू के पराठे' से भर गया और हम लोगों के लिए कोई सहारा नहीं है।" रमेश ने हंसते हुए जय किशोर की ओर मुक्का तान-कर कहा : "मारूंगा साले, तुम बड़ी लगाई-बुझाई करने लगे हो।"

इन नौजवानों को आपस में सिमटकर हंस-हंसकर बातें करते देखकर रम्मू पंसारी ने कहा : "देखो अब कोई नयी तरकीब सोच रहे हैंगे ये लौंडे।"

रमेश चट से बोला : "हाँ लाला, हम लोग ये सोच रहे हैं कि रात में तुम्हारी दुकान के ताले तोड़ के रवा, घी और शक्कर निकालेंगे, सो सावधान रहना।"

रम्मू चिढ़कर बोला : "हां भैया, अब चोरी-डकैती ही तो करेंगे भले घर के लड़के। तुम अब कह रहे होगे औ' हमें तो घण्टे भर पहले ही से यह भास आ गया रहा।" यह सुनकर लड़के बड़े जोर से हंस पड़े। जयकिशोर बोला : " भई वाह आज मालूम पड़ा कि हमारी गली में दो लालबुझक्कड़ हैंगे। बड़ों में रम्मू लाला, छोटों में हर्रो।"

हर्रो चिढ़ गया, एकदम उठ पड़ा, बोला : "मैं नईं, मैं नईं बैठता आप लोगों के अनसन में।"

भीड़ में से कुछ लोग हंस पड़े, एक बोला : " लो भइ, एक तो फूटा।"

यह हंसी वातावरण का रंग न बदल दे, इसलिए कम्मी लपककर बोला : "तौलना भई रम्मू घी, शक्कर, हर्रो के लिए। रुप्पन चाचा ने तो तुम्हें रुपए एडवांस में ही दे रक्खे हैं।

हर्रो चिढ़कर बोला : "मैं किसी के हलवे का भूखा नहीं हूं।"

जयकिशोर ने उठकर उसका हाथ पकड़ा और कहा : "चलिए, बैठिए अपनी जगह पर।" फिर कान में कहा : "अबे मजाक भी नईं समझता उल्लू कहीं का। तू अपना है, इसलिए तेरी आड़ लेकर यह सब सुनाया जा रहा है। बैठ।" भोले हर्रो का गुस्सा पिघलने लगा।

फाटक के अन्दर सीढ़ी पर औरतों की चेमेगोइयां हो रही थीं। रानी रमेश की मां के पास चुपचाप बैठी हुई थी। रमेश की मां भी मौन थीं। कित्तो की बुआ बोली : "ऐ रानी, तो कब तलक यहीं बैठी-बैठी भुखाओगी?"

"अरे, हम औरतन का भूखे रहन में लगतै का है। बाकी इन लड़कन का समझावै का चही।"

सुकुलाइन की बात काटकर छैलू बोला : अरे दादी, हमें समझाने मे अच्छा है के ज़ाय के रुप्पन चाचा को समझाओ।"

"रुप्पन को क्या समझावें। अरे, तुम ही लोग हियां बैठ के इत्तियाचार कर रहे होगे, एक अलंग अपने-अपने माय-बापन पे और दूसरी अलंग धरम-भगवान पे, भला बताओ।"

"हां-हां सुकुलाइन, ठीकै कहत होगी तुम। रुप्पन बिचारे मन्दिल बनवइहैं। संगमरवल औ' बड़ी-बड़ी नक्कासी औ'—हमारे हियन के लोग कहत रहे कि रुप्पन चार-पांच लाख रुपया खरच कै रहे हैंगे…"

"भला बताओ आजकल के जमाने में कौन इत्ता रुपया धरम के नाम पे अपने कलेजे तरे से निकाल के खर्च कै सकत हैगा रानी। औ' हमरे ऊ तो कहत रहे कि रुप्पन का विचार तो खाली टीले पर धरमशाला बनवावै का रहा, तब फिर यही रमेस के बाप पुत्ती गुरु कहिन की बारादरी में एक ठंइ मन्दिर भी बनवाय देव जिसमें साधू महातमा आय के ठहरें, झूले-झांकी का सिंगार होय, गीता-सत्संग

होय···हाय रानी, कैसा जुलुम हैगा इन लड़कन का, भला तुम्हीं बताओ।"

"जुलुम काहे का हैगा, अरे कथा-सत्संग को थोड़े मना कर रहे हैं ई लड़के। अरे सुनने को हो तो राधारमनजी के मन्दिर में जाकर सुन न लो कथा-कीर्तन—ई लड़के बिचारे कब रोकते हैंगे। अब हियां इनकी रायबरेली हैगी, बैठ के पढ़ते-लिखते हैंगे, संघ लगाते हैंगे, कौन बुरा काम करते हैंगे।"

"ऐ तो रामबरेली के लिए रुप्पन का मना करत रहे। उई तौ बिचारे अपना एक घर दै रहे हैंगे, इन लोगन का।"

"वो घर तुमको दै दें सुकुलाइन दादी, बैजूलाला के घर पड़ी हौगी, जूते खात हौगी दिन-रात, रुप्पन चाचा के मन में जो बड़ा धरम उपजा होय तो तुम्हें मन्स के दै दें वो मकान।"

रमेश की इस बात ने सुकुलाइन की जबान बन्द कर दी। सारा मुहल्ला जानता है कि सुकुलाइन की लड़की के ब्याह के अवसर पर, स्वर्गीय सुकुल द्वारा चौदह-पन्द्रह वर्ष पहले लिए गये ऋण के एवज़ में, लाला बैजनाथ ने सुकुल के मरने के बाद उनका गिरवी रक्खा हुआ मकान कुड़कवा कर सुकुलाइन को बाहर निकाल दिया था। बाद में मुहल्ले वालों के कहने-सुनने पर लाला बैजू ने अनाथ विधवा ब्राह्मणी को अपनी कोठी ही में एक कोठरी दे दी। और उस कोठरी के एवज़ में उन्हें अपना बिन कौड़ी का गुलाम बना लिया। उनके घर की रोटी-पानी और ऊपरी धन्धा पीटती है दिन-रात और जब कभी किसी काम में इनसे कुछ चूक हो जाती है या मुंह से कुछ बोल देती हैं, तो लाला-ललाइन, उनके लड़के, लड़कों के लड़के तक, मुंह लगे नौकर-चाकर तक सुकुलाइन को झोंटे पकड़कर मारते हैं और घर से बाहर निकल जाने की धमकियां देते हैं। इसलिए रमेश की बात पर कई औरतें हंस पड़ीं और कइयों की जबानों पर 'पूंजीपती' शब्द तरह-तरह से खेल गया। स्त्रियों की कांव-कांव में लड़कों का रस बढ़ा। उन्होंने देखा कि स्त्रियों का जनमत अधिकार उन्हीं के पक्ष में है। बाढ़ के दिनों में इनके द्वारा किया गया काम, इनके जलसे सराहे जा रहे थे। चालीस-पचास घरों की औरतें तो केवल इसी पक्ष में थीं कि उनके लड़के रोज यहां पढ़ने आते हैं। बड़े लड़कों की प्रशंसा इसलिए भी हो रही थी कि ये छोटे लड़कों को पढ़ाते हैं।

रमेश ने रानी की उपस्थिति से प्रेरणा लेकर तुरन्त काग़ज़-कलम मंगाकर संघ का संक्षिप्त इतिहास, लड़कों के अनशन और जनमत की एक चटपटी और सन-सनीखेज रिपोर्ट लिखी। अपनी मित्र-मण्डली में उसे धीरे-धीरे पढ़ कर सुनाया और काग़ज़ लेकर औरतों के बीच से 'हटो-बचो' करता हुआ ऊपर चढ़ गया। उसने रानी को बुलाया। स्त्रियों की दृष्टि स्वाभाविक रूप से ऊपर गयी। इन नज़रों की भरपूर चेतना के साथ भीड़ भरे एकान्त में रमेश ने रानी को काग़ज़ दिया और कहा : "इसे खन्ना साहब को दे देना।"

रमेश का मुख भीड़ के सम्मुख था और रानी उस ओर पीठ देकर खड़ी थी। आंखों में आंखें डालकर बोली : "जब तक तुम अनशन करोगे, मैं भी भूखी रहूंगी।"

आंखों की आग इतनी प्रबल थी कि रमेश की नज़रों में भी लपट निकलने को हुईं। बड़े संयम के साथ उसने अपने रीझे मन को व्यक्त होने से रोका, बोला : "आप पूरी बुद्धू हैं श्रीमती रानीबाला, क्षमा कीजिएगा, और इस तरह से कृपा करके मुझे न देखिए, वरना आपके तीरे-नज़र से घायल होकर मैं यहीं धड़ाम से गिर पड़ूंगा।"

"हमको इस समय का मजाक अच्छा नइं लग रहा तुम्हारा।"

"अरे, पागल हुई हो, जादा से जादा कल-परसों तक मामला ठीक हो जायगा। तुम ये काग़ज़ खन्ना साहब के घर दे आना, खबर छपना वहुत जरूरी है। और तुम लड़कियों का मोर्चा संगठित क्यों नहीं करती हो, घर-घर में आग लगाओ जायके। बहनजी को उकसाओ जाके कि वे तुम लोगों का नेतृत्व करें। जाओ, जाके ये सब काम करो, अनशन-फनशन ये सब हमारे काम हैं, आपके नहीं।"

चलते समय रानी ने रमेश के झुककर पैर छू लिए। सबने देखा। रमेश के मन में इससे सन्तोष भरी प्रसन्नता हुई। उसे व्यक्त करने के लिए सबको नाटकीय ढंग से सुनाते हुए रानी से कहा : "जाओ, भगवान तुम्हें विजय दें, काम सफल करके आना।"

लोग-लुगाइयों में फैल गया कि लड़कों ने रद्धूसिंह की लड़की की मार्फत कहीं चिट्ठी भेजकर कोई नयी चाल चली है। सारा दिन शाम तक कूचा राजा केशोराय लोग- लुगाइयों के आकर्षण का केन्द्र बना रहा। रानी के द्वारा 'इण्डिपेण्डेण्ट' में खबर भेजने के बाद से रमेश ने एक और नयी चाल चली। भीड़ को सम्बोधित करके यह कहना शुरू किया कि "पब्लिक की जमीन मन्दिर-धरमशाला की आड़ में ये पूंजीपति हड़प किए जा रहा है। अभी डॉक्टर आत्माराम अपनी तरफ से एक हजार रुपया हमारे पुस्तकालय में दे गये हैं। इस टीले और बारहदरी में लड़कों के लिए पुस्तकालय और खेल-कसरत का स्थान बनवाने के लिए सरकारी सहायता दिलाने का वचन दे गये हैं। मन्दिर इस क्षेत्र में अनेक हैं। झम्मन टीले में राधारमणजी का मन्दिर अभी कुछ ही बरस पहले तो बना है। हमारे नगर का ताजमहल है वो। उससे अच्छा कौन बनवा सकता? वहां साधू-सत्संग और कथा-कीर्तन होता ही रहता है, फिर हमारी जगह क्यों छीनते हो? हमको अधर्मी, नास्तिक, जाने क्या-क्या कहते रहते हैं रुप्पन चाचा। पर हम आपसे, यानी कि जनता से सीधा सवाल करते हैं कि अधर्मी कौन है?" रमेश ने यह व्याख्यानमाला का क्रम चलाकर लाला रूपचन्द के विरुद्ध भीषण प्रचार-प्रहार आरम्भ किया। सभी लड़के बारी-बारी से लेक्चर देते थे। लेक्चरियों के भाषणों के बाद पोस्टरियों के नारे बुलन्द होते थे और इस तरह दोपहर से जो प्रचार आन्दोलन धीरे-धीरे बढ़ता हुआ अब, शाम के सात साढ़े सात बजे तक, जिस 'टेम्पो' से गर्माया, उस शक्ति से लाला रूपचन्द की हवेली अहम् मद से मतवाली होकर अल्लबल्ल बकने का केन्द्र बन गयी। जनमत उस समय तक विशेष रूप से उनके विरुद्ध हो गया था।

सबेरे दस बजे पुत्ती गुरु अपना भांग का गोला पत्ते में लपेटकर अंगौछे के एक सिरे में उसे और दूसरे में घुली हुई भांग-काली मिर्च की पुड़िया और छोटी सफरी सिलौटी बांधकर, एक धोती, अपनी माला, तुलसीकृत रामायण और अपने सन्दूक में रखे दस रुपये दो आने और लोटा-डोरी लेकर संन्यास लेने का पूर्ण संकल्प करके घर से चले। संन्यासी बनने से पहले उन्हें एक लौकिक कर्म भी करना था। यानी रुप्पन के घर अपने दिये गए वचन के अनुसार उन्हें भोजन करना था। ब्राह्मणी और ब्राह्मण-पुत्र अनशन कर रहे थे, जिससे कि धर्मभीरु धनबली जिजमान का परलोक बिगड़ सकता था। पुत्ती गुरू अपने बालबन्धु और यजमान को इस

अनिष्ट से बचाने ही के लिए भोजन करना चाहते थे। घर से निकले तो अपनी राह की गली-दरगलियों में उन्हें टोकनेवाले बराबर मिले—'गुरू ये क्या हो रहा है, अरे गुरू तुम भी किस पापी के पक्ष में अपने बेटे का विरोध कर रहे होगे ? सारे मुहल्ले की जमीनें हड़प कर गया और औने-पौने में। नयी सड़क बनने पर रुप्पन ने कम-से-कम तीस हजार रुपये तक अपनी आमदनी बढ़ाने का नक्शा तो पहले ही बांध लिया था, अब सारा टीला और बारादरी भी हड़प कर जाना चाहते हैं। ऐसे पापी के मन्दिर में भला भगवान रहेंगे ?' कहीं उन्हें दूसरे विचारों की टोली मिलती, जो उनके पत्नी-पुत्र के द्वारा अनशन करने पर, लड़कों के इस बेहूदा उत्पात पर तीखी टीका-टिप्पणी करती। रुप्पन लाला की कोठीवाली गैल तक पहुंचते-पहुंचते पुत्ती गुरू के तीव्र संचारी मनोभाव हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की तरह आपस में बंटकर लड़ने लगे। मन की चिड़चिड़ाहट गहरे में उथल-पुथल मचाने लगी थी। मोड़ पर पहुंचकर सामने रुप्पन की कोठी के झलकनेवाले एक भाग पर दृष्टि पड़ते ही एकाएक गुरू की भांग तड़क गयी।—"जिस निष्ठुर स्वार्थी के कारण मेरा लड़का भूखा बैठा है, उसी के यहां भोजन करने जाऊं ?"

बस, गुरू लौट पड़े। निकल तो पहले ही पड़े थे। बस, अब न उधर जाएंगे, न घर जाएंगे, न कहीं जाएंगे। बस चले ही जाएंगे। और चलते-चलते पुत्ती गुरू गोमती की ओर चल दिये। नदी किनारे एकान्त में बने हुए एक भगत के बगीचे-दार प्रायवेट घाट पर जाकर पुत्ती गुरू नदी की बहती धारा को खड़े-खड़े देखते हुए शून्य में लीन हो गये। बड़ी देर बाद जब टांगें ही लकड़ी हो गयीं तब होश आया। माथे का पसीना पोंछने के लिए अंगोछा उठाया, तो गोले पर हाथ गया। मन में उत्साह भरी झोंक आई, सोचा इसे भी इसी समय छान लें, शाम की शाम घोटेंगे। ससुरी कहीं से ऐसी कन्दमूल मिल जाय, कि खाने-पीने से छुट्टी मिलै तो और भी अच्छा। गुरू तुरन्त ही गोला गटककर आठ-दस चुल्लू जल पी गये। पेट भरा, आनन्द आया। घाट पर बैठकर चूना-तमाखू मला, फिर लोटा भरके ऊपर आये। एक पेड़ की डाल पर अपना पोथी-पत्रा, धोती-अंगोछा सहेजकर रखा और निबटने-नहाने चले गये। घण्टा-डेढ़-घण्टा इसी सब स्वांग में बीत गया। आध-पौन घण्टे तक श्लोकों के इंजन का शंटिंग कराते रहे। फिर माला फेरने की उचंग आई, पर तत्क्षण ही मन उचाट भी हो गया। ध्यान लपक के राजा केशोराय की बारादरी में जा पहुंचा। ध्यान में अपना पुत्र एक झलक साक्षात् मूर्त होकर उन्हें दिखलाई दिया। गम्भीर और उत्तेजित पुत्ती गुरू को सहसा अपने बेटे से डर भी लगा। भय के विरुद्ध झुंझलाहट हुई, क्रोध जागा। उनका नशा सांप की जीभ की तरह दो फांकों में बंटकर लहराने लगा। उनकी मन्दिर की योजना मारी जा रही है, उनके अन्तर में कष्ट हैं, लेकिन लड़का भी कुछ बेजा बात नहीं कह रहा है। पुस्तकालय की स्थापना अपने-आप में वस्तुतः सरस्वती-मन्दिर की स्थापना के समान कार्य ही है। डॉक्टर आत्माराम जैसा महापुरुष स्वयम् एक हज़ार रुपया दान दे गया मेरे लड़के के पुस्तकालय को। अंग्रेजी के अखबार में नाम छपता हैगा मेरे लड़के का। कौन जाने आगे चलकर जवाहरलाल और डॉ० आत्माराम जैसा नामी-गिरामी हो मेरा रमेश भी। द्वितीय घर में कर्क का बुद्ध बैठा भया हैगा। कुलदीपक बनैगा मेरा पुत्र भी भोले की कृपा से। बेकार अपनी झख में क्रुद्ध हो गया उस बेचारे से···मुनुआ बैद झूठ नहीं कहते रहे हमसे, भांग थोड़ी कम करनी चाहिए मुझे। पर साली कम कैसे होय ? अष्टसिद्धि, नवनिधि मिल जाती है

इसमें, रुप्पन साला अपने स्वार्थ में मन्दिर बनवा रहा है। मैं बेकार में अपनी फफड़दलाली में फंस गया, अन्यथा शिवलहरी की कृपा से निष्काम मौजें मारता हूं। शिव के ध्यान की मौज ने आकर "बिमोहनं च देहिनां"—शिव-ताण्डव का पाठ पूरी तरंग में आरंभ कर दिया।

डेढ़ बजे के लगभग बगीची में एक साधु आ गये। पुत्ती गुरु अपने मन से बातें करते हुए अब उकता चुके थे। साधु को देखकर प्रसन्न हुए, पेड़ के नीचे तखत पर लेटे थे, उठ बैठे : "आइए महाराज, कहां से पधारना भया आपका ?"

"आजकल तो तुम्हारी ही नगरी में रह रहे हैं। बड़ी पापिष्ठपुरी है भगत।"

"अरे महाराज पूछिए नहीं, गऊ, ब्राह्मण और संन्यासी तीनों के तीनों दुःखी। इस अंगरेज़ी शिक्षा ने असल में हमारा सत्यानाश कर दिया महाराज।"

संन्यासीजी ने अपनी झोली से केले निकाले। पुत्ती गुरु की नजरों में वे चार-पाँच दर्जन से कम न लगे। उनके भीतर भी क्षुधानल भड़क उठी। केलों को देखकर मन डोल गया। रुप्पन के यहां होते तो अब तक भोजन पाय चुके होते, पर उस साले के अन्न की इस समय चाहना भी नईं करनी चाहिए।

संन्यासी नदी तट पर हाथ-पैर धोने के लिए गये। उतनी देर तक पुत्ती गुरु का पेट उनकी दृष्टि में समाकर केलों का मानसिक भोजन करता रहा। संन्यासी लौटकर आये। इन्होंने सोचा कि साधू महात्मा हैं, अवश्य ही मुझे प्रसाद देकर आप ग्रहण करेंगे। पर ये संन्यासी ऐसे न निकले। पालथी मारकर एक-पर-एक केले गपागप खाते रहे। और देख-देखकर पुत्ती गुरू की भांग भूख में जोरों से भन्ना उठी·· साले के पेट में दुखैंगे। चोर होयगा ससुरा भगवा भेस में। इत्ते केले कोई भीख में नहीं पाता आजकल। एकाएकी पालथी बदलकर कुछ रोबीले स्वर में पूछा : "क्यों बाबा, कै आने दर्जन में लाए।"

"अरे भगत एक पंजाबी फलवाले की औरत के सिर से आज सबेरे भूत झाड़ा था, सो उसने इत्ते केले और चार सेब दिये, सो भगत कल शाम को कुछ खाया नहीं था, इसलिए फलाहार बड़ा सुखदायी लग रहा है। और फलों में फल केला ! बड़ा मधुर, बड़ा पौष्टिक।"

"हमारे लिए ये उत्तम नहीं है। भांग में ससुर गरिष्ट वायुकारक ! अब जित्ते केले तुम खाय रहे हो महाराज, उत्ती छोटी इलायचियां भी खानी चाहिए दरअसल में, तब जाके हजम होयगा।"

"अच्छा है भगत, जितनी देर में हजम होवैगा उतना ही सुख रहैगा। आज खाया है, फिर भगवान जानैं कब खाने को मिलै।"

"अरे, तब तलक तो सेब आपके सड़ जायेंगे महाराज।"

"भगवान की इच्छा।"

"इससे अच्छा है कि हमारे हाथ ही बेच दीजिए सेब ! चार हैं जादा से जादा अठन्नी एक लै लीजिए हमसे।"

"ह ह ह ! दो रुपये का माल अठन्नी में लोगे भगत ? संन्यासी को ठगोगे ?"

संन्यासी की इस बात से पुत्ती गुरू मन-ही-मन लज्जित हुए और झुंझला उठे, बोले : "कलियुग में संन्यासी भी सौदेबाज हो जाता है महाराज। अरे जब

मोह से पीछा ही नहीं छूटा रहा तुम्हारा, तो फिर ये संन्यासी का चोला ही क्यों धारणा किया महाराज।"

संन्यासी बोले : "जैसा प्रश्न करोगे भगत, वैसा ही उत्तर भी मिलैगा। अरे सीधी-सीधी बात मुख से बोलो ना, भीख धन खानेवाले तुम भी हो और यह चोला भी है। लो निकाल के खाओ।" संन्यासी जी ने अपनी झोली की ओर संकेत किया। पुत्ती गुरू निरुत्तर हो गए, क्षण भर संकोच में बंधे रहे, फिर भूख ने ढकेलकर उनका हाथ झोली की ओर बढ़ा ही दिया। फलाहार के बाद संन्यासी सो गये। आप भी थोड़ी देर तक बैठे-बैठे संन्यासी पर अपनी संस्कृत विद्या और भक्ति-भावना का रोब झाड़ते हुए अनेक स्तोत्र तोते की तरह पढ़ते रहे। फिर जमहाइयाँ आईं, लेटे और सो गये। शाम को दोनों की भांग-बूटी छनी। संन्यासी चले गये, अँधेरा क्रमशः बढ़ने लगा। पुत्ती गुरू का मन संन्यासी के सत्संग से मुक्त हो ही चुका था, अब अपने घर-संसार में जाने के लिए व्याकुल भी हो उठा। संन्यासी ने अपनी जीवनचर्या बतलाते हुए अपने भरण-पोषण के सम्बन्ध में एक कहावत कही थी, 'कभी घी घना, कभी थोथा चना, कभी वो भी मना।"

इसी कहावत ने पुत्ती गुरू को संन्यास लेने से रोक दिया। वो भूखे नहीं रह सकते; घर में कोई नहीं बनाएगा तो स्वयं पाक कर लेंगे। संन्यासी की भूख भले ही फलों से मिट जाती हो, परन्तु गृहस्थ की भूख अन्न ही से मिटती है। भूखा मार रहा है ये असुर रुप्पन मेरी ब्राह्मणी को, मेरे आतमज को···हे भोलानाथ, आज रात में भैरव और वीरभद्र को भेजकर इस ससुरे के घर में ऐसा चमत्कार फैलाओ, कि ससुरा सवेरे ही मेरे घर पर आय के कहे कि गुरू चरण छूता हूं, अपने लड़के को समझाओ, अनशन तोड़ें, मन्दिर अब नहीं बनेगा।

मन्दिर न बनने देने का निश्चय अनेक लोगों के मतों में मन चुका था। खासतौर से शामराव गोडबोले के पिता आयुर्वेदाचार्य पं० गणेश गोविन्दजी गोडबोले बड़ों में इस आन्दोलन के अगुवा बन गये।

गणेशजी गोडबोले केवल इस नगर ही के नहीं, बल्कि प्रदेश के जानेमाने वैद्य हैं। यह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण-परिवार गदर में झांसी छोड़कर यहां आ बसा था। पांच-छह पीढ़ियों से उनके यहां लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ही समान रूप से सन्तुष्ट होकर विराजमान हैं। पुरानी हवेली है। गणेशजी के पिता गोविन्दजी के समय से उनके यहां आयुर्वेदिक औषधियों का कारखाना भी चलता है। अच्छी आमदनी है। गणेशजी बी० एस-सी० और आयुर्वेद दोनों ही की डिग्रियाँ धारण करने वाले पढ़े-लिखे सुलझे विचारों के मगन-मस्त व्यक्ति हैं। शाम के समय मुहल्ले और वार्ड के आठ-दस भद्र पुरुष उनके यहां नित्य ही आकर बैठते हैं। नाना प्रकार के चर्चा हुआ करते हैं; चाय, शरबत, पान से सत्कार होता रहता है। इस बड़ी सम्भ्रान्त चकल्लसी गोष्ठी का नाम मित्रों ने प्राइवेट प्रयोग के लिए श्री गणेश गोविन्द गोडबोले के नाम के प्रथमाक्षर जोड़कर 'गंगोगो' गोष्ठी रख दिया है। स्थानीय डिग्री कालेज के प्रिंसिपल राय राधाचरण, पं० भृगुनाथ शास्त्री, अवकाश-प्राप्त सब-जज किशोरीलाल सक्सेना आदि सज्जन, लड़कों के अनशन वाली पहली शाम को भी नियमानुसार गणेश जी के यहां आये थे। उस दिन स्वाभाविक रूप से लड़कों के अनशन ही की चर्चा छिड़ी।

गणेशजी हंसकर बोले: "चलो इस बहाने हमारे मुहल्ले का नाम तो अखबारों

में छपता ही रहेगा। हमसे कल रात शाम्या ने कहा कि बापू, अनशन करने जा रहा हूं। हमने कहा कि करो भइ करो। चार दिन की चकल्लस रहेगी, लेकिन इसके साथ ही साथ हमारी सलाह यह है कि, अनशनकारी लड़के सम्पन्न घरों के होवें जिससे कि अगर इस साल फेल भी हो जावें, तो कोई चिन्ता की बात नहीं।" कुछ लोग यह सुनकर हंस पड़े। "और दूसरी बात हमने अपने लड़के से यह कही कि दूसरों की जानता नहीं, पर अगर तू अपना उद्देश्य सिद्ध किए बिना इस घर में लौटा, तो तुझे जूते मारकर मैं घर से निकाल दूंगा। सत्य और आन पर घुटने टेक देने वाले मनुष्य को मैं मनुष्य नहीं मानता।"

प्रिंसिपल साहब बोले : "आपने बैदजी सिरिफ सिद्धान्तों और मानों को ही अपनी दृष्टि में रक्खा, मगर ये न सोचा कि यह फरवरी का महीना है। विश्वास कीजिए, आज दिन भर आगे की बात सोच-सोचकर मेरे प्राण सूखते रहे हैं। इण्डिसिप्लिन की बात अब तक विद्यालयों, विश्वविद्यालयों तक ही सीमित रहा करती थी, अब वह समस्या सामूहिक रूप से हमारे घरों में घुस रही है। इस सैलाब में समाज के चरण आखिर कहां जाकर टिकेंगे ? मेरे लिए तो तात्कालिक समस्या यह है, कि मार्च से हाईस्कूल और इण्टर सेक्शन के इम्तहान शुरू होंगे और एप्रिल में डिग्री क्लासेज के।"

गणेशजी ने कहा : मैं एक बात जानता हूं कि हमारे इन लड़कों में अनुशासन-हीनता तनिक भी नहीं है। साहब, जिस तरह से ये लड़के पिछले दस बरसों से अपना संघ चला रहे हैं, वह मैं तो कहता हूं, राष्ट्रीय सम्मान पाने योग्य काम है।"

मित्र-मण्डली इस बात से सहमत थी। यह सच है कि जहां तक लड़कों का सवाल है, यह वार्ड और उसमें भी विशेष रूप से ये दस-बारह टोले-मुहल्ले पिछले दस-बारह वर्षों से तरुण छात्रसंघ के बड़े ऋणी हैं। लड़कों की सामूहिक पढ़ाई और उनके अनुशासन का पूरा भार इस संघ ने सम्हाल रक्खा है हर साल। परीक्षा-फल में संघ के लड़के औरों से मीर साबित होते हैं। पिछले दिनों गोमती की बाढ़ के दिनों में इनके काम का यश लामुहाला लोगों की जबानों पर चढ़कर बोलता था। अत्यधिक सत्ताग्रही, परधन-लोलुप रूपचन्द से आमतौर पर वार्ड के पढ़े-लिखे लोग यों भी चिढ़ते थे, इस समय तो क्रोध और घृणा के बफारे छोड़ने लगे। नयी सड़क की स्कीम पास होने के आठ-दस महीने पहले से ही रूपचन्द ने इधर की जायदादें साम, दाम, दण्ड, भेद से खरीदना-हथियाना शुरू कर दिया था। नयी सड़क की योजना भी रुप्पन लाला के स्वार्थी उर्वर मस्तिष्क की उपज है। सुना जाता है कि यहां एक 'एयरकंडीशंड' (वातानुकूलित) सिनेमाहाल और एक मार्केट बनवा रहे हैं। इन बातों के प्रसंग में गणेश जी वैद्य के मन में वह विचार आया कि इस क्षेत्र के कुछ प्रतिष्ठित नागरिकों को इसके विरुद्ध एक वक्तव्य देना चाहिए।

गणेशजी बोले : "देखिए, पांच-छै प्रतिष्ठित तो भगवान विश्वेश्वर की दया से यहीं बैठे हुए हैं। स्टेटमेण्ट लिख डाला जाय। श्रीनारायण एडवोकेट, आनन्द-मोहन खन्ना 'इण्डिपेण्डेण्ट' वाले और एक-आध नाम कोई और जोड़ लीजिए। इस टोले और बारहदरी पर अब सदा सर्वदा के लिए तरुण छात्रों का ही कब्जा रहेगा। डॉ० आत्माराम इन्हें एक हजार रुपया दे गये हैं। मैं उनके जैसा सम्पन्न तो नहीं हूं, पर बात की बात पर, एक हजार एक मैं भी देता हूँ। श्रीनारायणजी

से भी इतनी ही रकम दिलवा दूंगा। लाला वैजू भले ही किसी मत के हों, पर एक हजार रुपया उनसे ले ही लूंगा। ये हमारे जज साहब भी कम से कम पांच सौ एक तो देंगे ही—"

"हां-हां—"

"इस तरह दस हजार की रकम हाथों-हाथ जुट जायगी। कुछ सरकारी सहायता हो जायगी। हजार-दो-हजार जरूरी मरम्मत और टीमटाम में; बाकी छै-सात हजार रुपये की पुस्तकें खरीदकर एक दिव्य पुस्तकालय की स्थापना हो जाय।"

यह निश्चय कुछ इस तरह से गर्माया, कि गोडबोले जी ने उस समय छह-सात लोगों से टेलीफोन पर रकमों के वादे भी ले लिए। प्रिंसिपल साहब ने वक्तव्य का मजमून बनाया, जिसमें अनुदान देनेवालों के नाम घोषित कर दिये गये। सम्पन्न मनमौजी वैद्यजी पर जो अहंता की तरंगें चढ़ीं, तो फिर उसी समय पास के एक प्रेसवाले को बुलवाया। कम्पोजीटरों मशीनमैनों को बुलवाकर रातोंरात इस वक्तव्य को छपाने की व्यवस्था की। सबेरे छः-सात बजे गोमती के घाट ही से उनके पर्चों की बंटाई आरम्भ हुई। जैसे-जैसे हाट-बाजार खुलने लगे, गली-महल्लों की टोलियां जुड़ने लगीं, वैसे-वैसे इस पर्चे की महिमा बढ़ने लगी। सुबह के दैनिक अखबार भी हिन्दी-उर्दू-अंग्रेजी पढ़नेवालों को नगर की इस नयी हलचल से अवगत कराने लगे।

इसके जवाब में दिन के दस बजे ग्यारह ब्राह्मणों का एक दल बाकायदा स्वस्तिवाचन करने के बाद अनशनकारी लड़कों की पंक्ति के आगे बीच गली में "ओम अपवित्र: पवित्रो वा" से धरती छिड़कर अपने-अपने कुशासन बिछाकर अनशन करने के लिए बैठ गया। जवाबी धार्मिक नारे लगानेवालों की टोलियां भी जवाबी मोर्चे के तौर पर आ डटीं। अफवाहें फैलने लगीं। थोड़ी ही देर में दो डण्डाधारी कांस्टेबुल भी वहां आकर खड़े हो गए। इससे अफवाहों में नया जोश आ गया।

छोटे लड़के विशेष रूप से जवाबी नारे लगानेवालों के शोर से भड़क उठे। किसी ने तत्काल ही नया नारा ईजाद कर लिया—'रूपचन्द के लट्टू हैं—भई क्या नाचे। (पटापट तालियों की लय पर चिल्लाने लगे) ये बाह्मण किराए के टट्टू हैं। भाई क्या नाचे।'

इस नये नारे ने लोगों को हंसा दिया। पंडित लोग थोड़ी देर तक तो शान्ति पूर्वक वेदपाठ करते रहे, पर जब इस नये नारे के शोर ने उनकी ओर के मुट्ठी भर नारेबाज रट्टू तोतों की टें-टें को दबाकर, उन्हें हंसी का पात्र बना दिया, तो दो-एक बूढ़े ब्राह्मणों का सनातन और सहज ब्रह्मतेज भड़क उठा। गर्मागर्मी, फिकरेबाजियों का उभार बनकर लहराई। दो पंडित चिढ़कर मारपीट पर आमादा हो गये। भुस में आग लग गयी। फिर तो लड़के अपने हाईकमान के नेताओं के बस में भी न रहे। छेड़ी हुई भिड़ों की तरह लड़के दोनों मारनेवालों से चिपट गए। रुप्पन पार्टी के जो लोग उन पर टूटे, उनके ऊपर क्रोधान्ध बानरदल और बचानेवालों का हुजूम टूटा। कुछ बचानेवाले हाथापाई की अन्धी लपेट में आकर चुटीले हो गए। और फिर तो बावली प्रतिक्रिया में लड़कों के प्रति ही आक्रमण-कारी हो गए। डरपोक लड़के लड़ाई के दृश्य से हटकर इधर-उधर गलियों में 'हो गयी-हो गयी' का शोर मचाते हुए आलम को सनसनाने लगे। दस-पन्द्रह मिनट के

अन्दर-ही-अन्दर मजमा जुड़ गया। दोनों पुलिस वाले अपने आपको अक्षम पाकर तमाशाई बने खड़े रहे।

रम्मू पंसारी की दूकान फटाफट बन्द होने लगी। देखादेखी और घबराहट में कुछ और भी दूकानें बन्द हो गईं। बड़े लड़के जो आरंभ में लड़ाई से हरचन्द बचना चाहते थे, अब घटनास्थल के बावले उन्माद में आप भी बवण्डर बनकर नाच उठे। बारहदरी की सीढ़ियों पर रमेश की मां, हर्रो की चाची और उनका दरबार लगाने के लिए आई हुई दो-चार बूढ़ियां-ठुढ़ियां, हाय-हौके के चक्र में फंसकर रोने, कोसने और बड़बड़ाने लगीं। एक दर्जन लठैत सिपाहियों के साथ पुलिस दारोगा आ गए। रमेश, जयकिशोर, कम्मी और गोडबोले को गिरफ्तार कर लिया गया। छैलू, इसी बीच में ही एक दो तीन हो गया। हर्रो बलिदान से बकरे की तरह अपनी गर्दन कटाने के लिए अन्त तक अपना सिर झुकाए खड़ा रहा, मगर पुलिस देवी ने उसकी बलि स्वीकार न की। छोटे-लड़कों के दल में से बहुत से बलवाई खदेड़कर बारहदरी के फाटक के अन्दर ले जाये गये और चार कांस्टेबिल ऊपर की सीढ़ियों पर दीवार बनकर खड़े हो गए। फाटक बाहर से बन्द कर दिया गया। भीड़ बहुत काफी छंट गयी, पुलिस की एक राइफलधारी टुकड़ी और भी आ पहुंची थी न रूपचन्द आए, न गोडबोले वैद्य, अथवा कोई अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति ही आया। बहुत से पकड़े जानेवाले बच्चों के मां-बाप अवश्य ही चिन्तित, पुलिसवालों की चिरौरियां और गोहार लगाते हुए दिखलाई पड़ रहे थे।

घटनास्थल पर कानूनी कारंवाई पूरी करने के बाद पुलिस अपने चार बन्दियों को लेकर चली गयी। तमाशाइयों की एक बहुत बड़ी भीड़ भी उन्हीं के पीछे-पीछे चली गयी। कूचा राजा केशोराय का मजमा छंट जाने पर केशोराय की बारादरी का सिंहपौर चूहेदानी के मुंह की तरह खोल दिया गया। आगे-पीछे के पुलिसमैनों की लाठियों की फटाफट और अपने मां-बापों की डांट-गोहार से आतंकित होकर छोटे बच्चों की भीड़ इधर-उधर भाग गयी। बारहदरी और टीले पर हथियारबन्द पुलिस का पहरा बैठ गया।

पुत्ती गुरू अपने घर से बाहर ही न निकले थे। न घर में पन्नो का पता था और न सुरेश ही का। सबेरे घर के पूजन-पाठ से निबटकर वे नित्य नियमानुसार यजमानों के घर न जाकर उनके निमित्त बारी-बारी से घर ही पाठ करने बैठ गए। पुलिस के आने पर कुछ लोग उन्हें भी खबर देने आए। रमेश की गिरफ्तारी की खबर भी उन्हें दी गयी, किन्तु पुत्ती गुरू तनिक भी न मसके। खबर लेकर आनेवालों की ओर सिर उठाकर देखा तक नहीं, सुनकर हाथ के इशारे से उन्हें जाने के लिए कह दिया और अनवरत पाठ करते रहे: "या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता—नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ या देवी सर्वभूतेषु ··"

उनकी पत्नी रमेश की गिरफ्तारी के बाद आठ-दस औरतों के मातमी मजमे के साथ घर में घुसीं। घर कांव-कांव से भर उठा। पुत्ती गुरू तब भी टस से मस न हुए। कल सायंकाल गृहस्थी में रहकर भी पूर्ण संन्यासी बनने का जो संकल्प उन्होंने किया था, उस पर वे दृढ़ता से कायम थे। इस शोर-शराबे और सूचनाओं से उनका मन बावला होकर भी संयत बना रहा। पाठ को अधूरा न छोड़ने के धर्माग्रह ने उन्हें कठोर बना दिया। उन्होंने तीनों यजमानों के पाठ समाप्त किए।

आसन छोड़ा। घर में बैठी हुई गुन्नों पुरतानी, कित्तो की बुआ, और लच्छू की मां से उन्होंने कहा : "देखो जी एक बात मैं ये जानता हूंगा, कि वशिष्टजी महाराज के ब्रह्मबल के आगे विश्वामित्र तक ने जब क्षत्रिय हुइ के घुटने टेक दिए, तब ये रुप्पन ससुरा क्या हैगा। तुम देखती चलौ, शान्त हुइके बैठी रहौ सब जनी, मैं रुप्पन को और उन सभी ब्रह्मपिशाचों को जो मेरे लड़के के विरुद्ध अनशन करने बैठे रहे, और जिन दुर्मति दुरात्मा दुष्टों ने मारपीट करी रही, उन सभी का कैसा सत्यानाश करता हूंगा।" कहकर गुरू यजमानों को आशीर्वाद देने के लिए घर से चल पड़े। पहले शम्भू बाबू और बिसेसर लाला के यहां गए और फिर रुप्पन के यहां। रूपचन्द घर पर मौजूद न थे, सो अन्तःपुर में जाकर ललाइन को आशीर्वाद देने के लिए बुलाया।

पुत्ती गुरू का आगमन सुनकर ललाइन जल्दी से उठकर दालान में आईं और कहने लगीं : "ते क्या हुइ रहा है महाराज जी, हमाई तो कुछ समझी में नईं आवे हैगा। वो जोगी का सिराप फल गया है महाराज जी।"

महाराज जी ताड़ की तरह तने रहे : "अच्छा अच्छा, पहले आशीर्वाद लेओ, बाद में शाप की बात समझाऊंगा।" कहकर फूल हाथ में लिए और आशीर्वाद की गाड़ी चालू की : "श्रीर्वर्चस्य मायुष्य मारोग्य मा विधात्वमानम् महीयते, धान्यम् धनम् पशुम् बहुपुत्र लाभम् शत संवत्सरम् दीर्घमायु ...." फूल ललाइन के आंचल में डालकर फिर ठंडे स्वर में बोले : ई तौ भया सेठानी जी, तुम्हरे यहां पाठ करने का आशीर्वाद, जो कि हमारा ब्रह्मधर्म रहा। और अब मैं अपना ब्रह्मबल दिखलाने जाता हूं, तुम्हारी हवेली के चबूतरे पर बैठ के उलटी गायत्री जपूंगा और तीन दिन के बाद आय के पूछूंगा कि रुप्पन, अब बतलाओ कि लक्ष्मी का वाहन बड़ा हैगा या सरस्वती का हंस। ब्राह्मण के लड़के को गिरफ्तार कराय के रुप्पन ने अपने ही हाथों से अपने पैर में कुल्हाड़ा मारा है, ये जाने रहना। मुझको कोई कुछ नईं कह सकता।" कहकर पुत्ती गुरू तेजी से बाहर निकल आए।

छैलू के बारहदरी से भागने का कारण उसकी कायरता न थी, बल्कि पण्डिताऊ अनशन का ढोंग और पुलिस का जोम उसकी सहनशक्ति से बाहर की वस्तु हो गया था। अन्धे क्रोध के बवण्डर में 'बदला! बदला!' मन में नाच उठा। बिजली की तरह विचार कौंधा, भागो। और अपने बचाव के लिए पूरी सतर्कता के साथ वह मौका ताकने लगा। भीड़ अर्धचन्द्राकार खड़ी थी। छैलू, रमेश, जयकिशोर आदि के पीछे, कुछ-कुछ कम्मी की आड़ में खड़ा था। हर्रो उसके पास ही सकपकाया हुआ खड़ा था। भीड़ पूरी तौर पर दारोगा और पुलिस की कार्रवाइयों को देखने में मग्न थी। छैलू दोनों हाथों से हर्रो को अपनी जगह पर बढ़ाते हुए उसके पीछे आ गया, फिर दूसरे तमाशाई को भी उसी तरह आगे बढ़ाया और अपने लिए रास्ता निकाला। पीछे का मजमा चूंकि आगे बढ़कर प्रस्तुत दृश्य देखने के लिए उत्सुक था, इसलिए छैलू लोगों को आगे की ओर बढ़ाता, कतराता, निकलता ही चला गया। पीछे छंटनी की भीड़ तक पहुंचते ही उसने तेजी से दौड़ लगाई। दो-चार परिचितों ने उसे भागते देखा और नाम लेकर पुकारा। भय उसे सब कुछ अनसुना-अनदेखा करके दौड़ा रहा था।

मरघटे के रास्ते में एक पुराने नवाबी बाग में, जो अब आधा जंगल और

आधा खेत हो चुका है, कोने में एक मस्जिद के खण्डहर हैं। छैलू की भयजनित सतर्कता ने उसे चलाते-चलाते वहां ला पहुंचाया। सुरक्षित होते ही मन की स्थिति सामान्य होने के लिए विकल हो उठी। खुदे हुए धूल-मिट्टी भरे फर्श पर धम्म से बैठकर लोने झड़ी दीवार के सहारे अपनी पीठ और निढाल गर्दन डालकर बैठ गया और आंखें मूंद लीं व चैन की सांस ली।

थोड़ी देर बाद शरीर में सावधानी आई। आंखें खुलीं, आंखों से अंधेरे की काली धुन्ध निकली और अपने गाढ़ेपन को शुरू में धीरे-धीरे ढकेलकर तीव्रता से व्यापकता में फैल गयी—अंधेरा उजाला बन गया। सामने खेतों-वृक्षों की हरियाली के ऊपर सुनहरा धूप-भरा आसमान अपने सूनेपन में चमक रहा था। बीड़ी की तलब जागी, उसके अभाव में भूख का जोश जागा, और उसके भी अभाव में गहन पीड़ा-भरा सूनापन जागा। विकलता मन-काया में बावली बनकर नाच उठी। शरीर बैठने की स्थिति छोड़कर फर्श पर धनुषाकार लेट गया। मुंह से बेसाख्ता एक ठण्डी सांस निकल पड़ी, आंसू निकल पड़े, आंखें नम हो गयीं। खामोश आंसू बहते रहे। बड़ी देर तक धूल-मिट्टी में करवटें बदलते-बदलते अपने चौबीस वर्ष और कुछ महीनों के जीवन में छाई कुण्ठाओं और निराशा के अथाह कुण्ड में डूबता-उतराता रहा।···

छैलबिहारी अपने मां-बाप का इकलौता बेटा है। घर में दादी है, मां हैं, बूढ़े बाबा हैं। ये तीनों ही उसके पिता से हरदम तिरस्कार पाते हैं। उनकी हालत पुराने ज़माने के खरीदे हुए दास-दासियों से भी बदतर है। उनके घर पर एक नरवेश्या का राज्य है। मुहल्ला, पड़ोस, जाति-बिरादरी और समाज को ठेंगे पर मारकर उसके पिता बाबू रसिकबिहारी ने अपनी वासना के खिलौने बुलाकी को पिछले आठ-दस वर्षों से खुले आम अपने घर में ही रख छोड़ा है। बुलाकी, जिसे कि रसिक बाबू शाहज़ादा बुलाकी कहते हैं, अब लगभग सत्ताइश-अट्ठाइस वर्ष का होगा। दिन में अपने 'पति' के साथ उनके भट्ठे पर चला जाता है। बहुत बेदर्द, सख्त और स्वार्थी है। छैलू ही से उसे खास-तौर से ईर्ष्या है। और केवल उसी से उसका बस नहीं चलता। इकलौते बेटे के लिए बाप के दिल में कहीं घना ममत्व है। बाबू रसिकबिहारी घर भर में अगर किसी से किसी हद तक दबते हैं, तो छैलू ही से। बुलाकी अक्सर नाराज होकर छैलू की मां या उसके छोटे बाबा को मार भी बैठता था। प्रायः रसिक बाबू के सामने ही मारता था। दो-तीन बरस पहले एक बार छैलू की मौजूदगी में ही बुलाकी ने उसकी मां को तमाचा मारा था। छैलू ने अन्धे क्रोध में बुलाकी को ज़ोर से धक्का देकर गिरा दिया और उसकी गर्दन पकड़कर दो-तीन बार ज़मीन पर दे मारा। मुंह और गर्दन नाखून के खरोचों से भर गई। बुलाकी छैलू से कमजोर था, बुरी तरह से चीख उठा। रसिक बाबू उस समय पाखाने में थे, अपने माशूक की चीखें सुनकर जल्दी से बाहर निकले। उन्हें देखकर छैलू ने उसे मारना तो छोड़ दिया, मगर धमकाया कि अगर तूने फिर कभी मेरे किसी घर वाले पर हाथ उठाया तो तेरी जान ही लेकर छोड़ूंगा। बाप-बेटे में खूब लड़ाई हुई। बाप ने मारने के लिए हाथ उठाया, तो बेटे ने वहीं कोने में रक्खा हुआ बेंत उठा लिया और बाप को मारने पर आमादा हो गया।

इस घटना के बाद रसिक बाबू ने घर के भीतरी और बाहरी भागों के बीच के सारे दरवाज़े ईंटों से चुनवा दिए। अपना खाना-पीना तक घर से अलग कर

लिया। महीना पूरा होने पर घर-खर्च तक न दिया। उनके मामा खुशामद करने गए तो खूब पिट-कुटकर लौटे। यह देखकर छैलू और गर्मा गया। 'इस पाप की जड़ बुलाकी को इस घर में अब रहने ही न दूंगा।' बस जोश आया तो छैलू ने नई चुनवाई हुई एक-ईंटिया दीवाल मुगदर उठाकर तोड़ डाली। बुलाकी ने सन्दूक तोड़े, कबर्ड तोड़ा। उसके कीमती रेशमी और ऊनी सूट, नायलॉन की कमीजें रूमाल उसका एक-एक सामान चिन्दी-चिन्दी कर डाला। कीमती जूतों की छह-छह जोड़ियां बुलाकी के वास्ते देखकर ब्लेड से उन्हें काट-काट डाला। उसके सन्दूक में छह सौ बाइस रुपये के नोट, सोने के चेनदार बटन और हीरे के और नौरतन की दो अंगूठियां मिलीं। छैलू के न्याय से वह घर की सम्पत्ति थी, इसलिए निकाल ली। कमरे में बुलाकी और रसिक बाबू की चार-पाँच तस्वीरें टंगी थीं। सब घृणापूर्वक तोड़ीं और रौंदी। सिंगार-पटार का समान तोड़ा। पलंग के पाये कुल्हाड़ी से काटे, गद्दे-तकिए फाड़कर कमरे भर में उसकी रुई बिखेर दी। शराब की दो बोतलें भरी हुई रखी थीं। उनकी भी शामत आई। डेढ़-दो घण्टे तक भूखे भेड़िये की तरह वह चीर-फाड़ करता रहा। छैलू की मां और दादी हाथ जोड़कर हा-हा खाती रहीं, पर छैलू को तो भूत सवार था।

रात को ग्यारह बजे खान-पान, सैर-सपाटे के बाद रसिक बाबू और बुलाकी जब घर लौटे, तो अपने सुहाग-कक्ष का लंकादहन देखकर सुलग उठे। बुलाकी की नखरे भरी हाय-हाय ने रसिक बाबू के क्रोध में आहुतियां डालीं और वे गरजते हुए तोड़ी गयी दीवार लांघकर दालान भीतर वाले कमरे में पहुंचे। वहां अकेला छैलू ही नहीं, लच्छू, रमेश, गोडबोले, जयकिशोर, कम्मी और हर्रो भी मौजूद थे। अपनी सुरक्षा के लिए छैलू ने उन्हें बुला लिया था। रसिक बाबू के कमरे में आते गोडबोले, कम्मी और हर्रो तेजी से बाहर निकल आए। छैलू और उसके पिता में झड़प शुरू हुई, बाकी तीनों साथी कमरे से बाहर निकल दरवाज़े पर खड़े हो गए। छैलू ने पिता से कहा कि बुलाकी अब नहीं रहेगा। यह मेरे बाबा-पड़बाबा का मकान है, और मैं अब बालिग हूं। मुहल्लेवाले आपके खिलाफ हैं। मैं मुकदमा चला दूंगा, तो सब आपके खिलाफ गवाही देंगे। रसिक बाबू बेहद गर्मा गए। लच्छू-रमेश बीच-बीच समझावन-बुझावन करते हुए छैलू को तब तक दरवाज़े की चौखट तक घसीट लाए थे। रसिक बाबू गर्माकर जब मारने झपटे, तो रमेश ने छैलू को बाहर घसीटा और लच्छू रमेश ने जो किवाड़ के एक-एक पल्ले को पकड़े खड़े थे, फौरन ही दरवाज़े बन्द कर लिए। यह योजना लच्छू ही ने बनाई थी। उस कमरे में रसिक बाबू के सोने का प्रबन्ध करके ये लोग बुलाकी की दुर्गत बनाने के लिए जा पहुंचे। अखाड़िया गोडबोले पहले ही से बुलाकी को दबोचे हुए बैठा था। टंगे हुए पाजामों के इजारबन्द निकालकर कम्मी और हर्रो ने उसके हाथ-पैर बांध दिए। तब तक ये चारों भी पहुंच गए। नरवेश्या सबकी अपार घृणा और क्रोध का पात्र था। बहुत दिनों से ये लोग इसकी मरम्मत करने की ताक में थे रसिक बाबू चूंकि छैलू के पिता थे, इसलिए लिहाज के मारे रुक-रुक जाते थे। उस दिन अवसर पाकर उन्होंने अपने अरमान निकाले। मारपीट कर उस्तरे-कैंची से उसके सिर और भावों पर माडर्न आर्ट बनाकर, गोडबोले की लाई हुई जमालगोटे की दो टिकियां जबर्दस्ती उसके मुंह में डालीं और जबर्दस्ती पानी पिलाया। फिर मुंह पर पट्टी बांधकर पैरों के बन्धन खोल दिये और धक्के मारते हुए उसे गली में ले गए। पुराने सराफ़ की तरफ जाने वाली गली में पहुंच

कर उन्होंने उसके हाथ और मुंह के बन्धन खोलकर दो लातें जमाईं और कहा कि अब कभी इन गलियों में अगर तू फिर दिखलाई पड़ा, तो इससे भी ज्यादह तेरी दुर्गत बनाई जाएगी।

बल से न्याय को अपने पक्ष में करने का हठ तभी से छैलू के चरित्र में अपनी जड़ें मजबूत जमा चुका है। उस रात की घटना के बाद रसिक बाबू ने घर में कभी दुराचार करने का साहस नहीं किया।···और इस समय भी उसके मन में यही आ रहा है कि रुप्पन लाला को ऐसी सज़ा दी जाय कि फिर जनम भर वो हम लोगों से अटकने का साहस न कर सके।···स्साले ने पुलिस बुलवाई। हमारे मित्रों को पकड़वाया। इनकी ससुरों की ये मज़ाल कि हम स्टूडेन्ट्स के मामले में हाथ डाला। साले हमसे अटके, हमसे! देख लेंगे सालों को जरा अंधेरा हो जाय···।"

रह-रहकर आग का लौंका-सा मन में लपक उठता था। मित्रों की गिरफ़्तारी का दृश्य – क्या बीत रही होगी उन पर? क्या सोचते होंगे वे लोग?—इन बातों का ध्यान जेठ की दुपहरी के बगूलों जैसा रह-रहकर उसके मन को तेज चक्कर खिला देता था। दो-चार बार आंखें भी भर आईं। जी उबल-उबलकर किटकिटा-किटकिटा कर निरुत्तर शून्य में पसर जाता था। कभी-कभी मानसिक उत्तेजना वायु की भंवर बनकर खाली पेट में चक्कर काट जाती, कभी दूर के धुंधलके से मां, दादी और बाबा की चिन्ता भी उभरकर दिल के पास से लहर-सी गुजर जाती। कभी अपना भविष्य सूने फ्रेम जैसा ध्यान को बांधकर फिर गूंगे मन की भीड़ में खो जाता था। मन की चंचलता में कोई भाव या विचार टिक ही न पाता था।

पत्ता खड़का नहीं कि मन चौंका। दूर खेतों की ओर से भी कोई आदमी आता दिखाई दिया, तो पुलिस के भय से मन के पर्दे फड़फड़ा उठे। पूरी दोपहर शाम तक वही बावले बवण्डर उठते-बैठते रहे। मगर इस सारी अस्थिरता में भी बदले की भावना दृढ़ता के साथ स्थिर बनी रही– ऐसा तूफान उठाऊंगा कि सरकार मेरे साथियों को छोड़ने के लिए विवश होगी।"

सूरज ढल गया। दीवाल के पीछे से 'राम नाम सत्य' की आवाजें आने लगीं। दिन भर के बाद अपनी समस्या से अलिप्त होकर एक नया कौतूहल जागा, कौन मरा? इस कौतूहल को शान्त करने के लिए तो कोई उपाय न था, पर इस बहाने से वह उठ खड़ा हुआ। नीचे आया। चिड़ियों के झुण्ड शोर मचाते हुए पेड़ों पर मंडरा रहे थे। छैलू को भी अपने नीड़ की याद आई।

छछूंदर की तरह कोने-किनारे में लुकता-छिपता छैलू अपने मुहल्ले की ओर चला। वह दिन भर के हाल सुनने के लिए आतुर हो रहा था। कौन मिलेगा? किससे पूछेगा? कहां जायेगा?—इन प्रश्नों पर छैलू का दिमाग चकरा जाता है। अपने घर वह हर्गिज न जाएगा, क्योंकि वहां शायद पुलिस उसकी राह तकती बैठी हो। मन में बहुत से चेहरे उभरते, अस्वीकृत होकर गायब हो जाते।··· बड़ी रोशनीदार चहल-पहल भरी सड़कों से यथासम्भव बचता हुआ, अनावश्यक लम्बा चक्कर लगाकर, वह नाले के किनारे उस जगह पर पहुंच गया, जहां से गोडबोले और कम्मी के मकानों का पिछवाड़ा पड़ता। बीच में भीम के अखाड़े की गली है, जिसके विशाल पीपल की टहनियां कम्मी की छत से टकराती हैं। शरण पाने

के लिए छैलू अखाड़े की ओर ही चला। बूढ़े छंगा पहलवान को छोड़कर रात में वहां कोई नहीं रहता और पहलवान भलेमानस हैं, उनसे खबरें भी मिल जायेगी।

गली में घुसते ही दाहिनी ओर से आवाज सुनी : "छैलू भैया !" चोर का कलेजा हिल उठा; किसने पुकारा ? मुड़कर देखा, गोडबोले का नौकर रघुबीर था ? —'चुप !'—नाक पर संकेत की उगली रक्खे हुए छैलू उसकी ओर घूमा।

"अरे, कहां रहे छैलू भैया ? हियन तो गजब हुइ गया है गजब ! स्यामा भैया, रमेश भैया, किसी को भी जमानत पर नहीं छोड़ रही सरकार। अब इनका अन्त आय गया समझो।"

"धीरे बोलो। किसी को शक भी न होने पावे कि मैं यहां हूं।"

"तब फिर मेरी वाली कोठरी में चलो। बड़ी-बड़ी बातें हैंगी।"

"इधर ही है या अन्दर ?"

"ये सामने है !"

अन्दर दरवाजा बन्द करके दोनों खुसुर-फुसुर बातें करने लगे। गोडबोले के पिता गणेशजी वैद्य, कम्मी के पिता कमलनरायन सेठ, सब-जज साहब आदि कोशिशें करके हार गए, न तो लड़कों की जमानत ही मंजूर हुई और न उनसे किसी को हवालात में मिलने ही दिया गया। खबर थी कि लड़कों पर बड़ी मार पड़ रही है। खन्ना बाबू से डॉ० आत्माराम को भी टेलीफोन करवाया गया। और सबसे बड़ी घटना दोपहर के समय हुई, कि हवालात में रमेश आदि पर मार पड़ने की अफवाहों से गर्माकर हाई-स्कूली लड़कों की एक क्रुद्ध भीड़ ने छेड़ी ततैयों की तरह रुप्पन की कोठी पर पथराव किया। रोशनदानों और दरवाजों के रंगीन कांच टूटे। छोटे मुनीम के सिर में चोट आई। कोठी की सुरक्षा के लिए तैनात दोनों पुलिसमैनों पर इतने ढेले बरसाए गए, कि उनसे अपनी निकम्मी लाठियां लेकर भागते ही बना। सड़क की बिजलियां तोड़ता, नारे लगता यह जलूस जिस गली से निकला, वहीं की दुकानें पटपट बन्द हो गईं। पुलिस के हथियारबन्द दस्ते आने तक लड़के तितर-बितर हो चुके थे, एक भी न पकड़ा जा सका, बड़ा तहलका मचा। शाम को मुख्यमन्त्री आए। रुप्पन लाला के यहां सबको बुलाया गया।··· रघुबीर ठीक तरह से पूरी बात न बतला सका, फिर भी छैलू को बहुत-कुछ मालूम हो गया। उसका चेहरा और कस गया, बोला : "रघुबीर, किसी तरह तुम पम्मी को बुला लाओ। इस साले रुप्पन और इसके कांग्रेसियों की···!"

छैलू को रघुबीर की कोठरी में देखकर पम्मी ऐसे लपक के उससे चिपटा, जैसे कि कम्मी ही से भेंट रहा हो, पूछा : "छैलू भैया, आप कहां चले गए थे ?"

"बाद में बतलाऊँगा। यहां के हालचाल बतलाओ।"

हालचाल अच्छे न थे। बहुत-सी बातें रघुबीर से जान ही चुका था। रूपचन्द के घर की सभा के सम्बन्ध में नई बातें मालूम हुईं। मुख्यमन्त्री कह गए हैं, कि लड़कों की बढ़ती हुई अनुशासनहीनता को तनिक भी बढ़ावा न दिया जाएगा। अभी तक ये लोग कालेजों, विश्वविद्यालयों या रेल या सिनेमाहॉलों तक ही अपने बालहठ का प्रदर्शन करते थे, अब अपने घरों और क्षेत्र के लोगों को भी इन्होंने नीचा दिखलाने की ठानी है। उन्होंने कहा कि सरकार लड़कों की हर चुनौती को स्वीकार करेगी और उनके किसी भी आन्दोलन को कुचलने से न हिचकिचाएगी। उन्होंने बड़ी-बड़ी धमकियां दी हैं और यह भी घोषित कर गए हैं कि बारहदरी पर मन्दिर ही बनेगा। नयी सड़क बनने से इस क्षेत्र के लोगों को

लाभ होगा। मन्दिर और धर्मशाला से इस क्षेत्र की शोभा भी बढ़ेगी और व्यापार को भी बड़ा लाभ पहुंचेगा। लड़कों को किसी शक्तिशाली पुरुष या राजनीतिक संगठन के गुमान में हर्गिज न रहना चाहिए। उनको पुस्तकालय के लिए जगह दी जाएगी, मगर तभी, जब वे अपने तोड़फोड़ के कुकृत्यों का भलीभांति पश्चात्ताप कर लेंगे, तथा मन्दिर-निर्माण के प्रति अपने नास्तिकता भरे विद्रोह के लिए गुरुजनों से क्षमा मांगेंगे।

"उनकी ऐसी की तैसी, उल्लू के पट्ठों की! वो एक मन्दिर बनायेंगे तो हम दस मन्दिरों में आग लगा देंगे। ये पोलिटिकल पार्टियों से मोर्चा नहीं है, स्टूडेन्ट कम्यूनिटी से बैर बांध रही है सरकार। इसका जवाब आज ही दिया जायगा उन्हें।" कहते-कहते छैलू का मुखमण्डल प्रतिहिंसा की प्रबल लपटों से आसुरी तेज लेकर दमक उठा। एक-दो क्षणों तक पम्मी, रघुबीर और वह स्वयं भी अपने आवेश से स्तब्ध रहा, फिर चौंककर बात शुरू करते हुए बोला: "तुम किसी तरह पांच-सात रुपै लाके दे दो मुझे। बाद में लौटा दूंगा।"

"घर जाना पड़ेगा छैलू भैया। बार-बार कोई मुझे बाहर निकलने भी नई देगा।" पम्मी बोला।

"अरे, दुइ-तीन रुपै तो अपने पास भी होयंगे छलू भैया।" रघुबीर ने कहा।

"अरे ठहरो, मैं इधर छत पे चढ़के पुड़िया में बांध के फेंकता हूं रुपै। लेकिन कीजिएगा क्या रुपयों का? जान पड़ता है, कोई इस्कीम है आपके मन में?"

"हां है, पर अभी बतलाऊंगा नहीं। कल जान जाओगे। जाके रुपै फेंक दो। या रघुबीर को साथ किए देता हूं।—"

"नहीं-नहीं, सामने की गलियों मे पुलिस गस्त कर रही है। लड़के तो आज दोपहर की घटना के बाद से, खासतौर पर शाम को रुप्पन के यहां के मुख्यमन्त्री वाली इस्पीच के बाद से गलियों में निकलने ही नहीं पाये। हर घर में उनके ऊपर निगरानी है। हमारे बाबू हमीं को घर से बाहर पैर तक निकालने से मना कर गए हैं।"

"कोई हर्ज नहीं। इन सब अत्याचारों का बदला अकेला मैं ही ले लूंगा सालों से। छोड़ूंगा नहीं हरामजादों को। बदला नहीं लिया तो मैं खत्री का बेटा नहीं। इनकी···सालों की!" छैलू का आवेश भरा चेहरा तपे इस्पात-सा तमतमा रहा था, कहते हुए उसकी आंखों से चिनगारियां बरस पड़ीं।

रात के ढाई-तीन बजे का समय। लगभग दस-बारह मुहल्लों में जगार हो गई। शोर प्रलयंकर होकर फैलने लगा—'आग-आंग-आग' के सिवा और कुछ सुनाई ही न देता था। और आग मन्दिरों में लगी थी। बल्लीमल का ठाकुरद्वारा जल रहा था। कंधी गली का शिवाला जल रहा था। बाबूपुरे, छीपीटोले, हलवाई वाली गली, पुराने सर्राफे के बांयें छोर पर बनी हुई कबडिन की मस्जिद तक, देवालयों में आग ही आग दिखलाई देती थी। आसमान के अंधेरे पर लाल रंग की झांई पड़ रही थी। तीर में जलती मशालें बांधकर गोपेश्वर महाराज के शिवाले की ओर से रुप्पन लाला की कोठी के पीछे वाले हिस्से में आग लगाने की कोशिश की गयी थी। और आज के अभियान की यही अन्तिम मंजिल भी थी। रघुबीर ने शिवाले के शिखर पर चढ़कर धनुष से जलती मशालों के तीर फेंके और सिर झुकाकर फौरन ही दूसरी दीवार की आड में छिपकर नीचे उतरने लगा। छैलू छत पर खड़ा देख रहा था, बोला: "जल्दी उतरो; जगार बढ़ती जा रही है।"

जल्दबाजी में रघुबीर की क़मीज़ एक पीतल के कंगूरे से उलझ गयी और उससे बचने के प्रयत्न में उसका पैर फिसल गया। पीठ की ओर से कमीज नोक पर ऊंची उठी और फिर फटती ही चली गयी, साथ ही उसका नीचे गिरना भी आरम्भ हुआ। दोनों हाथों से कंगूरा पकड़कर थमने के प्रयास में कंगूरा भी टूट गया। छैलू तब तक उसे सम्हालने के लिए फुर्ती से आगे बढ़ चुका था। काफ़ी रगड़ खाकर शरीर छिल जाने के बावजूद रघुबीर गिरने न पाया। और दूर दिशाओं में शोर के स्वर छैलू के भीतर घबराहट और सनसनाहट भर रहे थे।

"अब भाग चलो रघुबीर, नहीं तो बेटा अभी हम लोग सीधे कोतवाली में ही दिखलाई देंगे।" कराहते हुए भी रघुबीर फुर्ती दिखलाने लगा। मन्दिर की छत से दालान की छत पर कूदकर दोनों जल्दी-जल्दी सीढ़ियों से नीचे उतरे। आधी बोतल तेल, दो बिना जली मशालें और माचिस की डिबिया वहीं पड़ी थीं। रघुबीर दरवाजे की ओर बढ़ा। छैलू का ध्यान बोतल की ओर गया। सब चीजें उठा लीं और महादेवजी के सामने वाले पूरे दरवाजे पर झटके से तेल छिड़कते हुए चौखट पर मशालें रखकर बाक़ी बोतल उन्हीं पर उलट दी और माचिस जलाकर बोला : "लो बेटा शंकरजी, तुमने हमको जलाया, हम तुमको जलायेंगे।" लपट उठी और छैलू का अमानुषों हिंसात्मक भावों भरा चेहरा, जलती आंखें और कांपता शरीर उसके प्रकाश में दमक उठा।

कई गलियों में घरों के ऊपर और नीचे हलचल भरी भीड़ दिखाई पड़ने लगी थी। छैलू और रघुबीर अपने बचाव के लिए लम्बा चक्कर लेकर भागने लगे। अन्धी घबराहट में दो-तीन बार सदा जानी-पहचानी गलियां भूल-भुलैया बन कर भटका भी गयीं। नाले के किनारे पहुंचकर जान में जान आने लगी। इधर कोई शोर-शराबा नहीं था। अखाड़े की गली का पीपल अंधेरे में विशाल भूत की तरह खड़ा, मानो उसका स्वागत कर रहा था। कोठरी में पहुंचकर रघुबीर जमीन पर ढेर होकर हांफने लगा। छैलू दरवाजे की कुण्डी चढ़ाने के बाद किवाड़े से टिककर राहत की सांस लेने लगा। थोड़ी देर के बाद दोनों नये सिरे से अपनी सहज चेतना के वश में क्रमशः आने लगे। छैलू दरवाजे से हटकर आगे बढ़ा और अंधेरे में खाट से टकराकर उफ़ कर उठा।

क्या भया छैलू भैया, चोट लग गयी। ठहरो, लैट जलता हूं। प्रकाश होने पर दोनों ने एक-दूसरे की सूरतें देखीं। रघुबीर के लिए छैलू की आंखों में स्नेह भरे गर्व का भाव चमका। मुस्कराकर बोला : "शाबाश, आज से तुमको भी गोडबोले का नौकर नहीं, बल्कि अपना दोस्त माना। कमाल हो गया साला।" रघुबीर की उम्र भी बीस-बाईस वर्ष की थी, काला कसरती शरीर, सरल हंसमुख चेहरा छैलू के लिए इस समय अत्यन्त प्रिय हो गया था। रघुबीर गोडबोले के दवाखाने में चूरन घोटने का काम करता है। घर के भी दस काम कर देता है। व्यवहार का अच्छा होने के कारण इस घर में उसकी मान्यता भी अच्छी है। गोडबोले के मन पर खास तौर से चढ़ा है और इसीलिए गोडबोले के मित्रों से वह खूब परिचित भी है। छैलू ने कहा : "तुम्हारे चोट कहां लगी, देखूं।"

"अरे, ये इधरवाल की पीठ और जांघ छिल गयी है जरा। उंह ठीक हुई जाएगी। बाकी कुछ भी कह लेओ भैया, ये काम हम लोगों ने बड़े अधरम का किया। ये अच्छा नहीं किया।"

रघुबीर की बात मन के हठ में छुरी-सी घुप गयी। "अच्छा नहीं किया ?

—नहीं, अच्छा किया।" छैलू को पिता, परमपिता—अपने सर्जक से ममत्व तो है, उसके ममत्व को ठेस तो लगती है, पर पिता, परमपिता—सर्जक से घृणा भी है। छैलू चिढ़कर बोला : "हां-हां, ये तो सब ठीक है, पर सालों ने हमारा मन्दिर नईं रक्खा तो हम इनके मन्दिर क्यों रक्खें। एक जगह सच्ची पूछो तो मुझे जरा भी दुःख नईं हैगा रघुबीर। अब देखें साले कल से हमारे दोस्तों को कैसे मारते-पीटते हैं। अरे, मैं सारे शहर में आग लगाऊंगा। दोस्तों की खातिर फांसी भी चढ़ जाना पड़े, तो भी कुछ हरजा नहीं है। आखिर मरना तो एक दिन है ही।"

"हां, पर अच्छा काम करके मरना चाहिए ना। अब सोचता हूं, जाने कैसी मत हो गयी थी मेरी भी, उत्ती वेला तुम्हारी बातों में आके।"

"देखो रघुबीर, चिताए देता हूं, अब जो तुम पश्चात्ताप के फेर में पड़ोगे तो साले, कल ही तुम्हें पुलिस पकड़ ले जाएगी। पुलिस की आंखें बड़ी तेज होती हैं। अब तो जो हो गया, सो हो गया। मैं भी कोई भगवान का दुश्मन थोड़े ही हूं।...मगर अब चिन्ता छोड़ो, जो होगा सो देखा जाएगा। अब तो ओखली में सिर डाल ही लिया पट्ठे, यारों के नाम पे।...मगर कमाल कर दिया साला हम लोगों ने।"

सारी रात इधर के मुहल्लों में जगार रही; गली-मुहल्लों के बीच में लगी हुई आठ-दस जगहों की आग बुझाने में फायर ब्रिगेड वालों के छक्के छूट गए। लोग अपने-अपने घरों से पानी भरी बाल्टियां, गगरे और मटके ला-लाकर आग से लड़ने लगे। कुएं वाले घरों में इधर-उधर से रस्से-गगरे लाकर पानी भरने वालों ने 'जल्दी भरो, जल्दी करो' की कौआरोर मचा दी। सबसे प्रबल आग बल्लीमल के ठाकुरद्वारे और गोपेश्वर महादेव के शिवाले में लगी थी। रुप्पन की कोठी का पिछवाड़ा और आस-पास के घर भी लपटों से घिरने लगे। पेशकार साहब के ऊपर वाले कमरे के छज्जे तक आग पहुंच गयी थी। मस्जिद का सिर्फ एक भाग ही जलकर रह गया। बाबूपुरे के मन्दिर से सटे हुए बरगद की जटाओं में लपटें लग गई थीं। पर मुहल्ले वालों की फुर्ती से नगर का एक सबसे बड़ा अग्निकाण्ड होते-होते बच गया। गलियां पानी, कीचड़ और रपटन से भर गयीं।

सुबह से सारा शहर इस क्षेत्र की ओर ही उमड़ पड़ा। इतने धर्मस्थानों का जलाया जाना शहर की सबसे बड़ी चर्चा का विषय बन गया। जिसे देखो वही लड़कों की नास्तिकता की बुराई कर रहा था। शिवरात्रि वाले जोगी के शाप की बात हर जबान पर थी। हर दिल को करारा धक्का लगा था। भविष्य के विनाश की आशंकाओं से हर कलेजा दहल रहा था। लोग-बाग यहां तक कहने लगे कि अरे भैया, जो सन् '62 में अष्टग्रही की प्रलय आनेवाली है, सो क्या ऐसे ही आ जायगी। आगे जो न हो जाय सो थोड़ा है। बाकी हद हो गयी है लड़कों के उत्पात की। कमाल कर डाला सालों ने। किसने किया ? छैलू के ऊपर ही सबका शक गया था। अनशनकारियों में वही अकेला पकड़ाई में नहीं आया था। पर क्या केवल एक ही लड़के ने इतना काम किया ? असम्भव है। जान पड़ता है, षड्यन्त्रकारी लड़कों का कोई गुप्त संगठन बन गया है और उसी के द्वारा यह काम हुआ है। छैलू के नाम वारण्ट कट गया। छैलू का पता पाने के लिए पुलिस हर्रो को पकड़ ले गयी। संघ में आनेवाले हर लड़के का पता लगा-

लगाके पुलिस ने उन्हें और उनके घरवालों को सवालों और बेहूदेपन से तंग करना शुरू कर दिया। पब्लिक में असन्तोष की लहर अब दूसरी ओर उलट पड़ी। पुलिस सबके बच्चों को क्यों तंग करती है।

थोड़ी ही देर में हथियारबन्द पुलिस और घुड़सवारों के दस्ते टिड्डीदल से गली-गली में दिखाई देने लगे। भीड़ छितराकर सन्नाटा बढ़ाया जाने लगा। लाला रूपचन्द अब प्रबल क्रोध में तमाम लड़कों से बदला लेने पर तुल गए।

सवेरे ही सवेरे उनके यहां कई प्रतिष्ठितों की भीड़ जुड़ गई थी। लाला रूपचन्द का टेलीफोन उद्योगमन्त्री से जुड़ा हुआ था। तमतमाए हुए मुख से शब्दों की छूटती हुई गोलियां प्रलय मचा देने पर आमादा थीं। वे कह रहे थे : "अजी आप सबूत-सबूत का शब्द बार-बार क्यों इस्तेमाल कर रहे हैं? सबूत यही है कि जो लड़का भागा, उसी ने ये सब किया। और इसके पीछे पहले ही से जरूर कोई गहरी इस्कीम भी बनी रही होगी।···जी? जी हां, यही तो मैं भी कहता हूं कि एक लड़के का काम नहीं है। आप एक नहीं सब लड़कों को पकड़वा लीजिए। पांच मिनट के अन्दर सत्त का पता लग जाएगा।···इसे आप अन्याय कहते हैं! अजी अन्याय तो इन लड़कों ने किया है। हजारों घर फुंक गए होते कल रात में। वो अन्याय न होता। हमारी धरम-भावना को चोट पहुंचाई, वो अन्याय नहीं है। हम तो सेठजी इस बखत जादा कुछ कहने के मूड में नहीं हैं आपसे। अब सारी कहा-सुनी तो बासठ के इलेक्शन में होयगी।" कहकर टेलीफोन झटके के साथ रख दिया और बोले : "उल्लू का पट्ठा साला।"

धोती का एक पल्ला अपने कन्धे पर डाले कलई की पेंदी का छोटा हुक्का हाथ में लिए लाला किशोरीदास रुप्पन लाला के ऐन बगल ही में बैठे थे, पूछने लगे; "क्या कहते हैं, नईं पकरेंगे लरकों को।"

रुप्पन के बड़े लड़के बीरू ने तमककर कहा : "वो पकड़ें चाहे न पकड़ें, आज की रात हम गनेस वेद की हवेली को फूंक के मसान जरूर बना डालेंगे। ये सारी कांस्प्रेसी उन्हीं के यहां से शुरू हुई है।"

"खैर, ये तो तुम गलत कहते हो बेटा। और चाहे जो भी होय, पर वैद जी धार्मिक पुरुष हैं। वो मन्दिर हरगिज नहीं जलवा सकते।" बैजू लाला बोले।

"खैर, यह बात तो हम भी कहेंगे, कि वैदजी ने ये काम नईं करवाया। पर बनिये, महाजनों की जित्ती निन्दा उनके यहां से होती ये, खास तौर से रुप्पन की, उत्ती निन्दा मैं कहता हूं कि और कोई नहीं करता। अगर कल सबेरे उनका परचा न निकाला होता, तो लरकों को इत्ता बल भी न मिला होता।" लाला किशोरी ने कहा।

"वो चाहे गनेस होयं, चाहे साक्शात महादेवजी होयं, देख लूंगा सब सालों को आज ही। बैजू चाचा, इसका जवाब यही है कि आज-कल-परसों में जल्दी से जल्दी किसी बखत बारादरी को भीतर से ढाने का काम शुरू कर देना चाहिए। न रहे बांस और न बजै बांसुरी, और मन्दिर-धरमशाले की नींव मैं जल्दी से जल्दी खुदवाय के पूजा करवाए देता हूं। नक्शा-वक्शा सब बाद में बनता रहेगा।" लाला रूपचंद तैंस में थे।

बैजू लाला बोले : "ठीक है। बाकी हमारी एक राय हैगी रुप्पन, मन्दिर और धरमशाला अब अकेली तुम्हारे नाम से नईं होनी चाहिए। देखो बुरा न मानना, मैं दूर की बात कह रहा हूं। इसे अब तुम पंचायती बना दो।"

"उससे क्या होयगा ?"

"उससे ये होयगा, कि अभी जो सब मिल के ये हुल्लड़ मचाय रहे हैंगे कि रुप्पन जमीन हड़प रहे हैं, सो बात फिर नहीं रहेगी।"

बीरू तमक के बोला : "धरमशाला तो हमारे बाबा के नाम ही से बनेगी बैंजू बाबा, इसमें कोई उलट-फेर नहीं हो सकता। हां, मन्दिर आप पंचायती बनवाइए, कोई हर्ज नहीं है। मन्दिर तो बाबू की इस्कीम में था भी नईं। ये तो पुत्ती गुरू के कहने पर हमने जिम्मेवारी उठाई थी। बल्कि मन्दिर के लिए तो न मेरी राय थी, न मुलायम की। मगर बाबू बोले कि अरे धरम का काम है, जहां दो लाख खरच रहे हैंगे, वहां डेढ़-दो और सही। बाह्मन के मूं से निकली बात है— पूछ लीजिए इनसे, यही लफ्ज थे इनके। औ' वही बाह्मन देवता अब कल से हमारे दरवज्जे पर बैठे अनशन कर रहे हैंगे। और उन्हीं के लड़के ने हमारे बाबू को इत्ती गालियां दीं और दिलवाईं। दिन में हमारे घर पे हमला हुआ। रात में हमारे रसुइयाँ वाले आंगन में जलती मशालें फेंकीं। हमारे घर जलाने के लिए ही गोपी महाराज के शिवाले में आग लगाई। अजी, मैं तो यहां तक कहता हूं कि ओरिजिनल में हमारी कोठी जलाने के खातिर ही इन्होंने एक शिवाले में आग लगाई और फिर ये जतलाने के लिए कि आग हमारे विरोध में नहीं, बल्कि मन्दिर के विरोध में लगाई गई, उन्होंने दस मन्दिर और फुंकवाए। और इन सबके पीछे, अगर वैदजी नईं तो खन्ना साहब का हाथ ज़रूर-ज़रूर है। उन्हीं के घर में कमनिस्टों का अखाड़ा जमता है।"

रुप्पन लाला किसी और ध्यान में बैठे थे। लड़के की बात खत्म होने पर बोले : "किशोरी भैया, सरकार न सही, मगर मैं कहता हूंगा कि लड़कों से लड़कों की पटा-बनेठी करवा दीजिए। उनसे न हो तो कोई और इन्तजाम कर दीजिए। औ' महजिद भी तो जलाई हैगी इन लोगों ने। अपने गोटेवाले मुसलमान कारीगरों को भड़ी पे क्यों नहीं चढ़ा देते आप लोग। हाजी नबीबकस तो पक्के कमनिस्ट हैं बहरहाल वो या किसी और को भड़काइए, एक जलूस तगड़ा-सा मुसलमानों का, भी निकल जाय आज शाम तलक। और दिन में ढिंढोरा पिटवाय के इसी केशोराय के टीले पे बड़ी भारी पब्लिक की मीटिंग हो। संघ के नेताओं को बुलाओ। हाजी साहब और एक किसी औरंगी-नौरंगी मौलाना को भी बुला लो। देओ साली कांगरेस को गालियां, निकालो इन जवाहरलाल-आतमाराम जैसों की अर्थियां। हजार दो हजार जो भी खर्च होगा, हम देंगे।"

लाला किशोरी के जाने के बाद रुप्पन लाला बैंजू लाला को लेकर भीतर वाले कमरे में चले गए। बाहर की भीड़ रहस्य में गोता खाती बैठी रही। गली-गली में मुर्दनी छायी हुई थी। जगह-जगह स्यापा बैठा हुआ था। अनगिनत धर्मप्राण हिन्दू नर-नारी, अपने देव स्थानों के नष्ट होने बेहद दुखी और भावुक हो उठे थे। अनेक नर-नारियों से खाया तक न गया। धर्म की चोट हर चोट से गहरी प्रतीत हो रही थी। लोग जले हुए मन्दिरों को देखते। जले हुए काठ और किवाड़ और दीवारें, लपटों की आंच और धुएं की कालिख से मनहूस लगने वाली देवमूर्तियां हर देखने वाले के दिल में हाहाकार मचा देती थीं। ऐसी त्राहि-त्राहि लोग बतलाते थे कि सन् 1902 के प्लेग और सन्' 19 के इन्फलुएंजा वाले महामृत्यु के दिनों में भी कभी नहीं मची थी। मनुष्यों की मौत से देवताओं की मौत स्वयम् मनुष्यों ही को कई लाख गुना अधिक भयावनी प्रतीत हो रही थी। सात्विक धर्मी नर-नारी किसी

को भी दोष नहीं दे पा रहे थे। वे इसे मनुष्य के पाप और ईश्वर के कोप का सम्मिलित परिणाम मान रहे थे। रजोगुण धर्मप्राणी जन इस घटना के पीछे राजनीति की बदबू सूंघकर राजनीतिक तौर पर ही जवाब देने के लिए कठोर शब्दों का प्रयोग कर रहे थे। उनके आक्रमण का लक्ष्य कांग्रेस और कम्युनिस्ट थे। अपने महल्लों के लड़कों के इस दुराचरण के लिए वे उन्हें दण्ड न देकर डॉ० आत्माराम के 'इण्डिपेण्डेण्ट' अखबार का कार्यालय, सम्पादक आनन्दमोहन खन्ना का घर और मिनिस्टरों की कोठियां फूंकने के लिए अपने मुखों से जगह-जगह आग उगल रहे थे। तरुण छात्रसंघ बन्द कर दिया जाय, यह मत तो सबका था, परन्तु मन्दिर-धर्मशाला के बहाने राजा केशोराय की बारादरी और टीला रुप्पन लाला के अधिकार में आ जाय, यह बात बहुतों को अब भी पसन्द नहीं आ रही थी।

दोपहर के लगभग बारह साढ़े बारह बजे फिर नया हल्ला उठा। पता लगा कि सौ डेढ़ सौ लड़कों ने हाकी-डण्डे लेकर तरुण छात्रसंघ वालों के घरों में घुस-घुसकर लड़कों को पीटा। उनके यहां की चीजों को तोड़ा-फोड़ा। बचाने के लिए झपटने वाली स्त्रियों को भी बेरहमी से धक्के दिए गए। गोडबोले बैंद के फाटक में आग लगाने की कोशिश भी की गई, मगर छत से दो हवाई फायरों के बाद गणेशजी की चेतावनी भी गरजी और भीड़ ऊलजलूल नारे लगाती हुई लौट गई। घण्टे भर बाद इस क्षेत्र में कर्फ्यू लग गया।

रात को आठ बजे लाला बैंजनाथ की कोठी में दो राजनीतिक पार्टियों के नेता और लाला रूपचन्द बैठे भोजन कर रहे थे। रूपचन्द गंभीर थे। नेता शर्माजी गर्मागर्म खस्ता कचौड़ी को तोड़ते हुए बोले : "प्रश्न यह है लाला बैंजनाथजी, कि हाईस्कूल और इण्टर की परीक्षाएं सामने हैं। हम इस तरह का आन्दोलन बढ़ने नहीं देना चाहते। ये दिन की मार-पीट जो आप लोगों ने करवा दी—"

"ये गलत खबर हैगी शर्माजी, लड़कों की मार-पीट से भला हमारा क्या संबंध हो सकता हैगा। अभी हमारे क्षेत्र में सबके सब लड़के नास्तिक नहीं भए, क्या नाम के। यं मन्दिर नहीं जले, हिन्दू मात्र का कलेजा जला है।" लाला रूपचन्द बड़े ही गंभीर और उत्तप्त स्वर में बोले।

दूसरे नेता ब्रजकिशोर अग्रवाल ने कहा : "रूपचन्द, बात तुम्हारी सवा सोला आने सच्ची है, पर सवाल ये है जिन लड़कों ने ये पापाचार किया है, वे भी तो हिन्दू ही हैं। हम, सच्ची पूछो तो उन पर नास्तिकता का आरोप नईं लगा सकते।"

"कैसे नहीं लगा सकते ?" रूपचन्द ने झटका देकर पूछा।

"किसको नास्तिक कहें। जित्ते लड़के पकड़े गए हैं उनमें किसके मां-बाप नास्तिक हैं ? गणेशजी गोडबोले को नास्तिक कहें, कि लाला गुलाबचन्द को, या तुम्हारे वो क्या नाम हैं के, पाधाजी के लड़के को, वाजपेयी जी के दामाद को— किसको नास्तिक कहैं ?"

लाला रूपचन्द आंखें निकालकर बोले : "ब्रजकिशोर, ये तुम नहीं बोल रहे होगे, क्या नाम के, लाला राधेरमन से तुम्हारा समधियाना बोल रहा हैगा।"

अग्रवालजी भी गर्मा उठें, कहा : "राधेरमनजी मेरे समधी हैं, तो क्या हुआ। उन्होंने कौन-सी तुम्हारी जमा मार ली ?"

"जमा नहीं मारी, उनको हमारा मन्दिर बनने को जलन व्यापी हैगी। उन्होंने तीन लाख रुपया खरच करके मन्दिर बनवाया है, तो इसके माने ये हुए कि कोई

दूसरा उससे अच्छा न बनवावें। मैं सब सुन चुका हूं ब्रजकिशोर, लाला राधेरमन हमारे लड़कों की उन्नती देख के जल रहे हैंगे। अरे, मैं और जलाऊंगा उन्हें। मुझे भगवान ने दिया है तो मैं दस लाख का मन्दिर बनवाऊंगा।"

"ऐ, दस नई तुम बीस लाख का बनवाओ, मगर हम तुम्हें पराए धन पे लक्ष्मीनारायन न बनने देंगे रूपचन्द। हम और हमारी पार्टी यह निश्चय कर चुकी है, कि एक प्रेस-वक्तव्य में कल ही तरुण छात्रसंघ के लड़कों को ये टीला और बारहदरी प्रदान किए जाने का समर्थन किया जाएगा।"

लाला रूपचन्द ने एक बार तमतमाए मुख से ब्रजकिशोर अग्रवाल की ओर देखा, कुछ कहने के लिए होंठ खुले भी, पर तुरन्त ही घृणा के साथ भिंचकर थाली की ओर लौट गये। हाथ का कौर अनजाने झटके के साथ थाली में छूट पड़ा। लाला बैंजनाथ जो अपनी खिचड़ी खाकर अपनी आंखों के सामने ही नौकर से आमों के डिब्बे खुलवाकर खुद अपने हाथ से आमों के ऊपर का शहद छुड़ाकर पानी से धो रहे थे, एकाएक शान्त गम्भीर स्वर में बोल उठे : "इस्थिति ये हैगी रुप्पन, कि इस समै न तो कांगरेस ही तुम्हारा साथ देगी और न जनसंघ ही। सबेरे तलक हवा कुछ और थी और इस बखत कुछ और है। तुमने गुस्से में आय के मार-पीट उकसाई और इसी से तुम्हारा पांसा भी पलट गया।"

शर्माजी बोले : "आपने बड़ी सफाई से इस्थिती स्पष्ट कर दी लाला बैंजनाथ जी। हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न ये है, कि हम इस समय नीतिवश डॉक्टर आत्माराम का विरोध नहीं करेंगे। आज सबेरे के 'इंडिपेण्डेण्ट' का रुख आपने देख लिया और कल तो वह आग ही उगलेगा, इसमें सन्देह नहीं। आज शाम को पांच बजे ही सारसलेक से डॉक्टर साहब का ट्रंककाल हमारे मुख्यमन्त्री जी के पास आया था। हमारी कांगरेस इस समय जिन अन्तर्विरोधों से गुजर रही है, उसमें हम इस समय अपने प्रदेश में कोई छात्र-आन्दोलन कदापि नहीं चाहते। जनता नहीं चाहती है कि बारादरी और टीला आपको मिले।"

लाला रूपचन्द बिफर उठे, वाक्-संयम कुछ-कुछ टूटने लगा, बोले : "राजनीतिक सब साले चोट्टे होते हैंगे।" अग्रवालजी छूटते ही बोले : "जी हां, धरम के नाम पे पब्लिक को भड़का के माल हड़पने वाले साहूकार बड़े ईमानदार होते हैं।"

"और तुम नहीं हो साहूकार के बेटे, तुम्हाए समधी राधारमन नई हैं क्या ? तुम्हाए जनसंघ में—"

लाला बैंजनाथ बोले : "अरे भई, सेठ-साहूकार तो सभी जगह हैंगे। औ' ये तो भई, देखो रुप्पन, दांव की बात हैगी। इस टीले पर तुम अपना दांव हार गए। अब चुप्प बैठो।"

"शर्माजी बोले : "अरे हां-हां, रूपचन्दजी, भगवान ने बहुत दै दिया आपको। समझ लीजिए कि ये नयी सड़क भी आपके घर तक लक्ष्मी लाने के वास्ते ही बन रही है।"

"और नहीं तो क्या, इन्होंने सड़क की योजना ही अपने लिए बनवाई। हरीकिशनदास साथ थे, मेयर, डिप्टी मेयर—"

"तो तुम क्यों जलते हो ब्रजकिशोर, अरे मेरी तो ऐसी कोई खास रिश्तेदारी भी नहीं, औ' तुम्हारे तो सगे जीजा हैं हरीकिशनदास। क्यों नहीं मिला लिया

तुमने ? मैं—मैं सब जानता हूं, ये जलन इस बात की है आप लोगों को, कि सड़क की योजना मैंने बनवाई है।"

"रुप्पन, तबेले में लतिहाउज अच्छी नहीं। अब तुम बच्चे नहीं होगे, पचासा पार कर गए। किससे-किससे लड़ाई मोल लेओगे ? बनिये-बैपारी का बेटा, हमाए बाप कहा करते थे कि जो सबर छोड़ै तो बसर छोड़ै। जहां तक बन पड़ा, तुमको भगवान ने जित्ता दिया हैगा, उत्ता लै लेओ। बाकी सबर करो। अब मन्दिर-धरमशाला न सही, न सही। कहीं और बनवा लेना। हमाई राय में अब तुम सब जने जाय के पहले पुत्ती गुरू को मनाओ। दो दिन से ब्राह्मन भूखा पड़ा हैगा तुम्हारी ड्योढ़ी पे। कुछ ऊंच-नीच हो गया तो सदा के लिए कलंक लग जाएगा तुम्हें। अरे शर्माजी, हाथ पे हाथ धरे क्या बैठे हो यार, जरा रबड़ी तो चखो, खास तुम्हारी खातिर इस्पिशल आडर दे के बनवाई हैगे नरैना से।"

ब्रजकिशोर अग्रवाल, रूपचन्द्र अग्रवाल की पराजित मुख-मुद्रा से सन्तुष्ट विजेता के उमंग और चहक भरे स्वर में मजाक करते हुए बोले : "अच्छा बैजू चाचा, तो इसके माने है कि आप कांगरेस वालों को ही प्रसन्न करना चाहते हैं, जनसंघ वालों को नहीं।"

"जनसंघ वालों ने अगर हमारे दोस्त के लड़के को अपना सभापत न बनाया होता, तब ये कहता कि सरमा जी और अगरवाल जी, मैंने आप दोनों के लिए खास तौर से बनवाई है। रुप्पन लेओ, ये आम तो खाओ यार. अब गुस्सा थूको भैया। जाओ, पुत्ती गुरू को एक गिलास दूधिया केसरिया ठण्डाई पिलाओ। हमने सब घुटवा-वुटवा के तैयार कर रक्खी हैगी। जाओ, बाह्मन की खुसामद करने में हम खत्री-बनियों की नाक नहीं कटती हैगी, चाहे कित्तई बड़ा होवै। औ' सरमाजी, लड़के कल हमारे छुट के जरूर आ जावैं और ये बारादरी में पुस्तकालय भी जरूर बनेगा। पच्चिस हजार मेरे, राधेरमन के पच्चिस, रुप्पन के—"

"मैं एक धेला नहीं दूंगा। मेरी शरधा नहीं है।"

"अच्छा तो इनके पच्चिस भी हमारे पच्चिस में जोड़ दीजिए। हम पचास हजार दै देंगे और ये हमारे जन-संघ के सभापत बिरिजकिसोर दस-दस पांच-पांच के आठ-दस असामी पटाय देंगे। डेढ़ पौने दो लाख मे राजा केसोराय के टीले पे उम्दा पुस्तकालय का भवन बन जायगा। टीले के नीचे-नीचे दुकानें बनवाय देंगे, सो पुस्तकालय का खरचा चलता रहेगा।"

सब लोग एकमत थे और रूपचन्द एकदम मौन। वे जानते थे कि उनकी पतंग कट चुकी। बनियों ने बनिये को काटा। हीरा ही हीरे को काटता है।

पालम हवाई अड्डे से रूसी 'एयरो फ्लोत' विमान उड़ चला। भाग्य ने लच्छू को खिड़की के पास वाली कुर्सी का कार्ड-नम्बर दिया था, इसलिए बेहद मगन था। लच्छू को जीवन में पहली बार हवाई जहाज ही नहीं, बड़ी यात्रा करने का मौका भी मिला था। लच्छू ने अब तक कानपुर, लखीमपुर, फैजाबाद, सारसलेक और अब हवाई यात्रा के बहाने दिल्ली को छोड़कर, साठ-सत्तर मील के घेरे से अधिक की दुनिया ही न देखी थी। रेल पर भी सब मिलाकर शायद छह-सात बार से अधिक सवार नहीं हुआ था।···और अब इतनी ऊंचाई पर है। कुतुबमीनार खिलौने-सी लग रही है, दूर-दूर तक फैली हुई दिल्ली की बस्तियां जन्माष्टमी की

झांकी वाली सजावट जैसी लगती हैं। दिल्ली दृश्यपट से चुक गई···हरे-हरे मैदानों पर बादलों की छाया पड़ने लगी है।

बादलों के टुकड़े रुई के फाहों जैसे उड़ रहे हैं। खिड़की से दिखलाई पड़ने वाले आकाश के ओर-छोर तक फैले हुए ये फाहों-से बादल बड़े ही सुहावने लग रहे हैं। लच्छू की आंखें जादू से बंधी हुई हैं। जीवन में कविता से आमतौर पर दूर रहनेवाले नवयुवक का मन ऐसे कवि-सा स्फूर्त हो उठा है, जो गूंगा हो और जिसे लिखना भी न आता हो। 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी'।···निर्मल दूधिया बादलों का लहराता महासागर। बीच-बीच में कुछ-कुछ श्वेत-श्याम बादल उस क्षीर सागर की लहरों से अपना व्यक्तित्व अलग ऊँचा उठाए हुए, डूबे पहाड़ों के शिखरों जैसे।···कहीं हिमालय तो नहीं आ गया ये? 'डाक्साहब' ने चलते समय कहा था कि 'सोवियत यूनियन' ही नहीं, तुमको अपने देश के हिमालय का भी अनोखा दर्शन मिलेगा। शायद हिमालय ही है···पर अभी कुछ पता नहीं चल रहा। लच्छू के सामने तो देर से बादलों ही का निराला तमाशा चला आ रहा है। क्षीरसागर गया—और—अब ये हल्के भूरे और चमकदार बादलों का रेगिस्तान आ गया। हवाई जहाज और नीचे की दुनिया के बीच में कुछ-कुछ दम घुटनेवाला एक श्वेत अनन्त फैलाव फैलता ही चला जा रहा है···।

सहसा सूर्य चमक उठा। बादलों के रेगिस्तान को भेदती हुई सूर्य की रंग-बिरंगी आभा सफेदी पर छाकर उसे समेट भी ले गयी। पहाड़—सूर्य के प्रकाश में चमकता हुआ नीलकृष्ण हिमालय! बर्फ से ढंकी चोटियां, दूर-दूर तक बर्फ ही बर्फ। सूर्य की किरणों से जगह-जगह पर बर्फ की आभा में निराले रंग फूट रहे हैं। बादलों के टुकड़े उनके ऊपर से मस्त धीमी चाल में, पल-पल में अपने आकार बदलते उड़ते चले जा रहे हैं। रंगों के दायरों से निकलते हुए उन रंगों का अक्स लेकर वे धरती से आसमान तक अनोखी छटा छहराते हुए निकल जाते हैं। बादलों के बदलते आकार नजरों को अपने जादू से बाँध रहे हैं। शिखरों वाले क्षेत्र से लेकर धुर नीचे तक चमाचम सिन्दूरी, सुनहरी, हलकी पीली, आसमानी, नीली और उनके बीच-बीच में कहीं-कहीं निखरती चन्दन-सी सफेदी, गहरी नीली और काली परछाइयाँ देखनेवालों को अपने मन की सतहों सी, हिमालय के दर्पण में मानो जटिल गहन अनन्त आत्म-सौन्दर्य का सरल सुगम बोध करा रही हैं। जगह-जगह दृश्यपटी पर आ जानेवाले नदी-नालों की टेढ़ी-मेढ़ी, ढलती, लहराती लकीरों की रुपहली चमक, चढ़ती पगडंडियों की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं, जिनमें से बहुतों पर अब तक शायद एक भी मनुष्य या पशु के भी चरण न पड़े होंगे! कच्चे हिम की पट्टियों से सजे काले पहाड़, किसी अनन्त तेजोमय जोगी-फकीर की फटी उधड़ी मैली कन्था गुदड़ी के समान अनोखे शाही ठाठवाले लग रहे हैं। सुन्दरता का अन्त नहीं—सुन्दरता क्या है? गूंगे का गुड़!···ये देखो, मीठी बर्फ की तहों से दूर तक ढंके हुए पहाड़ों के बीच में एक विशाल परात जैसा गोल, काला मैदान। उसके आस-पास से दूर अन्तरिक्ष तक बर्फीले पहाड़ मानो बादलों की रजाई ओढ़कर सो रहे हैं। बीच-बीच में कहीं सोती हुई हरी-हरी झीलें भी मिल जाती हैं। सुन्दरता पर सुन्दरता की तहें चढ़ती चली जाती हैं; और वह मोटी तहें टकराकर एक-दूसरे में समाती हुई व्यापक, पारदर्शी, ढाका की मलमल जैसी अद्भुत मनोरम बन जाती हैं। आत्मविस्मृति गहन होती चली जाती है।··· हिमालय जहां तक दिखलायी देता रहा, मन का यही हाल रहा। वायुयान लगभग

एक घण्टे तक हिमालय पर उड़ता रहा।

नाश्ता आ गया। हवाई जहाज के अन्दर की दुनिया ध्यान में फिर से लौट आई। एक बहुत मनोरम किन्तु लम्बी नयन-यात्रा के बाद थकने पर यह नाश्ता भी कितना सुखद दृश्य बनकर सामने आया है। पहाड़ों के जादू से उतरकर मानो चेतना के चिरपरिचित मैदान में—अपने घर में—सब लोग लौट आये हों। ये हसीनरूसी 'एयर होस्टेस' (हवाई मेजबान) की मुस्कुराहटों में लिपटी खातिर-दारियाँ क्या कुछ कम जादुई हैं? नकल में असल का रस भर देना ही तो कला है। पड़ोस की सीट पर पेट्रोलियम कम्पनी के एक बुजुर्ग मियाँ जी ने नाश्ते के बाद अपना दोहरे का बटुआ खोला, सुपारी मुंह में डाली, फिर कत्थे की डली, फिर चूना और तम्बाकू—और फिर मुंह चलाते मगन मस्त नजरों से अपने चारों ओर देखने लगे। लच्छू से पूछा: "जनाब क्या रूस में पढ़ाई के लिए जा रहे हैं?"

"जी नहीं, मालिक के काम से जा रहा हूं। आप क्या ताशकन्द जाएंगे?"

"ताशकन्द भी जाऊंगा। बल्कि मुझे बतलाया गया है कि ताशकन्द ही में हमारा पहला मुकाम होगा। हम तो रूस की मजदूर यूनियन के मेहमान हो के जा रहे हैं जनाब। ये इन लोगों का बड़प्पन हैगा कि हमारे जैसे मामूली आदमियों का इतना खयाल रखते हैं। दरअस्ल उनका तो राज ही मजदूर-किसानों का है—हंसिया और हथौड़ा—हम हथौड़े वाले हैं न। हः हः हः।"

"आप कहां काम करते हैं?"

"पैट्रोलियम वर्कर्स यूनियन का प्रेशीडंट हूं जनाब। वैसे रहनेवाला अवध का हूं, सुलतानपुर का।"

ओह, मैं भी सारसलेक से आ रहा हूं। वैसे मकान हमारा लखनऊ में है।"

"वल्लाह, तब तो हम दोनों ही गोमती का पानी पीते हैं। कुछ भी कह लीजिए, मगर हम तो ये कहते हैंगे जनाब, कि और-और तरह से दुनिया चाहे जैसी तरक्की क्यों न कर गयी हो, मगर तहजीब के माभिले में हमारा अवध ही सबसे आगे है। हमारे मुहम्मदे मुस्तफा ने फरमाया है—तीन बातें—कि किसी पे गुस्सा न कर, किसी की चीज न मांग और जो चीज अपने लिए पसन्द कर, वही दूसरों को भी दे। यही जोग बासिष्ठ में बासिष्ठ जी ने भी लिखा हैगा। असल उसूल एक ही हैगा इन्सान का। अब आप ये देखें, कि विश्वामित्र मुनी ने बासिष्ठजी के सौ बेटे मार डाले, मगर बासिष्ठ जी गुस्से न हुए। हमारे अवध के थे बासिष्ठ जी। हमारे राजा रामचन्द्र जी के गुरु थे। और राजा हरीशचन्द्र हमारे अवध के—यानी कि खुद को और बीबी-बच्चे तक को बेच दक्षना अदा कर दी, मगर किसी सेठ-साहूकार, दूसरे राजा से एक कौड़ी न मांगी। चाहते तो उन्हें क्या न मिल जाता। अवध के राजा थे, सतवादी थे। मगर न-ह—मुहम्मदे मुस्तफा ने फरमाया हैगा कि किसी की चीज न मांग।"

मियां जी बतरस में आ गये लच्छू का मन इतना खाली न था—ऐंठ-अकड़, गुपचुप जीत की सनसनाती खुशी, दुश्मन को दबाने का जोम, नई दुनिया देखने की ललक, इस हवाई बुलन्दी का बड़प्पन—इस समय सब कुछ उसमें समाया था। वह किसी बूढ़े बुजुर्ग से धरम-करम के मसलों पर छोटा बनकर उपदेश की बकवास सुनने को राजी न था। अपनी सिगरेट और मियां जी की बातों का एक

दौर पूरा होते ही सिगरेट को ऐश-ट्रे में बुझाकर डाला और आंखें भींचकर सोने का नाटक साध लिया।

ताशकन्द में कौन मिलेगा ? मास्को में जब एकाएक माथुर के सामने जाऊंगा तो वह चौंक उठेगा—ये साला यहां भी आ गया। और जब मेरे हाथ से 'डाक-साब' का पत्र लेकर पढ़ेगा ! —होः होः होः। एक तो यों ही मुझसे कटता है, ऊपर से उसकी फांसी का आर्डर लेके पहुंचूंगा।

सारसलेक में रहनेवाले ऊंचे स्टाफ के सम्मानित लोगों की जनानी-मर्दानी सेक्सिया पालिटिक्स की शतरंज में लच्छू को सहसा प्यादे से फरजी बनने का मौका मिल गया। मिसेज माथुर ने मिसेज अशरफ और मिसेज रामनायकम् के साथ पूरा दोस्ताना बरतकर लच्छू को मिल-बांटकर अचार की तरह चाटा था। मिसेज बोस सारसलेक के ताजा सांड़ की सोहबत से वंचित रह गयीं। क्लब में इन तीनों ने अपनी ही समानधर्मा दो-चार और जनियों के सामने इस बात का चर्चा किया, कि हम लोग तो किसी शरीफ मर्द के साथ ही गुनाह करती हैं, मगर इस बोस की बुढ़िया ने तो मामूली नौकरों-चाकरों को अपना यार बनाकर भ्रष्टा-चार की हद ही कर दी है।

माथुर, अशरफ और रामनायकम् की पत्नियों के मेलजोल ने उनके पतियों के मेलजोल पर भी असर डाला। रामनायकम् सीनियर स्टाफ सुपरिन्टेण्डेण्ट थे। मिसेज माथुर और मिसेज अशरफ ने मिसेज बोस के चारों प्रेमी चाकरों के विरुद्ध, बदतमीजी, लापरवाही और चोरी के आरोप लगाए। मिसेज रामनायकम् ने भी मिस्टर रामनायकम् से इस सम्बन्ध में मौखिक शिकायतें कीं। इन्हीं तीन शिकायतों और आठ-दस नौकरों-बाबुओं की झूठी शिकायतों के बयानों से एक फाइल बनाकर रामनायकम् ने नोट लिख दिया कि उन नौकरों को बर्खास्त किया जाय। डिप्टी चीफ एडमिनिस्ट्रेटर (ऑफिस) और डिप्टी चीफ एडमिनिस्ट्रेटर (एडीटोरियल) यानी कि मि० अशरफ और मि० माथुर ने भी सिफारिश कर दी। माथुर से अशरफ, मिसेज अशरफ और खासतौर से मिसेज रामनायकम् ने सिफारिश की थी। मिसेज रामनायकम् के दक्कनी सलोनेपन को अपनी आँखों से चाटकर माथुर की सांसों में जवानी की ताजगी आ जाया करती थी। उमा माथुर पति के सामने इस प्रसंग से एकदम अलग रही। माथुर ने खुशी से कागज पर 'फ़ेवरेबुल' नोट लिख दिया। बल्कि अपनी ओर से यह भी जड़ दिया, कि इन नौकरों की शिकायतें समय-समय पर उनके कानों तक भी कुछ-कुछ पहुंचती रही हैं। चीफ एडमिनिस्ट्रेटर सेन ने उनको निकाले जाने का आदेश दे दिया। डॉक्टर आत्माराम की मानी हुई छोटी बहन और मुंहलगी होने का दावा करनेवाली मिसेज बोस छटपटा कर रह गयीं, मगर 'डाक्साब' के न्याय को अपनी ओर न घसीट सकीं। 'डाक्साब' सेन, अशरफ और माथुर पर बेहद विश्वास करते थे।

जनाने राजनीतिक चक्र में करारी मात खाकर मिसेज बोस ने बदला लिया। माथुर पर अपना जाल डाला। नारी-आकर्षण के सताए, मारे और भूखे माथुर साहब ने अपनी पहली पत्नी की उम्रवाली 'डॉली' बोस को अपनी सामर्थ्य के योग्य मानकर एक तरह का आत्मविश्वास पाया। इन दोनों ने मिलकर लच्छू के खिलाफ घेरा बांधना शुरू किया। माथुर ने दफ्तरी तौर पर लच्छू को पग-पग पर अपमानित और परेशान करना शुरू किया। लच्छू की हालत पतली हो गई। मगर उमा माथुर भी कुछ कम छिपकली न थी…।

अपने आने के बहाने के तौर पर यह सारी परिस्थिति लच्छू के मन में सरसराती निकल गयी और उमा का ध्यान आते ही जीत की राजसी अहंता और रीझ की हंसी प्यार बनकर उमड़ पड़ी—साली पूरी छिपकली है। पतंगे ताक-ताक कर पकड़ती है। डॉली बोस, और मियां माथुर को ऐसा पटका हैगा साली ने इस दांव में कि आहा! मजा आ गया।

हवाई जहाज की खिड़की के बाहर, नीचे धरती पर, बीच-बीच में छोटी-छोटी बस्तियां हैं। एक जगह की बस्ती से कोई खास समानता न होने पर भी उसे अचानक 'अपने' सारसलेक की याद आ गयी। छोटे-बड़े ओहदों के सब कर्मचारी मिलाकर सारसलेक में लगभग ढाई सौ परिवारों की बस्ती है। इनमें कुछ सरकारी मुलाजिमों के परिवार भी हैं। ब्लाक डेवलपमेंट, पंचायत, मनुष्यों और पशुओं के अस्पताल, कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र आदि दफ्तरों के छोटे-बड़े कर्मचारी भी यहीं रहते हैं। डॉक्टर आत्माराम ने अपने छोटे से छोटे कर्मचारी को भी पूरी सुविधा दे रक्खी है। सारसलेक में यह कहा जाता है कि वहां रूस की तरह पूरी सुविधा दी जाती है। हमारे हर छोटे से छोटे घर में भी डाक्साब ने रेडियो लाउडस्पीकर दे रक्खा है, जिसे एक केन्द्रीय स्थान से रेडियो द्वारा जोड़ दिया गया है। आकाशवाणी के लखनऊ-इलाहाबाद केन्द्रों के प्रोग्राम हर व्यक्ति को उसी तरह सुलभ हैं, जैसे कि नल का पानी, बिजली की रोशनी और सुखद सुन्दर मनःस्थिति देने लायक घर सबको प्राप्त हैं। डॉक्टरों की बहुत अच्छी व्यवस्था है। पूरी नयी वैज्ञानिक सुविधाओं के साथ डॉक्टर साहब ने वहां अपनी माता के नाम से लेडी शर्मिष्ठा स्मारक अस्पताल नामक एक बड़ा चिकित्सालय बनवाया है, जिसमें केवल उनके कर्मचारियों को ही नहीं, बल्कि आस-पास के ग्राम-निवासियों को भी पूरी सुविधा मिलती है।

डॉक्टर साहब ने एक अजब नियम यह भी बना रखा है कि सारसलेक में कोई भी मन्दिर, मस्जिद या गिरजाघर नहीं बन सकता। यों अपने घरों में वे हर धर्म का पालन करने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं। 'हमारे डाक्साब भी सचमुच ही बड़े ग्रेट आदमी हैं। बिचारे इतने महान् हैं कि अपने आस-पास फैली हुई गन्दगी को देख ही नहीं पाते। वहां वालों को उन्होंने अन्दर-बाहर की नैतिक सुन्दरता और सफाई देने में अपनी तरफ से कोई कसर बाकी नहीं रख छोड़ी। मगर वहां रहने वालों के मन ही अगर गन्दे मैले हों, तो वे बेचारे क्यों कर देख सकते हैं।' इस समय डॉक्टर आत्माराम की कृपा से विदेश-यात्रा का सुनहरा अवसर पाकर लच्छू कृतज्ञता के भाव में तह तक पहुंचकर सहसा अपराधजड़ित हो गया।

डॉक्टर साहब के समान महापुरुष की चोरी से ऐन उनकी नाक के नीचे अपने गुनाहों का दिया बालने के लिए वह इस समय बेहद दुःख, लज्जा और पश्चाताप से भर उठा। हवाई जहाज की खिड़की के बाहर जमीन और आसमान नहीं, मानो डॉक्टर आत्माराम खड़े थे और लच्छू की नजरें उठती न थीं। वह कितने गन्दे मायाजाल में फंसा हुआ है इस समय। पांच-छः औरतों ने खासतौर पर कैसा भयंकर षड्यन्त्र बुन रखा है। ऊंचे अफसरों में सभी तो दूसरे की पत्नियों को अपनी रखैलें बनाते हैं। अपने अफसरी अनुशासन को संगठित करने का मानो यह 'बीबीबाजी' भी एक तरीका है। पति जानता है कि अफसर उसके घर की इज्जत का भी मालिक है, वह जानता है कि पत्नी अपने यार के विरुद्ध किसी भी साजिश में उसे फंसा सकती है। हां, प्रसन्न रखे जाने पर वह

अपने पति का भाग्योदय भी करा सकती है। पिछले कुछ महीनों में ही लच्छू ने यह सब कुछ देख लिया है। आश्चर्य है कि डॉक्टर आत्माराम जैसा चतुर और बुद्धिमान व्यक्ति उसे इतने बरसों में आज तक नहीं देख पाया। हैरत है, कि उनके सबसे अधिक विश्वासपात्र, उनके संगठन की सफलता की कुंजी, चीफ एडमिनिस्ट्रेटर श्रीमान प्रकाशचन्द्र सेन बार० एट-ला तक अपने कुंआरेपन को परायी बीवियों से एक रात के व्याह करके उतारा करते हैं। लच्छू पर दरअस्ल उन्हीं की कृपा तो हुई है। बूढ़े सेन का दिलबहलाव करनेवाली उनकी गोपियों ने लच्छू की बड़ी तारीफें कर रखी हैं। कुछ यह जोर था और कुछ अपनी मेहनत, लगन और फुर्ती का असर डॉक्टर साहब पर था, भाग्य प्रसन्न हो गया…लेकिन इन औरतों के जाल में फंसे बगैर केवल अपनी योग्यता के बल पर इतनी जल्द क्या यह अवसर मिल सकता था? सारसलेक में भी चिराग तले अंधेरा है।

दिन चमचमा रहा था। लच्छू ने अपनी घड़ी देखी सवा बारह बजे थे। हवाई जहाज अब क्रमशः नीची उड़ान साधने लगा था। धरती पर व्यवस्थित खेत, गांव की बस्तियां, सड़कें, उन पर चलती एकाध गाड़ी, कभी-कभी आती-जाती दिखलाई पड़ जाती थीं। बस्तियों का क्रम अब टूटता न था। सारे हवाई जहाज में अब हलचल आरम्भ हो गई थी। बहुत देर से डालों पर बैठे पंछी मानो अब अपने डैने फड़फड़ाकर आलस उतार रहे थे। पास वाले मियां जी भी एक झपकी के बाद चैतन्य हुए और हवाई जहाज की खिड़कियों पर लोगों का झुकाव और उसके बाद सचेत होने की शारीरिक भंगिमाओं ने उनकी छठी इन्द्रिय को आभास कराया, कि वे अपने मंजिले मकसूद के निकट पहुंच गए हैं। खिड़की से झांककर लच्छू से बोले : "ताशकन्द आ गया शायद।"

"जी अभी तो उजबेकिस्तान शुरू हुआ है जनाब। ताशकन्द भी—" लच्छू बात करते-करते हवाई जहाज की घोषणा सुनने लगा। ताशकन्द आने वाला है, अपनी कमर-पेटियां कस लेने का आदेश हुआ। कानों में खोंसने के लिए रुई बटने लगी। साथ ही मेहमाननबाजी के रूप में हसीन मेजबान की मादक मुस्कराहटों के साथ लेमनड्राप्स भी। हवाई जहाज नीचा हो रहा है। ताशकन्द का विमान-केन्द्र अपने पूरे फैलाव में दिखाई पड़ने लगा। धरती की बस्तियां, पेड़, हरियाली, पशुओं और मनुष्यों की गति-विधियां साफ नजर आने लगीं। हवाई जहाज ने एक और डुबकी ली और नीचे आ गया—फिर और नीचे—फिर और।

धरती के निकट आना कितना सुखद लग रहा है। यह धरती सबके लिए एक सी है; देश भले ही बंटे हुए हों। लच्छू के अन्दर उल्लास के साथ उदात्त भावना का सहसा उदय हुआ। अपने आगे-पीछे आसपास के रूसी, हिन्दुस्तानी, जापानी, इण्डोनेशियन चेहरे, स्त्री-पुरुष-बच्चे, एक चौमुखी नज़र में फिर से ताजा होकर आ बसे। उसने एक सन्तोष भरे गौरव का अनुभव अपने अन्दर पाया। उसका व्यक्तित्व अपने-आप में जैसे दस अंगुल ऊंचा उठ गया था।

मेडिकल जांच होते-हवाते जब यात्रियों के उतरने की नौबत आई, तब लच्छू के मन में पहला सवाल यही था—'कौन मिलेगा?' विमान-केन्द्र के बाहरी भाग में अनेक लोग फूलों के गुलदस्ते लिए हुए खड़े थे। लच्छू के साथी मियांजी का भी शानदार स्वागत हुआ। और उनका गद्‌गद चेहरा लच्छू को ऊपर से सीढ़ियां उतरते हुए ही दिखलाई पड़ने लगा था। नीचे की भीड़ में कुछ-कुछ पहचाना-सा जवान भारतीय चेहरा लच्छू को आस्था दे गया। उसकी गति में तेजी आ गई।

लच्छू उस चेहरे वाले व्यक्ति का नाम नहीं जानता, पर उसे दो महीने पहले एक दिन में कई बार सारसलेक में देखा अवश्य था। नीचे आते ही लच्छू विश्वास के साथ और वह व्यक्ति अनुमानपूर्वक एक-दूसरे की ओर देखने लगे थे। उड़ते बालों, खोये चेहरे, मोटे चश्मे और कान्तिवान गम्भीर हंसमुख व्यक्ति ने कहा : "आप सारसलेक—"

"जी मैं लक्ष्मीनारायण खन्ना हूं।"

"मुझे यूसुफ अन्सारी कहते हैं।" दोनों ने गरमजोशी से हाथ मिलाया और फिर यूसुफ ने लच्छू की पीठ पर हाथ रखकर अतिथिशाला की ओर बढ़ते हुए सहसा बेतकल्लुफी शुरू कर दी, पूछा : "एक बात बतलाओ दोस्त, तुम घास खाते हो या शरीफों का खाना ?"

लच्छू मुस्कराया, उसी तरह बेतकल्लुफी से सिर झटकाकर बोला : "तुम्हारे मेहमान हैं, जो दोगे वही कबूल करेंगे।'

"बस एक लौंडिया दिलाने के लिए न कहना, वह काम यहां के लोग खुद ही कर लिया करते हैं।"

सामान लेकर बाहर आने पर लच्छू ने देखा कि यूसुफ के पास गाड़ी भी थी। उसने पूछा : "एक बात बतलाओ यूसुफ, तुम मास्को से आए हो या ताशकन्द ही में—"

"यहां मेरी एक दोस्त है। एक कलेक्टिव फार्म की मैनेजर। उसी की है यह गाड़ी। दिन भर के वास्ते ले ली है। जरा तुम्हें एक झलक ताशकन्द की दिखलाएंगे, फिर शाम को छह बजे के प्लेन से मास्को उड़ चलेंगे।"

"अभी चार-पांच घंटे का समय है अपने पास।" कहते हुए लच्छू ने अपनी घड़ी की ओर एक नज़र डाली। यूसुफ ने भी उधर नज़रें घुमाईं, बोला : "तुमने अपनी घड़ी अभी नहीं मिलाई।"

"अब मास्को ही में मिलाएंगे यार। जरा वहां तक अपना हिन्दुस्तानी समय भी तो ले चलें।"

"यानी मास्को से ढाई घण्टे पिछड़ा हुआ है।" यूसुफ ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। एयर पोर्ट के आगे ही पहले चौराहे पर एक बहुत बड़ा राकेट बना हुआ था। खुशनुमा फूलों और पेड़ों से सजी हुई शानदार सूनी सड़क का वह राकेट वाला चौराहा पार करके गाड़ी आगे बढ़ने लगी। सड़क के दोनों ओर सादे नये शान्त मकान, फुटपाथों पर आते-जाते कुछ लोग-लुगाइयां। पोशाक आमतौर पर नयी विलायती। लच्छू के मन में ताशकन्द के नाम से पुराने इस्लामी माहौल का जो एक नक्शा बना हुआ था। वह न दिखलाई पड़ने से उसे कुछ-कुछ निराशा-सी हुई। यूसुफ से पूछा : "यहां क्या अब उज़बक नहीं रहते ?"

"जी नहीं, हिन्दुस्तान से अब आप ही पहले उज़बक यहां तशरीफ लाए हैं।" यूसुफ ने कहा।

लच्छू झेंप गया, बोला : "नहीं, मेरा मतलब था कि—"

"हुज़ूर आपका मतलब मैं समझ गया। मगर आपको भी यह समझना चाहिए कि इन देश में इन्कलाब आए हुए अब पैंतालीस साल बीत चुके। उज़बेक लोग अब वो पुराने उज़बक नहीं रहे। — ये देखिए, यहां का सिनेमा हाल है 'वतन'।

"वतन ?" लच्छू ने चौंककर यूसुफ की ओर देखा।

"जी जनाब, आपको यहां 'वतन' मिलेगा 'इन्कलाब' और 'गागारिन मैदान"

मिलेंगे। 'महब्बत' मिलेगी। अपनी जान-पहचान के सैंकड़ों अल्फाज़ यहां आपको सुनने के लिए मिल जाएंगे।"

लच्छू को बड़ी खुशी हुई। मगर उसी समय यूसुफ दर्द भरी आवाज में बोला : "मगर माफ करना यार, तुम हिन्दू लोग अब उर्दू की जड़ इस तरह से उखाड़ रहे हो कि हम लोगों की पीढ़ी के बाद इन तमाम अरबी-एशियायी मुल्कों से जो हमारा ये अपनापन चला आता है, वह गायब हो जाएगा।"

लच्छू को मन-ही-मन कुछ बुरा लगा। उसे अनुभव हुआ कि जैसे यूसुफ उसे जानबूझकर हिन्दू बना रहा है, और लच्छू इस समय आदमी है। विमान-केन्द्र पर जब यूसुफ ने उसे अपना नाम बतलाया था, तब उसके मन में तो यूसुफ के मुसलमान होने का विचार तक न आया था। परदेस में वह एक भारतीय से मिल रहा था, बस यही उसके लिए सब-कुछ था। एकाएक इस तरह हिन्दू कह दिए जाने से लच्छू को कुछ-कुछ बुरा लगा, जवाब देने को जी चाहा, बोला : "यार हम हिन्दू तो नहीं उखाड़ रहे हैं तुम्हारी उर्दू को, लेकिन जान पड़ता है कि तुम मुसलमान अपनी कम्यूनल हमीयत से हमको उभार-उभारकर उसे उखड़वा ही दोगे।"

यूसुफ ने एक बार पैनी कनखी से लच्छू की ओर देखा और बोला : "तुम्हारी शादी हुई है ?"

"अभी नइं।"

"किसी मुसलमान लड़की से शादी करोगे ?"

"जब किसी सोहबत से ही परहेज नहीं, तब भला शादी से क्यों इनकार करूंगा। दिलाते हो कोई उम्दा माल ?"

"मेरी शादी किसी हिन्दू लड़की से करवा दोगे, उसके मां-बाप मुझे दिल से अपना दामाद मान लेंगे ?"

"यार, यही सवाल मुझे भी तुमसे करना चाहिए था। लच्छू ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा।

"आदमी होशियार हो, हमारी-तुम्हारी निभ जाएगी।" यूसुफ ने गाड़ी को बायीं सड़क से घुमाते हुए कहा। दोनों फिर मौन हो गए। चौड़ी-चौड़ी सड़कें, 'थाल' के पेड़, जो ऐसे लगते हैं मानो बांस में बंधी हुई बिखरी सींकों वाली बुहारियां खड़ी हों। बिजली की बसें दौड़ रही हैं, ट्रामें भी हैं। टेलीविजन का केन्द्र, थिएटर की शानदार इमारत, उम्दा फव्वारे लगे हुए बाग और सड़कें सड़कें कहीं-कहीं खुदी हुई भी हैं; धूल भी नज़र आ रही है। दाढ़ीवाले चेहरे, उज़बेकी टोपियां और लबादे भी अक्सर नज़र आ जाते हैं। मिट्टी के बड़े-बड़े फाटक वाले पुराने घर और उन फाटकों के ऊपर झरोखेदार कमरे···ठीक भारत जैसे। एक जगह पुरानी मस्जिद देखी, ताशकन्द के साथ लच्छू का मन मानो मिल गया। कार शहर से बाहर गांव की चौड़ी सड़क पर दौड़ने लगी। घोड़ागाड़ी पर सामान रक्खे तीन-चार परम्परागत वेषधारी उज़बक सड़क पर चले जा रहे थे। लच्छू को लगा कि वह अपने लखनऊ नगर के नखास मुहल्ले में पहुंच गया है और निहायत जानी-पहचानी सूरतें उसके सामने हैं। जगह-जगह बड़े-बड़े कपास के खेत हैं, जिनमें लड़कियां कपास के फूल चुन रही हैं। बच्चे नंगे बदन कुछ-कुछ गन्दे भी नज़र आ रहे हैं। खेती सम्बन्धी कुछ कारखाने भी अक्सर सड़क के दोनों ओर आ जाते हैं। दूर की हरी-भरी पहाड़ियां, चारों ओर का वातावरण बड़ा सुहावना लग रहा है। यूसूफ बीच-बीच में कुछ बतलाता भी चलता है। गांवों में नगरों

जैसी ही सुविधाएं हैं—रेडियो, टेलीविजन, स्कूल, अस्पताल। हमारे देश के गांव कब ऐसी उन्नति कर पाएंगे ? हमारे पलटू, मतई, फज्जू, अकबर कब अपने घरों में ये तमाम नई सुविधाएं पा सकेंगे।

तमारा नूरुद्दीनोवा लच्छू को बहुत अच्छी लड़की लगी। शिष्ट, शांत हुकूमत करने वाली, छिछोरपन का कहीं नाम तक नहीं। लच्छू ने गौर किया कि यूसुफ का स्वभाव ही मानो तमारा के सामने बदल जाता है। सोच-सोचकर बोलना, विचारों में खोए-खोए से स्वर में बोलना, धीमे स्वर में बोलना—यह बोलने, बरतने का नाटक लच्छू को सचमुख ही नाटक लगा। उसने यह भी गौर किया कि यूसुफ तमारा से नज़रें मिलाकर बात नहीं करता और तमारा जब भी उसकी ओर देखती है, उसकी आंखों में गहरा ममत्व उमड़ पड़ता है और मानो उसकी आंखों में एक गम्भीर प्यास नज़र आती है कि अब नज़रें चार हों, अब हों। लच्छू को यह भाव बहुत अच्छा लगता है, जो उसे नहीं मिला। उसने केवल भूखी नशीली आंखें ही देखी हैं। सारसलेक स्थित अपनी वासना के त्रिकोण में एक भी नारी का प्रेम के प्रति वह दृष्टिकोण नहीं, जो तमारा के इस भाव में है। पण्डित राजकिशन उसे कई बार समझा चुके हैं कि "बरखुरदार, खेलो जरूर, मगर खेल का कायदा भी सीखते चलो, वरना चार दिनों में सूखे करेले-सा चेहरा बन जायगा तुम्हारा। हमें जवानी के जिस्मानी इस्तेमाल से एतराज नहीं, बशर्ते कि इस इस्तेमाल में दिल की लूट-खसोट न हो। ये लूट-खसोट ही मर्द या औरत की काया को तोड़ देती है।"

तमारा की नज़रें देखकर लच्छू को पहली बार पण्डित राजकिशन की बात का सत्यदर्शन मिला, लेकिन इकतरफा मिला। तमारा नूरुद्दीनोवा के मन, वाणी और काया में जो नैसर्गिक कान्ति है, वह यूसुफ के नाटक में नहीं है। यूसुफ का नाटक उसे हूबहू मिसेज रामनायकम् के नाटक जैसा लगता है। वह यह दिखलाती है कि उसे दुनिया में केवल लच्छू ही से लगाव है। वह अपने पति को दुतकारती है, डांटती है। नौकरों, चाकरों, छोटे कर्मचारियों, उनकी स्त्रियों आदि सबके साथ उसका व्यवहार कुछ और ही तरह का होता है और डॉक्टर साहब, सेन साहब, अशरफ साहब, मिसेज अशरफ और मिसेज माथुर के साथ दूसरी तरह का। लच्छू को इसी दूसरे मीठे व्यक्तित्व का अतिरेक मिला करता है—सैक्रीन के शरबत-सा, जिसमें पीने के बाद एक कड़वाहट का आभास भी होता है। तमारा जैसे उन सबसे अलग है, उसका व्यक्तित्व दोहरा नहीं है, लेकिन अगर सारसलेक के शैतानी त्रिकोण से उसका सम्बन्ध न टूटा, तो एक दिन उसका व्यक्तित्व भी दोहरा हो जाएगा—फिर तिहरा, चौहरा—अनन्त बिखराव भरा हो जाएगा।

ताशकन्द समय से ठीक छः बजे हवाई जहाज मास्को के लिए उड़ा। लच्छू की घड़ी में उस समय भारतीय समय के साढ़े पांच बजे थे। इस विमान में भारतीय युवकों और युवतियों की एक बड़ी टोली जा रही थी और उनके साथ एक चौअन-पचपन वर्ष की पारसी महिला भी थी, जो महिला शब्द के आप्टे कोश में दिए गए अर्थ की साक्षात् अवतार, हूबहू 'पियक्कड़ और कामुक औरत' लग रही थी। वह अपनी मोटी देह और सीढ़ियों जैसी चढ़ती-उतरती आवाज़ को एक जगह थिर न रख पाती थी। वह लड़कों से घिरी बैठी थी। उसकी लड़की उससे तीन-चार सीट

पीछे एक युवक के पास बैठी हुई बातें कर रही थी। वह युवक-डेलीगेशन अपने पैसे से रूस-यात्रा कर रहा था। सब पैसे वालों के छौनी-छौने थे। बेहूदा। यूसुफ बोला : "क्या इनमें से एक को भी तुम हिन्दुस्तानी जवानों का सच्चा प्रतिनिधि कह सकते हो खन्ना ?"

"एक तरह से हां। ये अंग्रेजी पोशाक वाले बत्तमीज हैं। हमारे गली-मुहल्लों में भारतीय पोशाक वाले बत्तमीज हैं और गंवई-गांव के युवक तो उजड्ड और बत्तमीज हैं ही। तुम अपने दिल पे हाथ रख के बतलाओ यूसुफ, हमारे देश में इस वक्त कामकाजी गम्भीर लड़के-लड़कियों की तादाद ज्यादा है या इन जैसे बत्तमीजों की ?"

"एक तरह से सही कहते हो तुम। हमारे देश को अभी वह काम-काज भरा माहौल नहीं मिला। हैरत है कि नेहरू ही के जमाने में नहीं मिला।"

"मुझे तो लगता है यूसुफ कि नेहरू हमारे डाक्साहब जैसे ही बेबस इन्सान हैं। हमारे यहां एक पण्डित कमलापति मिश्र रहते हैं, एक दिन नेहरू के बारे में बड़ी मजे की बात कह गए। कहने लगे कि कांग्रेस में नेहरू की वही हालत है, जो उड़ाऊ-खाऊ आवारा लड़कों में कमाऊ बाप की होती है।"

यूसुफ गम्भीर विचारों में रमे हुए स्वर में बोला—स्वर तो बहाना भरा था—दिमाग से दिमाग जुड़कर बोला : "महज यह सोच लेने से ही काम नहीं चल सकता कि कमाऊ बाप एक है और आवारा बच्चे बहुत से। और जब एक नहीं रहेगा, तो इन बहुतों का क्या भविष्य होगा। मैं समझता हूं कि आवारगी एक रोग है और इसका इलाज होना चाहिए। तुम एक नई दुनिया में आए हो खन्ना। तुम खुद ही देखोगे कि किसी देश का हर औसत इन्सान अपनी और अपने मुल्क की तरक्की के लिए क्या कुछ नहीं हासिल कर सकता या कर लेता। इन पैंतालिस-छियालिस बरसों में हमसे भी गए-बीते, घुटे-पिसे तबाह इन्सानों ने अपने लिए वाकई एक नई दुनिया बना ली है। सोवियत यूनियन को आज यह फख्र हासिल है कि उनके पास पहला खलाबाज़ यानी अन्तरिक्ष यात्री निडर जवांमर्द गागारिन मौजूद है। उमने नई दुनिया को नये नायक दिए हैं।"

"अमेरिका ने भी दिए हैं।" लच्छू ने टोका।

"सही है, मगर अमेरिकन डिमाक्रेसी डेढ़-दो सौ वर्षों में जहां तक पहुंच सकी, वहां आधी सदी से भी कम अर्से में ये मार्क्सिस्ट-लेनिनिस्ट विचारधारा के लोग पहुंच गए, बल्कि उनकी डिसिप्लिन यानी कि अनुशासन ज्यादा अच्छी सफलता हासिल कर सका।"

लच्छू तन्मय होकर यूसुफ की बात सुन रहा था। उसके मन में सारसलेक के जीवन के कुछ संस्कार मौजूद थे ही, कुछ घण्टे में ताशकन्द के भीतर-बाहर की झलक-पलकियों ही में उसे नयापन भी मिल चुका था। तमारा नूरुद्दीनोवा में उसने एक ऐसी नई औरत को देखा था, जो दुर्भाग्यवश उसे अपने सारसलेक की दुनिया में देखने को नहीं मिली थी। लच्छू—गली-मुहल्लों के कुएं का एक मेढक, सारसलेक के किनारे आकर एक निराली दुनिया को सहमते, सहते, देखते, भोगते और विचार करते हुए धीरे-धीरे समझकर एक 'नये मानस' में ढल पाया था—अब और आगे, सारसलेक से निकलकर एक बहुत बड़े, बहुत उन्नतिशील और कर्मठ समाजवाद के महासागर में तैर रहा था।

विमान के आसमान तक भीतर-बाहर रात थी। यूसुफ की घड़ी में रूसी

समय के पौने आठ बज रहे थे और लच्छू की घड़ी में भारतीय समय से ढाई घण्टे पीछे था। बादलों घिरे काले आसमान में सिन्दूरी आभा चमक रही थी। रूसी आकाश में यह चढ़ती रात का जादू था; और हमारे यहां सूर्यास्त के बाद जल्दी गहराने वाले अंधेरे में यह चमत्कार होता है। थोड़ी देर में बारिश होने लगी। बारिश तेज हुई। विमान के अन्दर आम तौर पर पूरी खामोशी थी। बहुत से लोग सो रहे थे। काफी लोग मैगजीनें पढ़ रहे थे। लच्छू के ठीक आगे वाली सीटों पर दो रूसी युवक तो ऐन उसके निकट ही, और भी विमान में दूर-दूर तक कई स्त्री-पुरुष, एक जगह रूसी-भारतीय मिलकर भी, सीट के हत्थों पर कुछ छोटी सी चीज रखे हुए चुपचाप खेलरत हो रहे थे। विचारों से लच्छू का मन चूंकि अब नैक-नैक खलियाया था, इसलिए इन सब बाहरी चीजों की ओर गया। लच्छू उठा और झुककर अगली सीट के नन्हें खेल को देखने लगा। अरे, यह तो शतरंज है! छोटे-छोटे मोहरे जो हर खाने में 'चाइनीज़ चैकर्स' खेल की तरह छेदों में फंसाये जा सकते हैं। यात्रा में किसी झकोले में शतरंज की बिसात के हिलने-डुलने का कोई भय ही नहीं। लच्छू दिलचस्पी से देखने लगा। दोनों खिलाड़ियों ने उसे देखा। दोनों मुस्कुराए, एक चश्मे वाले युवक ने मुस्कराकर पूछा : "बारत से आए हैन् ?" लच्छू ने चमत्कार से उसे देखा, आत्मीयता की मुस्कान से उसका चेहरा खिल उठा, बोला : "जी हां।"

"किसी देलीगेशन में आए हैन् ?"

"जी नहीं, मैं भारत से निकलने वाले एक मशहूर डेली पेपर 'इण्डिपेन्डेण्ट' के स्टाफ में काम करता हूं।"

दूसरे रूसी युवक ने अपनी मातृभाषा में पहले से कुछ पूछा। लच्छू देखता रहा। फिर पहले ने लच्छू से हिन्दी में कहा : हमारे मित्र पूछते हैन् कि जो-जो शब्द आपने अंग्रेजी में प्रयुक्त किए हैन्, वे शब्द क्या आपकी मातृभाषा में नहीं हैन् ?"

प्रश्न से लच्छू सकपका गया। यूसुफ, जो अब तक आंखें मींचे उनींदा पड़ा था, एकाएक पलटकर रूसी में दोनों रूसियों से कुछ कहने लगा, जिसे सुनकर दोनों हंसे। यूसुफ ने फिर पहले युवक से हिन्दी में कहा : "अब कृपया आप मेरी रूसी बात का हिन्दी अनुवाद इन्हें समझा दीजिए।"

पहले ने हंसकर कहा : "आपके मित्र ने हमें बतलाया कि आपके देश में चूंकि स्वतन्त्रता देर में आई हैन्, और शिक्षा का प्रसारण शनैः-शनैः हो रहा हैन्, इसलिए आपके देश में बहुत से लोग अपनी मातृभाषा को नहीं जानते और आप बी···ब्ही—उनमें से एक हैन् हः हः हः।"

लच्छू मन-ही-मन बहुत झेंप गया, फिर अपने-आपको सम्भालते हुए तुरन्त बोला : "यह बात नहीं, मातृभाषा के जानने वाले हमारे देश में अनेकानेक हैं, किन्तु पुरानी दासता के संस्कारों के कारण हमारी बोलचाल की भाषा का रूप बिगड़ गया है।" लच्छू ने अनुभव किया कि उसके मुंह से संस्कृत-निष्ठ हिन्दी को सुनकर रूसी युवकों को हर्ष हुआ। लच्छू ने आगे की बात जोड़ते हुए विनय से कहा : "मैंने खड़े होकर आपके खेल में विघ्न डाला। मुझे यह कौतूहल था कि आप लोग क्या खेल रहे हैं। ये जेबी शतरज देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। आप खेलिए, खेलिए।"

पहले ने हंसकर शतरंज का डिब्बा बन्द करते हुए कहा : "अब क्या खेलें, ये

मेरा मित्र मुझको महान् शतरंज में पराजीत कर रहा था। अब मैंन् मास्को पहुंच कर इसको पराजीत करे—करूनगा।"

यूसुफ ने रूसी में पहले युवक से कुछ पूछा, जिसके उत्तर में वह झेंपकर हंसा और बोला : "आप ठीक कहते हैंन् । मैंने अंगरेजी के माद्यम से हीन्दी बाषा को पड़ा है। और अपने आप सीख रहा हुन् !"

यूसुफ बोला "तभी आपका उच्चारण अशुद्ध है। भाषा बोलने वालों के बीच में रहकर ही सीखी जाती है। जैसे मैं आपकी भाषा सीख रहा हूं।

पानी अब थम रहा था। बड़े फैलाव में सजी मास्को की दीपावलियां अब धीरे-धीरे अपना क्रम और घनापन बहुत बढ़ा—चढ़ाकर झलकाने लगीं। आसमान में तारे न थे, लेकिन मास्को की धरती तारों जड़ी, जादू भरी हो रही थी। पेटियां कसने का समय आ गया। रोशनियों के चक्रव्यूह में घूमता-उतरता हुआ विमान मास्को के हवाई केन्द्र पर पहुंच गया। हवाई जहाज के उतरने पर रिमझिम बरखा और आलोक माया-जाल-भरी अलकापुरी-सी मास्को नगरी उसे सम्मोहक लगी। उसकी नज़रें भर-भर गयीं। यूसुफ साथ न होता तो लच्छू बौखला जाता। यूनिवर्सिटी के पास यसुफ का घर था। रास्ते भर लच्छू चमत्कार में बंधा रहा। इतना विशाल नगर उसने पहली बार ही देखा था। मोस्कवा नदी के पुल से चमकते हुए क्रेमलिन के लाल सितारे। बड़े-बड़े मूर्तियों के सजे चौराहे, ऊंची-ऊंची इमारतें, ट्रामों, बसों और कारों की चहल-पहल। बहुत चौड़ी-चौड़ी सड़कें, बड़े ऊंचे-ऊंचे मकान। लच्छू आंखें फाड़े देख रहा था। बहुत-सी इमारतें देखकर उसे मास्को में न्यूयार्क का भ्रम हुआ। तस्वीरों में ऐसी इमारतों के साथ उसका लगाव न्यूयार्क ही से हुआ था। मास्को में यह 'न्यूयार्क' उसको अच्छा न लगा। मास्को के साथ उसके मन में क्रान्ति के जोशीले प्रभाव जुड़े हुए थे। क्रेमलिन के लाल सितारे को देखकर कम्यूनिस्ट या कम्यूनिज्म का प्रबल समर्थक न होते हुए भी उसके मन में अपनेपन की झलक जाग उठी थी। लच्छू भी गरीबी के सताए रुप्पन महाजन और उसके कारिन्दों के मारे हुए शोषित समाज ही का एक अंग है। और इस लाल सितारे में, इस क्रान्ति के तीर्थ मास्को में, उसे एक तरह से अपनी जीत की आस्था युक्त भावना मिल रही है। बड़ा पढ़ाकू न होते हुए भी उसने टॉल्सतोय, तुर्गनेव, दोस्तायव्स्की, चेखोव, गोर्की और शोलोखोव की थोड़ी-बहुत किताबें सारसलेक में पढ़ी हैं। उसके मन का मास्को इन लोगों के साथ, लेनिन और उसके साथियों के साथ; क्रान्ति के साथ ही अब तक जुड़ा हुआ था···उसकी नजरों के सामने फिर एक विशाल 'न्यूयार्क' आया। लच्छू अब अपने-आपको रोक न सका। वह बोल उठा : "यार यहां न्यूयार्क बहुत हैं।"

"न्यूयार्क ? ये तो युनिवर्सिटी है।"

"युनिवर्सिटी ! बड़ी शानदार है, लेकिन इन लोगों ने अपना कोई स्टाइल विकसित करने के बजाय ये न्यूयार्क स्टाइल को क्यों अपना लिया ?"

"ओह", यूसुफ हंसा, "अब समझ में आया तुम्हारा न्यूयार्क। हां, आजकल यहां ऐसी इमारतों का जोर है। दूसरी लड़ाई के बाद यही चलन चल पड़ा है। ये लोग मास्को में एक वेनिस भी बना रहे हैं। उस मुहल्ले के अन्दर सड़कें नहीं, नहरें होंगी, और तुम साइकिल या मोटर पर नहीं, बल्कि नावों ही पर वहां आ-जा सकोगे। और ये स्काईस्क्रेपर्स, जो तुमने आम तौर पर देखे हैं, इनमें सेठ लोग नहीं रहते, बल्कि ये रूसी मजदूरों के महल हैं। दिन भर काम करने के बाद यहां

का आदमी जब घर लौटता है, तब उसे यह महसूस नहीं होता कि उसके जीवन में कोई अभाव है। यहां हर आदमी समाजवादी तन्त्र से संचालित होकर अपने-आपको बादशाह समझता है। यह क्या कोई कम सफलता की बात है ?"

लच्छू का मन भी यही कह रहा था। टैक्सी एक इमारत के सामने आकर खड़ी हुई। लच्छू को यह देखकर सन्तोष हुआ कि वह इमारत 'न्यूयार्क' नहीं थी। अपना सामान उठाकर दोनों लिफ्ट से सातवीं मंजिल पर पहुंचे। लच्छू को यह देखकर हैरत हुई कि यूसुफ का घर पूरा 'घर' था। दरवाजा एक रूसी युवती ने खोला और उसके सारे स्वभाव से लच्छू को यह अन्दाजा हुआ कि यूसुफ की वह बीवी ही हो सकती है। एक रूसी बुढ़िया भी थी, जिसे यूसुफ ने 'मामा' कहकर पुकारा। वह रसोईघर में काम करते हुए यूसुफ की आवाज़ सुनकर अपना 'एप्रॉन' नीचा करती हुई हंसते मुख से आई थी। यूसुफ ने लच्छू को उससे परिचित कराया। वाल्या, जिसे लच्छू यूसुफ की पत्नी समझता था, उससे हिन्दी में बोली —विमान वाले रूसी से हिन्दी अच्छी बोली। ढाई कमरों का छोटा-सा घर थोड़ी ही देर में लच्छू का अपना घर भी हो गया। मामा थोड़ी देर में घर चली गयी। लच्छू को अब तक यह भी मालूम हो गया कि वाल्या यूसुफ की पत्नी नहीं, केवल पत्नीवत् मित्र ही है। उस रिश्ते को वह अपने चिरपरिचित शब्द 'रखैल' से भी नहीं जोड़ सकता था।

वाल्या विश्वविद्यालय में हिन्दी की छात्रा है। इस वर्ष उसका डिप्लोमा कोर्स पूरा हो जायगा। अपने भरण-पोषण के लिए वह अनुवाद का काम करती है और यूसुफ से उसकी दोस्ती है—घनी दोस्ती। वाल्या को यूसुफ ने अपने घर में जगह दे रक्खी है और वाल्या ने यूसुफ को अपने दिल में। मुक्त प्रेम को सोवियत समाज में व्यभिचार की संज्ञा नहीं दी जाती। ऐसे रिश्तों को करीब-करीब वही प्रतिष्ठा मिलती है, जो हमारे देश की कुछ जातियों में घर बैठौवा की रस्म को मिलती है। रूस में लड़कियां लड़कों से अधिक हैं। और इसलिए उनका विवाह एक समस्या है। लेकिन कुछ भी हो, वाल्या बहुत अच्छी युवती है। तीनों देर तक बातें करते रहे। खाते और पीते रहे। लच्छू ने ज़िंदगी में पहली बार वोद्का पी। कमवक्त हलक से नीचे क्या उतरती है कि आग की लकीर-सी खिंचती चली जाती है। लच्छू उन्हीं आग की लकीरों के चक्रव्यूह में घिरकर अपनी यात्रा की थकान से बेखबर हो गया। पति-पत्नी अपने सोने के कमरे में चले गए।

दूसरे दिन माथुर से उसकी मुलाकात भी मजेदार रही। 'इण्डिपेंडेंट' के मास्को स्थित दफ़्तर में लच्छू जब एकाएक माथुर के सामने पहुंचा, तो ये चौंककर उसे देखने लगे। अपनी बीवी के यार और मातहत कर्मचारी के प्रति मि० माथुर के मन में नफ़रत के सिवा और कुछ नहीं। उसे देखते ही बोले : "तुम ? क्या तुम्हारा तबादला यहां का हुआ है ?"

"जी नहीं, मैं तो आपके नाम डाकसाब की एक पर्सनल चिट्ठी लेकर आया हूं।" और यह कहकर लच्छू ने माथुर के हाथों में पत्र रख दिया। पत्र पढ़ते हुए माथुर का चेहरा तमतमाया और फिर उतर भी गया। खिसियाई हुई हंसी हंस-कर उन्होंने कहा : "ओह, मेरी मौत का पैगाम लेकर आने के लिए तुम चुने गए। गुड ! गुड क्या बतला सकते हो खन्ना, कि तुम्हें यहां भिजवाने के लिए उमा ने उस बूढ़े गीदड़ सेन को कितने बोसे दिए थे।"

लच्छू चिढ़ गया। यों भी माथुर का उसे कभी बहुत लिहाज नहीं रहा,

बोला : "यह तो आप ही बतला सकेंगे माथुर साहब, कि आपकी धर्मपत्नी अपना काम करवाने के लिए बूढ़ों को क्या और कितनी रिश्वत दिया करती हैं। मैं जवान भला इसे क्योंकर जान सकता हूं।"

माथुर चुप हो गए, फिर एक बेशर्म हंसी हंसकर बोले : "तुमने अच्छा जवाब दिया, लेकिन एक बात तुम्हें बतलाऊं, उमा मेरी धर्मपत्नी नहीं है। यानी हमने आज तक किसी पण्डित से आग जलवाकर और मंत्र पढ़वाकर शादी नहीं की।"

"जी, यह मुझे भी मालूम है, लेकिन आप चूंकि सारसलेक में अक्सर लोगों के सामने इस शब्द का इस्तेमाल—"

"वह मेरा एक सामाजिक ढोंग है, जो मैंने अपने समाज के शरीफों से सीखा है। कल अगर उमा मेरा घर छोड़कर तुम्हारे यहां रहने लगे, तो तुम भी लोगों के आगे यही ढोंग साधोगे।"

"जी, मैं आपकी उमा को कभी अपने घर पर लाकर नहीं रखूंगा, खातिर जमा रक्खें।"

"तुम थोड़े ही रक्खोगे मेरे नौजवान रकीब, परिस्थितियां ही तुम्हारे यहां उसे ला रखेंगी।"

"कैसे?"

"मैं यहां से जाते ही उसे अपने घर से निकाल दूंगा। एक छदाम तक न दूंगा, तब तुम्हें छोड़कर आखिर जाएगी कहां? मैं अपने घर से निकालने के साथ ही उसे तुम्हारे फ्लैट में जाकर रहने की दोस्ताना सलाह भी दे दूंगा।"

"आपकी ये तरकीब बेकार जायगी माथुर साहब। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि मेरे घर में जब आएगी, तो मेरी धर्मपत्नी ही आएगी। फाहशा औरतें तो केवल दो घड़ी का दिलबहलाव होती हैं। और—"

"तुम फाहशा किसको कहोगे खन्ना। हमारे हिन्दुस्तान को छोड़कर अब हर सभ्य देश में क्वांरे युवक-युवतियों का मुक्त प्रेम समाज द्वारा स्वीकार किया जाने लगा है, बहुत-सी लड़कियों के जीवन में एक से अधिक प्रेमी आ जाते हैं। लेकिन यहां उन्हें कोई फाहशा नहीं कहता, जब तक कि वे अति की सीमा को पार न कर जाएं। यहां बहुत से ऐसे जोड़े रहते हैं, जिनकी आपस में किसी प्रकार की शादी नहीं हुई। कोई भी ऐसे लोगों को बदचलन नहीं कहता। हां, शादी के बाद अवश्य ही स्त्री-पुरुषों पर नैतिक प्रतिबन्ध लग जाते हैं।"

"जी, मैं भी वही बात कह रहा था। मेरे घर में या तो धर्मपत्नी आएगी और मैं उसके आते ही सही अर्थों में एक शरीफ पति बन जाऊंगा, वरना यों भी ज़िन्दगी क्या बुरी है। इश्क अपने काम से रक्खूंगा और रिश्ते आप लोगों की दिलदार औरतों से।"

"काफी चालाक हो।"

"दुनिया ने बना दिया है माथुर साहब।"

"ऑल राइट – ऑल राइट। मौज लो। मैं भी इसी रास्ते पर चला था। अब तक कुवांरा ही हूं। एक समय मुझे भी पराई औरतों को इस्तेमाल करने का जोम था। इसी उमा की मौसी को बरसों अपना गुलाम बनाकर रक्खा है, और उसके पति को सदा नीचा दिखाता रहा। मैं इसमें अपनी शान समझता था। मेरी वह सारी शान उमा ने बरबाद कर दी।...बड़ा फर्क आ गया। पहले ताकतवर

बेशर्म था और अब निर्बल निर्लज्ज बन गया हूं। तुम्हारा भी यही अन्त होगा।"

"अन्त की चिन्ता अभी मुझे नहीं सताती माथुर साहब। वह आप ही को सताएगी। बहरहाल एक बात और भी आपके कान में डाल दूं। यहां आने से चार-पांच दिन पहले सेन साहब ने मुझे दोस्ताना तौर पर यह चेतावनी दी थी कि मैं आपकी उमा से अपने रिश्ते तोड़ लूं, क्योंकि वह आपकी उमा की अपने क्वांरे सेक्रेटरी मि० तलवार से बाकायदा शादी करवानेवाले हैं। मेरा ख़याल है जब तक आप सारसलेक पहुंचेंगे, तब तक तथाकथित मिसेज उमा माथुर बाजाब्ता मिसेज तलवार हो चुकी होंगी।"

माथुर का चेहरा उतर गया। फिर आंखों में नफरत और जबड़ों में भिंचाव आया। थोड़ी देर चुप रहने के बाद वे बोले : "सेन हरामजादा है।···मगर··· क्या तुम यह बतला सकते हो कि उमा इसके लिए राजी है?"

"जी हां! बात ये है कि अब आप सारसलेक से तो बिदा हो ही जाएंगे और पेन्शन के बाद आपकी आमदनी भी घट जायगी। तब सेन साहब की दिलरुबा उमा का क्या होगा। उमा के लिए सेन ने चिंता की। तलवार साहब इतने सीधे हैं कि अपना दुःख-दर्द तक किसी को बतला नहीं पाते। इसलिए सेन साहब ही को उनका क्वांरापन दूर करने की चिन्ता लगी है। दोनों चिन्ताओं से मुक्त।"

"सेन बदमाश है, बेहद बदमाश है और उसमें प्रॉविंशियलिज्म भी कूट-कूटकर भरा है। चूंकि मेरी वजह से उस बूढ़े लायब्रेरियन बोस को इस समय नीचा देखना पड़ा है, इसलिए सेन मुझसे बदला लेना चाहता है। खैर, सारसलेक की इस जनानी पॉलिटिक्स के बहाने तुमको रूस देखने का मौका मिल गया, इसलिए मैं खुश हूं। घूम लो, मेरा खयाल है, तुमको लेनिनग्राद, कीयेव और यहां के एकाध ब्यूटी स्पाट्स—ज्यार्जिया के कोहकाफ वगैरह भी घूम लेना चाहिए। कोहकाफ की परियां, कोहकाफ की कुदरती सुन्दरता दोनों ही देखने लायक चीजें हैं। देख लो, देख लो, अभी तो मेरे हाथ में यहां के लिए ताकत है ही। मैं तुम्हारे घूमने का अच्छा इन्तजाम कर जाऊंगा। लेकिन एक चीज़ का ध्यान रखना, सारसलेक पहुंचते ही तुम्हें बूढ़ें सेन से तुम्हारी नौकरी खत्म हो जाने का नोटिस मिलेगा। मुझे तो सारसलेक छोड़ना ही है, पर मैं अब तुम्हें और रामनायकम् को भी वहां रहने न दूंगा।"

माथुर से बात करके लौटने पर लच्छू ऊपरी तौर पर हलकापन अनुभव करते हुए भी मन-ही-मन गहिर गम्भीर हो उठा था। उसके सामने इस समय यह बात साफ हो गई थी, कि हिन्दुस्तान पहुंचते ही उसकी इन पच्चीस वर्षों की घुटन भरी ज़िन्दगी में आया हुआ, सारसलेक से रूस तक जल्वा दिखलाने वाला भाग्य का यह चमकदार सितारा अस्त हो जायगा। यह कसक उसे गहराई में उठ रही थी। माथुर के कमरे से निकलने पर वह यूसुफ के कमरे में गया। लच्छू का चेहरा देख वह बोला : "कहो मियां, बूढ़े लकड़बग्घे को चपत लगाकर यह उदासी क्यों पाई? तुम्हें तो खुश होना चाहिए था।"

लच्छू रूखी हंसी हंसा, बोला : "खुश तो हूं, लेकिन इस खुशी के पीछे एक चुनौती भी मेरे लिए आ गई है।·· खैर, जो होगा सो हो, इस समै तो यार, तुम मुझे इस नयी दुनिया की जी भरकर सैर करा ही दो। कम-से-कम एक बड़ा अनुभव जिन्दगी में शायद बहुत दूर तक असर करने वाला मिल ही जायगा। देश पहुंचने पर तो मुझे फिर कुएं का मेंढक बनना ही पड़ेगा।"

यूसुफ बोला : "मैं समझ गया। मगर मैंने तरकीब सोच ली है। तुम्हारे लिए एक कोशिश आज ही करता हूं।"

"क्या ?" लच्छू को अचरज था कि यह बिना कहे जान कैसे गया ?

"सारसलेक को केबुल करूंगा कि एक आफिस असिस्टेण्डट की सख्त जरूरत है, खन्ना को यहीं रहने दिया जाय।"

जैसे बादलों के घटाटोप को चीरकर सहसा किरणें चमक उठी हों, लच्छू को सामने यूसुफ नहीं, महान् हिमालय दिखाई दिया। बोला : "तुम्हारा एहसान कभी न भूलूंगा।"

"दुत ! इसमें एहसान की कोई बात नहीं, रूस की समाजवादी सरज़मीन पर आकर कोई बेकारी की समस्या से परेशान हो, यह मुनासिब नहीं। माथुर के पहुंचने के तुरन्त बाद ही तुम्हारा सारसलेक पहुंचना जरूर घातक होगा। माफ करना, मैंने तुम लोगों की बातें सुन ली हैं और यह समझ लिया है कि माथुर की कम्पेनियन और तुम्हारी माशूका जब सेन के सेक्रेटरी की बीवी बन जायगी, तब सारसलेक में तुम्हारे लिए पग-पग पर कांटे जरूर बिछ जाएंगे। सेन पॉलि-टीशियन है। वह अपनी और तुम्हारी माशूका को तुम्हारे हाथों से निकाले बिना नहीं रह सकता। उसे इसकी वजह से गलत समझौता करना पड़ा। तुम्हें यहां भेजना पड़ा। आगे वह तुमसे यों दबना नहीं चाहता। उमा को एक जवान भी चाहिए और कानूनी सुरक्षा भी। वह उसे दोनों चीजें देकर तुम्हारा पत्ता काट रहा है। सारसलेक के सामने रहने पर तुम उस बूढ़े के सुकून में, उसकी बुढ़भस के खेलों में खलल डाल सकते हो। बूढ़ा माथुर बूढ़े सेन की इसी कमज़ोरी को उभारकर तुम्हें तबाह कर सकता है। यहां मास्को में रहने पर तुमसे कोई खतरा न रहेगा और इसीलिए शायद वह राजी भी हो जाय।"

टेलीफोन की घंटी घनघना उठी। यूसुफ ने फोन उठाया। माथुर साहब बोल रहे थे : "यूसुफ, खन्ना को आफिस के गेस्ट रूम में रहने को बोलो, उसे गाड़ी दे दो ताकि वह तुम्हारे यहां से अपना सामान ले आये और उसे सोवियत यूनियन घुमाने का प्लॉन भी चाक आउट करो और एग्ज़िक्यूट कर डालो। दो हफ़्ते से ज्यादा की 'टूर' नहीं होनी चाहिए। उसका पासपोर्ट चेकअप के लिए फौरन एथॉरिटीज़ के पास भिजवा दो।"

"जी, बहुत अच्छा।"

नयी व्यवस्था हो जाने के बाद लच्छू अपने कमरे में बैठा हुआ खिड़की से बाहरी दुनिया देखता रहा। इलेक्ट्रिक बसें दौड़ रही थीं, मोटरें आ-जा रही थीं। औरतों-मर्दों की भीड़ से सामने की सड़क हलचल भरी नज़र आ रही थी। चौराहे के उत्तर की ओर एक खूबसूरत फव्वारे के चारों ओर कबूतरों का मेला लगा हुआ था, जो इन्सानों से निडर होकर मस्ती से दाना चुग रहे थे। इन कबूतरों ने उसके मन में भारत की याद जगायी — 'भारत' यानी अपना नगर, अपना मुहल्ला, अपने संगी-साथी। उसे मित्रों की याद आयी और वह चिट्ठियां लिखने बैठ गया। सबसे पहले वह रमेश ही को पत्र लिखने बैठा।

चौदह

यूसुफ की कल्पना के पीछे कहीं मेरा बालमित्र हिदायत तो नहीं ! कैसे आ जाते हैं ये चरित्र ? कैसे सोवियत संघ पहुंच गया ये लच्छू ? अगर मैं प्लाट गढ़ने बैठता तो निश्चय ही लच्छू ऐसे हीनचरित्र के बजाय रमेश ही को भेजता। मगर इस बार कथा-सूत्र मेरे हाथ में कहां है ? रमेश ने रानी के प्रेम में जब सारसलेक की तमन्ना त्याग दी और लच्छू को यहां भेज दिया, तो फिर मेरे बस में बात ही कहां रही। यह तो संयोग की बात है, जैसे जीवन में, वैसे ही कथा में भी।

स्मृति के प्रतिबिम्बों ने लच्छू की रूस-यात्रा के बहाने से अपना नक्शा संजोकर आवश्यकतानुकूल यूसुफ को अपने बीच में उगा लिया। हिदायत से उसका कोई स्पष्ट साम्य नहीं। वैसे दोनों ही साफ़दिल, ईमानदार और परोपकारी हैं। लेकिन मेरा बंधु हिदायत अली (या हजामत अली) तो प्रेम का अवतार है—बड़ा भावुक—जब उद्धत देशभक्त था तब भी और अब अपने वर्तमान सूफी रंग में भी। यूसुफ का माशूक खुदा नहीं हो सकता, लेकिन मेरा हिदायत ईश्वर का मजनू है। काल-प्रभाव से अब उसके जैसी आस्था वाले लोग छीजते चले जा रहे हैं। अगली दुनिया में शायद इस रंग के लोग न होंगे।

हिदायत को मैं अच्छी तरह से जानता हूं, लेकिन आज तक उसकी इस आध्यात्मिक भाव-तन्मयता की गहराई में नहीं उतर पाया। ईश्वर उसके लिए प्राणवल्लभ हैं। वैष्णव भक्तों में पुष्टि-मार्गियों की जो गोपीभाव की आराधना है, वह सूफियों में भी अपने ढंग से प्रचलित है। सूफी संत हिन्दू-मुसलमान जब मिलते हैं, तो उन्हें अपने-अपने ब्रह्म अलग-अलग नहीं दिखलाई देते। हिदायत उसी लीक पर चलनेवाला व्यक्ति है। मेरे देखते ही देखते उसमें यह परिवर्तन आया। सन् '40 के व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन तक उसने राजनीति में सक्रिय भाग लिया। जब जेल में था, तभी मां मर गई। हिदायत दुनिया में यदि किसी से बंधा था तो अपनी मां से। उसके पिता बड़े ऐयाश और जाबिर आदमी थे। उन्होंने न तो अपने घर में और न जमींदारी में ही किसी को सिर उठाने की इजाज़त दी और न दूसरे के सुख-दुःख का ध्यान ही किया। हिदायत शुरू ही से विद्रोही बन गया। वह अपने पिता के क्रोध की कभी रत्ती भर परवाह न करता था। इकलौता बेटा, मां के लिए तो वही सब कुछ था। बाप के क्रोध से उसे बचा रखने के लिए वह बड़े जतन करती थी। जब से यानी कि सन् '21 से, वह राष्ट्रीय आन्दोलन में पड़ा, तब से तो जनाब मंजूर अली खां साहब के क्रोध का पारावार ही न रहा था। उन्होंने हिदायत के घर में घुसने तक पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। हिदायत अपनी मां से मिलने जाता था तो छुपकर। आन्दोलन के दिनों में स्वयं अपने पिता के इलाके में भी आन्दोलन करने से न चूकता था। एक बार तो स्वयं पिता ने ही पुत्र को गिरफ्तार करवाया। हिदायत के पिता मंजूर अली खां साहब शायद इसी

की प्रतिक्रिया में कट्टर मुस्लिमलीगी और हठीले राजभक्त हो गए थे।

अपने पत्नी-बच्चों से भी हिदायत की कभी न बनी। श्रीमती हिदायत के संस्कार ही ऐसे थे, कि वे अपनी आभिजात्य वर्गीयता को कभी एक क्षण के लिए भी भूल नहीं सकती थीं। बाद में उनके चरित्र पर भी हिदायत को संदेह हो गया था। संदेह हो जाने के बाद उसने अपनी पत्नी से देह-सम्बन्ध नहीं रक्खा। एक तवायफ उसकी नौकरी में थी। अभी सात-आठ वर्ष पहले ही वह मरी है।

सन् '42 में उसके पिता का कत्ल हो गया। उन्होंने अपनी प्रजा में से किसी घर की नई व्याही पत्नी को ऐश के लिए एक रात को उड़वा लिया था; उसी ने इनकी हत्या भी की और बाद में वह बहादुर लड़की छोड़ भी दी गई थी। हिदायत तब से ही अपने खेत, गांव सम्हालने लगा। उसने अपने गांवों में अनेक सुधार किए। अपनी खेती पर भी पूरा ध्यान लगाया। सन् '42 के आन्दोलन में जेल जानेवाले अनेक देशभक्तों के परिवारों को हिदायत ने सहायता दी। बढ़ती मंहगाई से खुद मेरे ही घरवालों की रक्षा करने का दायित्व भी उसी ने ले रक्खा था। पत्नी और बच्चे देश-विभाजन के कुछ ही दिनों बाद पाकिस्तान चले गए। इसी गृह-कलह के कारण ही वह क्रमशः बदलता गया और अपनी तवायफ के मर जाने के बाद से उसने अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है। उसकी यह भक्ति, ब्रह्मचर्य मुझे निरन्तर अपनी ओर खींचती तो है, पर···

यह मानता हूं कि कभी-कभी ऐसे अवसर आते रहते हैं जब सहसा ईश्वर या ऐसी ही किसी परमशक्ति का सहारा लेने की इच्छा अनायास ही होने लगती है; अपने आदिम ज़माने के संस्कारवश हम उस परमशक्ति को ईश्वर-अल्ला कह लेते हैं और न सही तो मुहावरे के तौर पर ही उसका नाम ले लेते हैं। लेकिन न जाने क्यों, ऐसे मौकों पर बरबस याद आने वाला ईश्वर मुझे एक बड़ा भारी भ्रमजाल लगता है। धारोंधार डूबता हुआ, हर तरह से असहाय मनुष्य, चाहे वह आजीवन अनीश्वरवादी ही क्यों न रहा हो, कहते है कि जान बचाने की लालच में ईश्वर को अवश्य याद करता है। परन्तु आस्तिकों की इसी बात को हम अपने ढंग से क्यों न कहें कि असहाय डूबते मनुष्य की जूझती जीवनेच्छा उस नए चेतनास्तर को पाने के लिए प्रेरित होती है, जिसके ज्ञान-प्रकाश में वह अपनी जान बचाने की सूझ भरी राह पा ले।

हिदायत कहता है : "अगर मेरे ऊपर ऐसी पड़े तो मैं फौरन ही उस परवरदिगार का शुक्रिया अदा करूंगा, जो कि अपनी दी हुई चीज़ मुझसे वापस ले रहा है, मुझे अपने नज़दीक बुला रहा है। लेकिन तुम अपने दांव पर यह कहोगे कि ऐ इन्सान की पर्दा-दर-पर्दा अक्ल, तू अपनी साइंस की पूरी लेबोरेटरी लेकर फौरन यहां चली आ और मुझ डूबते हुए को बचा ले। औ' न बचा सके तो तुम पर और तेरी औकात पर थूः है।"

"नहीं। मेरी अक्ल यह जानती है कि हर भौतिक रूप नाशवान है किन्तु उसकी चेतना पीढ़ियों के क्रम से चिर विकासशील, अनन्त और ऊर्ध्व गतिगामिनी है। मुझे अपने मरने का कोई गम न होगा, क्योंकि मेरी अक्ल ने जीवन-रक्षा के लिए हर सम्भव उपाय कर लिए और अब इस निश्चय पर पहुंच गई है कि मेरे इस पंचभौतिक रूप के विघटित होने का समय आ गया है। मेरे अन्दर की 'हूं' वाली चेतना अब इस शरीर से चुक जाएगी?" कल शाम से जो यह प्रसंग छिड़ा तो फिर रात के दो बजे तक उठते-बैठते, खाते-पीते इसी पर हमारी बहस होती रही।

हिदायत सत्य के प्रति अपने ईश्वरीय समर्पण को मेरे बौद्धिक समर्पण से श्रेष्ठ मानता है। यह उसका हठ है।···लेकिन इसी हठ के बल पर तो वह कम्बख्त मुझसे जीत जाता है। वह प्रेम-हठीला तानाशाह है। हममें से जो भी इसके निकट आते हैं, इसकी इस तानाशाही से लाख झुंझलाकर भी कभी स्वतन्त्र नहीं हो पाए। बड़ी बेबसी यह है कि कच्चे धागे में बंधे घिसटते चले आते हैं हम। यही बात बड़े पैमाने पर मैं अपने ही आयुकाल में लाखों-करोड़ों को प्रभावित करनेवाले महात्मा गांधी को प्रेमपूर्ण 'तानाशाही' के सम्बन्ध में भी कह सकता हूं।···ये प्रेम का ताना बड़ा अजब है। अपनी भौतिक मर्यादाओं, भावनाओं तक का ऊंचा उठना तो मेरी समझ में आता है। मगर जहां ये समस्त भावनाएं एकमेव प्रेमभाव के रूप में ही प्रकट हों, विकसित हों, जूझें और अपनी जूझ में हर बार छलांग मारकर नई दवाइयों तक अदम्य, अबाध रूप से बिजली-सी कौंधती हुई दौड़कर बढ़ती हों, वहां उनकी शक्ति · क्या कहूं···कुछ अजब अलौकिक हो जाती है। लगता है कि यह तानाशाही स्वयं मैं ही अपने ऊपर कर रहा हूं, करने वाला नहीं कर रहा है।···

मानता हूं प्रेम की स्थिति बहुत ऊंची है, पर आजकल उसे स्वीकार कौन करता है? यह विद्रोह और मासिक विस्फोटों का नया युग है। आज हर पुराने कोहेनूर का भाव घटाया जा रहा है, तब प्रेम ही को उसके सर्वोच्च आसन से क्यों न गिराया जाए?

'अन्बु इलार एल्लाम तमक्कु उरियर अन्बु उडैयार एन्बुम उरियर पिरर्कु।' —तमिल वेद तिरुक्कुरल का वाक्य है—जो प्रेमी नहीं वे अपने स्वार्थ को छोड़-कर और कुछ नहीं जानते। वे अपने ही अर्थ-साधन में लीन रहते हैं, परन्तु जो प्रेमी हैं वे परहित साधन में अपनी हड्डियां तक अर्पित करने को तत्पर हैं।

लेकिन यह प्रेम कम्बख्त तो बड़ा समाजवादी है—यह 'स्व' को 'पर' में लय करता है। कविवर जिगर मुरादाबादी के शब्दों में—"सिमठे तो दिले आशिक फैले तो जमाना है।"

चलो, फिलहाल इसे दिलेआशिक ही में सिमटने दो। लच्छू प्रेमी नहीं, उसकी नायिकाएं उमा, मिसेज रामनायकम् आदि सब 'स्व' तक ही सीमित हैं। हिदायत की याद मेरे मानसिक धरातल को इस समय जहां छू गई है वहां उपन्यास की प्रस्तुत परिस्थितियों में रानी रमेश का प्रेमी जोड़ा ही मेरी कल्पना को बखूबी बांध सकेगा। लच्छू भले ही समाजवादी रूप के दर्शन करने पहुंच गया हो, पर सच्चा समाजवादी रमेश ही है।

युनिवर्सिटी की परीक्षाएं समाप्त हो चुकी थीं। परीक्षाफल निकलने में अभी देर थी। केशवराय की बारहदरी चूंकि नया पुस्तकालय-भवन बनाने के लिए ढाई जा रही थी, इसलिए संघ के लड़कों का सुबह-शाम का अड्डा फिलहाल नहीं रहा था। रमेश इसीलिए सुबह अपने घर ही पर था। छोटे भाई के द्वारा गोडबोले के घर से 'इण्डिपेण्डेण्ट' का उस दिन का अंक उसने मंगवा लिया था और अपनी तिमंजले वाली छोटी-सी कोठरी में लेटा हुआ उसे ही पढ़ रहा था। रमेश की मां और बहन बीच के खन में गृहस्थी के काम में व्यस्त थीं और पुत्ती गुरु धुर नीचे ठाकुरद्वारे में पूजा कर रहे हैं। एकाएक घर के दरवाज़े पर कुंवर रद्धूसिंह रघुवंशी

की गालियां गर्मा उठीं : "कहां है वह हराजादा कमूनिस्ट का बच्चा ? बड़ा ब्राह्मण बना है साला।" इसके बाद पुत्ती गुरू के ब्राह्मणत्व और शराफत पर भद्दी-भद्दी गालियों के गोले बरसाने लगे। द्वारे पर आते-जातों की भीड़ जुटने लगी और थोड़ी ही देर में सारे आलम को यह मालूम हो गया कि पुत्ती गुरू के बेटे रमेश ने कुंअर रद्धूसिंह की बाल-विधवा बेटी रानी का मुंह अपने प्रेम से काला कर दिया है। रद्धूसिंह ने रमेश को आस्तीन के सांप की संज्ञा दी। लोगों को बतलाया कि किस तरह रावण पंडित के बेटे ने कुलीन रघुवंशी की बेटी का मन हरण कर लिया था। उन्होंने अपने डी० एस० पी० कजिन (कोतवाल चचेरे भाई) का नाम ले-लेकर धमकियां दीं। रमेश को सरे बाजार जूतों से पिटवाने की धमकियां दीं।

पुत्ती गुरू का पूजा-पाठ क्रोध के आवेश में छूट गया। पुत्ती गुरू उठे तो थे रद्धूसिंह के तेज़ को 'धिग्बलम् क्षत्रिय बलम्' कहकर अपने ब्रह्म-बल को महाबल सिद्ध करने, पर गली का कलह-काण्ड देखकर वे अचानक शान्त मुद्रा साधकर खड़े हो गए। रमेश अपनी कोठरी से छत पर आ गया। उसे आश्चर्य हो रहा था कि रद्धूसिंह को एकाएक खबर क्योंकर लगी।

दो रोज पहले बहन जी के घर पर रानी से काफी देर तक बातें करने का अवसर उसे मिला था। बहुत-सी बातें जानने को मिली थीं। रानी की सौतेली मां सुमित्रो को रानी और रमेश के प्रेम-सम्बन्ध का पता लग चुका था। सुमित्रो को रानी से पूर्ण सहानुभूति थी। नरसों रात में सुमित्रो ने अपने पति से, उनसे रस-रंग में आने पर, मौका देखकर कहा कि घर में बराबर की लड़की को इस तरह मन मारते देखकर उसे अपना यह सुहाग-सुख अच्छा नहीं लगता। रद्धूसिंह एक दुखभरी ठण्डी सांस खींचकर अपनी दुहाजू पत्नी से इस बात पर सहमत तो हुए, पर बेचारे दीन-धरम और लोकलाज से मजबूर थे। अपने स्वर्गवासी कोतवाल बाप की आबरू का भय उन्हें सता रहा था। खुद भी कीर्तनकार और भगवद्भक्त के रूप में उनकी नगर भर में फैली हुई सुकीर्ति को धक्का लगने की सम्भावना थी। इसके अलावा रद्धूसिंह की बूढ़ी माता को भी ऐसे विचारों से गहरा आघात लगने का अंदेशा था। बेचारे रद्धूसिंह इन्हीं कारणों से अपनी बेटी का पुनर्विवाह करने से हिचक रहे थे, वरना सिद्धान्त के तौर पर उन्हें अक्षतयोनि बाल-विधवा का पुनर्विवाह करना ऐसा कुछ खास बुरा भी न लगता। रानी के भाग्य में यही बदा था, तो फिर किया ही क्या जा सकता। सब परिस्थितियों को देखते हुए उन्हें रानी की वर्तमान व्यवस्था से बड़ा सन्तोष था। सी० टी० करके कहीं मास्टर हो जाएगी। बस फिर वह अपनी रंड़ापे भरी ज़िन्दगी को आसानी से निभा ले जाएगी। अरे, यह भवसागर तो सभी को पार करना पड़ता है। नारायण की दया से बहन जी का सहारा तो मिल ही गया है, सब ठीक हो जाएगा।

पत्नी बोली कि —यह तो सब ठीक है पर औरत के जीवन में मर्द की चाह फिर भी बनी ही रहेगी। रानी के पिता बोले कि मैं मरते समय उसे कसम दिला जाऊंगा। छप्पन बरस का होने आया, सांस का क्या सहारा, रानी घर में रहेगी तो मास्टरी करके अपने भाई-बहनों को पाल तो लेगी।

दुहाजू की ब्याहता, सौतेली बेटी की हमउम्र, सुमित्रो के कलेजे पर सत्य का मुक्का लगा कि ओह, ये अपना स्वारथ सोचते हैं। समवयस्कता के आधारभूत भाव से युक्त अहम् को पति की बात ने उठाकर धम्म से पटक दिया। मन हचक

कर बैठ गया। उसके डूबते हुए मन को उसके कलेजे का आवेश बलपूर्वक ऊपर उबार लाया और वह तड़पकर बोली : "रानी बिचारी अपने बाप का पाप क्यों ढोवै ?"

"क्या मतलब, पाप क्यों ?" रद्धूसिंह ने ऐंठकर कहा। सुमित्रो भी तेज होकर बोली कि जैसे रंड़ुए का पाप वैसे ही रांड़ का भी। रंड़ुआ तो फिर से ब्याह लाता है और वही काम करता है, जिसके लिए रांड़ को अपना मन मारना पड़ता है। और जो कोई बिचारी जवान-जहान रांड़ अपने मन से वेबस होकर वही काम कर बैठे तो पापिन। वाह रे तुम्हारा न्याव।

इस पर रद्धूसिंह एकाएक गरज उठे। कमरे से बाहर, उनकी बात सुनाई पड़ने लगी। बोले : "हमारे धर्मशास्त्र बनानेवाले ऋषि-मुनि बाप-दादों की तरह उल्लू के पट्ठे नहीं थे। आज पीछे यह बात जबान पर न लाना, चेताए देता हूं।"

बाप-दादे तक सुनकर सुमित्रो भी अपनी ठकुरैती पर आ गई, दबे स्वर में तनकर बोली : "अब तुम गरज-गरजकर बोलौगे औ' मेरे बाप-दादे बखानौगे ? अन्याय करोगे और जोम भी दिखाओगे ? ठीक है, मैं भी इसी दम से तुम्हारे पास नहीं सोऊंगी। अब से तुम्हारे पाप में न फंसूंगी।"

सुमित्रो उसी दम बाहर आकर अम्मा, रानी के पास लेट गई। बाबू तब से लेकर सबेरे तक तो सनाका खाए से रहे, दिन में सूने घर में समझाकर कहा कि नादानी न करो, धरम की बात में न पड़ो। भाग्य भी कोई शक्ति है और वह सबका अलग-अलग न्याय करता है···वगैरा-वगैरा। पर नई अम्मां अटल रहीं, बोलीं कि तुम्हारी बात ने मेरी आंखें खोल दी हैं। आज से मैं भी बहनजी के स्कूल में नाम लिखा के सिलाई का काम सीखूंगी। इस पर बाबू फिर गरज उठे, हमारे बाबा का नाम लेकर कहा कि उनकी पतोहू मेहनत-मजूरी हरगिज़-हरगिज़ नहीं कर सकती। इसपे नई अम्मां ने कहा कि अब जमाना बदल गया है, बड़े-बड़ों की बहू-बेटियां पढ़-लिखकर दफ्तरों में काम करती हैं। मैं तो घर बैठ के ही सिलाई का धन्धा करूंगी। बाबू बोले, क्या मैं मर गया हूं जो तुम धन्धा करोगी। नई अम्मां ने कहा कि तुम भगवान करे हजारों बरस जियौ। पर काम तो अब सीखूंगी ही।

"इसपे बाबू ने एक तमाचा मारा ! नई अम्मां ने कहा कि अब दूसरा मारो, तीसरा मारो—तुम मुझे मारते चले जाओ और मैं चलती ही चली जाऊंगी, बहनजी के घर पे जाके ही दम लूंगी। बाबू नई अम्मां का यह रूप देखकर फिर सनाका खा गए। नई अम्मां ने फिर कहा कि दुनिया मुझे नहीं, तुम्हें ही थूकेगी कि घर-घर तो कीर्तन करके भगतई जताते हैं और घरवाली को अच्छे काम के लिए इस तरह मारते हैं। आज जादा दुनिया मेरे साथ है, तुम्हारे साथ नहीं। और नई अम्मां कपड़े बदलकर दादी के पास उनके पोते को लिटाकर, पैर छूकर, बहनजी के घर पहुंच गई। घर में बड़ा तनाव है। दादी और बाबू एक तरफ हैं, मैं और नई अम्मां दूसरी तरफ।"

परसों शाम रानी से यहीं तक कथा सुनी थी। कल बहुत चाहने पर भी रानी से भेंट न हो सकी। वह बहनजी के यहां आई नहीं और उसके घर जाने की हिम्मत उस समय रमेश में थी नहीं। रमेश का मन कल शाम से ही उदास और चिन्तित था। इस समय अचानक अपने दरवाजे पर रद्धूसिंह की गरज सुनकर

उसने यह जाना कि रानी के घर की घटनाएं इन दो दिनों में यहां तक विकसित हो चुकी हैं। रानी—रमेश का रहस्य अब उनका अपना नहीं, बल्कि जग का नाटक हो गया है।

चीखते-चीखते अब कुंअर रद्धूसिंह का कंठ थका और स्वर लड़खड़ाया तो पुत्ती गुरू अपने बेटे की प्रशंसा-भागवत वांचने लगे : "ठाकुर साहब, आप रघुवंशी हैंगे। भगवान रामचन्द्र जी के कुल के हैंगे। यह तो ठीक है पर हम ब्राह्मण हैं, गुरू वसिष्ठ, समझे। हमारे लड़के को एक क्या आसपास के सात मुहल्लों में कोई ऐसा कलंक नहीं लगा सकता, जैसा आप लगाने आए हो हमारे दरवज्जे पे चढ़ के। धिक्कार है आपको और आपकी सभ्यता को। सुनिए सुनिए···क्रोध करना मुझको भी आता हैगा मगर मैं शान्त हूं, जानता हूं कि आजकल की महंगाई के समय में हज़ार चिन्ताओं में फंसा भया जिजमान का मन एक तो यों ही बावला रहता है, फिर ऊपर से जेठ की गरमी पड़ रही हैगी और फिर सर्वोपरि बात ये कि आप ठहरे क्षत्री। आजकल ताव में बावला बनते देर क्या लगती है। रागात् भवतु सम्मोहो मोहात् बुद्धि विभ्रम। सो कहीं अपनी लौंडिया के सन्दूक में किसी और रमेशसिंह की चिट्ठियां पाके धोखे में हमारे रमेश को कलंक लगाने तो नहीं चले आए। ज़रा ध्यान से सोच लेओ ठाकुर साहब एक बार। ठण्डा पानी मंगावें कहो तो ?"

पुत्ती गुरू की बात ने सबको हंसा दिया। रद्धूसिंह हंसी के पात्र बनकर और गर्माए : "आजकल के ब्राह्मन, ब्राह्मन नहीं चमार हैं, बल्कि चमारों से भी गए बीते हैं। मेरी इज़्ज़त बिगाड़कर मुझी को उल्लू बनाते हैं। कहां है आपका रमेस, बुलाते क्यों नहीं उसे ?"

पुत्ती गुरू अब नैक-नैक ताव पर चढ़े, दूसरे लोगों की ओर देखकर बोले : "आप सब गवाह हैंगे, मैं अब तक बराबर शान्त बना भया हूंगा। पर अब ये मतिभ्रम रघुकुल कुलांगार यदि आगे बढ़ा तो फिर इसे 'धिक बलम् क्षत्रियबलम् ब्रह्मबलम् महाबलम्' ही की दुहाई देनी पड़ेगी।···लेओ ये आ गया मेरा रमेश भी, अभी नीर-क्षीर हुआ जाता है बात का।"

तमतमाए चेहरे से रद्धूसिंह की ओर देखकर फिर अपने पिता से रमेश ने कहा : "बात तो ऐसी कुछ नहीं है बाबू, पर जैसा बात का बतंगड़ बनाकर इन्होंने समाज में मेरा और रानी का अपमान किया है, उसका बदला लिए बिना मैं न रहूंगा। आप सब गवाह हैं और मैं इसी समय इन पर अपनी मानहानि का दावा दायर करने जा रहा हूं।"

यहां तक तो बेटे की बात ने पुत्ती गुरू का हृदय-कमल खिला-खिला दिया, पर आगे की बात सुनकर वे ऐसे अचक रह गए कि सबेरे की भांग का नशा और उनका शान्तिपूर्ण विश्वासयुक्त भाव एवरेस्ट की चोटी से सीधा रसातल ही में आकर धड़ाम से गिरा। रमेश बड़ी शान से सधे सतेज स्वर में बोल रहा था : "मैं तो चलाऊंगा ही, रानी से भी आपकी इस क्रूरता पर दावा दायर कराऊंगा। आप आजाद भारत में इस तरह दो शरीफ युवक-युवतियों को, जो कि बालिग हैं, शरीफ आदमियों की तरह विवाह करके अपना संसार बनाना चाहते हैं, इस तरह अपमानित कैसे कर सकते हैं ? मैं कल ही 'इण्डिपेण्डेण्ट' में आपके इस असामाजिक व्यवहार को सामाजिक आन्दोलन बनाकर छपाऊंगा। देखता हूं, आप हमारा क्या कर सकते हैं ?"

लोगों की भीड़ खिसकने लगी। अखबार है, कानून है—नये जमाने वालों के बीच में कौन पड़े। अब तो ये सब कुछ होने ही लगा है। अन्तर्जातीय विवाह भी होते हैं और विधवा विवाह भी। भीड़ को सबसे अधिक असन्तोष इस बात का था कि लोग-बाग न तो रद्धूसिंह ही के पक्ष में कुछ कह सके और न ही पुत्ती गुरू के पक्ष में और इसी बीच में लड़के ने आकर जमाने का तेहा दिखा दिया। सब लोग नए जमाने ही पर कटुक्तियां करते चले गए।

रद्धूसिंह की मानसिक दुम फिर दब गई। मुंहअंधेरे ही जब सुमित्रो की खुशामद के बाद खीझने का दौरा चला तो बातों ही बातों में, बात की जड़, रानी का विवाह-प्रसंग उभर उठा। ज़ोर पकड़ गया। सुनकर रानी भी आवेश में आ गई, उसने दादी-पिता के सामने, नीचे-ऊपर के पड़ोसियों के सुनने की चिन्ता तक बिसारकर साफ-साफ यह कह दिया कि वह रमेश के साथ अपना विवाह करने का निश्चय कर चुकी है। रद्धूसिंह उसी समय दुम दबा गए थे। किसी तेज का सामना करने की शक्ति अब उनमें रह ही नहीं गई थी। गुस्से में बाहर निकल आए। डूबने के लिए नदी की ओर चले, पर पार्क ही में बैठ गए। रह-रहकर उनका क्रोध रमेश ही पर भड़क रहा था और जब उनसे रहा न गया तो क्रोध की बेहोशी में यहां चले आए थे। यहां भी मात खाई। दम टूट गया, निर्लज्जता का कवच पहने खड़े रहे।

पुत्ती गुरू ने अपने जीवन का सबसे बड़ा विश्वासघात पाया था, कुछ-कुछ रुंधे कण्ठ से बोले: "तुमने मुझसे कह दिया होता।" और आंखें पोंछते हुए तुरन्त अन्दर चले गए और किवाड़ बन्द कर लिए।

पिता का यह शान्त व्यवहार खुद रमेश के लिए भी अप्रत्याशित था। उनके गुस्से को वह अपने विद्रोह से जीत लेता। इसके लिए वह तैयार होकर ही ऊपर से नीचे आया था, पर पिता के इस रूप के सामने वह परास्त हो गया। मां-बहन ऊपर के जंगले से लगी मूर्तियों जैसी खड़ी थीं। रमेश की हिम्मत न हुई कि दोबारा आंख उठाकर भी उधर देखे। बन्द द्वार देखकर उसे लगा कि जैसे उसका एक जन्म पूरा हो गया, उसकी सांस एक काया की देहरी से बाहर निकल आयी। शोक का आवेश इतना प्रबल था कि ठहर न सका। रद्धूसिंह और इक्का-दुक्का खड़े हुए लोगों से रुख न मिलाता हुआ रमेश तेज़ी से खन्ना साहब के घर के लिए चल पड़ा।

जिस दिन रमेश का घर छूटा, उसी दिन और प्रायः उसी समय लच्छू उक्रेन की राजधानी कीयेव में अपने लिए एक नया घर पा रहा था। यूसुफ की दोस्त और प्रियतमा वाल्या ने कीयेव में उसके रहने की व्यवस्था अपनी एक सहेली के घर पर कर दी। कीयेव के राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान के पास ही वाल्या की सहेली माया का घर था। लच्छू को हिन्दी भाषा जानने वाली हिन्दोस्तानी नाम की उक्रेनी लड़की सचमुच एक आश्चर्यजनक और आकर्षक अनुभव के रूप में मिली थी। उसके पति निकोलाई कोपिलेंको वहीं राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान की प्रयोग-शाला में काम करते थे। माया एक बड़ी दुकान में नौकर थी और बीमारी के बाद अपने एक पखवारे के विश्राम के दिन गुजार रही थी। उस दिन सुबह जब ट्रेन से वह कीयेव पहुंचा तो पति-पत्नी दोनों ही स्टेशन पर मौजूद थे और उस भीड़ से

उन्होंने लच्छू को फौरन ही पहचानकर अपने साथ ले लिया।

"आप बारत से आने वाले श्री लक्ष्मी नारान खाना हैं। मैं माया हूं, वाल्या की मित्र। ये मेरे पति हैं श्री निकोलाई कोपिलेंको। हम दोनों ही अपने नगर में आपका हार्दिक स्वागत करते हैं।"

"स्पसीबा। बोल्शोई बोल्शोई स्पसीबा।" लच्छू ने रूसी भाषा के चन्द सीखे हुए शब्दों से 'बहुत-बहुत धन्यवाद' देकर पति-पत्नी को आह्लाद-मग्न कर दिया। तब से लेकर इस समय तक लच्छू विदेश में पायी हुई इस निश्छल आत्मीयता के प्रति बिना मोल बिक चुका है। पति नाश्ते के बाद अपने काम पर चले गए थे। यह तय हुआ था कि वे अपने किसी मित्र से गाड़ी का प्रबन्ध कर लेंगे और दोपहर के भोजन के बाद उस नगर की परिक्रमा करा लाएंगे, फिर तीन दिनों के भीतर उसे सुबह-शाम नगर की विशेषताएं दिखलाने के लिए माया और उसके पति उसे ले जाया करेंगे। लच्छू सप्रेम उनके अधीन था।

माया के चेहरे पर, शहरी वातावरण में रहते हुए भी, लच्छू को ठेठ ग्रामीण सरलता की आभा चमकती हुई दिखलाई दे रही थी। बार-बार यह लच्छू के चेहरे को देखती है और उसकी आंखों में सरल उल्लास और स्नेह की किरणें फूट पड़ती हैं, "आपको ये मालुम हो जाना चाहिए मिस्टर खाना—खा-न्ना—

"आप मुझे लच्छू कहें मायाजी, मेरा घरेलू नाम है और मैं सच्चे दिल से कह रहा हूं कि यहां आकर मुझे सचमुच अपना घर मिल गया है। माया मेरी भावज का नाम है।"

"भावज क्या?"

"भाई की पत्नी?"

"भाभी?"

"जी हां, भाभी, भौजी, भावज ये तीनों शब्द एक ही माने रखते हैं। जी हां, तो मेरी भाभी लगभग आपकी उम्र की हैं। मैं उन्हें खूब छेड़ता हूं और वो मुझे खूब खाना खिलाती हैं। मैं अपनी मां से अधिक अपनी भाभी को मानता हूं।"

"ओ! मैं कभी बारत आऊंगी तो आपकी भाभी से अवश्य मिलना चाहूंगी।"

"मैं आपको अपने घर में देखकर बड़ा सुखी होऊंगा मायाजी, और आपके इस हिन्दुस्तानी नाम पर तो हमारे घर की स्त्रियां बेहद मुग्ध हो जायेंगी। आपकी भाषा में माया के क्या अर्थ हैं?"

"कूछ नहिं और हिन्दी में इसके क्या अर्थ हैं, लच्छू जी?"

"ये, ये—माया हमारे यहां ईश्वर की शक्ति मानी जाती है जो इन्सान में प्यार, ममता, मोह जगाकर उसे ईश्वर से दूर रखा करती है।"

"ओऽओ! तब तो मैं ज़रूर माया हूं। मैं इन्सान में प्यार, ममता जगाना चाहती हूं। हम कम्यूनिस्त लोग ईश्वर को नहीं मानते। हम मनुष्य को प्यार करते हैं, उसको हर तरह से सुखी और उन्नतिशील बनाना चाहते हैं।"

"अच्छा, क्या सोवियत यूनियन में कोई भी ईश्वर को नहीं मानता?"

"नहीं बहौत-बहौत से लोग हैं। गिरजाघरों में भी जाते हैं लेकिन पुरुषों का ईश्वर से कोई काम नहीं। हमारा सोवियत-समाज ही उनका ईश्वर है। ये सारी दुनिया, शान्ति और उन्नति का प्रयत्न—ये, ये ईश्वर है।"

"लेकिन अभी तो आपने कहा था कि पुरुष लोग गिरजाघर जाते हैं।"

"जाते हैं, जाते हैं। कोई रोक-मना नहीं, लेकिन जो लोग बूढ़े हैं, पेन्शन पाते हैं, उनमें ईश्वर की भक्ति है। स्त्रियों में बी है। मेरी मां खूब बजन करती है।"

"और आप।"

"मैं बजन नहीं, काम करती हूं। लेकिन-लेकिन, मुझको ईश्वर की बात—कि—कि—कि—का भाव अपने मन में अच्छा लगता है।"

"क्यों अच्छा लगता है?"

"मैं नई बतला सकती। स्त्रियों का दिल शायद ऐसा होता है—"

"कैसा होता है?"

कोमल होता है, स्त्री मां होती है और मैं समझती हूं ईश्वर भी ऐसा ही होता है। मैं, मैं ईश्वर के बारे में कुच्छ नई जानती, कूच्छ बी नई जानती। वो मुझे कहीं प्यारा लगता है, बस।"

लच्छू के मन की आंखों के सामने अपने शिव, गणेश, पार्वती, हनुमान, राम-कृष्ण आदि तेंतीस कोटि देवी-देवताओं की अनन्त स्पष्ट, अस्पष्ट प्रतिमाएं मानो गट्ठर-सी आकर बिखर गयीं। और उसे अपने इस आन्तरिक अनुभव से अचानक बुरा लगने लगा, बोला : "हमारा देश ईश्वर को बहुत मानता है। सबेरे से रात तक पवित्र नदियों में नहाता, पूजा करता और घण्टे-घड़ियाल ही बजाता रहता है। लेकिन वह ईश्वर आज तक हमारा कुछ भी भला न कर सका। न वो हमसे इतना काम करा सका, जितना आप लोग करते हैं। न वो हमें उस तरह से साक्षर बना सका जैसा कि आपने अपने समाज को बना लिया है। और न ईश्वर ने हमसे ऐसी सुन्दर और उन्नतिशील नई दुनिया ही हमारे वास्ते बनवाई, जैसी आपने अपने लिए बना ली है। मैं अपने ईश्वर से नफरत करता हूं मायाजी।" लच्छू का मन उस समय सचमुच गहरे अवसाद से भर उठा था।

पिछले चार दिनों में वह अपने-आपको एक ऐसी दुनिया में पा रहा था, जिसकी कभी कल्पना भी उसके मन में नहीं आई। अपने नगर-मुहल्ले की कीचड़-गन्दगी और बदबू भरी गलियां, दीवारों पर लिखी हुई भद्दी गालियां, द्वारे-द्वारे होने वाली औरतों, मर्दों, बच्चों की कलह, निष्क्रियता और असार्थकता से भरा हुआ जन-जीवन उसे अन्दर चुभ रहा था। सोवियत यूनियन का वैभव मानो पेंचकस के समान था, जो उसकी चेतना के काठ में धंसता चला जा रहा था। इस समय माया के पास बैठ कर उसका परायापन दूर हो चुका था, उसका हिन्दुस्तानी नाम, उसका हिन्दी बोलना और सबसे बढ़कर उसका निर्मल और सहज स्नेह-ममता भरा व्यवहार उसे एक भरोसे भरे वातावरण में अपने मन की बात कहने के लिए प्रेरित कर गया। उसके तुरन्त बाद ही एकाएक उसकी यह इच्छा भी होने लगी कि राम करे, माया इस प्रसंग को आगे न बढ़ाये। लेकिन माया ने पूछ ही लिया, "आप अपने समाज को बदलने का प्रयत्न क्यों नहीं करते?"

"जी, कर रहे हैं हम लोग।" लच्छू सावधान होकर बोला : "प्रयत्न हो रहे हैं। हमारे प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू हिन्दुस्तान को नया बनाने के लिए बहुत कुछ कर रहे हैं, लेकिन अभी हमारे यहां बहुत कुछ काम करने को बाकी है। अभी कुल जमा तेरह-चौदह बरस ही तो हुए हैं हमारी स्वतंत्रता आये हुए।" लेकिन इसके बाद से लच्छू का मन आमतौर पर समाज के पिछड़ेपन से घुट और तप रहा था। सोवियत समाज की उन्नति उसे चुनौती-सी लगती थी। हम क्यों नहीं ऐसा कर सकते, हम क्यों नहीं ऐसा कर रहे? हमारे यहां तो लूट है,

मुनाफाखोरी है, क्षुद्र स्वार्थ है और इन पापों को झुठलाने के लिए—'क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव भोः श्री महादेव शंभो' का ढोंग भी है। गले काटेंगे फिर अखण्ड रामायण भी करेंगे। तीसों दिन आठों पहर झूठ बोलेंगे और पूर्णमासी के दिन सत्यनारायण की कथा बंचवाय के स्वर्गलाभ करेंगे। ढोंगी-अधर्मी कहीं के···हाय ये सब कैसे बदल जाए ?···अकस्मात् कुछ रोज पहले सारसलेक में डॉक् साहब और सेन साहब के बीच होने वाली बातों में से एक बात उसके ध्यान में उभर आई। एक बड़े सूर्यग्रहण के मौके पर सुप्रसिद्ध दार्शनिक आलडुअस हक्सले काशी में मौजूद थे। उसने देखा कि लाखों लोग गंगाजी में खड़े-खड़े नहा-धो रहे थे, जप कर रहे थे। खासी सर्दी का दिन था वह। हक्सले ने लोगों से पूछा, लोगों ने उन्हें बताया कि भगवान् सूर्यनारायण को छूने के लिए म्लेच्छ राहु-केतु दौड़ रहे हैं और भगवान् को इन म्लेच्छों से मोक्ष दिलाने के लिए ये हिन्दू भक्त तपस्या कर रहे हैं। हक्सले ने इस प्रसंग को अपनी किताब में लिखते हुए यह प्रश्न उठाया कि जो लाखों लोग आसमानी सूर्य भगवान् की मुक्ति के लिए इतनी कठोर तपस्या कर सकते हैं, वे स्वयम् अपने-आपको ब्रिटिश दासता से मुक्त क्यों नहीं कर पाते ? डॉक् साहब से सुना हुआ हक्सले का यह मन्तव्य उस दिन तो खाली लच्छू को एक धक्का भर ही दे गया था, पर आज वह एक सवाल बनकर उसके सामने चुनौती-सा खड़ा हो गया। हिन्दुस्तान इहलोक से अधिक परलोक में रहता है, यथार्थ सत्य को अस्वीकार कर कल्पित सत्य को भजता है और सच पूछो तो वह ईश्वर को नहीं भजता। आस्तिक भारत से कई लाख गुना अधिक यह नास्तिक रूस ही ईश्वर का सच्चा पुजारी है।

रानी-रमेश के विवाह की सूचना ने रमेश की मित्र मण्डली में एक नई उमंग उठा दी थी। खन्ना साहब के यहां से उनका विवाह होने वाला था जिसमें स्वयम् डॉक्टर आत्माराम आने वाले थे। बहनजी रानी का विवाह करके अपने मन की हौंस पूरी कर रही थीं। निःसन्तान होने के कारण उनके यहां किसी शुभ-प्रसंग के बहाने कोई बड़ा सार्वजनिक समारोह आज तक हुआ ही न था। खन्ना साहब ने सभी मन्त्रियों, अफसरों, न्यायाधीशों, प्रोफेसरों, लेखकों, पत्रकारों आदि लगभग डेढ़ हज़ार गण्यमान्यों को अपनी एक धर्मपुत्री रानी के विवाह का न्योता भेजा था। शादी रजिस्ट्री कानून से होगी और पुरोहित स्वयम् डॉक्टर आत्माराम होंगे; न मन्त्र, न पूजा-पाठ, और इसी को लेकर गली-महल्लों के समाज में थोड़ी-बहुत चख-चख भी चल पड़ी थी—'धरम-करम सब खतम करके कमनिस्टी फैलाय देंगे ये लोग। अरे, इनसे अच्छे आर्यसमाज वाले रहे। जांत-पांत चाहे न मानें पर हवन, पूजन तो करते रहे।'

पुत्ती गुरू चार दिनों तक घर से बाहर न निकले। पहले दिन तो उन्हें किसी को भी अपना मुंह तक दिखलाने की इच्छा न हुई। पत्नी तक से नज़र मिलाकर बात करने में उन्हें संकोच हुआ था। नीचे दरवाजे उड़काके आए और सीधे घर के तिखण्डे पर चढ़ गए। जाकर सायवान में खटिया के ऊपर पड़ रहे। पत्नी ने आकर कितना-कितना समझाया पर न श्री न कृष्ण, मुख से कुछ बोले ही नहीं। मुंह पर अंगौछा डालकर खटिया पर लेटे रहे। पत्नी जब बहुत रोई-गिड़गिड़ाई, तो मुख मूंदे ही बोले : "अब कौन मुंह दिखावैं तुम्हैं। लड़की करती तो तुम्हारे

संस्कारों की खोट निकालता, पर यह तो सब मेरे पापों का नतीजा है।" पत्नी ने फिर कुछ कहा तो बोले : "जाओ, हमें न छेड़ो इस समय। मेरे मन की लू को तन पर सही जाने वाली लू ही दबाय सकती हैगी। ब्राह्मण तपस्या करके ही सिद्धि पाता है। क्या कहैं इस कुलांगार मेरे इष्टदेव ही के कुल में यह अधर्म किया···। तुम जाओ, हमारा अंगौछा सूख गया हैगा सो गर्मी में सांस घुटत हैगी। तुम जाओ तो हम अपना मुंह खोलैं।" पत्नी अपने हठीले धनी को जानती थीं, चली गयीं। नीचे से एक छोटी बाल्टी पानी लाकर जब ऊपर पहुंचीं तो हठात् नजरों का आमना-सामना हो गया। पण्डित ने झट अपनी आंखें मीच लीं। घर वाली ने कहा: "अंगौछा भिगोय लिया करना।

कई सम्बन्धियों-पड़ोसियों की स्त्रियां दौड़ी-दौड़ी आईं। कुछ से उनकी मुठ-भेड़ हुई, हाय रानी ईका सुन रहे हैंगे। रमेस उस ठाकुर की रांड बिटिया···"

"हां रानी, सो तो जैसे तुमने सुना वैसे ही आज हमने भी सुना।" रमेश की मां रूखे स्वर में बोलीं।

"तो बहुत दिनन से पिरेम चल रहा होयगा ?"

"अब मुझे क्या खबर। आजकल के जवान लड़के बिटियन के पीछे-पीछे क्या मां-बाप डोलत फिरत हैंगे कि सब जानैं।"

"तौ रानी-रमेस फिर अब इस घर में तो न रहेंगे।—कि रक्खोगी घर में रांड़ सुहागिन को ?"

इस शब्द से रमेश की मां के इत्ते-पित्ते भड़क उठे, हाथों की उंगलियां और आंखें नचाकर बोलीं : "वो काहे की रांड़। कहै वाली होयगी रांड़। अब तो जैसी भी है मेरी होने वाली बहू हैगी। उसे कोई एक कहेगा तो मैं हज़ार सुनाऊंगी—।"

रमेश की मां में भीड़ से सामना करके खुलाव आ गया था। पहले का अवसाद अपनी नयी जोशीली मान्यता से हल्का पड़ा था। पर अपने पति की चिन्ता उन्हें थी। हठी हैं, जाने कुछ कर ही बैठें। गम का धक्का गहरा बैठ जाय ? पति की चिन्ता के आगे वह सब कुछ भूली थीं। दोपहर तक वो सात-आठ बार ऊपर आईं। पानी पिलाने के बहाने, पान खिलाने के बहाने और दो बार अंबिया का पना लेकर। पुत्ती गुरू कभी आंखें फाड़े उतान लेटे हुए मिले, कभी बैठे या सायबान में खड़े आकाश से बातें करते हुए; कभी गुम-सुम घुटनों में मुंह दबाए। पत्नी की इस नेह भरी, सेवा भरी आव-जाव से धीरे-धीरे उनका संकल्प ढीला पड़ा। सायबान की जाली से बराबर चलते आ रहे झोंकों को सहते-सहते उनके पीले शरीर की कांति खड़िया ऐसी चमकती थी। आंखें सूखीं, मुंह सूखा और तन तो सदा का सूखा था ही। लगभग साढ़े बारह एक बजे जब रमेश की मां कुल्हड़ में पना लेकर और उस गीले अंगौछे से ढंककर आईं तो पुत्ती गुरू जालियों में दोनों हाथों की उंगलियां फंसाए खड़े मानो लू के झोंकों से मोर्चा साध रहे थे। रमेश की मां पीछे आकर खड़ी हो गईं, पर उनका ध्यान भंग न हुआ। रमेश की मां बोली : "सुनत हौगे।"

रमेश के पिता ने मुड़कर देखा। पत्नी की आंखों में इन्हें इतनी करुणा, इतनी मैत्री, इतना प्रेम मिला कि आंखें उनसे बंध गईं। पत्नी के कन्धे पर हाथ रखकर बोले : "रमेश की अम्मा, अब क्या होयगा ?"

"होयगा क्या, कुच्छौ नईं। अरे अब आए दिन तो ऐसे नए मते के ब्याह होत रहत हैंगे। अरे तुमहीं ने इधर चार-पांच बरसन में कित्ते ब्याह ऐसे गैर जात-

बिरादरी वाले कराए। ई कोई नवाई थोड़े भई है हमारे घर में ?"

"अरे इसमें कोरी गैर जात ही का तो प्रश्न नहीं हैगा। ससुर करेला और ऊपर से नीम चढ़ा। करम फूटी विधवा से ब्याह करेगा। सर्वोपरि भगवान् रामचन्द्रजी के कुल में ये अधर्म का बीज बोया हैगा इस कुलांगार ने···क्या बतलावें ! मेरे दो बेटे-बेटी ब्याहने को बैठे हैंगे। रामजी ने इस पाप का दण्ड देने के लिए कहीं मेरे सुरेश और मेरी पन्नों की मतियां भ्रष्ट कर दीं तो मेरा क्या होयगा ? अरे जो कहीं मलेच्छ मुसलमान, किरिस्तान के घर से मेरी दूसरी बहुरिया या दामाद आय गया, तो मेरा क्या होयगा ?" कहकर फटी-फटी आंखों से लखौरी वाली दीवाल को देखने में खो गए। मुंह से लू जैसी गर्म उसांस छूट पड़ी। आंखें एकदम खुश्क रहीं।

रमेश की मां का कलेजा यह बात सुनकर काठ हो गया। कुछ क्षणों के लिए पति-पत्नी के बीच में गहरा घुटन भरा सन्नाटा छा गया। पत्नी एकाएक अपने मन से सब कुछ हटाकर पति को सान्त्वना देने के लिए सजग हो गई, बोली : 'अच्छा हमरे कहे से तुम दुइ घूंट पने के पी लेव तो हमरा जी खुस हो जाय।···सुनत हौगे, पीलेव।' पत्नी पति की छाती से सटकर खड़ी हो गई। कुल्हड़ से अंगौछा हटाकर अंगौछा वाला हाथ पति की पीठ पर रखकर दूसरे से कुल्हड़ उनके होंठों से लगा दिया। पुत्ती गुरू स्नेह-विवश दूध पीते बच्चे से, पत्नी की मातृत्व भावना के आगे भोले भाव से नत हो गए। पत्नी ने पना पिलाया, अंगोछे से अपने पति का मुंह पोंछा, फिर जमीन पर कुल्हड़ रखने के लिए शरीर को दाहिनी ओर झुकाती हुई बोली: "हमैं न लड़का से मोह हैगा, न बिटियन से। जो जिसकी समझ में आवे करै, जो जिसके भाग में होय सो भोगै। हमाए लिए तो, ठाकुरजी करें सब तरियों से तुम नेक-नीके रहौ, बस! तुमाई गोदी में सिर रखके धन-धन चली जाऊं, बस!"

पण्डित पुत्तीलालजी अब अपनी जीवन-संगिनी के वश में आ चले। खाना तो न खाया पर नीचे चले आए। पत्नी ने धुर नीचे के ठाकुरजी वाले दालान में सबसे अधिक ठण्डक होने के कारण खटिया बिछा देने का प्रस्ताव किया, पर रामजी के पास तक जाने की हिम्मत अभी उनमें न आई थी। बोले, "यहीं लेटेंगे।" बेटी पन्नो की ओर आंख उठाकर भी न देखा। वह कमरे में सो रही थी, इसलिए बोले कि चौके वाले दालान में सोएंगे। वहां जादा ठण्डक है। पत्नी ने वहीं प्रबन्ध कर दिया और बैठकर पंखा झलने लगीं। पुत्ती गुरू को एक झपकी भी आ गई। शाम को पत्नी ने भांग भी पने ही में दी और रात को दो तरकारी, चटनी और पराठे, आधे पाव पेड़े और छटांक भर मलाई का सकोरा थाल में सजाकर जब सामने लाईं, तो उनका विजया-रस-रंजित मनुआ डोल गया। दिन भर के भूखे थे इसलिए भूख भी कसकर लग आई। जब तक भोजन करते रहे सुखी रहे और जब उससे खाली हुए तो फिर दुःखी हो गए। पूरे चार दिन में—उनका ये दुःख राम-राम करके समाप्त हुआ। चौथे दिन नहा-धोकर रामजी की पूजा करने उतरे। डबल गोला चढ़ाने के बाद भी रामजी, उनकी अखण्ड सौभाग्यवती पत्नी और महातेजशाली क्रोधी अनुज के प्रति उनकी भय-भावना कम न हुई थी। पूजा वाले कोठे की दहलीज पर पांव रखते ही उन्हें सहसा ऐसा लगा कि सवाफिटिया हनुमानजी की मूर्ति अति विशाल होकर सिंहासन वाली सीढ़ियों से गदा ताने हुए झपटकर उनकी ओर बढ़ रही है। घबराहट में गुरू के हाथ-पैर सनसना उठे, अंगोछे की कांछ खुल

गई, गले में घिग्घी बंध गई। आंसू भरी आंखों से जगदम्बा की मूर्ति को निहारकर प्रत्यक्ष से अधिक, अपने ध्यान ही में निहारते हुए 'मैया पाहि माम्' कहते हुए धड़ाम से सिंहासन की सीढ़ियों पर अपना मत्था टेक दिया।···मन की भयावली लहर उतरी और जगदम्बा के चरणकमलों का भरोसा भंग की तरंग पर सवार होकर आगे धाया। आंखें खोलकर सीताजी की मूर्ति की ओर देखा। ऐसा लगा कि मैया प्रसन्न हैं, फिर रामजी की मूर्ति की ओर देखा, फिर लक्ष्मणजी की ओर और अन्त में हनुमानजी तक को देख डाला। सब ओर अमन-चैन था। रामजी, जानकीजी उन्हें अभय दे रहे थे। लक्ष्मणजी के चेहरे पर क्रोध के बेरुखेपन का कुछ-कुछ आभास उन्हें अब तक हो रहा था, लेकिन भय की कोई बात न थी। हनुमानजी अपने सिंदूरी चोले और मीने की चमकती हुई आंखों में मूर्तिवत् ही खड़े थे। गुरू एकदम निरापद थे। खुशामदी गद्गद स्वर में चन्दन घिसते हुए गाने लगे—"कबहुंक अम्ब अवसर पाइ।" बहरहाल थोड़ी ही देर में पुत्ती गुरू भगवान् श्री रामचन्द्रजी से अपना समध्याना नाता जोड़ने लगे। रमेश जो ये रद्धूसिंह की लड़की से विवाह कर रहा है, तो उसमें रामजी ही की कोई इच्छा अवश्य होगी। राम की इच्छा के बिना तो पत्ता तक नहीं डोलता और फिर ब्राह्मण को तो चारों वर्ण की कन्याओं से विवाह करने का अधिकार प्राप्त है—"बोल सियाबर रामचन्द्र की जय शरणम्।"

कुंवर रद्धूसिंह ने एक दिन के लिए भी अपना मुंह किसी से न छुपाया, बल्कि आठों पहर मन के क्रोध की उबलन में वे अपने आपको जिन्दा शहीद समझते रहे। रमेश के घर के द्वारे पर गाली-गलौज कर आने के बाद जब घर आए तो देखा, उनकी माता सामने वाले दालान के खम्भे से टिकी बैठी हुई मौन आंसू बहा रही थीं। घर में और कोई भी न था। मां से पता चला कि रानी बहनजी के यहां चली गई और अब वह न आएगी। सुमित्रो खाना बनाकर ढंककर अभी-अभी स्कूल गई है। रीतू-सीतू कहीं इधर-उधर पड़ोस में होंगी। मां-बेटे दोनों पास-पास बैठकर अपनी फूटी तकदीर को रोते रहे। खन्ना और बहनजी इस समय दोनों के जनम-जनम के बैरी हो रहे थे। दोनों ही को, खास तौर पर बूढ़ी मां को अपने स्वर्गवासी कोतवाल पति की तीखी याद सता रही थी। वो होते तो घर की इज़्ज़त कोई इस तरह ले सकता था? अपने बेटे से भी शिकायत थी, जो अपने आपको एकदम बहू के बस में कर चुका था। अगर शुरू ही से रद्धूबाबू कड़ाई से काम लेते, तो भला आज उसकी मजाल थी कि इस तरह हठीली बन जाती। ये सारे बिख के बीज उसी के बोए हुए हैं। उसी ने रानी को इस ब्याह के लिए उकसाया है। लेकिन रद्धूबाबू यहां अपनी मां से सहमत न थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि रमेश ही इस सारे पाप-काण्ड की नींव है। बहनजी और खन्नाजी चूंकि नये नास्तिक मत के हैं, इसलिए वो ऐसे कामों को बढ़ावा देते हैं और इस्कूल-विस्कूल सब जवान लड़के-लड़कियों को फंसाने के अड्डे हैं। रानी तो खैर ब्याह करके छुट्टी पा जाएगी··· पर ये सुमित्रो भी ज़रूर ही किसी की जवानी का बूता पाकर मुझे ठेंगा दिखा रही है। जानती है, मैं कर ही क्या सकता हूं। मेरी जीउका तक जिन बहनजी के अधीन है, वे ही उसकी संरक्षिका भी हैं। 'अरे मैं ऐसी जीउका को लात मार दूंगा। रघुवंशी क्षत्री का बेटा हूं। हमारी नाक सदा झण्डे से ऊंची ही फहराती है और ऐसे ही सदा

ऊंची उठी रहेगी। रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहिं पर वचन न जाई।' ···उसी दिन अपना इस्तीफा लिखकर रीतू के हाथ बहनजी के पास भिजवा दिया और जहां-तहां भगतों, परिचितों की मण्डली में खन्ना, बहनजी, रमेश और अपनी दुहाजू पत्नी सुमित्रो की निन्दा करते डोलने लगे।

ख़बरें बहनजी और खन्ना तक पहुंचीं। खन्ना ने रद्धूसिंह को बुलवाया, पर वे न गए, बल्कि अकड़कर और भी उबल-उबलकर निन्दा करने लग गए। पांचवें छठे ही दिन उनके चचेरे भाई, शहर कोतवाल ने उन्हें बुलवाकर एक पन्द्रह मिनटिया मिर्चौना लेक्चर पिला दिया : "चुन्नूराजा, क्या खुराफात कर रहे हो जी ! अपनी बेवकूफियों के कारण अपना जीवन तो बरबाद कर ही चुके, अब दूसरों का भी करना चाहते हो। तुम्हारी भगतबाजी से तुम्हारे घर वालों का पेट भरेगा? और तुम्हारी लड़की अगर शादी कर रही है तो क्या बेजा काम कर रही है ? खबरदार, जो आज पीछे तुमने किसी के आगे मिसेज खन्ना की बुराई की इस मामले में। शहर में उनकी क्या इज़्ज़त है, जानते हो ?"

रद्धूसिंह की मानसिक दुम एक बार थोड़ी-थोड़ी तनी; कुछ गुर्राकर बोले : "अभी तुम्हारी लड़की जो इस तरह से तुमको ठेंगा दिखा के ब्याह करती—"

"वो कर ही रही है शादी अपनी मर्जी की। हम सब जानते हैं।"

"समरथ को नहिं दोष गुसाईं। समाज के बड़े लोग ही तो ये सब भ्रष्टाचार—"

"मुझे आपकी बकवास सुनने की फ़ुरसत नहीं है चुन्नूराजा। मैं तुमको सावधान किए देता हूं कि अगर तुमने अपनी पत्नी को काम सीखने से रोका या गलियों में खड़े होकर ऐसी बकवास की, जैसी आजकल तुम कर रहे हो तो याद रखना, मुझसे बुरा कोई नहीं होगा, समझे ! जाओ।"

कुंअर रद्धूसिंह दुम दबाकर लौट आए। तब से अन्दर ही अन्दर कण्डे की तरह सुलग रहे हैं। घर काटने को दौड़ता है, क्योंकि सुमित्रो सास के पास सोती है; उनसे बोलचाल तक बन्द है और रानी बहनजी के यहां है। मां चिड़चिड़ी हो गई हैं, वे या तो बोलती ही नहीं और जब बोलती हैं तो मानो पत्थर मारती हैं।

रानी के ब्याह के दो दिन रह गए हैं। आज सुबह रद्धबाबू जांघिया-बनियाइन पहने नीम की दातून चबाते हुए अपने दरवाजे के सामने गली में खड़े थे। उसी समय बैजू लाला भी दांतों को दातून से घिसते हुए आए। नौकर उनके पीछे एक लोटा पानी और तौलिया लिए चल रहा था। रद्धूबाबू ससम्मान खड़े हो गए : "जय रामजी की लालाजी।"

"अरे जयरामजी की रद्धूबाबू। परसों तो तुम्हारी लड़की की शादी है।"

"हमको तो शक है लालाजी कि वह हमारी लड़की है।" रद्धूबाबू ने ज़रा तनकर उत्तर दिया।

बैजू लाला हंसे, बोले : "अरे क्यों-क्यों भाई ? आओ अन्दर चलो हमारे साथ।" कहते हुए रद्धूबाबू की पीठ पर बांह रखकर उन्हें अन्दर की ओर बढ़ा ले चले और फिर पूछा : "क्या बात है ?"

"बात-वात कुछ नहीं लालाजी, भगवान श्री रामचन्द्रजी के कुल की कन्या धरम के खिलाफ काम करे, ये हो ही नहीं सकता। मर गयीं उसकी मां, वरना अभी खड़े-खड़े कबुलवाय लेता।"

बैजू लाला फिर हंसे और उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए बोले : "अमा, लाभ

क्या इन बातों के करने से। तुम्हारी ही कमजोरी साबित होगी और अब तो येई सब आजकल धरम हैगा, इसमें हरज ही क्या है जी ।···तो चलौगे ना ब्याह में ? तुम्हारा तो नाम छपा हैगा कारड में।"

"जी हां, आया है कारड मेरे पास भी।"

"अरे रद्धूबाबू, ये समझ लेव की डॉक्टर आत्माराम और हमारे अनंदो खन्ना का मामला है। हमने सुना हैगा डेढ़ हज़ार इनविटेशन कारड बंटे हैंगे।"

"डेढ़ हज़ार नहीं, डेढ़ लाख बंटे, हमारा तो सच्ची मानिए लालाजी, इत्ता कलेजा पक गया है कि जी चाहता है जिस दम इनका ब्याह होय, उसी दम जाके कुएं में डूब मरें। हमारे पुरखे भगवान श्री रामचन्द्र दुखी होय के अन्त में डूब मरे थे, हम भी यही करेंगे। बस अब संसार में कुछ नहीं है लालाजी !" रद्धूबाबू आंगन में खड़े-खड़े ये बातें इतने ज़ोर से कह रहे थे कि ऊपर उनकी मां और सुमित्रो के कानों तक में पहुंचे।

"अमा क्या बेकार की बातें करते हौ जी, रद्धूबाबू। ये तो सब चलता हैगा। और रही अनन्दो की बात, सो इनके खानदान में आज से नहीं, बड़े पुराने जमाने से यही धन्धा होता चला आया है। अरे, हमको इनकी सत्रह पीढ़ियों का हाल मालूम हैगा हमारा ही तो कुनबा हैगा भाई। जो इनके पुरखे सो हमारे।"

"अच्छा !" अपना दुःख बिसारकर पराई निन्दा में रद्धूबाबू का रस जागा, बोले : "ये बात है।"

"ये घर हमने इनके बाप से तस्फिये में लिया था। हमने उनको वो पिलाट दिया, जिस पर आजकल उनका घर हैगा और ये घर लै लिया।"

"अच्छा !"

"हां ! हमारे पास सत्रा पीढ़ियों का सिजरा है। अकबर बादशाह के जमाने में हमाए पुरखे लाहौर से यहां आए थे।"

रद्धूबाबू लालाजी की बतरस में वह चले। दातून-कुल्ला करने के बाद रद्धू बाबू लाला के साथ ही उनकी बैठक में चले गए। नाश्ता करते हुए बैजू लाला ने एक अत्यन्त रोचक कथा सुनाई—"अकबर बादशाह के जमाने में शेख अब्दुल रहीम लखनऊ के सूबेदार थे। बादशाह उन्हें बहुत मानते थे। कहते हैं कि बड़े ही आलिम-फाजिल हकीम थे। बस उनमें दो कमजोरियां थीं। एक तो उन्हें हरदिन एक नई औरत चाहिए थी, और दूसरे, पीने-पाने के मामले में भी बड़े अगड़धत्ती थे, सो हमारे जो पुरखे थे, सो उनके साथ लाहौर से यहां आके बस गए थे। उन्होंने सूबेदार को अपनी ओर राजी करने के लिए एक बड़ा गन्दा काम किया। कहते हैं कि उनके पड़ोस में एक बड़े भारी आढ़तिए और जमींदार, एक पण्डितजी रहा करते थे। वो बेहद जबर, घमण्डी और बेईमान थे। उनके बड़े भाई की एक विधवा थी, जवान-जहान, नाम था किशना, औ' कहते हैं कि ऐसी सुन्दर कि देखो तो गश आ जाय। खैर, तो वह पण्डितजी भाई के मरने के बाद उनकी जोरुवा को अपने बस में करने की तरकीबें करने लगे, मगर वह उनके चंगुल में फंसी नहीं। पंडितजी ने उसे बड़ा-बड़ा दुःख दिया। हमारा घर उनके पड़ोस ही में था। किशना महराजिन किसी तरह छिप-छिपाकर हमारे यहां आ गई और हमारी पुरखिन के आगे रोई-धोई, कहा कि सूबेदार से कहो कि हमैं अपने देवर से एक घर दिलाय दें और हमाए रोटी-कपड़े के लिए गुजारा दिला दें। हमारी पुरखिन ने हमारे पुरखे को बताया। पुरखे ने जब यह सुना कि बड़ी खूबसूरत और जवान औरत है,

तो सूबेदार को पेश करने की तरकीब की। जाके उनसे कहा कि शेखजी, ऐसी-ऐसी औरत है, और ऐसी उसकी फरियाद है ! आपके यहां आ नहीं सकती, जो हमाए यहां आप पधारें तो उसे आपके पास पेश कर दें। औरत का मामला, शेख जी ने दूसरे ही दिन शाम को आने के लिए उनसे कह दिया। अब भैया, सूबेदार आए तो चारों ओर बड़ा दबदबा बैठा। फिर हमाए पुरखे ने महराजिन से कहा कि राजा से फरियाद करने में कोई लाज, संकोच नहीं होता है, तुम उनसे आप अपनी बिथा कह लो। और बिथा कहने-सुनने में दोनों के दिल एक हो गए। शेख जी पर उस महराजिन का जादू ऐसा चढ़ा कि फिर कोई औरत ही उसके मन पर न चढ़ सकी। हमाए पुरखे ने महराजिन को उनके घर से भगाने में मदद दी और किशना महराजिन खुले आम शेखजी के साथ रहने लगीं। बाद में वो ऐसी दबंग औरत हुई कि घर बैठे पूरी रियासत का काम चलाती रही औ' हमाए पुरखे जो थे उसके कारिन्दे थे। इस तरह हमाए पुरखे की तकदीर खुली। सो वही अब नई चाल से अनन्दो कर रहे हैंगे।"

"तो अबकी हमाई लड़की का ब्याह कराय जो ये चाहैं कि लालाजी, इनकी तकदीर खुलैगी सो नहीं होयगा। एक तो भगवान के कुल में दाग लगाय रहे हैंगे। दूसरे हमाए जैसे दीन-दुर्बल की आह लै रहे हैं। तीसरे विधवा का ब्याह कराय के हिन्दू धरम के सारे ऋषी-मुनियों का शिराप लै रहे हैंगे।—राम जाने किस मंझधार में जाय के डूबेगी इनकी नैया, देख लीजिएगा लालाजी।"

लाला बैजू बातें करते-करते एकाएक उठ बैठे, बोले : "होएगा जी, आओ तास खेलें। आता हैगा खेलना ?"

रद्धू बाबू ऐसे हंसे कि मानो एम० ए०, पी-एच० डी० पास से कोई पूछ रहा हो कि अमां ए-बी-सी-डी पढ़े हो कि नहीं। बोले : "हमारा आपका खेल अभी तलक हुआ ही कब जो आप पहचानते। हमने सुना है कि आप बड़े परसिद्ध खिलाड़ियों में से हैंगे। लाइए, फिर आपका हुकुम बज ही जाय। इधर कोई काम-धाम तो हैगा नहीं हमाए पास। लौंडिया के फेर में जीउका भी छोड़ दी।··· मगर अब भूल गये हैं लालाजी···इधर तो बरसों हो गये, तास छुए तक नहीं ससुरे।"

लाला बैजू ने ताश फेंटते हुए कहा : "हमें तो भई ये ही दो शौक हैंगे। हियां आपके पास बैठें तो तास खेलेंगे। औ' हुआं कोठी में रहे तो शाम को एकाध दो मिनिस्टर, हाई क्लास आई० सी० एस०, आई० ए० एस० अफसर, दुइ-चार बड़े लोगों को अपना निमक ज़रूर खिलावेंगे। और न हमें पूजा-पाठ धरम-करम से कोई खास प्रेम हैगा, न तुम्हारे क्या नाम के, घर-गिरस्ती बाल-बच्चों से।"

ताश खेलते हुए दो घंटे बीत गये। लाला बैजू बोले : "यार रद्धू बाबू, हमें मालुम नई था कि तुम इस फन में इत्ते बड़े माहिर होगे। हम तो समझते थे कि तुम कोरे कीर्तनबाज ही हो। अरे, किसी नौकरी की क्या फिकर, पान-सात रुपये तो रोज मैं तुम्हें यों ही कमवा सकता हूँ।"

लाला बैजनाथ को जुआ खेलने-खिलाने का मर्ज था। और इसी मर्ज के पीछे उन्होंने अपनी जवानी में यह मकान भी खरीदा था। पहले बीच वाले खन में, जिसमें इस समय रद्धू बाबू का निवास है, सुलही की फड़ जमती थी। लाला बैजू सर्राफे का काम करते थे। उससे छुट्टी पाकर यहीं आ जाते थे। जुए की बदौलत उन्होंने रकम तो खैर किसी हद तक ही कमाई, लेकिन उससे अधिक बिगड़े

रईसों-नवाबों और धनी-मानी मनचलों का परिचय खूब पाया था। ये लोग उनके दो तरह से गाहक होते थे। अपने गहने और जमीन-जायदाद उनके पास गिरवीं रखकर इनसे ऋण लेते थे। दूसरे ये लोग इनकी दुकान से अपनी माशूकों के गहनों की फरमाइशें भी अधिकतर पूरी किया करते थे। खातिर-तवाजोह और बोलने-चालने में लाला बैंजू शहर भर में अपनी मिसाल आप ही थे। इसी से बढ़े। आज लगभग पचास-साठ लाख के असामी हैं। तीनों लड़के इधर बरसों से काम-धाम संभालते हैं, और लाला बैंजू सवेरे से शाम के पांच बजे तक यहीं अपनी बैठक में जमे रहते हैं। कोई नहीं मिलता तो अकेले में 'पेशेंस' खेला करते हैं, वरना यों तो दिन भर उनके मिलनेवाले आते ही रहते हैं। लाला के ताश मशहूर हैं। और इसी शोहरत की आड़ में उनका जुए का अड्डा अब इसी बैठक के पीछे वाली कोठी में तहखाने में जमता है। और इन तहों में शरीफों को कानून से बचाकर लालाजी जुआ खिलवाते हैं। जाहिरा तौर पर वह पूरी कोठी एक रजिस्टर्ड संस्था, 'मनोरंजन क्लब' के नाम से किराये पर ले रखी है। वहां नकली में असली जुआ होता है। ऊपर बैठके में आप शौकिया ताश खेलते हैं, जो जुआ नहीं महज खेल होता है, सामिष नहीं निरामिष होता है। रद्धूबाबू ताश की ट्रिकों के उस्ताद हैं। लाला बोले : "हमारी तरफ से क्लब में पत्ते खेला करो। जितनी रकम दिन-रात भर में जुआरियों से जीतोगे, उतनी की पांच रुपये सैंकड़े के हिसाब से दस्तूरी मिलेगी। खाने-पीने, नाश्ते-पानी से मतलब ही नहीं।" उनका तो लाला बैंजू के यहां सदाव्रत खुला रहता है। रद्धूबाबू अपने इस नसीबे पर बेहद प्रसन्न हुए। उन्हें अब अपनी पत्नी और लड़की के व्यवहार से उत्पन्न ग्लानि के ऊपर अपनी एक हिंसात्मक विजय-सी मालूम हुई।

रमेशचन्द्र गौड़ और रानी बाला का विवाह समारोह अलक्ष्य में राजनीति से जुड़कर नगर के उद्योगपतियों, कुछ अफसरों, मंत्रियों, महापालिका के सभासदों, और कुछ राजनीतिक व्यक्तियों के लिए खासा महत्वपूर्ण हो गया था। संयोग ही से ऐसे बानक बन गये थे। विवाह के बाद रमेश को अपने लिए एक घर की आवश्यकता थी, वह अपने पिता के घर में अब नहीं रहना चाहता था। रमेश ने खन्नाजी से कहा, खन्ना साहब ने उसे एक पत्र देकर नगर के प्रसिद्ध उद्योगपति और मकानपति हाजी नबीबख्श के पास भेज दिया। उसी दिन कुछ ही देर पहले उसके विवाह का निमंत्रण हाजी साहब को मिल चुका था। हाजी साहब ने रमेश से पूछा : "ये आप ही की शादी का कारड आया है न ?"

"जी हां।"

"आप उधर ही के रहनेवाले हैं ?"

"जी हां।"

"क्या करते हैं ?"

"इंडिपेण्डेण्ड में काम करता हूं।"

"ओह तो आप जर्नलिस्ट हैं ? आपके यहां जिन तालिबिलमों ने रूपचन्द के मन्दिर के खिलाफ—"

"जी हां ! मैंने और मेरे साथियों ने ही किया था। जेल तक गये थे।"

"ओह तो यह बात है? और खन्ना साहब की इसमें क्या दिलचस्पी है?"

"जी, दिलचस्पी यही है कि उन्हें और मिसेज खन्ना को मुझसे और मेरी होनेवाली पत्नी से बच्चों की तरह प्यार है, और इस गैर बिरादरी की शादी में चूंकि न मेरे पिता शामिल हो रहे हैं और न···"

"लड़की के। ठीक है, पुराने खयालात वालों को एतराज़ होगा ही। खैर, तो घर आपके लिए एक चाहिए ही।—मिलेगा।" हाजी साहब ने एक नौकर को बुलाकर अपनी जायदाद के मैनेजर के पास भेज दिया और यह भी कहलाया कि अगर कोई फ्लैट खाली न हो, तो हमारे किसी होटल में इनके रहने का फिलहाल बन्दोबस्त किया जाय।

रमेश को अपने मैनेजर के पास भेजने के बाद हाजी साहब ने खन्ना जी को फोन करके यह कहा कि चूंकि सड़क वाले मामले के लिए महापालिका की मीटिंग इस शादी से एक ही दिन बाद होनेवाली है, इसलिए मैं चाहता हूं कि जलसे में मुख्यमंत्री जी, हरिकिशनदास और दस-पांच खास-खास लोगों के नाम भी आप जोड़ लीजिए। इन लोगों को लाना मेरा काम होगा।

खन्ना साहब तुरन्त राजी हो गये। हाजी नबीबख्श डॉक्टर आतमाराम के बड़े मुरीदों में से थे और हमेशा समाजवादी कामों में तन-मन-धन से उनका साथ देते थे। उनकी बात को न मानना खन्ना साहब के बस में न था। इस जलसे की आड़ में हाजी साहब अपने प्रतिद्वन्द्वी को एक अत्यंत नाटकीय कूटनीतिक पराजय देने के लिए, अपनी एक चाल को अन्तिम सांस्कृतिक चरण के रूप में ढाल देना चाहते थे। रईस की मौज, सम्पादक खन्ना का मामला, उसी क्षेत्र के एक नायक और श्रमजीवी पत्रकार की शादी के बहाने अपनी सहानुभूति भरी पब्लिसिटी लेने के लिए वे ललक उठे। इसके अलावा उन दिनों हाजी साहब ने महापालिका के सभासदों में यह हवा भी फैला रक्खी थी कि डॉक्टर आतमाराम और मुख्यमंत्री की बातें हो चुकी हैं। राजधानी होने के कारण यहां की 'इण्डस्ट्रियल इस्टेट' का विशेष महत्व है। पुराने सर्राफे में लिंक रोड बनने से दो फायदे होते हैं, एक तो शहर के पिछड़े हुए इलाके के लोगों को लाभ होगा, दूसरे विदेशी घुमन्तुओं और व्यापारियों को ऐतिहासिक स्थानों और टकसाली भारतीय जीवन की एक सजीव झलक देखने का मौका देते हुए 'उद्योग पुरी' में ले जाएंगे। इस सड़क से शहर का आर्थिक लाभ तो होगा ही, साथ ही शहर में प्लानिंग की शान भी बढ़ेगी।

नगर के सबसे बड़े धनपति लाला राधेरमन ने गहरे में रुपया बंटाई की थी। इसके साथ ही साथ बहुत से महत्वपूर्ण (पार्टियों के दृष्टिकोण से या व्यक्तिगत रूप से) सभासदों को उनकी रुचि और प्रकृति के अनुरूप खातिरदारियों से भी पाट रखा था। हाजी साहब को भी नीतिवश यही करना पड़ा। रुपया बंटाई और खातिरदारी दोनों ओर से इतनी हुई कि सभासदों की नैतिकता किसी भी स्तर पर थिर न रह सकी थी। दोनों ही पक्ष स्वयं अपने ही फेंके हुए जालों के भ्रम में बंध गये। यह कहना कठिन था कि कौन किस पक्ष में अपना वोट देगा। हर सभासद या तो रहस्यवादी या विशुद्ध दुमहिलाऊ और बेशर्म बन गया था। हाजी इस पार्टी में इन सभासदों, लखपतियों और आम जनता को एक बड़े रहस्यवादी मौन ढंग से यह प्रभाव देना चाहते थे कि मुख्यमंत्री और अखबारी साम्राज्य के

शहंशाह डॉक्टर आत्माराम उनके साथ हैं। हाजी नबीबख्श ने चाहा तो यहां तक था कि लड़के की बारात लेकर वे ही खन्ना साहब के दरवाजे पर आयें, मगर खन्ना साहब को यह प्रस्ताव पसन्द न आया। पर हाजी कुछ न कुछ करने पर तुल ही गये थे, बोले कि बारात का खर्च मैं दूंगा। खन्ना साहब बोले कि 'बारात का सवाल ही नहीं उठता' क्योंकि शादी पार्टी से पहले ही हो चुकी होगी। हाजी बोले कि ये कुछ नहीं, आखिर दूल्हे के दोस्त-अहबाब होंगे। बाराती की हैसियत से आएंगे तो उन्हें खास तवज्जोह मिलेगी, वरना बेचारे भीड़ में खो जाएंगे। बारात ज़रूर आयेगी और उसका स्वागत किया जायगा। खन्ना साहब राजी हो गये।

अपना घर छोड़ने के बाद से रमेश शामराव के आग्रहवश उसी के घर में रहता था। उसके पिता भी रमेश से स्नेह करते थे। बारात में किसी अपरिचित पूंजीपति का पैसा लगे, यह विचार तक रमेश को पसन्द न आया। उसने खन्ना साहब से साफ 'ना' कह दिया। खन्ना साहब बुरा मान गये। इस बात का प्रसंग जब शामराव, कम्मी आदि के सामने आया तो ये लोग तन गये, बोले, बारात हम लेके जाएंगे, तरुण छात्रसंघ के प्रधान का ब्याह है। गोडबोले वैद्यजी ने अपने यहां से बारात सजाकर ले जाने का आदेश दिया—"हाजी हों या कोई हों, हमारा लड़का क्या कोई अनाथ का लड़का है जो वो खर्चा उठाएंगे।" उन्होंने खन्ना से फ़ोन पर कह दिया कि हम अपने मुहल्ले की नाक यों न कटने देंगे। खन्ना ने सत्तो-धर्मो रखते हुए कहा कि बराती लड़के ही होंगे, आप हमारे साथ रहेंगे। ...

गोडबोले के घर संघ के पुराने लड़कों की उजले कपड़ों वाली भीड़ क्रमशः बढ़ती जा रही है। लड़कों के अलावा युनिवर्सिटी के अनेक प्राध्यापक, नगर के सभी पत्रकार और 'इण्डिपेण्डेण्ट' प्रेस तथा कार्यालय के सभी कर्मचारी आमन्त्रित किए गये थे। शामराव गोडबोले और कम्मी इस आयोजन के नेता थे। जयकिशोर और हर्रो मिलकर रमेश की साजसज्जा की नुक्ताचीनियां कर रहे थे। धोती ज़रा इधर से उठ गयी है, चुन्नट ठीक नहीं पड़ी, दर्जी ने कुरते के मुड्ढे ठीक नहीं काटे, बेतुकी झोल पड़ रही है, आदि-आदि। रमेश बोला : "उंह, अब भयल बियाह मोर करबो का। अबे, सरकारी तौर पर तो बीवी बना ही चुका कोर्ट में। अब तो ये सामाजिक रस्म अदायगी भर है।" लच्छू और छैलू की याद सभी को आ रही थी। लच्छू तो खैर रूस में मजे ले रहा है, पर छैलू का कोई पता नहीं। मन्दिर जलाने की घटना के बाद से वह ऐसा गायब हुआ है कि कोई खैर-खबर नहीं मिली। हर्रो के लिए रमेश इस समय हीरो बना हुआ है, उसने अपनी 'प्रेमिका' से 'लव मैरेज' की है, यानी स्वर्ग को पृथ्वी पर उतार लिया है। काश कि हर्रो भी अपने जीवन में ऐसा ही कर सके। मगर उसके लिए अभी तो प्रेमिका ही नहीं मिली। जयकिशोर की छेड़-छाड़ को हर्रो उस समय सुखपूर्वक झेल रहा है।

जयकिशोर भी आज अपने मन में बादशाह है। उसकी एक कविता आज 'धर्मयुग' में छपी है और 'कल्पना' कार्यालय से भी उसका एक लेख छापने के सम्बन्ध में स्वीकृति-पत्र आया है। 'ज्ञानोदय' और 'माध्यम' को भी कविताएं भेज रखी हैं।

गोडबोले के दो अमेरिकन छात्र साथी बॉब और हैरी अपनी साइकिलों पर आ गये। दो विदेशी सूरतों के आते ही गोडबोले के बड़े आंगन का नक्शा ही बदल गया। शामराव गोडबोले के अलावा जयकिशोर ही उन दोनों को पहचानता था। उन्हें फाटक में साइकिलें लेकर प्रवेश करते देखकर वह दूर ही से हाथ उठा-

कर चिल्लाया— "हलो बॉब, हलो हैरी। मस्त हंसमुख लंब-तड़ंग बॉब ने ज़ोर से हिन्दी में कहा : "हमने आपका जगह ढूंढ़ निकाली न आखिरकार ?"

सारे मजमे पर बॉब की हिन्दी ने जादू का-सा असर डाला। गोडबोलेजी का एक नौकर तब तक उनकी साइकिलें लेने के लिए आ गया था। शामराव कमरे से निकलकर और जयकिशोर दालान से उनके स्वागतार्थ निकट आ रहे थे। हैरी बोला : "आपके मित्र के विवाह के वास्ते हमारे मेगदुट जी एक कविता बना के लाये हैं।" मेघदूत उपनामधारी बॉब ने खबे उचकाकर हैरी की बात को शानदार ढंग से स्वीकार किया। और इसके बाद एक-एक करके बाराती आ गये। गणेशजी गोडबोले की हवेली के फाटक पर शहनाई बज रही थी, जिसके स्वर लाउड-स्पीकरों द्वारा हवेली में गूंज रहे थे। ठंडाई, कोकाकोला और पान-सिगरेटों की भरमार थी। थोड़ी ही देर में आंगन इतना भर गया कि चलने का समय देखने के लिए लोग-बागों की नज़रें अपनी-अपनी घड़ियों पर पड़ने लगीं। रमेश की मां, दोनों बहनें, बहनोई और छोटा भाई सुरेश गोडबोलेजी के घर पर आ चुके थे। स्त्रियां वहीं से इकट्ठी होकर जानेवाली थीं। मन्नो और उसके पति के आ जाने से रमेश विशेष रूप से प्रसन्न था। पुत्ती गुरू के सम्बन्ध में उसे यह मालूम ही हो गया था कि वे अप्रसन्न तो नहीं हैं, पर बारात में सम्मिलित नहीं होंगे। उनका चार घरों की जिजमानी का काम ठहरा, इसलिए वो इस तमाशे से दूर ही रहेंगे।

पुत्ती गुरू उस दिन गोमती पार किसी जिजमान के यहां उद्यापन कराने गए थे। लगभग पांच बजे तक परोसे-पुजापे की गठरी लेकर घर लौटे। खूब सन्तुष्ट थे, इस घोर कलिकाल में कौन जिजमान भला ऐसे उद्यापन करता है। सब मिला-कर पैंतालिस रुपये नकद पीटे। पांचों वस्त्र, शैया का सामान, अनाज-पानी का पूरा एक झौआ मजूर के सिर पर लदवा के पुत्ती गुरू घर आए। ताला बन्द था। पड़ोस में हरिया के यहां गोहार कर ताली मंगाई। पत्नी सुबह ही, उनके घर से जाते समय, ताली सम्बन्धी सूचना दे चुकी थी। घर खोला, अन्दर गए। दालान में मजदूर से सब सामान रखवाया, पैसे देने में थोड़ी-बहुत हुज्जत भी की। पर फिर मजदूर का चित्त प्रसन्न करने की मौज में आ गए। घर की कुण्डी बन्द करके धोती-कुरता-बनियान-टोपी उतारी, एक बांह पर उन्हें रखा, अनाज-वस्त्र के थैले यथासंभव उठाये और ऊपर जाकर रख आए। नीचे रामजी वाले दालान में उन्हें सिल के नीचे लोटा और सिल के ऊपर कटोरा दिखलाई दे गया था। तलब भड़क चुकी थी, नीचे आए। कटोरे के ऊपर से बट्टा हटाया। उसके नीचे दबी तश्तरी के ऊपर रक्खी हुई एक चिट्ठी मिली— "पूज्य बाबू, आपकी भांग का सामान ये रक्खा है। ऊपर रसोइयां वाले दालान में छींके पर बड़े कटोरदान में पूड़ी तरकारी और छोटे में मिठाइयां हैं सो जानियेगा और जो कहीं जाना होये तो हरिया की अम्मा को घर की चाभी दे जाइएगा।"

आपकी सौ० मन्नो—"

चिट्ठी पढ़कर पुत्ती गुरू ने मगनमन कटोरा खोला, पिसी हुई ठण्डाई, भांग, गुलकन्द और बादाम के चार गोले देखकर वे चारों पदारथ पा गए। सिल उठाई तो पीला दूध, जिसमें केसर के नन्हें-नन्हें टुकड़े ऊपर ही झलक रहे थे। देखते ही बदन में जवानी आ गई। लपककर खूंटी पर से छन्ना उतारा और दूध के बर्तन पर कटोरा ढांककर लपककर दरवाजे पे आ गए। बरफ मंगवाने के लिए उन्हें एक

आदमी की तलाश थी। गली का एक लड़का जाता हुआ दिखलाई पड़ गया। उससे बरफ लाने के लिए दो आने पैसे देकर आप भांग-ठण्डाई छानने में दत्तचित्त हुए। भले ही अन्तर्जातीय सही, पर आखिर बेटे का ब्याह था। भले ही गुरू को ब्याह सम्बन्धी अनेक आपत्तियां हों, पर वे मन की खुशी को नहीं दबा सकते। भांग का लोटा लेकर वे स्वभावानुसार भगवान के भोग लगाने गए। एकाएक यह भाव आया कि रघुकुलमणि रामजी तो आज से हमारे समधी हो गए हैं, अब हमारा भोग आदि कैसे स्वीकार करेंगे ?—फिर आपही मगन मन भगवान को रिझाते हुए बोले, "अरे, नये जमाने में तो ये सब कुछ चलता है भगवान। लेव आज पाओ प्रेम से। आज भांग छान के दोनों समधी, भगत और भगवान तरंग में अपने बाल-बच्चों को आशीर्वाद देंगे। सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत्।"

शाम के सवा छह से मोटरों और रिक्शों का आना जारी हुआ और आध घण्टे के अन्दर ही अन्दर पार्क के सामने वाली सड़क पर शहर की अच्छी से अच्छी मोटरों की परेड लग गयी। आकाश धूल भरा शान्त था। गर्मी घुटन भरी थी और पार्क में लगे हुए पैंतीस बड़े-बड़े पंखे भी मेहमानों के पसीने पूरी तौर पर सुखा नहीं पा रहे थे। रंगबिरंगी साड़ियां, भली-भांति के बंधे हुए जूड़े, विलायती तितलियों की फुदक-फुदक और देसी महिषियों की थपथप चाल से पार्क की घास, पेड़, फूल-पत्ती सबकी सब, मानो बेरौनक-बेआबरू हो गई थीं और उनके नखरों, गुमानभरी बातों से चमन खिलखिला पड़ता था। कौन कब पहाड़ से आई और कब पहाड़ पर चली जायगी, कौन मिसेज किस मिसेज से बात तक करना पसन्द नहीं करती, किसके 'हेयर स्टाइल' में क्या नुक्स है, किसने कितने हज़ार का कौन-सा नया गहना खरीदा और शहर के कौन-कौन से जोड़े गर्मियां बिताने के लिए योरप के देशों में गए हैं, इसकी चर्चा से पार्क का पहिला-कोना गुलजार था। बीच में एक सोफा वर-वधू के लिए रखा था। आस-पास के कुछ सोफे विशिष्ट आदमियों से भर चुके थे। हाजी नबीबख्श, स्वायत्त शासन के सचिव, मंजूरअहमद और एक बहुत बड़े ठेकेदार हाजी जकाउल्ला जल्द आ जानेवालों में से थे। हाजी साहब की बंगालिन रखैल का बेटा खोखा मियां भी अपने दो-चार गणों के साथ थोड़ी दूर पर टहलते हुए शान से सिगरेट फूंक रहा था। बाप ने बेटे को काफी मदद दी थी और खोखा मियां को बेहद चाहते भी थे, पर खोखा मियां ज्यों-ज्यों पिता की सहायता से उन्नति करते गए, त्यों-त्यों पिता से बेरुखी भी बरतने लगे।

इत्रों और शृंगार-सज्जा के सम्राट् 'चौधरी कास्मेटिक्स' की मैनेजिंग डायरेक्टर मिसेज चौधरी और उनके मैनेजर आये। 'दि लॉस्ट एम्पायर' क्यूरियो वाले पण्डित बिशन नरायन, फिर नगर के सबसे बड़े धनी-धोरी लाला राधेरमन के तीनों लड़के लाला रेवतीरमन, लाला गोपीरमन और लाला माधुरीरमन शहर के पांच-छः लखपती नौनिहालों के साथ पधारे। ठीक साढ़े छः पर डॉ० आत्माराम और छः पैंतालिस पर मुख्यमंत्री, उद्योगमंत्री, स्वायत्त-शासन-मंत्री, लाला राधेरमन आदि 'वी० आई० पी०' ओं का जुलूस आया। पार्क करीब-करीब भर गया और तब करीब 7 बजकर 10 मिनट पर श्रीमती खन्ना ने माइक्रोफोन पर अभ्यागतों का शाब्दिक स्वागत करते हुए डॉ० आत्माराम से प्रार्थना की कि वे समाज के सामने वर-वधू के पाणिग्रहण संस्कार का पौरोहित्य करें। डॉक्टर साहब ने अपने भाषण में लोगों से समय को तेजी से बदलने के लिए अपील की।

उन्होंने कहा कि अब इस देश में शादियां इस तरीके से होनी चाहिए कि उन्हें देखकर कोई यह न कह सके कि यह हिन्दू की शादी है, या मुसलमान की या क्रिश्चियन की हो रही है। समाज के सामने नवदम्पति एक-दूसरे को स्वीकार करें और समाज में स्थान पाएं। इससे हमारी जातीय और साम्प्रदायिक भेद-भावनाएं मिटेंगी। यह कहकर डॉक्टर साहब ने वर-वधू को आशीर्वाद दिया।

इसके बाद मुख्यमन्त्री अपना आशीर्वाद देने के लिए खड़े हुए। उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह को सराहा, पत्रकारों को भी सराहा, डॉ० आत्माराम को महान् विभूति बतलाया, आनन्दमोहन खन्ना और उनकी पत्नी की सामाजिक सेवाओं की सराहना भी की।

लाउडस्पीकर पर रेडियो कलाकारों द्वारा 'बन्ने' और मंगलगीत गाए जाने लगे :

माई री मैं टोना करिहौं।
कौआ की बीट, कबूतर के पंखा, औ उड़त चिरैया के डैन री ॥ मैं० ॥
नैनों को बांधू, बन्ना नैन न चलावै——।
वो तके न पराई नार री ॥ मैं० ॥
हाथों को बांधू, बन्ना हाथ न चलावे—
वो छुए न पराई नार री ॥ मैं० ॥
पांवों को बांधू, बन्ना पांव न चलावै—
वो चढ़ै न पराई सेज री ॥ मैं० ॥

गीतों से वातावरण में मधुरता आई, लेकिन महापुरुषों की मण्डली में मुख्यमन्त्री की एक बात से सहसा खलबली मच गयी। खाते-खाते उन्होंने सहसा रुप्पन लाला की ओर देखकर कहा : "लाला रूपचन्द, तुम हमारे इन कम्युनिस्ट उद्योगपति हाजी साहब के चक्कर में कैसे पड़ गए जी? ये तुम्हारी महाजनी खतम करवा देंगे, याद रखना।"

मुख्यमन्त्री जी की यह बात साधारण मजाक के ढंग से कही जाने के बावजूद खासी अटपटी और एकपक्षीय थी। हाजी कुछ चौंके, उनके समर्थक खासे चौंके, और लाला राधेरमन, लाला रेवतीरमन, नगर प्रमुख, उप-नगर प्रमुख और अन्य कई लोग भी गम्भीर नजरों से मुख्यमन्त्री का मुंह ताकने लगे। किसी और ने कहा होता तो हल्के मजाक से अधिक इसमें कोई बात न खोजी जाती, परन्तु मुख्यमन्त्री जी को बरसों से और निकट से जाननेवाले लोग यह जानते हैं कि निर्मल विनोद उन्हें आता ही नहीं, वे केवल अपने किसी विरोधी पर कटुक्ति करते समय ही हंसी-मजाक के मूड में आते हैं। तो क्या मुख्यमन्त्री से हाजी का कुछ विरोध हो गया है?—यह कौतूहल था।

रूपचन्द करीब-करीब घिघियाते हुए स्वर में सफाई देते हुए बोले : "मैं तो इन्हें न कमनिस्ट जानूं न और कुछ जानूं, मैं तो इन्हें नबीबख्श के रूप में जानता हूं, हाजी भी बाद में हुए। हमारा-इनका तीस पैंतीस बरस का ब्यौहार हैगा।"

"जी हां, लाला रूपचन्द साहब मेरे महाजन रहे हैं। इन्हीं की मदद से मैं शुरू-शुरू में आगे बढ़ा हूं। ताउम्र इनका एहसान मानूंगा।" हाजी साहब ने खुले दिल से भाव-भीने शब्दों में कहा। लाला रूपचन्द के मन को मक्खन लगा। किन्तु मुख्यमन्त्री इस ओर बढ़ जानेवाली धारा को फिर अपनी ही ओर मोड़ लाए। एक पूरा रसगुल्ला हाथ में उठाकर, उसे मुंह में रखकर स्वाद चर्वण करने के उपरान्त

उंगलियों में लगी रसचाशनी को अंगूठे से मलकर छुड़ाते हुए बड़ी लापरवाही से बोले : "जी हां, तभी तो बात-बात में अपने-आपको कम्युनिस्ट समझते हुए और हमारे डॉक्टर साहब की दोस्ती का दम भरते हुए भी आप अपने पुराने सूदखोर महाजन के हाथ में एक सौ बाईस निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों को बेघर करवा देना चाहते हैं। आपका यह अहसान समाज को खासा महंगा पड़ रहा है।"

"क्षमा कीजिएगा ये आपकी झूठी समाजवादी हमदर्दी है।" रुप्पन लाला के कनिष्ठ चिरंजीवी मुलायमचन्द उत्तेजित और उद्धत स्वर में बोले। मुख्यमन्त्री आक्रामक शेर की तरह उसकी ओर देखने लगे। डॉ० आत्माराम तुरन्त ही मुस्कराकर अपने पास बैठे हुए मुख्यमन्त्री से बोले : "देख लिया आपने, आपके सरकारी समाजवाद को लोग-बाग क्या समझते हैं?"

बात चूंकि डॉ० आत्माराम के मुख से निकली थी, इसलिए कुछ लोगों के मुख मुस्कान से खिल उठे, देखकर मुख्यमन्त्री का मुख लाल हो गया। डॉक्टर साहब इतने बड़े आदमी हैं कि आमतौर से कोई उन्हें जवाब नहीं दिया करता, कांग्रेसी खास तौर से, क्योंकि 'डाक्साहब' हाई कमान के सदस्य और गैर सरकारी होते हुए भी सरकारी नेताओं के 'गुरु घण्टाल' हैं, यानी उनके सरकारी रौब को फुटबाल बनाकर ऐसा उछालते हैं कि चारों ओर से 'वाह-वाह,' 'हुर्रे-हुर्रे' की पुकार पड़ जाती है। बेचारे 'सरकार' लोग घुट-घुटकर रह जाते हैं। परन्तु मुख्य-मन्त्री जी इस समय सहसा डॉक्टर साहब के मजाक पर भी मजाक करने के मूड में आ गए, हंसकर बोले : "हमें तो पूज्य नेहरूजी ने, आपने, श्री कृष्णमेनन आदि ने जैसा समाजवाद सिखा दिया, वैसा ही बरतते हैं। हाजी कम्युनिस्ट बख्श साहब —(लोगों की हंसी) हमारे दोस्त और मेहरबान, एक तरफ तो ये अफवाह फैलाएंगे कि डॉक्टर साहब ने मुझे पुराने सर्राफेवाली सड़क-योजना के लिए राजी कर लिया है और दूसरी तरफ खुद यह कहते फिरेंगे कि भई, हम तो मीरगंज वाली सड़क ही को अच्छा समझते हैं।—(हाजी साहब कुछ कहने के लिए उचके) ठहरो मियांजी, पहले हमारी बात तो सुन लो। हां साहबो, दो रुख तो हमारे दोस्त के ये हुए और तीसरा रुख ये है कि पिछले डेढ़ महीनों से मीरगंज और उधर के बहुत सारे खेत और जमीनें हाजी साहब अपने अधीन तमाम ट्रेड यूनियनों के सेक्रेटरियों के पर्सनल नामों पर खरीदते जाते हैं। शतरंज कैसी खेली जाती है, ये अगर हमारे बुजुर्ग लाला राधेरमणजी साहब एक बार गौर करते—हमारे समाजवादी मित्र हाजी साहब ने एक के बाद एक मोहरे चलकर मीरगंज के खेत खरीदे हैं और खरीद रहे हैं। कल यदि महापालिका अपना मीरगंज मार्गवाला प्रस्ताव पास भी करे तो उधर से सड़क नहीं, बड़े नाले की चौड़ान वाली एक गली ही बना सकेगी—कहीं आठ फुट चौडी, कहीं चार-पांच फुट और उद्योगपुरी के मुहाने से मिलाते समय कुल जमा दो फुट चौड़ी सड़क बना सकेगी महापालिका। हाजी साहब के इस चौमुखे समाजवादी मजाक की दाद दीजिए जरा हः हः हः। (डॉक्टर साहब की तरफ देखकर) आपने अपने कांग्रेसी चेलों को ऐसा समाजवाद नहीं सिखलाया डाक्साब।"

बहुत से सम्भ्रांतों की नजर में मुख्यमन्त्री हीरो बन गए। डॉक्टर साहब की मौजूदगी में उन पर खुलकर हंसने का साहस एक रुप्पन के बड़े लड़के वीरचन्द के सिवा और किसी को न हुआ, पर रूमाल या हथेली से अपनी-अपनी मुस्कुराहट सभी को पोंछनी पड़ी।

मुख्यमन्त्री की 'लेक्चर टोन' वाली ऊंची आवाज की बातों के उत्तर में डॉक्टर आत्माराम ने हंसकर सहज स्वर में कहा : 'बुद्ध ने तो सिखाया सबको समान रूप ही से था, पर चेलों में बोधिसत्व कम हुए और बुद्धू ज्यादा।"

कुर्सी के पीछे खड़े 'इंडिपेंडेंट' के कॉलम लेखक 'आवारा', श्याम भटनागर और रमेश जोर से हंस पड़े, खन्ना मुस्कुराये और हरकिशनदास उद्योगमन्त्री भी अपनी स्वरहीन खुली बत्तीसी दिखलाने लगे। दूर बैठे हुए लोगों को पास बैठे हुओं ने बात कानोंकान पहुंचा दी। हंसा कोई नहीं, मुस्कुराये बहुत से।

यह गुदगुदे और सादे सोफासेटों की पंगत फौवारे के किनारे का एक कोना ही भर रही थी। बड़े लोग खींचतानकर पिछत्तर-अस्सी से अधिक न थे। इनके अतिरिक्त मंझोले अफसरों, मंझोले सेठियों और सर्राफों, दुकानदारों, अमले, वकीलों, डॉक्टरों, प्रोफेसरों, लेखकों, पत्रकारों का एक शानदार मजमा, कुर्सियों पर बैठा नजर आ रहा था। एक लालाजी सामने कुछ दूर पर खड़ी नारियों की तनिक भी परवाह किए बिना अपनी पूरी जांघ खोलकर ज़ोर-ज़ोर से उसे खुजलाते हुए एक दूसरे लालाजी को बतला रहे थे कि उन्होंने तेल में मिलाने के लिए भटकटैया के फूल कहां-कहां से और कितने हजार बोरे मंगवाये हैं। दूसरे लाला ऐसी मशीन की तलाश में था, जो पत्थर के चावल बराबर दाने तराश सके। दोनों लाला अपनी कारगुजारियों पर मजे ले-लेकर बातें कर रहे थे।

कांग्रेसियों को इस बात की बड़ी शिकायत थी, कि उनकी कमिश्नरी में सरकारी ग्रामीण उद्योग अभियान की योजना बनाकर जिला परिषद् वाले कांग्रेसियों और अफसरों ने मिलकर लाखों रुपये खा लिए, और शहर के बेचारे तपे-तपाये जाने-माने पुराने कांग्रेसिए उनका मुंह ताकते ही रह गए, एक छदाम भी न कमा सके।

—"अजी, पूरे तीन साल तक चकमा दिया बदमाशों ने। चर्खे, करघे, छोटी मशीनों के नाम पर पैसा खाया। फैक्ट्रियां बनाने के नाम पर सीमेंट, ईंट और टीनों का पैसा खा गए, और कहीं कुछ भी न बनाया, बस एकाध घोखे खड़े कर दिए और कहीं हर साल बाहर से थोड़ी बहुत चीजें खरीदकर उनकी प्रदर्शनी करके, एकआध मन्त्री को बुलवाकर उद्घाटन करा दिया और कह दिया, यह सब वस्तुएं हमारे गांव ही में बनी हैं। हमारा राष्ट्र उन्नति कर रहा है। अरे, गुरु लोग तो यहां भूखे बैठे हैं और उधर उनका राष्ट्र उन्नति कर रहा है।—ये अच्छी रही।"

इन्सानी चिड़ियों का जंगल उनकी दबी चहक और उभरी हुई हलचलों से जगर-मगर हो रहा था। एक अलग सोफासेटों की चौखुंटी पंगत में रमेश की मां, गोडबोले की मां आदि बहनजी की समधिनें बैठी थीं। सुमित्रा उन्हीं की सेवा में नियुक्त थी। रानी की दादी नहीं आई थीं। बच्चे चहक रहे थे। और समधिन वाले सोफों के इर्द-गिर्द ही कुंवर रद्धसिंह भी अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण बने हुए चक्कर काट रहे थे। पार्टी समारोह का सूर्य अब अस्ताचल पर आ गया था।

मेहमानों का मजमा अब छंटने लगा था। डॉक्टर साहब को 'इंडिपेंडेंट' कार्यालय के कर्मचारियों और उनके परिवार वालों से मिलाया जा रहा था। कालम लेखक 'आवारा', रमेश और एक 'सीनियर' पत्रकार उनके साथ-साथ चल रहे थे। सहसा 'आवारा' ने पूछा : "डाक्साब, मुख्यमन्त्री की इन बातों का असर कल महापालिका की बैठक पर क्या पड़ेगा ?"

"कुछ नहीं, थोड़ी बहस, थोड़ी गर्मागर्मी और सड़क का प्रस्ताव आगे के लिए स्थगित। बस।"

"पर इससे हाजी गुट के प्रभाव पर आंच तो अवश्य आई डाक्साब।"

"कोई आंच नहीं आएगी। मेरे खयाल में सड़क न यहां बनेगी न वहां—शायद कहीं और बन जायगी। तुम क्या समझते हो, राजनीति आज सड़कें बनाने में विश्वास रखती है ? इस समय तो राजनीति बनी सड़कें नष्ट करने और काल्पनिक सड़कों की योजनाएं पेश करने में भरोसा रखकर चल रही है। आज राहें धुंधली होती जा रही हैं।" डाक्साब ने एक ठण्डी सांस छोड़ी।

"लेकिन सड़क तो बनकर ही रहेगी। नई दुनिया को एक होने से अब कोई रोक नहीं सकेगा।" रमेश ने जोश में आकर कहा।

डॉक्टर आत्माराम मुस्कुराये, बोले : "आप अभी तक अपनी उसी पुरानी दुनिया में घूम रहे हैं जनाब ? बीवी कहां गई आपकी ?—अच्छा वो है, वहां,—आप भी वहीं जाइए। अपनी नई दुनिया बसाते वक्त इस पुरानी राजनीति की चालों पर गौर न कीजिए। भागिए यहां से।"

रानी उस समय अपनी माँ-बहिनों, सास-नंदों और दो-चार महल्ले वाली चाचियों के बीच में बैठी थी। रमेश भी वहां जा बैठा। सब पुलक उठे। रानी मुस्कराती हुई सास के पास से उठकर पन्नो, मन्नो के पास बैठ गई। मन्नो को विशेष खुशी थी, क्योंकि रानी उसकी सहपाठिन थी। रमेश मां के पास बैठ गया। मां बूढ़ियों में बतियाती हुई बीच-बीच में अपनी बहू की ओर स्नेह-पुलक भरी दृष्टि से निहार लिया करती थीं। अच्छी तो लगे हैगी, नन्द-भौजाई की जोड़ी है। नन्दो से जरा सांवली हैगी तो क्या हुआ। हाय, कैसा दीपू-दीपू सुहाग चढ़ा हैगा इसके चेहरे पे। घर जाके राई-नोन उतारूंगी।"

मगर बेटे और बहू को लेकर घर जाने का मौका ही मां को न मिला। चलते समय रमेश ने ठण्डे, किन्तु स्पष्ट शब्दों में कहा कि नया चलन चला कर घर की पुरानी चहारदिवारी को अब आए दिन धकियाना अच्छी बात न होगी : "मैंने बहुत सोच-समझकर ही एक अलग मकान ले लिया है।"

"मकान ! कहां ?" मन्नो ने पूछा।

"अभी तो हुसैनाबाद में मिल गया है फिर—"

"तो क्या मुसलमानी मुहल्ले में मेरी बहू को ले जाके रक्खेगा ?"

"तो इसमें क्या हुआ अम्मा, मकान मालिक एक पुराने नवाब हैं, वसीकेदार हैं। वड़े शरीफ हैं बेचारे। उन्हीं के यहां एक हिस्से में जगह ले ली है। मैंने क्या हाजी साहब ने दिला दी है।" रमेश की बात से उसकी मां-बहनों के चेहरों के चिराग बुझ गए।

रमेश और रानी अपने लोगों से विदा होकर हाजी साहब की एक गाड़ी में, जो उन्हीं के वास्ते खड़ी थी, अपने नए घर की ओर चल दिए। बहन जी ने रमेश और रानी को बक्से, आटा, चावल, चाय, मसाले वगैरा गृहस्थी की कुछ आवश्यक वस्तुएं, खाने और पास-पड़ोस में बांटने के लिए मिठाइयां, बिस्तर आदि सामान मोटर में रखवाकर अपना नौकर साथ कर दिया था। उस समय दोनों ही यह अनुभव कर रहे थे कि रमेश की मां को इससे करारा धक्का लगा है और शायद

रमेश के पिता को भी ऐसा ही लगेगा। रानी अपने पिता और दादी के सम्बन्ध में भी इसी तरह सोच रही थी। दुःख के साथ अपने नए सुख में मगन नवदम्पति आनन-फानन अपने घर पहुंच गए। पुराने शाही खंडहरों से लगे हुए एक खस्ता महल के फाटक पर गाड़ी रुकी। ड्राइवर ने दरवाज़ा खोला। नौकर सामान उतारने लगा। पति-पत्नी उतरे। फाटक बन्द। ड्राइवर ने 'बड़े मियां'-'बड़े मियां' करके कई आवाजें दीं, तब जाके पीछे से आवाज आई : "कौन?"

"हम हैं नए किराएदार।" रमेश ने कहा।

"अमां, सब चोर-उचक्के यही कहके घुसा करते हैं। जाओ, सुबह आना।"

रमेश को कुछ-कुछ गुस्सा आने लगा था, तब तक ड्राइवर चिल्लाया : "अमां, खोलते क्यों नहीं, हाजी साहब के यहां से आए हैं।"

पहले किराएदार और अब हाजी साहब का नाम सुनकर बड़े मियां की अफीम शंका की अटारी पर चढ़ गई। बड़ी मुश्किल से ड्राइवर ने बड़े दाहिने बाज़ू के एक बन्द दरवाजे का ताला खोलते हुए कहा : "तशरीफ ले चलिए हुज़ूर। हम लोग सामान लेकर आते हैं।"

चलते समय रमेश ने ड्राइवर और बहनजी के नौकर के हाथ में पांच-पांच के नोट रख दिए। नोटों का दिया जाना और नौकर ड्राइवर का सलाम करना बड़े मियां के उड़ते नशे को समझ की दबोच में आखिरकार ले ही आया। लपक के कहा : "हुज़ूर, मैं झट से फाटक बन्द कर आऊं तो हाजिर होता हूं। ऊपर पहुंचते ही एक छत, बाईं ओर एक बड़ा कमरा। छत के सामने कुछ दूर पर झलकती जलती ढिबरियों वाली दो-चार दुकानें और एक अहाता नज़र आ रहा था। कमरे में पर्दे का पार्टीशन लगाकर एक तरफ तो लकड़ी का सोफासेट, मेज-कुर्सी, टेबिलफैन और एक अलमारी रखी हुई थी, और दूसरी ओर एक निवाड़ का बड़ा पलंग, कबर्ड, सिंगारमेज और दो स्टूल। इस बड़े कमरे में लगी हुई एक लम्बी सहनची में एक ओर रसोईघर बना हुआ था, बीच में खाने के लिए मेज, कुर्सियां और दूसरे सिरे पर पर्दा तानकर गुस्लखाना बना दिया गया था। उधर भी एक छोटी-सी छत थी, जहां से गोमती दिखलाई पड़ती थी। शौचगृह भी उसी छत पर था।

बड़े मियां ने ऊपर आकर उन्हें उनका पूरा घर दिखला दिया। हर सेवा के लिए अपने आपको हरदम हाजिर समझने के लिए कहा और बोले : "हाजी साहब के कारिन्दे कल आए थे, और आज वे सब घर सजा गए और हमसे कह गए थे कि हुज़ूर लोग शादी करके सीधे यहीं आवेंगे। हुज़ूर को शादी मुबारक हो। मैं तो आज सई सांझ से इसी आस में बैठा टुकुर-टुकुर रास्ता देख रहा था कि हुज़ूर आएंगे, मिठाई खाने को मिलेगी, इनाम मिलेगा। अल्ला जीता रखे। जोड़ी सलामत रहे, एक से इक्कीस हों, खुदा करे।"

रमेश ने बड़े मियां को भी मिठाई-इनाम देकर टाला।...घर अब उनका था, जिनकी आंखों में लाज और चाहत की घातें चल रही थीं।

रात के साढ़े बारह बज रहे थे। रमेश और रानी अपने-आपमें पूर्णता का एक नया बोध पाकर मगन मन उमंगों और तरंगों पर चढ़े हुए थे। अभी मिठाई के दो टुकड़े खाए, फिर अभी कमरे को देखकर मन में आया कि यह पार्टीशन पूरब-पश्चिम की बजाय उत्तर-दक्षिण की दीवारों में लगाया जाए; फिर ये बात आई कि तीन-चार महीने में रुपये जोड़-जोड़कर रेडियो ले लेंगे, फिर रानी बोली :

"आओ, ज़रा सैर करें।"—अपने साम्राज्य की सैर करने लगे। सहनची में गए, रसोईघर की चीजें देखीं और कुछ वस्तुओं की आवश्यकता महसूस की। गुसलखाने की नुक्ताचीनी की, फिर थोड़ी देर गोमतीवाली छत की सैर की। उमस रहते हुए भी वहां के खुलेपन में, खण्डहरों, हरियाली और नदी की रुपहली पट्टी से सजी धुन्धभरी चांदनी रात में एक-दूसरे को प्यार किया। अपने सौभाग्य से सन्तुष्ट एक-दूसरे के नशे में डूबे हुए दो आज़ाद परिन्दे एक-दूसरे से सट कर चौड़ी मुंडेर पर बैठे थे। उनकी शान्ति में दखल करती हुई एकाएक तेज हवा चली, आंधी आई और वो आंधी इतनी तेज हुई, इतनी धूल-धक्कड़ भरी कि बेमजा बन गई। दोनों कमरे में आ गए और फिर पटापट बड़ी-बड़ी बूंदों वाली बरसात और घन गरज, बिजलियों की कड़क—मौसम से कुछ पहले ही सावन-भादों का समा बंध गया। अभी मानसून शुरू नहीं हुआ था। इधर एक सतवारे में गर्मी बच्चे, जवान, बूढ़ों सबको सता रही थी। इस मूसलाधार बरसात ने नए ब्याहुलों को रसरंग से शराबोर कर दिया। पानी बरसता ही रहा। कमरे के नीचे से पनाले का तड़तड़ शोर सुनाई पड़ रहा था।

एक बार कमरे की लाइट फिर जली, मानो ड्रामा के एक एक्ट के बाद हॉल में रोशनी आई हो। रमेश एक मस्त अंगड़ाई लेकर उठ बैठा। मेज पर तश्तरी में रखी एक गुलाबजामुन अपने मुंह में डाली और दूसरी रानी के मुंह में रखते हुए बोला: "शहर के इकतालीस हज़ार घरों में आज एक नया घर हमारा भी जुड़ गया।"

"तो इकतालिस हज़ार एक कहो ना।"

"इकतालिस हजार एक सही भाई। राम करे, सब हमारी ही तरह सुखी हों—और इस समय तो सचमुच ही सुखी होंगे भी।"

"क्यों?"

"क्यों क्या, इस बरखा की बहार को देख रही हो ना। हर गली, हर कूचे-सड़क पर, पांच सौ सोलह मुहल्लों में आबाद लखनऊ के इन इकतालिस हज़ार एक मकानों की छतों, छज्जों और आंगनों में इस दम यही तरावट होगी।"

"तुम्हें ये मकानों-महल्लों की संख्या-उंख्या खूब याद है।"

"श्रीमती जी, मैं पत्रकार हूं—"

इसी समय सामने वाली छत की तरफ से हवा और बरसात के शोर को चीरता हुआ एक बहुत बड़ा जनकोलाहल उठा। रानी ने चौंककर पूछा: "क्या हुआ?"

"पता नहीं, पर हुल्लड़ बड़ी ज़ोर का हुआ है। मेरी जान में अहाते में कुछ हुआ है। दरवाजा खोलकर देखूं?" रमेश छतवाले दरवाजे की तरफ बढ़ा, रानी बोली: "भीग जाओगे।" पर रमेश बढ़ गया। दरवाजे को ठेलते हुए हवा के धक्के को दबाकर उसने दरवाजा खोला। सन-सन हवा और तेज बौछार और सामने अहाते के शोर ने एक साथ ज़ोर से कमरे में प्रवेश किया। शोर शायद खुदायार खां के अहाते ही से आ रहा है।...

सबेरे का मौसम साफ सुहाना था। चाय पीने के बाद रमेश रात के समय खुदायार खां के हाते में मचनेवाले शोर का पता लगाने गया। रानी नहाने-धोने में लगी। इतने में कुंअर रद्धूसिंह आये। लड़की के लिए साड़ी और ब्लाउज का कपड़ा और दामाद के लिए एक हल्के मेल की सोने की अंगूठी और मिठाई। रानी

से अपना रोना रोने लगे : "तुम्हारी नई अम्मां ने तो जैसे जनम भर ही के लिए बैर साध लिया है । उसे समझाओ न । तुम्हारे ब्याह की खातिर ही उससे हमारी कहा-सुनी हुई थी। अब तो ब्याह भी हो गया। और देखो हम राजी भी हो गये। अपने बाल-बच्चों से भला किसी का बैर हो सकता है। मगर तुम्हारी नई अम्मा हमसे आज भी नहीं बोली। उसके इस्कूल जाने को भी हम अब मना नहीं करेंगे, हमने कल रात ही में खुशी-खुशी यह कह दिया था। तो भी उसने बात न की। कतरा के चली गयी।"

पिता के दुःख पर रानी को मन-ही-मन रसमयी हंसी के साथ दया भी उपजी। प्रकट रूप में संयत भाव से कहा कि वह आज ही नयी अम्मां को समझाएगी।

थोड़ी ही देर में रमेश भी आ गया। ससुर ने बड़े गद्गद भाव से अपने दामाद का स्वागत किया। बड़े-बड़े आशीर्वाद दिए और यह बतलाया कि रानी की ओर से वे कितने चिन्तित और दुखी रहा करते थे। रमेश ने उन्हें उबार लिया। रात की पार्टी की बातें करते रहे। रद्धू बाबू ने बतलाया कि : "कल रात आप लोगों के आने के बाद डॉक्टर आत्माराम जब चलने को तैयारी में थे—रुप्पन लाला, बैंजू लाला, गणेशजी वैद, खन्नाजी वगैरह सभी आपुसवाले बड़े-बड़े लोग भी बातें करते चल रहे थे तभी अचानक—यहां एक बद्रीपुर रियासत थी, उसके लाल साहब हैं—

"फिर वही कि लाल साहब और उनकी रण्डी ने आकर उन्हें घेर लिया। पिये हुए थे दोनों। रण्डी बहुत बनकर बोली कि भाई साहब, आदाब। पहचाना नहीं आपने। डॉक्टर साहब बिचारे अचंभे में। बोले, 'नहीं।' फिर उसने बतलाया कि वह उनकी मुश्तरी अम्मां और 'पापा' की औलाद है। इत्ती देर में लाल साहब भी अकड़ के बोले कि हमका पहिचान्यौ आत्माराम? छुटपने मां हमारे इन्दरमहल मां दुई बार आये तौ रहे अपने बाप के साथ। डॉक्टर साहब ने मीठे तौर से उनसे बातें कीं, पर लाल साहब घुत्त थे, अकड़ में गाली देके बोले कि तेरी बहन को नौकर रक्खे हूं, साले अदब से बात कर। इस पर खन्ना साहब ने कस-कस के दो झापड़ लाल को मारे। नशा हिरन हो गया। लाल साहब फिर गाली बकने लगे। बैंजू लाला वहीं खड़े थे। लाल साहब के पुराने दोस्त हैं। वह उन दोनों को समझा-बुझाकर अपने साथ ले गये, तब मामला शान्त हुआ।"

साढ़े नौ-दस के लगभग खन्ना साहब का नौकर यह खबर लेकर आया कि पुत्ती गुरू सबेरे मुहल्ले के कुएं में, चबूतरे पर बैठे लोगों से यह कहके कूद पड़े थे कि उनके लड़के-बहू हुसैनाबाद में मुसलमान बनने के लिए गये हैं, और वो जान दे देंगे। खैर, बचा लिये गए हैं, चिन्ता की बात नहीं, पर बहनजी ने कहलाया है कि आप दोनों वहां हो आवें। रमेश तैश खा गया, उसे अपने पिता से बेहद घृणा हुई। बोला : "मैं नहीं जाऊंगा, वरना झगड़ा हो जायगा।" रानी बोली : "मैं जाऊंगी।" रमेश बोला : "जाओ, मेरे बारे में पूछें तो कह देना कि जब तक बाबू ये झूठ-मूठ के तमाशे करेंगे, तब तक मैं उनसे सम्बन्ध नहीं रक्खूंगा! अपने दुर्हठ में वे चाहे जो करें—मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं। और तुम न कह सको तो मैं ही लिख के दिये देता हूं। मैं ऐसे समझौते हर्गिज नहीं करूंगा।" रमेश ने तैश में बाप के नाम चिट्ठी में यही लिख दिया। कहा, दे देना, मैं दफ्तर जाता हूं!"

शाम को साढ़े तीन-चार बजे के लगभग दफ्तर के चपरासी ने आकर रमेश

को खन्ना साहब का 'सलाम' बोला। उनके कमरे में रमेश ने देखा कि हाजी नबीबख्श के वैध बेटे नादिरबख्श भी बैठे हुए थे। खन्ना ने रमेश को बैठने का आदेश दिया, फिर मेज पर पेंसिल से ठक-ठक करते हुए बोले : "रमेश, मेरा ख्याल है कि तुम लाल कुंवर बहादुर और वहीदा बेगम को जानते हो।"

"जी हां, आप तो जानते ही हैं। वहीदा बेगम की कोठी ही में तो बाढ़—"

"हां, वही। एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी का काम तुम्हें सौंप रहा हूं···तुम जानते हो कि वो सर शोभाराम की तवायफ—"

"जी। मैं उन्हीं के मुख से सुन चुका हूं।"

"ओह, तब तो मामला आसान हो जायगा।···बात ये है रमेश कि कल तुम लोगों के जाने के बाद लाल साहब और वहीदन—"

"जी हां, यह भी अपने फादर-इनला (ससुर) से आज सबेरे सुन चुका हूं।"

"मगर शायद तुम यह नहीं जानते कि वहीदन आज घर से निकाल दी गई है।"

"अरे!" सुनकर रमेश को अनायास ही एक धक्का-सा लगा : "लाल साहब ने निकाल दिया?"

"नहीं, लाल साहब तो आज सुबह कानपुर गए हैं। उनके बड़े लड़के ने निकाला है। राधेरमन उसकी पुश्त पर हैं। कल के तमाशे की वजह से दोस्त-दुश्मन सभी लाल से बेहद नाराज हैं। डॉक् के लिए सबके मन में आदर तो आखिर है ही।" खन्ना साहब ने इसके बाद में संक्षेप में बतलाया कि एक जायदाद, जिसे लड़कों के बालिग हो जाने के बाद उन्हें बेचने का कोई हक नहीं था, बेचकर लाल साहब ने वहीदन को कोठी और जेवर दिलाए थे। परसों ही लाल साहब के लड़कों और पत्नी को यह बात मालूम हुई। और कल के तमाशे से गुस्से को शह मिली। भेद लाला रेवतीरमन ने खोला था। लाल साहब के बड़े बेटे कुंअर त्रिवेनी-सहाय को उसने अपनी ओर मिला लिया है। राधेरमन, रेवतीरमन वगैरा अब लाल को खत्म कर देना चाहते हैं, वह पूरी तौर पर उनके काबू में नहीं हैं। कल लाल साहब के घर पर काफी उपद्रव हुआ था और वे वहीदन के यहां चले गए थे। बाद में पीकर शाम को पार्क में ये तमाशा कर दिया। आज वे शायद किसी शिकारी को फंसाने के लिए ही कानपुर गए थे। इधर चार पुलिसवालों को रिश्वत के डण्डे से हांककर त्रिवेनीसहाय ने अचानक वहीदन का घर घेर लिया, उसे लूट लिया फर्नीचर और सामान ट्रकों पर लाद कर ले गए। वहीदन के गहनों का बक्स, मकान सम्बन्धी काग़ज, कुछ लाल साहब के गोपनीय और महत्त्वपूर्ण काग़ज़ भी चले गए। वहीदन देखती ही रह गई। सामान वहां से हटते ही पचास मजदूर कोठी की छतें और दीवारें ढाने लगे। वहीदन फिर भी देखती रही। मकान में एक भी दरवाजा नहीं रहने दिया, एक भी कमरा या कोठरी इस काबिल नहीं रखी कि उसमें कोई बैठ तक सके। मगर वहीदन वहीं बैठी है। खन्ना साहब ने कहा : "मैं यह चाहता हूं कि तुम वहीदन बेगम के पास जाओ और उन्हें किसी तरह से मनाकर यहां ले आओ। ये हमारे नादिर मियां बाद में उनके बाइज्जत बाआराम रहने का इन्तजाम करने के लिए ही यहां बैठे हैं। जाओ बेटे, खूब जिम्मेदारी से, हां! ये डॉक् के पिता की इज़्ज़त का प्रश्न है।"

"मैं अभी जाके कोशिश करता हूं।" रमेश एक साथी की साइकिल पर तुरन्त ही रवाना हो गया। उसे बाढ़ के वे साथ बिताए हुए दिन याद आ रहे थे। कितनी आन्तरिक घृणा उसे उन दोनों से हुई थी, लेकिन इस समय वहीदन पर हुए अत्याचार से वह बेहद दुःखी था। उस बेचारी का क्या दोष ? लाल ने अपराध किया था। बेचारी वेश्याओं का जीवन कितना अरक्षित है। पैसेवाला हर तरह की धांधली कर लेता है।

वह कोठी, जहां उसने अपने जीवन का सबसे अधिक भीषण और भयानक अनुभव पाया था, इस समय टूटी, खुदी और मलवे से भरी हुई थी। रमेश को वह बाढ़ के दृश्य से भी अधिक भयानक लगा। सारी जगह ढूंढ़ा, वहीदन कहीं न मिली, क्योंकि यह उस क्षेत्र की अंतिम और सबसे अलग पड़नेवाली कोठी थी। निराश रमेश, दफ्तर लौटा। खन्ना साहब ने कहा : "लाल साहब यहां जगह न पाकर शायद अपने घर ही जाएंगे, मगर वहीदन को वहां हर्गिज न ले जाएंगे। तुम एक बार उनसे मिलकर हो सके तो बात की थाह लो। वहीदन को सहायता देना आवश्यक है। लेकिन यह बात लाल को न बतलाना, उसे यह शक भी न हो कि तुम वहीदन के लिए यहां से भेजे गए हो।"

दफ्तर के जिस मित्र की साइकिल लेकर रमेश वहीदन की कोठी पर गया था, वह उसे लौटा देनी पड़ी। दफ्तर की साइकिलों में से एक का पता न चला। अमुक चपरासी ले गया है, अमुक चपरासी ले गया है, सुन-सुनकर वह झल्ला गया। उसने सोचा था कि साइकिल पर सीधे घर जाता, वहां से इन्दर महल डेढ़-दो मील है, मगर यहां तो साइकिल ही नदारद है। झल्लाहट कुछ इसलिए भी थी कि नई दुलहिन का संग छोड़कर लाल और वहीदन जैसे घिनौने जीवों के साथ शाम बितानी पड़ेगी। वहीदन लाल ही के यहां होगी। ध्यान-चक्र की गति तनिक तीव्र हुई, पुराने प्रतिबिम्ब उभरे। कहीं दूर-दराज से वह नौकर-कन्या, जिसका नाम अब याद नहीं, जिसने मौत के समय उसे बचाने में अपने तनस्पर्श की संजीवनी दी थी। ···गुदगुदी। रानी·· वहीदन·· फिर घृणा भरी खखार। वह क्या कम मुंहजोर और हठीली है। आखिर सर शोभाराम की औलाद है।···छिः ये बड़े लोग अपनी काम-वासना के निमित्त से कितने आवारा पिल्ले-पिल्लियां, हर पीढ़ी में दुनिया को अपने निरर्थक अस्तित्व से प्रेरित होकर भौंकने और काटने के लिए छोड़ जाते हैं। लेकिन क्या ये आवारा संतानें अकेले बड़े लोग ही छोड़ते हैं ? अभी छह-सात दिन पहले गोलागंज के फुटपाथ पर एक पगली भिखारिन सरेआम बच्चा जन रही थी और पब्लिक रसीले कौतूहल के साथ यह तमाशा देख रही थी। कुछ लोग पगली के प्रति सदय थे और उस आदमी को कोस रहे थे, जिसने नवजन्मा को उसके गर्भ में प्रतिष्ठित किया। किसे दोष दिया जाए ? वैध-अवैध सभी तरह की सन्तानें अधिकतर स्त्री-पुरुषों की भोगेच्छा वश ही पैदा होती हैं। 'पुत्रेष्टि-यज्ञ' की पवित्र सन्तानें करोड़ में एक होती होंगी। परिवार नियोजन के इन दिनों में यह परिवर्तन अवश्य आ रहा है कि सन्तानें सोद्देश्य होने लगी हैं।

सड़कों पर रात का प्रकाश चमक उठा, लेकिन अस्त हुए दिन की शेष आभा में अभी अपना पूरा रूप-निखार पा न सका। बस की प्रतीक्षा में खड़े पन्द्रह-बीस मिनट गुजर गए। उसके आस-पास दूसरे यात्राकांक्षियों की छोटी-सी भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी, सभी शिकायत कर रहे थे कि बसें अब देर में आने लगी हैं। स्वराज की निन्दा और ब्रिटिश राज की प्रशंसा तक हो गई, पर बस न आयी। रमेश

आखिर कब तक खड़ा रहे? उसे अपने घर और यहां से डेढ़ मील आगे तक पहुंचना है। रिक्शा लिया, हुसैनाबाद के बारह आने! — अच्छा, चल भाई। अपनी गरज बावली है। यह महंगाई तो दिन-दिन बढ़ती जा रही है। लगता है कि असलियत में सारी शासन-व्यवस्था ही जन-चेतना से दूर होती चली जा रही है। और वह भी हठीले समाजवादी जवाहरलाल नेहरू के रामराज में। लगता है, यह मिश्रित अर्थ-व्यवस्था ही सारी बुराइयों की जड़ है। शासन एक दल से, समाजवादी हो तो क्योंकर हो? रिश्वतें देकर प्राइवेट पूंजीवाले लोग अधिकारियों-कर्मचारियों को अपने स्वार्थ में फंसाए रहते हैं। रिश्वतों के इन चटोरों को सार्वजनिक पूंजी क्षेत्र में भी साझे की लूट करने के लिए सरकारी पार्टी के लोग फंसाए रखते हैं। अच्छे काम करनेवाले इन बुरों के चक्र से दूर ही रहकर अपनी जान बचाते हुए चुप और निष्क्रिय हो रहे हैं। फिर बुराइयां क्यों न बढ़ें, महंगाई क्यों न बढ़े। · फिर सोचा, शिकायतें तो सब ठीक हैं···पर गांधी की एक बात पढ़ी थी — कि मैं समाज को जोर-जबर्दस्ती से नहीं बदलना चाहता, उसके आत्मविकास में सहायता देना चाहता हूं। फिर जो अहिंसक समाजवादी व्यक्तित्व व्यक्ति और समाज के अन्तर से प्रस्फुटित होगा, उसी से सच्ची सभ्यता होगी।··· जो हो, फिलहाल तो जनता पिस रही है। यह नेहरू मार्का समाजवाद धोखा है।

चारों ओर दीवाली-सा जगरमगर शहर, दुकानें, दिल जलानेवाली लुभावनी आतिशें, आंखें सेंकनेवाली खूबसूरत जादुई भट्टियां, फिल्मी गानों की गूंज, रेडियो का स्वर प्रसार, मोटरों, बसों के बेसुरे भोंपू, रिक्शेवालों की 'ट्रिंग-ट्रिंग' घण्टियां, घोड़ों के घुंघरू—चहल-पहल भरे जीवन की गूंज, तेजी के साथ सन्नाटे वाली बस्तियों की ओर बढ़ते हुए, पीछे छूटने लगी। वो सड़क भी पीछे छूट गई, जहां कल तक वह अपने घर जाने के लिए रिक्शे या बस से उतर पड़ा करता था: एक कसक, फिर पिता की याद—मेरे न जाने से बेहद दुखी हुए होंगे। बेहद भावुक और झक्की हैं। कुएं में कूद पड़े —भला कोई तुक है! उस घर में रहकर क्या मैं अपने भविष्य के सारे सपने समाप्त कर दूं? मुझे वो हिन्दुस्तानी जीवन का पुराना ढर्रा नापसन्द है। मैं बाबू से, अम्मां से, सारे घर से अपना कर्त्तव्य भरा नाता रखता हूं···मगर यह झटका देना आवश्यक था। मैं अपना व्यक्तित्व अपने ढंग से बनाना चाहता हूं। रानी से पूछूंगा, घरवालों से क्या बातें हुईं। — रमेश के मन में इस समय अपने घर पहुंचने की ललक बार-बार हुचक उठती थी। बहनजी ने 'उसे' आठ रोज की हनीमून लीव दी है। एक रात और एक सुबह में रानी ने उसे रंक से राजा बना दिया है।— इतना प्रेरित किया है। और 'नौशेरवां मंजिल' आ ही गई। रमेश ने रिक्शेवाले से इन्दर महल चलने का सौदा पक्का करना चाहा, मगर वह राजी न हुआ।

ऊपर पहुंचकर देखा कि घर में रानी ही नहीं, मन्नो भी मौजूद है। मन खिल उठा, नये जीवन में पुराना किन्तु आवश्यक आश्वासन पा लिया। बाबू इस समय खूब सूचित्त हैं। पहले तो सबको बड़ा धक्का लगा, मगर जब निकाल लिए गए और सब डॉक्टरी जांच की कुशल-मंगल मन गई तो सभी उनकी हंसी उड़ाने लगे। रुप्पन चाचा, बैजू लाला, छोटे-बड़े पचासों लोग, सगे-सम्बन्धी, औरतें, जिसने सुना वही दौड़ा आया। बहू को देखते ही पुत्ती गुरू उठे, रमेश के सम्बन्ध में पूछा। रानी झूठ बोल गई। कहा था कि सबेरे पांच बजे ही खन्ना साहब ने किसी जरूरी काम से बुलवा लिया था। रमेश की चिट्ठी रानी ने नहीं दी।

वातावरण दिन भर बड़ा मधुर रहा। चलते समय मन्नो को रानी अपने साथ ले आई। सुरेश भी साथ आया था। अभी-अभी गया है।

नये सुख और स्वाद की चाय पी, टोस्ट-पकौड़ियां और हलवा खाया और फौरन ही निकल पड़ा। इन्दर महल है, तो यहां से पास ही, पर डेढ़-दो मील का बीहड़ सुनसान रास्ता है। सड़क पक्की है, मगर आस-पास जंगल है। हुसैनाबाद के चौराहे पर आया। दो रिक्शेवालों से पूछा, 'वहां कौन जाएगा साहब इस वखत ?' यही जवाब मिला। एक इक्केवाले ने 'इन्दर महल' को जनप्रचलित नाम बन्दर महल से पुकारा। उस इलाके में बेहद बन्दर हैं। रास्ते में भूतों का अड्डा है। बिना पूछे ही यह भी कह दिया कि वहां कोई इस दम पांच रुपये भी दे तो न जाएंगे। बन्दर महल के नाम से पास ही खड़े इक्के की भद्र सवारी ने भद्र रमेश से अंग्रेज़ी में बड़बड़ा कर कहा : "क्या आप भी इन्दर महल जाना चाहते हैं ? ओह, कैसा सौभाग्य है। मैंने स्टेशन से वहां तक का पूरा इक्का किराया चुकाया है। आपको देना कुछ न पड़ेगा और मुझे साथी मिल जाएगा। देखिए, यहां के लोग भी कह रहे हैं कि रास्ते में भूत हैं, जंगली जानवर हैं। खैर, पढ़ा-लिखा होने से मैं भूत से तो उतना भय नहीं खाता जितना कि इस बात से कि इक्केवाला 'एम' है और रास्ता सुनसान है और मैं करीब पच्चीस-छब्बीस बरसों के बाद इस नगर में आया हूं" ··· आदि-आदि। सवारी महोदय एक सांस में दो मिनट का वार्ता राकेट छोड़ गए।

अपने सौभाग्य पर तो रमेश अचानक प्रसन्न हुआ ही था, उसे सवारी महोदय अपने पूरे ढब-ढांचे में बड़े भोले और रोचक भी लगे। बाबू साहब अधेड़ उम्र के थे। भूरे बालों की अंग्रेज़ी कटाई यह साफ बतला रही थी कि किसी देहाती नाऊ ने काटे हैं। खूब गोरे चिट्टे, लाल बूंद, ऊपर से गोल-मटोल भी। सुनहरी कमानी के टेढ़े लगे चश्मे पर पसीने की काई जमी हुई थी। गो पहने वे सूट ही थे, मगर इस फैशन से कि लोग-बाग उन्हें मिर्जई और घुटनियां धोती ही मे समझें। खुशामद में उनकी जल्दी-जल्दी मिचमिचानेवाली आंखें बड़ी मजेदार लगती थीं : हर बार अपने तकिया कलाम 'यू सी' पर उनकी पुतलियां चमककर निकल पड़ती थीं। रमेश को यह सोचकर मजाक सूझा कि भूतों और 'एम' यानी मुसलमान इक्केवाले के भय से साथ के लिए गिड़गिड़ा रहा है, वह बोला : "हां, जाना तो मुझे ज़रूर है, पर ये भूतों और बन्दरों से मैं भी घबराता हूं। इसलिए अब मैं नहीं जाऊंगा।"

"पर 'यू सी', बन्दर तो रात के समय हमेशा सोया ही करते हैं। उनसे आपको डरना नहीं चाहिए। मेरे पास उनके मारने के लिए ये छड़ी काफी है।"

"मगर साहब भूतों का क्या होगा। मैं चूंकि पढ़ा-लिखा हूं, इसलिए भूतों को मानता हूं। मान लीजिए, अपना अस्तित्व वैज्ञानिक तौर पर सिद्ध करने के लिए, मेरे साथ-साथ आपको भी अखबार का रिपोर्टर समझकर वो हमें इण्टरव्यू देने और अपने कल्चरल प्रोग्राम दिखलाने आ जाएं, तब क्या होगा ?"

"आप तो मजाक करते हैं।"

"जी इसमें मजाक की नहीं, सम्भावना की बात है। होनी को कौन रोक सकता है ?"

"अरे साहब, वो सब कुछ नहीं, असली बात तो 'एम' की है। 'यू सी' मैं ज़रा जोखिम—'यू सी' ! अब यहीं देखिए, दस मिनट से इक्का खड़ा करके चला गया

कि घर में पैसे देकर अभी आता हूं। आपको, एक भद्र पुरुष को, यहां देखकर मुझे ढाढस बंधा, वरना घबरा रहा था कि कहीं चक्कर में—"

तभी इक्केवाला नब्बन आ गया : "माफ कीजिएगा हुज़ूर, टेम लग गया।" इसी बीच में रमेश भी इक्के की तरफ बढ़ा, इन्दर महल जाना-आना हैं।" "आइए, तसरीफ रखिए हुज़ूर। जाने का बाबू साहब दे रहे हैं, बैठी सवारी राजी है। और वहां से यहां तक लौटता तो खाली हाथ। इसलिए आपसे दाम नहीं चुकाऊंगा। जो कुछ भी हुज़ूर बखसीस दे देंगे, उसे ही सलाम करके कुबूल करूंगा।"

रमेश बैठ गया। 'गोलमटोल' जी की बत्तीसी सन्तोष भरी खुशी से खिल गई। पास खड़े इक्केवान ने कहा : "नब्बू, बन्दर महल की अलंग जा रहे हो तो कुछ हरबा-हथियार ज़रूर रख लो।"

"फिकर नई बाश्शा। सब है।"

गोलमटोलजी ने पुतलियां चमकाकर रमेश से कहा : "यू सी?"

"आई सी।"—रमेश ने एक बनावटी भय भरी आह भरकर कहा : "देखिए क्या होता है।"

"क्या आपको भय नहीं लगता?"

"न।"

"क्यों?"

"क्योंकि हमारे नगर में 'एच-एम' (हिन्दू-मुस्लिम) समस्या दरअस्ल नहीं है —यों नकली तो है। क्यों मियां, कहां रहते हो?"

"हुज़ूर, यहीं खुदायार खां के हाते में।"

"अच्छा वहीं, जिसमें कल रात पानी भर गया था और सांप निकला था?"

"जी हां हुज़ूर, वहीं।"

"वहां तो आज सबेरे मैं गया था। मैं भी वहीं नौशेरवां मंजिल में रहता हूं।"

"अच्छा, हुज़ूर को कभी देखा नहीं—इसी से। मैंने भी आज सबेरे चार दिन बाद कदम रखा था हुज़ूर। ठाकुरगंज के ताड़ीखाने में दिन-रात बिता दिए।"

"अमा, इतनी पीते हो। कुछ बाल-बच्चों का भी खयाल रखना चाहिए।" रमेश से यह सुनकर नब्बू ने एक गहरी सांस ली और बोला : "बाल-बच्चों ही का तो गम भुलाने के लिए हज़ूर अपने होस को महुए-ताड़ी की आरी से रेतता रहा, मगर गम भी ऐसा काफिर निकला सरकार, कि आठ रुपये ठेकेदार के उधार हो गए मगर गम गलत न हुआ। खुदा ऐसा दिन किसू को न दिखाए।"

पूछने पर रमेश को मालूम हुआ, पांच दिन पहले दो-ढाई घंटे के हेर-फेर में नब्बन मियां के वो बच्चे चटपट हो गए। सात औलादें पहले छीजीं तब ये दो बच्चे हुए थे! मसूमन पांच बरस की थी, उसे चेचक निकली, डबल निमोनिया हुआ और चल बसी। घर में कोहराम मचा। मरद लोग उसकी मैयत-मिट्टी में गए और लौट के आए तब तक दो बरस के अमजद को ठण्डा पड़ा देखा। घर में रोआ-पीटी पड़ी थी। किसी को बच्चे का ध्यान न आया। बच्चा जाने किस वक्त मां के पास से उठकर कुएं वाली कोठरी में चला गया। फिर जब ज़ोर के छपाके की आवाज़ आई तो बुढ़िया चौंकी। बच्चे को निकालने के लिए आदमी ढूंढ़ने में भी काफी समय लग गया। और अमजद जब निकालकर ऊपर लाया गया तो

लाश बन चुका था। नब्बू मियां ने जब घर आकर यह देखा तो उनका भेजा ही पलट गया। अल्ला मियां को गालियां दीं, घरवाली को दीं, मरनेवाले बच्चों को भी दीं और अपनी किस्मत की मां के साथ जबानी सेज पर बलात्कार करते हुए वह जो घर से चला तो सीधे, मैंकू ताड़ीवाले के ठीके पर जाकर दम लिया ··
"फिर कल रात हुजूर, जो पानी बरसा तो मुझे ऐसा लगा कि बरसात में से अल्ला मियां की आवाज निकल रही हैगी कि नब्बू, अबे चूतिया हुआ है बे। अबे लौंडे मेरे थे, ले लिए। घर जा, तेरी लैला ने दाने में मू तक नहीं मारा है। तेरी बीवी मछली जैसी तड़प रही है। जाके उन्हें तसल्ली दे। सो हुजूर, आज सुबू नौ बजे जो आंख खुली तो सीधा घर ही आया। घरवाली के आंसू पोंछे, ऊंच-नीच समझाई, तसल्ली दी। मैंने कहा कि अरी मुझे देख, मुझे देख, सीने पे पत्थर रख के मूंछों पर ताव दे रहा हूं। अब आप ही बताइए हुजूर कि अल्ला के खेल में बन्दों का दखल ही क्या हो सकता है। अगर सलामत रहा तो हुजूर मैंने कहा कि अरी, ये आठों भी हमने तुमने ही पैदा किए थे, फिर साले आठ पैदा कर लेंगे। अभी मेरी उमरि ही क्या है हुजूर, दो कम पचास का हूं खाली।"

सुनकर दूसरे बाबू साहब बोले : "अरे भाई, अड़तालिस की उमर में तो हम बूढ़े हो गए।"

'हां हुजूर, बात ये हैगी कि जमाना पलट गया है। पहले सरकार जो लोग दूध-घी खाते थे, उनमें ताकत हुआ करती थी, और अब सरकार, जिन्हें ये सब नसीब नहीं होता उनमें ताकत होती है। अल्ला मियां आखिर गरीब बन्दों का भी किसू न किसू तरह से दिल तो रखते ही हैं हुजूर, कि मैं कुछ झूठ कहता हूं।'

रमेश ने जेब से सिगरेट की डिबिया निकाल ली थी, उसे खोलते हुए बोला : "भैया, अब जमाना हमारा-तुम्हारा ही आ रहा है, जिन्होंने सदियों मुसीबतें झेलीं; हम अब मजा पाएंगे और जो अब तक मजे में रहे—"

"वो अब भी मजा पाएंगे सरकार। हम तो दरद के मारे हुए लोग हैं न, इसलिए उनका दुःख-दरद खयाल करेंगे। मगर ये दईमारे किसू का खयाल नहीं करते।"

रमेश ने बाबू साहब की ओर सिगरेट बढ़ायी बाबू साहब ने 'नो थैंक यू' और 'यू सी' कहकर बतलाया कि वो अपनी सिगरेट पीते हैं। वो इण्टरमीडिएट कालेज के वाइस प्रिंसिपल हैं और अपने छात्रों तक को यात्रा में किसी अनजान यात्री से खाने-पीने की चीजें ग्रहण न करने का उपदेश देते हैं तब वे स्वयं कैसे करें। रमेश को उनका यह जवाब खासा बेतुका लगा। उन्हें मन ही मन एक बार उल्लू का पट्ठा कहकर सिगरेट नब्बू मियां की ओर बढ़ायी। नब्बू ने तुरन्त ही सलाम करके अपने लैला की लगाम कसकर कहा : "रुक जा मेरी जान; जरी सिगरेट सुलगा लूं, हवा तेज है साली।"

दायें-बायें दूर-दूर तक काले पेड़ों का अंधेरे का बसेरा था। झिल्ली-झींगुरों की झनकार एक-सा शोर मचा रही थी। सांपों की सीटियां भी सुनाई पड़ रही थीं। सिगरेट सुलगाकर धीरे से नब्बू का हाथ दबाते हुए रमेश ने कहा : "क्यों भाई, हमने सुना है कि रात में यहां भूतों का बाजार लगता है। कितने बजे से शुरू होता है?" संकेत बूझकर नब्बू बात ले उड़ा, बनावटी सहमे स्वर में बोला : टैम तो हो गया है हुजूर! इसी सड़क पे चौमासे भर हजूर भूतों की बरातें निकलती हैं, हमने अपनी आंखों से देखी हैं सरकार; चौमासे भर इनकी सहालग

रहती हैगी। जब आप लोगों के देवते सो जाते हैं तब इनका काम शुरू हो जाता है हुज़ूर। बस अब तो निकलने ही वाली होंगी इनकी बरातें। यहां नहीं तो अगले मोड़ पर, हांऊं-हांऊं, खांऊं-खांऊं करती हुई दिखाई पड़ जाएंगी।

बाबू साहब ने घबराकर बिस्तर का सहारा छोड़ दिया और तनकर बैठ गए। रमेश बोला : हां मियां, भूतों से बड़ा डर लगता है हमें भी।"

"अजी, डर की कोई बात नहीं ना हुज़ूर, गरीबों और ईमानदारों से भूत बोलते तक नहीं। हां, अब ये बात न्यारी हैगी कि कोई खूबसूरत और तगड़े डील के आदमी को देख के कोई चुड़ैल उसपे आसिक हो जाए। यह हो जाता हैगा सरकार। आसिक-मासूकी में तो किसी का वस चलता नहीं हैगा सरकार, आप जानते ही हैं।"

बाबू साहब खखारे और रोब से कहा : "हिन्दू मरघटे के भूत उन ब्राह्मणों को नहीं सताते, जो गायत्री मंत्र जपते हैं।" रमेश ने कहा कि साहब ब्रह्मराक्षस ब्राह्मणों तक की परवाह नहीं करते। दो साल पहले इसी जगह पर आठ ब्राह्मण मरे थे, क्यों मियां मालूम है न तुम्हें ?"

"अरे हुज़ूर मालूम क्या, सारे लखनऊ में हलचल मच गयी थी। वो बात ये हैगी सरकार कि हर सहालग में इन्हें ब्याह कराने वाले बाह्मन चाहिए –"

बाबू साहब ने रमेश से अंग्रेज़ी में कहा कि वो कृपा करके मजाक बन्द कर दे। रमेश ने अपनी झेंप मिटाते हुए कहा : 'मैं मजाक नहीं कर रहा बाबू साहब, यहां भूतों का बासा माना ही जाता है। सौभाग्य से अगर हमें न मिलें तो अच्छा है।" कहके फिर बाबू साहब को ज़रा दूसरे ढर्रे पर उतारा, बातचीत में लगाया। पता लगा कि कुसुंभीपुर के भूतपूर्व महाराज साहिब के कुमार जी इस साल हाईस्कूल में बैठे थे। उन्हें परीक्षा में पास कराने के लिए वाइस प्रिंसिपल साहब ने अप्रैल-मई में मेरठ, कानपुर, आगरा, इलाहाबाद और लखनऊ में परीक्षकों का पोशीदा तौर पर पता लगाकर उन्हें रुपये बांटे थे। भगवान की कृपा से कुमार साहब सेकेण्ड डिवीजन पास हो गए। हमारे ये बद्रीपुर के लाल साहब के अध्यापक पुत्र कुंवर शंकरसहाय के पास इतिहास की कापियां आई थीं। तब तो राजा साहब कुसुंभीपुर ने लाल साहब बद्रीपुर को एक टेलीफोन कर दिया था तो काम बन गया था। अब उसी की एवज में राजा साहब ने लाल साहब के कुंअर जी के लिए कुछ भेंट भेजी है जिसे लेकर वो आए हैं। बातों ही बातों में बाबू साहब ने रमेश को बतलाया कि राजों-रईसों के बनवाये हुए स्कूलों के प्रिंसिपल, वाइस प्रिंसिपल, हैडमास्टर आदि आदिमियों की तरह नहीं, गधों की तरह बरते जाते हैं। अच्छा भला आदमी इनकी नौकरी में फंस जाये तो गधा बन जाये।

मोड़ आ गया। सड़क के बाईं ओर खेत और दाहिनी ओर किनारे का मैदान रुपहली लकीर की तरह चमकती हुई नदी। किनारे वाली सड़क मसान की ओर गयी थी और बाईं ओर वाली जंगल की राह, बद्रीपुर वालों के इन्दर महल की ओर। सब तरफ सांय-सांय, न आदमी न आदमजात, झींगुरों की झनकार, सियारों की हुक्का हुआं, अंधेरे पाख के चमकते हुए सितारों और सड़क के लैम्प-पोस्टों की तरह ही रमेश को नब्बू और वाइस प्रिंसिपल के भी दो पहलू दिखलाई दिए। एक नब्बू था जो दु:खभरी जिन्दगी झेलकर भी अपनी अन्दर की आस्था से जगमगा रहा था और दूसरे वाइस प्रिंसिपल महोदय थे, जो अपनी आजादी बेचकर स्वयम् अपने ही शब्दों में गधे बन चुके थे। उनका घुटा हुआ मन इस अंधेरे में घुटनेवाले

जंगल की तरह ही था जिसमें सिसकियां, भय और मनहूसियत झंकार रही थी—चीख रही थी।

कई एकड़ जमीन को घेरे हुए बद्रीपुर वालों के महल, मन्दिर, तालाब, बाग और बारहदरी वगैरह आज भी उस बूढ़े की तरह आबाद हैं जिसे घर से, जमाने से, हर तरफ से फिटकार पाकर भी मौत नहीं आती। तालाब और बाग की ऊंची चहारदीवारी जो कभी होदे कसे हाथियों पर सवार शाहजादों और नवाबजादों को भी बद्रीपुर वालों के परिस्तान पर बदनजर डालने से रोक देती थी, अब जगह-जगह से टूट गई है! बाग घना जंगल हो गया है। रात को गांवों के मुर्दे ले जानेवालों में अच्छे-अच्छों में कलेजे उसकी टूटी दीवाल के पास अर्थी को 'विश्राम' देते समय हिल जाते हैं। लेकिन अन्दर बारहदरी के खंडहरों में बसे हुए माली के घर का चिराग आज भी डूबते को तिनके का सहारा बनकर टिमटिमा रहा है। तालाब के पानी पर बरसों की काई चढ़ चुकी है, तीन पुश्तों से किसी ने साफ तक नहीं करवाया, फिर भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी तालाब और किश्तियों का रखवाला नौकर अपनी कोठरी में आबाद है। चार ड्योढ़ियों पर बनी हुई चौकीदारों की कोठरियां अब कबाड़खाने के मुंशी के जिम्मे हो गई हैं, पर सदर फाटक पर दो गोरखे अलबत्ता बन्दूक ताने खड़े रहते हैं, और फाटक के ऊपर नौबतखाने में चार पहर की शहनाई भी अब तक लकीर पीटे जाती है।

बद्रीपुर वालों का खान्दान, कहा जाता है कि लखनऊ के पुराने हिन्दू राजाओं से सम्बन्ध रखता है। उनकी जात कुछ और थी, पर अब इस घराने की रोटी-बेटी किसी और ही जात में होती है। ऊंच हो गए हैं सो भी आज से नहीं, कई पीढ़ियों से। सुना जाता है कि मुगल दरबार की तरफ से अवध के गवर्नर शेख अब्दुल रहमान बिजनौरी को दावत में धोखा देकर कैद करवाने में इन्होंने नवाब वजीर सआदत खां को बड़ी मदद दी थी। नवाबी कायम होते समय अवध के राजे-रजवाड़ों से नवाब के अच्छे सम्बन्ध कराने में भी इस घराने का बड़ा हाथ था। अवध का राज रुहेलखण्ड तक फैला हुआ था। नवाबी कायम होने पर बद्रीपुर वालों ने वहां तक अपने कई गंज और मण्डियां बसायीं और करोड़ों की दौलत कमाई। अंग्रेज़ों ने जब अपनी फौज के खर्चे के नाम पर दो करोड़ रुपये साल की बचत वाले रुहेलखण्ड और दोआबे के इलाके ले लिए तो इनको नुकसान होने लगा। अंग्रेज़ लोग दौलत को हिन्दुस्तानी घरों की देहली चढ़कर भीतर जाने से हरचन्द रोक रहे थे। उन्होंने नवाब से और कभी कई इलाके इन्तजाम सम्हालने के बहाने ले लिए। वहां के किसानों की जमीनें छीनकर, इनके घर-द्वारों में आग लगाकर, उन्हें हर तरह से बेइज्जत करके अंग्रेज़ों ने अवध की सोना उगलने वाली धरती के राजा किसान को दर-दर का भिखारी बना दिया। उन्हें जरायम पेशे अख्तियार करने पर मजबूर कर दिया है। और अवध के राजे-रजवाड़े रईस और नवाब निकम्मे बनकर ऐश में पड़ने लगे।

बद्रीपुर के राजाओं के पास हज़ार हाथों से लुटाने के लिए भी बेशुमार दौलत थी। तहखाने में कड़ों में लटकते हुए मोटी-मोटी जंजीरों से बंधे देगचों से निकलकर लक्ष्मी बारहदरी में नाचने लगी। हर रात मनाई जाने वाली सुहागरात में

वह राजाओं और उनके कुंवरों की फूलसेज पर नित नया सिंगार करके उन्हें रिझाने लगी।

ऐश बढ़े, दौलत घटी। महलों में रानियों और रखैलों की तादाद बढ़ी। पर वंश आगे न बढ़ सका। किसी के एकाध बच्चे हुए भी तो जाते रहे। पांच पीढ़ी से बद्रीपुर का घराना गोद पर फलफूल रहा है। पिछले राजा साहब के एक कुंवर और एक कन्या हुई थीं। कुंवर जाते रहे। कन्या का ब्याह लाल कुंवर बहादुर से हुआ, जो इस घराने के महलों को खंडहर होते हुए देखकर खुश होते हैं। उनकी खुशी को देखकर 'हिंडोलेवाली' का रोम-रोम जल उठता है।

लाल साहब खुद भी एक बड़े मगर बिगड़े हुए खान्दान के लाल हैं। दबंग, हरदिल अजीज, बीबी-बच्चों और बराबरी वालों के लिए कठोर, और गरीब इन्हें आज का आसफुद्दौला मानते हैं। उनके मन में यह बात सदा कचोटा करती है कि जो फूंक रहे हैं, वह इनका नहीं बल्कि ससुराल का माल है। इसी चिढ़ को, हठ के साथ, उन्होंने अपनी ऐयाश तबीयत की रूह बना रखा है। बड़े घृणा भरे जोश के साथ वे अपनी ससुराल की जायदाद लुटाया करते थे। कर्ज में पोर-पोर डूबे हुए थे। जब जमीन्दारी उन्मूलन हुआ तब इनकी पत्नी को पता लगा कि काफी इलाका महाजनों ने हथिया लिया है। चिढ़कर उन्होंने जमींदारी के बाण्ड सब स्वयम् ले लिए और पति को अपने मुख्तार-आम के पद से हटा दिया। मगर अपने नाबालिग लड़कों के 'गार्जियन' (संरक्षक) होने से वे अपनी पत्नी के साथ बने रहे। ढाई लाख के बाण्ड इन्होंने अपनी पत्नी के वकील को पटाकर हिसाब देते समय कम दिए। दो लाख से एक कर्ज पाटा और पचास हज़ार के पान चबाके थूक दिए। फिर भी बाप की छोड़ी अस्सी लाख की जायदाद में से साढ़े सत्रह लाख के बाण्ड अपने कलेजे में छिपाकर लाल साहब की पत्नी 'हिंडोलेवाली' को कुछ कम संतोष नहीं हुआ। उनका बड़ा लड़का त्रिबेनीसहाय तैयार हो रहा था। मन-चेटक था। राधेरमन के छोटे बेटे गोपीरमन के साथ पढ़ रहा था, घनिष्ठ मित्र भी था और उसकी इच्छा धंधा करने को हो रही थी। 'हिंडोलेवाली' के मन में हुआ कि धन्धा करके इसी रकम से फिर करोड़ों पैदा हो जाएंगे।

जिस साला वहीदन से लाला साहब का नाता जुड़ा, उसी साल त्रिबेनीसहाय बालिग हुए। 'हिंडोलेवाली' ने स्वर निकाला कि दूसरे छोटे भाइयों की 'गार्जियन-शिप' में अब से त्रिबेनी का नाम हो, बाप का नाम हटाया जाए। लाल साहब के कान खड़े हुए, उनके अन्दर का बदला लेनेवाला हिंस्र पशु जागा। इटावा नगर के पास एक बहुत बड़ा गंज और कई गांव हिंडोलेवाली' के पिता राजा लखपतराय ने त्रिबेनी का जन्म होने पर मुंह दिखाई में उसे दिए थे। एक लाख के लगभग वार्षिक आय की जायदाद थी। लाल साहब ने किसी ब्यौंत से उसे आगरा की एक पार्टी के हाथ दस लाख में बेंच दिया। अपना पूरा ऋण चुकाया और आप भी लाला राधेरमन से मिलकर कुछ अमरीकी मशीनों की एजेंसी ले लीं, और त्रिबेनी ही को उसे सौंपकर कहा: "बेटा, जहां अपने लिए कमाना, वहां मेरे लिए भी थोड़ा बुढ़ापे का खर्च जुटाते रहना। मैं तुम्हारे ऊपर भार होके नहीं रहना चाहता पर अपनी जिम्मेदारी जरूर डालता हूं।" एजेन्सी की फर्म का नाम था 'लाल कुंवर बहादुर एण्ड संज़' साठ हज़ार की कोठी वहीदन के नाम से खरीदी और लगभग ढाई लाख गहने-कपड़े आदि दिए। घर में किसी को पता तक न चला, आज से चार दिन पहले तक न चला। अकस्मात् पुराने काग़ज़ों में इस जायदाद का परिचय

पाकर त्रिवेनीसहाय खोजबीन में लगे और कल ही उन्हें इटावा से सही स्थिति का पता चला। कल रात ही उन्होंने अपनी मां से कहा। 'हिंडोलेवाली' अपने बाप के बनवाये चांदी के नक्काशीदार हिंडोले पर मसनद के सहारे बैठी थीं। कूदकर खड़ी हो गयीं, लाल आंखें निकालकर पति के विरुद्ध गरजने लगीं। लाल साहब उस समय अपने कमरे ही में थे। नौकर ने उन्हें सूचित किया। वे बोले : "दरवाजे बन्द कर दो। इस वक्त मैं किसी से न मिलूंगा। और रामलोटन को कह देना, सबेरे ठीक पांच बजे मोटर तैयार रहे। मुझे कानपुर जाना है।"

सुबह से लाल साहब कानपुर गए हैं और उनकी सौभाग्यवती 'हिंडोलेवाली' के कमरे में लड़के और वकील बैठे हैं···और बाहर एक मेहमान, एक 'कॉलम लेखक' और एक शरीफ इक्केवाला खड़ा है।

मेहमान के आने की ख़बर ड्योढ़ियों में से गुजरती हुई पौन घण्टे के बाद, लाल साहब की गैरहाजिरी में बड़े कुंअर जी के पास पहुंची। बड़े कुंवर जी उस वक्त छोटे कुंअर जी और वकील साहब के साथ मां के कमरे में बैठे हुए बाप के खिलाफ मुकद्दमा चलाने की बात कर रहे थे। 'हिंडोलेवाली' भी लड़कों के पास ही बैठी हुई सलाह-सूत में हिस्सा बंटा रही थी। लाल साहब के मेहमान की अगवानी सुनकर बड़े कुंवर जी का पारा चढ़ गया, गरज़कर बोले : "अब उस साले के लिए ही इस घर में जगह नहीं रही, उसके मेहमान को तो धक्के मारकर बाहर निकाल दो।"

नौकर सिर झुकाकर लौट गया। जनानी ड्योढ़ियों से गुजरता हुआ यह हुक्म आध घण्टे के बाद बड़ी ड्योढ़ी पर दारोगा की कोठरी में पहुंचा। बूढ़े दारोगा उस वक्त तक 'पिनक' में आसमान की सैर कर रहे थे, लिहाजा हुक्म वहीं रुक गया।

रमेश की प्रतीक्षा करते-करते ऊबकर उग्र होने लगा। उसे ताल्लुकेदारी तरीकों के प्रति तीव्र घृणा हुई। बाबू रामनाथ को गो ताल्लुकेदारी ढर्रे में रहने की आदत थी, फिर भी सदर फाटक पर खड़े हुए हुक्म का इन्तज़ार करते-करते वे भी ऊब गये थे। रमेश ने तो एक बार लौटने के लिए कहा भी, पर मियां नब्बन परदेसी सवारी का साथ निभा रहे थे। रमेश भी लिहाज में आ गया। नब्बू बोला : "हुज़ूर, जब तक अन्दर तसरीफ नहीं ले जाते मैं खिदमत में हाजिर रहूंगा। ऐ हां हुज़ूर, बड़े घर के कारखाने हैं। अल्ला जाने कब तलक हुकुम आवे। ये बिचारे ठहरे परदेसी आदमी, और ये गुरखे हुज़ूर—फरज के पुतले—न बोली समझें न सलीका। न जाने कैसे पेस आवें कैसे न आवें। आप कहेंगे कि वाह, अच्छी लखनऊ की मेहमांनिवाजी हुई।"

रमेश ने छूटते ही बाबू रामनाथ से अंग्रेज़ी में कहा : "आप इसी 'एम' से भयभीत थे?"

हुक्म के इन्तज़ार में समय बीतने लगा। मियां नब्बन गोरखों से माचिस लेकर और बीड़ी देकर नेपाल और अवध के पुराने रिश्ते को ताजा करने लगे। रमेश भी अंधेरे में सिगरेट के जुगनू चमकाने लगा।

मियां नब्बन ने बातों की कारीगरी दिखाकर गोरखों पर अपनी दोस्ती का मुलम्मा चढ़ा दिया, और फिर अपनेपन की अदा में बोले : "जरी लपक के देखना तो भैया कि हुक्म किस ड्योढ़ी में उलझ गया।"

अन्दर जाकर जब गोरखा को यह पता चला कि मुए मेहमान पर सौ दुर्रे और गधे की सवारी का हुक्म मिला है, तो उस फर्ज के पुतले ने बाहर आते ही अपना

रुख बदल दिया। दोनों गोरखों ने आपस में गोरखाली भाषा में दाना बदलौअल किया और जबान की खड़ी संगीन तान दी : "बाग जाउ। इदर मे मेमान-ओमान का हुकुम नइं है।"

मियां नब्बन तो चौंके सो चौंके, मगर बाबू रामनाथ का मुंह ऐसे खुल गया कि जैसे घण्टाबेग की गड़हिया हो। आंखें भी फटी की फटी रह गईं। रमेश की आंखों में खून उतर आया। बाबू रामनाथ का हाथ पकड़कर इक्के की तरफ घसीटते हुए कहा : "आइए, आज आप मेरे मेहमान हैं। कल इनको टेलीफोन कर लीजिएगा।"

दूर से 'राम नाम सत्य है' की आवाज़ें आने लगीं, कोई अर्थी आ रही थी। बाबू रामनाथ भी हारकर इक्के की तरफ बढ़ने लगे। गांव की सड़क से अर्थी की आवाजें निकट आ रही थीं। उसके साथ ही शहर की ओर से आती कार का तेज हार्न भी सुनाई दिया। कार का हार्न तेज होता गया, 'राम नाम सत्य' की आवाज़ें डूब गईं। मोड़ से कार की रोशनी चमकने लगी। मियां नब्बन ने लपककर इक्का दीवार की तरफ सरकाया। इक्के को देखकर नयी स्टूडीबेकर गाड़ी फाटक के पास रुकी, गोरखों ने बूट से बूट का खटका मिलाकर सलाम झाड़ा। मियां नब्बन लपककर दरवाजे से जा लगे और दोनों हाथों से सलामें झुकानी शुरू कर दीं।

तनजेब का कलीदार कुरता, जिसमें हीरे के बटन चमक रहे थे, दोनों बांहों पर बारीक चुन्नटें पड़ी हुईं, ऊंचे पाड़ की दुपलिया, चुनी हुई बारीक धोती, वार्निशदार पम्प शू, दाहिने हाथ की उंगलियों में बड़े पन्ने की अंगूठी, बाएं हाथ में उतना ही बड़ा हीरा; सांवला रंग, ऊंचा कद, दोहरा बदन, ऊंची पेशानी, उभरी हुई पतली ठोढ़ी, रुआबदार मूंछें—हाथ में नाजुक-सी छड़ी लिए बैठे हुए लाल साहब ने सब पर नज़र डाली। मियां नब्बन की जबान ने फुलझड़ियां छोड़नी शुरू कीं : "हुजूर का इकबाल बड़े, परवार में सभी सिपहसलार हों, दम सलामत रहे सरकार।"

अर्थी पास से गुजर गई। एक नज़र उस पर डालकर लाल साहब ने अपनी लाल डोरों वाली छोटी-छोटी मदभरी आंखें घुमाकर पहले रमेश को देखा। चेहरा कुछ भूला, कुछ पहचाना-सा लगा, फिर एकदम से याद आ गया, मुस्कराकर पूछा : "कैसे आए ?"

रमेश के कुछ कहने के पहले ही नब्बन झुककर बोलने लगा : 'ये हुज़ूर, बाहर से तसरीफ लाए हैं। मैं टीसन पर खड़ा था, इन्होंने आपका नाम लिया। अरे, मैं बोला सरकार, वो तो हमाए मालिक हैं, उन्हीं का नमक खाते हैं। और यहां आए सरकार तो ये जो याजूज-माजूज की जोड़ी खड़ी की है आपने, इन्हीं ने संगीनें तान दीं — अल्ला आपको जीता रखे। न जबान न सलीका, खड़ा खेल फरक्काबादी कर दिखाया, अल्ला आपको जीता रक्खे मालिक। ये भी कोई सराफत – "

लाल साहब की लाल-लाल आंखों में चमक आ गई। माथे पर सिकुड़नें पड़ गईं। उन्होंने बाबू रामनाथ पर नज़र डालकर पहचानने की कोशिश की। बाबू रामनाथ ने हाथ जोड़कर आगे बढ़ते हुए कहा :

"राजा साहब कुसुंभीपुर ने मुझे आपकी सेवा में।"

लाल साहब ने गोरखों की तरफ मुखातिब होकर कहा : "बदतमीजी कब से अख्तियार की ? दारोगा को खबर क्यों नहीं दी ?"

एक गोरखे ने सलाम झाड़कर अन्दर का हुक्म सुनाया। सुनकर लाल साहब

का चेहरा कस गया। तैश में कार से उतरकर बाहर आ गए। गाड़ी वहीं छोड़ दी। उन्होंने रमेश व बाबू रामनाथ से अपने साथ आने को कहा, गोरखे को उनका सामान लाने का हुक्म दिया। मियां नब्बन भी लाल साहब के पीछे-पीछे उनके मेहमान के लिए अपनी फ़िक्र और मुस्तैदी का बखान करते चले। लगे हाथों अपने दोनों बच्चों के जाने का गम भी बयान कर दिया : "पन्दरा रुपए हुजूर उधार के चढ़े वे हैं। मगर मैंने कहा कि जैसे तीन दिन नहीं जोता, वैसे ही समझ लूंगा कि एक दिन और सही, मगर अपने मालिक के मेहमान को—"

मियां नब्बन को दस-दस के दो नोट मिल गए। रमेश ने नब्बू से पन्द्रह मिनट में लौटकर आने का वचन दिया।

तीसरी ड्योढ़ी पर मन्दिर की तरफ से आने वाले दरवाजे से सबसे छोटे कुंवर इमिरती बबुआ आते दिखाई दिए। लाल साहब को देखते ही उनके चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। उन्हें रात के समय उस तरफ से आते हुए देखकर लाल साहब को भी अचरज हुआ, मगर एक शब्द भी नहीं कहा। बाबू रामनाथ को साथ लेकर सीधे अपने दीवानखाने में चले गए।

राजा साहब कुसुंभीपुर का पत्र पढ़ा। ननकू खिदमतगार से कहा कि ये 'मास्टर' (तीसरे बेटे शंकर सहाय) के मेहमान हैं। उन्हें खबर कर दो और इनके ठहरने का प्रबन्ध भी। फिर सोफा पर बैठ गए। नौकरों ने कुर्ता, टोपी और छड़ी लेकर टांगी। ननकू इतनी देर में मेहमान को मास्टर बबुआ साहेब के नौकर के सिपुर्द करके हुक्का लेकर आ गया। लाल साहब ने इस बीच में रमेश से पूछ डाला : "कहो भई, इस वक्त कैसे आ गए ?"

"जी, बात ऐसी कुछ नहीं थी। मैं दरअसल आज शाम को वहीदन बेगम से संगीत सम्बन्धी एक खास इण्टरव्यू बम्बई के एक पत्र के वास्ते लेने गया था। वहां देखा कि आपकी कोठी एकदम खण्डहर और उजाड़ है !'

लाल साहब ने एक पैनी दृष्टि रमेश पर डाली और फिर बात टालते हुए कहा : "हां भई, वो परसाल की बाढ़ में कमजोर हो चुकी थी। उसे नये सिरे से बनवाऊंगा।"

"जी अच्छा; मुझे तो मालूम नहीं था। कौतूहल हुआ, तो मैंने कहा आपसे मिलकर जानकारी लूं। यहां आया तो आपके मेहमान के फेर में मुझे और इक्के वाले को मुफ्त में दो घंटे रुकना और बोर होना पड़ा।"

"खैर, अपने अखबार में मत लिखना ये सब। वहीदन को तुम्हारे ही इलाके में फिलहाल छोड़ आया हूं। एक मकान के ऊपरी हिस्से में, लाला बैजनाथ जो तुम्हारे यहां हैं, उनकी वजह से जगह मिल गई। खैर ! इस वक्त तुम्हारा मंशा पूरा न हो सकेगा अजीजमन। वहीदन मिल न सकेगी इस दम।"

"खैर, न सही। इस बहाने आपके दर्शन हो गए। अब आज्ञा दीजिए।" रमेश ने उठते हुए कहा।

ननकू ने तुरन्त बाहर जाकर पता लगाया, खबर मिली कि अब सब लोग कमरे के दरवाजे के पास खड़े बातें कर रहे हैं। लाल साहब ने सुना तो हुक्के की निगाली ऊंची करके उठ खड़े हुए।

ननकू हाथ जोड़कर बोला : "खता माफ करें मालिक, इत्ती बेला"—

"डरने की कोई बात नहीं ननकू।" कहकर लाल साहब दरवाजे तक गए; फिर दो कदम पीछे मुड़कर इशारे से ननकू को अपने पास बुलाया और कहा :

"इमिरती बबुआ इस वक्त मन्दिर की तरफ कहां गए थे ?···खैर, पता लगाना।"

जीने पर वकील साहब से मुलाकात हुई, वे नीचे आ रहे थे। वकील साहब ने गिड़गिड़ाकर नमस्ते की, लाल साहब ने जवाब देना तो दूर, उनकी तरफ रुख करके देखा तक नहीं।

ऊपर त्रिबेनी और बेनी दोनों ही पिता को सामने देखकर सकपका गए। पति को देखकर हिंडोलेवाली की नज़रें दूसरी तरफ गईं। उन्हें भूख लगने लगी। उनके और लड़कों के बीच में लाल साहब खड़े थे। इसलिए बगैर नज़र घुमाए ही उन्होंने बड़े कुंअरजी से कहा : "बड़े बबुआ, अब तुमहूं जाय के आराम करौ। दिन भर के थके-मांदे हो।···अरी सामो, चिकवाली से कह देओ हमार थाली परोस के लै आवैं। हम छत पै जाइति है।"

हिंडोलेवाली हिंडोले से उतरकर एक कदम चली ही थीं कि लाल साहब ने उनका हाथ पकड़ लिया। श्यामो से कहा : "मेरी थाली भी यहीं लाने को कह दे। बैठो, बड़े बबुआ, बेनी तुम भी बैठो।"

दोनों खड़े रहे। लाल साहब हिंडोलेवाली का हाथ छोड़कर चौकी तकिए के सहारे बैठ गए। कमरे में सन्नाटा छा गया।

एक सेकण्ड तक चुप रहकर लाल साहब ने पत्नी से कहा : "हम सुना है कि तुमहूं हमरे खिलाफ अदालत मां जाय रही हौ ?"

कोई न बोला। लाल साहबब ड़े कुंअर जी की तरफ मुखातिब हुए : "कौनी दफा तजवीज किहिन वकील साहब हमरे खिलाफ ?"

फिर भी कोई जवाब न आया। लाल साहब तकिए का सहारा छोड़ कर सीधे बैठ गए, आवाज़ में सख्ती आ गई, बोले : "जान पड़त है आप लोगन की जबानन मा कानून के ताले डाल गए हैं वकील साहेब। खैर हम यू कहै क' आए रहे कि हमार तौ निभ गई—अच्छी-बुरी जइसि रही दुइ-चार बरस और जिए कि न जिए, बाकी तुम लोग काहे अपने खानदान की इज़्ज़त का इन वकीलन के हाथन मां सौंपत हौ।"

बड़े कुंअरजी अब बोले। चेहरे पर लपटें चढ़ने लगीं : "आपके हाथन ते हमार खान्दान कै इज़्ज़त वकीलन के हाथन मां बहुत सेफ रही। बाकी का रख्यो आप ? अपने सेल्फ इंटरेस्ट मा अपने लड़किन तक का तौ नामेट कै चुके हौ आप। जायदाद गयी चूल्हे भाड़ मा—।"

हिंडोलेवाली तड़पीं, कहा : "भाड़ में काहे जाय जैजाद। अरे हमार लड़कन के काम आई जिनकी है असिल मां। औ, काहे न चलावैं मुकदमा ? एक की इज़्ज़त के पीछे बंस काबंस लुटि जाय ई ज्ञान को बताइस है। जो जैस किहिस है वैस भरिहै, हमार बबुआ की डूबी जैजाद तो उबरि जाई।"

लाल साहब शहरी अवधी को छोड़कर खालिस शहरी जबान पर आ गए, शब्दों पर ज़ोर देकर कहा : "लाल कुंवर बहादुर को जेल भेजना लौंडों का खेल नहीं है। मैं इस वक्त सिर्फ यही बतलाने के लिए यहां आया हूं।—"

"इनकी बन्दर भभकी हम बहुत सुना है बड़े बबुआ। देखी ई का करिहैं। औ' ई बात पर तौ हमहूं दिखाय देब कि हमरी छाती डसै वाले का फन जेल मां कैसे कुचला जात है। अब तौ सब नाता-रिश्ता टूट गवा। हम बहुत-बहुत सहा इनकी। अब तौ जहां सत्यानास तहां साढ़े सत्यानास, चाहे हमार सर्बस लुट जाय। बाकी इनकी आन न तोड़ा तो हम राजा लखपतराय की बिटिया नहीं।"

हिंडोलेवाली ठसके में फिर हिंडोले पर चढ़कर बैठ गईं। उनके एक-एक शब्द में खान्दानी रौब और तेहा भरा हुआ था। लाल साहब ने हंस के तकिए का सहारा लेकर इतमीनान से कहा: "चलौ, तुम्हार दिल तौ देख लिया, हिंडोलेवाली। हमका जेल करावै के बदे तुम आपन सर्बस लुटावै का राजी हौ, ऐसी पती-भगती कै मिसाल तौ हमरे देस मां दूसर न मिली। बाकी कौनो फिक्र नहीं, हमहूं तुम्हरे आदर्श पै चलब। हमहूं भरी कचहरी मां ई साबित कइके दिखाय देब कि हम कौनो जालसाजी नाहीं किया, बल्कि राजा लखपतराय की बिटिया के तीनौ बड़े बरखुरदार एक कहार की औलाद हैं साले!"

बड़े घरानों में बड़े-बड़े करतबों के माहौल में पले हुए, पढ़े-लिखे, बाल-बच्चेदार लड़के मां-बाप के रहस्य के बीच में शक और सच के दोहरे फन्दों में जकड़कर खुद अपनी ही नज़रों में सवालिया निशान बन गए। हिंडोलेवाली को गश आ गया।

इधर आठ-नौ महीने से, विशेष रूप से बाढ़ के बाद से लाल साहब के स्वभाव में कुछ परिवर्तन आ गया था। नियम से सुबह 6 बजे नहा-धोकर मंदिर पहुंच जाया करते थे। माता की पूजा और राधाकृष्ण का सिंगार करने में उन्हें पूरे चार-पांच घंटे लग जाते थे। मन्दिर की मरम्मत की तरफ भी उन्होंने ध्यान दिया था। ससुराल की कुलदेवी दुर्गाजी के लिए उन्होंने सोने का मुकुट-छत्र बनवाया और नई चाल के दूसरे जेवर भी बनवाए। राधाकृष्ण के नए गहने-कपड़े बने। राधाकृष्ण के साथ तो उन्होंने छेड़खानी का रिश्ता बांधा, लखनवी पोशाक बनवाई—जरदोजी का छकलिया अंगरखा, कामदार दुपलिया, चूड़ीदार पाजामा; राधाजी की ओढ़नी, कुरता, चूड़ीदार पाजामा—जिसे पहन कर वे भगवान की छवि पर वारी-वारी जाते थे। बूढ़े पण्डितजी की तनख्वाह भी बढ़ गई। वक्त-बेवक्त की शराबखोरी भी छोड़ दी, सिर्फ शाम को थोड़ी-सी ले लेते थे। इधर वहीदन के यहां भी कम जाते थे। दिन में रेडियो सुनने के बाद दो घंटे रामायण सुनना भी शुरू कर दिया था। लाल साहब का स्वभाव सचमुच बहुत बदल गया था। अक्सर पोते-पोतियों को मोटर पर सैर कराने भी ले जाया करते थे। कभी-कभी जब रस जागता तो हिंडोलेवाली को नीचे दीवानखाने में बुलाकर उनके साथ शतरंज भी बड़े शौक से खेला करते थे।

लेकिन आज सुबह से उनकी दुनिया फिर नफरत से भर गयी थी। जी चाहता था कि सबको गोली मार दें। ये ऐशो-इशरत की ज़िन्दगी, लिफाफिया बड़प्पन, पैसे की रिश्तेदारी से बंधा हुआ झूठा घर, हर झूठा रिश्ता—मन के अन्दर हर चीज उन्हें दुश्मन बनाकर दबोच रही थी। लाल साहब थकान महसूस कर रहे थे। जितनी लापरवाही, जितना बेलौसपन वह सदा से अपने घर-द्वार, अपने बीवी-बच्चों से बरतते चले आए हैं, उतना अलगाव वे अब महसूस नहीं कर पा रहे। कल रात जब से उन्होंने झूठे कानूनी हथियार के वार से अपने घरवालों को घायल किया है, वे खुद भी उसकी चोट से तड़प रहे हैं। सुबह जब ननकू ने यह खबर दी कि हिंडोलावाली रात से दरवाजा बन्द किए पड़ी हैं और सारा घर चुप-चुप करता हुआ सहम रहा है, तो उन्होंने जबर्दस्ती अपने में घृणा भरी खुशी अनुभव करने की कोशिश की, मगर दिल ने साथ न दिया। वे खुद सहम गए हैं। उनका अपना कोई नहीं। वे खुद भी किसी के न हो सके। उम्र का साठवां साल गुजर रहा है, ज़िन्दगी बीती, रात की मानिन्द सवेरा होने का इन्तजार कर

रही है। ज़िन्दगी कितनी सूनी, कितनी निकम्मी गयी।

शराब के नशे में एक तस्वीर बंधी : एक बड़े सुहावने हरियाली और ठण्डक से भरे हुए जंगल में तरह-तरह के पंछियों की बोलियों की नक़ल करते हुए मन मगन हो झील के किनारे डोलते हुए वे अचानक किसी पहाड़ की खोह में चले गये। वे अंधेरे की पर्त्तों में लिपटते चले गए। कहीं भी ओर-छोर न पाया : अन्त में घुटन ही ज़िन्दगी बन गयी, ज़िन्दगी महज एक अंधी दौड़ ही रही।

उन्हें अपनी ज़िन्दगी से नफरत है, सख्त नफरत है मगर वे अभी जीना चाहते हैं, अभी जीने से तबीयत नहीं भरी : "ननकू कलेजी लाओ।"

गिलास उठाया, एक सांस में पी गए। "साले सब कहारों की औलाद हैं। कचहरी में देखूंगा सालों को।" नशे की झोंक में लाल साहब बड़बड़ाए। अपनी आवाज़ सुनकर खुद उन्हें तसल्ली-सी हुई। उठ खड़े हुए। दीवानखाने में चहल-कदमी करने लगे। नशे में उन्हें ऐसा महसूस होता था कि उनके पैर जमीन से लगते ही जिस्म को स्प्रिंगदार खिलौने की तरह ऊपर उछाल देते हों। मन भी इसी तरह चंचल हो रहा था, किसी जमीन पर पैर रखते ही उछल-उछल पड़ता था। वह जितना ही हठ करके, अपने बीबी-बच्चों को पराया ठहराकर उनसे नफरत करने की कोशिश करते थे, उतना ही उनका मन धिक्कार कर नफरत से ऊपर उठने के लिए मचलता था। यही वो नहीं चाहते। वो उन लड़कों से अपनापन महसूस करना चाहते, जो कि उनके साथ ही साथ हिंडोलेवाली के भी हैं। वे हिंडोलेवाली से अपनापन तो महसूस ही नहीं कर सकते; उनकी वजह से उन्हें घर-दामाद बनकर यहां रहना पड़ा। घर-दामाद होकर रहना उन्हें आज तक खलता रहा है। हिंडोलेवाली का घमण्ड शुरू ही से बड़े कसाव का रहा है। चौबीसों घण्टे इन्हीं की 'हांजी-हांजी' में लगे रहो तो ठीक, नहीं तो घर नखास हो जाता है—एक-एक को खड़े-खड़े वेचने लगती हैं।

ब्याह के वक्त लाल साहब दस बरस के थे, हिंडोलेवाली सात की। उस वक्त लाल साहब के पिता के घराने की हालत करीब-करीब वैसी थी जैसी आज बद्रीपुर वालों की है। गौने तक पांच-छ: बरसों में उनके यहां नीलाम कुड़की तक की नौबत पहुंच गई, और इन्हें घर-दामाद बनकर आना पड़ा : सुहागरात ही से दोनों में गांठ पड़ गई। पलंग पूजने की नौबत ही न आयी थी लाल साहब तपकर बाहर चले आये। दूसरे दिन तड़के फाटक खुलते ही अपने घर चले गए, और छह महीनों तक नहीं आए। बेटी का बाप राजा होकर भी कहां तक सिर उठाता? बेटी को ससुराल भेजा, हिंडोलेवाली ने पति के पैर छुए, तब सुहागरात पूरी हुई। यों रिश्ता तो खुल गया पर मन न बंधे। जब अनबन चलती तो महीनों एक-दूसरे का मुंह तक न देखते थे। हार मानकर हिंडोलेवाली ही पान का डब्बा लेकर नीचे उतरतीं। इस तरह ये सन्तानें हुई हैं। त्रिबेनीसहाय अब पैंतीस बरस के हैं, बेनी पांच बरस छोटे हैं। इनकी पीठ पर दो बरस बाद एक बिटिया हुई थी। सौरी ही में जाती रही। फिर 'मास्टर' बबुआ—शंकरसहाय पच्चीस के हैं, इमिरती बबुआ को तो अब की बैसाख में पन्द्रहवां ही लगा है।

हिंडोलेवाली का खयाल रह-रहकर लाल साहब के दिल में चिढ़, नफरत और गुस्से का सूरज बनकर चमक उठता, जिसकी किरनें उनके रोम-रोम को जेठ की भरी गरमी में और भी बेरहम होकर जला रही थीं।

नशा जम नहीं रहा था। ननकू को आवाज दी : "ननकुआ!"

हथेली पर सरसों उगाने के फनकार ननकू ऐसे आए जैसे वहीं खड़े हों।

"बिलोचिस्तान की तैयारी कर"। लाल साहब के 'कोड' में हर नशे के अलग-अलग नाम हैं। गांजे की चिलम बिलोचिस्तान की सैर का मजा देती है। इस समय वे सोफे पर सारे शरीर को पूरी ढील देकर, आंखें बन्द किए हुए पड़े थे। आवाज़ पर नशे का बोझ था, मगर होश कायम था।

"अभी लाया सरकार।" कहकर ननकू ने तखत पर रक्खे पनडब्बे से दो बीड़े पान निकाले और जर्दा-किमाम लगाकर लाल साहब के होंठों के करीब लाकर बोला : "मालिक, तब तलकु दुई बीड़ा।" लाल साहब ने अपनी पलकों के पहाड़ ढकेलकर अपनी लाल-लाल पथराई हुई आंखों से देखा। होंठों ने पानों का परस कर नई जान पाई। फौरन ही एक हाथ से रोकते हुए, मुंह घुमा लिया और बोले : "पानी पिला पहले। ला, पान मुझे दे।"

लाल साहब उठकर सीधे बैठ गए, ननकू से पान लिए, घड़ी की ओर नज़र डाली, रेडियो आने में अभी 'दस-पन्द्रह···या दस या पन्द्रह···या दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह मिनट' बाकी थे, यानी बहुत वक्त बाकी था। नशे की वजह से अधिक गौर करने पर पुतलियों में दर्द होता था। डबल झुंझलाहट चढ़ी, जो नशे के झोंक में बहिया के नाले की तरह बह चली : "यू नशा सार अब हमही पैं हावी होवैं लाग। अरे हम ईकी बिटिया क' ···कहारन की औलाद सारे! मुकद्दमा चलैंहें, इनकी···। हम तौ भरी कचहरी मां गावैं ते मंगरू का मुश्कैं कसाय के तलब करवाउब। गंगाजली उठवा के पूछूंगा कि बोल साले, ये किस पुन्न की कमाई से तेरे गांव की झुपड़िया पक्की हवेली बन गयी। इनके हाथ से भी गंगाजली उठवाऊंगा, कहूंगा, हरामजादी, लड़कों के सिर की कसम खा···"

लाल साहब की आवाज़ जो बड़बड़ाहट से उठी तो महल भर में गूंजने लगी। कमरों-कमरों में कानाफूसियों की आग फैल गयी। दीवानखाने के दरवाजे पर, बाहर खस की टट्टियों के पास आड़ ले-लेकर खड़े हुए नौकर-चाकर, महरियां सब सुन रहे थे। बाबू रामनाथ बिदाई पाने की इन्तजारी में सबेरे नौ बजे से टहलते-टहलते ऊब गए थे। भूख भी ज़ोर मार रही थी। इधर सफ़र के दौर में खूब-खूब नाश्ते-मिठाइयां उड़ी हैं; नाश्ते की तलब बढ़ते-बढ़ते थाली की भूख पर टूट ही पड़ी थी, कि इतने में लाल साहब बद्रीपुर घराने की सतनारायण बांचने लग गए। कान उधर लग गए। हरे-हरे दागों के सुनहरे चश्मे में आंखें बिज्जू जैसी चमकने लगीं।

अन्दर लाल साहब के पास पानी का गिलास लेकर खड़ा हुआ ननकू नजरें झुकाए, मुस्कराहट को सात पर्तों में छुपाए, आबूनस की मूरत जैसा खड़ा था। और लाल साहब हाथों में बीड़े उठाए कभी टहलते हुए, कभी सोफे पर बैठकर आवाज़ों पर आवाज़ें उछाल रहे थे।

दीवानखाने का परदा उठाकर शंकरसहाय दाखिल हुए। ज़रा-सी आहट पाकर ननकू की नजरें उठ गईं। लाल साहब ने भी देखा। चेहरे के भाव कसकर पत्थर हो गए। मास्टर बबुआ—शंकरसहाय—सामने आकर खड़े हो गए। लाल साहब की जीभ जम गयी। दो बार आंखें उठाकर बेटे को देखा। फिर पानी के गिलास के लिए हाथ बढ़ा दिया। पान के बीड़े औचक में गिर पड़े। ननकू जब तक गिलास देकर झुके-झुके, शंकरसहाय ने झुककर उठा लिए और तखत के पास रखे हुए उगालदान में डाल दिए। लाल साहब की नशे में पथराई हुई आंखों

में थकी-सहमी करुणा भरी चमक आ गयी। गिलास लिया, उगालदान की तरफ इशारा किया। शंकरसहाय सामने ही तखत पर बैठे थे। ननकू बिजली की तरह लपककर उगालदान उठाने पहुंच गया। लाल साहब ने कुल्ले किए, आंखें धोईं, मुंह पर छींटे मारे और गिलास का पानी उगालदान में उलट दिया। ननकू ने तिपाई पर रक्खी रेफ्रीजिरेटर से ठण्डी की हुई बोतल उठाकर दूसरा पानी भरा। लाल साहब सामने ही तखत पर बैठे अपने तीसरे लड़के को टकटकी लगाकर देखते हुए पानी के घूंट बांधने लगे।

गिलास का पानी खत्म हुआ। गिलास ननकू को वापस करते हुए मुस्कुराए। वैसे ही शंकरसहाय की आवाज़ आई: "ननकू इसी गिलास में मुझे पानी दो, और दरवाजे बन्द करते जाना।"

"ननकुए, अब बिलोचिस्तान ठहरकर।"

ननकू ने जादू की तरह हुकुम बजाया। दरवाजा बन्द होते ही लाल साहब ने बड़े हौसले से बात उठाई: "शंकर, कल वो राजा साहब कुसुंभीपुर हैं न, उनका आदमी खत लाया था। बेचारे मेरे बड़े पुराने दोस्तों में से हैं। तुम्हारे बद्रीपुर वालों से तो उनके पुश्तैनी ताल्लुकात भी हैं।"

"जी, मैं मिल चुका।"

"जरा वो पनडब्बा तो उठाना बेटा।"

शंकरसहाय ने फौरन हुक्म की तामील की। पान लेते हुए लाल साहब ने कहा: "उनका आदमी भी आया हुआ है।"

"जी! मैं मिल चुका। राजा साब ने मेरे लिए घड़ी भिजवाई है, अपने कुंवर के पास होने की खुशी में।" लाल साहब कुछ न बोले।

शंकर ने विनय भरे स्वर में कहा: "एक बात कहने की आज्ञा चाहता हूं आपसे।"

लाल साहब आंखें बन्द किए सोफे के सहारे गर्दन डालते हुए बोले: "कहने की जरूरत नहीं। मैं समझ गया।"

शंकरसहाय पिता के पास बैठते हुए बोले: "ददुआ, इस घराने की न सही पर अपनी इज़्ज़त का तो खयाल कीजिए।"

लाल साहब आंखें बन्द किए हुए बोले: "मेरी इज़्ज़त तो मेरे बाप ने बेच दी।—तुम्हारे नाना के हाथ—हरामी थे साले वो भी।"

"क्वांर के तर्पण में यही कहकर पानी दीजिएगा।" शंकर ने आवाज में कठोरता लाकर कहा: "आपका आज का तमाशा फिर कभी न दिखाई दे, यही प्रार्थना करने आया हूं।"

लाल साहब चुप रहे। शंकरसहाय भी चुप बैठे रहे। लाल साहब एकाएक उठकर सीधे बैठते हुए कहने लगे: "अपनी महतारी और भाइन से भी यह प्रार्थना किए हौ कि तमाशा न दिखावैं? महतारी की बेइज्जती होति है, उयि तौ बहुत लागत है तुमका, और तुम्हारे बाप कै ज़िन्दगी भर की आबरू कोर्ट मां जाई उइ—"

शंकर ने बात काटकर शांति के साथ जवाब दिया: "ददुआ, मैं किसी का गलत पक्ष नहीं लेता, न आपका न रानी अम्मां का। मुकदमा चलाने के मैं खिलाफ हूं। मैंने उसमें किसी तरह का हिस्सा लेने से भी इन्कार कर दिया है।"

"एक तुम्हारे इन्कार कर देने से क्या होता है। वे लोग तो मेरे नाम पर

चुल्लू उछालने के लिए तुले हुए हैं।" लाल साहब तीखे होकर बोले : "अगर वो मेरी इज़्ज़त के साथ खिलवाड़ करेंगे तो मैं भी करूंगा। मैं साबित करूंगा कि तुम लोग सब—"

कहते-कहते लाल साहब खुद ही रुक गए। एक बार तिरछी नज़रों से लड़के को देखा, फिर गर्दन फेर ली।

शंकरसहाय ने गंभीर होकर शान्त स्वर से कहना शुरू किया : "आपके मुंह से ऐसी बातें शोभा नहीं पातीं ददुआ। मेरी वो मां हैं, मगर आपकी पत्नी हैं। पति-पत्नी के रहस्यों के बीच में पड़ने का हमें कोई हक नहीं। फिर भी जब से होश सम्हाला, अम्मां को बराबर देखता चला आया हूं। आप तो शुरू से जानते हैं। उनका घमण्ड हम सबको भी खल जाता है, मगर यही उनके चरित्र की शक्ति भी है। वे किसी भी हालत में अपने को गिरा हुआ देखना पसन्द नहीं कर सकतीं।"

"तुम्हारी अम्मां के चरित्र में तो हीरे-मोती जड़े हुए हैं, और बाप? वह गरीब है, उससे तुम लोगों को कुछ मिलने की उम्मीद नहीं—"

मास्टर बबुआ गंभीर और अनुशासित स्वर में बोले : "दद्दू, यू सब 'सेंटीमेंट्स' आपके यूज़लॅस आयं। हम आपते यहै प्रार्थना करै आए हैं, कि 'फैमिली मॅम्बर्स' ते विरोध करै मां आप बड़ै 'डिसएडवाण्टेज' मां रहिहौ। हम जौन नाही करैक' चाहित रहन, वहै हमका करै का पड़ी। सतयुग मा पिता की आज्ञा से परशुराम आपन महतारी का 'मर्डर' कीन रहैं और कलियुग मा मां की आज्ञा से हम पिता का"—मास्टर बबुआ के कुरते की जेब से पिस्तौल निकल आई।

लाल साहब धक्। आंखें फाड़कर देखते ही रह गये। फिर चेहरे पर एकाएक स्नायुकम्पन हुआ। टेढ़ा मुंह करके बोले : "हमका शूट करै आए हौ का?"

"विचार तौ नाहीं है, बट इफ यू शॅल गो ऑन रिपीटिंग ए लाई दॅन— मजबूरी की दशा मां हम यहै करब।"

लाल कुंवर बहादुर तन गए, अंग्रेज़ी में बोले : "तुम लोग चाहते क्या हो।"

"रानी अम्मां की आज्ञा है कि आप दो घण्टे के अन्दर इन्दरमहल छोड़ दें। और बड़े भैया ने आज्ञा दी है कि आपको इस बीच में घर की कोई चीज न छूने दूं और यदि आप विरोध करें तो"…—पिस्तौल हाथ में फिर सध गयी।

लाल साहब आगे बढ़े, मास्टर बबुआ पिता को कठोर दृष्टि से देखते हुए पिस्तौल ताने उनके साथ ही घूमे। लाल कुंवर बहादुर के चेहरे पर रौब की कुतुबमीनार एकाएक ढह गयी। चेहरा एकदम निस्तेज हो गया। सूनी आंखों से दरवाजे की ओर देखते हुए वे आगे बढ़े। चौखट के पास जाकर वे फिर ठिठके, बोले : "शंकर, मैं तुम लोगों का घर छोड़ रहा हूं। लेकिन याद रखना, बाप को इस बेआबरूई से निकालकर तुम लोग आबरूदार न बने रह सकोगे" (चौखट के बाहर निकल आए) और राजा लखपतराय की बिटिया—अपन महतारी ते कह दियौ कि लाल कुंवर बहादुर उनका बहुत जल्दै भरी कचहरी मा कहार की माशूका साबित करि दिखेहैं। आई ओन्ट लिव पीसफुली हेन्स्फोर्थ, एण्ड ओन्ट लॅट यू टू रिमेन एज़ सच।" रबड़ की चप्पल और बनियाइन पहने हुए ही लाल साहब तेजी से बरामदा पार करने लगे। बरामदे के दूसरी ओर जीने के ऊपर हिंडोलेवाली खड़ी हुई थीं। लाल साहब से देखादेखी हुई। हिंडोलेवाली ने मुंह फेर लिया। लाल साहब को एकाएक हंसी आ गयी, बोले : "निकलना खुल्द से

आदम का सुनते आए थे लेकिन, बहुत बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले। हम जाके मंगरू को गांव से यहीं भेज देंगे, कहेंगे कि बेटा जाओ, अब खुले आम इन्दरमहल में रह के अपनी आश्ना और बेटों का सुख भोगो।"

"बबुआ, पांच जूते मारौ, सारे के। यहै हरामी के पिल्ले की अम्मां कहार की रहै। मारौ हरामी के। पती-फती हम अब न समझब ई का।" हिंडोलेवाली अपने पूरे स्वर में गरजीं। लाल साहब ने सिर झुका कर सुना; शंकरसहाय की पदचाप उनके कानों में गयी। वे सिर झुकाए आगे बढ़े। हिंडोलेवाली फिर गरजीं: "यू अंगूठी दुनौ-तीनौ उतार के धरे जाओ। जंजीर पहने रहौ, सोना तौ मुर्दन के साथौ जात है। अपने लेखे हम आज से रांड़ हुई गयीं।" यह कहकर उन्होंने जीने के शीशमी रेलिंग पर अपने दोनों हाथ दे मारे। चूड़ियां फूट गयीं। उसी तेहे में माथे का टीका भी हाथ से मिटा दिया। मास्टर बबुआ बोले: "अम्मां यू का करती हौ?"

"अरे, ई झूठे लबार ते ब्याह करिकै हमार सात जलम के पाप उदय भे रहे जौन हम ई राच्छस के साथ ई जलम मा भोगा है। हमका, सती का दोख लगाइस ई। अपने बच्चन का बेआबरू करैमा यहिका लाज न आई। सब सहिकै हम देउता की तरह ई दुश्मन का पूजा···अब हमैं यह हरामी की सूरत ने नफरत हुइ गयी है।"

चार मील पैदल चलकर तीसरे पहर के लगभग लाल कुंवर बहादुर लाला बैजनाथ की कोठी पर पहुंचे। कोठी पर पता चला कि लाला पुराने घर में हैं। और पुराना घर पुराने सर्राफे बाज़ार में है। कभी पैदल न चलनेवाले लाल कुंवर बहादुर धूप और श्रम से इतने थक चुके थे कि दो कदम भी चलना भारू लगता था। लाला बैजू का एक नौकर, जिसने कल रात लाल साहब को वहीदन के साथ आते हुए देखा था, लाला बैजू को उनकी खातिर करते देखा था—इस समय इनकी यह दुर्दशा देखकर उसे आश्चर्य हुआ, और वह सदय हो गया। लाल साहब को उसने फौरन ही पुराने घर पहुंचाने का प्रबन्ध कर दिया।

बैजू लाला ने सब कथा सुनी और कहा कि भइ, हम यही मदद कर सकते हैं के तुम हमारा कलब-घर चलाओ और यहां रहो। तुम्हारी वहीदन को फिलहाल हमने तिमंजिले पर टिका दिया है।

लाल बोले: "मुझे इजाजत दीजिए, मैं आपकी इसी बैठक में पड़ रहूं। दो-चार दिन में मेरा मन जरा काबू में आ जाय, तब कुछ करूंगा।"

लाला बैजू बोले: "भइ तुम्हारी मरजी। बहरहाल, हम तुमको रद्धू बाबू से मिला देंगे। मिल के खुश हो जाओगे। ताश के पत्तों का जादूगर है और आप भी कुछ कम नहीं हैं। सुख के दिनों के शौक को मुसीबत की रोटी-रोजी बनाइए। फला-फूला बिजनेस आपको दे रहा हूं, इससे ज्यादा और कर ही क्या सकता हूं।"

लाल साहब के जीवन का दूसरा अध्याय आरम्भ हुआ।

पन्द्रह

वहीदन और लाल ! —मुसलमान और हिन्दू। लेकिन किस बात के मुसलमान और हिन्दू ? ये पुरानी जातियां, धर्म और कबीले—यह सब अब बड़ी बकवास की बातें हैं, जो ईमानदारी से देखने पर आज की नयी चेतनावाली दुनिया में ठीक तरह से जुड़ नहीं पातीं। ये सब हिन्दू, मुसलमान ईसाईपन की, जाति-महत्ता की बातों में विश्वास करने वाले लोग ऐसे मालूम होते हैं, जैसी जवानी में बचपन के कपड़े घसीट-घसीटकर पहने खड़े हों।

तभी तो ये सब सांप्रदायिक संकीर्णता, मूर्खता, क्रूरता आदि हर तरह की प्रतिगामी और अमानवीय स्थिति में पहुंच जाते हैं। जबलपुर के हिन्दू-मुसलमान दंगे ने मुझे आन्तरिक पीड़ा पहुंचाई है। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बंट गया, लेकिन हिन्दू-मुसलमान समस्या अब भी जहां की तहां-सी ही लगती है। बड़ा भीषण दंगा हुआ है जबलपुर में।

जब हिन्दू-मुसलमानों के सम्बन्ध पर ध्यान देता हूं तो कभी-कभी यह जबर्दस्त उलझन मेरे मन में आती है कि मुसलमानों के साथ खान-पान का मुक्त सम्बन्ध स्थापित करके भी क्या हम अपने पिछले जमाने के सम्बन्धों से कुछ अधिक तरक्की कर सके ?

याद आता है, शायद आठवें-नवें दर्जे की बात है, हिदायत तब तक मेरा बहुत गहरा साथी हो चुका था। मैं, हिदायत, डॉ० नारायण जो आज हमारे प्रदेश के वनमन्त्री हैं और बिस्सो चाचा एक जात चार कालिब थे। हमारी चौकड़ी पढ़ने में भी तेज थी और ऊधम मचाने में भी। आर्य-समाजी शुद्धि आन्दोलन यदि हमें मुसलमानों का शत्रु न बनाकर केवल रूढ़िवादिता का दुश्मन ही बना पाया, तो इसका एकमात्र श्रेय हिदायत ही को है। बड़ा निडर, बड़ा शेर तबीयत का आदमी। एक बार उसने उर्दू वाले क्लास में मौलवी साहब तक को ऐसा मुंह तोड़ जवाब दिया था कि स्कूल और दो-एक मुसलमानी मुहल्लों में लगभग चार-महीनों तक उसी के किस्से-कजिये होते रहे। मौलवी साहब ने कहीं यह कह दिया कि हिन्दू मजहब में इतनी बुराइयां न होतीं तो उनके यहां आर्यसमाज न आता। उर्दू क्लास में अनेक हिन्दू लड़के भी पढ़ते थे, कोई न बोला। हिदायत शेर की तरह खड़ा होकर दहाड़ पड़ा, बोला : "काश कि एक दयानन्द मुसलमानों में भी पैदा हो जाता और तमाम मुल्ला-मौलवियों को जूते मार-मारकर मिल्लते-मोमिनीन से निकाल बाहर करता।" कुछ मुसलमान लड़के मौलवी साहब के इशारे पर हिदायत को जूते लगाने पर तुल गये, लेकिन यह काम आसान न था। चाचा और हिदायत दोनों ही अखाड़िये थे। जब से हिदायत को जूते लगाने की खबर हवा में फैली या फैलायी गयी, तब से चाचा ने हर रोज़ किताबों के बस्ते के साथ-साथ एक झोले में चार-पांच फटे जूते भी बराबर लाना शुरू कर दिया।

उसने यह एलान कर दिया था कि अगर हिदायत को किसी ने धोखे से भी एक जूता मार दिया, तो मौलवी अड्डा कांप न ठड्डा के चहेतों को मार-मार कर मलीदा बना दूंगा। मौलवी साहब के घर में आग लगा दूंगा और बाकी जो लड़के पिटेंगे, वो सब साले घाते में। लगभग एक महीने तक स्कूली लड़कों में सनसनी-फैली रही। हेडमास्टर एक अंग्रेज़ थे मि० मक्फरसन। उनके पास रिपोर्ट गयी। हमें उनके चपरासी से खबर मिल गयी कि हेडमास्टर साहब आज अचानक ही किसी वक्त क्लास में आकर चाचा के जूतों वाले झोले की तलाशी लेंगे। मैं लपका हुआ गया और एक भड़भूंजे के यहां से दो पैसे के लैया-चने खरीद लाया और चाचा को हाल बतलाकर दे दिए। जूते झोले से निकालकर क्लास के पीछे वाले गलियारे में छिपाकर रख दिए और झोला लैया-चनों से भर गया। उर्दू क्लास ही में हेडमास्टर साहब पधारे। पहले उन्होंने एक डांट-फटकार भरा लॅक्चर दिया और सब क्लास को सुनाते हुए चाचा और हिदायत से कहा कि अगर वे अपने जूतों का झोला इसी वक्त मेरे सामने लाकर पेश कर देंगे तो मैं उन्हें माफ कर दूंगा, वरना तलाशी लेने पर उनका रस्टीकेशन शर्तिया ही किया जाएगा। चाचा और हिदायत एक ही बेंच पर बैठते थे। दोनों नीचा मुंह किए धीरे-धीरे मुंह चलाते रहे। मौलवी साहब के खास शिष्य बरकत हुसेन ने खड़े होकर हेडमास्टर साहब से कहा कि जूते का झोला यही लोग रखते हैं, और इस वक्त भी इनके पास है। तलाशी लेने पर लैया-चने निकले। हैडमास्टर साहब चुपचाप चले गए। मैं और नारायण हिन्दी पढ़ते थे। पांचवें पीरियड में जब हम चारों इकट्ठा हुए तो सारा किस्सा सुनकर बड़ा आनन्द लिया।

उसी दिन शाम को बरकत और शफ़ात—मौलवी साहब की दो हमजिन्स 'बेगमों' को सरेराह जूते लगाये गए। ऊपर से हिदायत ने यह भी कह दिया कि अब जाके बेटा अपने शौहर मौलवी साहब से शिकायत करना हमारी। इस बात पर लड़कों में उस समय तो हंसी उड़ी ही, मगर बाद में उन दोनों की और मौलवी साहब की इतनी बदनामी फैली कि बरकत और शफ़ात ही क्या खुद मौलवी साहब तक रो दिये। स्कूल की चहारदीवारी से लेकर हिन्दू और मुसलमान मुहल्लों की दीवारों तक पर पचासों जगह यह ख़बर लिख दी गयी थी, यहां तक कि बरकत और शफ़ात के घरों के दरवाजों पर भी।

जिस तरह हम लोग हिन्दू धर्म की बुराइयों की टीका-टिप्पणी किया करते थे, उसी तरह हिदायत भी अपने धर्म-सम्प्रदाय वालों की आलोचना करने से न चूकता था। उसकी इस अकेली आवाज़ के साथ बाद में तीन-चार और मुसलमान लड़के शामिल हो गए। इस घटना के बाद हम लोग अक्सर खुलकर आपस में हिन्दू-मुसलमान सम्बन्धों की चर्चा किया करते थे। उस समय हिदायत की बतलाई हुई एक बात आज-तक मेरे मन से नहीं उतरी है। हिदायत एक बड़े जमींदार का लड़का था, और उसका असली घर भी गांव ही में था। कहने लगा : "अमां ये हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा तो हमने सिर्फ यहां शहर ही में आके देखा, हमारे गांवों में तो यह तमाशा अभी तक दिखलाई ही नहीं देता। जब एक गांव वाले दूसरे गांववालों पर हमला करते हैं तो हिन्दू-मुसलमान सब साथ होते हैं। उसमें ये कभी नहीं होता कि मुसलमान सिर्फ हिन्दुओं को ही मारें और मुसलमानों को छोड़ दें! दो गांवों की लड़ाई होती है, हिन्दू-मुसलमान की नहीं।"

हिदायत की इस बात में बड़ा सार है। यह हिन्दू-मुस्लिम युद्ध का तमाशा

तो हमारे देखते ही देखते इसी बीसवीं सदी में इस ढंग से पनपा है। यह सच है कि हिन्दू-मुस्लिम तनाव मेरे बचपन में भी था। बहुत से ऐसे मुसलमान थे, जो खुले आम हिन्दुओं का अपमान करते थे और हिन्दू चुप रह जाते थे। लाला बिसेसर-प्रसाद महाजन ने किसी पठान के यहां कुड़की कराई। उसके बाद वह पठान उनकी कोठी के आगे बिसेसर लाला और उनकी लपेट में हिन्दू कौम को गली में खड़े-खड़े लाखों बातें सुना गया और कहीं चिड़िया चूं भी न बोली। पठान खुले आम गरजता रहा, हिन्दू अपने घरों में बैठे सुनते रहे। मेरे अन्दर खून खौल रहा था। अपनी हाकी स्टिक लेकर बाहर निकलने लगा तो मेरे चाचा ने मुझे लपक कर गपची में भर लिया और बोले : "क्या करता है बे उल्लू, अभी घण्टे भर में सैकड़ों मुसलमान हमारे ऊपर चढ़ाई कर देंगे जो तूने कहीं एक भी हाथ मार दिया तो। ये मुसलमान कौम है, मुसलमान। इनमें एका है, हमारी तरह फुट्टैल नहीं हैं।"

इस समय भी मेरे सामने वह दृश्य ज्यों का त्यों कायम है, पठान के जाते ही बिसेसर लाला के बरामदों में कई पास-पड़ोसी आकर जुट गए और उस पठान तथा मुसलमानों की खुलेआम आलोचना करने लगे। मुझे अपने अन्दर उस समय हिन्दुओं से तीव्र घृणा हो उठी। एक अकेला निहत्था मुसलमान लगभग आध घण्टे तक हिन्दुओं को उन्हीं के मुहल्ले में खड़ा होकर कहनी न कहनी सुनाता रहा, तब सब चुप रहे और अब उसके जाने के बाद मुसलमानों की निन्दा इस जोर-शोर से कर रहे हैं कि जैसे अपनी शेखियां बघार रहे हों। इस समय अपना दिल टटोलकर देखता हूं तो ये पता चल रहा है कि मैं आज, इस क्षण तक उस दृश्य के कारण अपने समाज को क्षमा नहीं कर पाया। शायद सन्, 25-26 के लगभग ही गांधीजी का लिखा हुआ वह वाक्य मुझे याद आ रहा है—स्वभाव से मुसलमान 'बुली' (भभकियां देनेवाला) और हिन्दू कावर्ड (कायर) है। मैं मानता हूं, मुसलमानों ने अपने आक्रमणकारी, ऐतिहासिक दौर में हिन्दुओं को बड़ी बुरी तरह से कुचला है। निरीह प्रजा का खूब मान-मर्दन भी उन्होंने किया था। हिन्दुओं में एक निष्ठामूलक समाज चारों वर्णों से ऐसा भी निकला, जिसने अत्याचार का सामना करने के बाद भी अपनी धार्मिक-सांस्कृतिक आन बनाए रक्खी। मगर यह आन भी तो एक ढर्रे से निभायी न गई। कुछ लोग जुझारू थे, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी तलवार का जवाब तलवार से देते ही रहे। अधिक ऐसे थे जिन्होंने आतताइयों द्वारा किए गए हर अत्याचार को भगवत्परीक्षा मानकर हंसते हुए सहन किया। अपनी पूरी लौकिक मान-मर्यादा को माया-मोह मानकर यह फिलासफी बनायी कि अपना धर्म न छोड़ेंगे, भगवान के श्रीचरणों में अपनी अटल भक्ति को कठिन से कठिन परीक्षा के क्षणों में भी तिलांजलि न देंगे, बाकी चाहे जो हो। और अधिकतर समाज ऐसा था जिसके लिए धर्म शून्य था। उस शून्य में यदि 1 मिल जाए तो 10 हो जाएगा और दो, चार, पांच, छः, सात आदि कोई अन्य अंक जुड़े तो शून्य उसी अनुपात में बढ़ता चला जाएगा।

करोड़ों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इस देश भर में ऐसे भी थे जिन्होंने राम के साथ-साथ अल्ला को भी जोड़ लिया। तेंतीस करोड़ देवी-देवताओं में कुछ सैकड़े औलिया, पीर, शहीद और भी जुड़ गए। और इससे उनकी तनिक भी धार्मिक हानि न हुई। गांवों में ऊंचे-जंचे बांसों के अलम् सजाये मुसलमान लोग ढोल पीटते अल्ला का दान मांगते थे और हर घर से चुटकी मिलती थी। मैंने अपने बचपन में किसी देहाती नौकर की जबानी ऐसा कुछ सुना था कि 'राम मांगें दाना

अल्ला मांगैं रेवड़ी, औ अल्ला की रेवड़ी चुक गई तो राम से कहें कि अपना दाना हमैं देव ।' इस कहावत का तुक इस समय मेरे ध्यान से खो गया है, लेकिन बात का तुक मुझे खूब समझ में आ रहा है। शासक का धर्म जोर-शोर से चलता था। राम के देश में राम को दाना और अल्ला की रेवड़ी मिलती थी। शहजोर अल्ला अपनी तमाम रेवड़ियां खा जाने के बाद राम का दाना भी छीनकर चट कर जाते थे।

चौदहवीं सदी में इसी लखनऊ शहर में कोई हिन्दू खुलेआम अपने धर्म को सच्चा नहीं कह सकता था। धर्म केवल इस्लाम ही सच्चा था। उस समय एक पं० लोधेराम इस्लाम का श्रेष्ठ भारतीय दर्शनों के साथ गहराई से सन्तुलित अध्ययन करके इस नतीजे पर पहुंचा कि राहें दोनों सच्ची हैं, महज तरीके ही अलग-अलग हैं। अपने इस सत्य की घोषणा करते ही मुसलमान काजियों द्वारा लोधेराम सार्वजनिक रूप से फांसी पर लटका दिया गया, फिर किसी हिन्दू का साहस न हुआ कि अपने धर्म को खुलेआम सच्चा कह सके। मुसलमान शासक हिन्दुओं को अपने नये देवालय बनाने की आज्ञा बड़ी मुश्किल से देते थे। इस अनवरत संघर्ष के साथ लगभग सात-आठ सौ वर्षों तक विजित और विजेताओं में धार्मिक द्वन्द्व होता रहा।

और इसी काल में एक सांस्कृतिक समन्वय भी अपने ढंग से होता रहा। मुसलमानों ने हिन्दुओं के अनेक रीति-रिवाज अपनाये। हिन्दू भी दरगाहों और पीरों को मानने लगे। देवी और हनुमान के सम्बन्ध में किसी कारण मुसलमानों में यह धारणा बंध गयी कि वे बड़ी जागृत शक्तियां हैं। चेचक के लिए खासतौर पर हिन्दुओं की शीतलामाता मुसलमानों की पूज्या हुई। आंख दुखने पर मुसलमान लोग बोतलों में काली जी का नीर भी ले जाते थे। मंगल के दिन उन्हें बन्दरों, बच्चों और भिखमंगों को गुड़धानी बांटते हुए भी मैंने अपनी जवानी के प्रारंभिक दिनों तक अनेक बार देखा था। अवध में अनेक हिन्दू लोग अपने घरों में ताजिये रखकर उनके सामने मरसिये पढ़ते थे। हिन्दू स्त्रियों और पुरुषों पर उनके देवी-देवताओं और ब्रह्मराक्षसों के अलावा सैयद भी आने लगे थे। अवध के बनियों में शेख सद्दो की भी बड़ी महिमा थी। अनेक हिन्दू महल्लों में जगह-जगह सैयद के आले देखने को मिलते थे, जिन पर रेवड़ियां, इत्र की फुरहरियां और धूप, लोबान, फूलों का सेहरा, पैसे आदि चढ़ाये जाते थे, जिन्हें मुसलमान फकीर ही उठा लेने के अधिकारी थे। सैयद के नाम पर आए दिन बड़े-बड़े प्रपंच हुआ करते थे। जाने कितनी स्त्रियां और अशिक्षित पुरुष रोज इस बात का दावा करते कि उन्होंने सफेद बुर्राक दाढ़ी और सफेद बुर्राक पोशाक में इत्र से महकते हुए सैयद बाबा को खास अपनी आंखों से देखा था।

एक बड़े रईस लाला थे, उनके बेटे, हमसे करीब दस बरस बड़े थे। उन पर अक्सर ही सैयद आया करते थे। बस एकाएक बैठे-बैठे झूमने लगते, इधर-उधर हाथ-पैर पटकते, कुछ गैबी बातें बोलने लगते। घर भर के तमाम नौकर-चाकर महरियां औरतें और खुद सेठ साहब तक हाथ जोड़े तिमंजिले पर उनके चौबारे में पहुंच जाते। फर्माइशें होने लगतीं, फलां रण्डी का नाच कराओ, फलां का गाना कराओ, इसे यह दो, उसे यह दो। उनकी आज्ञाओं का पालन होने लगता। लखनऊ में एक पारसी थियेट्रिकल कम्पनी आई। उसकी यहूदी हीरोइन ने शहर भर के मनचले रईसों के दिलों पर डाका डाला। उसकी सोहबत का लुत्फ उठाने

के लिए न जाने कितने सेठजादों, नवाबजादों ने ठेठर के मैनेजर और कारिन्दों को सैंकड़ों रुपए चटाए। उस एक्ट्रेस की आया ईसजादों से वह चिरौरियां पाती थी जो खासतौर से उनकी मांओं तक को न नसीब हुई होंगी। हमारे सेठ-बच्चे को खबर लगी कि अमुक रियासत के नवाब साहब ने उस यहूदी सुन्दरी को केवल एक रात अपने पास रखने के लिए लाख रुपये देने की घोषणा की है। दस हजार मैनेजर और पांच हजार आया को भी बतौर बख्शिश के दिए जाएंगे। सौदा करीब-करीब पट गया है।

सेठ-बच्चे ने जब यह सुना तो दर्द-ए-इश्के-यहूदिन से तिलमिला उठा। तबीयत हुई कि नवाब साहब के एक लाख पर अपने दो लाख चढ़ा दे मगर बाप जिंदा थे। यह बड़ी मुसीबत थी। उनके एक चालबाज मुसाहब ने योजना बनाई कि हुजूर बेफिक्र रहें, मैं ऐसी तरकीब करूंगा कि वह जब नवाब साहब के यहां जाने के लिए रात में निकलेगी, तब नवाब साहब की बग्घी का कोचवान और नौकर बदल जाएंगे और बग्घी आपकी बागीचे वाली बारादरी में पहुंच जाएगी। सुनने में आया था कि इस काम के लिए सेठ-बच्चे ने मुसाहब को खर्च के लिए दस-पन्द्रह हजार रुपये दिए थे। बहरहाल उसने काम कर दिखाया। नवाब साहब की बग्घी पर मुसाहब द्वारा मुस्तैद कोचवान बैठा था और बग्घी उस यहूदन एक्सट्रेट को लेकर सेठ-बच्चे की बारादरी में पहुंच गई। उसके बाद उस बग्घी पर रात के तीन बजे शहर के किसी बड़े चौराहे के पुलिसमैन ने तीन बेहोश आदमियों को पाया। घोड़े बेलगाम बेतहाशा दौड़ रहे थे।

सेठ-बच्चे ने यहूदिन माशूक की बड़ी चिरौरी की मगर वह न मानी। अन्त में दो लाख नकद देने पर सौदा तय हुआ। लेकिन तब तक सुबह हो चुकी थी और सेठ-बच्चे को रकम का इन्तजाम करना था।

उधर जब नवाब साहब के आदमी बेहोश पाए गए तो नवाब साहब की फिक्रें भी बढ़ीं और थियेट्रिकल कंपनी मैनेजर की भी। जिस रात हीरोइन गायब हुई थी, वह रात स्टेज की साप्ताहिक छुट्टी की थी। लेकिन दूसरे दिन तो उसके बगैर तमाशा ही न हो सकता था। पुलिस के लिए दोनों तरफ से थैलियों के मुंह खुल गए और शाम होते न होते पुलिस को ऐक्ट्रेस का पता चल गया। बारहदरी पर धावा करने से पहले पुलिस ने सेठजी को खबर दी। अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए वे दौड़े हुए बारादरी पहुंचे। बाप की अगवानी का समाचार सुनते ही सेठ बच्चे पर सैयद आ गए और यहूदिन ऐसी सफाई से छिपा दी गई कि कहीं पता न चला।

अब सैयद साहब सेठ-बच्चे की खोपड़ी पर सवार होकर खड़े-खड़े गरजने लगे : "नवाब के खानदान भर को हैजा होगा। ठेठर कम्पनी में आग लग जायगी। सेठजी की कोठी में भूत लोटने लगेंगे। कहां है पुलिस, बुला तलाशी लें।" इसके बाद 'सैयद साहब' इस बात पर तुल गए कि पुलिस उनकी बारादरी और बगीचे के चप्पे-चप्पे की तलाशी अवश्य ले। तलाशी ली गई, यहूदिन न मिली। जिन नौकर-चाकरों ने पुलिस को ये खबर दी थी, जिन्होंने यहूदिन को यहां देखा था, वो सैयद साहब और तमाम मजमे के सामने नाक रगड़-रगड़कर गिड़गिड़ा-गिड़-गिड़ा कर अपना अपराध स्वीकार करने लगे। अफवाह उड़ गई कि सैयद बाबा ने यहूदिन को गायब कर दिया। सेठ-बच्चे ने अपने बाप पर तुरन्त ढाई लाख रुपये का नजराना चढ़ाने का हुक्म दिया। पचास हजार में इस सैयद नाटक के लगुए-

भगुओं और पुलिसवालों की जेबें गरमाईं, जश्न हुआ, दो लाख यहूदिन के साथ गए।

ये हंगामा खत्म हुआ, मगर इस हंगामे के बाद सैयद बाबा का महात्म्य ऐसा बढ़ा कि महीनों तक उसके चर्चे होते रहे। लोगों के अन्धविश्वास पर लाखों की लूट करनेवाले ये हिन्दू-मुसलमान गुण्डे, पण्डे, पुजारी, मौलवी, मुल्ले, औलिया, फकीरों के रूप में निरन्तर लूटते थे। आर्यसमाज के प्रभाव में आकर हम नवयुवकों ने बाद में इनको ठोंक-ठोंककर ठीक किया। कब्रों और सैयद के आलों पर चढ़ाए जाने वाले पैसे हमारी जेबों में जाने लगे। रेवड़ियां हमारी जीभों का जायका बढ़ाने लगीं, और हम इत्र की फुरहरियों से महकने लगे। अनेक अन्धविश्वासी स्त्रियां, पुरुष और हमारे साथी हमें डराया करते थे कि अब सैयद बाबा या कब्रवाली रूह हमें उठा-उठाकर पटकेगी, तबाह कर देगी, लेकिन जब वर्षों ये रूहें और सैयद हमारा कुछ न बिगाड़ सके, तब परम अज्ञानी और परम कायर सनातनियों को भी जोश आने लगा। सन्' 23-'24 के दंगे के दिनों में सनातनियों के अनेक सैयद के आलों पर हनुमान जी की मूर्तियां स्थापित करके एक मिथ्या भय को दूसरे मिथ्या भय से हटा दिया।···यह सब हुआ, मेरे देखते-देखते ही समय बहुत बदला, लेकिन सैयद के आलों और कब्रों के चढ़ावों का चलन आज भी एकदम समाप्त नहीं हो सका है। मेरे आसपास चारों ओर झूठे और निकम्मे धर्म के सड़े पानी में कीड़ों की तरह बिलबिलाने वाला हिन्दू-मुसलमान समाज अब भी मौजूद है। जबलपुर-काण्ड ने मुझे इस समय बेहद झिंझोड़ा हैं। यह धर्म-भेद, रंग-भेद आदि झूठी आस्थाएं आखिर कब और कैसे टूटेंगी?···सच्ची आस्थाओं को जमाने से टूटेंगी। इसलिए काम किए जाओ अरविन्द। ये भावुक चिन्ताएं छोड़ो। देखो, तुम्हारा रमेश इस दिशा में क्या कर सकता है···

इतवार का दिन। उमस गहरी थी। रमेश-रानी चाय पी चुके थे, रानी जूठी तश्तरियां और प्याले उठा रही थी। एकाएक अपनी बढ़ी हुई दाढ़ी को जोरों से खुजलाकर रमेश बोला: "भई, अब तो दाढ़ी बढ़ाने का मूड उतर रहा है, कल से खुजाते-खुजाते परेशान हो गया। यार लोग मजाक उड़ाते हैं सो अलग।"

"मैंने तो आपसे कहा नहीं था। आप ही दाढ़ीसिंह बने हैं।"

"अगर तुम मना कर देतीं—"

"मैं क्यों मना करूं। ठाकुर की लड़की को दाढ़ी से चिढ़ तो होती नहीं।"

"अरे, मैंने तो उदारता दिखलाई कि तुम गौड़ हुई हो तो मैं सिंह बन जाऊं। मगर—"

"गौड़ तो क्षत्रिय भी होते हैं?"

"अच्छा, और कायस्थ भी होते हैं।···और ग़ोर गजनी भी है और गौड़ प्रदेश भी।—यानी पूरा कबीलाई मामला है।—"

दरवाजे पर ठकठक हो रही थी। रमेश के बौद्धिक चिन्तन स्फूर्त, घर सुखिया मन को किसी का आना इस समय अच्छा तो न मालूम हुआ, पर कुण्डी खोलने के लिए गया वह अवश्य। रानी जूठे बर्तनों की किश्ती उठाकर अन्दर चली गई।

दरवाजे पर मकान मालिक खड़े थे। उन्हें देखने ही रमेश ने कहा: "आदाब-अर्ज नवाब साहब, तशरीफ लाइए।"

"मैं आपके किसी काम में डिस्टर्ब तो नहीं—"

"अजी नहीं, आप तो हमेशा ही हमारे लिए वरदान बनकर आते हैं।"

"ये बड़प्पन है आपका, वरना आजकल तो जवान लोग बूढ़ों की सूरत देखकर ही चिढ़ जाते हैं।...अच्छा, ये पार्टीशन का रुख बदल दिया आप लोगों ने। ठीक है, अच्छा लगता है। इतने फर्निचर के साथ ड्राइंगरूम छोटा ही अच्छा लगता है। मगर ये बांस जो आपने कोने में लगाया है, जरा बुरा मालूम होता है। टेढ़ा है न।"

"जी हां, कल बड़े मियां से मंगवाया था। हम लोगों को भी इस कोने का भोल पसन्द नहीं आ रहा। अब देखिए किसी दिन फ़ुरसत से—"

"मेरे लायब्रेरी वाले हाल में पर्दे का स्टैण्ड रक्खा ही हुआ है लकड़ी का। आपको याद आया न, वो—"

"जी हां, जी हां।"

"बाबादीन से कहके उसको मंगवा लीजिए। वहां बेकार ही पड़ा है। पर्दा जरूर बीच से काटना पड़ेगा आपको। एक पर्दा छड़ पर यहां सामने और दूसरा इस बाज़ू में—चौकोर ड्राइंगरूम बन जायगा आपका।"

रमेश प्रसन्न होकर बोला : "आपने अच्छी सलाह दी। अस्ल में हम इस कमरे के तीन कमरे बनाना चाहते हैं। ये ड्राइंगरूम, इसके पीछे इधर वाली खिड़की की तरफ मेरे पढ़ने-लिखने की जगह और बाकी हिस्से से सोने का कमरा।...ए रानी, देखो भई, नवाब साहब के लिए चाय बनाओ, और दिन में किसी समय बड़े मियां से कहना कि एक मजदूर बुलाके पर्दे का स्टैण्ड यहां उठा लाएं।"

अन्दर से रानी की 'जी अच्छा' सुनाई दी। नवाब अनवर मिर्जा कुर्सी पर आराम से बैठे हुए बोले : "क्या दाढ़ी रखने का इरादा है आपका ?"

रमेश झेंपकर हंसा और अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरने लगा। नवाब साहब मुस्कुराकर बोले : "शियों जैसी दाढ़ी रखेंगे या सुन्नियों जैसी ?"

"जी, मैं समझा नहीं। क्या शिया-सुन्नियों की दाढ़ियों में भी फर्क होता है ?"

"जी हां, शिय्यों की दाढ़ी का कायदा ये है कि चालीस कदम दूर से दिखलाई दे मगर सुन्नी और भी लम्बी दाढ़ी रखते हैं !"

"हम तो नवाब साहब, ये वाइफ की खातिर ठाकुर बन रहे हैं।" रमेश ने पर्दे की ओर मुंह उठाकर मुस्कुराते हुए कहा।

नवाब साहब बड़े ज़ोर से हसे, बोले : "ओह, तो ये कहिए कि दाढ़ी आपके पर्दे का राज़ है। आपको एक पुरानी बात सुनाऊं। एक मुश्तरी तवायफ थी, बड़ी नामी—"

"वही जो हमारे डॉ० आत्माराम के पिता—"

"अजी वो सर शोभाराम वाली नहीं। ये दिल्ली की मुश्तरी थी। हसीन ज़हीन, और बातों का आर्ट तो इतना खूबसूरत आता था उसे, कि सर सैयद अहमद अक्सर उसकी बातें सुनने के लिए जाया करते थे। शायर भी बहुत अच्छी थी मुश्तरी—

ये जमाना आलमे ख्वाब है,
पै तश्ना मिस्ले सुराब है;

जो मकीं है शक्ले हबाब है,
जो मकां है नक्शे बर-आब है।

—वल्लाह, क्या बात है।''' खैर बाद में उसने किसी से अपना निकाह पढ़वा लिया था। उसके बाद सर सैयद उसके यहां गए, पर अब उसमें वो बात नहीं रही थी। सर सैयद बोले कि मुश्तरी तुम्हारी बातों में अब वो मजा नहीं रहा। मुश्तरी बोली कि हुजूर, वो पर्दे के बाहर की मुश्तरी थी और यह पर्दे में रहती है। उसकी वो बातें अब पर्दे का राज हैं।''' तो इसी तरह से ये आपकी दाढ़ी भी आपकी खूबसूरती को अब महज़ पर्दे का राज़ ही बना देगी।" कह कर नवाब साहब जोर से हंसे। रमेश ने भी उनका साथ दिया। एक।एक रमेश ने पूछा, "अच्छा नवाब साहब मुसलमानों में दाढ़ी रखने और मूंछें मुंड़ाने का जो रिवाज है, वह किस वजह से है?"

नवाब साहब अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए सोचने लगे। फिर बोले: "भई, कहा तो ये जाता है कि मूंछों में पानी न लगना चाहिए, इसलिए मूंछें मुंड़वा दी जाती थीं। बहरहाल अपनी जवानी में मैं तो ये लॉजिक पेश करता था जनाब, कि मूंछों के सबब 'किस' करने में (चूमने में) शायद अरब वालों को कुछ बदमजगी मिली होगी, इसी वजह से मूंछें नजिस और दाड़ी खुदा का नूर मान ली गई।"

रमेश हंसने लगा, बोला: "ये आपने अच्छी बात बतलाई। मैं भी दाढ़ी बगैर मूंछों ही के रखूंगा।

"मुआफ फरमाइएगा गौड़ साहब, एक मुसलमान के घर में किराएदार बनने की वजह से तो आपके वालिदे बुजुर्गवार खुदकशी करने पर आमादा हो गए थे। और अब जो आप सूरत से भी हमारे ही जैसे नज़र आएंगे, तो खुदा जाने वो क्या कहर बरपा न कर डालें।"

रमेश झेंप गया, बोला: "क्या कहूं नवाब साहब, वो बड़े हैं, मेरे पिता हैं, मगर बहुत ज्यादा भंग पीने के कारण उनके दिमाग पर उसका असर पड़ गया है।"

"अच्छा, भंग भी पीते हैं। बहरहाल एक बात आपसे कह दूं कि इस किस्म के खयालात रखने वाले लोग सभी कौमों में होते हैं। हमारे मुसलमानों में भी हैं। मेरी उम्र के ज्यादातर लोग आपको आजकल के मुसलमान बच्चों की शिकायतें ही करते मिलेंगे कि उनका चलन बिगड़ गया है। दूर से भीड़ देखने पर यह अन्दाज ही नहीं लगता कि इनमें से कौन हिन्दू है और कौन मुसलमान या ईसाई।"

"मगर मैं समझता हूं कि यह एक अच्छी बात हुई है।"

"शर्तिया अच्छी बात है। मजहब मेरे नजदीक एक बड़ी ही पर्सनल (निजी) चीज है। मैंने अपनी तमाम उम्र में जहां तक बन पड़ा है, नमाज कजा नहीं की। रोजों का भी सदा पाबन्द रहा, मगर इसके बाद मैं किसी भी मजहबी मजलिस में आज तक शरीक नहीं हुआ। एक बार जब मैं आजमगढ़ में था, तो कुछ लोग मुझसे मस्जिद बनवाने के लिए चन्दा मांगने आए। मैंने कह दिया जनाब कि नमाज घर में पढ़िए। ये मस्जिदें, मन्दिर और गिरजे वगैरह पब्लिक प्लेसेज (जन स्थलों) में, आज के ज़माने में नहीं बनवाने चाहिए। पुराने जमाने की बात और थी। आज के जमाने में तो इन जगहों में खुदा के बजाय शैतान रहता है।"

"नवाब साहब, आपकी तरह से साफ सोचने वाले लोग पुरानों में तो क्या, नयों में भी बहुत कम ही मिलेंगे।"

"अरे भाई, मैं क्या बतलाऊं, अपने इन्हीं खयालात की वजह से मुझे मेरे बीबी-बच्चों तक ने मुसलमान नहीं माना, औरों की क्या कहूं। (हँसकर) और मजे की बात तो ये है कि मेरे दोनों लड़के जो इस वक्त पाकिस्तान में आला ओहदों पर हैं, न कभी नमाज पढ़ते हैं और न रोजे रखते हैं।···तो मेरे कहने का मतलब ये है कि ये मजहबी अलगाव का ऊपरी एहसास आपस में नफरत फैलाता है।"

रानी चाय लेकर आ गयी। उसने नवाब साहब को अपने आदाब पेश किए, आशीष मिली। नवाब साहब बोले : "बानो कह रही थी कि आप आजकल चिकन का मोर काढ़ रही हैं। और उसकी ड्राइंग और कसीदाकारी बहुत उम्दा है।"

"जी, ऐसे ही बस बनाती चली जा रही हूं, देखिए कब पूरा होगा। समय तो मुझे मिलता ही नहीं, क्या करूं।"

"आर्ट में गिनती नहीं गिनी जाती बीबी, आप उम्र भर में एक ही चीज़ बनाएं, मगर वह नायाब बनाएं, बस काफी है।"

"रानी, श्याम भटनागर के यहां—"

"जी मुझे याद है। मेरा सब काम निपट चुका।"

"कहीं जाना है आप लोगों को ?"

"जी अभी नहीं। साढ़े बारह बजे एक दोस्त के यहां खाना खाने के लिए जाना है। (रानी से) ज़रा घण्टे भर बाद एक कटोरी पानी गर्म कर देना, दाढ़ी बनाऊंगा।"

रानी और नवाब साहब दोनों ही मुस्कराए। नवाब साहब बोले : "अकबर का एक शे'र आपके मामले में इस वक्त ज़रा उलट गया। यानी इब्तदा आपने मूंछों से की और इन्तहाई में अब दाढ़ी जा रही है।"

थोड़ी देर बाद नवाब साहब जब चलने लगे तो रानी ने रमेश से कहा कि परदे का स्टैण्ड अगर लाना है तो इसी समय उठवा लाओ, दिन में समय नहीं मिलेगा।

स्टैण्ड आ गया। पति-पत्नी दोनों ही पार्टीशन के परदों को छड़ों में पिरोने लग गए; कीलें गड़ी और परदे लग गए। कमरे की शकल निश्चित रूप से अच्छी चौकोर निकल आई। पति-पत्नी दोनों ही खुश होकर अपने मकान-मालिक की सराहना करने लगे : "भाग्य ही से ऐसे मकान-मालिक मिलते हैं।"

'नौशेरवां मंजिल' के नवाब अनवर मिर्जा साहब की उम्र अब अस्सी-इक्यासी साल की है। कभी वकालत करते थे। अच्छा कमाया था। वालिद घर-उजाड़ थे। नवाब बहूबेगम के ट्रस्ट से इनके खान्दान को ग्यारह सौ रुपये का वसीका मिलता था, जो बंटते-बंटते इनके हिस्से में कुल जमा 49 रु० 75 न० पै० आता है। वकालत ही के दौर में उन्होंने अपने जीवन की सबसे बड़ी साध यह पूरी की, कि सन् 1917 में यह पूरी 'नौशेरवां मंजिल' और उसके साथ की यह जमीन अपने आठ खान्दानी हिस्सेदारों से साढ़े बाईस हज़ार रुपये में खरीद ली। और यह काम उन्होंने इसलिए किया कि उनके स्वर्गवासी पुरखे, जिन्होंने नवाब सआदतअली खां के जमाने में फैजाबाद से लखनऊ आकर इस कोठी की दागबेल डाली थी, उनसे बेहद खुश होंगे। जवानी में यों थोड़े-बहुत शौक तो खैर किए ही थे, अब भी एकाध कमजोरी बाकी है। पर शराब कभी हाथ से भी नहीं छुई। एक बार सन् 25 में एक बड़े ताल्लुकेदार का मुकदमा लेकर प्रिवी काउंसिल के मशहूर बैरिस्टर लक्समूर साहब की सहायता के लिए लन्दन भी गए थे। और इस बहाने यूरोप की

सैर कर आए थे। मगर यह सब होते हुए प्रवृत्ति सदा धार्मिक रही। पढ़ते खूब हैं। लगभग बीस-बाईस हज़ार पुस्तकें खरीदकर अपना पुस्तकालय बनाया है। एक कॉटन मिल के शेयर एक समय में संयोग से खरीद लिए थे, वरना कमाई के दिनों में बचत की ओर कभी ध्यान ही न दिया। बीवी-बच्चों ही के हाथ में सदा रुपया रहा। जब पत्नी मर गईं और ये कमाई-धमाई से वीतराग होने लगे, तो बहुओं ने अच्छा बर्ताव न रक्खा। बाद में दोनों बेटे सपरिवार पाकिस्तान चले गए। शेयर के वार्षिक मुनाफे में आठ सौ से डेढ़ हज़ार तक की रकमें आती रहीं, पचास वसीके की रकम मिलती रही। नवाब साहब अपने बूढ़े खिदमदगार बाबादीन और बावर्चिन के साथ सुख-स्वाधीनता का जीवन बिताने लगे।

बाद में इनकी नवासी गैहांबानो मुसीबत की मारी इनके पास आकर रहने लगी। बानो की मां, नवाब साहब की सगी भतीजी, मर चुकी थीं। सौतेली मां के जुल्म सहे, फिर कॉलेज की एक मास्टरनी के लड़के से प्रेम हो गया। उसी के लिए बानो घर से भागी। बानो के प्रेमी ने उसे स्टेशन के तीसरे दर्जे के प्रतीक्षाघर में मिलने को कहा था, लेकिन समय बीतता गया, वह न आया। शायद उस विद्यार्थी प्रेमी को अपने अनिश्चित भविष्य का भय सताने लगा होगा। बहरहाल, बानो निराधार हो गई और अन्त में उसे अनवर नाना की याद आई। उसने लखनऊ का टिकट लिया और यहां आ गई। उसने अनवर नवाब को खत लिखकर सब कुछ सही-सही बतला दिया। नवाब साहब बोले कि चिन्ता न करो, मेरे पास रहो। उसके बाप को पत्र लिख दिया। कॉलेज से उसका ट्रांसफर सर्टीफिकेट मंगा लिया और गैहांबानो तहां पढ़ने लगी। इस बार उसने बी० ए० पास किया है।

रानी के आ जाने से बानो को एक साथी मिल गया। वरना वह भूत ऐसी हवेली में अकेली सांय-सांय-सी रहा करती थी। कोठी के पच्छिम वाले हिस्से में नवाब साहब ने अपने एक भतीजे को बाढ़ के दिनों में सपरिवार शरण दी थी। उसका मकान बाढ़ में खंडहर हो गया और वह खुद भी तपेदिक का मरीज था। यहां आने के दो महीने बाद ही वह चल बसा। नवाब उसके अनाथ बीबी-बच्चों को फिर भला क्योंकर निकाल सकते थे? लेकिन उस परिवार को टिकाने के कारण इधर नवाब साहब को बेहद मानसिक कष्ट उठाना पड़ रहा है। लड़का और लड़की दोनों ही आवारा हैं। यहां तक ही नहीं, बल्कि नवाब साहब की बूढ़ी बावर्चिन का कहना है कि खुद मां का चरित्र भी दागदार है। अनवर नवाब गैहांबानो को उन लोगों की परछाई तक नहीं कुचलने देते, बातचीत दुआ-सलाम तो दूर की बात हुई। अनवर नवाब उन्हें हटा देना चाहते हैं, लेकिन हटा नहीं पाते। उनकी बदचलनी की शिकायत करते हैं तो बेवा भतीजबहू बाबादीन और बावर्जिन की मार्फ़त तानामेज़ लहज़े में यह कहलवा भेजती है कि तीस रुपये वसीक़े में कहां से अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट पालूं? चचाजान को जो इज़्ज़त का बड़ा ख़याल है तो हमारी परवरिश क्यों नहीं करते?

लेकिन अनवर नवाब परवरिश कर ही कैसे सकते हैं? अपनी शक्ति है नहीं। फिर भी हाजी नबी बख्श से कहके दोनों बच्चों की पढ़ाई के लिए सौ रुपये का वसीक़ा उनके फ़ण्ड से दिलवा दिया, मगर उन लोगों की बिगड़ी आदतें सुधर न सकीं। पढ़ाई जस-तस चल रही है। लड़की बाईस-तेईस बरस की है और लड़का चौदह-पन्द्रह साल का। लड़की ने भी इस साल बी०ए० किया है; वह यूनिवर्सिटी ही में पढ़ती है और एकदम आज़ाद तबीयत की है। अक्सर लड़कों की पोशाक में

शाम को अपनी घुड़पुच्छी चोटी लहराती हुई किसी की मोटर पर जाती है। अपनी कोठी के आस-पास शाम को मोटर की आवाज़ सुनकर ही अनवर नवाब की नज़रें लायब्रेरी वाले हॉल में बैठे-बैठे खुद अपने ही सामने झुक जाया करती हैं। लड़का स्कूल में पढ़ने जाता है और फ़ेल होता है, आवारागर्दी करता है।

बानो का जी घुटता है। यह घर उसे कैदखाना नज़र आता है। एक तरफ़ नये प्रेमियों का ब्याहता जोड़ा, दूसरी तरफ़ नयी उम्र की आज़ाद रंगरेलियां और तीसरी आफ़त यह थी कि बासठ बरस की बूढ़ी-बावर्चिन अब भी उसके अस्सी बरस के नाना की खिदमत में रोज़ मांग-चोटी कर के सुर्मा लगा के जाती थी। बानो को गो बावर्चिन से प्यार है और वह उसे अदब से नानी अम्मां पुकारकर उसका और नवाब साहब का जी भी खुश करती है, मगर यह सब वैध-अवैध सुहाग उसके घुटते अरमानों को बेहद सताता है, गैहांबानो को अब एम० ए०, पी-एच० डी० की डिग्रियां पाने की नहीं, बल्कि शौहर पाने की लालसा तीव्र हो उठी है। लेकिन अनवर नवाब उसके लिए कोई रिश्ता तलाश नहीं कर पा रहे हैं और शायद कभी न कर पाएंगे। अनवर नवाब बरसों से कहीं आते-जाते नहीं, और उनके यहां आने-जानेवालों में भी एक हाजी नबी बख्श को छोड़कर और कोई खास आदमी नहीं रहा। हाजी साहब को अब भी उनकी कानूनी सलाहों पर बेहद भरोसा है। किसी समय अनवर नवाब उनके वकील थे और कोई विशेष कानूनी अड़चन आ जाने पर अब तक वे उन्हीं के पास खुद दौड़े हुए आते हैं। नवाब साहब हाजी नबीबख्श की मार्फत बानो के लिए शायद कोई अच्छा घर-वर तलाश कर सकते थे। मगर यह वह कभी न करेंगे। हाजी मामूली बावर्ची का बेटा है और नवाब साहब खानदानी नवाब हैं। वे मरतान् मर जाएंगे पर किसी का एहसान न लेंगे। एक तरफ़ यह गुमान है और दूसरी तरफ काहिली है। फिर बानो के लिए लड़का कहां से तलाश किया जाय? नवाब साहब अब बानो को पढ़ाना भी नहीं चाहते, क्योंकि एम० ए० के लिए उसे यूनिवर्सिटी में पढ़ना होगा, जहां कि लड़के भी पढ़ते हैं। अनवर नवाब लड़कियों की पढ़ाई के पक्ष में हैं। उनसे पर्दा न कराने के पक्ष में भी हैं, मगर उन्हें जहां-तहां आंखें लड़ाने की छूट वह हर्गिज़-हर्गिज़ नहीं दे सकते। वह चाहते हैं कि लड़के-लड़कियां संयम बरतना सीखें और अपने मन को मजहब की पाबन्दी में बांधे रक्खें।

गैहांबानो आजकल इसी घुटन में तड़प रही है। कॉलेज जाने के बहाने रिक्शे पर आते-जाते हुए दोनों समय वह कम-से-कम चहल-पहल भरे बड़े शहर का फैलाव तो देख लेती थी। अब वह भी नसीब नहीं। उसका अब क्या होगा?··· बानो अपने सूनेपन को दिन भर नमाजों और क़ुरान शरीफ़ की आयतों से जुझाया ही करती थी। मगर उम्र और अरमान शक्तिशाली गुण्डे की तरह बरबस अपनी ओर घसीट ले जाया करते थे। दिन के सूनेपन में खुदा और रातों की सूनी सेज में सनम का ध्यान चुम्बक के दो सिरों की तरह अपनी-अपनी जगहों पर अटल मौजूद रहते थे। खुदा तो सनम को न पछाड़ पाया, मगर सनम खुदा को अक्सर पछाड़-पछाड़ देता है। उसे अपने रफ़ीक की चार बरस पहले की देखी हुई सूरत बार-बार याद आती है। दो-चार बार सूनेपन में, मिनट दो मिनट के लिए वह उसके आलिंगन में बंध चुकी थी। वह गर्मी, वह बेखुदी का आलम, वह जवानी का नशा बार-बार अपने ध्यान में लाती···लेकिन पुरानी याद अब उसके तन-मन में नया जोश नहीं भर पाती। इधर अक्सर उसके मानस में रमेश का बिम्ब झलक

जाया करता है। कितना ख़ूबसूरत, कितना नेक और जवान है। वह रमेश को रमेश के लिए नहीं, बल्कि रफ़ीक की याद में देखती है। वह अब रानी के पास जाती है तो कुछ उसके लिए नहीं बल्कि रमेश को देखने के लिए जाती है।

मन के इस खेल ने मन ही में आग लगा दी। एक रात अपनी मास्टरनी के पते पर रफीक को पत्र भेजा, लिफाफ़े पर उसके वर्तमान पते पर भेजने की विनती भी लिख दी। हफ्ते भर में बावर्चिन नानी के पते पर बानो के नाम उसका पत्र आया था। पुराने प्रेमी के भावभीने पत्र ने बानो के बुझे जीवन में जोत जगा दी। मन के खेल ने अब नयी नक्शेबन्दी की। रफीक के पत्र पाकर वह रमेश को देखने के लिए बेक़रार होकर आती, किसी बहाने उसके दो काम कर देने, दो बोल बोल लेने को आती। यहां आने के लिए नानाजान भी कभी न रोकते थे। ऊपर ही से राह भी जुड़ी थी। सहनची के दरवाजे से इधर आने-जाने में उसे किसी समय भी दिक्कत नहीं होती।

एक रोज़ रानी जब रात में अपने मैके ही में रहनेवाली थी, बानो का जी ऐसा जिदियाया कि आज जैसे भी हो, वह अपने काम के लिए रमेश पर जादू करेगी। शाम ही से वह इस ताक में रही कि कब रमेश घर में आता है। रमेश रात में साढ़े नौ-दस के क़रीब आया। बानो के दिल की धड़कनें बढ़ गयीं। मन के खेल ने इतना भरमाया कि बावर्चीखाने में जाकर सटर-पटर करने लगी। हलवा बनाया, चाय बनाई और मन-ही-मन खुशी की चाशनी पकाती रही। सब कुछ कर लिया। क़िश्ती में प्लेटें और केतली रक्खीं, बावर्चीखाना बन्द किया और आहिस्ता क़दम चली। सूनी अंधेरी हवेली—बानो छज्जा पार करती है, बायीं तरफ के दालान में आती है, सूने कमरे की कुंडी खोलकर अन्दर जाती है, लाइट का स्विच दबाती है, दरवाजे उड़काती है और फिर सहनची की ओर जानेवाले दरवाजे को खोल भी देती है। सामने सहनची का अंधेरा सुनसान गलियारा।···और वो अंधेरा उसे बांध लेता है। अंधेरा उसे रोक रहा है। यों सहनची में भी स्विच दबाकर वह रोशनी कर सकती थी, मगर इस समय वह उसे भूल गई है। शायद जान-बूझकर भूल गई है। वह अंधेरा मानो एक जीता-जागता हुआ व्यक्तित्व है। वह अंधेरा जिब्रील है, ईश्वरी दूत है जो उसे आगे बढ़ने से रोक रहा है।···कहां जा रही है बानो, ये तू क्या कर रही है। मान ले कि तेरा सोचा हुआ न हो और तू खुद ही फंस जाय! बानो के पांव बंध जाते हैं। वह वहीं की वहीं ठिठक कर रह गयी, उल्टे पांवों लौट आयी। अपने कमरे में आयी, हलवा और चाय की केतली फर्श पर रक्खी और पलंग पर जाकर धम से गिर पड़ी। गोया पलंग मां की गोद हो, रसूलिल्लाह का क़दमे पाक हो, जिससे अपना सिर टेक के वह रोती हो—"या ख़ुदा, मुझे राह दिखला, या रसूल, मेरी बिगड़ी बना। मेरे गुनाहों को माफ़ कर।"

दो रोज बाद रानी के आने पर वह फिर वहां गयी और फिर रमेश को देखकर उसकी चाहें भड़क उठीं, बल्कि अब तो अकेले में ज़रा-सी ओट पाते ही वह अपनी भूखी बेशर्म निगाहों की भिखारिन के कटोरों की तरह रमेश के आगे बढ़ा देती थी। रमेश बानो के इस आकर्षण को पहचान कर सजग हो गया, सहम गया, मन ही मन चोर बन गया। वह रानी से कैसे कहे?—और वह कहना भी नहीं चाहता। बानो उसे अच्छी लगती है। अब तक रानी के प्रति बंधी हुई महीनों की चाहत में तनिक भी ढील न आई थी, पर अब यह विघ्न आया। अब तक बानो

की सुन्दरता के बारे में उसे तनिक-सा खयाल तक न आता था, पर अब कभी-कभी बेहोशी आने लगी। खुद उसकी भी तबीयत होने लगी कि अकेलापन पाए और बानो से आंखें लड़ाए। और खुद बानो भी यह जान गयी थी कि उसने रमेश को जीत लिया है।

रमेश के मन में बहुत कुछ था—नवाब साहब का डर, रानी का डर, समाज का डर और सबसे अधिक यह कि रानी उसे अब भी प्राणप्यारी थी। किसी समय जैसे रानी के ध्यान का नशा उसे हरदम चढ़ा रहता था, उसी तरह अब बानो का हुस्न कभी-कभी उसकी आंखों के आगे नाचने लगा। लेकिन रानी का ध्यान मन की चोरी होकर भी मन की बेईमानी हरगिज़ नहीं था, जब कि बानो का ध्यान उसे बेईमान और चोर दोनों ही बना देता है। रमेश उखड़ा-उखड़ा-सा रहने लगा। वह चाहता था कि बानो यहां अब न आये, मगर अब वह पहले से अधिक आती थी। रानी के प्रति वह अपनी एकनिष्ठता छोड़ना नहीं चाहता और बानो उसके मन को हिला-हिला मारती है। रात में भी रानी को इतनी देर तक अपनी बातों में लपेटे रहती थी कि रमेश घुट-घुट जाता था।

एक दिन शाम को वह दफ्तर से आया ही था कि बानो दौड़ी हुई आयी, बोली : "गौड़ साहब, नानाजान आपको याद फरमा रहे हैं, बहुत जरूरी काम है।" और काम यह था कि शरणार्थी बस्ती में उस रात आठ-नौ बरस की एक ऐसी लड़की आनेवाली थी, जिसे चारों वेद, रामायण, महाभारत, भागवत, साहित्य, संगीत आदि अनेक शास्त्र मुंहज़बानी याद हैं। इस जन्म में उसे यह सब पढ़ाया नहीं गया। इतनी जल्दी इतना सब कुछ आदमी पढ़ और याद भी नहीं कर सकता, और सुनते हैं कि तीन-चार बरस की उमर ही से वह अपने इस चमत्कार से बड़े-बड़े पंडितों को, श्री वी० के० कृष्ण मेनन, श्रीअनन्तशयनम आयंगर, डॉक्टर सम्पूर्णानन्द जैसे नेताओं को प्रभावित कर चुकी है। बानो के नानाजान उसे देखना चाहते हैं और बानो भी उसे देखना चाहती है।…और अब सुनकर रानी भी उसे देखने के लिए मचल उठी है। अनवर नवाब तो तीन बजे से, जब से बड़े मियां बाबादीन घर में यह ख़बर लाये, बच्चों की तरह मचल रहे हैं। शायद हिन्दुओं को एतराज हो, इसलिए वो चाहते हैं कि रमेश बस्तीवालों से बात करके उन्हें उस लड़की के दर्शन करने का अवसर दिलवा दे। रानी का आग्रह तो था ही, मगर बानो ने जिस तरह मचल कर आग्रह किया, उससे लाख मन सम्हाला, पर रमेश के मन के पंख उग ही आए।

रात के आठ बजे तीन रिक्शों में रानी, रमेश, बानो, बावर्चिन और अनवर नवाब शरणार्थी बस्ती में पहुंच गये। उनके आते ही चहल-पहल मच गयी। एक अखबार वाला तो आया ही था, मगर एक मुसलमान नवाब और उनके परिवार वाले भी 'हमारी पवित्र लड़की' को देखने-सुनने के लिए आये हैं, यह हिन्दुओं को बहुत ही उत्साहवर्द्धक लग रहा था। नवाब साहब और रमेश को एक ऐसी जगह बिठाया गया जहां से वे आनेवाली चमत्कारी लड़की कुमारी कल्पना शर्मा को अच्छी तरह से देख सकें। रानी और बानो आदि औरतों ही में बैठी हैं। बानो आज बगैर बुर्का ओढ़े ही आई है। नवाब साहब का ध्यान तब गया जब कि वह रिक्शे से उनकी बुरकेवाली बूढ़ी बावर्चिन के साथ उतरी।

बानो अपने-आपको इस समय उन्नत समझ रही थी। उसे पर्दा बेहद काटता था। यों मुसलमानों में अब सैंकड़ों लड़कियां और औरतें पर्दा नहीं करतीं, मगर

बानो मजबूर है, अपने बाप के घर भी मजबूर थी और यहां भी। लेकिन आज बानो विद्रोह पर आमादा है। उसका अरमानों घुटा मन अब बांधे नहीं बंध सकेगा, ये परदा-विद्रोह गोया उसकी पहली निशानी है।

अपने अभिभावक, एक बूढ़े संन्यासी के साथ कल्पना शर्मा आयी। सभा में जोश उमड़ आया। उल्लास भरी हलचल मच गयी।···और वह लड़की थी भी अनोखे करिश्मे भरी। कमाल था कि चारों वेदों से और तमाम संस्कृत ग्रंथों से वह अथक श्लोक सुनाती ही चली जाती थी। सभा में बैठे हुए अनेक पण्डितगण परीक्षा के लिए उसे अमुक ग्रंथ का अमुक अंश सुनाने के लिए कहते और वह 'अमुक तमुक' सब कुछ बेचूक सुनाती चली जाती। संन्यासी महाराज ने बताया कि तीन ही वर्ष की आयु में इस लड़की ने भरे यज्ञ-मण्डप में एक याज्ञिक को उसके अशुद्ध मन्त्रोच्चारण के लिए टोक दिया था और जब इससे हंसी में यह कहा गया कि अच्छा तुम उच्चारण करो तो ये बैठ गयी, और अपने शुद्ध सस्वर पाठ से लोगों को मंत्र-मुग्ध कर दिया। लड़की के पिता मुरादाबाद नगरपालिका के कर्मचारी हैं, और माता अध्यापिका। कल्पना खोई-खोई पुतलियों वाली मीनाक्षी, जिसकी दोनों भवें रोमचंद्र से जुड़ी हुई हैं, सुन्दर, खिलदड़ी, मनमौजी, हंसमुख लड़की है। कभी-कभी अपने खोएपन में मुंह में उंगली डालकर बैठ जाती है। फ्राक पहने आम लड़कियों में हुड़दंग मचाती फिरती है, मंच पर बैठते ही एकदम बदल जाती है। उसके अन्दर से एक सहज तेजोमय व्यक्तित्व का विकास देखते ही देखते हो उठता है। यह अनोखा आश्चर्य पराचेतना का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

लौटते समय नवाब-साहब ने बांह पकड़कर रमेश को अपने रिक्शे की तरफ घसीट लिया। रानी, बानो दूसरे पर बैठीं और बावर्चिन अकेली तीसरे रिक्शे पर। नवाब साहब आश्चर्य से ऊभ-चूभ स्वर में बोले : "बखुदा, हमने आज जो ये खुदाई करिश्मा देखा, उसे बगैर देखे यकीन नहीं आ सकता था। समझ में नहीं आता। शायद आप लोगों की आवागमन वाली थ्योरी ठीक है। हमारा इस्लाम तो उसे नहीं मानता, मगर सूफी मानते हैं। मौलाना रूमी का शे'र मुझे याद आ रहा है—

"हफ़्त सद हफ़्ताद क़ालिब दीदा अम्।
हम्चु सब्ज़ा बारहा रोईदा अम्॥"—

यानी, रूह कहती है कि मैं सात सौ सत्तर काया पलट के इस बदन में आई हूं। मैं सब्जे यानी घास की तरह से सैकड़ों बार उगी हूं, मिटी हूं।"

फाटक में घुसते ही रानी-रमेश के सामने नवाब साहब ने बानो को टोका : "और ये आज तुमने बेपर्दगी का कौन-सा फैशन अख्तियार किया बानो ?"

बानो ने बेझिझक उत्तर दिया : "मैंने सोचा नानाजान कि रोम में रोमनों की तरह ही वर्ताव करना चाहिए। वहां एक रूहानी हस्ती को देखने गयी थी, फिर भला पर्दे का क्या काम था।"

रमेश हंसकर बोला : "आज से इनका भी नया जनम हुआ है नवाब साहब, नये जमाने को आखिर कब तक रोकिएगा ?"

उस दिन रात में बड़ी देर तक रानी, बानो और रमेश पुनर्जन्म, जन्म-जन्म के संस्कार और जनम-जनम के नातों से भरी दिलचस्प कहानियां क़हते-सुनते रहे। और चलते-चलते बानो रानी को ज़रा-सी आड़ देकर आंखों ही आंखों में रमेश से अपना जनम-जनम का नाता जादू-सा छोड़ गयी। उस रात कमरे

के अंधेरे में रमेश ने रानी को अपनी कल्पना में बानो मानकर बेहोश जोश में उसे अपना प्यार दिया और प्रकाश होने पर रानी की आंखों में अपने प्रति निर्मल रीझ और अंतरंग सुखभरी अलसाई मादकता देखकर रमेश का मन लज्जा और ग्लानि से मथ उठा।...ये छलावा उसने किससे किया? क्यों किया?

रात को डेढ़ बजे अपने चिरपरिचित प्रिय चौबारे में अपने पुराने खटोले पर लेटकर तन से बेहद थका होने के बावजूद लच्छू मन से हरा-भरा ही था। थोड़ी देर पहले घरवालों से बातें करते समय लच्छू को इतनी जमुहाइयां आ रही थीं, ऐसी नींद महसूस हो रही थी कि बैठे-बैठे आंखें झंप जाती थीं—और अब एकांत में आते ही, आठ-नौ महीनों के बाद अपनी चिर-परिचित हवादार कोठरी में लेटते ही नींद और थकान फुर्र हो गयी। ढीली ही सही पर अपनी खटिया पर पाटी से बाहर तक टांगें पसार कर लेटते ही, भीगे काठ-सी अकड़ी काया फूल हो गयी...'दुनिया भर के चक्कर खाये, लौट के (बुद्धू) लच्छू घर को आये।'

घर आने की खुशी है पर उसकी तह में एक अफसोस भी है। वह सारस लेक का उम्दा आरामदेह, स्वतन्त्र फ़्लैट, बड़े आदमियों की सोहबत, वह मास्को, कीएव, लेनिनग्राद, बाकू, त्विलिसी, ताशकन्द, समरकन्द, कोहकाफ और हिमालय के नज़ारे...वे सब हुज़ूर में गोल बांध के ठण्डी हवाओं के झोंको से ध्यान में धंसे चले आ रहे हैं। इस अपने बचपन के साथी चौबारे में, अपने 'घर' में आज वह कितना नया होकर लौटा है। मगर फिर जहां का तहां होकर लौटा है। जो पाया है, उसके चाहत भरे अनोखे जीवन्त जागृत सपने चलते चले आ रहे हैं। देखे का सुख और आंख खुल जाने का दुख, दोनों ही अपनी मिश्र अनुभूति से उसके अकेलेपन को भर रहे हैं। 'डॉक्साब' ने कल शाम सारसलेक में कहा था: "खन्ना, निजी रूप से मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं। तुमने वह गलती की, जो नौजवानी में मौका पाने पर निन्यानवे फीसदी लोग करते हैं। मगर गलतियों के कुछ नतीजे हुआ करते हैं, जो करने वाले को भुगतने भी पड़ते हैं। मेरी संस्था में अब तुम काम नहीं कर सकते।" उन्होंने यह कृपा भी की, कि नोटिस के महीने के वेतन के साथ ही साथ अपनी ओर से भी पांच सौ रुपये की धनराशि सेन साहब से दिला दी। आठ सौ रुपये लच्छू ने इतने दिनों में बचाए थे और यह सात सौ पैंतालिस और जुड़े। इसमें से दो सौ पच्चीस की धनराशि वह कल दफ़्तर में यूसुफ को मॉस्को भेजने के लिए जमा कर आया है। उसने यूसुफ से यह रकम यहां के मित्रों के लिए प्रेमोपहार खरीदने के लिए उधार ली थी। उमा के लिए वह पचपन रूबल की एक घड़ी लाया था। परसों सुबह से कल शाम तक उसने उमा से मिलने का बड़ा प्रयत्न किया पर वह मिली तक नहीं। घड़ी लच्छू के पास है। आज यहां आने पर उसने अपने छोटे भाई से अपने मित्रों के हालहवाल पूछते हुए जब रमेश-रानी के विवाह का समाचार पाया तो मन-ही-मन घड़ी उसकी प्रेमिका-पत्नी को देने का निश्चय कर डाला।

इस एकान्त में रूस और सारस लेक के स्मृति-बिम्बों में भटकते-रमते हुए उसे घड़ी दिखलाई दी, उमा झलकी और झट से फिसल भी गई, रमेश का ध्यान

अलबत्ता टिक गया। सभी मित्रों से मिलने की ललक जागी। कल सवेरे मित्र-मण्डली उसे देखकर कितनी प्रसन्न होगी। गोडबोले को चुन्नी-मुन्नी शतरंज का डिब्बा देगा। जयकिशोर के लिए 'बकनी सास' की मूर्तिवाली टीकोजी लाया है, उसकी सास झक्की और वक्की दोनों ही है। चिरमाशूकाकांक्षी हर्रो के लिए एक सुन्दर रूसी गुड़िया, रमेश के लिए रूसी चित्रावली और छैंलू के लिए सिगरेट-केस लाया है। एक टीकोजी परसों सारस लेक में मिसेज रामनायकम् ने उससे 'प्रेम भेंट' के रूप में ले ली। यहां, घर में उसकी माया भाभी भी टी-कोजी ही लेने के लिए मचल गयी थीं। पिता जेबी शतरंज, बड़े भाई प्रेमनारायन को रूसी सिगरेटों की दो डिबियां, छोटा भाई बिरजू और भतीजा उजबेकी टोपी और भतीजी खिलौने पाकर मगन हैं। खाली भाभी ही पहले रूठी, लेकिन ऊपर आने से पहले वह टीकोजी लच्छू उन्हें ही दे आया था। उसके पास रुपये होते तो वह बहुत-कुछ लाता। या अगर उमा के इस रुख का अनुमान होता तो घड़ी न खरीदकर उतने रूबलों से वह काफी कुछ खरीद लेता। खैर, घड़ी रमेश की बीबी को बदी थी। पति-पत्नी इतने प्रसन्न होंगे, जितना कि उमा प्रसन्न होने पर भी न हो पाती। जाने दो ससुरी को। छैंलू का सिगरेट-केस जयकिशोर को देगा। छैंलू का भागना उसके कलेजे को कसक गया। अनशन और आगजनी की घटनाओं ने उसे बेहद व्यथित किया, पर अभी पूरी तौर पर वह उस प्रसंग की बातें भी नहीं जान पाया। मित्रों से मिलने की इच्छा थी पर इस समय घरवालों ही से फुरसत न मिली। घर का हाल भी डांवांडोल है। अम्मा और भाभी में ऐसी घनघोर ठन गयी है, कि सास बहू का मुख तक देखना पसन्द नहीं करतीं। अम्मा की जबान बढ़नी जैसी है, जो सभी को झाड़ती रहती है। मुहल्ले-टोले में, नातेदारी में, कहीं भी उनकी आज तक, लच्छू के होश में, कभी किसी से बनी ही नहीं। पिता, बाबू सत्यनारायण घरवालों से बोलते ही नहीं। जब बोलते हैं तो भद्दी-भद्दी गालियां देते हैं। लड़के-लड़कियों को ये पसन्द नहीं। वेतन के दो सौ पचत्तर रुपयों में से हर महीने दफ्तर और बाहर के छोटे-बड़े तीन-चार महाजनों के मुंह बन्द करके, लेनदार दुकानदारों की सड़क-गलियां कतरा के या अक्सर फंस जाने पर उनके हाथ भी थोड़े-बहुत पूज के, साठ-सत्तर-अस्सी-सौ रुपये जो बच रहते हैं वे लाकर अपनी पत्नी के हाथ में रख देते हैं। उतनी धन-राशि से घर का खर्च पूरा नहीं पड़ता। प्रेमू की बहू माया ने अपने आगे की गृहस्थी का चिन्ता-मंत्र फूंक-फूंककर अपने पति को कर्ज पाटने के उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया। इस पर बाप से कहा-सुनी हो गयी। ऋण के मामले में सास ने पति का पक्ष लेकर लड़के-बहू को कोसा—बहू को खासतौर से कोसा। पिछले पांच महीनों से घर में दो चौके-चूल्हे हो गए हैं। लच्छू सोचता है अब इस घर में नहीं रहेगा। एक तो अभी अपने ही भरण-पोषण की चिन्ता है, दूसरे इस घर में मां-बाप के कारण रहने वाली आठ पहर की दांताकिटकिट अब उससे न सही जायगी। सारस लेक का स्वतन्त्र जीवन बिता चुकने के बाद अब वह यहां रह नहीं सकता। कोई कमरा किराए पर लेना ही होगा, खाना-पीना किसी होटल में हुआ करेगा। अभी तीन-चार महीने का खर्च उठाने लायक जमा उसके पास है, आगे देखा जायगा।

लच्छू अब बड़ी आमदनी चाहता है। उन सुख-सुविधाओं को, जो सारस लेक में भोग चुका है, वह निश्चय यही पाकर दम लेगा। सारस लेक में तो समाजवादी

व्यवस्था के कारण वह ढाई सौ रुपयों में भी गुलछर्रे उड़ा सका; लेकिन यहां तो वैसा ही फ्लैट उसे सवा सौ मासिक किराये पर मिलेगा। पांच-छः सौ की नौकरी उसे एकाएक मिल न सकेगी; कोई धन्धा, कोई मुनाफेवाली एजेंसी उसे लेनी होगी।

··देखो, क्या होता है। करवट बदली, एक सिगरेट निकालकर सुलगायी। ठर्रा रूसी तम्बाकू के एक कश ने उसका ध्यान कीएव और वहां की माया से जोड़ दिया। कीएव के वनस्पति उद्यानवाली ढलवां सड़क के सामने दिखलाई पड़ने वाला मनोहर प्राकृतिक दृश्य, माया की सरल आकर्षक हंसी, उसके पति निकोलाई का मधुर व्यवहार, उनका मुन्ना-बच्चा, उनका फ्लैट, जहां वह तीन रोज टिका था—स्मृति की सजीव तस्वीरें उसके इर्द-गिर्द इकट्ठा होने लगीं। बड़ी-बड़ी शानदार इमारतें, बड़े-बड़े पार्क, चौड़ी-चौड़ी दोहरी सड़कें और बीच में पैदल चलनेवाले यात्रियों के लिए पेड़ों की दोहरी पंक्तियों से घिरी, फूलों और घास से सज्जित पट्टी, जिसमें जगह-जगह बेंचें बिछी हुई हैं। पैंतालिस सिनेमाघर, नाट्यशाला, स्टेडियम, यूनिवर्सिटी की लाल इमारत, जमीन के अन्दर दौड़नेवाली 'मेत्रो' ट्रेनें और उनके शानदार स्टेशन—सारे शहर की चहल-पहल इस समय उसके मन में बसी हुई है। आर्मीनिया का सरकस देखा था। 'द्रूज्बा' सिनेमा की पिक्चर, द्नेपियर नदी की सैर···और विशेष रूप से उद्यान का सैर करानेवाला बूढ़ा अलेक्जान्द्र प्लेस्येन्योव !

ओह ! बूढ़े 'चाचा' की याद ज़ोरों से उभर आई। बड़ी-बड़ी सफेद बुर्राक मूंछोंवाला लंब-तड़ंग, खाकी कमीज-पैण्ट और गमबूट पहने वह सिपाहीनुमा बूढ़ा इस समय आत्मीय की तरह याद आ रहा था। स्कूल में पढ़ने के दिनों से लेकर सारस लेक जाने के समय तक अपने चिरपरिचित अटारी पर बने इस लम्बे ढालीनुमा चौबारे में चाचा प्लेस्येनोव कल्पना के सहारे साकार होकार निर्मल, प्रेममयी स्मृति के स्फुरण से प्राणवन्त हो उठा। आंखों के आगेवाली खिड़की के सामने, छत से बस आधा फुट ही नीचा सिपाहीनुमा तना हुआ, बड़ा प्यारा, जीवन्त, कलाकार, बड़ी-बड़ी सफेद भूरी मूंछोंवाला 'चाचा' खड़ा था। जब माया के सहारे बूढ़े ने चाचा का अर्थ जाना तो आगे बढ़कर लच्छू को बलिष्ठ बांहों से अपनी संयम-कठिन छाती में तत्काल स्फूर्त कोमलता की लचक में भर लिया—और उसके दायें गाल पर ऐसा हार्दिक चुम्बन अंकित किया कि इस समय भी लच्छू का रोम-रोम स्मृति मात्र से फरहरा हो उठा है।

पूरा वनस्पति उद्यान, वहां सोवियत की हर आबहवा में उगनेवाले घास, पेड़ों, फलों, फूलों, वनस्पतियों के पौधे लगाकर उनकी उपयुक्त तापमान वाली ऊंची-नीची पहाड़ियों पर बसाया गया है और वह मीलों तक फैला है। अपने हिसाब जंगल में घूम रहे हैं। चाचा प्लेस्येन्योव कलाकार की तरह एक-एक घास, एक-एक फूल, पेड़-झाड़ी को बड़े ही प्रेम से दिखलाते और बखानते चलते थे। कोई फलों का पेड़ आया तो पहले आप तोड़कर चखेंगे, फिर और तोड़-तोड़ के हमको और माया को खिलाएंगे···उनकी झुरियों की किरनों से सजी छोटी-छोटी आंखों में पैनी जोत थी, जो प्रसंग और भाव के क्रम से कभी सूरज, कभी चांद जैसी भाव में निखर-निखर उठती थी।······साइबेरिया के जंगलों से लेकर दक्षिणी-पूर्वी एशिया तक के जंगलों से वनस्पतियों की गठरियां लादकर मीलों पैदल चलने के बाद रेल की राह तक पहुंच सके थे चाचा ! एक लम्बी घास को

बैठकर बड़े प्यार से छूते हुए उन्होंने कहा था : "ये वनस्पति-उद्यान मेरा बच्चा है। यहां की एक-एक वनस्पति, एक-एक फूल मेरे नाती-पोते हैं," उस समय उनकी आंखों में स्नेह की निर्मल चांदनी छिटक रही थी।

और उसी चाचा का दूसरा रूप एक ऊंची पहाड़ी पर सहसा प्रकट हुआ। सारा नगर अपने पूरे विस्तार के साथ लच्छू को अपने जादू से बांध गया था। उसकी बांह पकड़कर खोएपन से उसे निकालते हुए सामने की कुछ पहाड़ियां दिखलाकर चाचा उसका इतिहास बतलाने लगे : "सीमान्त वाली पहाड़ी का नाम बातू खां पहाड़ी है। बातू खां कौन—नहीं जानते, अच्छा ध्यान से सुनो, जब बातू खां तातार ने हमला किया था, तब हम यूक्रेनियों ने उसे यहीं पर रोक दिया था। हम यूक्रेनी अपने दुश्मन को नाकों चने चबाकर उसे अपने यहां से खदेड़कर ही दम लेते हैं। जानते हो, जब नाजियों ने कीएव नगर पर हमला किया था तो मैं यहां से एक दिन के लिए भी बाहर नहीं गया था। मैंने यहीं रहकर उनके खिलाफ मोर्चे संगठित किए।" उस समय चाचा की आंखों में सूरज चमक रहा था, लच्छू के लिए आंखें मिलाना मुश्किल हो गया था। नाजियों द्वारा कीएव की जनता के अपमान होने के दिन, उनके तरुण गार्डों की छापेमार टोलियां और उनके साहस भरे कारनामे सुनाते रहे चाचा प्लेस्येन्योव ने ऐसा समा बांधा, कि माया मंत्र-मुग्ध हो गई।······ओह! कीएव के वनस्पति उद्यान में चाचा के साथ बीता हुआ वह दिन इस समय लच्छू की अनमोल स्मृति-निधि है। सारा युद्ध और शौर्य बखाने जाने के बाद अन्त में उठते हुए चाचा ने कहा था : "कुछ भी हो, अब तो दुनिया से इस खून-खराबे की फिलासफी ही का अन्त होना चाहिए। ये देखो··· ये पूरा नगर का नगर ही हमें फिर बनाना पड़ा। बममारी से यह हमारा नगर ऐसा ऊजड़ मसान बना था कि···शत्रुओं को खदेड़ने के बाद एक दिन मैंने इसी जगह से उस दृश्य को भी देखा था। लेकिन देखो, हमने अपना ये कीएव पहले से भी दुगुना-चौगुना सुन्दर और विस्तृत बना लिया है। श्रम से बड़ी कोई शक्ति नहीं और अपने राष्ट्र और फिर सारी मानवता के सुविकास से बड़ा कोई काम नहीं।"

श्रम से बड़ी कोई शक्ति नहीं।···लेकिन कहां श्रम करूंगा, क्या उद्देश्य होगा—यह प्रश्न लच्छू को उस मधुर स्मृति के अन्त में यथार्थ के धरातल पर उतार लाया। कुछ न कुछ तो करूंगा ही। सबसे पहले जीविका पाना ही सबसे बड़ा श्रम और सदुद्देश्य है। हमारी तो अभी वो समाजवादी व्यवस्था नहीं जिसमें रोजी, रोग, घर, शिक्षा, बच्चों की हिफ़ाजत आदि हर तरह की सामाजिक सुरक्षा हर व्यक्ति को सुलभ है। यहां तो सबमे पहले अपने जीवन की सुरक्षा के लिए ही संघर्ष करना होगा।···देखो, कल यार-दोस्तों से मिलने दो। ज़रा यहां के हवा पानी में एक बार नये सिरे से घुल-मिल लूं, तो कोई राह निकले।

थकनपूर्ण मस्तिष्क ने सारी रात हल्की झपकियों ही में आराम पाया। सारी रात सोवियत यूनियन ही की झलकियों में गुजर गयी। कभी कीएव की ट्राम-कण्डक्टर लच्छू के पास ठिठककर खड़ी हो गई, लच्छू से 'इन्दीस्की' (भारतीय) शब्द सुनकर गद्‌गद भाव से उसकी बांह पर प्रेम से हाथ रख गई, कभी जार्जिया के गांव से गुजरते समय किसान युवक-युवतियों द्वारा बुला-बुलाकर ढेर के ढेर अंगूर दिए गए। इन्दीस्की रूस का जादू शब्द है।······बाकू की ऊंची पहाड़ी पर यूसुफ के साथ बैठकर इक़बाल का 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा'

गाया था······और जार्जिया की रीत्सा झील पर अपनी शेरवानी-चूड़ीदार पाजामे की पोशाक से प्रेरित होकर एक सुन्दर नवयुवक को उत्साह से 'हे राजकपूरा ! खिन्दी-रूसी बाई-बाई !' का नारा लगाते हुए सुना था और उसे प्रेम से हाथ उठाकर अभिवादन किया था।······कभी ताशकन्द के हवाई अड्डे पर 'इन्दीस्की' लच्छू को गले लगानेवाला बूढ़ा ध्यान में आ रहा है···उससे कह रहा है : "आपका देश महान् है । नेहरू शान्ति चाहते हैं। मेरा एक ही लड़का है। मैं उसकी सुरक्षा चाहता हूं । मैं युद्ध नहीं चाहता ।" ··छिट-पुट झलकियां रात भर उसकी नींद को पीछे ढकेलकर स्वप्नपटी पर आती ही रहीं।

लच्छू सुबह झटपट उठकर तैयार हो गया। दोस्तों के उपहार जेब में रखे और बगैर चाय पिये ही घर से निकल पड़ा। जयकिशोर का घर पास था। उसे अपनी अचानक उपस्थिति से चौंकाया, हरखाया, सिगरेटकेस दिया। हर्री को नौकर भेजकर बुलवाया, फिर तीनों शामराव गोडबोले के यहां पहुंचे। कम्मी बुलवाया गया। लच्छू को पाकर हर मित्र मगन था और लच्छू अब रमेश की सूरत देखने के लिए बेताब हो रहा था। पांचों मित्र रिक्शों पर सवार होकर 'नौशेरवां मंजिल' के लिए रवाना हो गये।

रमेश चाय पी रहा था। रानी से आंखें मिलाते हुए उसे इस समय झेंप लग रही थी। उसे लगा कि उसने रानी का अपमान किया है—पर खुलेआम कबूल करने का साहस नहीं।···ऐसा करके उसने अपने महत्वाकांक्षा-भरे व्यक्तित्व का एक प्रमाण तन्तु तोड़ा है।···बानो का ध्यान चोर बनकर फिर मन की कनखियों में झलक गया।···मगर यारों को, विशेष रूप से लच्छू को, देखते ही बानो और रात का पछतावा उसके दिमाग से एक झटके में हवा हो गये।

दो घण्टे बड़ी मौज-बहार के बीते। घड़ी पाकर रानी बेहद मगन थी। लच्छू यहां के हाल जानने को उत्सुक था और यार लोग रूस के। छैलू का गायब हो जाना लच्छू के बहाने नए सिरे से सबके लिए दुःखदायी हो उठा।···गोडबोले को जाना था। उसे अमरीकी छात्रवृत्ति मिल चुकी है, पासपोर्ट के लिए दौड़-धूप कर रहा है, आज ही कल में दिल्ली से शायद अनुमति आ जाएगी। गोडबोले अपना घरेलू दवाओं का काम ही आगे बढ़ाएगा और उसी के लिए अमेरिका शिक्षा लेने जा रहा है। कम्मी अपना खान्दानी बजाजे का धन्धा नहीं करना चाहता। नौकरी और वह भी अफसरी चाहता है। आजकल कांगरेसियों की खुशामद में लगा है, अपनी 'पहुंचे' पहुंचा रहा है, खादी का सूट बनवा रहा है। उसे भी किसी से मिलने के लिए सेक्रेटेरियट जाना था। हर्री इधर-उधर कई अर्जियां लगाने के बाद भी सूनी आंखें लिए डोल रहा है। तीस-तीस रुपये की दो ट्यूशनें फिलहाल पढ़ाता है। उसे शिकायत है कि उसके मौसा श्री आनन्दमोहन खन्ना और मौसी 'बहन जी' ने उसके लिए—अपने रिश्तेदार के लिए—कुछ भी नहीं किया। रमेश की नौकरी लगा दी, शादी करा दी। लच्छू को 'रूस रिटर्न्ड' बनवा दिया। उसे एक भी प्रेमिका नहीं दिलवाई। लच्छू को हर्री जस का तस ही लगा और सब थोड़े-बहुत बदल गए हैं। जयकिशोर ने अपनी विधवा सास के प्रेमी मुनीमजी से लाग-डांट हो जाने पर हठपूर्वक ससुराली कारखाने का काम-काज, हिसाब-किताब

देखना और अपने काबू में लेना आरम्भ कर दिया है। सास कलह करती है, मुनीमजी कारखाने में उसके विरुद्ध काफी षड्यन्त्र किया करते हैं और जयकिशोर दोनों के लिए भारी पड़ रहा है : इन दिनों वह अपनी 'नकफसड़ी मुटल्लो' (पत्नी) को खूब पटाए हुए है। आरम्भ में जयकिशोर ने घरजमाई बनने के प्रतिशोध में अपनी 'नकफसड़ी मुटल्लो' 'एबामिनेबुल स्नोवुमान' (घृण्य हिमनारी) को कभी बहुत सताया था; मगर इधर डेढ़-दो महीनों से, जब से अपने अवैध ससुर की नाक काटने की लगन उसे लगी है, वह उसकी खूब खातिर कर रहा है, सास के विरुद्ध खूब ही उसके कान भर रहा है। मस्त, बौद्धिक, साहित्यविलासी, ईमानदार जयकिशोर अब सास को काशी-अयोध्या और उसके प्रेमी को जेल भेजने की हिंसात्मक लगन रखता है। बिजनेस हाथ में तो ले ही लिया, अब उसे बढ़ाना चाहता है। पान के मसाले और किवाम ही नहीं, अब वह इत्र और सेण्ट भी बनाएगा। हिन्दुस्तानी इत्रों का गाढ़ापन और उनकी सुगन्धों की तेजी को यूरोपीय रुचि के अनुसार तरल मन्द बनाकर विदेशी बाज़ार हथियाने की कामना रखता है। पैसा बड़ी चीज है, जयकिशोर उस सुरक्षा को अपने वास्ते सिद्ध करके अपने साहित्य-विलास के लिए निश्चिन्त हो जाना चाहता है। अब सभी के सपने और कार्यक्षेत्र अलग-अलग हो गए हैं।

शामराव गोडबोले चला गया। जयकिशोर और कम्मी भी उसके साथ ही चले गए। लच्छू के आग्रह से रमेश ने छुट्टी लेने का निश्चय कर लिया। हर्रो को चपतिया कर रोका गया। रानी तीनों के लिए पूड़ी-तरकारी और हलवा बनाकर आह खाकर कॉलेज के लिए चली, घड़ीवाला कड़ा उसकी कलाई पर चढ़ा था।

अपनी अर्जी का काग़ज़ देते हुए, गुप्त प्रणय-भार से उसकी अपराधनत आंखें रानी के चेहरे तक न उठ पाईं, केवल उसके बढ़े हुए हाथ ही पर टिक गयीं। घड़ीवाला कड़ा देखकर, भेंट करनेवाले मित्र की मौजूदगी का लाभ उठाकर अपने चोर मन को शाह बनाते हुए रानी की तरफ देखकर हंसते हुए कहा : "आज तो क्लास में बस आप ही के ठाठ होंगे। रूसी घड़ी चमक रही है।"

आंखें नचाकर 'ऊंऽ' करने की सहज रमक चार के समाज में रमेश की आंखों को ढैयां की तरह छूती हुई लच्छू हर्रो की ओर मुड़ गई, और सुहाग के बोल बनकर खिल पड़ी। कहने लगी "मेरे अस्ली ठाठ तो आप हैं, कि झूठ कहती हूं भाई साहब ? आप तो 'इनकी' पत्नी के लिए लाए थे—मुझे छोड़ कोई दूसरी होती तो उसे मिलती। इसलिए मेरे ठाठ तो ये ही हुए।"

लच्छू हंसकर बोला : "तुम्हारी ये अच्छी बात काटूंगा तो नहीं रानी भाभी, अगर अपने ढंग से उसे दोबाला अवश्य करूंगा। अगर रमेश तुम्हारा ठाठ है तो तुम भी रमेश की शान हो। आज तुम्हारे रौब में, पूछ लो इससे, जीवन में पहली बार मैं शराफत से पेश आ रहा हूं रमेश के साथ। ब्याह करके तुमने इसकी हैसियत बढ़ा दी।"

हर्रो 'प्रेम की अस्ली हीरोइन' की उपस्थिति में खुले मुंह मुस्कराते हुए अपनी चाहत भरी प्यासी आंखों को सारे समय रानी के चेहरे पर इस तरह से टिकाए रहा कि जब तक नैन-चोरी भी कर ले और आंखें दीदार में खोई हुई-सी भी लगें। रमेश का 'चोर' बर्फ़ के पुतले की तरह रानी के सुहाग-दर्प भरे, सांवले, सुघड़ सलोने, तेज भरे मुखड़े के ऊपर, अपने अंदर उमड़ी हुई लड़ैती रीझ के आतप से पिघलने लगा। अभी रानी का नशा हल्का तो पड़ा नहीं—

जुम्मा-जुम्मा आठ रोज जैसी बात ही तो है अभी। वह भरे समाज में भी उसको भर नज़र प्रशंसा और गर्व से देख रहा है। बानो मन का फिसलावा ही था—बस—असलियत कुछ नहीं—उस पर इतना गंभीर होने की ज़रूरत नहीं। रानी चली गई, पर रमेश का फिसला मन सम्हाल गई। बानो का नशा अच्छा था, मगर तेज सनसनाहट पैदा करनेवाला था।···खुमार उतरा, ताज़गी आई और इस तरावट और ताज़गी का नशा स्नायविक तौर पर हल्का, भीना-भीना होते हुए भी भीतर से बड़ा गाढ़ा और गहरा था।

लच्छू ने रानी जैसी पत्नी पाने के लिए रमेश को बधाई दी और कहा : "हम लोग, इन बन्द गली-महल्लों के नौजवान, आमतौर पर घोंचू ब्राण्ड के इश्क़ ही में पड़ा करते हैं। नाम इश्क और चाहत किसी और चीज़ की। रूस ने अपने समाज में यह अच्छा काम किया है कि चाहत के खेल को बहुत बुरा न कहा। हां, प्रेम की बड़ाई जो है, सो है। और प्रेम के माने है विवाह, और विवाह के माने हैं कि अब चाहत और प्रेम का एक ऐसा धरातल इन्सान को मिल गया, जहां से जीवन की दूसरी समस्याओं को समझने और सुलझाने के लिए दिल और दिमाग की शक्तियां एक जुट होकर आगे बढ़ने के लिए स्वतन्त्र होती है।"

"उनके यहां लड़कियां लड़कों से ज्यादा हैं।" रमेश बोला।

"हां, मगर उनके यहां वो सेक्सिया हुड़दंग नहीं मचती, जो अपने यहां है। काम वहां केवल बड़ों के स्वर्गोपम भेदों की और छोटों के गुप्त अपराधों की जड़ नहीं है। मैंने बाकू में, कीएव में, मास्को तक के पार्कों में, थियेटर-सिनेमा के पास, रात में बीस-बाईस बरस के नौजवान लड़के-लड़कियों को गलबहियां डाले मजे से जाते हुए देखा है—या किसी कोने में खड़े जोरों से चूम रहे हैं।"

"हैं ! सच्ची लच्छू ?" हर्रो हैरत में आकर उठ बैठा और फिर खुले मुख से, फटी आंखों में एक गहरी सूझवाली चमक लेकर दोनों हाथों से अपना आलिंगन करता हुआ गद्गद स्वर में बोला : "साला बहिश्त है बहिश्त।"

हर्रो से छेड़ाखानियां हुईं। रूस की बातें हुईं, सारसलेक की बातें हुईं। डॉ० आत्माराम अपने आपमें बेदाग हैं। उनका समय दूसरों के कामों में, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय चिन्ताओं और सम्पर्कों में खप जाता है। अपने अखबारी साम्राज्य का संगठन मजबूत बनाए रखने में भी उनका पूरा ध्यान रहता है। ये नहीं कि सेन के भरोसे छोड़कर आप सोते रहें। और सेन भी अपनी तमाम कमजोरियों के बावजूद जबर्दस्त संगठनकर्ता और शासक है। इसके अलावा वह कुत्ते की तरह डॉक्टर का स्वामिभक्त साथी है। डॉक्टर आत्माराम उसकी इसी खूबी पे रीझे हैं और उसकी कमजोरियों को पी जाते हैं। 'डॉकसाब' की प्रशंसा ही में अटके हुए लच्छू से रमेश ने अचानक प्रश्न किया : "और तुम्हारी नौकरी क्यों छूटी ?"

सहनची में खटका हुआ, फिर खांसी : "रमेश साहब, रानी बहन हैं घर में ! ज़रा उन्हें भेज दीजिए।"

'चोर' फिर होश में आया : मिज़ाज चिड़चिड़ाया, कसा। लच्छू के सहज और हर्रो के अतिरंजित कौतूहल को अपनी ओर ताकते देखकर सावधान हुआ, बैठे ही बैठे अपने स्वर को सहज बनाने और बनाए रखने की चेष्टा करते हुए उसने कहा : "जी, वह तो कॉलेज गई बानो साहिबा।"

"अच्छा, ज़रा आप ही तकलीफ़ फ़रमाइए। एक ज़रूरी बात है।" बानो ने परदे के उस पार से कहा। रमेश लच्छू से—'मकान-मालिक की नवीसी है।' कह-

कर धड़कते दिल से सहनची की तरफ बढ़ा, चेहरे पर मन की लपटों की पर-छाइयां लहरा रही थीं। परदे के उस पार बानो की आकर्षण भरी जादुई आंखें थीं। दोनों रसोईघर वाले कनवेस के पार्टीशन की ओर बढ़ गए।

"कई दिनों से आपकी मदद चाहती हूं। बड़े भरोसे से आई हूं, मेरा भरोसा चकनाचूर तो न कीजिएगा?"

नशीली आंखों में भीख और होठों पर मुस्कान। इस जादू का कांटा चुभा, मगर वो कांटा निश्चय ने नोच फेंका, सधी मुखमुद्रा और सधे स्वर से बोला : "मदद को जान हाज़िर है, मगर काम जाने बग़ैर नहीं।"

"जान मेरे लिए पेश की है या काम के लिए?"

"आपके लिए तो है, मगर किसी इन्सानी पहलू ही से आपकी सहायता में अपनी जान अर्पित कर सकता हूं। जान कुदरत की इतनी बड़ी देन है, कि उसे कुर्बान करने के लिए उतना ही बड़ा कारण भी होना चाहिए।"

बानो गम्भीर हुई, रुकी और फिर गले का हल्की खखार देकर कुछ कहते-कहते रुककर मुस्कुराई, कहा : "साफ कहूं या बनाके?"

"मैं समझता हूं, साफ ही कहना चाहिए।" बानो की मुस्कुराती आंखें भिखारी हो गईं, बोली : "मैं चाहती हूं कि आप मुझे मेरे लवर से मिलवा दें।"

रमेश के मन को फिर खरोंच लगी, बानो का प्रेमी कोई और है : "कौन है?"

"जिनकी वजह से मुझे घर से भागना पड़ा था। (रमेश अनवर नवाब से सुन चुका है, फिर भी अलम् गम्भीरता का लबादा ओढ़े सुन रहा है।) इस वक्त वो एक बड़े मिल-मालिक के दामाद हैं। मगर यह मजबूरी की शादी है। उन्हें अपनी बीवी एकदम नापसन्द है। अब तक उनके दिल में मेरा वही खयाल बना हुआ है। वो लखनऊ आए हैं, यह खत भेजा है और मेरा जवाब मांगा है।" बानो ने चौपर्ता मुड़ें कुछ नत्थी गुलाबी काग़ज़ आगे बढ़ा दिए। रमेश कागज खोलकर फिर लौटाते हुए बोले : "पढ़कर क्या करूंगा। मतलब बतला दीजिए।"

"वो मुझे अपने साथ रखना चाहते हैं; मगर अपनी ससुराल वालों की जान-कारी में नहीं। उनके ससुर बूढ़े और बीमार हैं। उनके मरने के बाद वो मुझसे निकाह पढ़वा लेंगे।"

"मुझे तुममें धोखा लगता है बानो साहबा।"

"मैं खुद धोखा नहीं खाना चाहती। इसीलिए आपकी मदद चाहती हूं। मैं इस खत का जवाब लिखकर नहीं देना चाहती। चाहती हूं कि आप जाकर उनसे खुद मिलें और यह कह दें कि अगर वह मेरी शर्त के मुताबिक बीस हज़ार रुपया—मेरे तीन वर्षों का खर्च—एडवांस में लाए हों तब तो मैं उनसे मिलूं और निकाह पढ़वाए बग़ैर भी उनकी—"

"आप उनकी, माफ़ कीजिए, क्या रखैल बनेंगी?" रमेश के मन में नफ़रत और क्रोध का तीखापन आ गया था।

बानो उतनी ही भोली और दर्द भरी मासूम मुस्कराहट के साथ उतने ही सहज ढंग से बोली : "रखैल का ख़याल पुराना है। मैं आज़ाद रहूंगी, पढ़ूंगी। आगे कुछ नौकरी वग़ैरा तलाश करके अपनी ज़िन्दगी का नक्शा आप बनाऊंगी। ...क्या मैंने कुछ गलत कहा?"

रमेश सकते में आ गया था। उससे न तो 'ना' कहते बनता था और न 'हां'

ही। बानो तीर-सा मारकर बोली : "औरत के साथ अस्मत का जो हौआ बंधा है उसे, माफ़ कीजिएगा, मैं नहीं मानती। बॉयोलॉजिकल अर्जेज़ (कायिक आवश्यकताएं) अपनी जगह पर और ज़िन्दगी का सवाल अपनी जगह पर। मैं एक के हाथ अस्मत बेचकर अपनी आज़ाद ज़िन्दगी खरीद करना चाहती हूं। मैं सामने वालों की तरह अस्मत-फ़रोशी का धन्धा ही करके अपनी उम्र तमाम नहीं करना चाहती। मैंने हर पहलू से सोच लिया है, दो-दो बरसों से सोच रही हूं।"

रमेश एकदम चकित, लाजवाब सिर झुकाए खड़ा सुन रहा था। बानो को उसने जितना समझा था, उससे एकदम अलग, एकदम नई है। आज वह अपने अकेलेपन की घुटन से उबरने के लिए उपाय सोचती है। नाना उसकी शादी कर न सकेंगे। उन्हें कभी ऐसा अच्छा और कुलीन लड़का न मिलेगा, जो उनकी गैहांवानों को महज इत्र-पान और नुक्लों की खातिरदारी पे गांठ जोड़ के ले जाए। इस परदे के जीवन में वह किसी से खुद सम्पर्क कर ही नहीं सकेगी···

रफ़ीक के पत्र आने-जाने लगे थे। रफ़ीक का विवाह हो चुका था। इस समय यह असिस्टेण्ट सेल्सअफ़सर है। बानो के लिए बेहद तड़प रहा है। वह उससे शादी तो फ़िलहाल न करेगा, क्योंकि चचा साहब की बेटी को सौत देखकर वह रईस चचा मियां को नाराज नहीं करना चाहता। लेकिन वह बानो का खर्च उठाएगा। खुद उसकी भी आर्थिक हालत कुछ बुरी नहीं है। वह उसे एम० ए० या और जो कुछ वह पास करना चाहे, उसका भी खर्च खुशी से देगा। वह उसे इस वक्त भी धोखा नहीं देना चाहता और आगे भी कभी न देगा। रफ़ीक की पत्नी बकौल उसके 'खासी उल्लू की पट्ठी' है। चिट्ठी में लिखा है···"ओहदा है, ऊपरी आमदनी भी है, और इज्ज़त भी, पर उनतीस बरस की उम्र में जनाब रफ़ीक साहब 'बेसहारा' रेगिस्तान बन चुके हैं। ज़िन्दगी इधर तीन बरसों से तहखाने में कैद थी —बानो का खत अरमानों का उजाला और नयी आस की नसीमे-सहर के झोंके साथ-साथ लाया।" तीन चिट्ठियों की हेरा-फेरी के बाद पन्द्रह रोज की छुट्टी लेकर वह बानो से मिलने के लिए परसों यहां आया है। उसके यहां आने पर मिलने का डौल बैठने के लिए ही पहले से तरकीब सोचकर उसने अपनी 'कमज़ोरी के अंदेशे', रमेश का मन फुसलाना शुरू किया। बानो रानी से अपना यह आज़ाद जीवन सिद्धान्त बतलाकर उसकी नज़रों से गिरना नहीं चाहती थी। रमेश के सिवा उसे और कोई न दिखलाई दिया। ज्यादा-से-ज्यादा उसे रमेश की 'फ़ीस' ही तो देनी पड़ेगी। रफ़ीक से मिलने के लिए यह कीमत कुछ बड़ी नहीं। वैसे उसका खयाल है कि रमेश यों ही नज़ारों और मुस्कुराहटों से भरम जाएगा और उसका काम कर देगा। उसी के घर में वह रफ़ीक से मिल सकती है। रफ़ीक परसों से शहर में है। बानो उससे मिलने के वास्ते रमेश को साधने के लिए कल ही से तड़प रही है, पर उसे मौका नहीं मिल पाया। रात इतनी देर साथ रहने पर भी नहीं। आज सुबह से वह मंडरा रही थी। सोचा था जब रानी खाना बनाती होगी, तब रमेश से कहेगी कि दफ़्तर से जल्द लौट आए, मगर फिर दोस्त आ गए। बानो मन-ही-मन बुझ गई। थोड़ी देर पहले खिड़की के पार पहुंचती हुई आवाज़ों से पहचाना कि रमेश अपने घर में है। सहनची का दरवाज़ा खोलकर आई और थोड़ी देर तक चुपचाप रमेश-मण्डली की बातें सुनती रही। एक मन हुआ कि लौट जाए, मगर फिर सोचा कि यह अवसर चूका, तो फिर जाने मिले या न मिले। हिम्मत करके रमेश को बुला ही लिया।

लेकिन रमेश के मन में हिचक है, वह अनवर नवाब को धोखा न देगा, एक भले घर की नवयुवती को बुरे रास्ते पर बढ़ने में मदद न देगा।…यह भले घर की बुरी लड़की लेकिन इसके तर्क ज़ोरदार हैं। लच्छू अभी रूस का चलन बतला रहा था…क्या हर्ज है। लेकिन इसने मुझे धोखा दिया। ठण्डे रूखे स्वर में बोला : "मैं यह कर सकता हूं कि नवाब साहब से तमाम बातें कर दूं, ताकि आपके लिए उनसे खुलकर बातें करने की झिझक मिट जाए।"

बानो ने हारकर ठंडी सांस भरते हुए कहा : "कभी-कभी बावर्चिन नानी की बात सच लगती है कि बीबी, चाहे कलमुंहे लंगूर की समझ पे भरोसा कर लेना, पर मरद की अकिल पे कभी भूल के भी अकीदा न लाना, पढ़ते-पढ़ते सड़ जाती है। बन्दानवाज़ माफ़ कीजिएगा, जब आप हमारे जमाने के होते हुए भी मेरी बातों से साफ़ झटका खा गए, तब इक्यासी बरस के नानाजान का क्या होगा? मैं जब जाऊंगी तब यकीनन उन्हें हफ्तों-महीनों तक सख्त सदमा पहुंचाने का बायस तो बन ही जाऊंगी, ऊपर से उसूलों के नाम पर सहबबाजी करके सदमे के साथ-साथ गुस्सा भी भड़का कर उनकी मौत का दिन करीब ले आऊं? …मैं आपसे सीधी बात पूछती हूं, आप मेरी मदद करेंगे या नहीं?"

"और अगर ना कह दूं तो?"

बानों के चेहरे पर निराशा झलकी, पल भर के लिए नज़रें झुकीं, फिर मुस्कुराकर कहा : "आपकी घड़ी अगर वक्त बताने से इन्कार कर दे तो क्या वक्त रुक जाएगा, रमेश साहब?"

रमेश चुप; कुछ कहते न बना। बहरहाल जो औरत किसी की रखैल बनने जा रही हो, उसे भागने में मदद देना उसे गंदा काम जंच रहा था, वह कीचड़ में हाथ नहीं सानेगा। इस निश्चय के साथ बेरुखी भरे स्वर में बोला : "मैं यह कर सकता हूं कि आपके दोस्त को इस तरफ़ से आपके कमरे तक जाने-आने की इजाज़त दे दूं, और वह भी सिर्फ़ एक बार। इसके अलावा और कुछ भी नहीं कर सकता। मुझे माफ़ कीजिए।"

"जी, बहुत अच्छा, माफ़ किया। मगर एक बात आप से बतौर अलविदा के कहती जाऊं : मैंने तो समझा था आपने इश्क किया है, मर्द होंगे। मगर—" विद्रूप हंसी की झांझों-सी झनक उठीं। रमेश पर उसका प्रभाव तीव्र उत्तेजनात्मक पड़ा। तड़पकर बोला : "आपके जिस प्रेमी ने आपको स्टेशन बुलाकर भी दगा की और फिर शादी चचा की दौलत से की—जबकि आप फ़रमाती हैं कि खुद भी दौलतमन्द हैं और उसी की बदौलत अपनी पुरानी प्रेमिका को, एक शरीफ़ और ऊंचे खानदान की लड़की को, अपने इश्क में वेश्या बना देना चाहते हैं—वो बड़े मर्द हैं। अगर इसी आदर्श से मैं मर्द नहीं—"

"नहीं। मेरे आदर्श का मर्द वह औरत या मर्द है, जो खुद दिलेर हो और दूसरे की दिलेरी की दाद दे सके। अभी-अभी आपसे अर्ज़ कर चुकी कि मैं इस बहाने से आज़ाद होकर अपनी ज़िन्दगी का नक्शा खुद बनाना चाहती हूं। वेसवा-खानगी ही बनना होता तो टुन्ने मियां की बीबी की शागिर्द क्यों न बनती, आपसे मदद मांगने क्यों आती? आदाब।"

बानो तेजी से चली गई। रमेश स्तब्ध रह गया। फिर कमरे में आया। हर्रो सो रहा था। लच्छू अखबार पढ़ रहा था। उसने रमेश का चिन्तित उतरा हुआ चेहरा देखा, कारण पूछा। धीरे-धीरे सारी कथा सुनी, बोला : "यार तुम वाकई

गधे हो। वो लड़की आंवें में पकी मटकी है। उसने घुटन में गति करके सच्चा ज्ञान पाया है। मुझे उससे पूरी हमदर्दी है।"

रमेश अपने मन में कहीं इस बात का क़ायल तो है, पर इस समय अपने समग्र रूप में वह क़ायल होना नहीं चाहता, हिचक उसे बांध रही है। वह चिढ़ गया, अलक्ष्य में अपनी अगति और लक्ष्य में लच्छू की प्रगति पर, बोला : "स्त्री का शील, उसकी अस्मत—"

"स्त्री के शील ने कायरता और कमजोरी बनकर उसकी अस्मत पर डाके डलवाए हैं। 'मोरी आंखिन मां सील औ' दहिजरवा गोड़ परै लाग।'—सुना है कि नहीं ? लो सिगरेट पियो।"

"रखिए अपनी सिगरेट और ये पुरानी कहावत। मेरे सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता। वो रण्डी बनने जा रही है।"

"ऐ है ! क्या तड़प है आपके सत्य में, मगर वो आपको तो अपना तबलची बना नहीं रही जो चिढ़ें। अरे, वो अपने आशिक़ के पास जाना चाहती है।"

"तो ब्याह करके जाय न। रानी भी अपने बाप के घर घुट रही थी, सही तरीक़े से उसने—"

"अच्छा, एक बात बतलाओ रमेश; मुसलमानों में तो चार निकाह होते हैं, मान लो वह भी निकाह करके जाती—"

"उसके लिए मैं सहायक बन जाता।"

"अच्छा मान लो इस शादी के बाद वह तलाक़ देती और दूसरा निकाह करती ?"

"तो ठीक होता। तलाक़ और शादियां दोनों ही सामाजिक आचरण के अनुसार होतीं।"

"अबे तो तुझे भी अपने मां-बाप की ठहराई किसी बम्हन की लौंडिया से ब्याह रचाना था। तूने क्यों तोड़ा सामाजिक आचरण ?"

"मगर अन्तर्जातीय विवाह अब नया और मान्य सामाजिक आचरण है।"

"और जिन्होंने पहले-पहले ऐसे विवाह किए, वे तुम्हारे तर्क से अपराधी थे—क्यों न ? वैसे ही ये आज़ाद सम्बन्धों वाले आज अपराधी और कल निर्दोष माने जाएंगे।"

रमेश ने भी चिढ़कर तनिक ऊंचे स्वर में कहा : "सम्भव है, पर मेरी दृष्टि में यह व्यभिचार ही है। यह उच्छृङ्खलता और चरित्रहीनता है।"

"जी हां, सत्त बचन महाराज। अपनी मनमानी शादी कर ही चुके, क्रांतिकारियों में तो नाम लिख ही गया है आपका, इसलिए अब फिर से पुराने में जाके मिल गये शरीफ कहलाने के लिए। धन्य है, तुम अब पहले से शायद बदल गए हो रमेश। धीमे स्वर में लच्छू की तेज आवाज भरी फटकार रमेश को बुरी तो लगी, पर कुछ उत्तर देते न बन पड़ा। लच्छू ने फिर कहा : तुम्हें कब्र में पांव लटकाए हुए बूढ़े के जीवन-मूल्यों का लिहाज तो बहुत हुआ, लेकिन चौबीस बरस की नौजवान के जीवन-मूल्यों—"

"फिर वही मूल्यों और मानों का चरचा। लच्छू, मैं भारतीय हूं और अभी मुझे रूस की हवा नहीं लगी, समझे। वह विवाह कर रही होती, तो हम पूरी सहायता देते—"

"विवाह से तुम्हारा मतलब ?—यही न कि कोर्ट, पण्डित, मुल्ला जैसे माने-

जाने सामाजिक चलन से रस्म अदायगी करके स्त्री-पुरुष साथ रहें। वो नहीं मानती इस चलन को। और मैं पूछता हूं कि खास बात क्या है इसमें। अनगिनत विवाहित जोड़े चरित्रहीन हैं, बहुत से तन से, बहुत से मन से। बहुत-सी पत्नियां पति की पूरी आमदनी हड़पने के लिए ही उसे वेश्या की तरह रिझाती हैं। मैं उन बेबस नादानों से इस बुद्धिमती हौसलेवाली की अधिक कद्र करता हूं। देख लेना, वो शान के साथ अपना जीवन बिता लेगी—अपना रास्ता आप बनाएगी।"

रमेश इनमें से एक भी बात से इन्कार न कर सका। दरअस्ल, उसे बानो पर गुस्सा था, उसने उसे ललचाया, उल्लू बनाना चाहा।···लेकिन यह बात वो न तो लच्छू से कह सकता है और न रानी से।

रात में रानी से बानो-कथा और लच्छू की टीका सुनकर रमेश ने उसका समर्थन पाना चाहा, वह बोली : "मैं समझती हूं कि उसे मदद करनी चाहिए। नवाब साहब के जीवन का क्या भरोसा? कभी न कभी तो निराधार होना ही पड़ेगा और अभी वो एक आधार पा रही है।"

"तुम सतीत्व की मर्यादा को—"

"तलाक़ और विधवा-विवाह के सुधारों को मानते ही सतीत्व की मर्यादा कुछ बदल तो जरूर ही जाती है, मैं सोचती हूं।"

"मैं मर जाऊं—" रमेश की बात पूरी होने से पहले ही रानी ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया और डांटकर बोली : "उलटी बात क्यों करते हो? समझते क्यों नहीं, अब ये हमारा ही सम्बन्ध हुआ है, पुराने सती वाले सिद्धान्त की कसौटी पर तो मैं भी खरी नहीं उतर सकती। लेकिन क्या मैं सती नहीं हूं?"

रमेश चुप; लेकिन इस बार उसे अपने ऊपर ग़ुस्सा आया—'मैं उसके इशारे पे ललचा ही क्यों?'—फिर बानो पर मन की तिरस्कार दृष्टि गई, 'भले ही आजाद रहे, तरक्की भी करती रहे, मगर उस उन्नति और आज़ादी का मूल्य ही क्या, जो जनाने 'आर्ट' की ऐसी ओछी 'ट्रिकों' से हासिल की जाए?···मगर यह वो रानी से कह नहीं सकता। मन में चिड़चिड़ाहट भर गयी। रानी ने पूछा : "कहो तो सबेरे जाकर उसे तुम्हारी मदद का भरोसा दूं?"

"नहीं। मेरी आत्मा गवाही नहीं देती।" रमेश ने रूखा उत्तर दिया। तीसरे दिन सुबह उठते ही सुना कि बानो घर से भाग गयी।

अपने 'मुलुक-वतन-देश-घर' आकर लच्छू दो दिनों के बाद ही बेगानापन अनुभव करने लगा। एक वर्ष से कम, कुछ महीने और कुछ दिन बाहर रहा और इतने ही में यहां उसकी जगह पूरी तौर से भर गयी है! उसका चौबारा अब प्रेमू भैया और माया भाभी के हिस्से में आ गया है। आने के दूसरे ही दिन भाभी ने अकेले में बड़े अपुनपौ के साथ यह चेतावनी दे दी : "लच्छू भैये, यों तो कमरा अब भी तुम्हारा हैगा, पर अम्मा से घर में अपना हिस्सा लै लेव, नहीं तो पीछे—"

लच्छू के कलेजे में चुभन तो हुई, पर मजाक में टाल गया। बड़ा भाई प्रेमू सामने ही कोठरी में गलीवाले जंगले के पास बैठा हजामत कर रहा था। लच्छू हंसकर बोला : "हम तो अम्मां से कहैंगे कि हमाए और बड़े भैये के बीच में भाभी का हिस्सा-बांट कराय देव, बाकी हमैं न तुमरा घर चाहिए न दुआर।"

"चलो हटो। अभी तो झूठी लल्लोचप्पो भी करो हो, बाद में अपनी नई-

नवेली की सूरत देखते ही उसके हुकुम से घर भी मांगौगे, दुआर भी मांगौगे और भाभी की चुटिया घसीटन खातिर भी उमगौगे। मैं घर-घर का हाल देखा हैगा।"

"नहीं भाभी, तुम निसाखातिर रहौ। मैंने कहीं और कमरा लेके रहूंगा, स्वतन्त्र ! अभी व्याह करने का विचार तो है ही नहीं। पहले किसी धन्धे में अपने पैर जमाऊंगा। अरे ज़रा मोटर खरीद के पहले हम तुम्हें तो काले कोसों की सैर कराय लावैं, तब तुम्हाए नाम किसी रूसी नवेली से ब्याह करैंगे ठाठ से।"

दाढ़ी का साबुन तौलिया से पोंछते हुए प्रेमू बोला : "लच्छू, ये न समझना, किसी चाल से कह रहा हूं, बाकी आई हैव लाइक्ड योर आइडिया वेरी मच (मैंने तुम्हारा विचार बहुत पसन्द किया है) —तुम रहो स्वतन्त्र ही। इस घर में ये अम्मां बाबू के भोंपू, औ तुमाई भाभी की 'हर हिटलरी' जीने का सारा मजा ही खतम कर देती है ससुरा।"

माया के तेवर चढ़े, देखते ही देवर ने तीर चलाया, कहा : "ये त्यौरियां मत चढ़ाओ भाभी, मैं बड़े भैये के साथ हूं इसमें।"

"हांऽ, पानी तो पानी ही में मिलेगा।"

"ये बात नहीं, माफ करना, तुमने भैया को नौकर बना रक्खा है। दफ्तर से आए नहीं मिट्टी के तेल की बोतल थमा दी, वो लेके आए तो कुछ और काम बता दिया।"

"तो कौन करे घर का काम ?"

"तुम करो। घूमने जाती हौ कि नहीं···ये मूं फुलाने की बात नहीं है भाभी।"

"मूं कौन फुलाता है ? हम तो आपी सोचते थे, पर आप लोगन के परमपुज्य बाप-महतारी के कलेस का डर था। और, जो घूमने की बात कहते हो तौ पूछ लेव अपने बड़े भैये से कि इनके बिना कभी घर से बाहिर पैर रक्खा होय। जो किसम कहौ, हम खाय जाएं।

"हां तो घुमाउन खातिर भी तो तुमने बड़े भैये को ही नौकर बनाय रक्खा हैगा। ई नहीं कि कभी उनकी भी मर्ज़ी देखैं।"

कोठरी से बाहर आकर प्रेमू ने गंभीर चिन्तन-मुद्रा में कहा : "लच्छू, एक बिजनेस बतलाऊं। आप हजरतमहल पार्क में एक काफी-प्लांट और एक क्वालिटी की आइसक्रीम—"

"लम्बी स्कीम है बड़े भैये, अगले जनम में या पच्चिस-पचास हज़ार की हैसियत हो जाने पर ही सोचूंगा।—"

"आप उल्लू के पट्ठे हैं।"

"वो तो खैर हम दोनों ही हैं !"

आई हुई चाय का प्याला अपनी ओर सरकाकर प्रेमू ने कहा : "मगर मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे जैसे बनो। मेरा छोटा भाई जो साला रशा तक हो आया है, अब मेरी तरह और अपने ईडीयट बाप की तरह से क्लर्की करेगा, न, हर्गिज नहीं, माई डियर। हर काम में सिर्फ पूंजी ही नहीं, अकल भी चाहिए। लाला राधेरमन आजकल छोटी रोजगार योजना चला रहे हैं—"

"वो राधेरमन ! अमरीकी एजेंट ?"

"अब देखो-देखो, हम इसी उल्लू-पंथी से चिढ़ते हैंगे तुमाई। मैं पूछता हूं कि आप साले क्या पंडित नेहरू से भी बड़े सोशलिस्ट हैंगे ? अरे तुम गरीब राष्ट्र के

गरीब आदमी, तुम्हें अपनी उन्नति करना है कि—अरे आम खाने हैं या पेड़ गिनने हैं साले ? बीरचन्द-मुलायमचन्द, दोनों को पटाओ ससुरों को, तुम्हाई तो छुटपन की धौंस भी हैगी इन पर।"

लच्छू को एक जगह पर अपने बड़े भाई की यह योजना स्फूर्ति दे रही थी, पर अभी वह निश्चय नहीं कर पा रहा था। प्रेम कह रहा था : "आज-कल तो साले रुप्पन का घर भी रूस-अमरीका हो रहा है। मुलायमचन्द ने बाप से लड़कर बंटवारा कराय लिया हैगा। वो हाजी के साथ है, बीरचन्द राधेरमन का पल्ला पकड़े हैं। खूब धमाचौकड़ी मची है उनके घरों में।"

लच्छू की प्रेरणा एकाएक जाग उठी, बोला : बड़े भैये तुम ग्रेट हो। ये बीरू-मुलायम जम गए मन में। छुटपन में बहुत चपतिआया है मुलायम को। (धीरे से) सुनो भैये, डू यू नो (क्या तुम जानते हो) इन लौंडों को कुछ पीने-पिलाने का चस्का है कि नहीं ?"

"मुझे मालूम नहीं। मगर एक टाइम में एक ही भाई को बुलाना, समझै।··· पर क्या रशियन 'वो' भी लाये हौगे ?"

"हूं। दो बोतल वोदका।"

"ग्रेट, ग्रेट ! बस तुम्हीं हमाए कुल का नाम रोशन करोगे बेटा !"

"अरे सुनत हौगे, सक्कर नहीं हैगी जरा-सी भी। ऑफिस जाने के पहिले—" बगलवाली रसोई की कोठरी से माया की आवाज़ आयी। प्रेमू चिढ़ उठा, धीरे से पत्नी को एक भद्दी गाली देके बड़बड़ाया : "ये वाइफें ससरी दिन-रात की मजूरी कराती हैंगी।—"

"अरे सुना ?"

"इस समय जरूरी बात हो रही है भाभी।"

"बात-बात कुछ नहीं, सक्कर अभी लायके धर दीजिए, दिन में सन्तोस को दूध देने की पंचायत पड़ेगी।"

"लाता हूं, लाता हूं भाई। तुम तो आफ़त जोतती हो, हां-नहीं तो !" झुंझलाकर उठते हुए प्रेमू बोला : "शादी कभी मत करना लच्छू, समझे।···तो आज शाम को फिर उड़ैगी ना ?"

"ज़रा बीरू-मुलायम को टटोल तो लूं पहले।··।"

प्रेम चला। माया अब दरवाजे पर थी, बोली : "लच्छू भैये, पीके आयेंगे तो मैं तुम्हाए भाई को घुसने नहीं दूंगी। अभी से बताए देती हूं, मैंने सुन लिया हैगा।"

"अरे आज तुम्हें भी पिलाऊंगा।"

"पिलाइए अपनी होती-सोतियों को। आप अलग घर लै लीजिए। आप हमाए इनको भी बिगाड़ देंगे। हमने सब सुन लिया हैगा।—उड़ैगी मजे से—देखती हूं कैसे साम को घर से निकलत हौगे तुम।" माया ने अपने पति पर ऐसी कातिल आंखें तरेरीं कि प्रेमू रसबस होके सहम गया। लच्छू अपने भाई की बेबसी देखकर मुस्कराया, बोला : तुम में मर्दानगी की कमी है बड़े भैये। भाभी तुम्हें दबोच लेती हैं।"

प्रेमू गया। भाभी कमरे में आके हाथ-आंखें मटका के बोलीं : "अच्छा हां-हां, नारद मुनी जी, रूस से यही सब विद्या तो लेके लौटे हैं। आपसे हम सच्ची अपने जी की कहते हैंगे—"

"हमारा-तुम्हारा जी अलग-अलग थोड़ी है भाभी। घर दिलवाओ तो आज छोड़ दूं।"

"घर मैं तुम्हें साइद आजकल में दिलवा दूंगी।"

"सच्ची ?"

"तुमरे बड़े भैया के नामरासी हैंगे ना, डॉक्टर—"

"डॉक्टर प्रेमनारायण शर्मा ?"

"हां।" माया ने हंसकर चंचल आंखें नचाते हुए कहा : "उनके घर में : तुम्हैं हमरी देउरानियां भी मिलैंगी, टेलीफोन गर्लैं। हिः हिः।"

"खाओ हमाई कसम।"

"तुमाई किसम, सच्ची कहती हूं। उनही के फेर में डॉक्टर साहेब के बड़े लड़के ने अभी वो नंगा नाच नाचा कि डॉक्टर साहेब ने उसका वो कमरै छीन लिया। टट्टी-गुसलखाना सब है, एकदम नया फसकिलास।"

"अरे भाभी, क्या कहैं, किसी के बाल-बच्चे काम आते हैं—हमारे तो तुम ही आईं। लो, तुम्हारे पैर छूता हूं, पचास-साठ, हद से हद सत्तर-पिचहत्तर तक में दिलवाय देओ मो जनम भर एहसान मानूंगा।"

"देखो भाई, हम आज दिन में उनके घर जाएंगे, उनकी घरवाली से बात कर लें तो बताएं।"

लच्छू नये जीवन के सपने देखने लगा। बीरू या मुलायम, कोई पट जाय··· पट जाय···साला पट ही जाय···।

"गोपी पप्पर खब्बे। किस्सन, हेडांच—खिः खिः खीः गिरबिर गिरबिर छांती करी—ई! ······अलफ अंबूजो, बे बकरो, पे पल्लो, ते तारो——हिः हिः हिः ही।"

"ए माराजिन, ए तारो कि जिज्जी! देक्खो, ये तारो नईं मानती, हम लोग को मू चिह्लाती ऐऽऽऽ।" सामने किरायेदार चोइथराम मनसुखानी के लड़के किशू ने अपना 'अलफ अम्बूजो बेबकरो' का पाठ रटते-रटते चिल्लाकर दाहिनी ओर के दालानवाले किरायेदार की छोटी लड़की तारो की शिकायत की। तारो ने अपने दालान में खड़े-खड़े किशू को 'ऊलू-लूलू' मुंह चिढ़ाया। वह किताब छोड़कर मारने उठा तो वो अपनी कोठरी के अन्दर भाग गई। बाप ने खांसते-खांसते ही एक खखारती घुड़की देकर किशू को रोक लिया।

दमे का मरीज पचपन बरस का चोइथराम दालान में टूटे मूंढ़े पर बैठा था; खांसी से फुरसत मिलती तो बीड़ी सुलगती और जब बीड़ी बुझती तो खांसी आ जाती थी। चोइथराम ने पिछले दस बरसों में इसके सिवा कोई काम न किया था। हैदराबाद सिन्ध से लाई हुई रकम अब तलीछट पर आ गई थी। गनीमत है कि बड़ी लड़की सती टेलीफोन दफ्तर में नौकरी पा गई है और छोटी गोपी पढ़ने के अलावा सिन्धी कढ़ाई सिखाने की दो ट्यूशन करके अपना खर्चा पीट लाती है। कम-से-कम चोइथराम तो सबसे यही कहते हैं, वैसे दुनिया के मुंह को कौन बन्द कर सका है। दोनों लड़कियों की गुलछर्री-कमाई को लेकर बहुत-कुछ कहा जाता है। किशू तो खैर अभी छोटा है, मगर सती से छोटा दया तीन बरस से लगातार इण्टर में फेल हो रहा है, घर में खाने, सोने और सबकी फटकारें सुनने के लिए

ही आता है। बाकी कहां रहता है, इसका कोई ठिकाना नहीं।

किशू हाथ में पापड़ लेकर फिर पालथी मारकर हिलते हुए 'अलफ अम्बूजो' की वर्णमाला सीढ़ियां चढ़ने-उतरनेवाले चाभी के बन्दर की तरह रटने लगा। तारो दोबारा उसे चिढ़ाने के लिए अपने दालान में आयी। तारो की बड़ी बहन सहदेई दालान के एक कोने में बने चौके में रोटियां सेक रही थी, ज़ोर से बहन पर डपटी, "खबरदार तारो, हम पिटबै। जाओ ऊपर डॉक्टर साहब के हिआं कोउते रबड़ लटकावे के लिए कह देव।"

तारो ने कान न दिया। किशू के साथ ही साथ ज़ोर-ज़ोर से हंस-हंस कर बीच-बीच में पापड़ खाने की नकल उतारते हुए अलफ अम्बूजो, बे बकरो, पे पल्लो आदि उसी लटके से बकती रही।

सहदेई दांत पीसकर चिमटा हाथ में लिए उठी। तारो चट से भाग गई। सहदेई चौबीस बरस की सयानी, गोरी-चिट्टी, नाक-नक्शेदार, बड़ी-बड़ी आंखों और सांचे में ढली सुडौल बदन की है, थोड़ी-बहुत पढ़ी-लिखी भी है, मगर अभी तक इसे कहीं घर-वर नहीं मिला। बाप पांच हज़ार दहेज तक देने को तैयार है, मगर कहीं ब्यौंत नहीं बैठता। तीन लड़के अब तक आकर देख चुके और उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर भी यह कहके चले गये कि मोम की पुतली है, इंसान नहीं।

एक वर के पिता दस हज़ार लेकर कन्या का उद्धार करने के लिए राजी भी हो गए थे, पर भवानीदीन महाराज की इतनी तथा नहीं। पिचहत्तर की आयु है। पहली लड़ाई में मिलिट्री में काम करते थे, एक तमगा, एक पट्टी आज भी कोट पर लगाये घूमते हैं। अब एक बैंक में पहरेदार हैं और फौज की पेन्शन भी खाते हैं। पहली स्त्री बांझ मरी, उसके रहते पानी देनेवाले की चिन्ता के लिए भी उन्होंने दूसरा विवाह न किया। वे उसे बहुत चाहते थे। उसके मरने पर इन्होंने, सन्तान की चिन्ता की, परन्तु इस विवाह से भी जीवित सन्तानों में दो लड़कियां ही बचीं। सबसे बड़ी सहदेई, उसके बाद दो कन्याएं, दो पुत्र छीज गए; अंतिम तारो छः वर्ष की है। कन्याओं के विवाह की चिन्ता में भवानीदीन महाराज आठों पहर रहा करते हैं। बैंक नये सर्राफा बाज़ार में है। वहां हुण्डियों की दलाली में और कुछ छोटे-मोटे सट्टे-फाटके में भी कमा ही लिया करते हैं। महराजिन भी सवेरे एक घर और शाम को दो घरों में खाना बनाने के लिए जाती हैं, इस तरह साठ रुपया महीना वह भी कमा कर लाती हैं।

सुन्दरता में सहदेई हज़ारों में एक, देखते ही सबकी नज़र भरती है। घर का सब काम कर लेती है, रामायण बांच लेती है, चिट्ठी-पत्री कर लेती है, सीना-पिरोना भी आता है, झाड़ू-बहारू, चौका-बासन, किसी काम में कमजोर नहीं, फिर भी आजकल के लड़कों को नहीं सुहाती, उन्हें तो बस चटक-मटक चाहिए। सहदेई में यह सब गुण नहीं पनपे, वह भोंदू है। अपने मन से उसे कुछ नहीं सूझता। देखने के लिए आनेवाले व्यक्तियों के पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर देने के बजाय, दोनों हाथों की उंगलियों को एक-दूसरे में कड़ियों की तरह फंसाए, मोम की पुतली की तरह निर्विकार खड़ी ही रहती है। ठीक वैसे ही निर्विकार भाव से वह हर काम करती है, वैसे ही इस समय रोटी भी पका रही है।

ऊपर वाला रबड़ का पाइप टप से नीचे दालान के खम्भे से आकर टकराया और वैसे ही करीब-करीब पानी भी आ गया। सहदेई का तवा अभी चढ़ा हुआ

था। उसे यह आशा नहीं थी कि पानी इतनी आसानी से आ जाएगा। मकान मालिक, डॉक्टर साहब, का बड़ा लड़का किशोरी बड़ा मुरहा है। सहदेई भोंदू होते हुए भी सब समझती है। किशोरी को वह कभी तरह नहीं देती। उसके सामने या तो मोम की पुतली बन जाती है या फिर जोर से भागती है। सहदेई के मानस की यह सीमा ही उसका कवच है। इसीलिए उसे ऊपर से पानी का रबड़ बहुत कम मिलता है। लेकिन उधर की सती, गोपी बेझिझक ऊपर जाकर रबड़ का नल अपनी तरफ अपने हाथ से नीचे लटका लेती है। यह लोग सहदेई को बहुत सताती हैं, पानी नहीं भरने देतीं और गली के नल पर पानी भरने जाना उसे अब अच्छा नहीं लगता।

सहसा पानी आता देखकर सहदेई के हाथ-पांव फूलने लगे, क्या करूं। अभी तो इत्ता आटा बाकी है पर पानी चले जाने के भय ने बुद्धि दी। चूल्हे पर से तवा उतारा, लकड़ी खींची और बाहर निकलकर गिरते हुए पानी से हाथ धोने लगी। तब तक पानी चला गया। फिर रबड़ का पाइप भी ऊपर खिंच गया। सहदेई बुद्धू-सी खड़ी देखती ही रह गई। ऊपर तारो और गोपी रबड़ का नल आपस में अपनी ओर खींच रही थीं : "देखो, मेरा रबड़ छोड़ दो गोपी जिज्जी, कहे दे—"

"तेरे बाप का है रबर। इतनी देर से बेकार पानी बह रहा है तब क्यों नहीं भरा?" गोपी ने झटके के साथ रबड़ का नल अपनी ओर खींचा।

"अरे अबहीं तो तारो गिराइन है नल, हम ऊठकै भरै खातिर आईं औ' तुमने रबड़ खींच लिया। ई कौनो इन्साफ है भला?" नीचे से सहदेई टर्राई।

"हां-हां, इंसाफ है। हमको न्हाना है, कपरा धोना है।"

गोपी की बात का जवाब तारो ने नल खींचते हुए दिया, बोली : "नहाती तो तुम किशोरी भैया के गुसलखाने में होगी, हमने तो छत वाले—"

"ए लौंडिया, भाग! बक-बक बन्द कर।" किशोरी ने अपने कमरे के दरवाजे पर खड़े होकर डांटा। नीचे खड़ी सहदेई को केवल उसकी आवाज़ ही सुनाई दी। सहदेई के लिए वह आवाज़ एक साधारण आवाज़ न थी। उसे ऐसा लगा, जैसे नरसों की तरह आज भी किशोरी ने उसके मुंह पर थूककर उसकी आंखों के सामने ही गोपी को अपनी बांहों में भरकर चूम लिया। वह किशोरी की तारो पर पड़ी डांट को सुनते ही चौंक पड़ी और आंगन से भागकर सीधे अपने दालान की रसोई में चूल्हे के आगे पीढ़े पर बैठ गयी। अभी थोड़ा-सा आटा रोटी सेंकने के लिए पड़ा था—लेकिन सहदेई को हिड़कियां बांध-बांधकर रुआई छूट पड़ी थी। घुटनों पर आंचल से ढंकी उसकी बांहें और बांहों पर सिर टिका था। रोने से उसकी पीठ और कन्धे पिल रहे थे।

तारो खिसिआई हुई सी नीचे आ गई। किशू अलफ अम्बूजी, बे बकरो का पाठ बन्द कर हिरन की तरह छलांग मारकर आंगन में आया और पीछे से तारो की चोटी पकड़कर ज़ोर से खींच गया। तारो 'आय-आय-आय' चीखती हुई आंगन भर में फैल मचाती लोटने लगी। किशू उसकी चोटी खींचकर घर से बाहर भाग गया था। चोइथराम की बीड़ी बुझ गई थी और उसे जोर से खांसी आ रही थी। टीन की डिबिया में बीड़ी न होने के कारण चोइथराम को देर तक खांसी आती रही। अपने रोने पर अपनी जिज्जी का समर्थन, या लड़ने के लिए किशू और शिकायत करने के लिए सती या गोपी का अभाव पाकर तारो अधिक देर तक रो न सकी।

फौरन ही आंसू विहीन गुस्से भरी आवाज़ में चिल्लाकर मानो ऊपरवाली मंजिल को सुनाती हुई तारो बोली : "कमरा बन्द करके किशोरी भैया के संग—" घर में ही किसी बड़े से सुना हुआ शब्द तारो सहज भाव से अपनी बात में बोल गई। अपनी मनोपीड़ा से सहदेई अब कुछ-कुछ ऊबकर चूल्हे की लकड़ियां ठीक कर रही कि उसके कानों में गोपी-किशोरी के सम्बन्ध में तारो का कहा गया गली का भद्दा शब्द पड़ा। सहदेई चूल्हे की लौ की तरह भड़क उठी। झपाटे से आंगन में जाते हुए तारो का हाथ पकड़कर उसके मुंह पर तड़ातड़ तमाचे मारती हुई बोलीं : "मुंहझौंसी, ई गाली बकब कहां ते सीख आई ?— फिर बकैगी—फिर बकैगी ?" सहदेई मारती ही चली गई। जब उसके अन्दर का सारा ज़ोर चुक गया, तभी उसने अपनी बहन को छोड़ा। तारो बिलखकर रो रही थी। सहदेई खड़ी हांफ रही थी। गोपी बड़े अन्दाज के साथ ऊपर की पीढ़ियों से उतरकर आंगन आ रही थी। उसकी और सहदेई की आंखें सहसा चार हुईं। सहदेई ने क्रोध और नफरत से मुंह फेर लिया। गोपी नफरत और उपेक्षा से मुस्कराई, और बाप की ओर बढ़ते हुए कहा : "बीरी चुक गई है बाबू ? लो, पैसे देती हूं, जाके अपनी बीरी ले आओ और चाय पी आना।"

चोइथराम लड़की से पैसे पाकर दरवाजे की ओर खांसता हूआ बढ़ा। सहदेई तारो से बोली : "चल उठ।"

"हम न जाबै।"

"न चलिहौ तो मार खैहौ।" बहन की वह बात सुनकर तारो उठकर दरवाजे की ओर भागी। दरवाजे के पास जाकर उसने कहा : "हम अम्मा से जायके कहिति है कि जिज्जी हमका बिना बात के मारिन।"

"ठहर तो सही।" कहते हुए सहदेई ने झपटकर बढ़ना चाहा, लेकिन चोइथराम के आगे होने से वह बस झपट ही के रह गई, बढ़ न सकी।

तारो गयी। चोइथराम गया। सहदेई दालान में बैठकर फिर अपना चूल्हा ठीक करने लगी। सहसा गोपी उसके सामने से गुजरी। गोपी की झलक तक नरसों से सहदेई के बदन में आग लगा देती है। सहदेई अपने भाव को और भी कसकर चूल्हा ठीक करने लगी। तवा चढ़ाया और चकला-बेलन संभाल ही रही थी कि गोपी बाहर दोनों दरवाजों की कुण्डी चढ़ाकर लौटी और ऊपर की ओर मुंह उठाकर आंगन से ही आवाज़ लगाई—"किशोरी ! किशोरी ! ओ डार्लिंग !" सहदेई बन्द शेरनी-सी मन ही मन तप उठी। ऊपर से किशोरी की आवाज़ आई, वैसी ही मिठास, वैसी ही शरारत। फिर गोपी ने कहा कि नल नीचे ही लटका दो, मैं यहीं नहा लूंगी। घर में कोई नहीं और बाहर का दरवाजा बन्द कर आई हूं। यह कहते बीच आंगन में सहदेई को ईंट-पत्थर-काठ जैसा घर का जड़ सामान मानकर गोपी निर्वसना हो गई। किशोरी ऊपर से नल छोड़ने आया तो आंगन के दृश्य पर अपने रसीले उद्गार प्रकट किए बिना न रह सका। दोनों की बातों से लाज भरी समझ लेकर सहदेई मोम की पुतली बन गई। रोटी बेलतीं रही, रोटी सेंकती रही। किशोरी नीचे आ गया, नहाती गोपी को छेड़ता रहा। गोपी और किशोरी सहदेई को दिखा-दिखाकर चिढ़ाते रहे, उसका मजाक उड़ाते रहे। सहदेई मोम की पुतली बनी रोटी सेंकती रही। किशोरी ने एक बार नल उठाकर इसके दालान में हलकी फुहार छोड़ी। सहदेई की पीठ पर एक जगह धोती चिपक-

कर रह गई, लेकिन वह कुछ न बोली। गोपी-किशोरी का स्नान-ताण्डव चलता रहा।

आंच के सामने बैठकर भी मोम की पुतली ऊपरी तौर पर तो ज़रा न पिघली, पर अन्दर ही अन्दर उसके सारे अरमान सुलगे जा रहे थे। चौबीस वर्ष की आयु देह और चेतना में कांटेदार गुलाब की तरह चुभ-चुभकर महक रही थी। उस चुभन और महक से वह घुट गई, ऊब उठी, चिड़चिड़ा गई······बेसरम रंडी कहीं की और ये किशोरी महा का गुण्डा है। अब हम इनके हियांते पानी न लेब चाहे हमका बाहर से पानी लावैं का परैं।

सहदेई के कानों में चुम्बन की ध्वनियां आ रही हैं, किशोरी के भावरुद्ध कंठ से कुछ तड़पते उद्गार, कुछ खुली बातें; छेड़छाड़ के सुखमय आभास से भरी गोपी की बरजन-भरी बातें ··।

चूल्हे में दो लपटें उठीं और मिल गईं। मोम की पुतली तड़प उठी। धप-धप उठी और दालान से निकलकर बढ़ने लगी। किशोरी ने उसका आवाहन करते हुए एक भद्दी बात कही और हस पड़ा। सहदेई दहलीज के दरवाजे खोलकर सदर दरवाजे की और बढ़ी! किशोरी गोपी दोनों चीख उठे: "ए सैंदई क्या करती ऐ?—अच्छा साली, मत मान, तेरा गला घोंट के रहूंगा एक दिन।" किशोरी का खेल बिगड़ गया था। निर्वसना होने के कारण गोपी अपनी कोठरी के अन्दर भागी और किशोरी से अपने कपड़े अन्दर फेंक देने के लिए कहा। सहदेई एका-एक भीतर लौटने का साहस अपने अन्दर न पाकर दरवाजे पर ही खड़ी रही। लेकिन कब तक खड़ी रहती, जब लौटी तो उसने देखा कि उसकी तमाम रसोई में चूल्हे की राख बह रही है और रोटियों के कटोरदान तथा दाल-चावल के भगोने भी पानी से भरे हैं, आंगन में कोई नहीं। गोपी की कोठरी के दरवाजे बन्द हैं और रबड़ का पाइप भी ऊपर खींचा जा चुका है। सहदेई ने यह देखा और मोम की पुतली बन गई।

एक घण्टे बाद सहदेई की मां तारो के साथ आई। अपनी रसोई का हाल देखते ही चिल्लाकर बोली: "हाय राम, यू का भवा? को करि गवा? अरे सहदेई!" अपनी कोठरी के दरवाजे खोलकर मोम की पुतली ने मां को देखा।

"पानी कैसे गिरा?"

"किशोरी करिगे हैं।" मोम की पुतली के होंठ हिले, चेहरा स्वर-निर्भाव रहा।

"काहे?" मां का स्वर औरतवाले सयाने कोठे पर गरजा, मोम की पुतली खामोश। सहदेई की अम्मां ने दो-तीन बार गरज-गरजकर पूछा, मोम की पुतली की आंखें छलछला आईं। सहदेई की मां अपनी बेटी के आंसुओं का मोल जानती है। उसकी बेटी धुर बचपन ही से रोना नहीं जानती। बड़े ही कष्ट में उसके आंसू निकलते हैं। सहदेई की अम्मां ने तारो को कल्लू महाराज के यहां से सूप लाने को कहा, तारो जाना नहीं चाहती थी। वह जानती थी की जिज्जी अम्मा को किशोरी भैया की बातें बताएगी। किशोरी भैया बड़े ही मुरहे हैं। तारो ने उन्हें सत्ती जीजी और गोपी जीजी दोनों ही को प्यार करते देखा था, इसलिए उसके नन्हीं उमर के सयानपन को ये आभास मिल गया था कि किशोरी भैया ने ऐसी ही कोई मुराही जिज्जी के साथ भी करनी चाही होगी। लेकिन तारो की इच्छा पूरी न हो सकी, अम्मां ने डांटकर बाहर भगा दिया।

अम्मां सहदेई को लेकर कोठरी में चली गयी और उसे बैठाकर धीरे-धीरे पूछने लगीं। मोम की पुतली ने निर्विकार भाव से सब कुछ बता दिया। अम्मां सुनकर तप उठीं। कोठरी के अन्दर उनके गरजते कोसने यों फूलने लगे, मानो ज्वालामुखी से जलता लावा बाहर निकल रहा हो। लेकिन उनके उद्गार सुनने के लिए घर में उनकी मोम की पुतली सहदेई ही थी। और उसी की तरह जड़ दीवारें, खम्भे, किवाड़, आंगन, दालान, कमरे और सती-गोपी के दरवाजे का ताला भी गूंगा गवाह था। गोपी जा चुकी थी। किशोरी भी घर दूसरे भाग में खाने के लिए जा चुका था।

घण्टे सवा घण्टे बाद जब भवानीदीन महाराज अपनी ड्यूटी पूरी करके रोटी खाने घर आए, तब तक दालान के दूसरे सिरे पर गुम्मों का चूल्हा बनाकर सहदेई की अम्मां ने खिचड़ी चढ़ा दी थी। दूसरी ओर स्थायी रसोई वैसी ही उजड़ी हुई पड़ी थी, जैसे दुश्मन के हवाई हमले के बाद बस्ती के खण्डहर या किसी के द्वारा मारे गए आदमी की खून से लथपथ लाश पड़ी हो। आश्चर्य, करुणा और क्रोध मिश्रित भाव स्तब्धता से जिज्ञासा भरी उत्तेजना की ओर बढ़ते हुए भवानीदीन महाराज ने पत्नी से कारण पूछा। सहदेई की अम्मां जलती आंखें निकालकर पति से बोली : "आज जब तलक डॉक्टर साहब का हम यू न दिखाय लेब तब तक ऐसनै ही पड़ा रही।"

डॉ० प्रेमनारायण बड़े ही व्यस्त आदमी हैं। उनके बारे में आमतौर पर यह कहा जाता था कि हैं तो बड़े लालची, पर उनके हाथ में जस है। मरते रोगी की नब्ज पर भी हाथ रख दें तो वह टैंया-सा उठ खड़ा हो। पत्नी है, दो लड़के, एक लड़की। बड़ा लड़का विलायत पास डॉक्टर है और दिल्ली में रहता है। लड़की भी अपने घर-बार बाल-बच्चों वाली हो चुकी है, समस्या केवल छोटे लड़के किशोरी की है। पांच बरस से लिखना-पढ़ना छोड़कर बेकार बैठा है। तीन धक्कों में किसी तरह रो-गाकर इण्टरमीडिएट पास कर लिया, वही उसके लिए बहुत हुआ। डॉक्टर साहब ने उसे अपनी दवाओं की दुकान पर बैठाया। वहां भी मन लगाकर काम नहीं करता। बारह, एक बजे तक घर से दुकान जाता है और चार-पांच बजे तक लौट भी आता है। घर से दो-एक बार रुपये भी चुराकर भाग चुका है। संयोग ही की बात थी कि इतने पैसे वाले होकर भी डॉक्टर साहब के इस बेटे को किसी बेटी वाले ने अब तक न पूछा। अब तो स्वयं डॉक्टर प्रेमनारायण ही उसका विवाह करने के लिए राजी नहीं होते। किशोरी से आमतौर पर वे बोलते भी नहीं हैं। उनके घर के दो भाग हैं। उनके ये दोनों किराएदार पिछवाड़े वाले हिस्से में ही रहते हैं। ऊपर के हिस्से में किशोरी का कमरा है, जो एकदम नया बना है। डॉक्टर साहब वाला मकान ऊपर छतवाले दरवाजे को बन्द कर देने से एकदम अलग हो जाता है। इधर के भाग में किशोरी का एकछत्र राज्य हो जाता है। डॉक्टर साहब ने यह अवश्य सुना था, स्वयं उनकी पत्नी ही ने बतलाया था कि किराएदार की बदचलन लड़कियों से किशोर का सम्बन्ध है, परन्तु इस खबर को उन्होंने कोई खास महत्व न दिया। लेकिन आज भवानीदीन महराज के शिकायत करने पर बड़ा ही क्रोध आ गया। भवानीदीन लाख गरीब हों, पर थे तो आखिर उनके सजातीय ही। उन्होंने उसी दिन अपने दो नौकरों को बुलवाकर ऊपर किशोरी के कमरे का ताला तुड़वाया और उसका सारा सामान वहां से निकलवाकर ऊपर वाले हिस्से के एक कमरे में लगवा दिया। उन्होंने छत के दरवाजे में एक मोटा और मजबूत

ताला भी डलवा दिया ताकि किशोरी इधर आने ही न पाए। रबड़ का पाइप भी डॉक्टर साहब भवानीदीन महराज ही को सौंप गए और यह हुक्म लगा दिया कि सुबह पांच बजे से सात बजे तक पानी पर महाराज का अधिकार रहेगा और सात से नौ तक चोइथराम की बेटियों का। इसी प्रकार शाम के लिए भी उन्होंने समय की पाबन्दी लगा दी। किशोरी वाले कमरे के लिए भी कह गए कि उसमें किराये-दार बसा देंगे।

इस नये परिवर्तन से किशोरी को तो कष्ट हो ही गया, गोपी और सती भी बड़ी परेशान होने लगीं। इन बहनों को नहाने का बड़ा कष्ट हो गया। किशोरी के कमरे की एक चाभी नीचे भी रहती थी। गोपी और सती छुट्टी के दिन अथवा फ़ुरसत के समय वहीं आराम भी करती थीं। उनका कोई मित्र आ जाय और किशोरी घर पर मौजूद न हो, तो ये बहनें उसी कमरे में बिठा-उठा भी लेती थीं। अब वो सारी सुविधाएं एकाएक खत्म हो गईं। गोपी और सती उठते-बैठते सहदेई को कोसने लगीं। पानी को लेकर भी उनको बड़ा असंतोष था। अब तक तो किशोरी के कारण रबड़ के पाइप पर उनका अधिकार था, लेकिन अब डॉक्टर साहेब के आदेश से उनका वह अधिकार भी छिन गया था। यह उन्हें बेहद खलता था।

किशोरी भी सहदेई पर लाल भभूका हो रहा था। उसके कारण उसकी वाजिदअलीशाही समाप्त हो गई थी। सुबह नौ-दस बजे तक वह एक चक्कर इस घर का जरूर लगाता है। तारो और किशू तब तक अपने स्कूलों को जा चुके होते थे। गोपी करीब साढ़े बारह बजे यूनिवर्सिटी जाती थी। इसलिए वह उसे उस समय बराबर मिलती थी। जब दिन की ड्यूटी न रहती तो सती भी मिलती थी। हां, चोइथराम के प्रोग्राम में अब इतना परिवर्तन अवश्य आ गया था कि किशोरी के आने पर वह चाय के लिए बाहर जरूर चला जाता था। सहदेई अपने घर में अकेली पड़ जाती। सदर और दहलीज के दोनों दरवाज़े बन्द करके किशोरी और गोपी मौजूद होने पर सती भी, सहदेई को सताने के लिए नंगे नाच नाचते थे। सहदेई ने नौ बजे से पहले ही सब ढक-मूंदकर अपनी कोठरी के अन्दर दरवाजे बन्द करके बैठने का नियम ले लिया था। किशोरी ने फिर भी उसका पीछा न छोड़ा। किशोरी और गोपी सहदेई के दालान के सामने ही अपनी चारपाई डालकर छांह में बैठते-उठते थे। किशोरी अपनी कोठरी में बन्द सहदेई को सुना-सुनाकर-गन्दी बातें बकता। सहदेई उन्हें सुनकर सन्नाटे में भी मोम की पुतली बन जाती थी।

यह ताण्डव सहदेई के मन को आठों पहर सताने लगा। लाख भोंदू सही, मगर आयु उसे अपनी समझ देती ही थी। घर का यह वातावरण संस्कारवश मन के लाख गंदा-गंदा कहते रहने पर भी एक विचित्र सनसनाहट के साथ उसके आकर्षण को घेरता था। ये सब जो बुरी बात है, वह कोरी बुरी ही बुरी नहीं, भली बात भी है। ब्याह होने पर वह भली हो जाती है···उसका ब्याह ही नहीं हो रहा। इस वातावरण के कारण यह अभाव कुछ ही दिनों में उसके मन को आठों पहर खाने लगा। सहदेई पीली पड़ने लगी, दिन पर दिन सूखने लगी। मानसिक अत्याचार के अतिरेक में अपने सिद्ध अभ्यास के अनुसार एकान्त तक में बाहरी तौर पर मोम की पुतली बने रहना भी अब उसके लिए दूभर होने लगा। उसकी अन्दर की चेतना कुल्हाड़ियों की तरह उसकी बाहरी जड़ता पर आघात करने लगी। उसकी मुखमुद्रा पर भाव संचालित होने लगे। बाहर आंगन से आने वाली चुम्बन-ध्वनियों का

स्पर्श उसके होंठों को मिलने लगा। गोपी की सिसकारियां उसके अंगों में सिहरन भरने लगीं और एक दिन उत्तेजना में मन ने विद्रोही बनकर लाज के बन्धन तोड़ दिए। सहदेई ने पहली बार झांककर बाहर के दृश्य को देखने की उतावली दिखलाई। लाज ने एकान्त में अपने बंधन तोड़ दिए। और इसके बाद सहदेई का मन और तन दोनों ही निष्क्रिय रहने लगे। उसे अपनी कोठरी से बाहर निकलने से नफ़रत थी। साथ ही उसे अपने घरवालों से भी चिढ़ होने लगी। सहदेई बात-बात में चिड़चिड़ा उठती थी। महराजिन ने यह देखकर भवानीदीन महाराज को वर की तलाश में एक बार फिर नोन-सतुआ बांधकर निकलने पर विवश कर दिया।

ऐसे ही समय में 'रूस रिटर्न्ड' श्रीयुत लक्ष्मीनारायण खन्ना बी० ए० अपनी माया भाभी की सिफारिश से पैंसठ रुपये महीने भाड़े पर किशोरी वाले कमरे के किरायेदार बनकर आ गए। उसमें गृह-प्रवेश और मित्र विदाई के पचास कार्ड छपाये और पीछे कार्यक्रम छपाया। अध्यक्ष मालिक मकान डॉक्टर शर्मा होंगे और उद्घाटनकर्त्ता लाला बैजनाथ, अध्यक्ष को माल्यार्पण श्री मुलायमचन्द्र द्वारा किया जायगा और पड़ोसी और किरायेदार के कर्त्तव्य पर श्री रमेशचन्द्र गौड़ का भाषण होगा। रूस-यात्रा के संस्मरण श्री लक्ष्मीनारायण खन्ना सुनाएंगे और धन्यवाद-दाता श्री शामराव गणेश गोडबोले होंगे। संगीत और मधुर जलपान भी होगा। दो दिन इसी दौड़धूप में लगाए। अपना नया आवास धुलवाया-पुछवाया। इसके लिए आते-जाते उसने अपनी पड़ोसिनों, कुख्यात मनसुखानी बहनों को भी देखा, पर कोई ध्यान न दिया। लच्छू अपने-आपको नये सिरे से जमा रहा है। महल्ले में नए सिरे से नया-पुराना होना चाहता है। अपनी धाक जमाकर बैठना चाहता है। और उसने फिलहाल मुलायमचन्द को पटाया है तो वीरू से भी वह राम-जुहार कर आया है। गोडबोले अमरीका जा रहा है, इस बहाने उनका सम्मान भी कर डाला।

उस दिन छत पर गोष्ठी खूब जमी। लाला बैजू और डॉक्टर शर्मा थोड़ी देर के बाद चले गए। फिर मुलायम को अध्यक्ष बनाकर धुआंधार भाषण हुए। लच्छू ने मुलायम की गहरी खुशामद की और वह भी इस तरह कि खुशामद न लगे।

पुराने दोस्त अपने-अपने ध्यान-धंधों में रम चुके थे। रमेश एक तो दूर चला गया था, दूसरे अपनी उन्नति के चक्कर में प्रयत्नशील है। गोडबोले जा ही रहा है। जयकिशोर का संग-साथ अब साहित्यिकों से अधिक बढ़ गया है। कम्मी अवश्य सबेरे एक चक्कर लगा जाता है। हर्रो भी लच्छू के संग चिपका है। उसने वचन दे रखा है कि तुम्हें अपने साथ काम में खपाऊंगा। लच्छू अपनी पूंजी की सीमा को भी देख रहा है। उसे एक-दो महीने के भीतर ही आमदनी होनी चाहिए। मुलायम चन्द को यह स्कीम समझाई है कि उद्योगपुरी में एक भी शानदार रेस्त्रां नहीं है। मैं खोलूंगा। दूकान तुम्हारे पास गिरवी रहेगी।" मुलायम बोला : "खोखा मियां से मिला दूंगा। होटल-रेस्त्रां का मामला वही बेहतर समझते हैं।"

"खोखा मियां कौन ?"

"हाजी साहब के लड़के हैं, बंगालिन रखैल से। मगर अपने बिजनेस में उन्हें भी हिस्सा दिया है। आजकल होटल का धंधा वही सम्हालते हैं।"

लच्छू खोखा मियां से मिला। वे उसकी बातों से प्रभावित न हुए। योजना

ठप पड़ गई। मुलायमचन्द बोला : "इनकी सलाह के बिना मैं कोई काम नहीं करता।"

मुलायम से निराश होकर लच्छू बैजूलाला के पास गया। लाला ने पूछा : "ताश खेलते होगे।"

"जी, यों ही मामूली।"

"तब फिर हमसे मिलने क्यों आए। रेवतीरमन से मिलो, राधेरमन के लड़के से। वही आजकल छोटे धंधों की सहायता स्कीम-चलाय रहे हैंगे। अच्छा तो रूस में क्या नाम हैके ताश का शौक है लोगों में?"

"हमने कहीं देखा नहीं बैजू बाबा। हां, शतरंज खूब जोरों से जमती है। अच्छा तो रेवतीरमनजी से मिला कैसे जाय बाबा?"

"अब मिलने की जुगत बैठाओ। इत्ती दूर रूस घूम आए और रेवतीरमन से मिल नहीं सकोगे?"

"मिलने को तो मिल लूं, पर अब आप मिलाएंगे तो असर अच्छा पड़ेगा।"

"तुम्हारे यहां वो टेलीफून गर्ल की बड़ी तारीफ सुनी है लच्छू। सुना है, बड़ी दानवीर करन हैगी।"

लच्छू ने देखा, बैजू बाबा बातों में अटका-अटका के चल रहे हैं। बुड्ढे को लड़कियों का भाव भी है, ढीठपने से मुस्कराकर बोला : "हमें गौरैया के शिकार में मजा नहीं आता बाबा, शिकार हो तो फिर किसी चील, बाज का हो।"

"जियो बेटे, कमा खाओगे। आज के जमाने में मरद की तकदीर औरत ही से खुलती है। तो जान-पहचान की है उन लड़कियों से?"

"जी, कोई खास नहीं। एक-बार नहाने के लिए ऊपर का गुसलखाना मांगने आई थी, मैंने मना कर दिया।"

"सिड़ी हौगे, आज की दुनिया में रहना चाहो तो बिगाड़ किसी से न करो। समझे। कुछ सूरत-सकल है उस लड़की की?"

"हां, ठीक है बस। छोटी वाली जरा अच्छी है। क्यों, आपको जरूरत है।"

"हमें किसी तरह इश्कबाजी का चस्का जवानी में नहीं रहा तो अब क्या होयगा। लेकिन अगर ठीक होय तो पटाय लेव उसे। उसे, या और किसी को — अरे कोई भी होय, अच्छी होय फिर आके हमसे कहना, रेवती को रात के खाने पे बुलाय लेंगे। काम बन जायगा तुम्हारा।"

लच्छू के लिए यह बहुत कठिन काम था। क्या उसे औरतों की दलाली से अपना धंधा बनाना होगा? बनाते ही हैं सब। आज की रिश्वतें ही ये हैं। रमेश से बात हुई, वह एकदम विरुद्ध था। जयकिशोर इसे असम्मान समझता है।

लेकिन उसकी गांठ का गोपीचन्दन घिसा चला जा रहा था। महीने दो महीने में नई आमदनी न आई, तो उसे यह नगर ही छोड़ के भागना पड़ेगा।···बड़े भैये का तर्क है कि गरीब आदमी को रुपया कमाने के लिए सब कुछ करना चाहिए। पापी से पापिन मिलेगी, अपना क्या जाता है। इसे दलाली क्यों माना जाय? राज-नीति और ब्यौपार में ये सब चलता है, बड़े-बड़े करते हैं। सदा से होता आया है। ···मगर नहीं गले उतरती ये बात, आत्मा गवाही नहीं देती। इतना आलीशान

देश देख के आ रहे हैं अभी इतने ऊंचे-ऊंचे विचार उदय हुए थे वहां।

मगर रुपया तो चाहिए ही। रुपये के बिना धन्धा कैसे होगा? वरना फिर वही फटीचर क्लर्की करनी पड़ेगी। उद्योगपुरी में रेस्ट्रां खोलना शहीद स्मारक से भी अच्छा रहेगा।⋯ क्या मौके की ज़मीन है, क्या ही अच्छी आमदनी होगी वहां पे! दो-चार खोंचे वाले ही तो बैठे हैं, मक्खियां भिनभिनाती हैं। बाबू लोग जरूरत भी अनुभव करते हैं, मजदूरों-कारीगरों का काम तो चल भी जाता है, पर उन्हें यदि अच्छी चाय और जल-पान मिले तो दौड़े चले आएंगे। सब मिल के ढाई-तीन हजार मजदूर होंगे।—फिर तो उनकी यूनियनें भी होंगी, और उनके नेता भी होंगे।⋯

विचारों के मंथन से लच्छू को एक नई सूझ मिली। सोचने लगा कि जब तक इन बड़ों से अपना ठेंगा न पुजवाऊंगा तब तक काम न बनेगा। "इनकी यूनियनों के नेताओं का पता लगाओ हर्रो। हारे जुआरी का दांव है, सौ डेढ़ सौ इन लोगों पर भी खरच करके देख लूं। लगा तो तीर, नहीं तुक्का तो है ही साला।"

और तीर चल गया। कालीन फैक्टरी के यूनियनपति श्री 'तूफान' ब्रिजबासी पट गए। दो-चार ही दिनों में खासी दोस्ती हो गई। रूस के बयान हुए; लच्छू के पास यही तुरुप का पत्ता था। दो-एक दिन रम की बोतलें भी खुलीं। ह्यूम पाइप, साइकिल उद्योग, बिजली उद्योग, प्लास्टिक रेडियो, कांच आदि उद्योगों के आठ-दस यूनियन अधिकारी हाथ में आ गए। एक दिन खूब पिलाकर लच्छू ने लक्चर गर्माया: "भाइयों, ये साले पूंजीपति एक गरीब आदमी को उठने नहीं देते। कहने को रेवती बाबू ने लघु व्यापार सहायता संघ और उद्योग बैंक खोल रखा है, पर मदद उसी की करेंगे, जो साला उन्हें लौंडिया सप्लाई करे। और कहने को हाजी साहब अपने हैं, पर उनके खोखा मियां भी अब सातवें आसमान से बातें करते हैं। मैंने सोचा कि समाजवाद में आज जो असली बड़ा आदमी है, जो हम गरीबों का सच्चा खुदा और रहनुमा है, वो आप लोग यानी यूनियन के नेता लोग ही हैं। मैं आपको सच्चा और साक्षात् भगवान मानकर आपके आगे सिर झुका के अपनी झोली फैलाता हूं। मुझे रोजी दीजिए। मैं आपके लिए उद्योगपुरी में एक रेस्ट्रां खोलना चाहता हूं।"

नशे की रंग-मौज में यूनियन नेता अपने शरणागत पर कृपालु हो गए। 'तूफान' साहब ने तूफानी लेक्चर दिया और दूसरे ही दिन से एक केण्टीन की मांग भड़कने लगी। दस-पन्द्रह दिनों में जोर बंध गया। कई यूनियन वालों ने मिलकर एक सार्वजनिक सभा की, जिसमें कामरेड लच्छू भाई का सम्मान हुआ, उनसे रूस के संस्मरण सुने गए और उन संस्मरणों में कामरेड लच्छू भाई ने स्वाभाविक रूप से रूस के मजदूरों का स्वर्गोपम चित्र खींचा और रेस्त्रां की आवश्यकता बतलाई। अमीर लोग उम्दा चाय पिएं और मजदूरों के लिए मक्खियां भिनका नाश्ता और सड़ी सी चाय? इंकलाब जिंदाबाद! हाजी और राधेरमन दोनों ही के लिए बैठे-ठाले और अचानक ये सिरदर्द आ गया एक दिन सामूहिक हड़ताल भी हुई! उसमें 'लच्छू भाई' 'लच्छू भाई' एक नये नाम की धूम मची। दोनों ही उद्योगपति समझते थे कि यह आन्दोलन स्वार्थ का है, और दोनों ही की यह नीति थी कि टुकड़ा फेंक मुंह बन्द करना चाहिए; रकम मामूली मगर सिरदर्द बड़ा है! रुप्पनसुत बीरचन्द-मुलायमचन्द दोनों ही अपने-अपने खेमों में लच्छू भाई का मामला ठीक करने का जस लूटने के लिए आगे बढ़े। लच्छू भाई जीत गए। 'राधेरमन उद्योग' के लाला

रेवतीरमन ने पांच हज़ार की रकम अपने सहायता फंड से दी और पांच हज़ार अपने इंडस्ट्रियल कोआपरेटिव बैंक से चार प्रतिशत सूद पर दिलवाए। हाजी के अवैध पुत्र खोखा मियां भी मजदूरहिताय निष्काम मदद करने को अब राजी हो गए। एक केन्द्रीय प्लाट लच्छू को दे दिया गया। यूनियनों के प्रतिनिधि नये जलपान उद्योग 'पैराडाइज' के डायरेक्टर बने। लच्छू ने मुनाफे का कुछ भाग मजदूरों को देकर काम बना लिया। रेस्त्रां का एक हिस्सा मजदूरों के लिए, दूसरा बाबुओं और बड़े आदमियों के लिए बनाया गया। चूंकि रुपया राधेरमन का था इसलिए आइसक्रीम प्लांट और काफी प्लांट आदि उन्हीं की मार्फत आया, उन्हीं के आदमी अधिकतर नौकर रक्खे गए। एक हर्रो को लच्छू ने अवश्य खपा लिया। सन् इकसठ के अन्त तक लच्छू की गाड़ी चल निकली। 'पैराडाइज' के उद्घाटन के दिन, रमेश, रानी, बड़े भैंये, माया भाभी, मां, बाप, कम्मी, रुप्पन, बैजू लाला, गोडबोले वैदजी आदि सभी आए थे।

लाला बैंजू बोले : "तुम्हाई तरकीब हमाई तरकीब से अच्छी रही लच्छू। बाइज़्ज़त बढ़े हौ बेटे, पर अब देखना है कहां तक बचते हो।"

"मैं बच जाऊंगा बाबा।" लच्छू जीत की खुशी में जोश से बोला।

"अरे बेटा, व्यासदेव जी तक लिख गए हैंगे कि पैसा बिना तिकड़म और बेईमानी के बढ़ ही नहीं सकता।"

लच्छू कुछ कहने जा ही रहा था कि उसके पिता बाबू सतनारायन बोल उठे : "तो ये ससरा कौन कम बेईमान और तिकड़मी हैगा। मैंने इसीलिए सबका माया-मोह त्याग दिया है। लौंडिया ससरी सब मेरे सन्त सुभाव पर गईं और लौंडे तीनों के तीनों साले अपनी महतारी पे गए हैंगे। आज जाने कौन से पुन्न उदय भए कि लड़के ने मिठाई खिलाई, नहीं तो साले एक-एक पैसे की बीड़ी को तरसाते हैंगे हमें।"

बाबू सतनरायन की बातों से लच्छू चिढ़ गया, उत्तर तो न दिया पर मुंह बिगाड़कर चला गया। लाला बैजू सत्तो बाबू को दिलासा देने के लिए बोले : "अरे भैंये, इन्हीं सबकी वजह से अष्टग्रही की प्रलय आय रही हैगी। सुना, बड़ा भारी जोग है, महाभारत के जमाने में आया रहा।"

"अरे आने देव चाचा। हम तो माया-मोह त्याग ही चुके। सबेरे अपने दफ्तर गये और रात में सन्त-सम्मेलन हुइ रहा है सो वहां साधू-महात्मा के उपदेसों में मन रमाया। भाड़ में जायें लड़के-लड़कियां और उन्हें पैदा करनेवाली ससरी··· हरामज़ादी···जिन्दगी चौपट हुई गई इस ससरी के मारे···"

बाबू सतनारायन बड़बड़ाते हुए आगे बढ़ गये। सर्दी तेज जी और उन्हें सन्त-सम्मेलन जाना था।

सर्दी कड़ाकेदार पड़ रही थी, हवा का तीखापन हड्डियों तक में बिंधा जा रहा था। लोग कहते थे कि अष्टग्रही आने से पहले का चमत्कार है, ताकि सब सचेत हो जायं और धर्म-कर्म करें। सन्त-सम्मेलन में अनेक सन्त-संन्यासियों के धार्मिक प्रवचन सुनकर भीड़ लौट रही थी। इस नगर में, दूसरे नगरों में, गांवों में सर्दी के मारे सैंकड़ों निर्धन मनुष्य, हज़ारों ढोर, पशु-पक्षियों के मरने की खबरें नित्य आ रही थीं। सैंकड़ों विषधर नाग ऐसे ठिठुरे कि जिन्हें पकड़ते सिद्ध संपेरे

भी घबराते थे, उन्हें बच्चों ने लाठियों से पीट-पीटकर मार डाला। सरकार की ओर से चौराहे-चौराहे पर आग तापने के लिए लक्कड़ सुलग रहे थे। यह सब था, मगर सन्त-सम्मेलन के मजमे में कमी नहीं आई थी। अनेक बड़े झुण्डों में और टोलियों में बंधकर भी भीड़ का सामूहिक रूप तब तक विच्छिन्न नहीं हुआ था। पण्डाल के तीन द्वारों से पतली लकीर की तरह निकलकर भीड़ सड़क पर एकाकार फैलती हुई ऐसी शोभायमान लग रही थी, मानो त्रिपथगा गंगा हिमालय की सकरी गैलों से निकलकर मैदान में आ रही हों। गैस की लालटेनों के सुस्कारे छोड़ते हुए व्यापक प्रकाश, कारबाइट के कुप्पों की सधी नोकीली बदबूदार लौ अथवा मिट्टी के तेलवाले कुप्पों की लपलपाती लौ लगाए, गजक-मूमफली आदि के खोंचेवाले अपनी रात की आखिरी बिक्री के लिए हांक मार रहे थे। सम्मेलन की समाप्ति पर माताओं द्वारा जगाये हुए बच्चे सड़कों पर नींद के नशे में झूमते, झिड़की खाते, रोते अथवा जमुहांइयां लेते घर चले जा रहे थे। स्त्रियों और पुरुषों की टोलियां धार्मिक प्रवचनों अथवा उन पर होनेवाली शंकाओं पर जोशीले कानूनी बहस-मुबाहसे करती अपने-अपने महल्लों की ओर बढ़ रही थीं।

रेलवे आफिस के डिस्पैचर-क्लर्क, प्रेमू, लच्छू और बिरजू के पिता बाबू सत्यनारायण उर्फ सतनरायन उर्फ सत्तो बाबू मूमफली के छिलके फेंकने के साथ-साथ एक मींगी भी धोखे में गिरा गये, इससे उनके दरिद्रतात्रस्त मानस को तड़पने का एक बहाना मिल गया। दूसरी मींगी खट से मुंह में डालकर चुभलाते हुए बोले: "हमें तो भाई जम गयी। स्वामी मुक्तानन्द ने करोड़ों रुपये की बात कह दी। मल-मूत्र के संग इस्तरी के गरभ में रहकर जनम लेनेवाली मानुख जून से बढ़कर निखिद्ध इस संसार में और कुछ भी नहीं है। सो उसको उत्तम बनाने के हेतु से बन में बैराग लेना चाहिए। लाला केसो, जरा दो-चार मूमफलियां और बढ़ाना इधर। हां भइ मास्टर साहब, तुम्हारी क्या सम्मती है, चलते हो तपिश्या करने ?"

लाला केशवकुमार गिनती की चार मूमफलियां बाबू सत्यनारायण के हाथ में रखते हुए बोले : "भइ हम तो राजी हैं। तपिस्या होय चहै न होय, बाकी जंगलों में चले जाने से यह माया-मोह तो छूटेगा ही ससरा।"

"अरे जब इत्ते लोग यहां का माया-मोह छोड़कर जंगलों में पहुंचेंगे तो वहां भी राशन की समस्या आएगी, तब क्या करोगे ?" मास्टर जगदम्बा सहाय ने मुस्कुराते हुए कहा : "औ' जब राशन की समस्या पड़ेगी, खेती-पाती करने लगौगे तो माया-मोह का क्रम फिर से चल पड़ेगा—फिर जैसा जंगल तैसा घर। अन्तर—"

"अन्तर-फन्तर कुछ नहीं, माया-मोह की जड़ पेट नहीं, इस्तरी है।" बाबू सत्यनरायण ने 'इस्तरी' कहते हुए अपनी दोनों हथेलियों से कर्री मूमफली को दबाया, फिर बोले : "सिन्धू जी महाराज ने क्या कहा था कि, 'द्वारम् कमाकम कि नरकस्स नारी' अर्थात् नारी नरक का द्वार है बाबू जी। इसी ससरी नारी के कारन हमारे ऊपर भी ये अष्टग्रही में प्रलय आवैगी, देख लेना।"

बगल से कुछ औरतें जा रही थीं, एक भक्तिन सुनकर तड़प उठी, बोली : "करतूत सब मर्दन की औ' परलै हमारी वजह से आवैगी। झूठ की हद है।" औरतें इस विषय को लेकर चेंचा-मेंची करती हुई आगे बढ़ गयीं। लाला केशव

मूमफलियां चबलाते हुए मुस्कराकर बोले : "सत्तो बाबू, अब बोलो, मैं कहता हूं जवाब नहीं सूझैगा।"

अध्यापक मिश्रीलालजी बोले : "अरे बुढ़िया की बात का जवाब इन्हें सूझ जाएगा केशोकुमार, जवान होती तो न सूझता।" कहकर अध्यापक जी हंस पड़े। लाला केशव और मास्टर साहब ने उनका साथ दिया। गली के धुंधले प्रकाश में इनके पीछे आती हुई टोली में भी दो-एक हंसी के स्वर सुनाई दिये। बाबू सत्तनरायन ताव खा गये, बोले : "मेरी भगती कच्ची नहीं है बाबूजी। माया-मोह साले को छोड़ते कितनी देर लगती है मुझे। इस्तरी-बच्चों में धरा क्या है? सब अपने-अपने स्वारथ के कारन हमें घेरते हैं। अरे हम घिर जायं तो मूरख, नहीं तो सन्त। इस्तरी-बच्चों से मुक्ती पाने का नाम ही मोच्छ है। देखो, आज हमारे लच्छू ने रेस्टोरां खोला, हम गये। पर उसके ठाठ देखके हमारे मन में माया-मोह न उपजा। मिठाई खाई और संत-सम्मेलन में आ गये। यही तो मोच्छ है।"

अपने प्रवचन से बाबू सत्यनारायण स्वयं अपने मन में तथा कुछ-कुछ अपनी टोली के मनों में भी सन्त पद पर विराजमान हो चुके थे कि तभी लाला गुंदूमल बौहरे के नायब मुखतार सुमेसरदीन ने पीछे से ललकारा : "अरे सतनाराइन बाबू, ठैरना तो। आठ-दस दाई तुम्हारे घर का चक्कर कर आया हूं।"

सुमेसरदीन अपने एक देहाती रिश्तेदार के साथ सिनेमा देखकर लौट रहे थे, गली में दस कदम आगे बाबू साहब की आवाज़ सुनकर उन्हें वही हर्ष हुआ, जो बाज को चिड़ियों की चहचहाहट सुनकर होता है। सुमेसरदीन अपने देहाती स्वजन को अपना रौबीला रूप दिखाने का लोभ संवरण न कर सके। बाबू सत्यनारायण को पुकार ही बैठे।

बाबू सत्यनारायण को सांप सूंघ गया। महाजन के कारिन्दे महाजनों से अधिक बेरहम होते हैं। अपने मालिक के कर्जदारों से अपने आगे नाक रगड़वाने में उन्हें सच्चा सुख प्राप्त होता है। बाबू सत्यनारायण को अकेले में सुमेसरदीन या किसी भी तगादगीर की दाढ़ी पर हाथ फेरकर गिड़गिड़ाने और हाथ जोड़ने में अब आपत्ति न होती थी, परन्तु इतने लोगों के आगे वे अपनी हेठी नहीं होने देना चाहते थे। बाबू सत्यनारायण फौरन ही इष्ट-मित्रों से अलग ही पीछे लौटते हुए खीसें निपोरने लगे। उनकी इच्छा थी कि नायब मुख्तार की बांह पकड़कर अलग ले जाकर उससे चुपके-चुपके बिनती-चिरौरी कर लेंगे। सतनरायन बाबू छह बेटियों, तीन बेटों के बाप; उमर भर बिटियों के ब्याह के पीछे ऋण से लदे रहे। बरसों रुप्पन लाला के कारिन्दों की चिरौरी की, अब दूसरे महाजनों और उनके कारिन्दों की करते हैं। पिछले पांच महीनों से वे लाला गुंदूमल का ब्याज नहीं दे पा रहे हैं। दूसरे महाजन भैरों गुरू का तकाजा बहुत बढ़ गया था। वे इनके घर पर आकर गाली-गुफ़्तार भी कर गये थे। आबरू बचाने के लिए बाबू साहब पिछले पांच महीनों से भैरों गुरू को सन्तुष्ट करने का किंचित् प्रयत्न कर रहे थे और लाला गुंदूमल के कारिन्दों से कन्ने काट रहे थे। इस समय जब कि माया-मोह से मुक्त होकर उनके मन पर ज्ञान-वैराग्य का नशा छाया हुआ था, तब बाबू सत्यनारायण को यदि गुंदूमल के मुख्तार का इस तरह बोलना खल गया तो कोई आश्चर्य की बात न थी। एक बार तो भेजा इतना घूमा कि पलटकर मुख्तार को दो जूते लगाने को जी चाहा, मगर फिर कुछ सोच-समझकर वे रुक गए। मुख्तार से गिड़गिड़ाहट और खुशामद का स्वर साधा : "हें: हें:, मुख्तार

साहब हैं। अबकी बड़े दिन बाद दर्शन—"

"दस दाईं दौड़ चुका हूं तुम्हारे यहां, अच्छे भलेमानस मिले हैं हमें।" मुख्तार ने अपनी आवाज़ चढ़ाते हुए कहा।

बाबू सत्यनारायण गिड़गिड़ाकर धीरे से बोले : "चार भलेमानसों का साथ है मुख्तार साहब, जरा धीरे—"

"आये बड़े भलेमानसों के साथवाले। जो भलेमानस होते तो दूसरे का उधार न चढ़ाते। ससुर तीन महीने का ब्याज पहले का बाकी औ' तीन महीने ये फिर चढ़ गये—"

"धीरे—मुख्तार साहब, भरे बाज़ार मेरी आबरू न लें।" बाबू सत्यनारायण कड़कड़ाते जाड़े की रात में भी आबरू बचाने के फेर में पसीना-पसीना हो गए। उधर मुख्तार अपने देहाती सम्बन्धी को अपना रौब दिखलाने के लिए ताव पर चढ़ता ही चला जा रहा था। उसकी गरज-चमक और अपमान भरी वातें सारी गली को बाबू सत्यनारायण की विपत्ति का परिचय देने लगीं। उनके साथी कुछ ही दूरी पर खड़े हुए थे। पीछे से भी गली में भीड़ आ रही थी। मुख्तार की शेखी भरी चिल्लाहट अपनी ओर सबका ध्यान आकृष्ट कर लेती थी। बाबू सत्यनारायण अपराधी की भांति स्तब्ध, सिर झुकाये खड़े मन ही मन तड़प रहे थे। पीछे से तीन-चार स्त्रियों का झुण्ड आया। एक स्त्री नायब मुख्तार की आवाज़ सुनकर ठिठकी, पुकारा : "सुमेसर है क्या?"

सुमेसरदीन नायब मुख्तार का रौब थम गया। चौंककर पूछा : "कौन? अच्छा-अच्छा पुरतानीजी हैं।"

पुरोहितायनजी बोलीं : "हां, कथा सुन के आय रहे हैं। किसपे चिल्लाय रहे हो भैया, कोई तगादे-उगादे वाला है?"

"हां, यही हैं सतनराइन झम्मनटोले वाले?"

बाबू सतनरायन अब न सह सके। चेतनाशून्य होकर चिल्ला उठे : "अबे साले तो क्या तेरे बाप से कर्जा लिया था? साला भरे बाज़ार में इज़्ज़त लेगा? मैं तुझे और तेरे बाप को खोद के गाड़ दूंगा।" बाबू सत्यनारायण का झपाटेदार हाथ उठा, सुमेसरदीन ने लपककर रोका और दोनों में गुत्थम-गुत्था हो गई। गली के फर्श पर दोनों के जूतों की घिसटन रगड़ने और दोनों मुखों के उच्छ्वास भरे गाली-विस्फोट होड़ लेने लगे।

"होगा सत्तो बाबू, जाने भी दो।" मित्र-मण्डली इनकी ओर बढ़ी। बाबू सत्यनारायण अब आबरू-भय से मुक्त होकर क्रोध की अटारी पर चढ़ चुके थे।

मुख्तार भी अकड़ा परन्तु इस समय वह सत्तो बाबू से जीत न सका, क्योंकि वह उसे जमीन पर गिराकर उस पर चढ़ बैठे थे। मित्र-मण्डली ने दोनों को खींच-कर बीच-बचाव कर दिया। नायब मुख्तार का देहाती सम्बन्धी भी उन्हें झाड़-पोंछकर उठा ले गया।

तमाशा खत्म होते ही गली फिर अपनी चलन पर आ गई। बाबू सतनारायन और उनकी मित्र-मण्डली के मनों में अब फिर से ब्रह्म मिथ्या और जगत् सत्य भासित होने लगा था। कई ओर से निःश्वासों के साथ यह उद्गार फूटने लगे कि जिसकी आबरू भगवान जब तक रख लें तभी तक समझो, वरना यों तो सभी अपनी धोतियों में नंगे हैं।

दो गलियों आगे तक मित्र-मण्डली चुपचाप चलती रही। लौटती भीड़ के

रेले प्रायः आगे बढ़कर इनके लिए अलोप हो गए थे, पीछे भी सूनापन ही चल रहा था कि एक टोली के ठहाके सुनाई पड़े। मास्टर जगदम्बा सहाय को सामूहिक मौन तोड़ने का अवसर मिला, बोले : "ये लीजिए, हमारी नई पीढ़ी भी अपने धरम-करम से वापस लौट रही है। क्या शोहदापन बढ़ गया है आजकल के लड़कों में कि, शिव-शिव। ये देखिए, सीटियां बजाते, भद्दी बातें बकते हुए चले आ रहे हैं। इनसे पूछो कि अरे हरामजादो, यह नहीं सोचते कि आसपास जितने हैं, सब तुम्हारे ही मेल-जोल, नाते-गोते, बिरादरी-व्यवहार के लोग रहते हैं। तुम्हारी मां-बहन-दादियों के कानों तक यह तुम्हारी बेहूदगियां-हरमजदगियां —"

"बात बस एक श-द में आय गई मास्टर साहब, यह सब हमारी औलाद हैं, और बकौल आपके हरामजादे हैं। तब दोष किसका है? हः हः हः।" अध्यापक पण्डित मिश्रीलालजी की बात ने मित्र-मण्डली के हर चेहरे पर मुस्कान खिला दी और बात की तड़प बाबू सतनरायन के कलेजे से पीर बन फूटी, बोले : "हां साहब, हमारे हैं औ' हरामजादे हैं, बात बिलकुल सही है। अजी अब बेटे बाप से कहते हैं कि साले तेरा एहसान क्या। हम तेरी इच्छा से नहीं आये, एक नेचरल प्रॉसेस से आये है। उसमें बाप साले का क्रेडिट ही क्या होता है। जब खुद ही यह कहते हैं तो हरामजादे तो हुए ही सबके सब। और इन्हीं हरामजादों के पीछे ससरे महाजनों की, उनके मुनीम-कारिन्दों की, आगा-पठानों की—अजी, क्या कहें—धोबी-नाई तक की गालियां खानी पड़ती हैं। और हरामजादे कहते हैं कि बाप ने एहसान ही नहीं किया। बस, मां की महिमा है साली की। जीवन क्या है मास्टर साहब, आपसे सत्त कहता हूं, ग्यानी महात्माओं की चरण रज लेके आ रहा हूं, झूठ नहीं बोलूंगा — मैं कहता हूं, हमसे-आपसे बढ़कर निष्काम कर्मी इन लाखों उपदेश देनेवाले ग्यानी महात्माओं में भी नहीं मिलेंगे। हम ससेरी बीबी-बच्चों के लिए दिन-रात हाय-हाय करते जीवन खपा देते हैं। साहेबों, बड़े बाबुओं की, जिस-तिस की, ससरे चपरासियों तक की रौब-फटकार सुनके घर आओ तो घर सा घर नहीं लगता। फिर अपनी जिन्दगी ही क्या रह गई। जो कुछ रही इन बीबी-बच्चों की रही। हम जीते हैं तो निष्काम जीते हैं।"

लाला केशोकुमार बोले : "सतनरायन बाबू, आपकी बात दिल को लगती तो जरूर है। परमात्मा न करे, किसी के पूत कपूत हों या भार्जा कुभार्जा हो, मगर हर एक का भाग तो ऐसा नहीं होता।"

अपनी गृहस्थी की ओर से सुखी सौभाग्यवान अध्यापक जी बोले : "मैं लाला जी की बात का समर्थन करता हूं। भाग्यम् फलति सर्वदा। अपने-अपने संस्कार, अपने-अपने कर्म-व्यवहार की बात है भाई।" अध्यापक जी ने बात इस शान से कही, मानो नक्द चमचमाता हुआ रुपया खन्न से फेंका हो। लड़कों की गप्पें और हंसी भी अब समीप ही आ पहुंची थी।

मास्टर जगदम्बासहाय ने लड़कों की टोली को निकट आया जानकर अपने मास्टरी अनुभव का मनोवैज्ञानिक जाल फेंका; ऊंचे स्वर में बोले : "अरे यार, हम तो कहते हैं कि लड़कों ही को क्यों कोसते हो? कमजोरियां क्या हम में नहीं हैं? कुछ भाग्य होता है और कुछ स्वयं अपनी करनी का फल भी होता है। आपने अपने बच्चों को नैतिक बल दिया ही नहीं—हम तो आप ही दंभी, मक्कार, चाटुकार और कमीने हैं। तब किससे कहें और क्या कहें?"

"मास्टर साहब जिन्दाबाद। मास्टर जगदम्बासहाय की जय।" पीछे आते

हुए लड़कों ने मास्टर साहब की जोशीली स्पीच के समर्थन में नारेबाजी के उद्गार फोड़े। बड़ों की मण्डली छोटों को रास्ता देने के लिए गली में एक ओर सिमटकर और अकड़कर खड़ी हो गई। लड़कों में बाबू सतनरायन का छोटा पुत्र बिरजू भी था। उसको देखते ही बाबू साहब की त्योरियां चढ़ गईं, मुंह बिगाड़कर बोले : "बाइसकोप देखकर लौट रहे हो नवाबजादे ? मेरी ससुरी बीड़ी के बण्डल के लिए पैसे नहीं थे और तेरे सिनेमे के लिए कहां से निकल आये रे ?"

आधी बांह की कमीज पर एक पुराना पुलोवर पहने दोनों हाथ बगलों में बांधे, दुबले-पतले किशोर बिरजू की त्योरियां चढ़ गईं, अकड़कर बोला : "अम्मां से लेकर गया था। उन्हीं से पूछिएगा। सरेआम मेरी इंसल्ट करने का आपको कोई हक नहीं।" साथी लड़के 'अमां होगा भी, क्या बकते हो यार' इत्यादि कहते हुए बिरजू को आगे घसीट ले गये।

बड़ों की मण्डली में एक मिनट के लिए फिर सन्नाटा छा गया। दस कदम आगे जानेवाली लड़कों की टोली में किसी की बातों में दो बार 'फादर-फादर' सुनाई पड़ा और उसके साथ ही बाबू सतनारायन के बेटे बिरजू का उत्तर भी : "होंगे साले फादर। ये हमारे लिए कर ही क्या देते हैं ?" लड़कों की बातें आगे बढ़ गईं, बाबू सत्यनरायण का गुबार दुबारा भड़का, जोर से बोले : "सुन रहे हैं आप लोग - "

"अमां होगा भी सत्तो बाबू। मैं कहता हूं अपनी इज़्ज़त अपने हाथ में होती है।"

"ठीक कहते हो मास्टर साहेब। हमारे बड़कऊ हैं, नये फैशन के लड़के हैं। बहुरिया के साथ बाहर घूमते-घामते हैं, सब खाते पीते हैं। हमारी वाइफ को बुरा लगता है। हम कहते हैं कि तुमसे क्या मतलब। हमारे-तुम्हारे जमाने में ऐसे चलन नहीं थे, इनके जमाने में हैं···" कहते-कहते लाला केशोकुमार का स्वर एकाएक नीचा हो गया, कहने लगे : "इसी आज़ाद जवानी के रागरंग में हम तुम क्या रंडियों के पीछे दौलत बरबाद नहीं करते थे ? मैं कहता हूं कि उससे तो इन लोगों का पीछा छूटा। अरे जवानी में सबके दिलों में अरमान कुछ और ही हुआ करते हैं। उनमें जो मां-बाप टोक-टाक करें तो ससुरी बुराई पैदा होती है। हम कहते हैं, भई अपने रस्ते जाओ मौज करो, बाकी कोई पराई बदनामी घर में मत लाओ, छुट्टी भई। क्यों पंडज्जी ठीक कहता हूं ना ?"

अध्यापक पंडित मिश्रीलालजी एक निःश्वास ढालकर बोले : "भैया तुम्हारी बात का निर्णय करना बड़ा कठिन है। इस समय जमाने का एक रंग नहीं है, कहीं मां-बाप नालायक हैं तो लड़के लायक हैं, और कहीं-कहीं ये भी है कि लड़के और माता-पिता दोनों लायक हैं, मगर आपस में मत-मतान्तर है। अब आप ही बताइए, पुत्ती गुरू के लड़के रमेश में आप कोई दोष निकाल सकते हैं ?"

मास्टर जगदम्बासहाय बोले : "हां यार, पंडितजी जमाने का रंग एक-सा नहीं। न अच्छाई में, न बुराई में।"

जगदम्बासहाय बोले : "अरे भाई ये तो अब चलेगा ही, कौन रोक सकता है। पुत्ती गुरू के लड़के ने अंतरजाती ब्याह किया कि नहीं ? बड़े-बड़े लोग सम्मिलित हुए।"

"हम तो कहते हैं कि हमारी लड़कियां साली ऐसी शादी कर लेतीं तो हम दहेज देने से तो बच जाते। उनकी शादियों में, प्रेमू के ब्याह के फेर में, पोते की

बिमारी में तो ससरा इतना कर्जा लिया जिसके कारन रोज जूते खाता हूं, और उसके बाद भी बाप साले का कोई अहसान नहीं। प्रेमू हैं सो उनकी बीबी घर में अपना चूल्हा-चौका अलग बनाये हैं। प्रेमू चुपचुपाते अपनी अम्मां के हाथ में दुइ-चार-दस-पांच रुपै कभी-कभी धरते ही रहते हैं। लच्छू है, सो जब रूस गये थे तो शतरंज का डिब्बा जरूर लाये हमारे लिए, बाकी अब होटल में कमाएंगे। उनकी कमाई का भी एक धेला नहीं जाना मैंने। हां, अपनी मां के हाथ में कुछ धरा होय तो मुझसे मतलब नहीं। इनकी मां को—साली।" बाबू सत्यनारायण के मुख से निकली गालीयुक्त मानसिक बिफरन ने सबके अन्तर की कोमलता को मार्मिक स्पर्श भी दिया और कड़वाहट भी घोल दी।

"कुंडी खोलो।" अध्यापक मिश्रीलाल अपने घर की कुंडी खटखटाने लगे। दूसरे लोग राम-राम पलगी करके आगे बढ़े। लाला केशोकुमार अपनी गली में मुड़ गये, बाबू सत्यनारायण और मास्टर जगदम्बासहाय आगे बढ़े। दस-बीस कदम गुमसुम चले जाने के बाद मास्टर जगदम्बासहाय ने एकाएक सत्यनारायण बाबू के कंधे पर हाथ रखकर प्यार से कहा : "देखो सत्तो, लड़कों से बात-बात में इस तरह से डांट-डपट न किया करो भैया। अब हमारे-तुम्हारे जमाने नहीं हैं। राह चलते उनकी इज़्ज़त लोगे तो वो तुम्हारी इज़्ज़त क्या रक्खेंगे ?"

"अजी हमारी इज़्ज़त रही ही कहां ससरी ? आफिस में अफसर सबके सामने हमारे जूते लगाते हैं। तगाददीर सैकड़ों दफे साले भरे बाजार मेरी मूंछें नोच चुके हैं। भाड़ में जायें सब साले, बाहरवाले भी और घरवाले भी। जब मेरी ही इज़्ज़त नहीं तो मैं किसी ससरे की परवाह क्यों करूं ?" बाबू सत्यनारायण का घर आ गया था, उन्होंने मास्टर साहब से जैरामजी की, मास्टर जगदम्बासहाय आगे बढ़ गये।

घर के दरवाज़े पर सत्यनारायण बाबू यों खड़े हुए, जैसे पैरोल पर छोड़ा गया कैदी फिर जेलखाने के फाटक पर आकर खड़ा हुआ हो। कुण्डी खटखटाई, दोबारा ज़ोर से खटखटाई। गली में एकदम सन्नाटा हो गया था। दिन-भर का थका हारा, थोड़ी देर पहले ही धमाचौकड़ी से चुटैला शरीर अब दरवाजे पर आकर चारपाई पर फौरन ही पड़ जाने के लिए व्यग्र हो उठा था, खींचकर आवाज़ निकाली : "अरे बिरजू, कुण्डी खोलो।"

अन्दर से किसी की आवाज़ न आई। बाबू सत्यनारायण थककर और उपेक्षा से खीझकर कुछ देर तक ज़ोर-ज़ोर से कुण्डी बजाते रहे, फिर बिरजू, प्रेमू, उनकी अम्मां, बहू, पोते, पोती, सभी को एक स्वर में पुकारते चले गये। चिढ़-चिढ़कर स्वर ऊंचा किया, पर अन्दर से कोई न बोला—"अरे मर गये सबके सब ? सांप सूंघ गया तुम सब लोगों को ? अरे कुण्डी खोलो।"

पौन घंटा बीत गया, कोई न बोला। पुराने ऊनी कपड़ों को भेद कर कड़कड़ाती सरदी की रात बाबू सत्यनारायण की सूखी हड्डियों को छेदनी लगी। सिर की थकी नसें क्रोध और चिड़चिड़ेपन की झनझनाहट सह नहीं पाती थी। इसलिए बार-बार गुस्सा बढ़ने के साथ ही उनकी विचार-शक्ति लोप होने लगी। उत्तेजना में घर के दरवाजे को धमाधम लात से धड़धड़ाने लगे। घरवालों के लिए मल्लाही गालियां और कोसने इस तरह से फूट निकले, मानो परायों के लिए बक रहे हों। पड़ोस के सन्नू बाबू की आवाज़ आई : "अरे दरवाजा नहीं खुल रहा क्या ?—अरे बिरजू, ओ बिरजू—"

बाबू सत्यनारायण के घर में मानव-स्वरों की लहर दो-तीन ओर से उठीं। सन्नू बाबू का स्वर फिर सुनाई दिया : "अरे कुण्डा खोलो भाई। बहुत देर से तुम्हारे बाबू पुकार रहे हैं बिचारे।"

प्रेमू ने अपने कमरे से आवाज़ फेंकी, बिरजू ने बड़े भाई से कहा : "तौ तुम्हीं क्यों नहीं खोल आते ?" "हम नई जाते हैं, अम्मां से कहो खोलें।"

पांच-सात मिनट यही निश्चय करने में लग गये और अन्त में बाबू सत्यनारायण की पत्नी लड़कों पर झुंझलाती हुई दरवाजा खोलने चलीं : "रात में भी निगोड़ा चैन नहीं। अभी एक आओ, अभी दुई आओ, किसी को सनीमा सूझत है, किसी को कथा-भागवत सूझत है मरी। मर जाएं तो पाप कटै, अरे हां-नहीं-तो।"

कुण्डी खुली। बाबू सत्यनारायण ने घर के अन्दर प्रवेश किया और दरवाजा बन्द करते ही गर्माना शुरू कर दिया। पत्नी का मर जाने वाला अंतिम कोसना उन्हें व्यक्तिगत रूप से अपने लिए लगा था। कुण्डी में कील अटकाते हुए बोले : "हमरे मरने की तुम्हैं ही तो सबसे ज्यादा खुशी होयगी। औ' हम मरैंगे तो तुम नहीं रांड हुइ जाओगी ?"

'देखौ लाख बार कह दिया, सिर की गाली न दिया करौ।"

"अरे भाड़ में गया सिर। ऐसी ससरी दलिद्दर पाले पड़ी हमरे कि जिन्दगी चौपट हुइ गई। ससुर हियां पैसे-पैसे की बीड़ी के लिए तरसें औ' हुआं आप गुलछर्रे उड़ावें, लड़कन का बाइसकोप देखै के लिए भेजैं।" बाबू सत्यनारायण अपनी कोठरी में जाकर कुरता-टोपी-चदरा आदि खूंटी पर टांगकर अपने फटे लिहाफ में घुसने तक टिर्र-टिर्र करते रहे। उनकी पत्नी टाट के झीने पर्दे पड़े हुए दालान में पुआल बिछाकर सो रही थीं। पति की तावबाजी पर उन्हें भी ताव आया, क्योंकि जिस तरह उनके पति का यह ख्याल है कि उनके आने से उनकी तकदीर चौपट हो गई, उसी प्रकार पत्नी की भी यह धारणा है कि यदि बाबू सत्यनारायण से उसका पल्ला न बंधा होता तो वह निश्चय ही राजरानी होती।

अपने-अपने लिहाफों में दुबकर पत्नी और पति दोनों ही अपने-अपने अंतर्क्षोभ के गोले दागते रहे; दगादगी तेज हो ठई। ज्यों-ज्यों बाबू सत्यनारायण की आवाज़, देह और सांस थकती जाती थी। त्यों-त्यों उनकी चिड़चिड़ाहट सुर पर चढ़ती जाती थी। उनकी पत्नी का भी यही हाल था, वे चाहकर भी चुप नहीं रह सकती थीं, वे सुनना नहीं सुनाना चाहती थीं। इस प्रकार दोनों ही सुनाने के नशे में बेहोश होते-होते बड़ी ज़ोर से गरमा उठे। घर भर की नींद विद्रोह कर उठी। सोलह-सत्रह बरस का बिरजू भी बाप को बकने लगा। जितना यह संयुक्त मोर्चा उनके खिलाफ होता गया, उतनी ही उनके मन में अपनी बीड़ी के लिए पैसा न पाने की बात ज़ोर पकड़ती गई। अपनी पत्नी और बच्चों के लिए उनके पास इस समय यही सबसे बड़ी शिकायत थी।

रात के सन्नाटे में बाबू सत्यनारायण के घर की कलह आस-पास के सभी घरों के लिए नींद-नाशक और झुंझलाहटकारिणी बन गई। सन्नू-बाबू के घर से आवाज़ लगी। बिसेसर बाबू के यहां से खांसी-खुर्रे और सवाल उठे। ऊपर के कोठे में सोते हुए प्रेमू और उसकी पत्नी माया को लगा कि बाबू के कारण घर की इज़्ज़त धुली जा रही है। ताव में प्रेमू बाप को गालियां देते हुए नीचे आये।

मां को सहारा मिला, बाप इससे और भी तड़पकर गरजने लगे और अंतिम परिणाम यह हुआ कि बेटे ने बाप को कसकर एक तमाशा जड़ दिया : "निकल साले घर से। निकल जा इसी दम। साला बाप बना है— निकल।" बाबू सत्यनारायण का कमजोर शरीर जवान बेटे द्वारा घसीटे जाने पर लड़खड़ा गया, वे गिर पड़े। उनकी पत्नी अब लड़ना छोड़ पति की रक्षा के लिए धाई। और पति के क्षुब्ध कंठ से रुदन-कंप भरे शोकोद्‌गार फूट निकले—"सवेरा होते ही घर का त्याग कर दूंगा साला। रोएंगे साले सबके सब—मरो साले सबके सब। अष्टग्रही टूटे तुम्हारे ऊपर। मुझे किसी का माया-मोह नहीं है।"

ढाई पौने तीन बजे रात तक सब फिर से सोये। बाबू सत्यनारायण का मन बहुत ही खट्टा हो रहा था। रोज-रोज की उनकी घर छोड़ने की धमकी सन्नाटे में स्वयं अपना ही सत्य छूने लगी—"घर छोड़कर जाएंगे कहां? मौत भी नहीं आती ससरी। मौत आय जाय तो छुटकारा मिले।" करते-करते नींद आ गई।

सवेरे से फिर वही भैरों गुरू के तकाजे, रद्धूमल के नायब मुख्तार के तकाजे, दफ्तरी फटकार। तकाजों के बचाव से गलियों और सड़कों का कतराव, यारों से दो-दो मूमफलियों का मांगना और वैराग्य के थर्मामीटर का पारा क्रमशः चढ़ना आरम्भ हुआ; रात के आठ बजते न बजते बाबू का सत्यनारायण संत-सम्मेलन में चलने के लिए अपने साथियों को घेरने लगे—"दो घंटे वहीं बैठने से माया-मोह से छुट्टी मिलती है, और तो दुनिया में कहीं भी शरण नहीं मिलती। मौत के इन्तजार में दिन कटते जाते हैं बस। अब तो अष्टग्रही की प्रलय ही का भरोसा है।"

नये वर्ष का पहला दिन। शीत लहरी मैदानों में पहाड़ जमा रही थी। धूप का नाम नहीं। फटे फर्द लिहाफ टाट पुआल और फटे सूती कपड़ों में झलकते नंगे बदन की गुड़मुड़ी मारे लाखों 'शाहंशाह बादशाह' सुबह के साढ़े आठ बजे भी अपने टूटे घरों, बरामदों या सूने फुटपाथों पर पड़े थे। हाजी नबीबख्श की कोठी के बरामदे के दाहिनी ओर सुलगते लक्कड़ों के पास भी आठ-दस लोग बैठे या लेटे हुए थे। हाजी के घर में शहर के दो ढाई सौ सम्भ्रान्तों और प्रतिष्ठितों की भीड़ थी। बाहर कीमती मोटर कारों की शानदार कतारें खड़ी थीं। बरामदे में सादी कुर्सी-मेज़ें लगाकर मोटर ड्राइवरों को चाय पिलाई जा रही थी। धूनी के पास बैठे गरीब-गुरबों तक को चाय और नाश्ता दिया जा रहा था। आज शहर के समाजवादी करोड़पति, इलाहीबख्श बावर्ची के बेटे, अल् हाजी सेठ नबीबख्श पुराने सर्राफे बाज़ार के पास से होकर उद्योगपुरी जानेवाली नई सड़क के निर्माण-कार्य का उद्‌घाटन करने जा रहे थे। एक महीने पहले महापालिका ने बहुमत से उनका प्रस्ताव पास किया था। आज उस विजय के सिर पर कार्यारम्भ का रत्न-मुकुट रखा जाने वाला था। नगर-प्रमुख, उपनगर-प्रमुख, सभासद, उच्चाधिकारी, वकील, डाक्टर, व्यापारी, राजनीतिक संस्थाओं के कुछ प्रमुख लोग, संवाददाताओं और फोटोग्राफरों के दल, हाजी साहब की शादी मगर भव्य कोठी के बड़े हाल में तरह-तरह की खातिरदारियों के हमले हंसी-खुशी से झेल रहे थे। इस जीत और इसकी मुबारकबादियों के अलावा मजमें में सिर्फ दो ही खबरें गर्म थीं—एक यह

कि सर्दी से बचाव के लिए अजायबघर के हाथियों को शराब पिलाई जा रही है और दूसरे यह कि लाला राधेरमन को तुलसी-गंगाजल दिया जा रहा है। वे अब-तब हैं। हाजी साहब ने अभी फोन पर हाल पूछा था। अब्बू मियां, नादिर मियां, खोखा मियां—तीनों साहबजादों के चेहरे खुशी और अभिमान से दमक रहे थे। अबुल हसन खां, छोटी बेगम के लख्तेजिगर; नादिर बख्श, हाजी नबीबख्श की शादीशुदा औरत के बेटे; नूरबख्श उर्फ खोखा मियां ढाके की एक बंगालिन तवायफ के बेटे तीनों ही अपने अब्बा की बरात निकाल रहे थे।

हाजी के द्वारा मीरगंज क्षेत्र की जमीनें खरीदे जाने और उस मार्ग-योजना के असफल हो जाने पर लाला राधेरमन के लड़कों ने हाजी नबीबख्श के व्यभिचार, विलास और अनीति की कमाई के प्रारम्भिक इतिहास को लेकर बड़ा घिनौना और बड़ा ही जोरदार प्रचार-अभियान चलाया था। चार-पांच महीना तक गली-गली में आवारा बच्चे ऊंचे स्वरों में 'हाजी नब्बू हैं आशिक हजारा रे।' गाते डोला करते थे। हाजी नबीबख्श बावर्ची के बेटे हैं; पहलवान शोहदों के सरगना हैं। इन्होंने नवाब 'खिन्नी चोर' का घर उजाड़ा, उनकी छोटी बेगम को अपने बस में किया, उसकी दौलत से होटल और अनाज-गल्ले का धन्धा किया; अब्बू मियां छोटी बेगम और 'नब्बू पहलवान' का अवैध बेटा है। हाजी नबीबख्श ने एक पढ़े-लिखे शरीफ और रईस, नई रोशनी के एक हमउम्र और दोस्त वकील की नौजवान बेटी को अपने जाल में फंसाकर मुसलमान बनाया, शादी की और उसे फिर दुख दे-देकर मार डाला। नादिरबख्श हाजी के उसी पाप की निशानी है। और खोखा मियां, नूरबख्श तो तवायफ की औलाद ही है।

इसमें तनिक भी शक नहीं कि हाजी का प्रारम्भिक इतिहास सच्चरित्रता के राजपत्र पर नहीं बढ़ा, परन्तु उन्होंने कभी उस पर पर्दा डालने का प्रयत्न भी नहीं किया था। सब जानते थे। लेकिन तूमार बांधकर जब उसका प्रचार किया गया तो हाजी नबीबख्श, खासतौर से उनके बेटों को कुछ दिनों तक समाज में मुंह तक दिखलाने में शर्म आई थी। हाजी की जीत यह थी कि उन्होंने अपने बेटों को अलग न होने दिया, अपने विरुद्ध न जाने दिया। आज जब उस प्रचार और सारी अड़ंगेबाजी के बावजूद राधेरमन गुट हार गया, हाजी का कलंक-गाथा भी फिर से चांद के कलंक की तरह सुहानी बन गई, तो उनके तीनों लड़कों अपने अस्तित्व के जाने-माने परिचय के साथ-साथ बाइज़्ज़त डोल रहे हैं। आज उनकी खुशी का दिन है।

इस सारे आलम में यदि कोई थका, बुझा, उदास और हारा हुआ व्यक्ति है तो स्वयं हाजी नबीबख्श ही। इस जीत के बाद उनके मन में हक, ईमान और इंसानियत की सच्चाई के प्रति एक अगम खोखलापन नजर आने लगा था। व्यापारी वर्ग, राजनीतिक दलों से सम्बन्धित बौद्धिक वर्ग, पढ़ा-लिखा बाबू पेशा अफसर-पेशा वर्ग, चांदी के जूते और खुशामद के बूते पर जितनी आसानी के साथ उनकी या राधेरमन की प्रशंसाओं और निन्दाओं का पुल बांधता रहा है, वह अनुभव स्वयं ही एक दर्शन था। एक झोंके में हाजी की कीर्ति गोरी से काली और दूसरे में फिर काली से गोरी हो गई। समाजवाद की कलई से चमचमाता उनका जनघाती उद्देश्य जीत गया, किसी ने ध्यान तक न दिया। काश कि कोई उनकी इस चूक को देख पाता कि रूपचन्द, हरकिशनदास और फिर अब्बू मियां, खोखा

मियां के दबाव और मुलाहिजे में आकर उन्होंने अनावश्यक रूप से जनता को एक भाग के नैतिक धरातल की नीची सतहों तक उतार दिया। रुपयों के आगे लोगों की चिंतन-शक्ति को भ्रमित और कुण्ठा-केन्द्रित कर देना, उन्हें नपुंसक बौद्धिक और सैद्धान्तिक बकवास के लिए प्रेरित करके उनकी बची-खुची स्नायविक शक्तियों को थकाना और तोड़ना क्या अच्छी बात है? उनकी जरूरत-जनित लालचों को बढ़ाते हुए क्रमशः उन्हें सरकस के शेर की तरह, रुपये का हंटर खाकर बुझी नफरत वाली आंखें, और खोखली बत्तीसी दिखानेवाला हाड़-चाम का खिलौना बना दिया जाता है। क्या कि इन खिलौनों के भारत को आज़ाद भारत कहा जाएगा? ये भारत जो अब अपनी ही बेबसी का गुलाम है, पराई गुलामी के दिनों से अब अपने मनोबल में अधिक तगड़ा हुआ है या कमजोर? छातियों पर घोड़ों की टापों और बंदूक की गोलियों को झेलकर जिस भारत ने स्वाधीनता को वरा था, क्या वह नैतिक बल उसमें आज भी मौजूद है? कांग्रेस सोशलिज्म ला रही है और जिस जनता के लिए ला रही है, उस जनता को हमारे महान-महानतम् नेताओं ने बड़े कामों से फुरसत न मिलने की वजह से मेरे और राधेरमन जैसों के हाथों में सौंप रक्खा है।···जैसे छोटी बेगम के हाथों हाजी नबीबख्श ने अपनी पत्नी मुमताज बेगम को सौंपा था और जिसने उसे घुला-घुलाकर मार डाला। मुमताज ने नबीबख्श पर इतना प्यार, इतना रूहानी हुस्न उंडेला था कि उन्हें खुद अपने ऊपर नाज हो गया था।···हाजी अपनी मुमताज के हत्यारे हैं। हमारे नेता अपनी जनता के हत्यारे हैंगे। हाजी को भी ऊपरी चेतना में अपनी ब्याहता बेगम से प्यार था। उस समय अगर कोई उनसे यह कह देता कि नहीं है तो बुरा मान जाते। प्यार किया जाता है तो उसका ध्यान भी किया जाता है, और जब खयाल किया जाता है तो यह सवाल भी दरपश होता है कि आप किस तरह का खयाल फरमा रहे हैं—बच्चों की तरह हुस्न के जादू में गुम हैं, या सयानों की तरह उसके दुख-सुख में सदा जान लड़ाए रहते हैं।

जिस समय महापालिका ने उनकी इस मार्ग योजना का प्रस्ताव बहुमत से स्वीकार किया और इन्हें फोन पर खुशखबरी सुनाई गई थी, उस समय मन के एक अचानक धक्के से फोन के शब्द धंसकर यह ध्वनि निकाल लाए: "योर वाइफ डाइड हार्ट फॅल्योर वन पी० एम०।" ···सोलह वर्ष पहले मुर्शिदाबाद में एक सुबह मिलनेवाला तार और उस दिन टेलीफोन पर आनेवाली यह खुशखबरी दोनों ही हाजी के मुख से केवल एक ही वाक्य निकाल सकी थीं: "अब मेरा सब कुछ खत्म हो गया"। पहली बार मुमताज़ मरकर हाजी के अन्दर इन्साफ, मानवता और उद्योग की स्फूर्ति बनकर जी उठी थी, इसलिए सब कुछ खत्म होकर भी खत्म नहीं हो सका था। लेकिन आज, आयु के पैंसठवें वर्ष में आकर लगता है कि अपने सम्बन्ध में हाजी नबीबख्श की यह बात शायद सच ही हो।

हाजी नबीबख्श एक बावर्ची के सबसे बड़े बेटे हैं। इनके बाप की बड़ी इज़्ज़त थी, अपने फन के उस्ताद थे। नबीबख्श को शुरू ही से कसरत कुश्ती और अखाड़े का रस लग गया था। बाप की बड़ी इच्छा थी कि लड़का उन्हीं के जैसा नाम करे और इज़्ज़त पाए। नबीबख्श तेज और चतुर था, उसने पिता से काम भी अच्छा सीखा और उनके जीते जी तारीफ भी पाई, पर अल्हड़ बेहद था। पहलवानों और अखाड़ों की राजनीति में नबीबख्श के प्राण बसते थे। जहां बाप के काम

से छूटा नहीं कि उसी में लवलीन हो जाता था।

उमर के उन्नीसवें बरस में एक दिन अचानक बाप को खो दिया। दिल का रोग था, वही उन्हें ले डूबा। दो बहनें, एक छोटा भाई। घर में भूंजी भांग नहीं। अम्मा रोने लगीं : नब्बू, तुझे तो तेरे अब्बा अपना हुनर बख्श गए, पर ये तेरे बहन-भाई, अगर तू सहारा न दे, तो बेसहारा हैं।"

नबीबख्श ने मां के चरण छूकर कसम खाई कि जब तक दोनों बहनों की शादी नहीं कर लूंगा और छोटे भाई कल्लू को उसके पैरों पर खड़ा न कर दूंगा, तब तक कुरान मजीद की कसम, तुम्हारे कदमे-पाक की कसम, अपना घर न बसाऊंगा।

नबीबख्श कुछ दिनों तक अखाड़ेबाजी और अखाड़ों की राजनैतिक अखाड़े-बाजी से एकदम दूर रहे। काम में मन लगाया। जहां-तहां ठेके पर काम करने लगे। कुछ नाम भी हासिल किया। उन्हीं दिनों एक बार शहर के मशहूर नवाब 'खिन्नीचोर' के यहां एक बड़ी ज्याफत में काम कदने के लिए गए थे। नवाब साहब के महलों में उन दिनों एक बावर्ची की ज़रूरत भी थी। उनका पुराना कल्लू बावर्ची उनके विलायत से लौटे हुए बेटे बैरिस्टर नजीर अहमद साहब की खिदमत में चला गया था। नवाब खिन्नीचोर अपने बावर्ची के जाने से बेहद दुखी थे, मगर बेटे के आगे मजबूर भी थे। कल्लू की सिफारिश से नब्बू उनके यहां नौकर हो गया और उसके बाद उसे उस घर का किस्सा मालूम हुआ।

नवाब खिन्नीचोर बेहद आशिक़ मिजाज़ रईस थे। उन्हें हूरों से भी लगाव था और ग़िल्मों से भी। अपनी नौजवानी के आलम में एक नवाबजादे के हुस्न पर ऐसे लट्टू हुए कि सारा शहर जान गया। मगर वो ऐसा घमण्डी और पाए का था कि इन्हें उसने किसी भी बहाने अपने पास तक न फटकने दिया। ये खत लिखें और वो जवाब तक न दे। हारकर इन्होंने एक तरकीब सोची। खूबसूरत नवाब-जादे के मालियों को मिलाया, दाढ़ी बढ़ाए हुए मजदूरों के लिबास में उसके बाग में जा घुसे और मालियों ने सधे-बधे ढंग से 'चोर-चोर' की आवाज लगाकर उन्हें पकड़ लिया और नवाबजादे के रूबरू यह कहकर पेश किया कि यह बाग में खिन्नियां चुरा रहा था। इस तरह खिन्नीचोर बनकर नवाब-साहब अपने माशूक के पास तक पहुंच तो गए, नजदीक से उसे जी भर के देखने का मौका तो उन्हें ज़रूर मिल गया, मगर अरमान पूरे न हुए। नवाबजादे ने उन्हें पहचानकर भी न पहचाना और बेमुरौवती के साथ पुलिस को बुलाकर उन्हें सौंप दिया। खैर, छूट तो वे तत्काल गए, मगर खिन्नीचोर बनने का कलंक उनसे आजीवन न छूटा। इस वक्त भी नवाब साहब की दो बेगमें थीं और एक हमजिन्स माशूक भी उन्होंने पाल रक्खा था। बड़ी बेगम साहबा के दो बेटे हुए, नजीर अहमद और वजीर अहमद। नजीर अहमद विलायत बैरिस्टरी पास करने के लिए गए। वजीर अहमद, अपने भाई से आठ बरस छोटे थे। उन्हीं दिनों में बड़ी बेगम की एक रिश्ते की खाला अपनी लड़की को साथ लेकर उनके यहां आई और कहने लगी कि मैं जब तक हज से लौटकर न आऊं, तब तक तुम अपनी बहन आयशा को संभाल रखना। आयशा बीबी बहुत जल्द ही नवाब साहब के दिलोजान की मलिका बन गयीं। नवाब खिन्नीचोर एक दिन मजनूं होकर उनके पीछे पड़े। आयशा बीबी राजी हो गयीं और नवाब ने चुपचाप इन्तजाम करके उन्हें भी अपनी ब्याहता बना लिया। बड़ी बेगम ने बड़ा महनामथ मचाया, खूब-खूब रोईं, कोसीं, कलपीं।

नौकरों-चाकरों तक के सामने नवाब और छोटी बेगम को कहनी न कहनी सुनाने लगीं, मगर सब बेअसर हुआ। साल-डेढ़-साल तक नवाब अपनी छोटी बेगम के ऐसे बस में रहे कि जान पड़ता था कि अब ये बस इन्हीं के होके रह जाएंगे। दो-तीन लाख रुपये के जेवर दिए। हज़ार रुपये उनके पानदान का खर्च बांधा और बड़ी बेगम का खर्च घटा दिया। नवाब साहब उनसे ईद-बकरीद भी मिलने न जाते थे। डेढ़-दो साल तक छोटी बेगम के गुलाम रहने के बाद नवाब साहब की नज़र पर एक तवायफ का लड़का 'मासूम' ऐसा चढ़ा कि नवाब खिन्नीचोर दिन-रात उसी के नाम की माला जपने लगे। मासूम बाकायदा इन्हीं के घर रहने लगा और इस तरह नवाब साहब खिन्नीचोर का तीसरा महल आबाद हुआ।

मासूमअली होशियार था, अपनी चढ़ती के जमाने में जितना बन सके, नवाब साहब को लूट लेना चाहता था। उसने कई गांव अपने नाम लिखवा लिए। बड़ी बेगम का खर्च कटकर दो सौ रुपया महीना रह गया। छोटी बेगम को सिर्फ डेढ़ सौ ही मिलने लगे। मासूम जो चाहे सो खर्च करे।

तीन-साढ़े-तीन बरस के बाद नजीर अहमद विलायत से बैरिस्टरी की डिगरी और एक विलायती बेगम साथ लेकर आए। बड़ी बेगम को सहारा मिला। अपना सारा दुखड़ा उसके आगे रोया। नजीर अहमद अपने ही ढंग के आदमी थे। उन्होंने आते ही बाप को नोटिस दिया कि जो जायदाद आपने मासूम के नाम लिख दी है, उस पर मेरा और मेरे छोटे भाई का मौरूसी हक है, आप उसे किसी को भी दे नहीं सकते। नवाब साहब ने डरकर बेटे के आगे घुटने टेक दिए और मासूम मियां फिर लंडूरे के लंडूरे रह गए। नवाब खिन्नीचोर ने उसे तसल्ली दी कि छोटी बेगम से जेवर लेकर तुम्हें दे देंगे। नवाब ने इसके लिए छोटी बेगम को बहुत डराया, धमकाया, उनका जेब खर्च बन्द कर दिया, नौकर-चाकर तक छीन लिए। बस एक महरी ही छोटी बेगम के पास अपनी मर्जी से रह गई। वही नवाब साहब के बावर्चीखाने से, नब्बू के दिल में दया जगाकर, छोटी बेगम के लिए खाना ले आती थी। आठों याम दोनों औरतें अपने घर को बन्द करके रहती थीं। घर की मोरियों तक में ईंट-पत्थर अड़ा दिए जाते थे कि 'दुश्मन' सांप-बिच्छू न छोड़ दें।

एक दिन महरी न आई। शाम को भी न आई। नब्बू मियां को शक हुआ। रात में छुपकर आप गए। बड़ी मुश्किल, बड़े पतियाव के बाद, महरी की आस में दरवाजे के पास ही पड़ी हुई दिन भर की भूखी बेगम ने दरवाजा खोला। नब्बू मियां ने तब जाना कि महरी सुबह की गई अब तक नहीं लौटी। और —"जो महरी भी कहीं गुम हो गई तो मैं बेसहारा हो जाऊंगी।" पर पहलवान नबीबख्श के रहते छोटी बेगम बेसहारा क्योंकर रह सकती थीं। जवानी का आलम, जवान औरत के आंसू, हक और पहलवानी का ज़ोम—नब्बू मियां ने अपने अखाड़े के संगी-साथियों को बटोरा, महरी का पता लगाया; वह नवाब साहब के एक खिदमदगार के यहां रोक ली गई थी। तीसरे ही दिन रात में नवाब साहब के यहां आठ-दस आदमी अपने मुंह पर मुड़ासे लपेटे पहुंच गये। उन्हें मासूम के साथ अचानक घेर लिया। नवाब साहब को हाथ-पैर और मुंह बांधकर बिठला दिया गया। सोने-चांदी का जो कुछ सामान मिला वह लूटा। मासूम की नाक काटी और चले गए।

दूसरे दिन से छोटी बेगम नब्बू मियां पर तन-मन-धन से निसार हो गई।

उन्हीं की मदद से नब्बू मियां ने अपना पहला कारबार, 'इस्लामिया होटल एण्ड रेस्टोरेन्ट' खोला था। बाद में इसी छोटी वेगम की मार्फत उसने नवाब खिन्नी-चोर के सारे खांदान को मटियामेट कर दिया। छोटी वेगम से पैदा होनेवाले अपने लड़के अब्बू को नवाब की जायदाद दिलवाने के लिए नबीबख्श ने बड़ी वेगम के छोटे लड़के को ज़हर दिला के मरवाया, फिर छोटी वेगम के मार्फत मेम के विरुद्ध बड़ी बेगम को भड़काया। बदला लेने के ज़ोम में नसीबोंजली बड़ी बेगम तक न सोच पाई कि विलायती बहू को मारने के फेर में वे अपने हाथों से खुद अपने बड़े बेटे को भी मार रही हैं।··· बड़ी बेगम बावली होकर मरीं। नवाब खिन्नीचोर छोटी बेगम के कब्जे में आके दुख भोगने और जीने लगे। नबीबख्श कुछ समय बीतने पर खुलेआम छोटी बेगम की रियासत का इन्तजाम देखने-भालने लगे। नवाब की दौलत की बदौलत उन्होंने अपना धंधा खूब बढ़ाया। गल्ले-अनाज का थोक बैपार भी उसी पैसे से शुरू किया। अंग्रेज़ी ढंग से होटल, आगरा, लखनऊ और नैनीताल में खोले। तकदीर ने साथ दिया, बढ़ते गए। नवाब खिन्नीचोर की मौत के बाद वे खुलेखजाने छोटी बेगम के साथ रहने लगे। तभी ढाके की एक मुसलमान तवायफ से भी सम्बन्ध हुआ, उससे खोखा मियां पैदा हुए।

हाजी के उद्यम-उद्योग दिनों-दिन बढ़ते गए। दूसरे महायुद्ध में उनकी गिनती करोड़पतियों में होने लगी। और उन्हीं दिनों एक समृद्ध, सुशिक्षित, प्रगतिशील और प्रतिष्ठित परिवार की लाडली नवयौवना सुन्दरी, मसूरी में इन पर दिलो-जान से मर-मिटी, हालांकि आयु में ये लगभग सत्रह वर्ष बड़े थे। उसके पिता अपने सारे प्रभाव के बावजूद तड़फड़ाकर रह गए; मगर उस बालिग कन्या ने अपना धर्म परिवर्तन करके इनके साथ ब्याह कर लिया। नबीबख्श उन दिनों अपनी इज़्ज़त और नाम कमाने की फिक्र में थे, इसलिए लीग और कायदे आजम और रोजे-नमाज के भक्त बने थे। हिन्दुआनी को मुसलमान बनाके छोटे-बड़ों की वाहवाही लूटी और उस साल गरीबों को अपने साथ अपने खर्च से अल्हाजी बना लाए, अपनी बीबी, रखैलों और उनके बच्चों तक को ले गए। नादिरबख्श हाजी नबीबख्श की एकमात्र वैध सन्तान है; जिसकी मां विवाह के बाद सौत के गम और हाजी की बेरुखी के कारण घुल-घुलकर मर गई। उन दिनों हाजी पर धर्म का गहरा रंग चढ़ा था, इज़्ज़त कमा रहे थे। छोटी बेगम को अपनी पत्नी का धार्मिक गुरु नियुक्त किया। छोटी बेगम ने अपनी दोनों सौतों को तरह-तरह से सताया-घुलाया। पत्नी बेचारी तो पति की सूरत के लिए तरस-तरस कर ही मरी।

पत्नी की मृत्यु ने हाजी नबीबख्श की चेतना के नये द्वार खोल दिए। धर्मान्धता की मूढ़ता को पत्नी के प्रेम ने धोकर रख दिया। उसके मर जाने के बाद उसको पहचाना। लेकिन उसके बाद हाजी ने फिर किसी भी स्त्री को अपने मुंह न लगाया। उनकी कामेच्छा ही बुझ गई। हाजी का चरित्र ऐसा था कि बैठकर पश्चात्ताप करना उन्हें तनिक भी न सुहा सकता था। खुद को चिट्ठी-अखबार लिखने-पढ़ने लायक उर्दू आती थी, बीबी अंग्रेज़ी पढ़ी-लिखी थी। इसलिए एक कालेज पत्नी के मुसलमानी नाम से एक हिन्दुआनी नाम से खोला। 'शाहजहां' ने अपनी 'मुमताज महल' के नाम से एक बहुत बड़ा ट्रस्ट कायम कर रखा है, जिसकी बदौलत सैकड़ों-हजारों दीन-अनाथों को लाभ पहुंच रहा है। मुमताज की स्मृति ने इंसाफ-पसन्द 'शांहजहां' के मन को मजहबी से न्यायी बना दिया था और यहीं से उनके जीवन का समाजवादी मोड़ शुरू हुआ। हाजी नबीबख्श यूनियनों के

संगठनों और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में गहरी दिलचस्पी लेने लगे। यूनियनों के बहाने फैक्ट्रियां और फैक्ट्रियों के बहाने नये उद्योग, नई समझ, नया हौसला हाजी साहब में उमगने लगा। अंग्रेज़ी जमाने ही में ये डॉक्टर आत्माराम के मुरीद हो गये थे। उन्हीं की सलाह से लड़ाई खत्म होने के बाद रूस, योरप, इंगलैंड, अमेरिका की दो बार सैर की और अब तीनों लड़कों के साथ करोड़ों की संपदा का सूत्र संचालन कर रहे हैं।

हाजी नबीबख्श की सबसे बड़ी जीत यह है कि उन्होंने अपने हर काम में मजदूरों को भी हिस्सेदार बना रक्खा है। हाजी के यहां सब नौकर हैं—खुद हाजी भी। व्यक्तिगत मुनाफे की सीमाएं सबकी निश्चित हैं। हाजी के यहां हड़तालें नहीं होतीं। मजदूर इज़्ज़तदार आदमी माना जाता है, उसकी सुख-सुविधाओं का प्रबन्ध है। जिस नक्शे पर डॉ० आत्माराम ने सारसलेक की व्यवस्था की थी, उसी पर हाजी उद्योग-साम्राज्य की नक्शेबंदी भी हुई है। अपने मजदूरों की शक्ति से हाजी दूसरों के अभावग्रस्त मजदूरों में आन्दोलन जगाते हैं गांव के पुराने गल्ला बाजारों का नियंत्रण और संगठन भी अब करीब-करीब इन्हीं के हाथ आ गया है। अब वो पत्नी का सलोना मुखड़ा, मन के हर अंधेरे में उजाला करके राह सुझाया करता था, उनके काम के लिए इतना आवश्यक नहीं रह गया था। अनुभवों का सहारा, डॉ० आत्माराम का बौद्धिक सहारा, अपनी समाजवादी सैद्धान्तिक आस्था का सहारा, और सर्वोपरि अपनी शानदार सफलता का सहारा पाकर हाजी नबीबख्श आगे बढ़ते थे।

राधेरमन से उनकी अहंता की लड़त चूंकि आजादी के आते ही पड़ गई थी, इसलिए मन अब हरदम 'उनकी चाल-अपनी चाल' के गुन्ताड़े ही में पड़ा रहता है। चालों के चक्कर में, समाजवादी मानतावादी चौखटे में अक्सर उनकी मौजें और झखें भी समा जाती हैं। जब कभी कुल जमा हार और जीत पर ही बात आन पड़ती है तब न समाजवाद की कसौटी सामने आती है, न मानव-प्रेम ही की, और न अपनी प्रिया की। हार और जीत हाजी के जीवन में अब तक 'मेरी' और 'पराई' होती है—विशुद्ध व्यक्तिगत दृष्टिकोण वाली होती है। हाजी पहले भी एक-दो बार अपने सिद्धान्त अंकुश-मुक्त व्यक्तिगत अहम् के लिए जूझ चुके हैं, और तब अपनी चतुराई से ही उसे सैद्धान्तिक जामा पहनाने में वे सफल हो सके थे।

लेकिन आज एक महीने से अपनी चतुराई की झीनी-झीनी बीनी मलमल की हजार पर्तों में अपनी अहमता को ढंककर भी वे स्वयं अपनी नजरों में नंगे हैं। ··वे राधेरमन से जीत गए। शहर में उनकी धाक बंध गई, मुसलमान और हिन्दू और पोलिटिकल पार्टियां, उनके द्वारा संचालित महापालिका के सभासद, सभी आज उनके आगे विनत हैं। सबको हैरत थी कि वे लोग जो अपने मकानों से निकाले गए हैं, और वे लोग जो अपनी खुशी से अपनी जायदाद बेचकर जा रहे हैं—सब एक मुंह से हाजी का गुन गा रहे हैं। किसी ने यह नहीं देखा कि हाजी ने सब कुछ अपनी जीत के लिए निर्मम भाव से किया था, उसमें किसी के लिए ममत्व का लेश मात्र भी न था। अब्बू मियां नई कालोनी बनवा ही रहे थे। रुप्पन के शिकार वहां किरायेदार होकर बस गये, कइयों ने 'भाड़ा बिक्री' योजना में वे एक-ईंटिया क्वार्टर खरीद भी लिये। उनमें से अधिकांश को अपनी बस्ती उजाड़ने-बसाने में चूंकि कष्ट नहीं हुआ, बस्ती में एक-दो छिटपुट सुविधाएं भी मिल गईं, बिजली के पंखे हर घर में लगा दिए गए, इसलिए उन लोगों के निमित्त रेवतीरमन आदि की मसीहा-

गीरी बालू की दीवाल की तरह बैठ गई। नाले के किनारे बसे छोटे घर वालों को उनकी जातीय पंचायतों के द्वारा कीर्त्तन-सत्यनारायण की कथा तथा बकरे-मछली और ताड़ी-महुए के द्वारा संतुष्ट करके, जायदाद के सवाये दाम देकर उखाड़ फेंका गया। कहां जाएंगे वे इन रुपयों की पोटली लेके? लालच की छुरी लिये शहरों में आज हर तरफ कस्साब-ही-कस्साब डोल रहे हैं। ये भोले बकरे हलाल किए जाएंगे। दूरदर्शी और उदार हाजी ने उनका दर्द न विचारा। ये खण्डहरों को ढाकर बनाये जाने वाले बड़े प्लाट अब ऊंचे दामों पर बिकेंगे। चार-छह आदमी हज़ारों-लाखों के वारे-न्यारे करेंगे···'शाहजहां' ने अपनी मुमताज को भी इसी तरह से नजर-अंदाज किया था। छोटी बेगम के एहसानों के पीछे एक मासूम भोली इश्क की मारी हसीन जान को कुर्बान कर दिया था।

मार्ग-योजना की लड़त आरम्भ होने के कुछ समय बाद ही हाजी नबीबख्श का ध्यान इस ओर गया था। मीरगंज वाली सड़क किसी भी हालत में बुरी न रहती, बगैर किसी को तनिक-सा भी नुकसान पहुंचाये, एक नई बस्ती, नई सड़क और नई रौनक आबाद हो जाती। मगर हाजी साहब यह विचार आने से पहले ही इस मार्ग-योजना को अपनी नाक का सवाल बना चुके थे। एक जगह पर उनका जी चाहता था कि वे हार जाएं, मुख्यमंत्री ने जब उनका भंडाफोड़ किया था, तब उन्होंने सोचा था कि अब शायद उन्हें अपने प्रस्ताव के लिए प्रगति की गुंजाइश न मिलेगी, परन्तु उसकी प्रतिक्रिया में उनके चरित्र-लाञ्छन का प्रोपेगैण्डा, उनकी साख गिराने का प्रयत्न इतनी तेजी, ज़ोर-शोर और अंधाधुंधी से किया गया कि हाजी नबीबख्श को अपनी खुफिया चालबाजियों के लिए पूरी गुंजाइश फिर मिल गई। राधेरमन का हाजी विरोधी प्रचार अपने अतिरेक के कारण साम्प्रदायिकता की दुर्गन्ध फैलाने लगा। इसी से हाजी को मौका मिल गया। रुपया पानी की तरह बहा और जो पहले रुपया न कर पाया था, वह हाजी के विरुद्ध प्रचार के अतिरेक से सफल हो गया। विरोधी जनता के शान्त हो जाने से राधेरमन के अंधाधुंध प्रचार-साधनों की फूंक सरक गई। महापालिका के जो सदस्य दोनों ओर के रुपयों की मार से अनिश्चय में पड़े हुए थे, अब सोचने लगे कि लड़ाई बेकार है। वे काजी के पक्ष में होने लगे। और फिर तो एक झटके में सारा काम बन गया। बात बनाने का अंतिम यश लच्छू को अयाचित ही मिल गया।

एक दिन लच्छू अपनी दुनियादारी की आदत के कारण यों ही सलाम करने के लिए गया था। सड़क-योजना से रेवती-गोपी-माधुरीरमन तक, और वहां से प्रसंगवश नगर रामलीला कमेटी के चुनाव तक बातें चल पड़ीं। एकाएक लच्छू बोला : "हुज़ूर, इसी रामलीला कमेटी के चुनाव के दौरान अगर आप यह एलान कर दें कि अगले साल से भरत मिलाप आपके यहां होगा तो असर खूब पढ़ेगा। भरत मिलाप का दिन हमेशा के लिए हिन्दू-मुस्लिम मिलाप का दिन माना जाए।"

लच्छू की सूझ रॉकेट बनकर उड़ गई। हाजी ने सम्हल-सम्हल कर कुछ सदस्यों को चुना, उनके सामने अपना प्रस्ताव पेश किया, बोला : "हेलीकोप्टर पर राम-लछमन-सीताजी वगैरह सरूपरानी पार्क की लंका से उड़ेंगे और इस तरीके से पुष्पक विमान पर हमारी कोठी के सामने वाले पार्क में उतरेंगे। इक्कीस हज़ार रुपया राजगद्दी में नज़र करूंगा।"

प्रस्ताव ऐसा था कि हाजी के पोलिटिकल विरोधी भी उसे अस्वीकार न कर

सके। जानते थे, न मानेंगे तो अपनी हेलीकाप्टर की सूझ पर हाजी जन-सहानुभूति को अपने पक्ष में उड़ा ले जाएंगे। हाजी ने अपनी इस जीत को प्रचारित किया। चूंकि इस प्रकार के काम हाजी नबीबख्श द्वारा अनहोने नहीं थे, और चूंकि उनका प्रचार बड़ा शालीन था, इसलिए हाजी के प्रति बरबस लोगों की श्रद्धा-सहानुभूति बढ़ गई। हाजी के विरुद्ध चरित्र-लांछन का अतिप्रचार एक सामाजिक कुरुचि बनकर प्रतिक्रिया में अनेक लोगों की भलमनसाहत जगा गया। बानक बनते गये और एक में एक जुड़कर ऐसे बने की हाजी का मुंह उजला हो के ही रहा।···लेकिन स्वयं हाजी का मन जानता था कि इस उजलेपन में कितना मैल है।

नई सड़क के निर्माण-कार्य का उद्घाटन हो न सका। नगर के सम्भ्रान्तों का कारवां लेकर हाजी नबीबख्श जैसे ही सभामण्डप में पहुंचे, वैसे ही उन्हें शोक-समाचार दिया गया। उद्घाटन-सभा शोक-सभा बन गई। चटपट मशीन चालू हुई, नगर-प्रमुख को सभा-प्रमुख बना के लाला राधेरमन की महानता के मर्सिये पढ़ गए। जोश में आकर कइयों ने यह सुझाव रक्खा कि बनने पर इस सड़क का नाम राधेरमन मार्ग रक्खा जाए।

एक घण्टे तक भाषणों का चरंखचूं छकड़ा चलता ही रहा। तमाशाई भीड़ बीच ही से उठ-उठकर जाने लगी। बहुत से सम्भ्रान्तों को भी जाने की उतावली पड़ने लगी। सभा समाप्त करने के लिए आयोजकों को कोंचा जाने लगा। लच्छू, रमेश, जयकिशोर और हर्री भी पीछे की कुर्सियों पर बैठे मूंगफलियां टूंग रहे थे। तीन-चार लोग हाजी के भाषण के बीच ही से उठकर जा रहे थे; उनकी बात इनके कानों पड़ी : "अदर से तो सुलग रहे होंगे हाजी कि साला मरते-मरते भी हमें चूना लगा गया, उद्घाटन न करने दिया।"··

रमेश हंस पड़ा, बोला : "यार, इसमें शक नहीं कि बुड्डा मरा खूब समय साधकर।"

"अजी, ये बदमाशी है सब रेवतीरमन वगैरा की। बुड्डा तो सुबह सात बजे ही मर गया था। खबर दबाये रक्खी और झूठ भी बोलते रहे कि ऐन उद्घाटन के समय सगुन बिगाड़ेंगे। साला मेरा भी 'ग्रैण्ड' नुक्सान करा गया बुड्ढा।" लच्छू ने कहा।

"कैसे ?" जयकिशोर ने पूछा।

"अरे, आज न्यू इयर्स डे है कि नहीं। इन लोगों का पैसा न लगा होता और मेरा 'पैराडाइज' उद्योगपुरी में न होता, तो आज की शाम पांच-छह सौ की बिक्री हो जाती। कल 'न्यू इयर्स ईव' में लखनऊ क्लब में झगड़ा हो गया—"

"हां यार, पढ़ा तो था आज के पेपर में, पर इसके पीछे पालिटिक्स मालूम पड़ी मुझे।" जयकिशोर बोला।

रमेश बोला : "पॉलिटिक्स-वालिटिक्स कुछ नहीं, ये सीधा-सीधा गुलाम और आजाद चेतना का संघर्ष है। क्यों साहब, अब अंग्रेज़ तो रहे नहीं लखनऊ क्लब में, फिर बालडान्स ही क्यों हो, भांगड़ा क्यों न हो ?"

"हम कहते हैं कि न्यू इयर्स-डे ही क्यों मनाते हैं ? ये भी तो अंग्रेज़ों का ही है—"

सभा विसर्जित हुई, भीड़ निकली। लच्छू हाजी साहब को सलाम करने के

लिए जाने लगा। जयकिशोर ने हाथ पकड़कर रोक लिया : "बैठ साले, हरदम खुशामद करना अच्छा नहीं होता।"

"अब यहां बैठ ही के क्या करेंगे। आओ मेरे घर चलो। इस समय अपनी संघवाली बारादरी का आनन्द आप लोग पा सकते हैं तो किसी हद तक मेरे फ्लैट में ही।" लच्छू बोला।

"हाय! क्या दिन थे हमारे वो भी। क्या आर्गनाइज़ेशन किया था हम लोगों ने। और अब वहां पे बैजू लाला का स्मारक बन रहा है। हूं; ये पैसे वाले हर जगह अपना सिक्का जमा लेते हैं।" रमेश मनसा-वाचा खीझ से भरा हुआ था।

सभा के लौटन्ते, कुछ बाबू लोग पीछे ज़ोर-ज़ोर से बातें करते आ रहे थे। स्वर चिरपरिचित बुज़ुर्गों के थे। जगदम्बासहाय 'मास्साब' कह रहे थे : "अरे यार, मरे पीछे किसी की निन्दा करने से क्या लाभ? हम तो कहते हैं कि बड़े अच्छे थे। पुरानी वज़ाकता के और बड़े ही कट्टर सिद्धान्तवादी थे बिचारे। लोगों को काम दिया, पर भीख नहीं दी। कहैं कि हमारे देशवासी काम-काजी बनें, भिखारी नहीं। धर्मात्मा था साब।"

"हां-हां। सहसबाहु हुइके पैसा बटोरा। ये साला काम देते थे? मजूरी में दुइ पैसे कम, और ब्याज में दूसरे महाजनों से दुइ पैसा जादा। तभी तो ये संगमर्मल का मंदिल बनता है बंचो—हम आप कोई साले लाख भगती रखते हुए भी नहीं बनवा सकते।" बाबू सत्यनारायण की इस बात ने लच्छू-रमेश मंडली के मन उछाल दिए। सबके चेहरे खिल उठे। इतने में छैलू के पिता बाबू रसिकबिहारी की आवाज़ आई : "भाई, कुछ भी कह लो सत्तोबाबू, मंदिर तो 'मार्वेलस' बनवा गए लाला राधेरमन। या तो आगरे में ताजमहल है--"

"या फिर ये राधेरमन का मकबरा है—"

"अरे यार सत्तोबाबू, क्या हिन्दू होके मंदिर की निंदा—"

"अरे मैं हिन्दू हूं इसीलिए कह रहा हूं। ये मन्दिर भगवान के हैं? तुम क्या यह समझते हो कुंजू बाबू? ज़रा साधू-महात्माओं की ज्ञानदिरिष्टी से देखिए, ये नाम कमाने वालों के मकबरे हैंगे। इनमें भगवान कहां?"

"अरे झाड़े रहो सत्तनरायन बाबू, जैसा नाम हैगा वैसे ही सफा सत्त वचन भी बोल गए तुम।"

"अरे भैया, ये लक्ष्मी के मजे हैं बस। अहंकारों में एक अहंकार ये भी है। डिमाक्रेसी युग का सम्राट् होता है बनिया—मैं जाति के ढंग से नहीं कहता किशन-बाबू, बनिज—"

"मैं समझता हूं। आप सच कहते हैं।"

"सो तो है ही बाबूजी। शास्त्रों में लिखा हैगा कि पहले बांभन, फिर छत्री, फिर बनिये और फिर शूद्र राज करेंगे। सो बांभन, छत्रियों के तेज भोग लिए। बनियों का तेज सह ही रहे हैं, अब शूद्रों से भी हाथ जोड़ के कहेंगे कि आओ भैया,—लेव हमारी तुम भी। हमारा जनम तौ इसी के लिए हुआ हैगा साला।··· अरे लच्छू?"

"जी बाबू!"

"लक्ष्मीनारायण, ज़रा इधर आइएगा बेटा। खूब मिल गये आप। कहो भाई रमेश बेटे, अच्छे हौ? —पंडिज्जी महराज······"

छोटों-बड़ों में हाथ जोड़न 'जियो खुश रहो' आदि होने लगा! लच्छू को एक

ओर ले जाकर बाबू सतनरायन बोले : "लच्छू बेटे, एक चवन्नी होय तो देना बेटे। बीड़ी का बंडल लेउंगा एक और माचिस। आज न्यू इयर्स डे के दिन भी तुमाई अम्मा ने हमको सबेरे-सबेरे झिड़क दिया साला। अब हमारा होल इयर का इयर मनहूस गया समझो। ऐसी कुढ़ियल तकदीर···अरे मेरे लाल, अरे मेरे दानवीर करन, दूधों कुल्ले करो बेटा। बड़ा सुख भोगोगे लच्छू बेटा। हाय, मेरा होल इयर का इयर बना दिया तूने।" पेड़ की आड़ में दस-दस के दो नोट अपनी आंखों के अविश्वास और जेब के विश्वास स्वरूप पाकर बाबू सत्यनारायण इस समय चारों पदारथ पा गये थे। बेटे की पीठ थपथपा कर चट से वे 'वी० आई० पी०'—मुद्रा में ठाठ के साथ अपनी मित्र-मंडली में आ जुड़े। मास्टर जगदम्बा-सहाय अटल बाबू की बात का उत्तर दे रहे थे : "अजी, हाजी की निष्ठा अकबरे-मकबरे में नहीं है अटल बाबू। वो कमनिष्ट हैं।"

बाबू सत्यनारायण के स्वर में इस समय 'अपने' बीस रुपयों का ज़ोर आ गया था, हाथ बढ़ा के बोले : "मास्टर साहेब, वो कमनिष्ट होय चाहे जो कुछ होय, पर मुसलमान पक्का है। रखैलें भले उसने मुहमडन रक्खीं, पर जब ब्याह किया तो एक हिन्दुआनी को मुसलमान बनाय के पहले सबाब लूटा, और फिर उसे लेके हज्ज करने गया मुहम्मद साहेब के दरबार में। हमारे हिन्दुओं में है कोई अपने दीन-मजहब का पक्का? तभी तो रसातल में चला गया हिन्दू समाज।"

बाबू अटलबिहारी बोले : "मुसलमानों में एका और भाईचारा बहुत है। हमारे हिन्दू फुट्टैल हैं।"

युवक-मण्डली लच्छू के घर जाने के लिए दूसरी गली में मुड़ गई। लच्छू बोला : "बाबू जब कह रहे थे कि हिंदुओं में मुसलमानी से ब्याह करनेवाला कोई नहीं निकला तो हमारे जी में आया कि अपने हर्रो बाबू को उनके आगे कर दें कि देखिए, ये हैं हिन्दू-रत्न जो चार बच्चों की अम्मा के आशिक बने हैं?"

खबर मित्रों के लिए बम के धड़ाके के समान थी। सबकी नज़रें हर्रो की ओर उठ गईं, जो झेंप में नायकत्व का अभिमान लिये मुस्करा रहा था। लच्छू ने बतलाया कि उद्योगपुरी की एक रेडीमेड कपड़ा फैक्ट्री की एक दर्जिन से पिछले आठ-दस दिनों से श्रीमान इश्क लड़ा रहे हैं। "अभी पहली तनख्वाह तक पाई नहीं और गल्ले से दो बार पांच-पांच रुपै के नोट उठाकर दर्जिन को दे चुके हैं। चाय-पावरोटी तो रोज ही मुफ्त देते हैं, सो अलग। और समझते हैं कि लच्छू को कुछ खबर ही नहीं।"

रमेश ने हर्रो की बांह पकड़कर खींची और भिंचे स्वर में डांटकर कहा : "क्यों बे, ये हरकतें शुरू कर दीं तूने। लच्छू के मूं पे कालिख लगवाएगा क्या?"

घर आ गया। सहदेई के पिता घर पर थे। सहदेई खाना बना रही थी। चोइथराम मनसुखानी बीड़ी मुट्ठी में थामे हुए टीन की कुरसी पर बैठा खों-खों कर रहा था। गोपी कुरता-पाजामा और पूरी बांह का पुलओवर पहने, खुले मगर संवारे हुए बालों को बालों ही की एक लट से बांधे, आंखों में काजल के डोरे डाले, दालान में खाट पर बैठी हुई पापड़ खा रही थी। लच्छू ने सहदेई के पिता से कहा : "चाचा, सहदेई बहन से कह देना कि रोटी के बजाय हमारे चार परावठे करके कटोरदान में धर देंगी, मैं आके ले जाऊंगा।"

"बहुत अच्छा भैया।"

गोपी से आंखें चार हुईं। दिलफेंक अदा में 'हॅप्पी न्यू इयर्स डे टू यू'—'सेम

'टु यू' का आदान-प्रदान हुआ और दोस्तों के पीछे-पीछे लच्छू ऊपर गया।

कमरे में पहुंचकर रमेश और लच्छू ने जयकिशोर के सामने हर्रो की खाल खिंचाई शुरू की। लच्छू दोस्त को नौकरी देने का एहसान जतलाते हुए शिकायत कर रहा था। बहुत खिंचाई होने पर ताव खाकर हर्रो बोला : "जिसने मुझे मेरी होल लाइफ़ भर में एकमात्र लव दिया है, मेरे सुख-दुख को सबसे अधिक समझा है, मुझे—"

"अबे तो इश्क लड़ाने के लिए तुझे ये चाची ही मिली थी। साली चालिस की उमर, चार-चार बच्चों की मां···"

लच्छू के यह कहते ही हर्रो उबल पड़ा। यह उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन था। वह चाहे जो करे। इसी पर रमेश कुछ गर्माया, कुछ लच्छू ने यह कह दिया कि कल अपना हिसाब ले जाना, हम तुम्हें नौकर नहीं रक्खेंगे, और इसी पर हर्रो रोता-गरजता गालियां देता हुआ चला गया।

जयकिशोर ने लच्छू और रमेश के दृष्टिकोण का साथ न दिया। उसे लच्छू का हर्रो को नौकरी से बर्खास्तगी की धमकी देना खल गया, बोला : "आप लोग अपने को स्वतन्त्रता का हामी मानते हैं और एक बेचारे, अपने दोस्त ही की स्वतन्त्रता को नौकरी की धमकी से खत्म कर देना चाहते हैं।"

बहस चल पड़ी। जयकिशोर के अनुसार यह संयोग ही की बात थी कि रमेश का दिल एक ऐसी समवयस्का विधवा युवती पर आ गया, जिसे वह ढोल बजाकर ब्याह भी लाया, पर यह भी हो सकता था कि उसकी आंखें किसी बच्चोंवाली विधवा से लड़तीं, किसी असफल विवाह की शिकार युवती से भी प्रेम हो सकता था और वह उससे विवाह भी कर सकता था।

ऐसी एक तात्कालिक अखबारी कहानी उनके सामने थी, जिसमें चार बच्चों की मां, एक सम्पन्न और सम्भ्रान्त कुल की विवाहिता स्त्री ने, एक पति के रहते हुए भी एक अन्य पति का वरण कर लिया।···

"लेकिन यह ईमानदारी का विवाह था या फरेब ?" रमेश ने पूछा।

"वह स्त्री अपने मन में पूरी तरह से ईमानदार थी।" जयकिशोर बोला।

"और उसका प्रेमी, जिसने द्रौपदी के पांच पतियों और गांधर्व विवाह के शास्त्रीय प्रमाण देकर चंद्र देवता की गवाही में उसको हथिया लिया ? क्या वह भी सच्चा था ? बड़ी नैतिकता बरती। धन्य है !"

"नैतिकता इस बात में नहीं कि आदमी कितना सच्चा, त्यागी, तपस्वी और प्रामाणिक है। प्रश्न यह है कि व्यक्ति को अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और आचार-व्यवहार को गति देने में मुक्ति कितनी मिलती है। प्रामाणिकता का आग्रह झूठा और बेकार है।" जयकिशोर ने रमेश की बात ज़ोरदार ढंग से काट दी। देर तक बहस गर्माने के बाद भी रमेश और लच्छू जयकिशोर को इस बात पर राजी न कर सके कि व्यक्ति अकेला नहीं, समाज में रहनेवाला जीव है और इसलिए उसके कुछ दायित्व भी हैं। सच्चाई, त्याग, प्रामाणिकता, नागरिकता आदि इसीलिए उसके नैतिक मानदण्ड भी हैं।

"और सारे समाज में रहकर, आप लोगों की बखानी हुई सारी नैतिकता के लबादे ओढ़कर बेचारा व्यक्ति कितना अकेला, कितना शून्य, कितना निरर्थक है ! या तो वह समाज को स्वीकारे अथवा समाज उसका अस्तित्व ही नकार देगा। ये क्या खूब समाजवाद है कि जिसमें समाज तो आज़ाद है, पर उसका व्यक्ति गुलाम।

और जब व्यक्ति ही गुलाम है, निज अस्तित्वहीन है, तब समाज ही क्योंकर स्वतन्त्र हुआ ?"

जयकिशोर के सामने एक ऐसा समाज है, जिसका एकमात्र मानदण्ड व्यक्ति का मनमानापन ही होगा। काम-सम्बन्धों में दो भागीदारों की रजामन्दी होना ही आवश्यक है, वह रजामन्दी किस तरह से हासिल की जाती है यह प्रश्न ही निरर्थक है। आनन्द ही जीवन है। मुक्त गति ही जीवन की सार्थकता है। वैदिक ऋषि भी आनन्दवादी थे। गीता भी केवल कर्म पर ही ज़ोर देती है, क्योंकि कर्म का अस्तित्व क्षण में होता है, उसके फल की चिन्ता करना गलत है; फल जब अपनी अस्ति पर आएंगे तब भोगेंगे। 'आदमी का जी चाहे तो वह खुले आम नंगा घूमे, रजामन्द जोड़ें चाहे तो खुले आम भोग करें। इस महान आनन्द के कर्म को छिपाना निर्लज्ज अनैतिकता और घोर पाप है। बाप-बेटी या पति-पत्नी या भाई बहन साथ जा रहे हैं; कोई और राह चलता स्त्री या पुरुष उनमें से किसी के प्रति आकर्षित होता है और उसे राजी कर लेता है तो फिर उस काम में पाप ही क्या रह गया ?

"लेकिन स्वेच्छाचार केवल काम-सम्बन्धों तक ही सीमित नहीं जयकिशोर। काम की भूख के अलावा पेट की भूख के भी धंधे हैं और यह अस्तित्ववादी स्वेच्छाचार वहां भी चल रहा है—क्या उसकी मुक्त गति को भी स्वीकार किया जाय ?"

जयकिशोर कहता है कि हां, उसे स्वीकार करना ही होगा।

"इसके माने हैं जिसका स्वेच्छाचार प्रबल हो, वह रहे और निर्बल गुलाम हो जाय। फिर तुम्हारी व्यक्तिगत मुक्ति का क्या हुआ ? निर्बल अपना अस्तित्व कैसे सिद्ध करेंगे ?"

"उन्हें भी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करने का अधिकार है, लेकिन ये संघर्ष सामूहिक नहीं, व्यक्तिगत होना चाहिए। कामाचारी, अर्थाचारी अथवा सदाचारी कोई भी हो, इनका एक जुट होकर कोई भी सामूहिक आन्दोलन चलाना अनैतिकता है। हमारी इच्छाएं और आकांक्षाएं ऊपरी तौर पर बहुतों से मेल खाने के बावजूद हमारे अन्दर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं। अस्ति की स्वीकारोक्ति ही यह है कि 'मैं हूं' और 'मैं' हर हाल में दूसरे से भिन्न हूं—अपने माता-पिता, भाई-बन्द, पत्नी-प्रेमिका, मित्र-व्यवहारी इन सबसे मेरा अस्तित्व जुदा है। अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए मुझे केवल अपनी ही चिंता करनी चाहिए।"······

हर्री के सामने स्वतन्त्र अस्तित्व ही का तो प्रश्न है। बचपन में कुछ कामाचारी अध्यापकों और पड़ोसी वयस्कों के द्वारा जबर्दस्ती उनका भोगपात्र बनने को अपनी विवशता से उसने विद्रोह किया था। वह पुरुष के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहता था। और इसी पौरुष को पाने के लिए वह नारी का भूखा था--चिर भूखा, विवश भूखा। इसी भूख की तड़प में पहले भी दो-एक बार उसने अपनी स्वेच्छाचारिता को बढ़ावा देना चाहा था, लेकिन समाज ने मार-पीट की धमकियों से उसकी इच्छा को पीछे ढकेल दिया। उसकी बरसों की भूख तड़प रही है। रमेश अपनी इच्छा-सिद्धि पा चुका है। लच्छू पा लेता है, विवाहित जयकिशोर कानून सिद्धि तो पाता ही है; गैरकानूनी के लिए लालायित और प्रयत्नशील भी रहता है—फिर हर्री ही क्यों न उस सिद्धि को पाये ? और जब वह भी पा लेता

है तब इन लोगों को, दुनिया को जलन क्यों होती है। मुसलमान है, हुआ करे। मामूली मजदूर क्लास है; हम भी तो वही हैं। उमर में बड़ी है, चार बच्चों की मां है। लोग क्या अपने बच्चों की मां से प्रेम नहीं करते? बड़ी उमर की औरतें क्या प्रेम करने लायक नहीं होतीं? अरे, प्रेम करना तो दरअसल वही जानती हैं। हर्रो के मन में अपनी वयस्क प्रेमिका के लिए महाभाव है। उसके जादू में आठों याम बंधा ही रहता है। हर्रो से कसम ले ली है कि 'हमारे रहते अब किसी और से आंखें न लड़ाना।' कहती है सिर पे मिट्टी का तेल उड़ेलकर उस जिस्म को आग लगा लूंगी, जो तुम्हारा हो चुका। मैं जो कहती हूं वो कर दिखाऊंगी। 'मुझे अब एक जगह न बच्चों की ममता ही बाकी रह गई है और न दुनिया की, न किसी और चीज़ की चाह ही। मेरा काम है, तुम हो और अल्लाह हैं।' जोहरा से हर्रो की शादी होना तो मुमकिन हो नहीं सकता। न वो मुसलमान धर्म छोड़ने को राजी है और न हर्रो ही से हिन्दू धरम छोड़ा जायगा। आज तक मंदिरों में जाते रहे और कल सुथना पहन के मस्जिद में नमाज सीख रहे हैं जनाब—ये सब झूठ बात है। 'हमने अब तो खुद देख लिया कि प्रेम में धर्म कहीं पर भी जरा-सा भी बाधक नहीं होता। अरे, हमें यार की यारी से काम कि उसके फैलों से? ये धरम-ईमान की बातें भी सब ससरी बेकार की बातें हैंगी। पंडित-मुल्लों को अपने पुजापे के लिए धरम की आड़ चाहिए, नेताओं को भाषण करने और छपाने के लिए बड़ी-बड़ी बातें करने की आदत होती है। यह सब ससरी इंटलेक्चुअल हरमजदगी है। हमारी, पब्लिक की सुधि कौन लेता है? ये लच्छू साला, हमारा बचपन का साथी, ज़रा रूस क्या हो आया, ये रेस्ट्रां क्या खोल लिया कि अपना दिन भूल गया साला! ये रमेश और जयकिशोर और कम्मी, गोडबोले सब पैसे की तरावट में तन-सुखिया, हरामजादे हैं। इन सालों के दिमाग में हमारी जैसी दबी-पिसी पब्लिक का दर्द भला क्योंकर समा सकता है? हमारा दुख-दर्द तो समझती है, हमारी ही जैसी दर्द की मारी हमारी जोहरा! ले जा ससरे, अपनी नौकरी। तकदीर ने जब यह दिया है तो आगे भी कुछ देगी। किस्मत हमारे साथ है, जलने-वाले जला करें। मां-बाप, भाई-बहन सब अपने स्वारथ के होते हैं, हमारे तो सिर्फ हम ही होते हैं।'

चूंकि हर्रो की स्मृति में अपने मां-बाप के किसी भी खास व्यवहार पर कोई शिकायत नहीं, बड़े ही सरल, बड़े ही मौन, सहनशील और बड़े ही अभागे हैं, इसीलिए हर्रो अपने मां-बाप के अभागेपन ही को सबसे बड़ी शिकायत मानकर आजकल अपने प्रेमानन्द मगन दिल और दिमाग़ में 'घर' से उसी तरह कतरा जाता है, जैसे पहली तारीख को चाटवाले की दूकान देखकर किसी दफ्तर का छोटा क्लर्क महाजन की गालियां और घर-खर्च की तमाम जिम्मेदारियां हठात् भूल जाता है और ये तय करता है कि वह चाट का स्वाद लेगा।···घर हैं, जिम्मे-दारियां, महाजन हैं, पर इन सबके अलावा वह स्वयं भी है; अपने अस्तित्व को वह कैसे नकार दे? हर्रो इसीलिए मित्रों से चिढ़कर चला आया था।

दोपहर को लच्छू के घर से अपने 'घर' (हुसेनाबाद वाला घर नहीं) आते हुए रमेश का मन बेहद विचारोत्तेजित था। जयकिशोर ठीक कहता है, व्यक्ति, कहीं पर तो अपने-आप में अवश्य अकेला है। · क्या किया जाय। लेकिन यों आमतौर

पर व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा चाहिए और समाज की शक्ति व्यक्ति है। दोनों ही एक जगह पर स्वतन्त्र होते हुए भी एक-दूसरे के आश्रित हैं। रमेश कैसे मान ले कि हर्रो का अपने घर-परिवार के लिए कोई दायित्व ही नहीं है। खुद रमेश ने शादी के बाद अपना घर तो अवश्य अलग कर लिया, पर क्या मां-बाप के ऋण से भी अपने को उऋण कर लिया ? हर महीने साठ रुपये घर में देता है। घर वालों से, ससुराल वालों से बराबर सम्पर्क बनाए रखता है। इसमें चूक नहीं हुई। आज ही, साल का पहला दिन, उसने अपने 'घर' पर मनाना इसलिए उचित समझा कि सब जने एक सुखद दिन मना लेंगे, स्वादिष्ट और स्पेशल भोजन बन जायगा। मां-बाप बहन-भाई सभी छक लेंगे। रानी अपने मैके गई है। आज दो घरों का नया दिन मनाने में रमेश के लगभग बीस-पचीस रुपये खर्च हो जाएंगे, पर यह खर्च आवश्यक है, इन्हीं खर्चों के लिए ही मनुष्य कमाता है।

अपने घर आकर अपने भरे-पूरे संतोष में रमेश को हर्रो के माता-पिता का ध्यान आता ही रहा। दो दिन पहले ही लच्छू की बाबू श्यामनरायन से भेंट हुई थी। हर्रो के लिए चिंतित थे, और उनकी तनिक-सी अतिरिक्त चिन्ता भी किसी प्रेम स्वजन या सज्जन की निगाहों को झांकते ही अपार मालूम होने लगती है। बाबू श्यामनरायन और उनकी पत्नी चिता, दुख और दुर्भाग्य का साक्षात अवतार हैं। उनके घर में आवाज़ें तो सुनाई ही नहीं देतीं। दोनों बेहद सरल, बड़े शान्त और महा-अभागे ! ··

बाबू श्यामनरायन के पिता अवध की एक छोटी रियासत के दीवान थे। बड़े जाबिर, बड़े हां-हुज़ूर, बड़े पियक्कड़, बड़े बलात्कारी और बड़े रकम-खसोट थे। लखनऊ में एक मकान, दस-बारह हज़ार के गहने और पचास हज़ार नक़द छोड़ के मरे थे। मां इनकी पांच बरस की आयु ही में मर चुकी थीं। पिता के डकैत स्वभाव, गरज और अकड़ की 'छत्रछाया' में इन्हें शुरू ही से न बोलने की, और पिता आदि लोगों की नजरों से दूर रहने की आदत पड़ गई थी। राजा साहब के पुस्तकालय में जहां प्रायः कोई आता ही न था, ये सुध-बुध खोकर पढ़ा करते थे। इसके अलावा बड़ी रानीजी के घर में इनका जी लगता था, जहां सुबह पांच बजे से लेकर सूर्यास्त होने तक बारी-बारी से पांच पंडित रामचरित-मानस का सस्वर पाठ किया करते थे और कोई नहीं बोलता था। महीने दो महीने, छह महीनों में राजा साहब जब कभी बड़ी रानीजी के महल में सोने की इच्छा करते, तो सवेरे ही से बीस-पचीस मजदूर रानीजी के महल की भीतर से पुताई करने के वास्ते भेज दिये जाते थे। उस दिन को छोड़कर उस शांत घर में श्यामनरायन को बहुत अच्छा लगता था। पढ़ाई में आदि से अंत तक फेल तो कभी न हुए, पर सिर्फ पास भर ही होते रहे। इंटरमीजिएट थर्ड डिवीजन में किया। पिता मर गये। लखनऊ आकर श्यामू बाबू ने एक प्रेस खोला, चला नहीं पाये। एक साजेदार किया। सफलता पाने के बाद उसने इनके लिए प्रेस में रहना ही दूभर कर दिया। टंटे से ऊबकर, पैसा प्रायः पूरा का पूरा डुबाकर ये अलग हुए। तभी ब्याह किया। लड़की आप पसन्द की। बड़ी शांत। और आज, चौवन वर्ष की आयु में श्याम बाबू के पास गली में एक छोटी-सी स्कूली बच्चों के मतलब की स्टेशनरी की दुकान है। सत्तर-अस्सी रुपये उससे बना लेते हैं। पचास रुपये पर आधा मकान किराये पर उठा रखा है। हर्रो से चार बरस छोटी उर्मो के सिर में ट्यूमर हो गया है। पिछले दो बरसों से बढ़ते-बढ़ते उसका सिर बड़े कुम्हड़े जैसा हो गया

है। दुबली काया उसे सहार नहीं पाती। सबसे छोटे बबुआ की गर्दन जनम ही से टूटी हुई है। शरीर आयु के प्रमाण से बढ़ गया है, पर न उठ-बैठ सकता है, और न बोल ही पाता है। ग्यारह बच्चों में ये तीन जिये। दो यों पड़े हैं, हर्रो ऐसे हो गये। बाप का छोड़ा हुआ पचास हज़ार रुपया, पत्नी के गहने, सब कुछ बच्चों की कठिन बीमारियों, रोजगार के घाटों और बेकारी के समय पेट में चला गया। बच्चे बीमार हैं, कहां तक बेइलाज रक्खें और इलाज करें भी तो कहां से करें।······

रमेश ने घर में हर्रो-परिवार की चर्चा चलाई तो पुत्ती गुरू बोले : "रामजी की माया बड़ी अपरम्पार है भैया। श्यामू बाबू के बाप मनुष्य की देह में साक्षात राक्षस रहे। जनम-भर दूसरों की आहें-कराहें ही बटोरीं। इनके घर में एक-एक पैसा राक्षसी वृत्ति से आया रहा। वैसा ही निकल भी गया। आप तो सारे पाप करके भी सुख-चैन से मरे और गऊ समान बिचारे बेटे को बाप के पाप भोगने पड़ रहे हैं।··· किसी के घर में कुटुम्बवाले पूर्वजन्म के शत्रु बन के जुड़ते हैं और किसी के मित्र बन कर। श्यामू बिचारे क्या करें, अपने भाग्य से बंधे हैं। भाग्यम् फलति सर्वदा।"

रमेश सोचता है कि यदि भाग्य पर ही मनुष्य का अस्तित्व निर्भर है तो उसका कर्म करना ही बेकार है। मनुष्य यदि भाग्य ही का गुलाम है तो उसकी स्वेच्छा और स्वतन्त्रता का प्रश्न भी नहीं उठता। अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम···मगर दोनों ही अपने पेट के लिए, आत्मरक्षा और कामेच्छा के लिए काम करते हैं। चिड़ा प्रेम में चिड़िया की चाकरी भी बजाता है। हर जगह बन्धन है और मुक्ति भी है। हमें बंधन और मुक्ति दोनों ही स्थितियों को स्वीकार करना होगा।··· रमेश हर्रो नहीं है, बड़ा 'राजा बेटा' है; साठ रुपया महीना मां-बाप को देता है यानी पचास रुपया महीना पन्नो के ब्याह के निमित्त प्रतिमास अम्मा की डाकखानेवाली पासबुक में जमा कराता है, दस रुपये महीने सुरेश की पढ़ाई के देता है। अभी अलग हुए, छह महीने ही हुए, पर इस बीच में सौ-पचास अम्मा, बाबू, भाई, बहन के कपड़ों और तिथि-त्यौहार के खर्च में भी लगा ही चुका है। रानी की सौतेली मां अब हठपूर्वक रानी को घर-खर्च नहीं देने देती, तो भी रमेश की आज्ञा से रानी के वेतन का अधिकांश भाग उसके भाई-बहनों पर ही खर्च होता है। और यह सब होते हुए भी 'राजा-बेटा' पचास रुपये हर महीने श्रीमती रानी बाला गौड़ के हिसाब में भी जमा करता। लच्छू खैर, एक तो अभी वो ठीक से जमा ही नहीं, पर वैसे भी अपने मां-बाप की बहुत सहायता नहीं करता, उसे विशेष रूप से अपनी ही परवाह रहती है। कम्मी ओर गोडबोले तो खैर बड़े बाप के बेटे हैं। जयकिशोर ससुराल के माल पे लक्ष्मीनारायन बने हुए हैं।···रमेश इन सबसे अलग है। उसके सामने जीवन का स्पष्ट लक्ष्य है, अपनी उन्नति करने के साथ ही साथ वह सामाजिक उन्नति के लिए कर्मशील होना चाहता है। अपनी उन्नति और आर्थिक सुरक्षा के लिए यह ब्याह से पहले डाक्टरेट और प्रोफेसरी के सपने देखता था, अब रात के जल्वों में रानी उसे जो राह सुझा चुकी है और सुझाती रहती है, वही देखता है। रानी ही रमेश की व्यावहारिक मति, गति और मुक्ति है। ब्याह होने के कुछ ही दिनों के अंदर अपने स्वार्थ की शतरंज का फरजी, वह भी प्यादे से फरजी, बनाकर गैहांबानो उसके अन्तर में कड़वाहट भरकर भी उसके स्वाभिमान को पूर्ण चैतन्य कर गई थी। रमेश यों तो रानी पर अनुरक्त

था ही, पर अब प्रायश्चित में यहां तक अंध कठोर रूप से केन्द्रीभूत हो गया है कि किसी भी सुन्दर स्त्री को देखते ही वह उसकी सुन्दरता में कोई न कोई कमी और रानी की सुन्दरता में कोई न कोई नई विशेषता ढूंढ़ ही निकालता है। रानी अनन्य गुणवती, अनन्य सुन्दरी··· उसमें जो कुछ भी है वह अनन्य है, रमेश भी अनन्य है। और इन दोनों को मिलकर बहनजी और खन्ना साहब का उत्तराधिकार लेना है। यह रानी ने उसे सुझाया है और यही वे दोनों मिलकर करते भी हैं। खन्ना दम्पत्ति को इन्होंने अपने 'मम्मी-डैडी' वत् ही बना लिया है। पति-पत्नी तन तोड़ मन छोड़कर बहिनजी और खन्ना साहब की सेवा करते हैं। उसका सुख भी उन्हें मिल रहा है। बहनजी और खन्ना साहब इन लोगों के लिए इतना करते-धरते रहते हैं कि इनके वेतन की राशि में काफी बचत हो जाती है। नवम्बर में रमेश की वर्षगांठ पर रेडियो दिया। नवम्बर ही में, आगामी चुनाव की नक्शेबन्दी करते हुए डाक्टर आत्माराम ने अपने सभी अखबार-संपादकों को निदेशित किया कि मंत्रिमंडलों के सदस्यों, उनके छुटभैयों, गुर्गों, उनके हिमायती काले सेठों और सरकारी कार्यकर्त्ताओं की पोलें सप्रमाण खोली जायं। खन्ना साहब ने लखनऊ में यह काम रमेश ही को सौंप रक्खा था और अपनी निगरानी में करा रहे थे! 'डाक्' का आदेश था कि खर्च की परवाह न की जाय; काम पुख्ता और सनसनीखेज होना चाहिए। इसलिए कुछ बचत उसकी इस राशि से भी हो ही जाती है।

रमेश आजकल उसी में लवलीन है। रानी कहती है, जैसे बाढ़ में जान लड़ाई थी, हिम्मत दिखाई थी, वैसा ही चमत्कार अब भी दिखला दो तो बहनजी को पटा के हम लोग भी किसी डेलीगेशन में विदेश-यात्रा करने चलेंगे। 'राजा बेटा' रमेश अपनी रानी के अनुसार ही जान लड़ा के 'समाजवाद के लिए' काम कर रहा है।

यहां पर भी जयकिशोर ने आज उसे और लच्छू को दबोचा था, नफरत भरे स्वर में कहा था : "इन मुखौटे लगा के चलनेवाले लोगों को भी मैंने बहुत देखा है। तुम समाजवादियों में कितने अस्ली है आज? पहले तुममें बहुत से लोग अपने-आपको कम्यूनिस्टों की पंक्ति में खड़ा करना पसन्द नहीं करते थे, इसलिए ये सहूलियत का शब्द चुन लिया था। फिर अब कम्यूनिस्ट भी धीरे-धीरे सेमर की रुई के तकिये बन गये हैं, इसलिए यह शब्द कांग्रेस से लेकर कम्यूनिस्ट पार्टी तक के महत्वपूर्ण लोगों से तरह-तरह की सुविधाएं लेने के वास्ते अब बड़े मुनाफे का शब्द बन गया है। और तुम इसी व्यक्तिगत मुनाफे के वैसे ही गुलाम हो, जैसे पूंजीवादी मान्यताओं के लोग हैं। फिर अंतर ही क्या रह गया? तुम समाज-समाज चिल्लाओ, वो आज़ाद दुनिया का नारा लगाएं। मुनाफे की दूकान अलग है, विज्ञापन के ढंग अलग हैं, लेकिन बात एक ही है। तुम दोनों ही गुटों के लोग बेचारे निरीह व्यक्ति पर सामूहिक आक्रमण करते हो। मैं व्यक्ति को स्वतन्त्रता दिलाना चाहता हूं।"

रमेश को जयकिशोर का यह बढ़बोल चुभ रहा था। साला ससुराल के पैसे पे इंटेलेक्चुअल बनता है। 'कल्पना', 'ज्ञानोदय', 'धर्मयुग' में दो-एक चीज़ें क्या छप गयी हैं कि शान आ गई है। 'मैं' अपने पांवों पर खड़ा हुआ हूं। 'मैंने' मेहनत से अपना कैरियर बनाया है। तरुण छात्रसंघ की तेजस्वी आत्मा 'मैं' था। बाढ़ में 'मैंने' नेतृत्व दिया। साला मेरे सामने आज बढ़बोली हांकता है! 'मैं' जानता हूं समाज क्या है। 'मैं' जानता हूं समाज के स्वतन्त्र होने के माने हैं व्यक्ति की

स्वतन्त्रता ! आज-कल मेरे लेख क्या सनसनी ढा रहे हैं—जिसे देखो 'इंडिपेंडेंट' खरीद रहा है, जिसे देखो 'रमेश' का नाम ले रहा है।···

पिछले एक पखवारे में रमेश चार सनसनीखेज समाचार दे चुका है। एक प्रभावशाली मंत्री के बेटे, एक नेता के भतीजे और खाद्य विभाग के दो बड़े अधिकारियों की साजिश में पूर्वी क्षेत्र की चावल मिलों के मालिक बड़े पैमाने पर अपने गोदामों में माल रोक रहे थे और पड़ोसी देशों में ऊंची दरों पर चोरी-छिपे बेच भी रहे थे। चावल के लिए हाहाकार मच रहा था। कई ईमानदार अफसर इस अंधेरगर्दी को रोकना चाहते थे, पर मंत्री-नंदन के आगे विवश थे। रमेश ने मंत्री-नन्दन के नाम लिखी हुई नेता-भतीजे की एक चिट्ठी पा ली थी। उसका फोटो भी छापा था।

एक मंत्रीजी मंत्रिपद पाने के बाद अपनी पहली पत्नी को मार-पीट कर उससे जबर्दस्ती स्वयं अपने ही ऊपर लगाये गये व्यभिचार के आरोप पर हस्ताक्षर कराने के बाद, पिछले चार महीनों से एक स्कूल की प्रधानाध्यापिका से इश्क लड़ा रहे थे और इधर उनके विवाह की चर्चा भी गर्म थी। यह समाचार सुनकर वह त्यक्ता गांव से नगर में आई थी। अपनी भावी सौत से मिलने के लिए उसके बंगले पर गई और पगली करार दी जाकर मार-पीट के बाद चौकीदार के द्वारा टांग घसीटकर बाहर लाई जा रही थी, ठीक उसी तरह से जैसे कि मेहतर मरा हुआ कुत्ता ले जाता है। प्रमुख सड़क, भीड़ भरी। संयोग से खबर पाकर रमेश भी वहां पहुंच गया और उस औरत का विलाप और बातें सुनकर—यह भी संयोग ही था कि—उसे उस स्त्री पर एकाएक विश्वास हो गया और फिर जान पर खेलकर भीड़ का एक विद्रोही प्रतिनिधि बनकर, पुलिस आने से पहले ही उस स्त्री को रिक्शे पर, शब्दशः, ले भागा। वह स्त्री इस समय बहनजी की संरक्षता में है। 'इंडिपेंडेंट' में चित्र सहित छपे हुए उसके बयान ने प्रदेश की राजनीति में एक नई हलचल मचा दी है।

नगर के एक बहुत बड़े घी व्यापारी का बदचलन बेटा अपने बाप से नाराज होकर स्वयं रमेश के पास आया। पक्के प्रमाण पाकर, खन्ना साहब की मदद से, पुलिस दल लेकर रमेश दुकान पर पहुंच गया। पुलिस को तिरपन कनस्टर मिलावटी घी, 'एगमार्क' के जाली लेबिल, घी जांच करने का सामान, एक टिन से दूसरे टिन में घी पहुंचाने का साइफन (ट्यूब) तथा मिलावट के काम में आने वाली अन्य वस्तुएं मिलीं। चित्र समेत उनका विवरण भी परसों छपा था। अब तक सेठजी के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं हुई।···

खाने से पहले, खाते समय, खाने के बाद रमेश अधिकतर स्वमुख से और मां-बाप, भाई-बहन द्वारा अपनी तारीफें और अपने आस-पास सारे जग की बुराइयां करता और सुनता रहा। इन पन्द्रह दिनों में खासतौर से नगर में 'रमेश' एक चर्चा वाला नाम हो गया है। और लोग जानें न जानें, पर इधर महल्ले-टोलों के लोग जानते हैं कि वह कौन है, किसका बेटा, किसका भाई है। कई शुभचिन्तक पुत्ती गुरू को समझा भी चुके हैं कि गुरू, लड़का तुम्हारा होशियार है, पर उससे कहो कि जादा दलदल में न धंसे, धंसेगा तो जान पर बन आएगी। पर पुत्ती गुरू इस समय शिवजी और श्री श्रीराम जी सरकार की सलाह से चल रहे हैं, उनका कहना है : "असिल बात ये है कि रामजी सरकार अब फिर से सारी दुनिया में रामराज लाना चाहते हैं। सो उन्होंने राजा इन्द्र को आज्ञा दी है कि देवसभा

बुलाओ। भगवान भोलानाथ देव-सभा में प्रलय ताण्डव का दर्शन कराएंगे। सो औढरदानी अपने नाच का साज सज रहे हैं। ये अखबार वाले सब उन्हीं के भूतगण हैं, उन्हीं के शंख, मृदंग, डमरू, भेरी बजाय रहे हैं। हम ससुर तब काहे चिंता करें, काहे बोलें। हमसे तो रामजी महाराज ने कह दिया है कि जब तक काया चले, ब्रह्म-कर्म से अपनी रोजी-रोटी कमाओ और भांग छान के चुप्पे पड़े रहो। तुम्हारा लड़का हमारा दामाद है, सो अपनी लड़की के सुहाग की चिन्ता हम आप करेंगे।···सो किए जाओ बेटा राम का काम, ये सोने की लंका तो फुंक ही के रहेगी।"

पांच बज रहे थे। रमेश ने रानी को अपने पहुंचने का यही समय दे रखा था। चलने लगा, ऊपर से नीचे आया तो भांग छानते हुए पिता बोले : "ठहरो रमेश, आज रामजी का तनिक-सा प्रसाद तुम भी पाते जाओ। अरे हां, साल का नया दिन है, विजया भवानी साल भर तुम्हें विजय देंगी।"

ससुराल पहुंचा। ठंडक अधिक बढ़ गई थी। कुंवर रद्धूसिंह की बच्चियां अपने कपड़ों से अनुकूल गर्मी न पाकर कण्डों का ढेर सुलगाकर उसके आस-पास बैठी धुयें में आंखों से पानी बहा रही थीं। उनका मुन्ना भैया बजरंगसिंह उन्हीं के पास, अलाव और धुयें से कुछ हटकर बैठा हुआ लपटें देख-देखकर किलकारियां मार रहा था।

सीढ़ियां चढ़ते ही बच्चे की किलकारियां सुनकर रमेश का मन भी वैसे हीं किलक उठा; सारा तन स्पंदित, स्फूर्तिवान हो उठा। उल्लसित डग सीढ़ियों पर चढ़े। दालान धुयें से भरा हुआ था, बादलों लदी शीत लहरी की शाम भी वैसी ही; दिया-लालटेन कुछ जलाया नहीं गया था। दरवाजे में घुसते ही रमेश को मिला अंधेरा, धुयें का कड़वा भभका और घुटन—एक गोड़सिया अलाव की लपटें, तीन सिलहुत और वही किलकारी। बदबू, घुटन, अंधेरा, सबको विस्मृत करके मोहनेवाली बच्चे की किलकारी उसके मन के प्रसुप्त जनक को मीठी चुटकी काटकर जगा गयी। "जीजा जी आ गये। जीजा जी आ गये।" रमेश ने बच्चे को उठाया। लड़कियां रसोईवाले दालान की ओर संवाददाता बनकर भागीं। सुमित्रो उठकर अपने दामाद का स्वागत करने आई। शिष्टाचार, खानपान के बाद पति-पत्नी जब बिदा लेकर गली में आये, तो रमेश के मन में अभी उमगी हुई इच्छा रानी को बतलाकर उसकी बांह पर खामोश चुटकी काटने की हौंस थी; मगर रानी अपनी बहती मनोधारा को ही वाणी की अटारी पर चढ़ा ले आई। उसके पिता के घर में अशांति है। कुंवर रद्धूसिंह और सुमित्रो का तनाव अब दोनों ओर से अपनी सीमाओं तक बढ़ चुका है। रद्धूसिंह जब से बैजू लाला के मुसाहब, ऊपरवाली किरायेदारिन, वहीदन के अर्दली, और रेशमी कुर्त्ता, बारीक धोती, इत्र-फुलेल, खिजाब के कीड़े बनकर जुए के पत्ते चाटने लगे हैं, तब से सुमित्रो उनकी कमाई की कानी कौड़ी तक नहीं छूती। दो-एक बार रीतू-सीतू को पैसे दिये, सुमित्रो ने देख लिया तो शान्त किन्तु कठोर स्वर में बच्चियों को आदेश दिया कि जाय के ऊपरवाली अम्मा को दै आव। कहना बाबू के पैसे गिर गये थे सो रख लीजिए। रद्धूसिंह अपने घर आते हिचकते हैं, और उस हिचक को तोड़ने का हठ साधकर जब-तब घुस भी आते हैं, बजरंगसिंह को गोदी में उठा लेते हैं, अपनी अम्मा के खाट पर जाके बैठ जाते हैं और गरज-गरजकर सुमित्रो को, उसके मैके-वालों को मल्लाही गालियां देते रहते हैं। दोनों बच्चियां, अगर घर में होती हैं

तो अपनी मां के साथ बन्द कमरे में जा बैठती हैं, जहां सुमित्रो के आदेश से वे ज़ोर-ज़ोर से ताली बजा-बजाकर भजन-कीर्तन गाती है और सुमित्रो सिलाई मशीन को अपने हाथ की बिजली से दौड़ाने के लिए, बैठ जाती है। एक स्थानीय गद्दा-तकिया फैक्टरी की काफी सिलाई सुमित्रो के हाथों से होती है। बहनजी ने उसे लगभग साठ-सत्तर रुपये महीने का यह बंधा हुआ काम दिलवा दिया है। घर के किराये से तो सुमित्रो को मतलब ही नहीं। इतने दिनों में बैजू लाला ने न तो कभी तगादा भेजा और न सुमित्रो ही ने एक धेला किराये का दिया। बैजू लाला और उसके पति के बीच में क्या समझौता है, यह उसे नहीं मालूम। बाकी खर्च वह स्वयं उठाती है। पति खुल्लम-खुल्ला ऊपर वहीदन के पास रहते हैं। कभी ऊपर से, कभी नीचे बैजू लाला के आंगन से और जब-तब अपने बीचवाले खन के घर में आकर भी सुमित्रो और उसके मां-बाप, घर वालों के लिए भद्दी से भद्दी गालियां बक, मनमाने आरोप लगाकर अपनी भड़ास निकाला करते हैं।

इधर एक नई घटना हो गई। चार-छह दिन पहले रद्धूसिंह एक दिन सवेरे बजरंगसिंह को गोदी में उठाकर ऊपर ले गये। सुमित्रो ने खाना बनाया, लड़कियों को खिलाकर स्कूल भेजा, सास के लिए कन्डों की गरम भूभल पर खाना ढंककर रक्खा; अब बजरंगिया के लिए अटक के बैठ गई।। सास से कहा कि भैया को बुलाओ। सासजी आजकल सुमित्रो से ऐंठी रहती हैं। सुमित्रो के हठभरे ब्रह्मचर्य, सुमित्रो का बाहर आना-जाना, सिलाई की मजदूरी करना, अपने बेटे रद्धूसिंह को सताना, रानी का ब्याह, इनमें एक भी बात से रद्धूसिंह की माता अब तक तनिक भी समझौता नहीं कर पायीं। उन्होंने भी सुमित्रो से काफी हद तक अबोला ही साध रक्खा है; रीतू-सीतू तक से मोह नहीं रहा; पोते की ममता तो बहुत है पर अब वो 'बहू का लड़का' भी हो गया है, इसीलिए दो महीने पहले एक दिन कह दिया : "अब तुम अपने लरिका का अपने संग-संग लै जावा करौ भाई, हमते अब दिन भर कोउ की चाकरी नाहीं हुई सकत है।" सुमित्रो तब से बच्चे को अपने साथ ही ले जाती है। इतने दिनों में बहनजी के घर के पुराने नौकर बिंदादीन का रानीबीबी के भाई से ऐसा लगाव हो गया है कि सुमित्रो अब तो खुद ही स्कूल जाने से पहले 'भैया' को बहिनजी के घर पर बिन्दा के पास छोड़ जाती है।··· अब इस समय ये भैया को ऊपर लै गये हैं, न जाने इनके मन में क्या है। सुमित्रो का मन बड़ी हलचल में। सास ने टके-सा जवाब दे दिया। ऊपर से पति के ज़ोर से पुकारकर भैया को खिलाने-चुमकारने की आवाज़ आ रही थी। थोड़ा-बहुत खा-पी तो चुका है भैया ऊपर···वो चिंता नहीं पर···मां का मन, पाप ही पाप की परछाइयां सी आयें-जायें, हौका बढ़ता जाय, मन लुप्प-लुप्प। फिर ग्यारह बज गये। स्कूल को देर तो हो ही चुकी थी, पर भैया न आया। अब आवाज़ भी नहीं सुनाई देती उसकी, या बाहर ले गये होंगे या सो गया है। घबराहट अब पथराकर हठ पर चढ़ गई। सुमित्रो कपड़े पहनकर सीधे बहनजी के यहां गई। बिन्दा से कहा; जब कहा तो कलेजा छूट गया, फफक के रो पड़ी। बिन्दादीन, यानी खन्ना-साहब 'इंडिपेंडेंट' का नौकर, जो उनकी अर्दली में चार महीने लंदन रह चुका है (वह भी अंग्रेज़ी जमाने में); डॉक्टर साहब के काम से खन्नाजी एक बार लंदन में रहे थे; बर्लिन-पेरिस तक घूम आया है। महल्ले बाजारों में बिन्दादीन के कारण खन्ना साहब के नाम का प्रचार यदि प्रतिदिन 'इंडिपेन्डेन्ट' की हज़ारों प्रतियों वाले नाम से बढ़कर नहीं, तो कुछ घटकर भी नहीं होता। बहिनजी खन्ना साहब

के मुंह पर बिन्दा को इनके अखबार के सब रिपोर्टरों से अधिक काबिल मानती है। उन अंग्रेज़ी जमाने के 'इंगलैण्ड रिटर्न्ड' खन्ना साहब के पुराने 'प्राइविट सर्वेन्ट' श्री बिन्दादीन के सामने सुमित्रो रो पड़ी।—बस बिन्दादीन के तन-मन में बिजली का करेंट घुस गया। आधे घण्टे में बजरंगसिंह बिंदादीन की गोदी में नज़र आ रहे थे।·· मगर इस बात पर गिरह लगी दूसरे दिन। सुमित्रो ने बजरंगसिंह को सबेरे से अपने पास ही रसोई-घर वाले दालान में रखा। रद्धूसिंह जैसे ही सामनेवाले दालान में आये, सुमित्रो ने लपककर लड़के को उठाकर अपनी गोद में लिया और रोटी बेलने लगीं। रद्धूसिंह का खून खौल उठा, पत्नी से बच्चा छीनने के लिए झपटे, सुमित्रो ने चूल्हे की जलती लकड़ी निकाल के हाथ में ले ली और खड़ी हो गई! गीदड़ भभकी। शूर कुंवर रद्धूसिंह स्वाभाविक रूप से अपनी मानसिक दुम दबाकर पीछे हट गये। फिर उनमें इतना साहस भी न रहा कि चौके के आगे अपनी मां वाले दालान तक में जा सकें। उल्टे पांवों लौट गये; उस समय एक शब्द तक न कहा। रात में पी के ऊपर वहीदन के घर से सुमित्रो को अपने से भी अधिक बूढ़े खन्ना साहब की रखैल घोषित करना शुरू कर दिया। सरदी की रात में कमरे से बाहर, छज्जे पर आ-आकर एक-एक आरोप घोषित करने लगे। खन्ना, बिन्दादीन के अलावा 'प्रेमानुज क्लोदिंग फैक्ट्री' के मालिक किशननरायन की रखैल, फिर उनके खजांची की रखैल,—जो नाम दिमाग पर चढ़ता गया, उनमें से हर एक की रखैल अपनी पत्नी को घोषित करते चले गये। वहीदन जबर्दस्ती उन्हें घसीट कर अन्दर ले गई। उस दिन से रद्धूसिंह ने घर में पैर नहीं रक्खा और मां ने सुमित्रो के हाथ का पका खाना नहीं खाया। बेटा बैजू लाला के नौकर के हाथों सबेरे-शाम दूध, फल, मेवा, मिठाई, जो कुछ भेज देता है, वो खाती हैं और बहू के घर आते ही उसको और उसके मैकेवालों को कोसने लगती हैं। अब उन्हें किसी से मोह नहीं रहा, बस आठों याम रोने और कसने ही से एकमात्र उनका मन जुड़ गया है। घर में एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि सुमित्रो को वहां रहना अच्छा नहीं लगता। गंदी-गंदी गालियां सुनते महीनों हो गये। सास रो-रो के कहती है कि मेरे बेटे के जीते जी रंडापे का नेम साध के मुझ अनाथ बुढ़िया की छई-छवाई मड़ैया उजाड़ना चाहती है। जिस बहू ने मेरे बेटे से उसका घर-परिवार छुड़ा दिया, उसे लेके क्या चाटूंगी? सुमित्रो बेचारी कहां तक सुने। आज तो रानी दिन भर मैके में रही, पर बाप की सूरत तक न देख सकी। दादी अब कभी 'खुस रहौ' से अधिक एक शब्द उससे बोलती ही नहीं। रमेश अपने विवाह के बाद ससुराल में पहली बार आने पर उनके पैर छूने गया था, पर उन्होंने पांव सिकोड़ लिये, सीधे मुंह बात न की, तब से यहां आने पर वो कभी उनकी ओर जाता ही नहीं।···और आज जब राह चलते रानी से इधर का सारा दास्तान सुना तो गंभीर हो गया, बोला : "मुझे तुम्हारी नई अम्मा से पूरी सहानुभूति है, मगर एक जगह पर उनका अन्याय भी देखता हूं।"

"अरे मैंने बहुतेरा समझाया, पर वो एक नहीं मानतीं। कहती हैं, भले ही अब तुम्हारी बात नहीं रही, पर पाप-पुन्न की तो अपनी जगह पे वैसे ही कायम है। अब तो वे जिस टेक पर टिक गई हैं, उससे फिलहाल उनका उतरना कठिन ही दिखाई पड़ता है, इसे न्याय-अन्याय तुम चाहे जो कह लो।"

रमेश चुप रहा, बोला : "भरी जवानी में इस तरह अपना मन मारना मजाक़ नहीं है रानी। और ये जुए का अड्डा किसका है?"

"बैजू लाला ही से कुछ सम्बन्ध होगा उसका। मुझे कुछ मालूम नही, पर इस समय बाबू की आमदनी जरूर अच्छी है। नई अम्मा बता रही थीं कि लाला बाबू को हाथों हाथ रखते हैं, पता नहीं ऐसा क्या काम करते हैं।" रानी ने कहा।

"सुनो जी, एक विचार यह आया है मेरे मन में अभी-अभी कि—तुम नई अम्मा से कहो कि जैसे ही बैजू लाला सवेरे आएं, वैसे ही सुबह उनके पास जाके कहें कि आप मेरे पति को ये दिन-रात की वाही-तवाही बकने से रोक दीजिए, नहीं तो मैं अपने जेठ कोतवाल साहब के पास जाऊंगी।"

रानी को भी लगा कि केवल इसी उपाय से सुमित्रो का घर रहना सम्भव हो पाएगा।

सम्भव तो हो जायगा, मगर ये भी क्या जीना है। मन की होली में घर फूंक रहा है। जयकिशोर का 'अस्तित्ववाद' भले चरित्र की इस बुलन्दी को न माने, पर रमेश का 'समाजवाद' मानता है। सुमित्रो ने अपने प्रण-पौरुष का तेज दिखलाया है; दुनिया जिस चीज़ के पीछे दीवानी है, उसे वह अपने पौरुष से तुच्छ सिद्ध करके दिखला रही है। यह उसके स्वाभिमान की जीत है।···पर कितनी जलन, कितनी टीस, कितनी पीड़ा! अपने ढंग से ससुर साहब भी पीड़ा पा रहे हैं। शक्ति छिछली और बुद्धि उथली होने के कारण वे उस पीड़ा को अपने भीतर नहीं पचा पाते, बाहर उछाल रहे हैं। अपनी-अपनी नेह-नाते की चैतन्यता के अनुसार सभी को दुःख हो रहा है, लेकिन जिनका यह दुख है उनके मर्म को भला कौन, कहां तक छू सकता है। वहां भोगनेवाला व्यक्ति निरा व्यक्ति, निरा अकेला है।··· यह अकेलापन रमेश को राह चलने के ध्यान ही में हिमालय से जर्रा बनाकर एकाएक सिहरा देता है।—चट से रमेश की बांह रानी के कन्धे पर पहुंच जाती है और देह से देह जुड़ जाती है। मन दुकेला होके राहत पाता है, तरी में बजरंग सिंह की किलकारियां···फिर सब भूल गया—खन्ना साहब, इंडिपेंडेण्ट, सुमित्रो, रद्धूसिंह, मां-बाप, भाई-बहन, दोस्त, इल्मी बहसें, समाजवाद व्यक्तिवाद···रह गया केवल अपना मन, अपनी लालसाएं और उमंगें।

'नौशेरवां मंजिल' के फाटक की खिड़की रमेश के हाथ का दबाव पाकर कुण्डा खड़काती हुई पीछे हटी और बड़े मियां का होश पिनक छोड़ के आगे आया: "कौन?"

"कोई नहीं, हम लोग हैं बड़े मियां, कुण्डी बन्द कर दूं?" रानी के पीछे रमेश ने अन्दर आकर अपनी बात पूरी की। रानी तब तक ऊपर जाने के लिए अपने दरवाजे का ताला खोलने लगी। बड़े मियां उठकर बैठ गये, नशे में सिर झटका कर कहा: "हां, बन्द कर दीजिए।···और सुनिए, बाबूजी, एक खबर बेचना है हमको, सो कैसे बिकेगी? आप तो अखबार वाले हैं, जानते होंगे।"

रमेश बड़े मियां के असली मतलब तक पहुंच गया, मुस्कुराहट आई, बोला: "ये तो खबर के ऊपर होता है बड़े मियां, कैसी खबर है आपके पास?"

बड़े मियां ज़ोर के नशे में थे। बैठे-बैठे गर्दन झूम जाती थी, मगर नशे की हवाओं भरे आसमान में अपने ध्यान की पतंग को चक्कर देकर ज़ोर से डोर तानी, तनी तो खुशी में पोपला मुंह हंसी से खिल उठा, बोले: "खवर हमाए पास है जो—वो बड़ी पुरानी है। ओल्ड चैना क्यूरियो का माल!"

"तब सुनाइए फिर?" बड़े मियां की नशे में अधभिची आंखें और ये मगन

मन मुद्रा, बाप की दी हुई विजया की तरंग में रमेश को भी मस्ती दे गई, वह सुनने के लिए खड़ा हो गया।

खटोले से पैर लटकाए, सिर कुछ झुकाए बैठे हुए बड़े मियां बाबादीन गंभीर हो गये, सिर तानकर कहा : "सुनाएं ?···तो तसव्वुर कर लीजिए आप कि नवाब सआदतअली खां बहादुर, शाहे अवध के दरबार में पहुंच गये हैं आप···संगेमर्मर है,··· संगे मूसा है ···समझ लीजिए कि पहाड़ के पहाड़ खड़े हैं···और सोने, चांदी, जमर्रुद, हीरे-मोती, जवाहरात और झाड़-फानूस और गुलाम औ' मुसाहबीन औ'—औ'—क्या नाम के साहब का बेटा जिये—इन सब आराइशों के जंगल के जंगल खड़े हैं। ये समझ लीजिए आप···और उस दरबार में हुज़ूर, दो बादशाह बैठे हैं—एक शाहे अवध नवाब सआदतअली खां बहादर और दूसरे हैं शाहे अदब जनाब मीर तकी मीर बहादर, अजीम उश्शान।" कहकर बड़े मियां चुप। जब आगे की कड़ी न जुड़ी तो रमेश ने कहा : "फिर ?"

"फिर ?" बड़े मियां चौंक के बोले और आगे बात बढ़ाई : "फिर ये कि शाहे अवध बदहजमी के शिकार हुए बैठे हैं और शाहे अदब भूख के शिकार हैं। बीबी-बच्चों ने हाथ जोड़ के उन्हें भेजा है कि दरबार से कुछ लाइए तो रोजे खुलें। और ये हैं कि 'वाह मीर साहब, वाह मीर साहब' सुन के अकड़ते हुए घर वापस आ जाते हैं।" बड़े मियां फिर चुप।

"फिर क्या हुआ बड़े मियां ? अस्ली खबर तो सुनाइए।"

बड़े मियां खटोले पर पैर समेटकर बैठ गये, बोले : "अस्ली और ताजा खबर है बाबू जी कि मीर साहब की बेगम पूछती हैं, मियां कुछ लाये ? और शाहे अदब फरमाते हैं कि बेगम, "आगे किसू के क्या करें दस्ते तमअ दराज़। वो हाथ सो गया है सिरहाने धरे-धरे।" कह के बड़े मियां खट से लेट गये और उनकी एक बांह उनका सिरहाना बनकर हथेली फैलाकर पाटी पर पसर गई।"

फैली हथेली पे रमेश ने हंसकर एक रुपये का नोट रखा। बड़े मियां ने चट से मुट्ठी बन्द करके दुआ दी : "जोड़ी सलामत रहे, खुदा करे जल्द ही बेटे का मुंह देखें।"

·····बजरंगसिंह की किलकारियां, मन की उमंगें···पैर पर लगाके सीढ़ियों पे उड़ने लगे।

छह बजे सुबह नल के नीचे नहाकर लच्छू बन्द कमरे में कपड़े पहन रहा था। महाराजिन ने दरवाजा खटखटाया। बनियाइन के ऊपर ऊनी चदरा डालकर लच्छू ने किवाड़ खोले और पैलगी कही कि इतने ही में मीठी बानी में महाराजिन की दास्तान शुरू हो गई : "हम बचवा, यहि खातिर सवेरे-सवेरे आएंन कि अब तुमहूं चले जैहो औ' हमहूं अपने कामे पे चली जाब। औ उयिके बाद तुमरी सहदेई के देखुवा आय रहे हैं उन्नाव जिला ते। काल्हि संझा की बिरियां उयि लिखावे मां धरि के आपन चिट्ठी पठाइन। तौन हम सहदेइया ते कहा कि बांचौ। तौन उयि लजाय गई। फिर जब रात मां तुमरे चाचा आये तौ हम उनते कहा कि बांचौ; तौन कहिन कि हमार चसमा टूट गवा। हम रात-भर छटपटाने कि जाने का लिखा है। अवैया रहै तौ का अब न अइहैं। तनी बांच देव भैया, तो हमका समुझ परै।"

कागज़ पर बीचोंबीच राधाकृष्ण के एक ब्लॉक के साथ 'ॐ तन्नो कामः प्रचोदयात्' छपा था। बाईं तरफ नाम: आयुर्वेद मार्तण्ड, कामवैद्य पं० छन्नूलाल द्विवेदी उर्फ छन्नूजी, उपनाम मन्मथ कविभूषण और दाहिनी ओर पता छपा था। श्रीपत्री जोग लिखी से लेकर अत्र कुशलम् तत्रास्तु तक चार-पांच पंक्तियों के परम्परागत शिष्टाचार के बाद का मज़मून लच्छू पढ़कर सुनाने लगा : "आगे शमाचार ये हैं कि हम अपनी पुब्ब प्रतिज्ञानुसार कल प्रातकाले नौ-दश बजे तक आपके घर आवेंगे। वो हमारा औषधीग्रहण करने का टैम होता है इससे आप प्रात काले ब्राम्मः मुहूर्त में सुद्ध निखालिश गऊ का डेढ़ सेर दुग्ध मंगवाय के औटा लेवैं। हमारे आवने तलक वो तीन पाव आधा शेर औटाते-औटाते रह जाना चाहिए। उसमें अपुब्ब शुगन्धी यथा केशर, इलैची इतियादि समुचित मात्रा में मिलाय के तयार रखें। और जो हमारे भतीजा चि० गोपीकृष्ण हमसे पहले आय जावें तो उन्हें सशम्मान पुब्बक, यथा राजपुत्र वत् बैठाल के खातिर से रखना। और बारा बजे ठीक टैम शे हम भोजन करेंगे, सो हम उस समय नमक और अन्न नहीं ग्रहण करते शो हमारे लिए मिष्ठान्न, फल और दही तथा हमारे भतीजा चि० गोपीकृष्ण के लिए छप्पन व्यंजन षटरस भोग आप चौकश प्रस्तुत करेंगे। तभी हम कन्या को देखेंगे। दिन में अगर आपका कोई विश्वाशपात्र धनी रोगी हमारे पास ताकत के लिए आवना चाहैं तो पक्का कर रखियेगा। वैसे फीश हमारी पांच रुपया है परन्तु अपनी चतुराई और प्रचार शे आप यदि मुझे अधिक फीश दिलवा सकेंगे तो आपकी शुकन्या के व्याह की वातचीत पर उसका अशर भी विचार्णीय रहैगा। इति।"

'अरे खैर यू सब खातिर-बात तो चौकस हुई जैहै, बाकी राजी हुई जांय कौनो तरीके ते, तौ सहदेइया हमार छाती से भार अस उतरै।"

सहदेई की छोटी बहन तारा तब तक गरम परांठे और दूध लेकर आ गई। बिजली की केतली में पानी उबल रहा था। लच्छू ने चाय डालकर स्विच बन्द किया। चाची अपनी रामायण सुनाती ही रहीं : छन्नू जी कामवैद्य रसिया हैं। गांव में किसी से दुश्मनी थी, उन्होंने इन्हें एक भंगिन सुन्दरी के संग रंगे हाथों पकड़वा कर बिरादरी से निकलवा दिया। घर में थोड़ी-बहुत माया है, महाजनी भी करते हैं। एक भतीजा है, यहीं रेलवे लोको वर्कशाप में काम करता है। वही वारिसदार है, पर विवाह नहीं हो पा रहा।

लच्छू ने कहा : "तब तो हो जायगा। अच्छा, आज दिन में मेरा खाना नहीं बनेगा चाची।"

"वाह, आज तौ हमरी तरफ ते खैहो तुम। नौकर का ज़रूर भेज्यौ।"

"नहीं चाची, आज मुझे एक और जगह खाना है। और तारो, देख बिटिया, नीचे वाली गोपी से कहना कि भैया ने एक मिनट के लिए जल्दी बुलाया है, काम है।"

"गोपी ते काम है?" चाची संदेह और ईर्ष्या के कोठे पर चढ़ गईं।

"उसने नौकरी के लिए कहा था सो एक जगह बात चली है।"

"बाकी बहुतै खराब हैं ई बहिनै। अरे हम एक ते एक अच्छे-अच्छे सिंधी-पंजाबिन का देखा है—बड़े भले औ' धरमात्मा। और एक ई हैं कि अपने पुरखन का नाँव डुबाय रही हैं। अरे जौन चाहैं तौन करें, बाकी तुम हमार पुरबले जनम के पूत हो, यहिते कहा कि इन ते बचे रह्यो।"

लच्छू ने चाय बनाते हुए आश्वासन दिया। महराजिन ने इतनी सब भूमिका बांधने के बाद दिन-भर के लिए लच्छू का कमरा मांगा। इतने में गोपी ऊपर आ गई। चाची कमरे की चाभी सहदेई को दे जाने के लिए कहकर गोपी की हवा तक से बचती, मुंह बिदकाती हुई चली गई।

"बैठिए। चाय पीजिए। कुछ खाइए। खैर चाय तो पीजिए ही एक प्याला।"—तकल्लुफ़ात की बातें करते ही सहसा लच्छू की तबीयत कपड़े पहनने की हो आई। बनियाइन-अण्डरवियर में वह चाची के सामने नहीं आ सकता था, हालांकि चाची जिस समाज में रहती हैं, उसमें वह पूरी सभ्य पोशाक पहने था। गोपी की उपस्थिति के प्रति पूरी लापरवाही दिखलाते हुए उसने कमीज-पतलून पहनी और कहता चला : "मिस मनसुखानी, उस दिन आपने मुझसे काम दिलाने के लिए कहा था। आज शाम को सात बजे तक मेरे 'पैराडाइज' में आ जाइए। खाना बाहर ही खाना है और शायद है रात में देर से आएं, या शायद न भी आ सकें।"

"काम तो—मैं ट्यूशन पढ़ाती हूं—"

"हां, ट्यूशन ही पढ़ाना है। एक बहुत बड़े उस्ताद को पढ़ाना है। हो सकता है कि उसे पढ़ाते-पढ़ाते तुम्हारी तकदीर ही खुल जाय शायद।"

"आपकी बात बिलकुल मेरी समझ में नहीं आई।"

"देखो गोपी, बनो मत। यह मत समझो कि मैं तुम्हें नहीं जानता। आज की शाम तुम मेरी 'गर्ल' हो और मेरे एक दोस्त को 'एन्टरटेन' करोगी। वो बहुत-बहुत बड़े आदमी हैं, तुम देखते ही समझ जाओगी। मैं तुम्हें अपनी तरफ से पचास रुपये आफर कर रहा हूं। पच्चिस अभी एडवांस दे सकता हूं। पच्चिस शाम को दूंगा। बोलो।" लच्छू खाने बैठ चुका था। इतनी देर में सब मिलाकर मुश्किल से उसने दो-चार ही सेकेंड उसे उचटती-बिछलती नजरों से देखा होगा, वरना बातें करते हुए भी अपना काम करता रहा।

गोपी का बनावटी मुख सहज दीन हो गया, बोली : "सत्ती को कुछ मत बताइएगा।"

"अरे सती छोड़ मैंने कभी आज तक तुमसे कुछ कहा था। वो तो इधर तुम आठ-दस बार चार-पांच नये-नये लोगों के साथ 'पैराडाइज' में दिखलाई दीं और उस दिन तुमने मुझसे काम मांगा। पड़ोस में रहती हो। शराफ़त का तकाज़ा है कि पड़ोसी का भला करूं। वरना, तुम छोड़ शहर में तीन सौ साठ लड़कियां हैं।"

लच्छू ने गोपी से अपना पर्स तकिए के नीचे से उठवाया, सौ से ऊपर रकम थी। बाएं हाथ से दस-दस के तीन नोट खींचकर गोपी की तरफ बढ़ा दिए, फिर आंखें मिलाके उसे देखा और कहा : "अगर आज तुमने मेरे कहे मुताबिक सब काम अच्छा कर दिखलाया तो मैं तुम्हें एकदम से 'रिस्पक्टेबिल' (सम्माननीय) बना दूंगा। सत्ती क्या है, एक मामूली टेलीफोन गर्ल। मैं अपने खर्च से शार्टहैण्ड टाइपिंग सिखलाकर तुम्हें प्रदेश के एक बहुत बड़े मिल-मालिक का स्टेनो-कम-प्राइवेट सेक्रेटरी बनवा दूंगा। मोटर, बंगला, नौकर-चाकर। बस जैसा मैं कहूं, करती चलो। समझीं। गुड लक। जाओ और ठीक सात बजे।…"

गोपी सहमी, चौंकी और कुछ-कुछ अनजाने उल्लास से उभचुभ, हथेली में पहेली से तीस रुपये बन्द किए, अदब से 'थैंक्यू' कहकर चली गई। लच्छू यह अदब पाकर खुश हुआ। इस समय वह लम्बे खेल में लगा हुआ है। बैजू लाला के

कहने पर जिस लच्छू ने सेठ रेवतीरमन को भोगांगना सप्लाई करने से साफ इन्कार कर दिया था, वही लच्छू आज उन्हीं रेवतीरमन को खुश करने के लिए गोपी से सौदा पटा रहा था। जिस लच्छू ने अपने बचपन के मित्र हर्रो को चार बच्चों की मां, एक दर्जिन से प्रेम लड़ाने पर नौकरी से निकाल दिया था, वही लक्ष्मीनारायन खन्ना इस समय खुद तीन बच्चों की मां, एक चालीस-बयालिस वर्ष की सेठानी के चक्कर में यह सब दंद-फंद कर रहा है। तब जो पाप था, अब वही पुण्य है। हर्रो तो स्त्री में स्त्री को देखता था, लेकिन लच्छू स्त्री में आर्थिक मुनाफा देख रहा है। हर्रो को दुकान पर नौकर रखने के मतलब थे कि उसके प्रेम के फेर में हर महीने सौ-पचास की चोरी होती जबकि लच्छू का इश्क दुकान की रौनक बढ़ाएगा, उसके नसीबे को कहीं से कहीं उड़ाकर पहुंचा देगा, इसलिए हर्रो का पाप लच्छू का पुण्य है।

"चौधरी" सुगन्धियों की दुनिया में जाना-माना एक ऊंचा नाम है। इत्रों, सेंटों और शृंगार-प्रसाधनों का कारोबार है और लाखों रुपये साल का बिजनेस अब तक होता है। चौधरी मोशाय कई वर्ष हुए, लगभग बयासी वर्ष की आयु में गो-लोकवासी हो गए।

उनकी विधवा अब चालीस-पैंतालिस वर्ष की हैं। बड़ा लड़का लगभग बाईस-तेईस वर्ष का है। सेठ रेवतीरमन ने आजकल उसे सुगन्धियों का काम सीखने-समझने के लिए फ्रांस भेज रक्खा है। अठारह-उन्नीस बरस की लड़की है और एक दस बरस का लड़का है, जो उसी साल और उसी महीने में पैदा हुआ जब उसके तथाकथित पिता चौधरी साहब मरे थे।

चौधरियों का कारखाना एक प्राइवेट लिमिटेड संस्था के अधीन था, तीन भाइयों की हिस्सेदारी थी। छोटे भाई बड़े चौधरी के सामने ही अपना हिस्सा-पत्ती मंझले भाई के नाम बेचकर पेरिस में जा बसे थे। उन्होंने वहीं विवाह भी कर लिया था। मंझले चौधरी को मरे भी अब छह-सात वर्ष हुए। उनके सब लड़के नालायक निकले; उन्हीं के हिस्से हथियाकर लाला रेवतीरमन इस धंधे में घुसे। बड़े और मंझले मालिकों के मरने के बाद कारखाने और दफ्तर में आपा-धापी का राज हो गया था। मिसेज चौधरी अपने भविष्य के लिए घबराने लगीं। लाला रेवती-रमन के आने से कार-बार फिर से सम्हला। उस समय तो श्रीमती चारुलता चौधरी भी अपने आर्थिक लाभ की पूर्ण सुरक्षा के लिए घबराकर आपसे आप घड़ियाल के मुंह में चली गईं और अब पछताती हैं। रेवतीरमन ने उनके लड़के के बालिग होते ही उसे बुजुर्गवत् अमेरिका-योरप की सैर पर काम सीखने के बहाने भेज रक्खा है। इस समय चौधरी की जगह पर रेवतीरमन बैठे हैं, और वो बैठे ही रहना चाहते हैं, बैठे रहने के लिए तरह-तरह की पैंतरेबाजियां किया करते हैं। दूसरी जनवरी को लच्छू उनके यहां शोक-संवेदना प्रकट करने के लिए गया था। संवेदनार्थियों की भीड़ छंट जाने पर लालाजी एकाएक लच्छू से बोले : "इलेक्शन में काम करोगे? बनर्जी बाबू को खड़ा करने की बात सोच रहा हूं।"

बनर्जी चौधरी के जनरल मैनेजर हैं। वहां की नयी व्यवस्था करते हुए लाला रेवतीरमन ने ही उन्हें एकाउटेंट से जनरल मैनेजर बनाया था। 'लघु उद्योग सहायता फण्ड' से लच्छु के 'पैराडाइज' के वास्ते लालाजी चौधरी की दुकान ही से उसे रकमें दिलवाते थे, कई बार आना-जाना हो चुका था। बनर्जी कुर्सी पाकर अब अपना जाल फैला रहे थे। चौधरी की लड़की उनके बस में थी,

मिसेज़ चौधरी को भी वो अपने चंगुल में करना चाहते थे। लालाजी बनर्जी की मंशा समझते थे, लेकिन परिस्थितियां ऐसी थीं कि वे बनर्जी को अब एकाएक निकाल भी नहीं सकते थे। उन्होंने आनेवाले चुनावों से प्रेरणा लेकर बनर्जी पर एम० पी० बनाने का लालच भरा फन्दा फेंका। पदलोलुप बनर्जी चकमे में फंस गया है। इधर दस-बारह दिन पिता के क्रिया-कर्म और सूतक की वजह से लाला रेवतीरमन घर से निकल न पाएंगे और उन्हें उस फ़ितने बनर्जी की ओर से बड़ी ही चिन्ता है। वह मिसेज़ चौधरी ही की उम्र का है। मिसेज़ चौधरी जो अब तक पूरी बेबसी की हालत में रेवतीरमन के पिंजरे की चिड़िया हैं, किसी तरह उनसे मुक्त होना चाहती हैं। रेवतीरमन के पास उनकी काली कमाई की कुंजी है। वे उन्हें मिनट-मिनट में फटकार देते हैं, घर से निकालकर दर-दर की भिखारिन बनाने की धमकी भी दे चुके हैं। मिसेज़ चौधरी बेबस हैं। वो स्वयम् अपने ही घर में बंदिनी हैं। लच्छू किसी हद तक इस किस्से को जानता था; लाला रेवतीरमन के प्रश्न का उत्तर देते हुए बोला : "लालाजी, मैं तो आपका ताबेदार हूं, सरकार जो आज्ञा देंगे, वही करूंगा। मगर आप क्यों नहीं खड़े होते हुज़ूर, बनर्जी है किस लायक, आप ही ने उसे ज़र्रे से सूरज बनाया है।"

लाला रेवतीरमन ने इसी बीच में घण्टी बजाई, नौकर आया। उसे आदेश दिया कि दस मिनट तक कोई कमरे में न आये, फिर लच्छू को निकट बुलाकर धीरे से बोले : "चौधरानी के पास जाओ—हमारी तरफ से नहीं; अपनी तरफ से। उससे कहो कि एम० पी० शिप के लिए इंडिपेंडेंट खड़ा करना चाहते हैं आपको। हाजी की पूरी सपोर्ट बतलाना और यह भी कह देना हमारा नाम ले के—कि अगर आप खड़े होने का निश्चय कर लेंगी तो वो फिर बनर्जी के बजाय आप ही को बैक करेंगे।···समझे। पटाओ उसको।···मैं चाहता हूं कि बाबूजी की किरिया तलक वो शाम के बाद अपनी कोठी में न रहे। दिन में शोभना के जागते बनर्जी मां के पास नहीं आएगा।···कर सकोगे यह ?"

दोनों हाथों से फर्श छूकर रेवतीरमन के पैर छूने का अभिनय करके लच्छू बोला : "आपके चरणों का प्रताप मेरे वास्ते बना रहे। काम हो जायगा।"

"औ' देखो अगर अपना भाग्य जगाना है तो ज़िम्मेदारी को तौल-तौल कर कदम-कदम पर निभाते रहना। जाओ।"

काम लच्छू ने कर भी दिखलाया। मिसेज़ चौधरी अपने संसद् सदस्य होने की कल्पना मात्र ही से उल्लसित हो गईं। "बनर्जी को पता न लगने पाये।"—"हर्गिज नहीं"—सेठानी का हाथ पोढ़ा हुआ। लच्छू से व्यक्तिगत रूप से भी खुलकर कुछ पूछताछ की—"अच्छा। 'पैराडाइज़' आपका है !"—"अच्छा सारसलेक भी रह आये हैं। रशा ! ओः लवली। तब तो आपसे मुलाकात होगी। मैं आपके प्रस्ताव पर विचार करूंगी। मुझे सेठजी से भी सलाह लेनी होगी और आजकल वे सूतक में हैं।"

"इसकी चिंता न कीजिए आप। मैं आज किसी समय मौका देखकर सेठजी साहब से खुद भी निवेदन करूंगा। मैं समझता हूं कि उन्हें एकाएक नाम नहीं सूझा आपका। पुराने ज़माने में अंधेरा चिराग तले रहता था सो हमारे पूज्य सेठजी तो, माफ़ कीजिएगा, पुराने आदमी हैं। मगर हम हैं नई रोशनी के बल्ब, हमारे तले अंधेरा नहीं—"

"ऊपर होता है। हः हः हः। लेकिन ये ऊपर का अंधेरा अच्छा। आनन्द से

आंख मींच कर आदमी अपनी मनमानी किए जाए—"

"क्षमा कीजिएगा सेठानीजी, बस यहीं बात पूरी कर दीजिए तो अधिक सुन्दर लगेगा। जवानी मनमानी ही होती है। ऊपर का उजाला शायद बूढ़ों की ज़रूरत है। हम अभी से उसका चर्चा ही क्यों करें।"

लच्छू सम्पूर्ण रूप से अपने-आपको लाला रेवतीरमन की एक शतरंजिया गोट बना देता है। मिसेज़ चौधरी की एक-एक बात आके रेवतीरमन को बतलाता था। आठ दिनों में, दिन के ढाई घंटे की बैठक में इसका घोड़ा हर दिन ढाई घर ही चला। सेठानी लच्छू के बूढ़े 'मालिक' की जवान आश्ना थी, सेठजी ने उसे 'पटाने' का आदेश दिया था। लच्छू किस सीमा तक आगे बढ़े ? सेठानी सीमाएं तोड़ने को व्याकुल हैं।

जिस दिन रेवतीरमन ने बाप का दसवां किया, उसी रात में लच्छू ने उनसे कहा: "हुज़ूर, बड़ी दबी ज़बान से शिकायत करता हूं, बच्चा हूं आपका, मगर आपने मुझे अजब दलदल में फंसा दिया है। बनर्जी की तरफ़ से तो ख़ैर आप निश्चिन्त हो जाइए—"

"वो ख़ैर मैं हो गया। वह लड़की से मां के ऊपर मुकदमा दायर कराने जा रहे हैं।"

"मुकदमा ?"

"हां, कि संरक्षता की मीयाद पूरी हो जाने के बाद भी वे हमारा हिसाब-किताब हमें नहीं समझातीं। हमको भी लपेटा है कि हमारी वजह से उनके घरेलू जीवन में अनैतिक और अनुचित प्रभाव पड़ता है।"

"अच्छा !"

"ये खोखा ने उकसाया है। एम० पी० शिप के लिए भी उधर ही से ज़ोर भी लगेगा। पी० एस० पी० का टिकट शायद मिल भी जाएगा उसे।"

लच्छू अपने मन में खलभलाया। उसकी एक टांग हाजी की नाव में भी है। कहीं ऐसा न हो कि दो बड़े पूंजीपतियों के चक्कर में पड़कर उसकी चमगादड़-गति हो जाय। रेवतीरमन के मौन में केवल एक क्षण ही लगा, लेकिन वह क्षण लच्छू के लिए अति सक्रिय विराट था; वह क्षण एक मेहनत के लिखे मज़मून पर अचानक उलट जानेवाली दवात की स्याही की तरह आदि से अन्त तक फैलाव पा गया था···तभी सेठजी बोले: "मगर खोखा इस बार मुझसे शर्तिया मार खा जायगा। हाजी साहब आज ही दोपहर में किरिया के इन्तजाम की देखभाल करने आये थे। पुरानी वजेदारी वाले लोग हैं। ख़ैर, तो चौधराइन को एम० पी० बनवाने में वो मेरा पक्का साथ देंगे। कहने लगे, खोखा मियां ने अभी तक तो मुझसे बनर्जी के मामले में कोई सलाह नहीं ली; अब तो ख़ैर मिसेज़ चौधरी के मामले में मैं आपके साथ हूं। या कांग्रेस के टिकिट पर या पी० एस० पी० — मैंने कहा अब आप ही जानिए, ये सब मैंने तो अब आप ही को सौंपा। हाज़ी राज़ी हो के गए हैं।"

लच्छू की जान में जान आई, बोला: "सरकारजी, आपका इक़बाल ऐसा है कि चाहते ही काम हो जाता है। मगर मेरे लिए अब क्या आज्ञा होती है ? वहां जाऊं कि न जाऊं ?"

लाला रेवतीरमन एकाएक लच्छू के मुंह की तरफ देखने लगे, फिर पूछा: "ब्याह हो चुका तुम्हारा ?"

"जी नहीं।"

"लखपती बनना चाहते हो?"

"मैं तो आपके चरणों की धूल बनना चाहता हूं।"

"वह एक बात हुई।...मैं कह नहीं सकता कि तुम एकाएक इस मामले की लपेट में कैसे आ गये। कोरे भाग्य की बात है। तुम्हारा नसीबी तेज़ है और काम भी तुमने अच्छा किया। अभी दो-तीन बरस शादी-वादी मत करना। औरत से सिर्फ बच्चे ही पैदा नहीं किए जाते, रुपये भी पैदा किए जाते हैं।"

लच्छू भी इस दर्शन में विश्वास रखता है। यों कहने को रमेश जरूर उसका भाग्य खोलने में सहायक हुआ, उसकी मेहनत और व्यवहार ने भी उसे ऊपर उठने में सहायता दी। अपने रूस जाने के इकलौते चमत्कार को ही उसने भाग्य माना और वह उसे ज़नानी-राजनीति ही की कृपा से मिला था। यों भाग्य खोलने का बहाना तो दरअस्ल लाला रावेरमन की मातम-पुर्सी ही थी, पर उसमें भी स्त्री ही भाग्य-लक्ष्मी बनकर आ रही थी।...अपनी सोवियत यूनियन की यात्रा के दौरान उसकी नारी सम्बन्धी विचारधारा में जो परिवर्तन आया था, वह अब फिर ग़ायब हो चुका था, और इस बार अनुभव-सिद्ध पोढ़ाई के साथ। सारसलेक में वह बदमाश बनाया गया था और अब यहां वह बदमाशों के गिरोह में बदमाश की हैसियत से प्रवेश पा रहा था। समाजवाद इत्यादि सब अच्छी बातें हैं, मगर भूखे और बेसहारे लोग इसे ला नहीं सकते हैं। डॉ० आत्माराम और हाजी नबीबख्श पैसे के बल पर समाजवाद ला रहे हैं। पैसा ही अस्तित्व है। इन बाघ-भेड़ियों के जंगल में जीने की सुरक्षा चाहिए। लच्छू अपने पिता के ऐसा जीवन नहीं बिता सकता। पिता की और अपनी ग़रीबी से उसे चिढ़ है। वह पैसा चाहता है, वह शान से रहना चाहता है, धर्म-कर्म, पाप-पुण्य, पूंजीवाद, समाजवाद—ये सब कुछ अवसरवाद के आधार पर ही टिके हैं। 'औसर चूके पुनि पछितैहो।'

लाला रेवतीरमन जानते हैं—मिसेज़ चौधरी की खाई-पली देह को उस तरीके से अधिक दबाना और चिढ़ाना अब घातक भी हो सकता है। एम० पी० बनाने के बाद वह दिल्ली जाकर आज़ाद हो जाएगी। लाला रेवतीरमन उसे दिल्ली भी भेजा चाहते हैं और गुलाम भी बनाए रखना चाहते हैं। रेवतीरमन फ़िलहाल लच्छू को उपहार स्वरूप भेंट करके मिसेज़ चौधरी का अंत-विद्रोह शांत करेंगे, आगे फिर दिल्ली के अंकुश का भी कुछ सोचा जायगा। लच्छू छोटा आदमी है, इसे पचीस-पचास हजार कमवा दिया जायगा तो हरदम हाथ बांधे रहेगा। बिदा देने से पहले लच्छू से बोले: "आदमी की एक उमर ऐसी भी आती है, जहां उसकी शक्तियां थक जाती हैं, मगर हविसें नहीं थकतीं। खास-तौर पर जिनके यहां धन अथाह बढ़ता ही जाता है। धन आदमी चाहता ही क्यों है, हविसों को पूरी करने के लिए, अपने संतोष के लिए।...सुनो, परसों मैं अपनी तृष्णाएं जगाने और बुझाने वहां जाऊंगा। रात में आठ बजे तक पहुंच जाना। एक ज़रा अच्छी-सी छोकरी जरूर साथ ले आना। समझे। और तुम वहां अचानक ही पहुंचोगे मेरी तलाश में। बहाना सोच लेना। समझे। खाना-पीना फिर वहीं होगा। मिसेज़ चौधरी को पुरुष का सुखदायी संग और तुम्हें एक पैसा पैदा करने की मशीन, परसों दो उपहार दूंगा। और तुमसे तो साफ-साफ कह

दिया, मगर चारुलता को ये न मालूम होने पाये कि तुमने मेरी जानकारी में उसे पाया है।"

लच्छू जब उस रात में वहां से चला तो खुशी मन में समा नहीं रही थी। उसने इसी योजना के अंतर्गत गोपी को 'काम' दिया है। शातिर बनर्जी को अपने रास्ते से अलग करते हुए, मिसेज़ चौधरी के विद्रोही अंतर्सत्य को स्वीकार करते हुए लाला रेवतीरमन, यदि अपने ढग से चालाक बनकर, मिसेज़ चौधरी को संतोष देने के लिए नई गोटी समझकर, यदि अपने लिए लच्छू को प्यादे से वज़ीर बनाते हैं तो लच्छू भी अपनी मोटी अपने काबू में रखना चाहता है। अर्थ और काम, बुद्धि और भावना—जहां दोनों एक-दूसरे को दुहकर ही बढ़ते हैं, कभी स्वार्थ में सीधे टकराने पर अपूर्व विस्फोटक बन जाते हैं। लच्छू अभी-अभी भुगत कर आया है। लेकिन यह वो कैसे अस्वीकार करे कि स्त्री ने ही उसके अंदर यह अर्थ-चेतना जगाई है। हज़ार बेलौस नाता, विशुद्ध शारीरिक व्यापार होने पर भी उस 'हरामज़ादी' उमा के लिए लच्छू के मन में अब तक कहीं पर ऐसा कोमल भाव है कि अवसर पाने पर ज़रा भी नज़र चूकते ही उमा उस पर अब भी हावी हो सकती है। हावी वो अपने ऊपर किसी को भी न होने देगा। लच्छू लघु-लघुतम बने रहकर, मन ही मन महानों से महा नफ़रत करके, खुशामद की कुंजी से इन महानों की तिजोरियों को खोलकर, चोरी-चोरी एक अपनी भी तिजोरी बनाएगा। एक ग़रीब को अमीर बनने का अधिकार है। रूस में सरकार ग़रीबों को अमीर बनाती है और यहां हमारी सरकार के पास जब ऐसी कोई तरकीब ही नहीं तो गरीब बेचारा क्या करे, अमीर बनने के लिए उसे यही उपाय करना होगा। लच्छू अब किसी की परवाह किए बिना इस काजल-कोठरी में अपने स्वार्थ की टार्च ले के पैठेगा। निठल्ले, चप्पल चटकाऊ, काफ़ी हाऊसों में बैठ के अमीरों को कोसने से समाजवाद नहीं आया करता।

लच्छू अपने 'समाजवाद' के लिए तन-मन-धन, एक लगन से जुट गया। वह सेठानी से आंखें लड़ा रहा है तो पैसा कमा रहा है; सेठ की अर्दली में बारह-बारह घण्टे खड़ा है या एक टांग से नाच रहा है तो पैसा कमा रहा है; खोखा मियां के सामने हिन्दुओं को गालियां दे रहा है, हाजी नबीबख्श के सामने इन्सानियत की बातें कर रहा है, यूनियन लीडरों और महत्वपूर्ण वामपंथियों से अपनी जान-पहचान कर रहा है, सेठानी का इलेक्शन लड़ रहा है—जो कर रहा है वह सिर्फ पैसा और पोज़ीशन कमाने के लिए। पैसा और पोज़ीशन!—और इनकी सिद्धि के लिए होनेवाले संघर्ष की थकन को हरने के लिए स्त्री और शराब या ताश!—और इनकी सिद्धि को बरकरार रखने के लिए फिर पैसा और पोज़ीशन!

लाला रेवतीरमन के बाप के मरने का सूतक और मिसेज़ चौधरी का इलेक्शन लच्छू उर्फ श्रीमिस्टर लक्ष्मीनारायण खन्ना का भाग्य बन गया था। भाग्यशाली बनने के जुनन में उसे दीन-दुनिया का होश न था।

"हैं! तुम्हें खबर ही नहीं? हद है? और हुसैनाबाद में रहते हो? यहां सारी दुनिया, हज़ारों की खिलकत मिडकल कालिज़ में जमा है। तहलका मचा गया हैगा कि हुसैनाबाद की गाय है, हुसैनाबाद की गाय है और तुम इसी मुहल्ले के, अखबार

में दुनिया भर की जांच-पड़ताल करनेवाले—और इतने आदमियों के बीच में यह कहते तुम्हें लज्जा नहीं आई कि बाबू हमें तो खबर नहीं। नाक कट गई आज हमारी इन सबके सामने।" पुत्ती गुरू इस समय रमेश पर करारा ताव खा गए थे। उन्हें भरपूर विश्वास था कि उनका रमेश सही खबर सुनाएगा और यही धाक जमाने के लिए वो इस समय गंगी गुरू, अम्बेशंकर और रद्धू तमोली के बाप दुल्ले खलीफ़ा को साथ लेके जाड़े की शाम में पहली बार रमेश के यहां आए थे। खबर यदि इतनी ज़ोरदार न होती या अपने बेटे की योग्यता पर इतना ज़ोरदार विश्वास न होता तो इस समय क्या पुत्ती गुरू इतनी दूर आ सकते थे। शाम को चार बजे एकाएक खबर फैली कि हुसैनाबाद के एक घोसी के यहां एक गाय को लड़की पैदा हुई है। पैदा होते ही वह लड़की धीरे-धीरे बढ़ने लगी। जब ये अचम्भा देखा तो सब लोग गाय और लड़की को लेकर मेडिकल कालिज के अस्पताल में गए। वहां पहुंचते-पहुंचते तक वो लड़की पूरी औरत बन गई, बिलकुल देवी ऐसी! उसने आंखें खोलीं, डॉक्टरों को और सबको देखा, मुस्काराई और कहा कि मुझे क्या देखते हो, अबकी होली पे देखना। खून की होली होगी। ये कहके वो मर गई। अब हिन्दू कहते हैं कि गाय के पेट से देवी ने जनम लिया था इसलिए चिता पे जलाएंगे। और घोसी कहता है कि गाय मेरी है, हम सब मुसलमान मिल के इस देवी की मजार और मकबरा बनाएंगे। अस्पताल वाले कुछ बतलाते नहीं, वे कहते हैं कि झूठ है। कोई सच कहे कोई झूठ। रद्धू के चबूतरे पर तीनों सरनाम नशेबाज सत्य को अपनी-अपनी समझ के सूप पर फटक रहे थे कि रुप्पन के घर जाने के लिए चौथे सरनाम पुत्ती गुरु वहां से गुज़रे। चूंकि हुसैनाबाद का मामला था, इसलिए रमेश को मालूम होना ही चाहिए। उस समय उन तीनों बूढ़ों के मन में सत्याग्रह चूंकि तीव्र था, इसलिए पुत्ती को घेरकर चारों हुसैनाबाद पहुंचे।...और रमेश कहता है कि उसे खबर ही नहीं। पुत्ती गुरू ताव खा गए।

रमेश को पिता की इस डांट पर मज़ा आ गया। बोला: "आप बैठिए, चाय पीजिए, इतने में पता लगा के आता हूं।"

परदे के पीछे रानी खड़ी खबर पर हंस रही थी। रमेश पहुंचा और हंसकर धीरे से कहा: "एक पांच का नोट देना। इनके लिए लपक के रामआसरे के यहां से मिठाई ले आऊं। पहली बार यार-दोस्तों को लेके आए हैं, इनकी भांग नहीं तड़कनी चाहिए।"

नोट देते हुए रानी ने दबी हंसी हंसकर पूछा: "और गाय की बिटिया की खबर का क्या करोगे?"

अभी लौट के सुनाता हूं। उसके अभी कहने की ज़ोरदार फुर्ती में चार दिन पहले खरीदी हुई साइकिल के पहिए नाच उठे। लच्छू ने इलेक्शन का मैटर तैयार करा के रमेश को दो सौ रुपये दिलाए थे। रानी के सत्याग्रह और अपनी भी दबी, किन्तु ज़ोरदार इच्छा से चार दिन पहले उसने नई साइकिल खरीदी है। आजकल उसके मन में हरदम अपनी साइकिल का बड़ा जोश व ज़ोर बना रहता है।

रमेश के ड्राइंग-रूम में सोफा पर बैठकर पुत्ती गुरू अन्य गुरुओं के साथ अष्ट-ग्रही का फैसला करने लगे। पांच फरवरी को जहां समुद्र होगा वहां समुद्र उफनेगा, जहां बर्फीले पहाड़ होंगे वहां बरफ गिरेगी, पापी नगरों में भूकम्प आएगा, भारी वर्षा होगी और आगें लगेंगी। बस काशी ही की भूमि सुरक्षित बचेगी। सीतापुर से खबर आई है कि जो औरत लाख की चूड़ियां पहनेगी, उसी का सुहाग बचेगा।

जगह-जगह यज्ञ-याग, कीर्तन-भजन के आयोजन बन रहे थे। गंगी, अंबे और पुत्ती गुरू अपनी-अपनी व्यस्तता बखान रहे थे। अष्टग्रही चाहे और किसी के लिए बुरी हो या अच्छी, मगर पण्डितों और ज्योतिषियों के लिए लक्ष्मी बरसावनी बनकर आ रही थी। आज पहली तारीख है, परसों शाम को 5.35 बजे से अष्टग्रही चालू हो जायगी। अष्टग्रही की लपेट में पंडितों के किस्से-कजिए चले। अमुक पंडित के पास इतना काम है, अमुक पंडित तो साला दस हाथों से लूट रहा है। पूरा रावण है। ब्राह्मणों में फूट है इसीलिए तो इतनी दीनता-दरिद्रता भोगनी पड़ रही है। अब ज्यों-ज्यों अष्टग्रही के दिन पास आते जाते हैं, बहुत से ज्योतिषी कहने लगे हैं कि कुछ नहीं होगा। ऐसे पंडित लोग ससरे जाति-द्रोही हैं, अंगरेज़ी वालों का रौब खाते हैं। अरे, हम कहते हैं कि चाहे कुछ भी न हो अष्टग्रही में, पर मूर्खों, तुम तो चुप रहो। अरे, तुम्हारे भाई-बिरादरों को दो पैसे आर्थिक लाभ हो रहा है, उसमें भी तुम लोग भांजी मारते हो। जाति-द्रोही, अब्राह्मण, कुलांगार कहीं के।" गंगी गुरू की भांग जिस समय अष्टग्रही का आतंक कम करने वाले ज्योतिषियों पर वज्रपात कर रही थी, उसी समय अपनी नई साइकिल पर मिठाई लेकर रमेशचंद्र गौड़ पधारे।

मिठाई ने पिता और उनके मित्रों के मुख-कमल खिला दिए। थोड़ी देर मिठाइयों के सतयुग-कलियुग काल का इतिहास चला, कि एकाएक रद्धू के बाप दुल्लू खलीफा के अन्तर में गाय की लड़की फिर से प्रकट हो गई और सब लोग भी फरवट उत्सुक हो गए। रमेश बोला : "एक मदकची की उड़ाई खबर थी बाबू। पब्लिक को बेवकूफ़ बनाया गया है।"

"ये तुम कैसे कहते हो कि बेवकूफ़ बनाया।" अंबेशंकर त्यौरियां चढ़ाकर बोले।

रमेश ने ज़ोरदार ढंग से कहा : "अभी-अभी हुसैनाबाद से पुलिस आठ मदकचियों को पकड़कर ले गई है। उन्होंने कबूल कर लिया।"

"रमेश भैये, तो फिर गाय की लड़की वाली बात गलत निकली ?"

"सवा सोलह आने गंगी चाचा। लड़की गाय को नहीं, बल्कि घोसी की घरवाली को हुई है।" कहते हुए रमेश को अपनी हंसी दबाना भारी पड़ गया।

"घोसिन के भयी ! खैर, फिर वही लड़की बोली होगी। खबर झूठी नहीं है। हमसे बालदे के मुंसीजी ने आंखों देखी बात कही थी।" दुल्लू खलीफ़ा बोले।

"घोसी कहता है, कि जो मेरी अच्छी-भली लड़की के साथ झूठ जोड़ेगा, उस पर मुकदमा चलाऊंगा। खबर एकदम झूठी है।"

"पर मुंसीजी ने आंखों देखी—"

"अब मेरा लड़का अखबार वाला, जिसका नाम रोज अंगरेजी के अखबार में छपता हैगा, उसकी आंखों देखी खबर कुछ नहीं और उस टके के मुंसी ही को रटे जा रहे होगे जब से—वाहरे दुल्लू !"

नाश्ता खत्म होने और मुंह धोने की क्रिया करने तक यह तो सबके मन में जम गया कि गाय-कन्या की खबर झूठी थी, मगर खून की होली संबंधी भविष्यवाणी झूठ नहीं हो सकती।

पुत्ती गुरू बोले : "हमारा ज्योतिषशास्त्र कुछ ऐसा-वैसा नहीं। अंबेशंकर। वेदांग ज्योतिष में लिखा है कि—यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो तथा, तद्वद्वेदांग शास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितिम्।"

बाप की फरवट संस्कृत से निस्तेज होने वाले कच्चे संस्कृतज्ञ अंबेशंकर ने बेटे से सतेज पूछा : "यों तुम्हारा इखबार अष्टग्रही को मानता हैगा कि नहीं ?"

"चचा, सच्ची बात कहूं, बुरा तो न मानिएगा !"

"कहो-कहो, बच्चों की बात का क्या बुरा मानना।"

"मैं बच्चा तो हूं आपका, पर मेरी एक भविष्यवाणी भी सुन लीजिए कि परसों कुछ नहीं होगा। ये अष्टग्रही है ही नहीं, चतुर्ग्रही है।"

"आंय ! एकदम से चारग्रह घटाय दिए तुमने। भास्कराचार्य और बाराह-मिहिर के भी बाप बन गए भैया तुम तो।" गंगी गुरू ने पान के ऊपर तमाखू की चुटकी डालते हुए हंसकर कहा।

रमेश बोला : "कल हमारे अखबार में ये खबर छप रही है। आज ही मैंने वेधशाला के एक प्रोफेसर शिवरत्नजी का इन्टरव्यू लिया है। वो कहते हैं कि ज्योतिषशास्त्र गलत नहीं, पर ये फलित वाले ज्योतिषी उसे रसातल में लिए जा रहे हैं। वो कहते हैं कि परसों जो चाहे उसे हम दूरबीन से प्रत्यक्ष दिखा देंगे कि मकर राशि में केवल शनि, शुक्र और मंगल ग्रहों का त्रियोग है, परसों से ढाई दिन के लिए चन्द्रमा भी वहां रहेगा, बस।"

"तुम्हारी दुरबीन भास्कर भगवान् की गणित से भी तेज़ हुइ गई—हैं ?" गंगी गुरू उत्तेजित हुए।

रमेश ने कहा, "भास्कराचार्य बेचारों का क्या दोष है। वो तो रस्ता बता गए। आप लोग उनकी गणित का संस्कार तो करते ही नहीं हैं, उनके ज़माने की गणित पर ही टेका लगाए बैठे हैं। प्रोफेसर साहब बतला रहे थे कि इससे सूर्य, शुक्र और बुध की गति पर असर पड़ता है। तेईस अंश पीछे ढकेल देते हैं आप लोग। जब आपके पत्रे में शुक्रास्त लिखा जाता है तब आकाश में शुक्रोदय होता दिखलाई देता है।"

"सुन लिया ! चार पोथियां पेटभराऊ मतलब की पढ़ के मेरे रमेशो से शास्त्रार्थ नहीं कर पाओगे गंगी तुम। अरे वो एम० ए० पास है, उसका नाम रोज अंगरेज़ी के अखबार में छपता हैगा। आओ, अब घर चलें।"

रमेश ने पिता से आग्रह किया कि एक बार घूम के देख लें, पर वे बोले : "आज नहीं, अष्टग्रही के बाद। तुम भले चार ग्रह कहो, पर जब दुनिया अष्टग्रही पुकार रही हैगी तो मकर राशि में न आने पर भी, बाकी चार ग्रहों को वहां भी अपना प्रभाव तो डालना ही पड़ेगा। देखो, कल हम पूजा के समय श्रीरामजी सरकार से पूछेंगे।"

इन लोगों के जाने के बाद रमेश रानी का हंसते-हंसते बुरा हाल हो गया। इस अष्टग्रही ने सचमुच आफ़त ढा रक्खी थी। अखबारों, घरों, बाज़ारों में अष्टग्रही की सनसनी फैली हुई थी। बनारस चूंकि अष्टग्रही मुक्त क्षेत्र घोषित किया गया था, इसलिए सैकड़ों आदमी रोज वहीं का रेल टिकट कटा रहे थे। शतचण्डी यज्ञ विष्णु महायज्ञ, रुद्र महायज्ञ, अनिरुद्ध महायज्ञ, सप्त महायज्ञ, अखण्ड रामायण, अखण्ड कीर्तन, अखण्ड जप आदि अनगिनत धार्मिक आयोजन होने वाले थे। इतना शोर, इतना शोर, कि अच्छे-अच्छे नक्कू भी सहमकर नाक कटाने को मन ही मन नीम राजी हो गए। 2 फरवरी के दिन दफ्तर में अष्टग्रही की चर्चा चलने पर रमेश ने कहा : "आंखों देखी पर विश्वास करूंगा मैं तो। मकर में कुल जमा तीन ग्रह हैं इस समय, कल से चन्द्रमा चौथा जुड़ जायगा। अष्टग्रही के झूठे प्रचार ने

जनता में भय का ऐसा संचार कर दिया है कि अब तो मैं उनके ध्यान ही से नफ़रत करता हूं। ये कर्मकाण्डी ब्राह्मणों की दूकानदारी चाल है।"

शनिवार की शाम को 5.35 बजे ज्योतिषियों के पंचांगों के अनुसार, आठों ग्रह मकर राशि में आ गए। हर एक के मन में सनसनी कि देखो, अब क्या होता है।...."अमां क्या धरती कुछ हिली ?—अमां नहीं, शक करते हो खामखां।"... "बादलों के दो-चार टुकड़े तो दिखाई देने लगे हैं आकास में।—अरे नहीं ये तो रोज ही होते हैं।" मगर कुछ भी हो ये अष्टग्रही है, कुछ न कुछ होगा अवश्य। होता है, बस होता ही है। हे राम, क्या होगा ? घण्टा बीता, दो घण्टे बीते...कुछ भी न हुआ। बस गली-गली सड़क-सड़क पर—"हरे रामा हरे राम। मंगल भवन अमंगलहारी...ॐ स्वाहाः, स्वाहाः स्वाहाः—" का विराट शोर व्याप्त था। ईश्वर के नाम पर यह निरर्थक शोरगुल ही रात-भर होता रहा और कुछ भी न हुआ। 4 फरवरी का सूरज बिलकुल भला-चंगा उगा। नदी के घाटों पर, रईसों की हवेलियों के आगे कंगालों की भीड़ आज के दिन की शोभा थी। उन्हें पूड़ी-मिठाई बांटकर रईसों के कारिंदे अखबारों में यह खबर पहुंचाने दौड़ते थे कि हमारे सेठ ने अष्टग्रही में धरम किया। चौराहों पर, 'छोटे लोगों' के महल्लों में, कनिया में लल्ला-लल्ली सम्हाले, कांव-कांव करती कामिनियों के बीच घिरकर सनीचर वाले भड्डरी तक यज्ञ करा रहे थे। मुसलमानों के कर्मकाण्डी मुल्लों ने अपने हम पेशा हिन्दू पण्डितों को इतनी कमाई करते देखा तो कहीं-कहीं उनके मुंह में भी पानी भर आया। मगर कुरआन-शरीफ़ में चूंकि अष्टग्रही की कमाई का कोई मन्तर ही नहीं लिखा था, इसलिए मीलाद शरीफ़ का सुझाव देकर दो-चार मौलाना भी धर्म से मज़हब की जोत मिलाने के लिए मैदान में आ धमके। बस सिर्फ इसके अलावा चार तारीख को भी अष्टग्रही खाली हो गई। शाम को अफ़वाह फैली कि आज जिस अविश्वासी को जितना हंसना हो हंस ले, कल पांच बज के दस पर उसे रोने तक का मौका नहीं मिलेगा। पांच बज के दस की खबर में यह गोल रहा कि सवेरे के पांच या शाम के। प्रचार इतना ज़ोरदार हुआ कि जैसे 'पांच फरवरी' और 'पांच बजे' तिथि या समय न होकर चुनाव उम्मीदवार हों—"जीतेगा भई जीतेगा, मूंछों वाला जीतेगा।"

6 फरवरी के सूर्योदय ने ज्योतिषियों का मुंह काला कर दिया। अनास्था की लहर-सी दौड़ गई। नवयुवक वर्ग, स्त्रियां और अर्थ-चिन्ताग्रस्त धर्मभीरु बाबू विशेष रूप से ज्योतिषियों और ब्राह्मणों के प्रति चिढ़कर कटुक वचन बोलने लगे। और पंडित कह रहे थे कि भगवान् को अगर हमने इतना रिझाया न होता तो प्रलय अवश्य होता।

चुनाव के प्रचार में अष्टग्रही के प्रचार ने अब तक जो साझा बंटा रक्खा था, वह खतम हो गया। श्रीमती चारुलता चौधरी को कांग्रेस का टिकट मिल गया था। लच्छू को अब पलक मारने का अवकाश न था। स्थानीय कांग्रेसी नेताओं में घुसपैठ का अनूठा अवसर पाकर वह विशेष रूप से सक्रिय हो उठा था। पूरे चुनाव कार्यालय की सम्हाल, कार्यकर्त्ताओं की समुचित खातिरदारी, पोस्टरों का लगवाना, महल्ला सभा, नुक्कड़ सभाओं की योजना बनाना और उसे चलाना, प्रभात फेरियों का आयोजन, नाच-गाने और छोटे नाटकों के प्रदर्शन का आयोजन—आठों पहर लच्छू को 'ये वो—जी हां—हांजी' करते ही बीतता था। एक महीने की कैजुअल लीव लेकर लच्छू के कहने पर उसके बड़े भाई रेस्ट्रां का काम सम्हाल रहे थे।

बनर्जी भी पी० एस० पी० की ओर से खड़ा था। खोखा मियां अपनी पूरी शक्ति उसके पीछे लगा रहे थे। लच्छू से उन्हें मन ही मन शत्रुता हो गई थी। हाजी साहब को श्रीमती चौधरी के पक्ष में ले जाने का श्रेय खोखा मियां अपने मन में लच्छू ही को देते थे, रेवतीरमन को नहीं। बनर्जी भी उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी मानता था। उसकी भी यही धारणा थी कि मेरी ओर से सेठजी का मन फेरकर सेठानी को खड़ा करने का दांव भी एल० एन० खन्ना ही ने मारा है।—कौन है यह खन्ना? कभी नाम भी नहीं सुना था और अब खन्ना, खन्ना, खन्ना—स्वाइन।

लच्छू एक चीज़ के लिए शुरू ही से सतर्क था। वह क्या, दरअस्ल श्रीमती चौधरी ने खुद ही लच्छू के आगे अपना भय प्रकट किया था कि चुनाव के प्रचार में उनका और लाला रेवतीरमन का सम्बन्ध अवश्य उछाल-उछालकर बखाना जायगा। लच्छू ने पहले ही दो सौ रुपये देकर रमेश से श्रीमती चौधरी का एक जीवन-चरित्र लिखवा लिया था, जिसमें चौधरियों के प्रसिद्ध घराने और उनके सुविख्यात कारखाने का इतिहास, स्व० चौधरी की नगर-सेवाओं का इतिहास, चौधरी बंधुओं के मरने के बाद लड़खड़ाते कारबार को धीरता-गम्भीरता और साहस से सम्हालने वाली श्रीमती चारुलता चौधरी के ममतामय, ओजस्वी, धीर गम्भीर और सरल व्यक्तित्व का परिचय, इसके अलावा पति के साथ, बच्चों के साथ, कीर्तन-पूजन करते हुए, सेठ रेवतीरमन को राखी बांधते हुए, हाजी साहब का स्वागत करते हुए, उनके कई चित्र भी एक पुस्तिका में छपे थे। एक लाख प्रतियां पूरे शहर में बांटी थीं; खोखा मियां और बनर्जी ने गोल-मोल संकेत तो बहुत दिये, पर इस बार के चुनाव में चूंकि पहले ही से वातावरण ऐसा बना दिया गया था कि कीचड़-उछाल प्राय: कम ही हो पा रही थी। लेकिन खोखा मियां ने अपना बदला ले ही लिया। 'पैराडाइज' की मालिक सहकारी संस्था ने अपनी एक अर्जेण्ट बैठक में लच्छू को बिना अनुमति लिए दुकान से गायब रहने और अपने बड़े भाई को बैठाने के अपराध में निकाल दिया गया। लच्छू के पैरों तले से धरती खिसक गयी, मगर चुनाव के नशे ने दुख न व्यापने दिया।

चुनाव की हलचल मीयादी बुखार की तरह बढ़ रही थी। सभी इलाकों में लाउडस्पीकर लदे तांगे, रिक्शे और मोटरें चुनाव-प्रचार में भागमभाग कर रही थीं। कांग्रेसी राज के प्रति जनता में तीव्र असन्तोष था। महंगाई बढ़ रही थी। शहरी प्रजा त्रस्त और गुस्से में थी। उत्तर में जनसंघ और दक्षिण में द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम कांग्रेस का शाब्दिक क्रांति भरा, जनसमूह गूंजा विरोध कर रहे थे। जनसंघ का विरोध चूंकि सनातन रंग रंगा था, इसलिए उत्तरी भारत का सवर्ण सनातनी बहुमत उसके जल्सों और प्रदर्शनों में उत्साह दिखलाता था, मगर इसी कारण मुसलमान जनता, उनके बहुत विश्वास दिलाने पर भी उनके साथ न थी। झोपड़ी का निशान दो बार निकम्मा साबित हो चुका था। जनता उनको कम पसन्द कर रही थी। चुनाव-प्रचार सुनकर लोगबाग यह भी कहते थे कि आर्थिक कार्यक्रम या तो कांग्रेस रखती है, या कम्यूनिस्ट पार्टी। परन्तु कम्यूनिस्ट पार्टी से जनता का चौंक भरा नाता ही अधिक था, विश्वास भरा कम। कांग्रेस की गुट-बाजी का जहर, लाख एका होने पर भी, असर तो कर ही रहा था। लोग अपने ही गुट के उम्मीदवारों के लिए अधिक काम कर रहे थे, कांग्रेस के लिए कम। जो कांग्रेसी उम्मीदवार अपना चुनाव-संगठन स्वयं तगड़ा न कर सके, वह अकेले

कांग्रेस की मदद पर नहीं जीत सकता था। मिसेज़ चौधरी के यहां इसकी कमी न थी। पैसा पानी की तरह से बह रहा था। मर्दों की, औरतों की बटालियनें घर-घर, गली-गली में धावे मार रही थीं। सुगंधित कार्ड, श्रीमती चारुलता चौधरी और दो बैलों की तस्वीर छपे हुए सुगन्धित रेशमी रूमाल, कलेण्डर, चाभियों के गुच्छे, जिसमें प्लास्टिक की पत्ती पर चुनाव-प्रचार—हफ्ते पन्द्रह दिनों में लच्छू एक न एक नई चीज़ बटवा देता था। सबसे अधिक काम तो उसकी सांस्कृतिक प्रोग्राम और नाटकवाली टोलियों से बन रहा था। ये दो प्रचार-साधन लच्छू की अपनी ही सूझ से हो रहे थे। देशभक्ति के गाने, नाच, टीपू सुल्तान, हैदरअली, राणाप्रताप ऐसे नाटक, जिसके मण्डप की सजावट में तो मिसेज़ चौधरी के प्रचार-पोस्टर और नेहरू की तस्वीरों की भरमार अवश्य थी, या लाउडस्पीकर पर हर अंक के बाद 'दो बैलों की जोड़ी न भूलिए' के अलावा ढाई-तीन या चार घण्टे का विशुद्ध-मनोरंजन ही जनता को दिया जाता था। इस बीच में किसी विरोधी पार्टी के भोंपू वहां विघ्न डालने पहुंच जाते तो जनता मारपीट पर आमादा हो जाती थी। लच्छू का यह पांचवां दस्ता बेहद कारगर रहा। लाला रेवती और हाजी नब्बू तक ने उसकी पीठ ठोंकी। दूसरी राजनीतिक पार्टियों ने भी इस जनता-जमाऊ मूक प्रचार की सफलता को समझकर ऐसे आयोजन करने चाहे, लेकिन औरों के लिए अब देर हो चुकी थी। लच्छू के पास शहर की सभी अच्छी रंगमंच टोलियां थीं, जो अपने पहले के तैयार नाटकों ही को जगह-जगह दिखला रही थीं; दूसरे लोग इतनी जल्द तैयार नाटक कहां से पाते।

दंद-फंद, जाति-बिरादरी, धर्म और धन—सभी का प्रयोग सभी पार्टियों और व्यक्तिगत रूप से खड़े होने वाले उम्मीदवारों ने बिना किसी शर्म-लिहाज के किया। पर इनमें सफल कांग्रेस ही रही। नेहरू अब भी चुंबक हैं। नेहरू अब भी दमखमवाला है। तूफानी दौरे किए। ज्यों-ज्यों चुनाव-आंदोलन ज़ोर पकड़ता गया त्यों-त्यों जनता अपना असंतोष दबाकर, गुण्डों में चुनाव की मजबूरी मे, शांत गुण्डी कांग्रेस के पक्ष में होने लगी। पैसे और सरकारी सत्ता का प्रभाव भी काम कर रहा था। सबसे बड़ी बात यह कि कांग्रेस का नसीबा सिकन्दर था।··· डिमाक्रेसी के हामी धूम-धड़ल्ले से दिन-रात डिमाक्रेसी के सिद्धान्तों पर खुले आम बलात्कार कर रहे थे, साथ ही चिल्ला-चिल्लाकर कहते भी जाते थे कि हम डिमाक्रेसी के प्रमी हैं। पूरी आपाधापी, करोड़ों के खर्च, और गुण्डागीरी तथा अनैतिकता की लहलही फसल उगाकर चुनाव का तमाशा पूरा हो गया। 'दो बैलों' वाली श्रीमती चारुलता एम० पी० हो गईं। लच्छू की जेब में साढ़े सोलह हज़ार रुपये आ गये।

चौधरी वंश के मोटर-अस्तबल में एक छोटी फोर्ड गाड़ी थी। स्व० चौधरी साहब ने मरने से कुछ ही दिनों पहले उसे खरीदा था। जिस दिन पत्नी को लेकर पहली बार रात में उस पर घूमने निकले थे, उसी रात बीमार पड़े। मिसेज़ चौधरी ने दिखावटी विरह के नखरे में फिर उस पर कभी पैर ही न रक्खा। भगवान की दया से चार गाड़ियां थीं। इसलिए यह मोटर कम ही चली थी। चुनाव लड़ने के लिए जब कुछ पुरानी ट्रकें, जीपें आदि खरीदने की बात चली तो लच्छू ने चौधरी के दो पुराने ड्राइवरों को खूब माल चटाया था। वे लच्छू के मुरीद थे। निजी दौड़-धूप के लिए भी उसे एक गाड़ी की ज़रूरत पड़ती ही थी, इसलिए पहले तो अक्सर और फिर नियमित रूप से छोटी फोर्ड गाड़ी लच्छू ही

के पास रहने लगी। लच्छू के मन में तभी से बस गया था कि चुनाव जीतने के बाद भी यह मोटर अब वापस न करूंगा। बीच में 'पैराडाइज' हाथ से निकल जाने का धक्का गहरा लगा, पर उस समय चूंकि उसकी पहले इतनी खोखली स्थिति न थी, इसलिए दुख व्याप कर भी न व्यापा। हां, दो कामों के प्रति उसकी उत्साहाग्नि और अधिक ऊंची लपटें लेने लगी। इलेक्शन की रकम में लूट-खसोट के लिए उसने नीति शुरू ही से बड़ी साफ बनाई थी। जरूरी खर्चों में लूट की नीयत हरगिज न हो और पेट्रोल, राशन, मजदूरी आदि छोटी-बड़ी हज़ार नालियों से मुनाफा सिर्फ अठन्नी भर ही खींचा जाय। 'वर्कर' (काम करनेवाला) संतुष्ट भले न हो, पर असंतुष्ट हरगिज न हो। किसी को खोट निकालने की फुरसत नहीं देनी चाहिए। इसी नीति के पालन से चुनाव भर उसका रुतबा बना रहा। लूट की अठन्नी बंटवारा करते समय कभी दुअन्नी तक अपने लिए साफ बचा लेता था; लेकिन दूकान जाने के गम को उसने भद्दर चुनाव की सैलाबी खर्च-गंगा में नहा-नहाकर ही मिटाया। चुनाव के अन्तिम आठ दिनों में उसने एक हज़ार से तीन हज़ार रुपये तक रोज कमाये।

दूसरा काम खोखा मियां से बदला लेना था। साले ने ऐसे समय में मेरी पीठ में छूरा मारा है! मैं भी साले को ऐसे घाट मारूंगा कि जहां पानी न पाये। हाजी से डर लगता था, उनसे दामन बचाके उनके बेटे पर वार करना था। पहले तो दूकान हाथ से छिनते ही लच्छू हाजी, रेवतीरमन के चरणों में और चारुलता की छाती में अपना सिर रखकर रो आया। हाजी ने खोखा को बुलाकर अपील की, किसे मारते हो, मामूली वर्कर है। बहस में यह भी साफ कर दिया कि नगर के एक प्रसिद्ध वंश की महिला को सहयोग देने की भावना से वे खुद ही रेवती-रमन के प्रस्ताव से सहमत हुए। लच्छू का उसमें कहीं कोई हाथ ही न था। मगर खोखा मियां बड़े ऐंठू और टर्रे थे। बाप से कुछ खींचतान तो अरसे से चल ही रही थी, जब से वे अपनी वैध संतान नादिर मियां के प्रति विशेष पक्षपात करने लगे थे। इस चुनाव में भी खोखा मियां की समझ से उसके पिता ने उसे धोखा दिया। पिता के दम पर ही उसने बनर्जी को अपना बल दिया था। हाजी-राधे गुट की राजनीति में उसने एक नायाब मोहरा उठाया था, पर बाप ने चाल ही बदल दी। खोखा अपने पिता के सहयोग बिना अकेले दम इलेक्शन लड़ रहा था। पैंतालिस बरस की उमर में पहली बार अपनी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध करने के लिए उसने सिर उठाया था। खोखा मियां ने लच्छू के मामले में पिता को अनुगृहीत करने से इंकार कर दिया। बाप-बेटे के बीच में एक मौन दीवार आ गई।

उधर लच्छू भी चुप न थे। एलेक्शन लड़ते हुए इलेक्शन ही के खर्च से लच्छू ने दुश्मन का गढ़ फोड़ने के लिए भेदिये छोड़े। शहर के दो बड़े होटल और दस छोटे-बड़े सामिष-निरामिष जलपानघर खोखा मियां के हिस्से में थे। उनका प्रबंध जबसे खोखा मियां के पास आया, तबसे प्रबन्ध और मुनाफा तो अवश्य बढ़ा, मगर नौकर-चाकर खुश न रहे। खास तौर से बावर्चियों और हलवाइयों को असंतोष था। लच्छू सम्हल-सम्हल कर फटे में पाँव डालने लगा। उस समय भाग्य भी उसी का साथ दे रहा था। एक दिन मिसेज़ चौधरी की लड़की शोभना खुलेआम बनर्जी के जलूस में शामिल हुई। मां-बेटी में चखचख हुई, जिसे शांत करने का श्रेय मौके ने लच्छू को दिया। अकेले में उसी झुंझलाहट में मिसेज़ चौधरी बक गईं कि बनर्जी ने एक गरीब लड़की से प्रेम-विवाह करके उसे दो बच्चों की मां बनाकर उसे

बरसों से अपने बाप के घर पटक रक्खा है। लच्छू ने ससुर का पता-ठिकाना पूछा। भेदिये भेजकर उधर के पानी की थाह ली। वह औरत कानपुर के एक बालिका विद्यालय में पढ़ा रही थी। बात पटने का विश्वास पाकर एक शाम लच्छू खुद चुपचाप कानपुर गया और पांच हज़ार रुपये देकर बनर्जी की त्यक्ता पत्नी को मिला लिया। स्कूल से छुट्टी लेकर वह लखनऊ आ गयी और मिसेज़ चौधरी की सभाओं में अपनी विपद कहानी बड़े जोश से सुनाने लगी। बड़ा तगड़ा प्रचार हुआ। उसने केवल 'विरोधी' के नारी वोट ही नहीं, वरन आमतौर पर शहर के नारी वोटों को ही प्रभावित किया। लाला रेवतीरमन इस चाल पर लच्छू से बेहद खुश थे। दूसरे बड़े चुनाव के ठीक दो दिन पहले लच्छू खोखा मियां के तमाम बावर्चियों और हलवाइयों की हड़ताल कराने में सफल हो गया। हाजी साहब को यह बुरा लगा, पर लाला रेवतीरमन बेहद संतुष्ट हुए। जनसंघ को हराने में यदि रेवतीरमन और हाजी तथा कांग्रेस के कुछ नेताओं ने जस कमाया, तो प्रसोपा की झोपड़ी उजाड़ने का सेहरा 'खन्ना' के सिर बंधा। बनर्जी की जमानत तक जब्त हो गई।

लच्छू ने खोखा मियां से अपना बदला पूरा ले लिया था। मिसेज़ चौधरी एम० पी० बनकर अब फिर से पूरे सौ पैसे भर रेवतीरमन के काबू में आ चुकी थीं। मिसेज़ चौधरी का लच्छूको मोटर इनाम में देना उन्हें भीतर-ही-भीतर अखर गया था। उन्होंने तय किया कि लच्छू जैसे तेज़ आदमी को काबू में लाना होगा। मिसेज़ चौधरी से कहा कि अब तुम्हारी इज्ज़त कुछ दूसरी ही हो गई है, नेहरू और इंदिरा गांधी तक पहुंचने के लिए तुम्हारा सीधा रास्ता बन गया है। खन्ना बड़ा लायक और होशियार है। तुमने उसे उचित इनाम भी दे दिया। अब अधिक मुंह लगाने से बदनाम हो जाओगी। मिसेज़ चौधरी ने लच्छू के पहुंचने पर दो-तीन बार मिलने की बात नौकरानी के द्वारा मीठे ढंग से टलवा दी। लच्छू समझ गया कि अब यह रास्ता बंद हो गया।

लाला रेवतीरमन की सहानुभूति पाने गया, कहा कि चुनाव के फेर में मेरी रोजी ही चली गई, धंधा करने के लिए मिसेज़ चौधरी से कुछ सहायता दिलवा दीजिए।

लालाजी ने एक नज़र उसे देखा और बोले : "तुम्हारी वो लड़की काफ़ी होशियार और सीधी है। पूरी नींद की गोली है।"

लच्छू कुढ़ गया, पर ऊपर से मिठास घोलकर कहा : "तब तो सरकार जी, इस सेवक को इनाम ज़रूर मिलना चाहिए।"

"मोटर तुम्हें मिल चुकी है। और अगर ज़रा भी बुद्धिमान रहे होगे तो कम से कम चार-पांच हजार रुपये भी बना ही लिए होंगे इस इलेक्शन में।"

"सरकारजी, आपसे झूठ नहीं बोलूंगा, मेरी जेब में कुल जमा डेढ़ हजार रुपया आया। और वो भी खोखा मियां के हड़ताल में आपने कहा था, सबको पांच-पांच रुपये बांट देना, सो उसकी नौबत नहीं आई। खोखा मियां की गाली-गलौज से उनके कारीगर आप ही भड़क गए।"

"तो ठीक है। ये मोटर भी बेच डालो। छोटा-मोटा धंधा खोल लेना।"

लाला-रेवतीरमन के कमरे से लच्छू जब निकला तो रेवतीरमन को अपने मुसाहब से कहते सुना : दूसरा मूंदड़ा बन रहा है साला। तन पे लंगोटी का ठिकाना नहीं—मोटर रक्खेगा!" सुनकर लच्छू की एक-एक सांस में उनके वास्ते गालियां

भर उठीं। साले, गरीब के पास मोटर भी नहीं देख सकते। बदमाश। मोटर मैं रक्खूंगा और इसके पैंट्रोल का खर्चा, हरामजादो, मैं तुम्हारी ही जेब से निकालूंगा। मुझे भी जीना है, और मेरा भी यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि शान से जिऊं।···साले रईस के बच्चे ···महरा-कहारों, जाने किस-किसकी औलाद। ···अपनी फोर्ड मोटर सड़क पर चलाते हुए लच्छू उग्र था···इस 'पैराडाइज़' को मैं फिर से अपना बना के रक्खूंगा और इस बार मालिक बनूंगा, नौकर नहीं। इन सालों की···

सत्रह

रेडियो में हिन्दी-उर्दू का झगड़ा फिर खड़ा कर दिया जवाहरलालजी ने। क्या हो जाता है इन्हें? हिन्दी उनकी निगाह में हिन्दू समाज की अंध रूढ़िवादिता का प्रतीक है शायद।···यह महापुरुष, जिसे हमने दिल से प्यार किया है, देवता-सा आदर दिया है, इंडियन सिविल लाइन्स के ब्रिटिशकालीन काले साहबों की तरह हिन्दी को, जब-तब गोरे साहबों की नकल करते हुए, 'डैम डर्टी निगर' बनाकर दुत्कार देता है···बैठे-ठाले मेरी हिंदी अहंता को कोंचकर जगा गया ये डिमाक्रेसी का कबूतरबाज़ पैग़म्बर। दीगरा नसीहत खुदरा फज़ीहत—औरों को शांति के उपदेश देते हैं और खुद उनका मानस ही इतना अशांत, और कुंठा के विस्फोटों से भरा हुआ है। दिमाग़ से उदार समाजवादी, दिल से संकीर्ण व्यक्तिवादी!··· सचमुच, इस समय बड़ा ही क्रोध आ रहा है नेहरू पर। हद है, इतने महान् बनकर भी मनुष्य का मन नहीं पहचानते नेहरू। मरे को मारें शाहमदार!

हम पढ़े-लिखे, मैकाले के दोगले बच्चे, राष्ट्रीय बाबू लोगों में एक सत्ताधारी प्रभावशाली वर्ग हिन्दी को हिन्दू प्रतिक्रियावादी शक्तियों का अन्यायपूर्ण नारा बतलाकर उसे कुचलने में अपनी प्रगतिशीलता की शान समझता है। भोले-बेईमान, दिमाग़ी दोगले कहीं के! धोबी के कुत्ते घर के न घाट के!

हिन्दी-उर्दू समस्या पर अपने बचपन से ही पढ़ता चला आता हूं। 'उर्दू-बेगम' नाम का एक रोचक उपन्यास इस सदी के आरम्भिक दिनों में ही निकला था, आज़ाद और बालमुकुंद गुप्त की कविताएं और न जाने कितने संपादकीय लेख, चन्द्रबली पाण्डेय की किताबें—एकदम शुरूवाली भारतेन्दु और सितारेहिन्द की भाषा सम्बन्धी बहस···एक चीज़ साफ़ है—हिन्दी को उर्दू से बैर है भी और नहीं भी है। शायद यही बात हिन्दू मुस्लिम समस्या के सम्बन्ध में भी कह सकता हूं।···

आज नहीं, इस सदी के पहले दो दशकों की बातें याद करता हूं। मेरे जैसे अनेक के लिए उस समय के हिन्दी साहित्य की प्रगतिशीलता और उसकी पत्रकारिता की विषय-व्यापकता तथा ओजस्विता, चेतना का महाद्वार थी। हिंदी लेखक और पत्रकार ने, कहना चाहिए, भारत की सारी भाषाओं के लेखकों और पत्रकारों ने जिन विपरीत परिस्थितियों से जूझकर अपने प्राण होम कर देश की

नैतिक, सामजिक, बौद्धिक और कला चेतनाओं को जगाया था, वे किसी से कम तपस्वी और निष्ठावान नहीं थे। अंगरेज़ी पर बड़ा ज़ोर होने पर भी कोर्स के अलावा, आमतौर पर अंगरेज़ी का पढ़ने योग्य मसाला तब हमारी असूर्यंस्पर्श्या गलियों में आज की अपेक्षा बहुत ही कम पहुंच पाता था। विशुद्ध व्यक्ति की हैसियत से भी मन में यही भाव-विचार आते हैं कि हिन्दी मेरी गुण-गम्भीरा आनन्दमयी मां है। इसने मुझे सामाजिक क्रांति, देशभक्ति, आत्मोन्नति की इच्छा और नैतिक-आध्यात्मिक मूल्य मान घुट्टी में दिए थे। संस्कृत, फारसी, उर्दू, अंग्रेज़ी साथिन भारतीय भाषाओं में से प्राय: सभी की तुन्न-फुन्न झिड़कियां सुनने-सहने के लिए ही बेचारी 'भाखा' के करोड़ों बेटों का जन्म होता रहा है और होता रहेगा। यह नौकरों से बोलने की भाषा है, मिल के मज़दूरों, दूध, सब्जीवालों की पिछड़ी हुई भाषा है। 'उर्दू, बंगाली, मराठी, गुजराटी, टैमिल, टेलेगू के मुकाबले में भी एकदम पिछड़ी हुई है। हिन्दीवाले नॅकटाई को कंठ-लंगोट बोलते हैं—पुअर पीपुल!" आए दिन वस्तुस्थिति से आंख मींचकर हिन्दी के पीछे ये मॅकाले के दोगले पड़े ही रहते हैं! इन्हें चुनौती दिए बिना अब गुजारा नहीं। दम्भी, प्रतिक्रियावादी! हिन्दू-मुसलमानों की प्रतिक्रियावादिता तो साफ सामने आ जाती है, मगर इन मैंकाले के बच्चों के प्रगतिशील, समाजवादी और साम्यवादी मुखौटे इनकी अस्ली सूरतों को छिपा लेते हैं···

···अब लिखने को जी नहीं चाहता।···माया कहती थीं कि उन्होंने विश्वस्त रूप से खबर पाई है कि मेडिकल कालेज में हमारी नन्हीं का किसी ऊंचे दर्जे के विद्यार्थी से आजकल गहरा प्रेम चल रहा है।···और उसका प्रेमी कोई मुसलमान है। खबर ने मुझ पर अच्छा प्रभाव तो नहीं ही डाला।···इस समय नेहरू ने भी अच्छा प्रभाव नहीं डाला। गर्मी बेहद है। दिन भर लू चलती रही, भीतर-बाहर। ···और मेरे लच्छू-रमेश आगे बढ़ने को तैयार खड़े हैं। उनकी कहानी में मेरी भी उत्सुकता है।···लिख ही डालो यार! ये दुनिया तो मूड उखाड़ती ही रहेगी। अपने अनमनेपन से खेलो, खेलो अरविन्द, रवि ठाकुर की तरह इस अनमनेपन से भी खेलो: 'आनमना गो आनमना, तोमर काछे आमार गानेर माला खानि आनबो ना'···ये उड़नछू कमाई की रकम और मोटरवाला लच्छू अब क्या करेगा?···हठीला, घुन्ना, तेज, अनैतिक महत्वाकांक्षी।···नहीं, इस समय रमेश मेरे मन को अधिक अच्छी तरह प्रवाह दे पाएगा। कहां हैं रमेश?

ये रचना-प्रक्रिया भी अजब है—कभी मन लिखना चाहता है और कल्पना तथा विचार नखरा करते हैं और कभी कल्पना या विचार सहयोग देने को तो राज़ी होते हैं पर अपनी तरह से। चलो, लिखो—लिखने पर ही इच्छा की अदृश्यमान पंखुरियां प्रत्यक्ष होकर खिल उठती हैं।··· कर्म ही हर अमूर्त सत्य की खरी कसौटी है। मूर्त होकर भी सत्य कर्म से मुक्त नहीं। इसलिए लिख—लिख-लिख बावरे!

मुहर्रम के दिन। शहर में दंगा हो गया। पुराने सर्राफ़े बाज़ार में दो सौ गुण्डों की भीड़ शाम को चार-पांच बजे एकाएक घुस आई। राह चलते लोग और दुकानदार अनायास ही उनसे घिर गए। क़त्ल होने लगे; दुकानें लुटने लगीं और सुना गया कि रूपचंद महाजन की कोठी को जलाने की कोशिश भी की गई। लाला बैंजू के बैठकेवाले घर और पेशकार साहब के घरों के दरवाज़े पेट्रोल छिड़क कर जलाए गए, एक शिवाले की मूर्तियां तोड़ी गईं।

रमेश उस समय लोहामंडी में था। उसे रेलवे से चुराए गए लोहे के सामान के एक बहुत बड़े गुप्त गोदाम का पता दिया गया था। भेदिया बशीर खुद साथ था, कह रहा था : "जब रुपया बहुत हो जाता है न बाबूजी, तब आदमी घमण्डी तो होता ही है, लापरवाह भी हो जाता है। आप देखिएगा, माल कारखाने के पीछे अहाते में खुले खज़ाने पड़ा हैगा···खुदा ने किसू का गुमान नहीं रक्खा तो ये लाला-लूली भी न रहेंगे। तप लें, आज उन्हीं का दिन है। मगर मैं अपनी बेइंसाफी का बदला लिए बगैर न मानूंगा। मैं आपको ऐसे बखत में इनकी फर्नेस (भट्ठी) पकड़वा सकता हूं जब कि रेलवई का लोहा ही गलाया जा रहा हो। मैंने अपने हाथ से हज़ारों रुपये का माल गलाया है···"

"हो हो हो ! भागो भागो भागो !" फटाफट दूकानें बन्द होना शुरू हो गईं। दंगा हो गया। दूकानें 'तो हो-हो भागो-भागो' ही में सिमटने लगी थीं, अब दंगे के नाम पर बदहवासी छाने लगी। जूता है तो टोपी नहीं, अपना होश भी नहीं—मगर दूकानों के ताले बन्द करने के बाद दो-दो बार खींच-खींच कर उन्हें जांचना एक भी दूकानदार न भूला। बीच सड़क से आस-पास की गलियों में चौकन्नी भीड़ लपकालपक राम-श्याम खुदा-पीर करती छितराने के लिए, अपना घर—अपनी सुरक्षा पाने के लिए जग से बेलौस, मगर जग से मिलकर चलने के लिए बेक़रार, अलग और मिली हुई भी भागी जा रही थी। लम्बे लकड़बग्घी चाल, नाटे सांप चाल, छरहरे हिरन चाल, मोटे मेंढ़कों से फुदकते, 'पोज़ पोजीशन' वाले दगे सांड की तरह दौड़ते—बस भागमभाग ही मची हुई थी। नगर रूपी काया का हृदय बड़ी ज़ोर से धड़धड़ाया था और उसकी नसों-दर-नसों जैसी गलियों में भीड़ खून-सी दौड़ती चली जा रही थी।

लोहामण्डी आसपास तीन तरफ़ से मुसलमानी बस्तियों से घिरी हुई है। लाखों के व्यापार की जगह है। गुंडों का एक बहुत बड़ा दल उसे लूटने के विचार से अल्लाह के अकबरत्व का उद्घोष करते हुए दक्षिण दिशा से बाजार में धंसा था। उधर वाले अचानक में काफ़ी लुटे-कटे। रमेश और बशीर ऐसी जगह में फंसे थे कि न पीछे लौट के जाते बनता था और न आगे ही।

"या खुदा ! अजब चक्कर पड़ा यह तो। आप घबराइएगा नहीं बाबूजी, मैं मुसलमान हूं, गुण्डा नहीं।"

"अमां क्या सफ़ाई दे रहे हो। रास्ता निकालो। इस वक्त मैं भी मुसलमान हूं।"

"अय जियो बाबूजी। आइए-आइए। नाम सोच रखिए अपना। कहीं मौका पड़ने पर मेरे साथ ही हाथ उठाके अल्लाहो अकबर चिल्लाइएगा। आइए।"

गली मुसलमानों की थी, गरीब बस्ती थी, मगर शान्त थी। आधे-पौन फर्लांग दूर से दर्द भरी चीखें-कराहें कई बार आ-आकर कलेजे में बिंध गईं। साइकिलों पर वह गली पार करके जैसे ही तिराहे पर आए कि एक बन्द दूकान पर आठ-दस मुसलमान खड़े बैठे हुए मिले, ज़ोर-ज़ोर से बातें हो रही थीं : "हरामी समझते हैं कि यहां अब मुसलमानों का कोई सरपरस्त नहीं। अरे सालो, हमाई तरफ से अमरीका आएगा, पाकिस्तान आएगा—ठहरोजी, ए ! कौन हो ?

"अमां जो तुम हो वो हम हैं।" साइकिल चलाते हुए ही बशीर ने जवाब दिया। पीछे से आवाज़ आई : 'अमां हिन्दू है—अमां नईं यार।' —साइकिलें तेज़ हो गईं।

बशीर को मुसलमानी क्षेत्र की सरहद पर छोड़कर रमेश जब पुराने सर्राफे के पास पहुंचा, तब हथियारबन्द पुलिस के दस्ते वहां आ चुके थे। टोक-टाक पूछ-ताछ हुई; काम-धाम बतलाने, दफ्तर का परिचय-पत्र दिखलाने के बाद छुट्टी मिली। दारोगा बोले : "जल्दी जाइए। कर्फ्यू लग गया है।"

पास ही बाईं ओर रमेश की ससुराल वाली गली थी। गली कीचड़ से भरी हुई। रद्धूसिंह के घर का दरवाज़ा जला हुआ, एक पल्ला आधे से अधिक कोयला मात्र ही रह गया था, दहलीज में पड़ा था। चौखट कोयला हो चुकी थी। गली बरसात के मसान जैसी लगती थी। ससुराल के दरवाज़े के आगे दो संगीन बन्दूक-धारी सिपाही खड़े थे—"कहां जाते हैं, कर्फ्यू है।"

"हां भैया, मालूम हो गया बाज़ार में, मगर घर तक तो जाऊंगा ही।" रमेश की आवाज़ सुनकर अन्दर के दालान में खड़े रद्धूसिंह लपककर सामने आए : "अरे भैयाजी, कहां से आ रहे हो? अन्दर आओ, अन्दर आओ। रानी बहिनजी के यहां है, अभी टेलीफ़ोन आया था।"

रमेश के मन की इच्छित निश्चिंतता मिल गई। साइकिल अन्दर चढ़ाते हुए कहा : "यहां तो जबर्दस्त हमला हुआ लगता है बाबूजी, कोई खून-खराबा—"

"हो जाता, पर तब तक अहिर लोग लट्ठ-बल्लम लिए आ धमके। गुण्डे फंस गए थे, आधे से अधिक बुतशिकनी-आगजनी, और वह भी खास तौर से रुप्पन की कोठी की पीछेवाली दीवाल में बारूद भरकर उड़ाने और जलाने के पाक काम के लिए शिवाले के अन्दर थे और बाकी लोग आस-पास के दरवाज़ों में आग लगाने का नेक काम कर रहे थे। इस घर पर भी तो दुश्मनों का दांत था। लेकिन भगवान् रक्षक हैं। एक तो ये गुंडे, आधा फर्लांग दूर ही से अपने जोश में नारे दहाड़ने लगे थे। गली में सुन-गुन हो गई सो दरवाज़े पटापट बन्द—छतों-छज्जों का टेलीफून ऐसा आनन-फानन खटखटाया है और दरवाज़े ऐसे पटापट बन्द हुए हैं कि कमाल हो गया। और मुसलमानों की तो ऐसी पिटाई अहिरों ने की है—"

"अब तो इस घर में टेलीफ़ोन भी आ गया है बाबूजी।"

"हां-हां, बैठके में है। आओ।" रद्धू बाबू बड़े आग्रह से अन्दर ले चले। आंगन पार करते हुए हंसकर बोले : "खोखे साले की तकदीर ही खराब हैगी। उसके गुण्डे ससरे हमारे टेलीफ़ोन का तार ही काटना भूल गये। मूर्खों पे भरोसा करने का यही नतीजा होता है।"

अन्दर लाला साहब बैठे थे। बारीक धोती, रेशमी बनियान, गले में सोने की दो लड़ी, हाथों में अंगूठियां—सब पहले ही जैसा टिपटाप। बैठके में दो पंखे चल रहे थे, एक खस के हिन्दुस्तानी कूलर में था, दूसरा पैडेस्ट्रल घूम रहा था। हुक्का महक रहा था। टेबिल पर बोतल और गिलास की रंगीनी भी उसी तरह कायम थी। लाल साहब चश्मा लगाए कुछ कागज़ पढ़ रहे थे। इन लोगों को देखकर पढ़ने का चश्मा आंखों से हटाया—"अरे आओ-आओ जी रिपोर्टर साहब! आज तो तुम्हारे आत्माराम ने हमारा और रुप्पन का घर फुंकवा के अपना कलेजा ठण्डा कर लिया।"

रमेश बोला : "डाक्टर आत्माराम ? ..."

लाल साहब हंसकर बोले : "अरे आत्माराम का नाम तो तुम्हें छेड़ने के लिए ले लिया—मगर बात हक़ीक़त से कहीं दूर भी नहीं है। रमेश लो कुछ पियो। पीते हो? या ससुर का लिहाज़ करोगे?"

रमेश हंसकर बोला : "मेरे पिताजी ने अपने बचपन से लेकर अब तक इतनी भांग पी है कि उसी का नशा जो मुझे विरासत में मिला है, मुझसे सम्हाले नहीं सम्हलता।"

रद्धूसिंह बोले : "आपके लिए चाय बनवाता हूं भैयाजी।" कहकर वे लपकते हुए बाहर गए। रमेश ने बात को गंभीर स्वर देकर पूछा : "आप कहना चाहते हैं लाल साहब कि ये हिन्दु-मुस्लिम दंगा नहीं है, बल्कि किसी और चालबाजी के लिए ये खून-खराबा हुआ ?"

"देखो काम तो सिरिफ दुइयै रहे उनके, रुप्पन के ऊपर तो भरपूर वार रहा औ हमरे बारे मां शक रहा—"

रमेश की आंखों में एक नया प्रकाश आ गया था, बोला : "किसी की आपसे और रुप्पन लाला से आपसी अदावत थी ?"

रद्धूसिंह तब तक लौट आये थे, लाल साहब हुक्का गुड़गुड़ाते हुए बोले : "यार, तुम अखबारी आदमी हो, इससे मुझे डर लगता है।"

"लाल साहब, अखबार वाला इस समय आपको औ' रूपचन्दजी को किसी हद तक सहायता ही दे सकता है।"

"पर तुम वो रिपोर्टर नहीं हो। शोभाराम के बेटे का अखबार मेरे और रुप्पन के दुश्मन से हरगिज दुश्मनी मोल न लेगा।

"हाजी साहब से आपका मतलब है।"

"ना—ही।...और भाई एक तरह से है भी। (गिलास मुंह से लगा)...अब भई, तुम पुराने मुलाकाती हो और हमारे रद्धूबाबू के दामाद भी हो...और ये भी हम समझते हैं कि तुम अखबार में उस किस्से को चाहकर भी न छाप सकोगे ! इसलिए अरे रद्धूबाबू सुनाओ ना, अपने दामाद को सारा किस्सा सुनाओ, मैं ये दो सफ़े पढ़ लूं ज़रा।"

नाश्ता और चाय आ गई। रद्धूबाबू ने एक बार सामने खड़े नौकर को फिर मेज़ पर रक्खी हुई बोतल को, फिर दाहिनी ओर तखत पर बैठे हुए अपने दामाद को दो बार जल्दी-जल्दी देखा और सिर झटकाकर मुस्कराते हुए नौकर से बोले : "छिद्दू ले आओ हमारे लिए भी बरफ़ और सोडा खोल दो। अरे हां, अब ये भी नये ज़माने के दामाद हैं, कौन पर्दा करे।"

रमेश मुस्कराकर टेलीफ़ोन की ओर बढ़ा। रानी से बातें कीं। सुमित्रो भी बहिनजी के यहां ही है। रानी ने टेलीफ़ोन पर यह आदेश भी दिया कि या तो रमेश रात में ऊपर रीतू-सीतू को साथ लेकर सोए या पुलिस की जान-पहचान का ज़ोर लेकर दोनों सालियों के साथ बहनजी के यहां आ जाय, क्योंकि दफ्तर से टेलीफ़ोन करने पर मालूम हुआ कि दंगा शहर भर में फैल गया है। ससुर और बीच-बीच में लाल साहब से भी दंगे का रहस्य जानकर रमेश उत्तेजना से एकाएक तप गया। बात की तह में रुप्पन का छोटा लड़का मुलायम, खोखा मियां का बड़ा लड़का रफ़अत और एक लड़की निकली। लड़की का नाम अभी मालूम नहीं। लेकिन है इसी क्षेत्र की, युनिर्वसिटी में पढ़ती है, फ़ाहशा है। मुलायम और रफ़अत दोनों कुछ दिन इकट्ठे उसे साथ लेकर घूमे। लेकिन बाद में वो लड़की आई मुलायम के कब्जे में और रफ़अत रह गया। कल दोपहर में युनिर्वसिटी के पासवाले बस-स्टैण्ड से एक मोटर उसे ज़बर्दस्ती खींचकर उड़ा ले गयी। मुलायम को किसी तरह शाम तक यह खबर भी मिल गयी। उन्होंने अपने गुर्गे छोड़े। लड़की की

लाश रात के साढ़े ग्यारह बजे खोखा मियां के बंगले से डेढ़ मील दूर दक्खिन ओर एक पुराने ज़माने के तालाब के पास बारहदरी में मिली। पुलिस पहुंची। वहां तक गाड़ी के निशान देखे। भारी जांच हुई। वह सब तो उस तरफ़ हुआ और इधर रात में दो और तीन बजे के बीच में खोखा मियां की कोठी में बड़ी सफाई से दीवारों के नीचे कई जगह बारूद भरकर और पेट्रोल छिड़ककर आग लगा दी गई। घर में जगार होने से पहले ही क़यामत आ गई। रफ़अत का कमरा एक ज़बर्दस्त धड़ाके के साथ हिल उठा। जब वो जागा तो उसके सिरहाने की आधी दीवार लपटों की बनी हुई लग रही थी। रफ़अत तो बच गया, मगर खोखा मियां ने उसी का बदला लेने के लिए आज रुप्पन की कोठी में आग लगवाने का प्रबन्ध किया। रुप्पन का घर चूंकि गली में था। सीधा हमला होने पर बात व्यक्तिगत हो जाती इसीलिए यह हिन्दू-मुस्लिम दंगे का नाटक रचा गया। रमेश के मन-प्राण यह सुनकर विद्रोह कर उठे। पैंसेवालों की ऐयाशी के पीछे निर्दोष व्यक्तियों की जानें जायं, माल लुटे, नुकसान हो, दंगा दबाने के लिए सरकारी मशीन को चलाने का खर्च अधिक बढ़े और सबसे बड़ी बात तो यह कि धर्मों में वैमनस्य बढ़े—और यह सब कुछ व्यक्तिगत अहंता के विषाक्त विस्फोटों के निमित्त हो—रमेश इसे बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था। व्यक्ति की स्वतन्त्रता का सिद्धान्त उसे अति प्रिय है, पर क्या यही व्यक्ति की स्वतन्त्रता के अर्थ हैं ? नहीं, वह कल सुबह के ही अखबार में इस पहलू का उद्घाटन करेगा। वह खन्ना साहब को बतलाएगा। खन्ना साहब को टेलीफ़ोन किया। खन्ना साहब तब तक दफ्तर में थे। उन्होंने कर्फ्यू-पास वाली अपनी दफ्तरी गाड़ी भेज दी। साइकिल ससुराल में छोड़कर, रीतू-सीतू को खन्ना साहब के यहां छोड़ता हुआ वह सीधे दफ्तर गया। रात में कर्फ्यू रहते हुए भी नगर के कई क्षेत्रों में भयानक दंगे हुए। एक बार आग भड़का देने के बाद फिर उसे सहसा बुझा देना असम्भव था। एक लड़की पर बलात्कार हुआ, इसे समाज भला कैसे सहन कर सकता है; लेकिन यह समाज अधूरा ही था। लड़के वाला समाज भी बेहद गुस्से में भरा हुआ अपनी कायरता को मिटाने का हौसला पाकर नृशंस हो उठा। आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर के निचले लोग दीन के ज़ोम में, पैसे और बड़ों के भड़कावे में उद्धत हो उठे। उनका यों उद्धत होना ही धरम वालों को खल गया। और फिर धर्मी दीनदारों को घास की तरह से काटने लगे।

खन्ना साहब के दफ्तर के कमरे में रात के साढ़े ग्यारह बजे भी सुप्रतिष्ठितों का मजमा लगा हुआ था। हाजी नबीबख्श, लाला बैंजू, लाला रूपचन्द और डॉ० अशरफ़ के अलावा स्टाफ़ के दो-तीन व्यक्ति इन बैठे हुए सम्भ्रान्तों की जी-हुज़ूरी में मुस्तैद खड़े थे। अभी ही टेलीफ़ोन पर खबर आई थी कि एक महल्ले में एक लकड़ी की टाल में आग लगाकर उसमें पचीसों व्यक्ति अपने घरों से घसीटे जाकर अब तक फेंके जा चुके हैं और फेंके जा रहे हैं। अभी तक पुलिस का पता नहीं है। खबर सुनकर हाजी साहब के चेहरे पर एक बेसाख्ता कराह की लकीर खिंच गयी। लाला बैंजू ने कुरसी पर अपना टेका बदलते हुए पान भरे मुख से राम-राम कहा। खन्ना साहब बोले : "सन् '23-'24 के दंगों के समय गान्धीजी ने लिखा था कि मुसलमान बुली (अकड़) और हिन्दू कावर्ड (कायर) होता है। लेकिन तब से आज तक स्थिति बदल गई है। हिन्दू भी अब बुली हो गया है। यह तो लगता है कि आज रातभर में यहां भी जबलपुर का-सा तमाशा हो जायगा। लड़की

का बलात्कार और खून जबलपुर से मिलती-जुलती घटना है, इसलिए उस दंगे का मनोवैज्ञानिक नाता इस दंगे से पूरी तौर से जुड़ जाता है। यही सबसे घातक बात है। पुलिस और मिलिटरी में भी हमारे जवान मौक़ा पाने पर अक्सर साम्प्रदायिक हो उठते हैं। अंग्रेज़ों के ज़माने से ही यह ट्रेडीशन (परम्परा) चला आ रहा है। किया क्या जाय।"

एक क्षण कमरा मौन रहा, फिर हाजी साहब बोले : "एक ही तरीक़ा है खन्ना साहब, कल किसी तरह से मेरा और लाला रूपचन्द साहब का यह इस्टेटमेन्ट शाया हो जाय कि ये जो बलात्कार और हत्तिया का मामला है, उसे हिन्दू-मुसलमान ही क्या, दुनिया का हर धरम-मज़हब बुरी से बुरी बात मानता है। इस बुराई को रोकने के लिए हिन्दू-मुसलमानों को मिलकर मोर्चा बनाना चाहिए, न कि आपस ही में लड़ जाना चाहिए।"

लाला रूपचन्द गम्भीर मुख, तेज स्वर में बोले : "यह अवश्य है कि बुराई मेरे मुलायम में भी थी और रफ़त में भी। मगर बुराई-बुराई को भी तौलना होगा। अपने लड़के को बचाने के लिए आपके खोखा मियां ने जो ये दंगे की धोखाधड़ी फैलाई हैगी हाजी साहब, इसके लिए तो उन्हें भगवान् भी माफ़ न करेंगे।"

हाजी साहब बोले : "अब सिर्फ एक ही तरीक़ा बच गया है खन्ना साहब। मैं बजातेखुद जाकर हिन्दुओं के सामने खड़ा हो जाऊंगा कि अगर जान लेनी हैं तो भइ मेरी ले लो, बेगुनाहों को मारने से क्या फ़ायदा।"

खन्नाजी बोले : "हाजी साहब अकेले आप ही नहीं, आपका साथ देने को और भी कई आदमी शहर में निकल आएंगे।···और आपकी इस बात पर सोचता हूं कि कल सुबह से सारे शहर में एक शान्ति मिशन का दौरा ज़रूर होना चाहिए। अकेले पुलिस और मिलिटरी पर ही नहीं, बल्कि शहर को बचाने की जिम्मेदारी दरअस्ल हम नागरिकों पर ही आती है। मैंने तो ये सोचा था कि आप और रूपचन्द जी गहरे दोस्त हैं, समझदार हैं —"

"अरे तो शान्ती के मामले में रुप्पन क्या किसी से पीछे रहेंगे अनन्दो ? मगर पहले बात के पेंच तो ढीले करो।" लाला बैंजू ताव में हाथ फेंक कर बोले : "शान्ती वाली बात बिलकुल ठीक है और इस्टेटमेण्ट वाली बात में ज़रा भी दम नहीं हैगा। न हाजी साहब महातमा हैंगे, और न रुप्पन। सभी को अपने बाल-बच्चों से मोह होता हैगा, वो चाहे लाख बुरे क्यों न हों। इस्टेटमेण्ट देने में रुप्पन के हाथ क्या मालूम किस तरीके से कट जायं। इनका लड़का कसूरवार ज़रूर है, पर रण्डी-रखैलें रखने का कसूर तो दुनिया में बहुत से करते हैं। हमारे हाजी साहब ने ही रक्खीं। मगर खैर, इन बातों में क्या धरा हैगा। आठ-दस आदमी चुन लेव बड़े-बड़े औ' भाई थोड़ा आपस में चन्दा-वन्दा भी कर लें। जहां कहीं नुकसान-वुकसान भया होयगा, वहां मदद दै देंगे। एक बात ये भी हम लोग मानउता की परचार कर देंगे—कि उस लड़की के फेर में खाली यही दोनों लड़के नहीं रहे, दो-तीन और भी रहे; साली फ़ाहशा तो थी ही। वो भी और उसकी बहन भी, जो टेलीफून दफ्तर में काम करती हैगी। अरे ज़रा-सा झूठ बोलने में अगर बड़ा फायदा होता हो तो हरजा क्या है। हमें तो अपने दोनों लड़कों को बचाना हैगा। और शहर के लोगों को भी बचाना हैगा। मरनेवाली तो मर गई। अशरे वाले दिन ताज़िये ज़रूर निकलें। आखिरी बात हम ये भी कहेंगे और हाजी साहब के मूं पे कहेंगे कि इनकी बंगालिन रण्डी का वो लड़का, अगर इन्होंने उसे अभी से अलग

नहीं किया तो एक दिन इन्हीं के ऊपर करारा घात करेगा।"

हाजी साहब बोले : "लालाजी, मैं तो इन्साफ़ की राह पर चला था, लेकिन ये लड़का·· क्या कहूं इसकी जहालत को। खैर, खन्ना साहब ने इस वक्त हम लोगों को यहां बुला के बहुत अच्छा किया, एक राह निकल आयी। और मैं समझता हूं कि ये काम भी लाला बैजनाथ ही करें। रेवतीरमन और मिसेज़ चौधरी को भी अपने साथ ले लेवें। डिप्टी कमिश्नर और एस० एस० पी० से भी चाहे आप, चाहे ये, कोई भी कह दे कि हम सुबह नौ बजे से लंच टाइम तक और उसके बाद फिर शाम को शहर में दौरा करेंगे। पोलीटिकल पार्टियों के भी एक-एक आदमी बुला लें।"

दूसरे दिन सुबह खन्ना साहब के शान्ति मिशन पर निकलने से पहले ही रमेश और रानी दफ्तरी गाड़ी पर अपने घर हुसेनाबाद चले आये। कर्फ्यू के कारण दोनों ही की छुट्टी थी। बहनजी के घर पर भरे मजमे में पूरा दिन बिताने की तबीयत दोनों में से किसी की भी न थी। सुमित्रो ने रानी से बहुत कहा, बहनजी ने भी एक बार कहा, पर इस मीठे बहाने से वह आग्रह टाल दिया गया कि बहुत दिनों से रमेश का एक लेख अधूरा पड़ा है, आज अवकाश में उसे ही पूरा करेगा—"औ' दूसरी बात ये कि हमारे मकान मालिक, बिचारे नवाब साहब के दिल में कहीं ये खरोंच न आ जाय कि हिन्दू-मुस्लिम दंगे के कारण ये लोग नहीं आये।"

सचमुच, अनवर नवाब इन दोनों की ओर से चिन्तित थे। बाबादीन से खबर पाते ही लकड़ी टेकते हुए आये, क्षण दो क्षण रमेश को इस तरह देखते रहे, मानो प्यासा पानी पी रहा हो, फिर आगे बढ़कर उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा : "गौड़ साहब ! आपसे मेरी एक दरख़ास्त है।"

"हुक्म दीजिए नवाब साहब।"

"साल, दो बरस, छै महीने, जितने दिन भी मैं और जिऊं आप मेरा घर छोड़कर न जाइए।"

अनवर नवाब के स्वर में सहारे का आग्रह, भिखारी की दीनता और पिता की वात्सल्य-विवशता तीनों ही कुछ इस तरह से घुली हुई थीं कि रमेश भावाभिभूत हो गया। नवाब साहब के पैर छूकर बोला : "नवाबसाहब, ये बात ही आपके मन में क्यों आई ? रानी, यहां आओ ? देखो ये हमारे नवाब साहब बेचारे हम लोगों के यहां न आने के कारण—"

"मैं तो पहले ही कह रही थी कि नवाब साहब चिन्ता कर रहे होंगे।"

"क्या कहूं बीबी, एक वक्त ऐसा भी आता है जबकि इन्सान अपने लिए एक सहारा चाहता ही है। गैहांबानो यहां आ गयी थी तो मैंने समझा था कि उसके सहारे ये मेरा घर बना रहेगा। मगर वह तो हवा में टूटे पत्ते की तरह यहां आ गिरी थी और हवा ही उसे फिर उड़ा ले गई। टुन्ने मियां की फ़ेमिली को यहां रखके हमने सोचा था कि एक अज़ीज को बसा रहे हैं, सहारा रहेगा बुढ़ापे में। नौकर-बावर्चिन सब हों भैया···मगर गौड़ साहब, कल रात में जब आप लोग न आये, तो यह तो खैर सोच लिया कि आप लोग उधर ही कहीं रुक गये होंगे। खैर मुनासिब बात थी, मगर साथ ही साथ न जाने क्यों मुझे यह अन्देशा भी हुआ कि लोग-बाग आप पर दबाव डालेंगे और कहेंगे कि अब मुसलमान के घर रहना ठीक नहीं—"

"अरे नवाब साहब, यह तो हम सोच ही नहीं सकते। हमने कभी सोचा भी

नहीं। आप तो मेरे पिता क्या, उनसे भी उमर में बहुत बड़े हैं—" रानी उत्साह में बोलती चली गयी; फिर एकाएक रुकी। बात के छोर हवा में खो गये, और फिर मानो नये सिरे से बात पूरी करने की चाह में बोली : "आपके लिए चाय लाती हूं नवाब साहब।"

नवाब साहब बोले : "ये बैठे-बिठाए का दंगा आखिर हो ही गया यहां भी। सुना है कि जबलपुर वाली स्टोरी ही रिपीट हो रही है यहां भी।"

"नवाब साहब, इंडिविजुअल (व्यक्ति) की आज़ादी के माने दरअस्ल यही हैं कि पैसेवालों और शक्तिशालियों को अपनी मनमानी करने की खुली छूट मिलती रहे। खोखा मियां ने रुप्पन के घर को अपने घर की तरह ही भीड़ से तबाह करवाना चाहा, वरना बदला कैसे पूरा होता। बगैर हिन्दू-मुस्लिम दंगे की आड़ लिए हुए वे अगर अपने गुण्डे भेजते तो कानून की पकड़ाई में न आ जाते। कल रात खन्ना साहब के दफ़्तर में इन बड़े आदमियों की बातें सुन-सुनकर मेरे हृदय में खौलन होती रही। पैसे के ज़ोर पर ये लोग अपराधियों को बचा ले जायंगे। दो-चार हज़ार ग़रीबों में बांटकर, उनकी नुकसान-भरपाई का तमाशा करके दीनबन्धु-दयानिधान बनेंगे और शहर का नाम बदनाम हुआ कि यहां हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ।" रमेश का चेहरा तमतमा उठा।

गम्भीर विचारमग्न मुद्रा में अपनी छोटी-सी बुर्राक़ दाढ़ी पर उंगलियां चलाते हुए नवाब साहब बोले : "बात महज़ इन्डिविजुअल (व्यक्ति) की आज़ादी ही की नहीं है भैया, हमारी सोशल गुलामी की भी है। आप ठण्डे तरीके से देखिए तो इस्लाम कब हिन्दू मज़हब से लड़ा? लड़े तो अरब, मंगोल, पठान, ये सब लोग हिन्दोस्तानियों से लड़े। हां, इनको बहाना इस्लाम का ज़रूर मिल गया, जैसे खोखा मियां को हिन्दू महाजन के घर पर धावा करने के लिए दंगे के बहाने की ज़रूरत थी। आपको शहर की फ़िक्र है, मुझे इस्लाम की फ़िक्र है। इन बदमाशों के पीछे 'दीने-इलाही' मुफ्त में ही बदनाम हुआ।" अनवर नवाब के चेहरे पर अन्तर्वेदना की सात्विक प्रभा आ गई। उनकी आंखें बन्द हो गईं और होंठ कुछ बुद-बुदा उठे।

अचानक कुछ ध्यान आते ही रमेश कुर्सी से उठा और बोला : "आपकी इस बात पर मुझे एक पुराने लेख की याद आ गयी। अभी लाता हूं।" कहकर रमेश उठा और परदे के पीछे अपनी मेज़ से फाइल उठाने चला गया। फाइल उठाकर उसके पन्ने पलटता हुआ और वहीं से बोलता हुआ लौटा—"ये एक पुरानी हिन्दी मैग़जीन 'नागरीप्रचारक' की फाइल है, सन् 1909 की। इसमें पण्डित रूप-नारायण पाण्डेय का एक लेख है—व्यूप्वाइन्ट (दृष्टिकोण) उनका हिन्दुआनी ज़रूर है, मगर कुछ बातें बड़े मजे की हैं। एक जगह पाण्डे जी और देवदत्त दो कैरेक्टर आपस में बातें कर रहे हैं कि 'देवदत्तजी, मुसलमानों के अत्याचार से हिन्दू धर्म दृढ़ हो गया है, इसकी आयु बढ़ गयी है और इसे अलौकिक प्रबलता प्राप्त हो गयी है।' इस पर देवदत्त कहते हैं कि 'यह तो आप पहेली-सी कह गये। हिन्दुओं के सब देवमन्दिर नष्ट हुए, ब्राह्मण और बहुत से साधारण हिन्दू मारे गये···आप कहते हैं कि इससे धर्म दृढ़ हुआ।' इस पर पाण्डेजी बोले कि 'बल प्रयोग से वैराग्य उत्पन्न नहीं होता ··मुसलमानों ने हिन्दुओं के देवस्थानों को तोड़कर हिन्दुओं को अपने धर्म की शिक्षा देनी चाही, परन्तु उसका फल क्या हुआ?"

रानी चाय और उसके साथ-साथ खस्ता गर्म मठरियां, मीठे बिस्कुट और केले एक ट्रे में सजाकर ले आई।

नवाब साहब बोले : "सही लिखा है। जहां ताक़त का इस्तेमाल हुआ, वहां नफरत तो फैलनी ही थी। मैं मुसलमान हूं और तलवार में अकीदा भी रखता हूं। मगर एक तस्वीर मेरे सामने अब और भी आने लगी है, काश कि इस्लाम वाले मिलजुलकर प्रेम से अपने मजहब का परचार करते।...मैं आपको खुद अपनी आंखों देखी-सुनी-बरती बातें बतलाता हूं कि यहां एक साथ रहते हुए हिन्दू-मुसलमानों ने आपस में एक-दूसरे से बहुत-कुछ लिया और दिया भी है, बल्कि हमारे यहां बहुत से रीत-रस्म हिन्दुओं के आ गए हैं, बहुत-सी बातें हमने उनकी देखा-देखी अपनायी हैं और हिन्दू भी दरगाह-पीर वग़ैरह को मानने लगे हैं। गाज़ी मियां, अजमेर शरीफ, देवा शरीफ वगैरह जगहों पर इतने हिन्दू जाते हैं कि देख कर कोई यह कह नहीं सकता कि मज़हब इन्सान को बांट भी सकता है।" एक मठरी उठाकर उसका एक टुकड़ा मुंह में डालकर अपने नकली दांतों को चलाते हुए वे विचारमग्न रहे। रमेश को उस समय उनका सफेदी भरा फीका, गोरा चेहरा दिव्य लगा, जीवन उनकी आंखों में था। वे फिर कहने लगे : "हमें अब यह तस्लीम कर लेना चाहिए कि एक साइकलाजिकल गिरह (मनोवैज्ञानिक ग्रंथि) तो पड़ ही गई है हिन्दुओं और मुसलमानों में। हमें उसको समझना चाहिए ही...... आपको एक मज़ेदार बात बतलाऊं गौड़ साहब, फ़ारसी की डिक्शनरी में आप जानते हैं, हिन्दू लफ्ज़ के माने क्या लिखे हैं ? —काला, लुटेरा और गुलाम। और आप जानते हैं कि अल्फाज़ के साथ जो मानी चस्पा होते हैं, वो कुछ सोशल और हिस्टारिकल (सामाजिक और ऐतिहासिक) वजूहात भी रखते हैं। क़ॉफिर तो खैर हिन्दू थे ही, क्योंकि उनका दीन इस्लाम नहीं था। सौदागरी और ब्याज-बट्टा फैलाकर अरब और एशिया में आपके हिन्दू दूर-दूर तक फैले हुए थे। हिन्दोस्तान पुराने ज़माने में उसी लूट से बड़ा पैसे वाला बना था। इसलिए भी अरब और एशिया के लोगों को अपने लुटेरे से नफ़रत थी। इस्लाम के परचार के लिए तलवार की शह पाकर ये हमारे अरब के ताकतवर कबीले आपस में लडना-भिड़ना छोड़कर एक हो गए। एशिया, योरप, स्पेन तक इन्हें लूटने और मौजें मारने के लिए नया मैदान मिल गया। ये भूल गए कि मोहम्मदे मुस्तफ़ा ने हक के लिए कहां तलवार उठाई थी और क्या करने को कहा था। अजी हद हो गई, नबी के दामाद हज़रत अली और नवासे हजरते हुसैन तक को मार डाला। दूसरों की फिर क्या कहें, हिन्दुओं की इबादतगाहें तोड़ना और उनकी किताबें वगैरह जलाना तो महज़ एक फर्ज-अदायगी भर थी भैया, असली मकसद था लूट और जिनाकारी।— हिन्दुओं की नज़रों में मुसलमान इस तरह लुटेरा और दगाबाज़ बन गया। हम आपकी नज़रों में लुटेरे और दग़ाबाज़ हैं और आप हमारी नज़रों में। जहां जिसको भी ज़रा दबोचने का मौका मिल जाय, बाज नहीं आता। हममें अरब और ईरानी या तुर्क, मुग़ल और पठान वग़ैरह होने की हमीअत थी; सच्चे मज़हब की हमीअत तो थी ही। इधर हिन्दू भी कुछ कम नहीं थे। उस ज़माने की पूरी दुनिया को अपने इल्म और तिजारत से बांध रखा था। बन्दर और सांप की लड़ाई में बन्दर जीत गया और फिर जीत के ज़ोम में रह-रहकर पत्थर पर उसका फन रगड़ने लगा।"

"लेकिन समस्या तो ये है नवाब साहब कि बन्दर और सांप की लड़ाई अभी

तक खत्म ही नहीं हुई—मुसलमानी ज़माना गया, अंगरेज़ी ज़माना गया—वह भी हिन्दुस्तान, पाकिस्तान बना के गया।"

"हिन्दोस्तान-पाकिस्तान",—नवाब साहब बोले, "अजी बंटवारे का मतलब ये है कि अंगरेज़ों के राज में छुरे-लाठियों से लड़ते थे, अब तोप-बन्दूकों से लड़ेंगे। कभी-कभी सोचता हूं गौड़ साहब कि अकल इन्सानियत को गुमराह भी कर देती है, जैसे जिन्ना ने पाकिस्तान बनाकर मुसलमानों को किया।"

"वही तो कहता हूं नवाब साहब, धर्म और मज़हब राजनीति को जिस तरह पीछे घसीट रहे हैं, यह आगे बढ़नेवाली दुनिया के लिए अच्छी बात नहीं। मेरे खयाल में तो आने वाली दुनिया इस धर्म नाम की निकम्मी चीज़ को बिल्कुल ही छोड़ देगी। लेनिन ने सच ही कहा है कि धर्म लोगों के लिए अफीम का काम करता है।"

"एक हद तक बात शायद सही है, लेकिन धरम इससे कहीं ज्यादा ऊंची चीज़ है गौड़ साहब। वो हक़ है। खुदा का जलवा है। उसी से हमें हज़रते मूसा, हज़रते ईसा, हज़रत मुहम्मदे मुस्तफ़ा पैगम्बरे खुदा, महातमा बुद्ध और कनफ्यूशियस और गांधी और आपके रामकृशन परमहंस, विवेकानन्द वग़ैरह—ये सब क्या थे, अफयूनी? आप समझते हैं कि इन्होंने इन्सान को आगे नहीं बढ़ाया है—सिर्फ़ लेनिन और मार्क्स ही ने बढ़ाया है?"

रमेश ने देखा कि बुजुर्गवार धर्म पर आक्षेप करने से ताव खा गए हैं। अनवर नवाब के ताव में उसे अपने पिता का ताव भरा चेहरा झलकता नज़र आया, और उसे दोनों धर्मों में कोई भी अन्तर नज़र न आया। श्रद्धा और प्रेम के महाभाव में तर्क घुल गए।

अठारह

"अलीगढ़ में दशहरे पर हिन्दू-मुस्लिम दंगा।" दूसरी खबर थी कि मुरादाबाद में मुहर्रम पर शिया-सुन्नी का दंगा हो गया। और ये दोनों ही समाचार आज से एक सौ नौ वर्ष पहले के हिन्दी साप्ताहिक 'बुद्धि प्रकाश' के 26-10-1853 ई० के अंक में मैंने आज दिन में पुस्तकालय में पढ़े थे। यानी दंगे उस ज़माने में भी होते थे। वह समय एक शती पीछे का होने पर भी अपने नये बुद्धिप्रकाशत्व का बोध ज़रूर कराता है। मुंशी सदासुखलाल मुहतमिम नूरुल अखबार छापेखाने के इहतमाम से, आगरे के महल्ले मोतीकटरे में छपने वाले इस 'बुद्धि प्रकाश' में भारत की पहली रेलवे लाइन खुलने के समाचार 'लोहे की सड़क' के नाम से छपते हैं; बनारस में 'जैनरायन कालिज' नाम की एक अंग्रेज़ी पढ़ानेवाली 'पाठशाला' खुलने के समाचार छपते हैं; मराठी पत्र 'ज्ञान प्रकाश' से यह खबर भी लेकर छापी जाती है कि पूना के हिन्दू सदरआला ने 'अपनी पुत्री को पढ़ाने के लिए पाठशाला में भेजी है'। बम्बई में पांच सौ भारतीय लड़कियों के पढ़ाने के समाचार भी वह पत्र छापता

है। रूस-अमेरिका के समाचार छापता है, विविध देशों का इतिहास, भूगोल, विज्ञान की नई-नई ईजादें, नवाब वाजिदअली शाह के जोगिया मेले की शाही 'मूर्खता' से लेकर बंगाल के राजा राधाकान्त बहादुर द्वारा आयोजित 'विधवा के पुनर्विवाह की व्यवस्था के समाचार' तक छापता है—यह सब अंधेरे के नहीं; नवयुग के उषाकाल का परिचय देते हैं। ज़माना आगे बढ़ने के लिए मचल रहा था …मगर हिन्दू-मुस्लिम और शिया-सुन्नी दंगे तब भी थे, आज भी हैं। पैदा होते ही जीवन का एक ढर्रा-ढांचा, शब्द, आचार-विचार, व्यवहार और संस्कार हमारे होश में समा जाते हैं। ये कितने घातक भी होते हैं! मेरे होश में, देखते-देखते हिन्दू-मुसलमान में व्यवहार-परिवर्तन आया है, खान-पान में छूत-पाक का अन्तर ध्यान में रखकर भी, खास तौर पर अपनी शिकायत रखते हुए भी मुसलमान सोहार्द्र कायम रख लेता था। मिलता-जुलता दुनियादारी बरतता था। एक-दूसरे के रीति-रिवाज मेले-त्यौहारों का ज्ञान भी एक दूसरे को था।…हमने आपसी खानपान का प्रतिबन्ध तोड़ा, विचारों में हम और व्यापक हुए; लेकिन उस समय अपने-अपने समाज की 'आत्मोन्नति' की धुन में हम हिन्दू और मुसलमान अपने-अपने दायरों में सिमट भी गए। मुसलमानों ने भी अपने समाज के कठमुल्लापन को काफ़ी झटका दिया। हज़ारों लड़कियां आज के दिन उनमें भी पढ़ी-लिखी हैं, नौकरपेशा हैं, बड़ा परिवर्तन आ गया है, फिर भी हिन्दू समाज की स्त्री मुसलमान समाज की अपेक्षा अधिक मुक्त है।…मेरे विचार इस समय उखड़े-उखड़े आ रहे हैं—

…मैं क्या करूं, मेरी नन्हीं मुक्ति से बन्धन की ओर जा रही है। नन्हीं गर्भवती है और उसका गर्भदाता एक…मुसलमान है। आज सबेरे मां-बेटी में गहरी कहा-सुनी हो गई थी। मैं जब लायब्रेरी से लौटकर आया तो माया अकेली बैठी रो रही थीं। नन्हीं घर में नहीं थी। कारण पूछने पर माया ने आंखें पोंछ, सुबकी दबाकर कहा : "अरे, जो होना था सो हो गया तुमरी किरपा से। अब पूछ के क्या करोगे?" बहुत आग्रह करने पर उन्होंने रहस्य खोला। मेरे एक भव में दो भव हो गए, धरती आकाश दसों दिशाओं की चुम्बकीय मर्यादाएं मेरी चेतना से छूट गईं। अहम् अपने स्थिरासन से स्खलित होकर शून्य में रेत-सा विलीन हो गया। प्राण आकण्ठ आकर, जीवन की सीमाएं छूट जाने के अचेत भय से ढकेले जाकर फिर होश के दायरे में आए।

लड़की ने प्रेम किया, इसे स्वीकार करने को मैं तैयार था। उसने मुसलमान से प्रेम किया, इसे स्वीकार करने में हिचक थी। वह बिन ब्याहे मां बन रही है—इसे स्वीकार करना तो असम्भव ही था।…यह क्या किया नन्हीं ने?

अभी थोड़ी देर पहले भवानी का नौकर यह सूचित कर गया कि नन्हीं कॉलेज से अपने भाई के घर पहुंच गई है। माया आयीं, बोलीं : "अब इसका उपाय क्या होगा?"

मुझे कोई उपाय न सूझ रहा था; बल्कि सच तो यह है कि माया की उपस्थिति से उस समय मैं मन ही मन में चिढ़ उठा था। वह चिढ़ नन्हीं की ओर क्रोध बनकर लपकी, फिर उसे फंसाने वाले व्यक्ति पर क्रोध बरस पड़ा, सामने होता तो शायद उसे मार ही डालता। निष्क्रिय मानसिक उत्तेजना ने थका दिया। मैं न कुछ बोल सका, न सोच सका। माया ने फिर पूछा। मैंने कहा : "क्या उपाय बतलाऊं! बड़े और मंझले को बुलाओ, उनसे सलाह लो। मेरी राय तुम्हारे अनुकूल न होगी शायद।"

"उसे पढ़ाउन भेजत बिरियां तौ तुमरी राय, तुमरे बिचार रहे, अब हम लड़कन से क्या पूछन जांय?" माया उग्र और आक्रामक हो उठीं। मैं भी झुंझला गया। बोला: "मेरी राय सुनोगी? आर्यों की लड़की अगर मन में भी किसी को वर ले, तो फिर किसी दूसरे से विवाह नहीं कर सकती, और यहां तो—"

"पर मैं मुसलमान से ब्याह नहीं होने देऊंगी अपनी बिटिया का।" सर्वसत्ता-मयी सम्राज्ञी का क्रोध तमतमा उठा। झूठ नहीं बोल सकता अपने-आपसे, माया का यह सतेज निर्णय मेरे कलेजे का चैन बना, परन्तु शंकाएं भी उठती चलीं। मैंने कहा: "कैसे रोक सकती हो? एक तो तुम्हारी लड़की बालिग है, दूसरे, उसके होने वाले बच्चे का पिता अगर चाहे तो कचहरी चढ़ के तुमसे उसे ले जाएगा।"

"देख लेऊंगी मैं भी। सती का कलेजा भगवान भी नहीं दुखा सकता।"

"यही बात नन्हीं भी अपने लिए कह सकती है।"

"नन्हीं! वो हरगिज़ नहीं कह सकती। मेरा मन ब्याव से पहले एकदम कोरा रहा और ब्याव के बाद उस पर तुम छप गए। मैं अपने बच्चों की मां वैसे बनी, जैसे कि सब भली आबरूदार मेहरुवें बनत हैंगी।—बड़ी आई अपने को सती कहनवाली मेरे सामने।"

माया की बातों की वैसाखी लगाकर मेरे विचार लंगड़ाते हुए चल रहे थे। मैं यह स्वीकार करता हूं कि भारत देश में खासतौर पर और दुनिया में आमतौर पर अब भी माया के समान अपने सतीत्व पर अभिमान करने वाली स्त्रियां मौजूद हैं, यद्यपि संख्या में इस समय कम हैं, पर आदर्श उन्हीं का सर्वत्र पुजता है। मगर यह होते हुए भी संख्या उन्हीं नौजवान युवक-युवतियों की अधिक बढ़ रही है, जो काम-सम्बन्धों में पाप-पुण्य की गंध नहीं सूंघना चाहते।

और यह मर्यादाएं भी अधिकतर समाज का निम्न मध्यम वर्ग ही सबसे अधिक मानता है। पैसेवालों के नवसमाज में लड़कियों से प्रेमियों और लड़कों से प्रेमिकाओं के चक्कर में रहने की आशा स्वयं उनके घरवाले ही करते हैं। संबंध प्रभाव बढ़ानेवाले हों, ऐश में भी किसी न किसी प्रकार के नफ़े का इष्ट अवश्य रहे बाक़ी कोई अन्य सांस्कारिक झिझक नहीं; दामाद हिन्दू-मुसलमान-ईसाई, या किसी भी देश का हो सकता है, बहुएं भी ऐसी हो सकती हैं। उस समाज में कोई प्रतिबंध नहीं। निम्न मध्यवर्ग के जो स्त्री-पुरुष ऐसे विवाह-संबंधों में बंधते हैं, वे आमतौर से घाट-घाट का पानी चखनेवाले न होकर एक ही बार प्रेम के औघट घाट पर बुड़की मारकर अपने दृढ़ निश्चय में एक हो जाते हैं। हिन्दू पति, मुसल-मान या ईसाई पत्नी, ईसाई या मुसलमान पति और हिंदू पत्नी—ऐसे जोड़े अब दिनोंदिन क्रमश: बढ़ रहे हैं और निजी अनुभव से जानता हूं कि उनमें अधिकांश सुखी, सन्तुष्ट और आबरूदार, बाल-बच्चेदार हैं।··· मगर ये नन्हीं का प्रेमी ऐसा मर्यादावान् नहीं लगता। वह या तो शातिर बदमाश है या उतावला मतलबी।

मन कहता है: 'वह चूंकि मुसलमान है इसलिए तुम उसमें दोष निकाल रहे हो। वह हिंदू होकर भी अमर्यादित, शातिर बदमाश और उतावला हो सकता था।'

मैं चुप हूं। क्रोध क्यों नहीं आता मुझे? क्या ज्ञान से विकसित चेतना मनुष्य को कायर बना देती है?—नहीं, वह वैराग्य प्रदान करती है। लेकिन वैराग्य किस लिए? मैं जीवन को पाना चाहता था, न पा सका, क्या इसलिए?

दरअस्ल लगता है कि मैं जीवन को जिस तरह से पाना चाहता था, उस

तरह से न पा सका और अब जीवन से पलायन करना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि प्रश्न का उत्तर किसी तरह से टल जाय। लेकिन वह टल कैसे सकता है ? आयु के बासठ वर्षों में आंखों देखा, कानों सुना और मन से भोगा हुआ सारा अनुभव क्या 'जगन्मिथ्या' करके हठपूर्वक टाल दूं ?···मैंने कुलीनों को दो-दो चार-चार ब्याह करते हुए देखा था और वह उस समय सामाजिक दृष्टि से पाप नहीं था। लेकिन आज वह पाप है, कानून के द्वारा दण्डित है। मैंने विधवाओं और अन्तर्जातीय विवाहों के प्रति अपने समाज की घोर घृणा देखी है। ऐसे विवाह किसी समय में पाप थे, किन्तु आज वे पुण्य हैं। विधवा से विवाह करनेवाला अथवा अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह करनेवाला युवक अपने आपको किसी हीरो से कम नहीं समझता। समय बहुत बदल गया है। विदेशी वैवाहिक सम्बन्ध गो अभी कम हो रहे हैं, मगर क्रमशः बढ़ रहे हैं। मेलजोल का प्रभाव, यात्राओं की सुविधा और सहयोग की आवश्यकता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। समाज अपने छोटे-छोटे दायरे तोड़ रहा है, व्यक्ति स्वनेतृत्व में इस व्यापकता को बढ़ाता ही चला जा रहा है। वह किसी की भी परवाह नहीं करता। नन्हीं ने भला मेरी परवाह की ? अपनी मां की दृष्टि से सोचा ? रक्त-संस्कारों की विशुद्धता पर ध्यान दिया ?···पर यहीं आकर मैं स्वयम् अपने ही प्रश्न-जाल में फंस जाता हूं। शुद्ध इस दुनिया में कौन वस्तु है ? मनुष्य का जन्म भी विशुद्ध सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से नहीं होता। यह शुद्धता का आग्रह एक जगह बिलकुल झूठा ही लगता है। हज़ारों बरसों की इतनी अनगिनत पीढ़ियों में, मानव के रूप में जीव अधिकांश में विशुद्ध भाव से अवतरित नहीं हो पाया। तब शुद्धता और पवित्रता की सच्ची व्याख्या कुछ और ही होनी चाहिए। असलियत कहीं और है। अब हम अंधेरे और उजाले को अलग-अलग करके उसकी अलग-अलग खूबियों और खामियों को तो बहुत बखान चुके, मगर केवल इससे ही अब काम चलता दीख नहीं पड़ता। बीती सदियों में निष्ठा के साथ किए गये इस विश्लेषण के मुख्य सूत्रों, उप-सूत्रों को हमें अब फिर से छांट-बांट और धुन-गुन करके बटना चाहिए। अंधेरे-उजाले को अलग-अलग न करके संयुक्त रूप में ही देखना चाहिए, जैसा कि वह वस्तुतः है—वह एक है, दो नहीं।

क्या मैं शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन के निकट पहुंच गया ? शायद हां, शंकर यही तो कहते हैं। अपने अब तक के जोड़े-बटोरे और कसौटी पर कसे ज्ञान-प्रकाश में हमने अपनी सारी क्रिया-चेतना को ठोस और प्रत्यक्ष माना है वह हमारी मान्यता के अनुसार उतनी ठोस और प्रत्यक्ष नहीं। वह माया है। प्रकाश में भी अंधेरा है। वह अंधेरा वस्तुतः प्रकाश का अन्तर्निहित सत्य है, ठीक उसी तरह जैसे कि अन्धकार का अन्तर्निहित सत्य प्रकाश है। इस तरह प्रकाश भी माया है और अन्धकार भी और इन दोनों में निहित वस्तु सत्य, दो न होकर एक है।

नन्हीं के इस कारनामे को तब इस दृष्टि से क्यों न देखूं ? दुख क्यों मानूं ? इस अंधेरे में कहीं न कहीं उजाला भी अवश्य होगा, जो कि डबल मायाभिभूत होने के कारण मुझे इस समय दिखलाई नहीं पड़ रहा। ठीक है, मगर···मगर··· यह 'मगर' मुझे लीले जा रहा है। संशयात्मा विनश्यति ! क्या करूं ?

उन्नीस

मामला पेचीदा हो गया, माया के महाहठ से गर्भपात कराने के फेर में जान ही जाते-जाते बची मेरी नन्हीं की। वह युवक----नन्हीं का सुख-दुख दाता—अचानक पाकिस्तान चला गया। नन्हीं को इससे गहरा मानसिक धक्का लगा है। मुझे भय है कि कहीं उसका राजरोग फिर से न उभर आये।

कल हिदायत आया था। उससे भी सारी बातें हुईं। उसे धक्का लगा। उसका मत मेरे मत से भिन्न है। वह विवाह के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीयता या द्विधर्मी नाते पसन्द नहीं करता, कहने लगा: "यह कोरी बदमाशी है। मियां-बीबी तो आपस में प्रेम करके और ज़रूरत पड़ने पर मन में राम-राम या खुदा-खुदा, गॉड-गॉड करके अपना निभाव कर ले जाएंगे, मगर उनके बच्चे न खुदा के रहेंगे, न राम के। वे किसके सच्चे होंगे, ये मेरी समझ में ही नहीं आता। उनमें हुब्बे-वतनी का जज्बा कहां से पैदा होगा—मां चीनी, बाप जापानी, लड़के खुरासानी —कोई कहीं का भी न रहा।"

मैंने कहा: "दुनिया छोटी होती चली जा रही है। इन्सान के आगे अब एक नया ब्रह्माण्ड फैलने लगा है। सारे देश अब दुनिया रूपी नगर के मुहल्ले भर रह गये हैं। अब तो सारी पृथ्वी मातृ-पितृभूमि है। हम पृथ्वीपुत्र हैं। वसुधा सही मानी में एक कुटुम्ब ही बनती जा रही है।"

हिदायत बोला: "तुम मुझे ऐसी जगह ले जाकर मारना चाहते हो अरविन्द, जहां मेरा फलसफा ही तुम्हारी ढाल बन जाता है। लेकिन मैं इस चकमे में नहीं आऊंगा। मैं इन्सानियत और इन्सान में खुदा का जल्वा इस तरह की शादियों को माने बग़ैर भी देख सकता हूं—"

"तुम मान लोगे हिदायत, लेकिन आज की दुनिया तुम्हारी तरह से अल्लाह वाली नहीं है। खुद मुझे ही तुम्हारा ईश्वर अब तक प्रभावित नहीं कर सका। तुम जिस खुदाई जल्वे की महिमा गाते हो, उसे मैं दुनियादारी के रोजमर्राह के व्यवहार में इसी तरह से फैला हुआ देखता हूं।"

लेकिन हिदायत मुझसे सहमत न हुआ। ये धार्मिक लोग इतने अच्छे और समभाव युक्त मनुष्य होकर भी, दुनिया में अणु-अणु, कण-कण में ईश्वर को मान कर भी एक जगह अपने ईश्वर को उससे अलग क्यों घसीट ले जाते हैं? नन्हीं को भी वह इसी तरह की बातें समझा-बुझा गया। माया को बहुत मानसिक बल दे गया।···यह भी बैठे-ठाले की एक मानसिक हलचल आई और हिलाकर चली गयी। इधर चैन से बैठा लिख रहा था···किस बुरी तरह से थक गया हूं! यह जीवन भी कोई जीवन है?

'चारदिवारी सौ जगह से ख़म
तर मन कहो तो सूखते हैं हम!

लोनी लग लग के झड़ती है माटी
आह, क्या उम्र बेमज़ा काटी।'—वाह मीर साहब, कितनी पीड़ा पी है आपने भी ! होगा जी, अरविंदशंकर, अब तुम फिर सुचित्त होकर अपने उपन्यास ही पर डटो। तुम्हारा एक मोर्चा अभी शेष है। अब माया के पास पैसे चुक चले हैं, किताब से छुट्टी पाओगे, तभी तो नयी कमाई के लिए आगे बढ़ सकोगे।

अब मुझे नन्हीं के हाथ पीले कर ही देने होंगे। चार-पांच हज़ार रुपया उसके लिए भी चाहिए।···कहां से लाएगा रे मेरे मन, तुझ अनीश्वरवादी के लिए तो राम का सहारा भी नहीं है। इसलिए काम करु, काम करु, काम करु बावरे।

उपन्यास का नया अध्याय अब किस नायक के रूप को उघाड़ेगा ?—लच्छू···लच्छू—नौजवान भारत का एक रूप।

बिना पेट्रोल की पंक्चर पहियोंवाली मोटर की तरह लच्छू अपने कमरे में निकम्मा पड़ा था। भम्भड़ भरे ब्याह-कारज के बाद जैसे हिसाब-किताब की विधि मिलाई जाती है, उसी तरह गहरी उदासी के रेगिस्तान में रह-रहकर उस का ध्यान अपने पीछे छोड़े हुए पदचिह्नों पर जाता था। आज सुबह से यही दशा है, जी में अपने आप ही रह-रहकर घनघोर घुटन एक अदृश्य बिन्दु से फैलते-फैलते पूरे तन-मन, बुद्धि, सभी पर घटाटोप बनकर छा जाती है। और फिर अनबूझी पीड़ा बरसती, जो समझ की सतह पर लाने का प्रयत्न करते ही अपनी असफलता के रूप में स्पष्ट उभर आती है। इतने दिनों में क्या किया—खुशामद षड्यन्त्र, व्यभिचार, और लूट-खसोट। क्या पाया—ये मोटर, और कुछ हज़ार रुपये, जो किसी स्थायी आमदनी के अभाव में बिना माली के बाग की तरह शीघ्र ही समाप्त हो जाएंगे।···तब क्या होगा ?

रह-रहकर लाला रेवतीरमन, खोखा मियां और मिसेज़ चौधरी की स्वार्थांधता की याद में वह अपने दांत पीस लेता था। रेवतीरमन ने हाथ से निकली जाती हुई लक्ष्मी के समान मिसेज़ चौधरी को अपनी मुट्ठी में रखने के लिए लच्छू को प्यादे से वज़ीर बनाया और अपना काम निकल जाने के बाद फिर उसी हैसियत पर लाकर पटक दिया। साले को मेरी मोटर खल गई। रास्कल !

लच्छू इन सब पैसेवालों से बदला लेना चाहता है। खोखा मियां से तो उसने किसी हद तक अपना बदला भी लिया है और गोपी की हत्या का बदला भी।

हिन्दू-मुस्लिम दंगेवाली कालरात्रि में उसने नगर में खोखा के आठ जलपान घर बुरी तरह से नष्टभ्रष्ट करवा डाले थे। गोपी की हत्या और शहर में दंगा कराने का आरोप खोखा पर आते ही वह बदले के नशे में आ गया था। उसने पुलिस और गुण्डों को गहरी रकम चटाई, अपने पास से पांच-सात सौ रुपये खर्च कर दिये। बाद में उसने प्रयत्न किया कि रेवतीरमन के जनसंघी भाई गोपीरमन से दंगे में खर्च की जानेवाली धनराशि का कुछ भाग लेकर हड़प कर ले। और केवल इसीलिए वह दंगा आयोजकों के साथ हो गया, पर एक धेला तक उनसे वसूल न कर सका। बड़े ही काइयां होते हैं ये पूंजीपति भी। पिछले सात-आठ महीनों में अपनी आर्थिक उन्नति के लिए लच्छू ने जिस हद तक नीचे गिरकर इन पैसेवालों के चरण चांपे हैं, उसका पश्चात्ताप उसे इस समय हो रहा है। इस

समय अपने अभाव और असफलता के दर्पण में अपनी ही सूरत देखकर उसके मन की आंखें झंपी-झंपी जाती थीं। क्या उसने अपने भविष्य की यही तस्वीर बनायी थी। सारसलेक के पुस्तकालय और सोवियत यूनियन के भ्रमण में जितनी सरसरी दृष्टि से समाजवाद को उसने देखा-पढ़ा था, उतने ही में जीवन-पद्धति के प्रति उसकी आस्था प्रबल हो गयी थी। जनम के ऋणी बाबू सत्यनरायण का बेटा, महाजनों के कारिन्दों का अपमान सहकर इसके सिवा और कोई गति भी नहीं पा सकता था।··· लेकिन नियति ने उसे दूसरी ही गति प्रदान की। उसे बड़ी शर्म आ रही है। अकेले में आंसू भी आ गये हैं, मगर क्या करे? वह जीना चाहता है, और अच्छी तरह से जीना चाहता है। सारसलेक में अगर वे औरतें (इस समय चुड़ैलें) उसके जीवन में प्रवेश न करतीं, तो वह शायद रूस-भ्रमण भले ही न कर पाता, मगर सुव्यवस्थित, अपराध-भावनाहीन और निष्ठावान कामकाजी व्यक्ति होता – लेकिन आज उसे अपने लिए ईश्वर से प्रार्थना करने में भी झेंप आ रही थी।

मन किसी कोने में भी छांह नहीं पा रहा। थोड़ी देर को सूना हो गया और उसी सूनेपन में सारसलेक के पण्डित राजकिशन उसके ध्यान में सरक आए। उन के मुख से अपने गुनाहों को ईश्वर की इच्छा बतलाकर मन मुक्त करनेवाला उर्दू का एक शेर जो कई बार सुना था, इस समय याद आ गया—'नाहक हम मजबूरों पर यह तुहमत है मुख्तारी की। चाहते हैं सो आप करे हैं हमको अबस बदनाम किया।'

शेर से दिल को ढाढस बंधी, पछतावे का भाव हलका हुआ, लेकिन मन अब भी यह कहता था कि अब किसी बदचलन स्त्री को अपने सौभाग्य की कुंजी न बनने दूंगा। पर मोटर हाथ से निकल जायगी तो फिर क्या करूंगा? बीड़ी के लिए पैसे-दो पैसों के सदा मोहताज बाबू सत्यनारायण का बेटा जिसने अपने घर में कभी बोरिया तक न देखा था, वह अपने जीते-जागते, वर्तमान जीवनरूपी स्वप्न में टाट समान आई हुई मोटरकार को कैसे अस्वीकार कर दे?

इस समय चारों ओर उसका धबका बैठा हुआ है। मां-बाप, भाई-भावज, नाते-रिश्ते, महल्ले-पड़ोस के लोग, दोस्त-अहबाब, सब यही समझते हैं कि लच्छू बड़ा भाग्यशाली है। मोटर चली जायगी तो लोग-बाग उसकी हंसी उड़ाएंगे कि चार दिन की चांदनी के बाद फिर अंधेरा हो गया। लेकिन अपने मोटर न जाने देने के हठ की रक्षा वह कर ही किस प्रकार सकता है। मोटर बेच दे और रुपया लेकर कहीं बाहर चला जाय।···कहां जाय?

लच्छू की इच्छा ज़माने की भंवर में चक्कर मार-मारकर अपने-आप को बूड़ने से बचाने के लिए तिनके से लेकर चट्टान तक का सहारा पाने को थरथरा रही थी। उद्योगमन्त्री हरिकिशन दास, गोपीरमन, माधुरीरमन, हाजी नबीबख्श अब्बू मियां, नादिरमियां, बीरू-मुलायम, सेन, उमा माथुर, सारसलेक, 'डॉक'— मन हर तरफ लहराता रहा; चुनाव के हेतु खटाखट निर्णय कर रहा था ···

बीरचन्द, मुलायमचन्द उल्लू के पट्ठे, छोटे जूते। नादिर मियां फ़िलासफ़र हैं, साले को दुनियादारी की बातें और नई स्कीमें बड़ी ही देर में समझ में आती हैं, कौन उससे माथापच्ची करे।······लेकिन आदमी बड़ा शरीफ़ और बड़े मन का है। व्यवस्था में बस उसी तरह से निपुण है, जैसे कि रट्टू-बीर हुआ करते हैं। बाप ने जिन बातों को उसकी गांठ में बांध दिया है, बस उन्हें ही बखूबी

निभाना जानता है । उंहु ! नादिर मियां भी अपने काम का नहीं ।

हाजी साहब इधर बहुत बदल गये हैं। लाला राधेरमन की मृत्यु के बाद से उनका जुझारू कस-बल ही जैसे चुक गया है । खोखा मियां के हाल के कुकृत्य से उनका मन और भी बुझ गया है। काम-धाम सब कुछ नादिर मियां पर ही छोड़ दिया है । अब्बू मियां ने अब तक हाजी और नादिर से घनिष्ठ नाता बनाए रक्खा है । उनकी मैनेजिंग एज़ेंसी में पहले खोखा मियां को भी रक्खा गया था, मगर अब उसकी जगह पर मिसेज़ नादिरबख्श को चुन लिया गया है । व्यवसाय अब भी बड़े धड़ल्ले और शान से बढ़ रहा है पर हाजी स्वयम् वीतराग हो चुके हैं। अब वे केवल अपने धर्मार्थ दान के वक्फ़ों का प्रबन्ध ही देखते हैं । सुना है कि इधर 'डॉक' को किसी तटस्थ व्यावसायिक तीसरे गुट की योजना के लिए वे अपने वक्फ़ों की काफ़ी पूंजी ब्याज पर लगाने की योजना बना रहे हैं । ···कल हरिकिशनदासजी कह रहे थे । मगर वे डाक्टर आत्माराम की योजना को 'मोर थ्योरिटिकल दैन प्रैक्टिकल' (सैद्धान्तिक अधिक व्यावहारिक कम) भी बतला रहे थे । पता नहीं क्या योजना है 'डाक्' की । 'डाक्' सोचे-समझे बिना कोई बात मुंह से नहीं निकालते । उन्होंने सेन से उसके व्यावहारिक पक्ष को जब तक न अंकवा लिया होगा; मैं 'डॉक्' को जानता हूं ।···

हर तरफ़ से सिमटकर लच्छू का मन अब डॉ० आत्माराम की योजना पर ही केंद्रित हुआ । योजना भले ही उसे अभी पूरी न मालूम हो सकी हो, मगर इतना तो जान ही गया है कि नई सड़क पर कुछ दुकानें और उद्योगपुरी में कुछ उद्योग छोटी पूंजी के लोगों को आगे बढ़ाने के लिए आरम्भ किए जाएंगे ।······डॉक्टर आत्माराम अक्सर कहा करते थे कि जब तक छोटी-पूंजियों के उद्योगों को एक बड़ी योजना में बांधकर नहीं चलाया जायगा, तब तक चौमुखी उन्नति नहीं हो सकती ।···'बस यही स्कीम होगी । मेरा मन कहता है । खैर, कुछ भी हो, मेरी दाल अगर गलेगी तो वहीं गलेगी ।'

मगर लच्छू को डॉक्टर आत्माराम से सीधे जाकर मिलने का साहस नहीं होता । माथुर साले ने अपनी बीबी, सेन, और मिसेज़ रामनायकम् के साथ उसे भी डाक् के आगे बदनाम कर दिया । सेन से तो डॉक्साहब नाराज़ होकर भी नहीं हो सकते औरतों के चाल-चलन को वे आमतौर पर खराब मानते ही नहीं । 'मर गया वेमौत एक बेचारा एल० एन० खन्ना ।··· उमा से मिलें ? छोड़ो उसका ध्यान, हरामज़ादी है । कितना ही पाजी क्यों न हो, मगर मेरे काम अगर कोई आयेगा तो सेन ही आयेगा । गहरी खुशामद करनी पड़ेगी बुड्ढे की ।···चलूं सारसलेक ही । मेरी किस्मत का सितारा वहीं खुलेगा ।'

सारसलेक यात्रा के विचार और सेन से सहारा पाने की आशा में लच्छू ने एक बार फिर से आत्मविश्वास पाया । सोचा की चलें कहीं घूमें-घामें, घर में पड़े-पड़े क्या मिलेगा ?

जब तैयार होकर नीचे आया तो देखा कि चोइथराम सीढ़ी के पास ही अपनी लोहे की कुर्सी डाले बैठा है—दाढ़ी बढ़ी हुई, गंजे सिर के बीस-पचीस रूखे बाल रेगिस्तान में सूखी घास के इक्का-दुक्का पौधों-से खड़े हुए थे । फटी हुई आंखों से घूरकर बूढ़े ने लच्छू की ओर देखा और उससे सीधे कुछ न कहकर भी बकना शुरू किया : "बरा मोटरवाला और बरा आदमी बन गिया हैंगा । हमारा बरा भाई के पास भी मोटर था करांची में········अब बीरी बी नईं, चाय का वास्ते भी आना-

पावली नहीं साला। किस्मत का बात है। क्या करेंगा। एक लड़की रंडीपने में कतल हो गई—दूसरी रंडी का भी येच हाल होएंगा।"

लच्छू जाते-जाते दहलीज से लौट आया। एक रुपया बूढ़े को देकर बोला : "सत्ती पैसे नहीं देती आपको ?"

"सत्ती !·········उसका मम्मी नाम गलत रक्खा था उसका। उसका मां सच्ची सत्ती था। हमारा शादी बनाने के दो बरस पीच्छू हमारा भाई से कनेक्शन हो गया। पीच्छू हमसे कुछ कनक्शन नई रक्खा—हां, सत्ती वो थी।···क्या करे—वो मर गया और उसके यार का ये लरका लरकी जिंदा है। नालायक सब-का सब ! हमारा होता तो ऐसा नालायक न होता।" कहकर बूढ़े ने एक ठंडी सांस छोड़ी और सिर झुकाकर चुप हो गया। लच्छू चोइथराम की मनोवेदना से प्रभावित हुए बिना न रह सका। गोपी की हत्या होते ही बुड्ढे की आबरू अब मन के भीतर की वस्तु न रही थी, बल्कि उजागर नरक बन गई थी। बुड्ढे ने जैसे अभी लच्छू से यह सब कहा, वैसे सबसे कहता होगा। दीन-हीन पागल होकर ही अब उसके अहंकार की रक्षा हो सकती होगी। उसकी खुद भी यह इच्छा उपजी ही थी कि एक रुपया और दे जाऊं, कि तब तक चोइथराम अपनी फटी-सूखी आंखों को सीधा उसके चेहरे पर गड़ाकर देख लेने के बाद बोला : "लच्छू बाबू, आज अगर तुम जैन्टलमैन होंगा तो हमको रम पिलायेंगा। तभी अपनी मोटर गारी हकायेंगा। आज हम भी रम में मोटरकार, एयरोप्लेन का मजा मांगता है।"

लच्छू ने मुस्कुराकर पर्स खोली, एक पांच का नोट बढ़ाया। चौइथराम ने वह ले लिया और फिर नोटों भरी पर्स को भूखी नज़रों से देखकर, नोट बांये हाथ में ले दाहिना चट ऊपर उठाकर फैलाया। लच्छू ने इस बार दो का नोट टिकाया, वह भी बांये हाथ में गया। दाहिना हाथ फैला ही रहा, बूढ़ा बोला : "हम पैलाई बोल दिया, मोटरकार नी, एयरोप्लेन भी, खाना-पीना दोनों मजा।"

"अच्छा, तो दो का नोट लौटाओ। ये लो।" पांच का एक और नोट देकर दो का पास रखते हुए पर्स बन्द की। बुड्ढें ने "थैंक्यू" कहा, लौटते हुए लच्छू ने एक भरी-पूरी सुखद दृष्टि सूने घर-आंगन पर डाली।—जैसे यहां की मनहूसी में भी कुछ आकर्षण था। सत्ती का कमरा बन्द; गोपी कत्ल हो चुकी, लड़के न जाने कहां होंगे। महाराज के यहां भी सूना। महाराजिन-महाराज अपने-अपने काम पर, तारा पढ़ने गई होगी, सहदेई राम-राम करके ब्याह गई। चाचा-चाची बैसाख में ब्याह निबटाकर जेठ में गांव से लौटे हैं। मगर चाची कहती थीं, ब्याह करके पछ-ताये। सहदेई का पति लखनऊ में रहता है और सहदेई काम-वैद्य छन्नू जी के पास गांव के सूने घर को अपने नुपुरों, बिछुओं की रुनुक-झुनुक से भरती है। कल सबेरे नाश्ता लेकर ऊपर आने पर चाची ने सब कुछ बतलाया था। लड़की दुख में है, ये चार दिन में ही मालूम पड़ गया। पति या तो बुद्धू है कि अपने कुख्यात काका को पहचानता नहीं अथवा उनके आगे विवश है। सहदेई जब से गई है, कोई चिट्ठी ही नहीं आई।

घर से बाहर जाते हुए लच्छू का मन महाराज-महाराजिन के लिए विचारमग्न था—सब तरह से भले होते हुए भी लड़की ब्याहने के बाद वे सुखी नहीं। कैसा है भाग्य ! कैसी है दुनिया ! ······चलो, अम्मा-बाबू को मोटर की सैर करा लावें। वो न जाएंगे तो भाभी-मैया और बच्चों को घुमाऊंगा। आज मौज ले लूं; कल

सबेरे की गाड़ी से सारसलेक······और फिर से नई ज़िंदगी ! भाग्य चाहे— बनाये से भी बनता है।

राधे-हाजी गुटों की प्रतिद्वन्द्विता घरेलू उद्योग-धंधों से लेकर विशाल और चामत्कारिक कल-कारखानों तक फैलते हुए अपने तेज़ चक्करों से जिस प्रकार अपनी तहों की विषाक्त कीचड़ मथ-मथकर भयावनी असहनीय दुर्गन्धि भी साथ ही साथ फैलाती जाती थी, उसे देखकर डॉ० आतमाराम का तेज़ मिज़ाज तप-तपकर शीतला पाने के लिए विचार-गंगा में तैरता या गहरी डुबकी लगाकर बैठ जाता था। अपनी निष्ठात्मक सक्रियता में रमने के लिए उनके पास दो ही तरीके थे, लिखना और बोलना। अपने पत्र-साम्राज्य के बहाने दुनिया के हर बड़े देश में उनके प्रतिनिधि हैं, जो उनकी ओर से वहां के राजनीतिक रंगमंच के नेपथ्यवाले सभी प्रमुख लोगों से सम्पर्क स्थापित करते हैं। डॉक्टर साहब स्वयम् भी कुछ कम घुमन्तू-मिलन्तू नहीं, सारसलेक में मुश्किल से साल में सब मिलाकर दो मास रहते होंगे।

सामर्थ्यवानों की व्यक्तिगत कुंठित अहंता हिन्दू-मुस्लिम द्वन्द्व, और उसे पोषित किए जाने पर महाविनाशकारी विकृत्ति के रूप में जब उनके सामने आई तो वे बेहद तप उठे। खन्ना ने, 'इंडिपेंडेंट' ने दंगा न बढ़ने देने में जो महत्वपूर्ण भाग लिया, वह तत्व-बोध का अर्थभरा मौन बनकर डॉक्टर साहब के मन में समा गया। वे सोचने लगे कि चेम्बर ऑफ़ कामर्स में इन दोनों गुटों के बीच एक तटस्थ शांतिप्रिय लोगों का गुट भी होना अब बेहद जरूरी हो गया है। विचार आया कि जर्मनी-जापान की तरह हमारे यहां सुनियोजित ढंग से घरेलू उद्योग-धन्धों को बढ़ाया जाए; जो फ़िलहाल मौजूद हैं, उन्हें संगठित करके चेम्बर में लाया जाय। इन बड़ी-बड़ी व्हेल मछलियों के भय से मुक्त होने के लिए अपनी उन्नति की कामना करनेवाली छोटी मझोली मछलियां संगठित स्वर से अपनी सुरक्षा और प्रगति का नारा बुलन्द करे, तभी समाज की चौमुखी प्रगति के लिए संतुलित वातावरण बन सकेगा।

सेन ने सारी योजना सुनकर 'इम्पॉसिबिल' (असम्भव) की तोप दागी। डॉक्टर तप गये, बोले : "मैं तुम्हें करके दिखला दूंगा।"

"माफ़ कीजियेगा डॉक्, इस समय आप इन बाहरी चक्करों में अपने आपको न फंसाएं तो हमें अपना घर सुधारने में आपसे—"

"घर ! सुधर तो रहा है। अब तुम लोगों ने औ' तमाम ज़माने ने उसको तेज़ी से नहीं सुधारा तो मैं क्या करूं। तुम लोगों को अपने अहंकार की 'रांग-साइड' (ग़लत दिशा) से ही छुट्टी नहीं मिलती। मैं बाहर की दुनिया को बिगड़ता हुआ देखकर भी महज़ अपनी ही बिगड़ी बनाता रह जाऊं तो मुझ में या किसी मिल-मालिक में भेद ही क्या रह गया ? तुमको फिर मैंने यहां किसलिए बिठा रक्खा है ?—जाइए, इस स्कीम को फैलाइए—एक बड़े चुम्बक के इर्द-गिर्द छोटे मझोले स्वतंत्र चुंबक, जो अपने आपसे भी बंधे रहें और बड़े चुम्बक से भी।"

डॉ० सिद्धान्त निश्चित करते हैं, उनके आधार पर सेन योजनाएं बनाते हैं, उन योजनाओं को फैलानेवाले उसे मनमाने ढंग से चलाते-फैलाते है। डॉक्टर झुंझलाते हैं, मुट्ठियां बांधते हैं, शब्दों की आग बरसाते हैं। उनके हठ से काम को

कुछ ठीक रख दिया जाता है और तब तक डॉक्टर आत्माराम किसी नई सैद्धान्तिक तात्विक अंतर्राष्ट्रीय मानवीय महत्व की गुत्थी सुलझाने में रम जाते हैं। इस बीच में उनकी पुरानी प्रेरणाएं लावारिस औलादों की तरह आवारा होकर जिस-तिस रासरंग में बहकने-भटकने लगती हैं। अमृत विष बन जाता है। डॉक्टर अपनी उत्तमोत्तम प्रेरणाओं की ऐसी मौतें देख-देखकर अब वीतराग हो गले हैं। लेकिन यह स्थिति उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यक्तिगत अहं-बोध ही की है, अपने सत्याग्रह अन्तर्हठ और कर्त्तव्य-परायणता के विशाल जुलूसों में वे अपनी उस कुंठित स्थिति को खोए रखते हैं। उनके अन्दर की यह एकाकी कुण्ठा कहीं शांति से लय होने के लिए उन्हें उकसाती है तो बेचैन हो जाते हैं। उसे लय कहां करें ? उनके पास ईश्वर है भी और नहीं भी हैं। किसी परमोच्च शक्ति के अस्तित्व में उनके मन में संशय है भी और नहीं भी है। उन्नीसवीं सदी की जिस नयी दुनिया के इंग्लैंड में अपने किशोर काल में उन्होंने शिक्षा-दीक्षा पाई थी, वह दुनिया ईश्वरीय और धार्मिक चेतना से मुक्त होकर वैज्ञानिक और बौद्धिक बन चली थी। ईश्वर और धर्म की महिमा गाने वाला पुराणपंथी और पिछड़ा हुआ माना जाने लगा था। 'धर्म और ईश्वर कमज़ोरों और स्त्रियों का है।'

लेकिन उनकी इसी चेतना के निर्मित होनेवाले सुदृढ़ किले में सुरंग बनाकर ईश्वर घुस आया। इंग्लैंड में उनके संरक्षक अध्यापक जेम्स मालवरों साहब हिन्दुस्तान, हिन्दू दर्शन, हिन्दू कला, संस्कृत-साहित्य के बड़े प्रशसक थे, बड़े आस्तिक और धर्म-प्राण ईसाई थे। उनका आचरण उनकी अध्यापकीय क्षमता, छात्रों और सर्वसाधारण के प्रति उनका अपार नेह भरा निर्मल व्यवहार आत्माराम के मन में अत्यधिक श्रद्धाभाव जगाता था। इस तरह उनके श्रद्धेय का श्रद्धेय ईश्वर उनके मन में भी एक जगह कुण्डली मारकर जम गया था।

तब से, आज आयु के सत्तर साल डॉक्टर साहब करीब-करीब पूरे कर चुके, मगर ईश्वर को लेकर उनके मन में कोई एकदम अंतिम समझौता अब तक नहीं हो पाया; संशय है। यह संशय अब एक तरह से उनके सारे जीवन पर छा गया है। यह करूं या न करूं, यह ठीक है या नहीं ठीक है, यह ऊहापोह वृत्ति उनकी दूसरी अविराम सांस बन गई है। डॉक्टर अगर महाप्राण और कठिन श्रमशक्ति-धारिणी काया के धनी न होते तो उनकी संशयात्मा अब तक उनकी मिट्टी खराब कर चुकी होती। अपने व्यग्र सत्याग्रह और महाप्राण वेग के कारण वे परिस्थितियों का निर्माण कर तो लेते हैं, पर उनसे जूझने की कला का संस्कार उनकी आत्मा ने नहीं पाया। वे केवल उन्हीं परिस्थितियों से शानदार ढंग से जूझ लेते हैं, जहां प्रतिकूलता पाकर सर शोभाराम के बेटे, आला इंसान डॉक्टर आत्माराम का 'ब्लू-ब्लड' (आभिजात्यवंशीय रक्त संस्कार) उनकी नस-नस में पिन्हा रजोभाव के तेज से खौल उठता है। जितनी प्रतिकूल परिस्थितियां होंगी, उतने ही प्रबल प्राणवेग और कायिक सक्रियता का नव-नव परिचय भी उनका व्यक्तित्व देगा। संशयात्मा ही सही, मगर सदाचेता और उदार होने के कारण ही उनका प्राण-दैत्य निरंकुश नहीं हो सका था—इन दोनों के बीच की कड़ी था, उनके एकाकी अवसादजन्य कवि-मानस का सौंदर्य-बोध। मन-प्राण और आत्मा इस प्रकार एक तरह का संतुलन साधकर उनके प्रस्तुत व्यक्तित्व के रूप में ढल गये हैं। डॉक्टर आत्माराम के नाम के इर्द-गिर्द अब एक भव्य दिव्य प्रभा-मंडल कौंधता हैं। सेन के 'इम्पॉसिबिल' करने से उन्होंने ताव खाया। ताव में हाजी साहब से फ़ोन

मिलाया। लम्बी बातें हुई। उन्होंने समर्थन दिया। डॉक्टर बच्चों की तरह उल्लसित हो उठे। कवि होते तो कविता रचने बैठ जाते। शेम्पेन का गिलास, अंग्रेज़ी की कविता-पुस्तक, और शाही पलंग। डॉक्टर अपने 'सुहाग कक्ष' में थे। जैसे नाग के लिपटे जोड़े को नहीं छेड़ा जा सकता, वैसे ही डॉक् को भी इस समय नहीं। ऐसे संतोष के दिन उनके जीवन में जल्दी-जल्दी नहीं आया करते। उन्होंने एक नयी योजना का बीच सक्रिय रूप से बो दिया था।

हाजी साहब ने खोखा मियां और उनके लड़के को कानून के शिकंजे से, तीस पैंतीस हज़ार रुपये इधर-उधर खिलाने-पिलाने में खर्च करके, जब हर तरह से निरापद कर दिया; कुछ हिन्दू-मुसलमान गुण्डों को जेल भिजवा कर नाटक का पटाक्षेप भी करवा दिया, तब आठ दिनों बाद खोखा मियां ने फिलहाल घर में बंद रहकर भी आज़ादी से सांस ली। दंगे के बाद सच्चे अपराधी दंडित हुए बिना ही छूट गये, इसका रोष नाहक़ छेड़ी हुई जनता में वेहद था। खोखा और रफ़अत मियां की जान हरदम खतरे में थी। अपने पहरे के अलावा उन्होंने अपनीं जान-माल की रक्षा के लिए पुलिस पहरे का प्रबन्ध भी कर रक्खा था। पांच छह रोज तक दिन में चार पांच बार नौजवानों के जत्थे उनकी कोठी के फाटक पर नारे लगा जाते थे: "गोपी मनसुखानी के हत्यारे को फांसी दो। सैकड़ों बेगुनाहों के हत्यारे को फांसी दो।"

बड़ी मुश्किल से खुदा-खुदा करके खोखा मियां का अपनी कार पर इधर-उधर आना-जाना आरम्भ हुआ। रफ़यत मियां को कुछ दिनों के वास्ते कलकत्ते भेज दिया गया। वहां भी हाजी संस्थान के होटल हैं।

खोखा मियां ने शहर में चारों तरफ डोल-डोलकर देख लिया कि इस समय वह किसी की भी सहानुभूति और सहयोग नहीं पा सकते। हाजी साहब ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि हमारे लिए तुम और तुम्हारे लिए हम अब मर चुके। अब्बू मियां ने तो बेइज्ज़त करके अपने कमरे से निकाल तक दिया, कहा कि "बग़ैर इज़ाज़त लिये कैसे घुस आये। मैं तुम्हारे जैसे ज़लील आदमी के साये से भी नफ़रत करता हूं।"

खोखा भी सारी दुनिया से नफ़रत करने लगा। "एक दिन इन सबकी खोपड़ी पर मेरा ठेंगा न नाचा तो हरामी मां-बाप की औलाद होकर मेरा पैदा होना ही अकारथ हो जायगा।" खोखा मियां धुन्नी हेकड़ी में आ गये। एक होटल और दो रेस्ट्रां, बस, इतनी ही पूंजी शेष थी। दंगे में आठ उजड़े जलपान-घरों को फिर से नये साज-सामान के साथ चलाने लायक पूंजी उनके पास न थी, इसलिए टेलीफ़ोन सहित अच्छे बाज़ारों में स्थित तीन दूकानें, पगड़ी लेकर दूसरों को दे दीं; बावन हज़ार रुपया इस तरह से कमाकर रोकड़ बनाई, और सोचने लगे कि ज़माने की नकेल किस तरह से अपने हाथ में की जाय।

गरीबों की सहायता ही से खोखा मियां के पिता ने उन्नति की थी, उनके लिए भी वही सीखा-समझा मार्ग था। लेकिन इस बार गरीबों में वे नये किस्म के गरीबों की तलाश में थे। खोखा की योजना दोरुखी थी। एक ओर अपने शत्रुओं को वह आपसी झगड़ों में उलझाए रखना चाहता था और दूसरी ओर अपनी व्यावसायिक गतिविधि को जमाने की आंखों से दूर, गांवों के बाज़ारों के एक नव

संगठन से अपने नियंत्रण में लेना चाहता था। दुनिया में ऐसी कोई शक्ति नहीं, जिसे युक्तियों से विभक्त न किया जा सके। गांवों की लक्ष्मी का वरण करो और उसकी शक्ति से शहरों की श्री लूटो और हथियाओ। उसके यह दो मूल मंत्र थे। तवायफ का बेटा आर्थिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक, हर पहलू से अपनी शक्तियों को रिझाने और अपने शत्रुओं को मारने के लिए मोर्चेबन्दी करने लगा। इस समय खोखा मियां के शत्रु नंबर एक स्वयम् उसके जन्मदाता हाजी नबीवख्श ही थे।

खोखा मियां ने नगर की ज़मींदोज दुनिया में प्रवेश किया। नये अंदाज़ में वह उनका मसीहा बन करके गया। खोखा मियां ने यह अपनी कल्पना में भी न सोचा था कि नसीबा उसे सहसा छलांग मारकर ऊंचे जमाने से दुत्कारे जाने के बाद भी, किन्हीं लोगों के बीच में देवता बनाकर प्रतिष्ठित कर देगा। भीतर ताड़ी ही बेचो, पर बाहर 'ॐ राष्ट्रीय दुग्धालय' का साइन-बोर्ड टांगो। काले धन को जिन उपायों से उजला बनाया जाता है, उन्हीं उपायों से थोड़े रूपान्तरण के साथ काले आदमियों, अपराधी जरायमपेशा लोगों को भी उजला बनाकर एक दिन ऊंचे ज़माने को भी अपनी मुट्ठी में किया जा सकता है। खोखा अपनी सत्ता चाहता था और उसकी शक्ति थे कातिल लुटेरे।

शातिरों, डाकुओं के कई गिरोह मिलकर एक बड़ा गिरोह बन गया। गांव की मंडियां दूर-दूर तक लुटीं; फिर एक नई आढ़त संस्था जन्मी, जिसमें अनेक पुराने ताल्लुकेदारों के वे वंशधर लोग थे, जो डाकू-दलों के अर्थ-सहायक बनकर लूट का मुनाफा खाते थे। खोखा ने क्रमशः व्यवसाय के प्राचीन तंत्र को छिन्न-भिन्न करके फिर से नई व्यवस्था दी। डाकू सफेदपोश बनकर गांव की सरपंची और तरह-तरह के नेताई मोर्चे सम्हालने लगे।

खोखा मियां देखते ही देखते चमक पकड़ने लगे। फिर नगर के बाज़ारों की ओर उनका ध्यान गया। छोटे दूकानदारों में कौन-कौन, किस-किसके कर्ज़दार हैं, यह भेद लेकर कोरे सूदखोरिये महाजनों से उन ऋणों को खरीद कर उन दुकानदारों पर नोटिस दावे होने लगे। धंधे छिन-छिनकर एक विशिष्ट संगठन के हाथ में जाने लगे।

सब कुछ हुआ, पर खोखा मियां को भद्र-समाज में प्रतिष्ठा न मिल सकी। खोखा को प्रतिष्ठा की आवश्यकता थी। कैसे पाये ? डॉक्टर आत्माराम की योजना उन दिनों बड़ी प्रतिष्ठा कमा रही थी। उसमें छोटी पूंजी और किसी न किसी रूप में श्रमपूंजी लगातार अनेक लोग अपनी आमदनी आपसी सहयोग से बढ़ा सकते थे; हाजी संस्थान और राधे संस्थान दोनों ही अपने धर्मादे की धनराशि से, कम ब्याज पर, और कुछ राशि विशुद्ध दान के रूप में इन लोगों को दे रहे थे। इन नये उगते हुए लघु उद्योगों को बिना किसी दबाव के स्वतंत्र विकसित होने की गारंटी ही उन लोगों के बीच में डॉक्टर आत्माराम को देवत्व का नया ताज पहना रही थी। चेम्बर ऑफ कॉमर्स में डॉक्टर आत्माराम अब अत्यन्त महत्वपूर्ण नीति-निर्माता थे और चेम्बर में प्रवेश पाने के लिए खोखा मियां मचल रहे थे। डॉक्टर खोखा के पिता के मित्र थे, उससे उनका परिचय है। अपने संबंध में उनकी ग़लतफ़हमियों का निवारण खोखा मियां बखूबी कर देंगे, अपनी चतुराई पर उन्हें पूरा भरोसा है।

एक पुराने डाकू सरदार और इस समय खोखा मियां के दाहिने हाथ छन्नू

खलीफ़ा बोले : "उस्ताद, सोहदों और सरीफ़ों का गंठजोड़ होना मुश्किल है। इनके सालों के दिमाग नहीं होता, आस्मानी बातें करते हैं।"

"देखो छन्नू, वक्त पर गधे को बाप बनाना ही पड़ता है। ये राधेवाले हम लोगों को डाकू-डाकू करके उबारने न देंगे—"

"तो हरज क्या है, डाकू तो हम हैं ही।"

"मगर इतने ही से काम नहीं चल सकता। हमें इन लोगों में घुस कर इन्हें अचानक तबाह करने की फ़िक्र करना चाहिए। डॉक्टर अगर हमारे साथ सध गया तो फिर मैं राधेवालों को खुली गालियां दूंगा, देख लेना। याद रक्खो छन्नू, एक दिन हम दुनिया की हर बड़ी ताक़त को तबाह कर देंगे।

खोखा मियां ने डॉक्टर आत्माराम को रिझा लिया। दोनों में समझौता हो गया। राधे संस्थान वालों ने किसी हद तक इसका बुरा भी माना, पर डॉक्टर को उसकी परवाह न थी। "क्या बुरा है खोखा संस्थान? गिरे से गिरे हुए आदमी को भी चाहने पर उठने और अपनी तरक्की करने का हक़ है। खोखा मियां ने अपने पिता से ज़्यादा बड़ा काम थोड़े ही अरसे में कर दिखलाया है।"

सेन ने टोका, उसे 'बेवकूफ' कह दिया। खुद हाजी साहब ने सचेत किया "डाक् साब हजरते मूसा की तरह शाहज़ादा होके भी दबे-कुचले गरीबों की मदद करना आप जैसी हस्ती ही को ज़ेब दे सकता है··· मगर खोखा मियां को, जाहिर है कि मैं आपसे बेहतर समझता हूं।"

"हाजी साहब, हर बाप अपने बेटे के बारे में यही खयाल रखता है। मेरे बाप ने न जाने कौन सी खूबियां मुझमें देखकर उसके हिसाब से मेरी ज़िंदगी का एक पूरा नक्शा ही बना डाला था, लेकिन मेरी चाहतें, मेरे सपने उनसे बिलकुल अलग थे। और वो मेरे मुंह पर कहते थे कि मैं तुमको तुमसे बेहतर जानता हूं।"

हाजी साहब मुस्कुरा के ख़ामोश हो रेहे। 'डाक्' अपनी झख के आगे भला कब किसी की सुनते हैं। खोखा को चेम्बर में लाने की पूरी कोशिश की। अपने अखबारों से उनकी कीर्ति को भी चार चांद लगाये। खोखा ने शहरों में सफेदपोशी और कस्बों-गांवों में बड़े-बड़े दुस्साहसिक डाकों के हल्ले बढ़ाये। शहरों में भी दो-चार करारे डाके पड़े। अखबारों में शब्द सनसनाए; मगर उन्हीं अंकों में खोखा मियां की महत्ता पर यशोशब्द भी बरसे थे। उनके इन दो रूपों की एकता को कोई भी न जानता था।

सबसे पहली जानकारी संयोग से रमेश ही को मिली। सद्दीमल जम्बूपरशाद की आढ़त में एक दिन पहुंचा तो देखा खोखा मियां बैठे थे। इसके पहुंचने के दो ही चार मिनट बाद खोखा मियां उठकर चले गये। मालिक फ़र्म, लाला ज्ञानचंद उन्हें बाहर तक बिदा करने गये। खोखा मियां की कुर्सी के पास एक छोटी डायरी पड़ी हुई थी। रमेश ने उठा ली। आजकल जांच-पड़ताल का काम कर ही रहा है, एक बड़े आदमी की डायरी झांकने की तबीयत हो आई। तभी बाहर आवाज़ों की हलचल हुई और वह डायरी दाहिने हाथ से पतलून की जेब में पहुंच गई और बायें हाथ से सामने पड़ा हिन्दी दैनिक उठा लिया। खोखा मियां डायरी खोजते हुए ही आये थे। न मिली, हो सकता है कि शमशेर अली के यहां भूल आये हों बहरहाल खोखा मियां कुछ चिंतित चेहरा लेकर वापस लौट गये।

उस रात घर आकर खोखा मियां की डायरी पढ़नी शुरू की। अधिकतर लोगों से मिलने-जुलने या विभिन्न कार्यक्रमों के प्रोग्राम और समय लिखे थे।

कहीं-कहीं उन्हीं तारीखों में कुछ अक्षर रोमन या फारसी लिपि में भी संकेताक्षरों जैसे अंकित थे। डायरी की पिछली जिल्दवाली पुश्त पर दो जगह अपने ससुर का नाम देखकर रमेश को खास दिलचस्पी हो गई। "14 जुलाई—बाईस सौ रुपये लाल सा० को रद्धूसिंह की मार्फ़त। पांच अक्टूबर—पांच सौ रु०—रद्धूसिंह (L)।"

रद्धूसिंह और लाल साहब को रमेश जानता है। बैंजू लाला, लाल साहब और रद्धूसिंह रजिस्टर्ड क्लब के बहाने जुए का बड़ा भारी अड्डा चलाते हैं, यह भी वह जानता है। उसकी सोतेली सास सुमित्रो अपने बच्चों को लेकर अलग रहती हैं। रानी की दादी परलोकगत हो चुकीं। वहीदन खुलेआम रद्धूसिंह के साथ रहती है, और बैंजु लाला अक्सर उसका गाना सुनते हैं। खोखा भी शायद वहां जुआ···शायद··स्मगलिंग के लिए भी जाता होगा। रमेश के ससुर का नाम ऐसे ही किसी हिसाब-किताब से आया है।···

अपनी पत्नी के संबंध से सुमित्रो के दुख के कारण, रमेश को अपने ससुर से घृणा है। वहीदन और लाल साहब के प्रति उसकी घृणा बाढ़ के दिनों ही से है। · खोखा की डायरी में इन लोगों के नाम रकमें क्यों चढ़ी हैं? अंग्रेज़ी अक्षर किस बात का संकेत है। 27 अक्टूबर वाले खाली पृष्ठ पर छपी हुई तारीख के ऊपर लिखा था: "IND day jst. m attack. k." (आई०-एन० डी० दिवस। पहला म० आक्रमण। के०।

यह माना कि इधर अरसे से मिलावट करनेवाले व्यापारियों, रिश्वतखोर सरकारी अमलों आदि के सम्बन्ध में उसके प्रमाणिक लेख आ रहे थे, पुलिस और सरकार को 'इंडिपेंडेंट' के इस अनवरत आंदोलन से यद्यपि चिढ़ थी, फिर भी इससे मजबूर होकर बीच-बीच में एक-आध बेईमान को बलि का बकरा बनाना ही पड़ता था। यदि अधिक कुछ नहीं तो इससे इतना सुफल अवश्य ही मिल रहा था कि दूसरे-तीसरे महीने 'बड़ों' से त्रस्त जनसाधारण को एक तरावटदार खबर पाकर सुख मिलता है। इस लेख-माला के लिए रमेश को इधर अर्द्धजासूसी-सा काम ही करना पड़ा है, लेकिन यह डायरी विधिवत् जासूसी जांच ही मांगती है।

उस रात अपराधी वृत्ति के मनोरंजनों पर ही उसका ध्यान जम गया। जुए की लत लगी बुरी। हरदम भाग्य का भरोसा, मूर्खता पर चतुराई का दांव, एक सतत चलनेवाली झख—ये श्रमरहित कमाई के पलायनवादी अथक श्रम! ओफ़, कितने मेहनती और लगन भरे होते हैं ये जुआरी···मगर ये IND day क्या है? पहला मेजर आक्रमण?···रमेश का कलेजा अन्दर से सनसना गया और हर धड़कन मानो कहे कि बुरा बुरा बुरा—सावधान सावधान सावधा···"

—वह फिर ऐसी उछाल मारकर पलंग से उठा है कि रानी अचानक नींद टूटने से घबरा उठी। रमेश सावधान होकर लाइट जलाने के बाद फिर पलंग पर आकर बैठ गया, रानी के कान में कहा: "मामला कहीं कुछ बहुत गड़बड़ है रानी। ···मेरे पास ··मेरे पास ईश्वर जानता है कोई तर्क नहीं, पर ये आई० एन० डी० माने इंडिपेंडेंट ही है।" मेरा मन बोलता है, मेरी आत्मा बोलती है। मैं अभी पापाजी के यहां जाता हूं।" बात के साथ ही साथ उसके स्वर की ऊंचाई भी काफ़ी कुछ बढ़ गई थी और वह फिर उठने लगा।

रानी को बात की सींग पूंछ तक समझ में न आई थी, रमेश का हाथ पकड़-

कर उसकी बदहवासी से आप भी हौल कर बोली। "हमें बात बताते जाओ। हमारा जी उड़ा रहेगा।"

"आज हमें खोखा मियां की इंगेजमेंट डायरी मिल गई। उसमें यों तो कुछ नहीं, पर कुछ-कुछ अजीबपना भी है, जो चौंकाता है। तुम्हारे बाबू के नाम भी दो जगह रकमें टिपी हैं, लाल साहब का नाम भी है। कुछ बैजू लाला के अड्डे का मामला होगा। खैर वो तो और बात है, पर मेरा मन बोलता है कि 27 तारीख को हमारे 'इंडिपेंडेंट' को कुछ धोखा होनेवाला है।"

"तो सबेरे चले जाना, इस समै एक-डेढ़ से कम नहीं होगा।"

"जाऊंगा मैं इसी समय। रुक नहीं सकता। रानी, तुम से सच कहता हूं, ईश्वर कसम, कि आज मैंने अपनी अंतरात्मा की आवाज़ सुनी है। मैं अभी ही जाऊंगा। पापाजी का जागना ही जरूरी है।"

"तब मुझे भी साथ ले चलो। अकेले में आज तो फिर ज़रूर ही डर लगेगा।"

रमेश रानी को भी साइकिल पर बिठलाकर ले गया।

सत्ताइस अक्टूबर की रात। साढ़े ग्यारह के आसपास का समय। 'इंडिपेंडेंट' कार्यालय के पीछे, उसी चहारदीवारी के अन्दर, संस्थापक-निवास के ड्राइंगरूम में डॉक्टर आत्माराम, श्री आनन्दमोहन खन्ना, श्री लक्ष्मीनारायण खन्ना उर्फ़ लच्छू। हाथ-पैर बंधे चोर-सा उजागर पसरा हुआ बिजली का प्रकाश, जिसे गहरी गंभीरता और उदास सन्नाटे ने पीटकर पटक रक्खा है। तीनों आदमी यों बैठे हैं, मानो बोलते-बोलते बुत हो गये हों। सोफ़ा के दोनों हत्थों पर हाथ टेके हुए डाक्टर आत्माराम फटी-फटी स्थिर आंखों से अदृश्य को देखने की मुद्रा में मुख फाड़े, सीधे तने हुए बैठे हैं। पास ही सोफा पर दोनों खन्ना हैं, एक सामने अलक्ष्य में खोये-खोये हुए, दूसरा सिर झुकाकर बैठा हुआ।

घड़ी नब्बे सेकेण्ड आगे बढ़ चुकी थी। लेकिन बात जहां की तहां रुक चुकी थी। दस-पन्द्रह बड़े लम्बे-लम्बे क्षण मन की सामूहिक मौत के मातम में यों ही और बीत गये। एकाएक डाक्टर अपने ध्यान की चोक में पैर उछालकर बोले--"मशीन! मशीन—"

"वह चल रही है और चलती रहेगी। रमेश ने बख़ूबी और चुपचाप उस्मान-अली को हैंडिल कर लिया है। वहीं खड़ा है, दो सादी वर्दी के कांस्टेबल भी हैं। पूरा प्रेस सचेत है, जोश में है, रोष में है। लोगों को चूंकि अभी गद्दारों के नाम नहीं मालूम हो सके, इसलिए खलबली भी है। मगर ईश्वर चाहेगा तो अखबार कल समय से ही निकलेगा और···।" खन्नाजी ने कहा।

"यानी-यानी, तुम जानते थे कि—"

"लगभग एक हफ्ते से।"

"मुझे क्यों नहीं बताया?"

"बताया आदमियों को जाता है। देवता कब सुनते हैं?" खन्ना साहब की आवाज़ आपरेशन के चाकू जैसी थी। डाक् सम्हलकर, टिक कर, सिर झुकाकर बैठ गये। खन्नाजी कहते गये: "सेन से मैंने बीस-इक्कीस तारीख की रात ही में कह दिया था।" भावबद्ध शब्द रुक गये, फिर अंग्रेज़ी में फूटे: "भाग्य, विशुद्ध भाग्य डाक्। सारे हिन्द में कम्पनी के कई हज़ार कर्मचारियों के सौभाग्य ने मिल-

कर हमें बचा लिया। आप जैसे देवात्मा के जन्म दिन को ही ये हमारे नसीबे का दिया बुझाना चाहता था।···ठीक चीन की तरह। चीन की नीयत भारत से लड़ने की उतनी नहीं थी जितनी कि—"

"नेहरू की साख को तोड़ने की।" डॉक्टर ने सूखी हंसी हंसते हुए कहा : "खोखा मुझे खत्म करना चाहता है। उसने मुझे मिल के मारा। मिल के मारा!" डॉक्टर आत्माराम कहते-कहते रुंध गये और फिर तुरंत ही दूसरे आवेश में मुट्ठियां कसते हुए गुस्से में बोले : "मैं इन बदमाशियों का अंत करके ही रहूंगा। ये समाजवादी क्षेत्र का काला बाज़ार है।"

"लेकिन लड़ेंगे कैसे? बराबरी के हथियार कहां हैं? शराफ़त से और देवता बनके आप राक्षसों से लड़ेंगे? लखनऊ सारसलेक के बीच की टेलीप्रिंटर लाइनें बेकार कर ही दी हैं। पता नहीं, बाहर और क्या-क्या किया हो उसने! ये पूरा छापा मारा है डाक्, अपने जंगलीपन और पूर्ण पशु-बल से वह हमें दबा लेना चाहता है।···और अभी एक घण्टे के भीतर उसका एक और महान् काण्ड होने वाला है। वह उसके बाद ही बतलाऊंगा, मगर इस समय मैं आपको सविनय यह अवश्य ही बतला देना चाहता हूं कि मैंने और सेन ने यह तय कर लिया है कि आप से सलाह लिये बिना ही इस संबंध में हम लोग अपनी कार्रवाई करेंगे।"

अपनी हतप्रभता को मिटाने के लिए अपील करते हुए डॉक् बोले : "मगर ये तो—ये तो ज्यादती होगी तुम्हारी। देखो, मैं अब भी कहता हूं कि आदमी पर भरोसा न करने से फिर सारे भावों-विचारों और क्रियाओं का आधार ही मिट जायगा। हम बदला लेते-लेते खुद भी वही हो जाएंगे। चीन की यही हालत तो है आज। उसका कहना है कि दुनिया में कोई किसी का नहीं, कोई तटस्थ नहीं, सब अपने-अपने पक्षधर हैं, इसलिए हम भी अपने ही पक्षधर बनेंगे। यह एकांकी सत्य है। ये सच्चा समाजवाद नहीं, इसकी जड़ में विशुद्ध व्यक्तिवाद है···लेकिन इस खोखा ने मुझे जबर्दस्त धोखा दिया।" डॉक्टर के चेहरे की जोत बुझी-बुझी हो रही थी।

"महाभारत के शातिपर्व में लिखा है कि जब दंड-नीति निर्जीव हो जाती है तब वेद, धर्म, सभ्यता, संस्कृति चाहे कितनी ही उन्नत क्यों न हों—एक दम नष्ट हो जाती है।"

चौकीदार ने आके खबर दी कि प्रेस के पोर्टिको में खड़ी हुई एक मोटर कार जल रही है। लच्छू बेतहाशा बाहर भागा। खन्ना और डाक्टर भी निकले! पोर्टिको में लच्छू का एक मात्र वैभव, उसकी शान व इज़्ज़त धू-धू जल रही थी।

लच्छू विवश खड़ा देख रहा था। आग बुझाने के प्रयत्न चल रहे थे। कुछ कर्मचारी देखने के लिए बाहर निकल आये! खन्ना झपटते हुए प्रेस के फाटक पर गये, उन लोगों को डांटकर कहा : "अपने-अपने काम पर जाइए। चौकीदार, कोई भी इस वक्त अपना काम छोड़कर बाहर न आये।" खन्ना साहब को दूसरी चिंता पड़ी थी, दुश्मन कहीं कागज़ के गोदाम में या और कहीं आग न लगा दे। वे मोर्चे-मोर्चे पर दौड़ने लगे।

डाक्टर ने लच्छू के कंधे पर हाथ रक्खा। उसने चौंककर देखा और अदब से सध गया।

डॉक्टर बोले : "खोखा मियां ने तुम्हें अपने साथ गद्दारी करने की ये सजा दी है।"

"इस गद्दारी पर तो अभिमान भी कर सकता हूं डॉक्साब, लेकिन आपके साथ ग़द्दारी करके मैं जीवन भर यों ही जलता रहता जैसे ये—मेरी मोटर—जल रही हैं।"

सारसलेक में 'डाक्' की नई योजना में कोई धंधा पाने की जुगत बैठाने के लिए जाने पर लच्छू की दाल ही सेन ने न गलने दी, उसे हत्थे पर से ही काट दिया था। हारकर लच्छू फिर खोखा के जाल में फंस गया, जो एक दिन संयोग ही से उसे मिल गया था। दस हज़ार रुपयों पर यह सौदा तय हुआ था कि लच्छू रोटरी प्रेस और दूसरी मशीनों को इतना नष्ट करवा देगा कि कम से कम आठ-दस दिनों तक अखबार छपना ही असम्भव हो जाए।

दोनों बाहर से फिर भीतर आ गये। डॉक् ने नौकर को काफी बनाने का आदेश दिया, लच्छू को सिगरेट दी और खुद भी सुलगाकर एक कश खींचकर कहा : "नौजवान, मुझे हैरत और अफ़सोस केवल इसी बात का है कि तुम जो कि समाजवाद और क्रांति के महान् देश को देख चुके हो, समाजवादी व्यवस्था में मेरे यहां काम कर चुके हो, इस जालसाजी के चक्कर में आखिर क्या सोचकर पड़े!"

"डॉक्साब, आपने और सेन साहब ने मुझे मजबूर कर दिया था। एक अच्छा जीवन बसर कर चुकने के बाद, ग़रीबों का स्वर्ग देख आने के बाद मैं उस नरक भरी ज़िंदगी में तिल-तिल करके सड़ने के लिए लौट जाने को हरगिज़ तैयार न था, जहां से मैं आया था। अगर इस देश में कोई सक्रिय राजनीतिक आन्दोलन या समाज-निर्माण का जोशीला काम चल रहा होता, तो डॉक्साब, मैं रूस से लौटने के बाद आज कुछ और ही होता। मगर यहां आने पर देखा कि हर आदमी को केवल अपनी ही चिंता है। फिर मैं भी बेसहारा होकर अपनी चिंता में लगा तो क्या बुरा किया। आपकी छोटी पूंजीवाली स्कीम में मुझे भी कोई धंधा करने की सहूलियत मिल जाय इसलिए सेन साहब के पैर तक पकड़े, कहा कि मैं पैसा नहीं चाहता, मोज़े का कारखाना, बैट्री के सेल, बटन—किसी भी छोटी से छोटी स्कीम में मुझे भी शामिल कर लीजिए। मैं माल बिकने की गारंटी चाहता था। दूसरों को दे रहे थे, मुझे भी दे देते। मगर सेन साहब ने मेरे पुराने अपराधों पर ही नज़र रक्खी, चूंकि उनकी मातहती कर चुका था, इसलिए उन्होंने मुझे दुत्कार दिया, आपसे मिलने तक के लिए सख्त मनाही कर दी। सारसलेक में मेरा एक रात रुकना तक दूभर कर दिया। मेरा बदला सेन से था! आज आपका जन्म-दिवस था, आप यहीं मौजूद भी थे। डॉक्साब, आपकी पर्सनैल्टी (व्यक्तित्व) ने ही मुझे आज इतना बड़ा पाप करने से रोक लिया, आपने और रूस में मिले एक चाचा प्लेस्येनेव ने। मैं यहां आ रहा था, और रास्ते में मुझे अचानक कीएव के वनस्पति उद्यान के एक बुढ़े रखवाले का ध्यान आ गया। मेरे कंधे पर हाथ रक्खे ऊंची पहाड़ी से सारा-नगर दिखलाते हुए बतलाया था कि नाज़ियों ने कैसे यह सुन्दर नगर तोड़ा था। और यह ध्यान आते ही खट्-से मन में लगा कि खोखा नाज़ियों की तरह ही आप पर आक्रमण कर रहा है और मैं सिर्फ़ सेन से बदला लेने के लिए, इन दस हज़ार रुपयों में से तीन-चार हज़ार खुद खा जाने की लालच में, अपनी मोटर का चक्का चलाये रखने की लालच में··" उसके मन के बांध, जो शब्दों के फाटक लगाकर अपने भावावेश पर अब तक कंट्रोल कर रहे थे,

एकाएक टूट गये। एक लम्बे वाक्य-प्रलाप का अंत काफी देर तक फूट-फूट कर रोने के बाद हिचकियों और सुबकियों के दलदल में हुआ।

डॉक्टर उसे देखते रहे। बीच में नौकर कॉफी लेकर आया, खामोश इशारे से उसे लौटा दिया। उनके सामने कुंठित नौजवान भारत बैठा था, जो बेकार है, दरिद्रता से नफ़रत करता है, उन्नतिशील जीवन चाहता है—और न मिलने पर, दुत्कारे जाने पर अपने कुंठित आत्म-सम्मान के लिए, जीवन-सुरक्षा के लिए कितना अविवेकी, क्षुद्र और अंधस्वार्थी हो जाता है! ये अभी अपराधी नहीं, विकृत विद्रोही भर है। डॉक्टर एक क्षण के लिए भी लच्छू से नफ़रत न कर सके, बल्कि उन्हें अपना ही अपराध नज़र आने लगा···'दिस ब्लडी सेन' उनके सपनों के नाजुक तार हमेशा ही तोड़-मोड़कर रख देता है। डॉक् जिन नाजुक ख़यालियों में जाकर मनुष्य की पीड़ा को समझते हैं और उसे दूर करने के लिए कर्म-प्रेरित होते हैं, सेन की नौकरशाही सरकार उन्हीं को बेजान बना डालती है। ये लड़का सेन के उसी मुर्दा रौब, उसकी बुढ़भस औरतबाज़ी की कमीनी बदला-वृत्ति का शिकार है! शूट कर देने क़ाबिल है ये सेन!··· लेकिन सेन न होता तो आज डॉक्टर आत्माराम का यह अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति सिद्ध महान् व्यक्तित्व कहां से बनता। विचार और कर्म प्रेरणाएं जैसी कि डॉक्टर आत्माराम में हैं, वैसी न जाने कितनों में होंगी, होती हैं, लेकिन वे प्रकाश नहीं पातीं। सर शोभाराम की अपार दौलत, अपने इकलौते लाल को एक बड़े शानदार और जानदार विजय-स्तम्भ के रूप में स्थापित करने के लिए ख़ूबी के साथ ख़र्च हुई थी। सर शोभा ही ने डॉक् की कारगुज़ारियों को सफलता पूर्वक आगे बढ़ाने के लिए अपनी पसन्द के संगठनकर्ता चुने थे। सेन जैसा स्वामिभक्त आदमी बड़े ही सौभाग्य से मिलता है। कैसा भी हो, सेन ही की संगठन-क्षमता की बदौलत उनका अखबारी साम्राज्य चल रहा है। भारत की नौ भाषाओं के बीस दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र डॉक्टर साहब की महिमा बढ़ाते हैं। डॉक्टर अपने सौभाग्य के प्रमुख संरक्षक को कैसे छोड़ दें? अब तो सवाल ही नहीं उठता। आयु का इकहत्तरवां वर्ष आज से शुरू हो गया। जीवन भर के साथ अब भला कैसे छूट सकते हैं? सेन एक काया है जिसमें डॉक् की आत्मा प्रवेश करके अपनी मनोकांक्षाएं प्रतिफलित करती है। 'अपने आदर्शों को चलाने के लिए मुझे एक करप्ट गवर्नमेंट (बिगड़ी सरकार) का सहारा लेना पड़ता है। मैं—मैं—मैं इससे नफ़रत करता हूं। मैं सेन से नफ़रत करता हूं। पर मैं क्यों किसी से नफ़रत करूं? समझौता खुद मैंने किया है···बस यही तो कमज़ोरी थी। आभिजात्य वर्ग में जन्म पाने का अभिशाप—चाकरों की गुलामी—यही तो मेरी सीमा है।···'

लच्छू को अब अपेक्षाकृत सावधान पाकर डॉक्टर ने कॉफी लाने के लिए नौकर को आवाज़ दी और कहने लगे: "रो लिये, अच्छा किया। कभी-कभी मेरी भी तबियत होती है कि दो-चार आंसू बह जाएं और हलका कर दें। मगर ज़्यादा रोना और अक्सर रोना आदमी को निकम्मा बना देता है। लड़ो, विद्रोह करो। ब्यूरोक्रेसी की मशीन से और समाज की अंधरूढ़ियों से लड़ना मर्दों का, सूरमाओं का काम होता है, समझे। मशीन गुस्से में आके तोड़ना नहीं चाहिए। उस पर कब्जा करना चाहिए, उसे अपनी तरह से चलाना चाहिए।"

डॉक्टर का प्रवचन थोड़ी देर तक चलता रहा, और भी देर तक चलता रहता, मगर खन्नाजी रमेश को साथ लिये हुए आ गए। रमेश का कंधा थपथपाते

हुए उनके गम्भीर चिन्तामग्न चेहरे पर ख़ुशी की एक सुहानी चमक आ गई, उल्लसित स्वर में बोले : "आपको बधाई देता हूं डॉक्। कुदरत ने आज आपके दो क़ीमती रत्नों को दुश्मन के हाथों नष्ट होने से बचा लिया—रोटरी और 'माई दिस बॉय' रमेश।"

डॉक्टर और लच्छू दोनों ही साश्चर्य रमेश की ओर देखने लगे। साथ ही रमेश भी कुछ अपनी प्रशंसा से नमित संकुचित, और कुछ खन्नाजी की बात से चौंका हुआ अजीब पहेली-सी स्थिति में स्तब्ध होकर उन्हें देखने लगा।

रमेश के खोखा मियां की डायरी पाने से लेकर अब तक का पूरा विवरण डाक्टर ने सुना। क्लब सम्बन्धी लेख, उसके कारण क्लब पर पुलिस का छापा पड़ना, वहीदन और खोखा की डायरी ग़ायब करना, इन कई गम्भीर आरोपों के कारण खोखा सरकार ने रमेश को ठिकाने लगाने की योजना बनाई थी। लाल साहब इतने रोष में थे कि एकाध बहक भरी बात नशे के झोंक में रद्धूसिंह के सामने ही बक गए। वहीदन के विरह में कुंवर रद्धूसिंह भी उस समय रमेश से फिरंट थे। नशे में उन्होंने भी अपने दामाद के प्रति खूब घृणा और रोष प्रकटाया। रमेश ने उनकी बाल-विधवा कन्या को अधर्म में फंसाकर उनकी जाति को कलंकित किया, आबरू को बट्टा लगाया, उनकी पत्नी को भड़काया, उनकी प्रेयसी को भी अब ग़ायब कर दिया, उनका सारा जीवन ही रमेश के कारण चौपट हो गया था। लाल बोले : "तुम्हारी लड़की जैसे एक बार विधवा हुई, वैसे दो बार भी हो सकती है और फिर तीसरी शादी भी कर सकती है; लेकिन ये लौंडा अगर ज़िंदा रहेगा तो हमारा ज़िंदा रहना दूभर हो जायगा।" रद्धू सिंह ने उस समय तो बड़ी ज़ोर से हामी भरी, लेकिन···दामाद फिर भी दामाद ही था; रद्धू सिंह ने अपने चचेरे भाई, शहर कोतवाल शत्रुघ्नसिंह को सारी बातें बतला दीं। खोखा की डायरी तब तक पुलिस के पास पहुंच चुकी थी। शत्रुघ्नसिंह को दूसरे ही दिन रद्धू सिंह से यह नई सूचना मिली कि सत्ताइस अक्टूबर की रात ही हत्या के लिए भी चुनी गई है; ड्यूटी से अपने नियमित मार्ग से रात में लौटते समय हाईकोर्ट वाली सूनी सड़क पर मोटर-दुर्घटना के नाटक के साथ रमेश का जीवन-नाटक समाप्त किया जायगा। इसी सूचना के अनुसार पुलिस ने आज अपना जाल बिछाया था। "रमेश को ठीक समय पर मैंने लोगों की नज़रों से हटा लिया।"—रमेश को खन्नाजी ने साइकिल पर अपने नियमित मार्ग पर ही एक सज्जन के घर पर जाने का आदेश दिया। दूसरा आदेश पाने तक उसे वहीं रुकना पड़ा और वहां से इनकी डमी बनकर एक सादी वर्दी कांस्टेबल आगे बढ़ा। सूचना पाकर लालसाहब दस सीटर भारी गाड़ी में अपने गुंडों का पूरा बोझ लेकर एक निश्चित स्थल से बेतहाशा स्पीड में दौड़े और पुलिस के जाल में आगे जाकर फंस गये। गोलीबाज़ी हुई पर पुलिस की प्रबल शक्ति के सामने गुण्डों को आत्मसमर्पण करना पड़ा; लाल ने आत्महत्या कर ली।

इस सुसमाचार के सुख, संतोष, शुभकामनाओं का एक दौर समाप्त हो जाने के बाद खन्ना ने जेब से सेन का तार निकालकर खमोशी से डॉक् को दे दिया। "मद्रास में प्रेस और अख़बार का दफ़्तर किन्हीं अज्ञात कारणों से जल गये। पटना कलकत्ता, वेजवाड़ा, बम्बई और अहमदाबाद से भी आगज़नी के ही समाचार आये हैं। बंबई और मद्रास में सबसे अधिक नुकसान हुआ है। सारसलेक की सारी टेलीफ़ोन लाइनें भी कटी हुई हैं। डॉक् को सुबह यहां अवश्य पहुंचना चाहिए।"

पढ़कर डॉक् का भव्य दिव्य मुखमंडल बर्फ़ की तरह सफ़ेद और मुर्दे की तरह निस्तेज हो गया···ढोला, खिंज़माणे, थागला, चिपचाप, दौलतबेग ओल्दी, नेफ़ा, लद्दाख···चीन के धोखे भरे आसुरी आक्रमण···यही दिन तो ये पिछले साल ! और खोखा ने इसी तरह विशाल पैमाने पर डॉक्टर के ऊपर आक्रमण किया है। ···उसकी डायरी बतलाती है कि यह पहला बड़ा आक्रमण है। आगे और करेगा। ऐसे लोग बड़े चीमड़ होते हैं, जल्दी खत्म नहीं होते और देर तक, दूर तक मानवता की प्रगति को रोक लेते हैं···"मुझे बीते इतिहास से खुद अपने लिए भी कुछ सीख लेनी चाहिए थी। खैर, पश्चात्ताप करना पाप है। खन्ना, मैंने आदर्शों के लिए अपना सारा जीवन निछावर किया है। ग़लतियां बहुत की हैं मैंने, मगर ओछेपन, कायरता और किसी तरह की मानसिक शर्म से मैं कभी पीड़ित नहीं रहा, तुम जानते हो। और आज भी नहीं रहूंगा। मैं ठंडे और साफ दिल से यह घोषित करता हूं कि अगर लड़ने ही की तमन्ना है तो फिर लोहे से लोहा बजेगा।" डॉक्टर आवेश में आ गये, उठकर टहलने लगे। कमरे में उपस्थित मानव-मानस रणक्षेत्र बन गया। बदले का जोश, शत्रु के प्रति अतीव घृणा नस-नस में झनझना-सनसना उठी।

खन्ना बोले : "चाणक्य नीति कहती है कि विशुद्ध अपने बचाव के लिए भी कभी-कभी आक्रमण करना जरूरी होता है। आप सुबह सारसलेक जाएं और सेन को यहां भेज दें। इसके पीछे आपके राजनीतिक विरोधियों के गंदे हाथ आज भी और आगे पीछे भी हो सकते हैं।"

"हांऽ, वो भी हो सकते हैं।···मैंने बहुत से विषय पढ़े हैं, लेकिन युद्धशास्त्र को कूटनीतिक सतह तक ही जाना है।···तुम लोग शायद तोप-टैंकों से लड़ोगे।" बात कहने के ढंग ही ने बतला दिया कि डॉक् खन्ना की बात से बुरा मान गये हैं। खन्नाजी तुरंत ही ठंडे किन्तु दृढ़ स्वर में बोले : "बुद्धिवादी विचारक हवाई जहाज़ से तीर्थयात्रा करनेवालों की तरह से होता है। धरती का मार्ग जटिल है। आपने उसे केवल अपनी महान् आत्मा की स्पिरिट ही से समझा है। समझा तो मैंने और सेन ने भी उसे अधिकतर दिमाग़ी तौर पर ही है, पर हम दोनों, परि-स्थितियों के कारण आपसे अधिक व्यावहारिक हैं। व्यक्ति के व्यावहारिक अनुभव जीवन का चरम सत्य भले ही सिद्ध न हो सकें, पर उसकी महत्वपूर्ण मंज़िलें तो वे हैं ही। बुरा न मानिए, इस उम्र में भी आप उस क्षेत्र में महज़ बच्चे ही हैं। अलावा इसके हम इन बदमाशों को यह भी बतलाना चाहते हैं कि डॉ॰ आत्माराम का व्यक्तित्व इन बुतशिकनों के तोड़नेवाले गंदे हाथों की पहुंच से बहुत ऊपर है। उनकी लड़ाई सीधे 'इंडिपेंडेंट पब्लिकेशन्स' के सुनियोजित सम्पन्न 'गणतंत्र' से है। गणतंत्र का हर नागरिक हमारे देश में सिपाही भी हुआ करता था। राजा गुण्डों की किराये की सेनाएं गणतंत्रों को इसीलिए कभी जीत नहीं पाईं। हमारे 'इंडिपेंडेंट' स्टाफ़ को—हमारे पूरे भारतव्यापी संगठन की—यही नहीं, हमारे राष्ट्र के हर बच्चे को दूसरे पेशों के साथ ही साथ अब सैनिक भी बनना ही पड़ेगा। इसके बिना हम अपना स्वतंत्र जीवन जी ही नहीं सकते।" खन्ना की आवाज़ में उस समय पूरा प्रभाव था। डॉक्टर ने उन्हें देखा, मुस्कुराये फिर रमेश-लच्छू की ओर देखकर बोले : "और आप लोगों का क्या खयाल है ?"

"एक ही सर", रमेश उत्तेजित स्वर में बोला : "युद्ध, हर मोर्चे पर युद्ध !"

"ठीक है। विवेक, बुद्धि और शक्ति तुम्हारी सहायक हों।" कहकर डॉक्टर

उठ खड़े हुए, विदा लेकर भीतर के कमरे की ओर बढ़ते हुए पलटकर खन्नाजी से कहा : "खन्ना, मुझ पर अक्सर यह आरोप लगा है कि मैंने ग़लत आदमियों का चुनाव करके उनसे धोखा खाया है, लेकिन इस बार (लच्छू की ओर इंगित कर) एक सही आदमी को खोने की ग़लती की है। सेन से कहकर मेरी और उसकी भी इस ग़लती को सुधरवा देना। इसने अगर आज तुम्हारी मदद न की होती तो इस समय यहां का नक्शा भी कुछ और ही होता।"

उस रात खन्नाजी के आदेश से रमेश और लच्छू दफ्तर की अतिथिशाला ही में सोये। पास-पास लेटे सिगरेट पीते हुए रमेश बोला : "मैंने सपने में भी न सोचा था कि खोखा मियां की डायरी में इंडिपेंडेंट आक्रमण के साथ जुड़ा हुआ 'के' मेरा यह खन्ना होगा।"

"वो खन्ना मोटर की शराब पिये हुए थे। उसका मुर्दा अब फुंक चुका। अब अपने लच्छू के जौहर देखना।"

मित्र के जोश का समर्थन रमेश ने गर्मजोशी से उसका हाथ पकड़ कर किया।

बीस

आठ उनतीस रात्रि। उपन्यास पूरा हुआ। उसे पूरा करने और उसी जोश में डायरी के इस पृष्ठ तक आनेवाले अंतराल के क्षणों में मैंने कलम मेज पर रखकर, दोनों हाथों की उंगलियां आपस में फंसाकर चटकाई ही थीं कि भीतर से मानो संतोष का झरना छूट गिरा और मेरी नस-नस नहा गई। चलो, एक काम और पूरा हुआ।···हेमिंग्वे का अभागा औपन्यासिक नायक, बूढ़ा मछेरा अपनी ड्यूटी पूरी-पूरी बजाकर अब फ़ुरसत पा रहा है।···लेकिन मैं अभागा क्यों? मुझे तो काम पूरा करने से आस्था मिली है, मेरी सृजन-शक्ति और उसकी क्रीड़ा का सहज उल्लास अब तक ताज़ा और तेजवान है। अभी मैं अपने मानस को और ऊंचे नैतिक वैचारिक सौंदर्य के स्तर तक गति देने का साहस कर सकता हूं। मैंने यह लगभग हज़ार पन्ने लिखकर और आगे बढ़ने का पारपत्र पा लिया है।

मेज पर रक्खे इन कागज़ों का गड्डा इस समय अचानक एक अजीब दृष्टि से दिखलाई पड़ गया। मुझे लगा कि जैसे यह मेरी काया है, जिसे अभी-अभी छोड़कर मैं उठ गया हूं। मेरी आत्मा शरीर से बिदा होते हुए संतुष्टि है कि उसके साथ एक उम्दा जीवन जिया। इस अपनी डायरी और उपन्यास में मेरे पड़बाबा और उनके बाबा तक के ज़माने से लेकर अपने ज़माने तक की न जाने कितनी परिस्थितियां, कितने चरित्र और चित्र एक बार फिर से जी उठे और फिर उसी अनुभव, विचार और कल्पनाशक्ति से न जाने कितनी परिस्थितियां, चरित्र और चित्र गढ़ते चले गये! इन सबके साथ समरस और बहुधा समभाव होकर मैंने पिछले ढ़ाई-पौने तीन वर्ष बिताये हैं। अब उनका साथ छूट रहा है। अपना हर

उपन्यास-कहानी समाप्त होने पर ऐसे कितने ही संग-साथ मुझसे छूटे हैं, मानो मेरे कितने ही जनम बीते हैं। वे जन्म बीतते गये, किन्तु मेरा अनवरत विकास होता रहा।

अब यह किताब छपेगी, पढ़ी जायेगी, जस-अपजस कुछ लायगी, मगर जो कुछ भी होगा, वह सब ऊपरी मुनाफ़े होंगे, मेरी 'आत्मोपलब्धि' तो इसी समय हो गई। मेरी उम्र बढ़ गई। मैं—

उस दिन लिखते-लिखते रुक जाना पड़ा। अचानक माया मेरे कमरे में आ गई। उन्हें बेहद उदास और बेचैन देखा। उन्हें देखकर मेरा मन कुछ और हो गया; फिर और—और—और ही होता चला गया। अनहोनी ने होनी बनकर, महाभीमकाय सैलाब के प्रलयंकर थपेड़े की तरह आकर मेरे पांव उखाड़ दिये। मैं मनुष्य, अपनी अहंता, उसकी सारी सामर्थ्य और अपना एक अंत पाने के लिए विवश हो गया। आग लग जाने वाले विमान या डूबते जहाज़ के यात्रियों—जिनमें बड़े योगीश्वर, वैज्ञानिक, धीर-वीर, सत्ता और सम्पतिशाली भी हो सकते हैं—तथा बलि-वेदी के बकरे और भैंसे एक जैसे ही विवश-विमूढ़ होते हैं। सत्य के आगे दोनों की विवशता में कोई अंतर नहीं होता।

एक मास छह दिन पहले लिखी हुई अपनी अंतिम पंक्ति पर नज़र जाती है तो मेरा जी घुट-घुट के रह जाता है। तब जीने का हौसला जागा था; अब सिर्फ़ मरने ही की हौंस है। अब कुछ भी करने को जी नहीं चाहता। हमारा बेटा उमेशो हमें दगा दे गया। उसने आत्महत्या कर ली। आज से ठीक एक मास पहले—शायद ठीक इसी समय···इस समय सवा चार बज रहे है···क्या कहूं? कैसे कहूं? ···

बर्बर चीनी आक्रमण से कुछ अरसे पहले एक डेलिगेशन में सोवियत संघ की यात्रा करने गया था। मास्को में साहित्यिकों-कलाकारों के एक सम्मिलित उत्सव में रूसी महाकवि तेखानोव से मेरा परिचय कराया गया। लम्बे-चौड़े अस्सी बरस के हृष्ट-पुष्ट धवलकेशी जवान कविवर ने अपनी कोमल पैनी आंखों से देखते हुए, हल्की मुस्कराहट के साथ पूछा: "हिमालय कैसा लगा?"

मैंने कहा: "सुन्दरता में अद्भुत और महान् है, मगर हमारे मैत्री-संबंधों की सुन्दरता के आगे नगाधिराज शर्तिया विनयनत हो गए हैं।"

महाकवि ने मुस्कराकर बड़ी गर्मजोशी से मेरा हाथ दबाया।···हिमाचल पर चीन की चढ़ाई के बाद मुझे कुछ दिनों तक रह-रहकर महाकवि का प्रश्न और अपना उत्तर याद आता रहा। जिस महान् हिमालय को 'अपने' हिमालय को रूस से अपने प्रेम सम्बन्धों के सामने विनयनत मानकर मैं लज्जित नहीं हुआ था, उसी को चीन के द्वारा रौंदे जाते देखकर मेरा मन बर्दाश्त न कर पाया। नगाधिराज की एवरेस्ट चोटी जब तेनसिंह और हिलारी ने पहली बार सर की, और अभी हमारे वीर फौजी जवानों ने चार-चार बार सर की, तब भी यद्यपि हिमालय के आगे मनुष्य की अटूट लगन और श्रमशक्ति ही मुझे ऊंची दिखलाई दी थी, तथापि देवतात्मा हिमालय के प्रति मेरी आदर-भावना में तनिक-सी भी कमी न आ सकी थी। दोनों ही बार हिमालय को मैंने उसी प्रकार विनयनत किया, जैसे 'विद्या ददाति विनयम्।'

पर अविद्या, आसुरी शक्ति और पाशविकता के आगे अपने हिमालय को विवश झुकते हुए देखकर बुढ़ापे में भी मेरे तन-बदन में आठों पहर की ज्वाला सुलग उठी थी।

···ठीक वैसी ही आग अब फिर मेरी थकी नसों में जलन भर रही है। उपन्यास पूरा हो गया। मेरे मन में निश्चिन्तता आ चली थी, मैंने राहत की सांस ली थी। नन्हीं का दाग़ दिल से प्रायः धुल चुका था, बल्कि मैं तो यों सोचने लगा था कि चलो अच्छा ही हुआ कि वह जिम्मेदारी सिर से टल गई—एक उपन्यास पूरा करने का भार ही अब शेष रहा था। सोचा था कि इसे पूरा करके कुछ एडवांस रकम ले के, माया को गोरखपुर बड़े लड़के के पास, या यहीं मंझले के घर पर छोड़कर फिर देश भ्रमण करूंगा, चैन की सांस लूंगा। मगर वह सुख मेरे भाग्य में न था। मेरी अहंता पर चीन ही नहीं, मेरे तीसरे आई० ए०एस० बेटे उमेश शंकर की आत्महत्या ने भी महाभयानक आघात किया है। इस बार आधुनिक सभ्यता की आसुरी लिप्सा ने मेरा हृदय-हिमालय रौंदा है। क़रीब-क़रीब तोड़ ही डाला है मुझे।

किसी और की या खुद अपनी भी जान लेना महापाप है तो अवश्य, पर मुझे वह उतना बड़ा कदापि नहीं लगता, जितना कि हत्या से पूर्व दुश्मन या व्यक्ति की विपरीत परिस्थितियों के द्वारा किया या पाया जानेवाला अपमान भरा अत्याचार होता है। एक बड़े आई० सी० एस०, सरकार के एक महत्वपूर्ण सचिव की लाड़ली ने मेरे भले-भोले बेटे की पत्नी बनकर पिछले दो वर्षों में प्रतिदिन उसे इतना हीन बनाया, इतना तिरस्कृत किया, उस पर अहर्निश इतना अधिक बौद्धिक-नैतिक और मानसिक अत्याचार किया कि उसका स्वाभिमान सह न सका। आत्महत्या करना उसके लिए कम कष्टकर था।

मनुष्यता पर पशुता की यह जीत जब कभी किसी व्यक्ति या राष्ट्र के जीवन में नई जकड़न से घुटन-तपन लाती है, तभी बहुत संयत और गंभीर होते हुए भी मेरा मन तोप के गोले की तरह बाहर छूट ही पड़ता है। होश अंतरिक्ष में विलीन हो जाते हैं, और हर विचार, हर संस्कार, हर भावना अपने केन्द्रीय संगठन से अनियन्त्रित होकर, विलुप्त बिन्दु को अनुमान करके उसके कहीं इर्द-गिर्द बेतहाशा चक्कर लगाती हैं। तब स्वयम् मुझे ही अपनी कोई बात, कोई क्रिया पकड़ाई में नहीं आती। मैं अपने पागलपन के क्षणों को, पागलपन आरम्भ करते ही कुछ ही देर में जानने भी लगता हूं। और जानते ही होश आ जाता है। मैं होश और बेहोशी के मिश्रित क्षणों को पहचानता हूं और चेतना-चुम्बक द्वारा फिर से क्रमशः शक्तिशाली होकर हर विचार, हर संस्कार, हर भावना को अपने साथ नियन्त्रित कर लेनेवाले क्षणों को भी जानता हूं।

मेरे और अपनी माता के नाम लिखे गये उमेश के अन्तिम पत्र की नकल जब उसकी आत्महत्या के समाचार के साथ मुझे मिली, तब ऐसा ही आत्म-अनुभव हुआ था। कलकत्ते से कस्टम विभाग ही में काम करनेवाले 'उमेश के एक मित्र' मेरे नाम से परिचित और हमारे दुःख में सम्मिलित किसी भलेमानस ने उसके पत्र की नकल पुलिसवालों से लेकर मुझे भेजी थी। हमारे नाम लिखा गया हमारे बेटे का अंतिम पत्र भी अब हमारा नहीं रहा, वह पुलिस के मुकद्दमे का अदालती दस्तावेज़ है। हम मां-बाप अपने बेटे के कोई नहीं थे। हमें न तो सरकार ने तार भेजा, न उमेशो के ससुर या उसकी पत्नी ने ही। हम कोई नहीं थे—जिसे हमने

गोद में उछेरा, जिसकी नज़रें उतारी गईं, बलैयां ली गईं, जिसके विकास के बढ़ते हुए एक-एक चरण हमारे ही सामने, हमारी ही स्नेहछाया में बढ़े, वह हमारा बेटा उमेश आई०ए०एस०हो जाने के बाद, एक बड़े अफ़सर का दामाद हो जाने के बाद, हमारा कोई नहीं रहा था।·· चीन ने तिब्बत को दबोच लिया था, तिब्बती तिब्बत के कोई नहीं रह गये थे। होगा—

'ते नूं ते शूं रड़ूं, ते नूं ते शूं बकूं, तेनू ते शूं लवूं रोज जेवूं;
दुःख छे दुःख छे दुःख संसार माँ, सुख तो दिवसना स्वप्न जेवू।,

गुजराती के महाकवि नर्मद की न जाने कब की पढ़ी-सुनी ये पंक्तियां इस समय स्मृति में उभर आईं। याद करता तो शायद न आतीं। मगर बात एकदम सच है, कहां तक वही का वही रोऊं, वही का वही बकूं। एक महीने से उसी एक घुमड़न ही में तो उमड़-घुमड़कर मेरा जी घुट रहा है। यह जो कुछ हुआ, वह क्या किसी विधि का विधान था? माया कहती हैं कि उन्हें सात-आठ रोज़ पहले ही से सम्भावित दुर्घटना का आभास होने लगा था। जिस दिन मैंने उपन्यास लिखकर पूरा किया, संयोगवश उसके एक-दो दिन पहले से उनका जी अनायास ही बेचैन रहने लगा था। उस रात वे अपने जी की घुटन से घबराकर ही मेरे पास आई थीं। तब क्या उस विधि के विधान का पूर्वाभास भी सम्भव था—या है?

एक महीने पहले, आज ही के दिन और लगभग इसी समय, ऊपर वाले दालान में हम दोनों चाय पीने बैठे थे, मैंने बिस्कुट का टुकड़ा मुंह में डाल रक्खा था और प्याले के हैंडिल पर मेरी चुटकी पहुंच चुकी थी कि माया ने प्याला अपने होंठों से लगाया, और लगाते ही दूसरे हाथ से अपना मुंह यों तिलमिलाकर दबाया कि उनके दाहिने हाथ का प्याला छलककर ठिटक गया – मानो उनकी जीभ पर बिच्छू ने डंक मार दिया था। उनका चेहरा मुर्दे की तरह फीका पड़ गया था। मैंने उन्हें फौरन सम्हाला और पूछा : "क्या हुआ माया?"

"पता नहीं। जीभ जल गई, जाने कैसे?" चाय औसत गर्म ही थी। खैर मेरे लिए बात आई-गई हो गई, लेकिन उसके बाद कुछ दिनों से बराबर उदास रहनेवाला माया का चेहरा और भी अधिक निष्प्राण हो उठा। वे कपड़े बदलने चली गईं। लौटकर आईं, तब भी उदास रहीं। फिर अनायास ही उमेशो के सम्बन्ध में बातें करने लगीं, पुरानी-पुरानी बातें·· बहुत दिनों से उसकी चिट्ठी न आने पर चिन्ता।·· क्यों आने लगीं थीं उन्हें उमेशो की याद? उस समय यह सवाल भी दिमाग में न उठ सकता था, लेकिन आज कलकत्ते के उस पत्र के आधार पर कह सकता हूं कि जिस क्षण माया की जीभ जली, शायद ठीक उसी क्षण में उमेश ने अपने जीवन का अंत किया था। मां की अंतश्चेतना ने उसी से धक्का पाता था। चाय पीना तो केवल एक संयोग मात्र ही था, माया उस समय यदि कुछ और काम करती होतीं तो जीभ जलने के बजाय किसी और तरीके से वह उस आघात को महसूस करतीं। मन को मन से मिलने के लिए किसी दूरी या देरी की क़ैद शायद नहीं होती। जाकर जापर सत्य सनेहू···

लेकिन मुझे ऐसा कोई पूर्वाभास न हुआ। या शायद मैं उसे समझ न पाया। इस घटना के दूसरे दिन सुबह अखबार पढ़ रहा था। उसमें कलकत्ते के कस्टम विभाग के एक उच्च अधिकारी की आत्महत्या का छोटा-सा समाचार छपा था। लिखा था कि रिश्वत लेने के अपराध में उसे गिरफ़्तार करने के लिए जब पुलिस गई तो उसने गोली दाग़कर अपनी जान ले ली! ऐसी खबरें अक्सर पढ़ने को मिल

जाती हैं, उसमें ऐसी कोई खास बात न थी कि मुझे विशेष आकर्षण होता। परन्तु इस समय बखूबी कह सकता हूं कि रोजमर्राह की सरसरे ध्यान वाली उस ख़बर पर जब सहसा दृष्टि गई तो एक तरह से वहीं अटक भी गई थी। मैंने अखबार के उस पृष्ठ की दूसरी खबरों पर ध्यान दिया, पर दो-एक अन्य समाचार पढ़कर नज़र फिर उसी ख़बर पर पहुंच गई। पृष्ठ के हर कालम के ऊपर से नीचे झांक जाने के बाद जब पन्ना पलटना चाहा तो दृष्टि अदबदाकर फिर उसी समाचार पर पहुंच गई। भीतर से कोई मन्तव्य प्रकट न होता था। और ध्यान फिर-फिरकर उसी ख़बर से जा टकराता था। उस समय तो इसे मन की एक झख समझकर टाल दिया, पर आज सोचता हूं कि मेरी अंतश्चेतना उस समय भी जानती थी कि उस सूचना से मेरा घना और सीधा सम्बन्ध है।

ये भूत-प्रेत का दर्शन, अन्तर्मन के संकेत—दिव्य दूर-दृष्टि या दिव्य दूर-बोध—अतीन्द्रिय परामनोविज्ञान के, अपने द्वारा न जाने हुए जीवन के अप्रत्यक्ष पहलू को इस तरह पहले कभी देखने का प्रत्यन मैंने नहीं किया था। ऐसे प्रश्नों को उपेक्षा की दृष्टि ही से सदा देखा। लेकिन वह उपेक्षा का भाव अब मन में टिक नहीं पा रहा। इन बातों को सदा अंधविश्वास भरी बातें ही माना ···पर 'भूत' सूक्ष्म भूत भी हो सकता है। विद्वान् मनीषी हाल्डेन इस बात को मानता है। चेतना भी भौतिक पदार्थ ही है और वह सूक्ष्म भी हो सकती है। उस हर वस्तु के लिए, जो हमें अपने चर्म चक्षुओं से नहीं दिखलाई देती, यह कहना ग़लत है कि उसका अस्तित्व ही नहीं है। मैटर और एनर्जी (भूत और तेजस) में कोई भेद नहीं। भौतिक जगत दूर-दूर तक फैला हुआ दिखाई देकर भी कहीं एक जगह अपने-आपमें सिमटा हुआ केंद्रीभूत भी हो सकता है, जैसे बीज में सिमटा हुआ विशाल वटवृक्ष होता है। माया को उसी कारण से दुर्घटना का अलक्ष्य पूर्वाभास होने लगा था। मेरा अचेतन भी उसी कारणवश एक आगे होनेवाली चेतना से टकरा रहा था। ···लगता है कि भूत भी होता है और पुनर्जन्म भी। और इस दुनिया में यदि सब कुछ नहीं तो बहुत कुछ पूर्व निश्चित् विधान से ही होता है। ये प्रोटीन और एलेक्ट्रॉन भी पूर्व निर्धारित हैं। विज्ञान बतलाता है कि इस भौतिक जगत् या ब्रह्माण्ड से यदि एक भी एलेक्ट्रॉन निकाल लिया जाय तो यह ब्रह्माण्ड ही ग़ायब हो जायगा। परन्तु यह सम्भव ही नहीं है। हम न कुछ घटा सकते हैं, न बढ़ा सकते हैं। तात्विक दृष्टि से नया कुछ भी नहीं जन्मता और न मरता ही है। केवल ऊपरी आकार-प्रकार ही जनमते और मरते हैं। ··बड़ा पंवारा है। जो भी हो, मगर यह सच है कि अपने ऊपर पड़ने वाली विपत्ति को माया ने विपत्ति पड़ने से पहले ही गूंगे तौर पर महसूस कर लिया था। कुछ भी हो, मेरा उमेश पैदा भी हुआ था और मरा भी। वह एक ठोस सत्य था, लेकिन अब वह मिथ्या है। सूक्ष्म भूत ने एक भौतिक आकार का विस्तार पाया था, वह अपनी एक सीमा तक विस्तृत होकर चुक भी गया, बिखर चुका, सूक्ष्म भूत में लय हो गया। उमेश अब नहीं है। विज्ञान की 'क्वाण्टम थ्योरी' के अनुसार इस दुनिया में कुछ अदृश्य विद्युत् चुंबकीय लहरों के सिवा और कुछ नहीं है—उमेश नहीं, अरविन्द नहीं, माया नहीं, कुछ नहीं—यह सब माया है, केवल असंख्य होकर भी इनी-गिनी विद्युत् चुम्बकीय लहरें ही सत्य हैं। तत्वमसि! यह और भी बड़ा पंवारा है।

मनुष्य कितना बंधन में है, कितना स्वतंत्र? कहां बंधन में है और कहां स्वतंत्र? गोसाईंजी गिनकर बतलाते हैं कि हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश मनुष्य के

वश में नहीं है। फिर यह मरण क्या मेरे उमेशो के अपने हाथों से हुआ है—उसकी दुनियावी रूप से समृद्ध, सफल और उन्नत जीवन बिताने की विशिष्ट महत्वाकांक्षी क्या असहज थी ? बहुत से लड़के ऐसे अवसर भी पा जाते हैं और 'इज़्ज़त आबरू सहित शान' से बूढ़े रिटायर्ड तक हो जाते हैं। ये उमेशो का ससुर, उसके दूसरे लड़के-दामाद, सब रिश्वतें खाते होंगे। उसके ससुर ही न तो अपनी लड़की के सुख के लिए मेरे बेटे को सरकारी लूट की चौकी पर बिठलाया था। मेरा बेटा शत-प्रतिशत अपनी मर्जी के खिलाफ़ अपने महा सौभाग्यदाता महाप्रभु की बदसूरत बदमिज़ाज बेवकूफ लड़की के लिए, उसके आदेश से कुछ सरकारी कागज़ों पर सही का हस्ताक्षर भर कर दिया करता था। बड़े आला किस्म के साहब और बड़े साहब-आलीशान के दामाद, मेरे उमेशो के अर्दली-चपरासी-क्लर्क, दफ्तर के छोटे-बड़े अमले, बेईमानी तंत्र के विधाता बैपारी, यहां तक कि उनके कुछ कारिन्दे तक मेरे बेटे के संबंध में यह उपहासजनक जानकारी रखते थे कि 'असली' अफ़सर मिसेज़ उमेशशंकर हैं, मिस्टर शंकर तो बस अपनी श्रेष्ठ आई० सी० एस०-ज़ादी बीबी के बैल है। पराये पापों का दण्ड भुगतने का क्षण जब आया तब मेरे बेटे ने सोचा कि····"मैं उन अपराधों की सजा क्यों भोगूं जो मैंने नहीं किए। मैंने केवल एक ही पाप या अपराध किया कि पुरी साहब की बेटी से ब्याह किया। और यह अपराध मैंने स्वयं अपने ही प्रति किया है। इसके लिए मुझे ही दण्ड देने का अधिकार है और मुझे ही दण्ड भोगने का भी।··· एक ही अरमान लेकर जा रहा हूं, मां जैसी मां और आप के समान पिता पाकर भी इस जन्म में, मन में रहते हुए भी आप लोगों की कोई सेवा न कर सका, इसलिए चाहता हूं कि मेरा एक जन्म आप दोनों की सेवा में अवश्य बीते।"

काफ़ी भारतीय युवकोचित भावना इस अंतिम वाक्य में है। उस समय पुत्र-शोक के आवेश में तो इस वाक्य ने मुझे हिड़कियों रुलाया था, परन्तु आज इस वाक्य के भीतर छिपा उसका तात्कालित मनोबिम्ब साफ़ उभरता है। आत्महत्या के निश्चय की कठोरता, पत्नी, पत्नी के पिता और समाज की लौकिक मान्यताओं के प्रति तीव्र घृणा, क्रोध और अक्षम्य भाव उसके अन्दर पूरी तेजी पर थे, फिर भी उसका मरने को जी न चाहता था···मार डाला मेरे बच्चे को इस रुपये की महत्ता ने; पैसे-ओहदे वालों और उनके बाल-बच्चों की स्वकल्पित व्यक्ति-स्वातंत्र्य की मान्यता ने—मेरे बच्चे के गुलाम बनने के गुनाह ने।

फिर वही गुलामी और मुक्ति का प्रश्न। सांख्य से लेकर साइंस तक भले ही प्रत्यक्ष को माया और अप्रत्यक्ष को नित्य सत्य मान ले, पर हम जीते-जागते हुए औसत बुद्धि के लोग तर्कबुद्धि शील, रूप, रस, गंध और स्पर्श से पार्थिव आकारों का प्रत्यक्ष अनुभव पानेवाले, उससे भावों का अहर्निशि आदान-प्रदान करनेवाले, उनके साथ इतिहास, साहित्य, कला, ज्ञान-विज्ञान में विकास करनेवाले, नवगति नवीन यथार्थ की खोज में आस्था रखनेवाले चेतन प्राणी अपने और उनके जीवित होने के सत्य को क्योंकर भूल जायं, कैसे माया मानकर छोड़ दें ? अदृश्य तत्व सत्य हैं यह माना, पर दृश्यमान् माया भी सत्य है—जिसके द्वारा अदृश्य तत्व कर्म करता है, सीखता है और पहले से अधिक सुसंस्कृत होकर नई काया में जन्मता है। पहले की प्रतिष्ठित मान्यताएं और चेतनाएं जो कभी हमारे लिए अवश्य प्रगतिदायिनी रही होंगी, लेकिन आज, हमारे होश सम्हालते ही, आत्मा पर बोझ बनकर हमारी चेतना के चारों ओर बंधन-सी लिपटी आ रही है, एक दिन सहसा विस्मृत भी हो

जाएंगी, बीते जन्मों की तरह ही। पुरानी सीमित धार्मिक परिधियों में घूमता हुआ आज का हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, मूसाई, बौद्ध इत्यादि क्या यहीं बना रहेगा? नई चेतना आज की चेतना के धुर्रे उड़ाकर उसे बिखेर देगी। उस नई चेतना को धारण करने लायक नया शरीर पाने के लिए ही मेरे उमेश ने अपना जड़ बंधनों में बंधा हुआ शरीर नष्ट कर दिया है। वह मरा नहीं है। हां, उसने अपने उस शरीर के बूढ़े होकर कुदरती मरण पाने के विकासवादी मार्ग को छोड़कर विद्रोह का मार्ग अवश्य अपनाया, परन्तु विकास में विद्रोह द्वारा क्रांति लाना भी कभी-कभी आवश्यक होता है। मृत्यु ही उसकी मुक्ति थी और उसका क्षण उसी समय निश्चित हो गया था जब पुरी ने उसे अपना दामाद बनाया था। वह इसका भाग्य था। छोटी-मोटी नौकरी या हैसियत के बंधन से घृणा करनेवाला उच्चाकांक्षी युवक ऐसा अभागा था कि उसकी उच्चाकांक्षा ही उसका सबसे बड़ा बंधन बन गई। बहुत से युवकों की वैसी ही महत्वाकांक्षाएं फलती-फूलती हुई भी मैंने देखी है, लेकिन उसे नहीं बदा था। भाग्य होता है, पुनर्जन्म होता है। जन्म-जन्मान्तर के चेतन तत्व जब-जब अपने लिए नया और विस्तृत धरातल पा लेता है, तब-तव उसके पुराने पाप भी नष्ट हो जाते हैं। आज की विश्वचेतना में खुलेआम, ईमान और हक़ के जोम के साथ बीते इतिहास के दिनों की तरह मनुष्य गुलाम बनाकर नहीं बेचा जा सकता, राजा ईश्वर का प्रतिनिधिनहीं रहा। दुनिया अब अपने पूर्व रूप से बिलकुल भिन्न हो चली है। विश्वात्मा अब अपने-आपको नव नैतिक सौन्दर्य के धरातल पर उतार रहा है। मनुष्य अंतरिक्ष में उड़ने लगा है···फिर भी ये अफ़सर, नेता, मुनाफाखोर संकीर्ण स्वार्थों और मृत धार्मिकता के ठेकेदार, ये तमाम जड़बंधन मौजूद हैं। वे मोह और लोभ-लिप्साएं अब भी विद्यमान हैं जिनके कारण मेरे बच्चे को अपनी जान गंवानी पड़ी। इस अज्ञान के प्रतीकों से जूझे बिना ही रह जाऊं, विश्राम करूं या मर जाऊं? तब तो मैं हेमिंग्वे के बूढ़े मछेरे से हार जाऊंगा। जड़ चेतनमय, विष-अमृतमय, अंधकार-प्रकाशमय जीवन में न्याय के लिए कर्म करना ही गति है। मुझे जीना ही होगा, कर्म करना ही होगा। यह बंधन ही मेरी मुक्ति भी है। इस अंधकार ही में प्रकाश पाने के लिए मुझे जीना है। इस समय भी मेरे दो जीवनाधार तो हैं ही—धुर बचपन में मुझे ढकेलकर अपने साथ दौड़ा ले चलनेवाला मेरा अनन्य साथी बछड़ा, और दूसरा वह औपन्यासिक नायक मछेरा।

सात घूंघट वाला मुखड़ा

यह इतिहास नहीं, ऐतिहासिक चरित्र-प्रधान उपन्यास है। तिथियों और घटनाओं के क्रम-परिवर्तन मनोवैज्ञानिक स्थितियों के अनुसार इसमें कर लिए गए हैं, क्योंकि बेगम समरू का इतिहास प्रमाणिक होते हुए भी उसकी बहुचर्चा के कारण किंवदंतियों से भरा हुआ है।

—अमृतलाल नागर

अहाते की उजाड़ पड़ी रहने वाली खंडहर कोटरी में बशीरखां अपनी बन्दूक साफ कर रहा था। ज़रा-से खटके से उसकी सहमी हुई नज़रें चौंककर उठ जाती थीं। धूप के गली पीपल की चोटी से उतरकर अब सामने वाली छत की मुंडेर पर आकर पसर चुकी थी। बशीरखां की चोर नज़रों से जब पकड़े जाने का डर मिटा तो मुंडेर से नीचे उतरती हुई धूप उसे ऐसी लगी मानो कोई अल्हड़ चिलबिली लड़की मुंडेर से टांगें लटकाए बैठी हो और किसी भी वक्त झम्म से बशीरखां के अहाते में कूद पड़ने को तैयार हो। इस ख्याल से तबीयत में ताज़गी आई, जी हल्का ही नहीं खुश भी हो उठा। टोपीदार बन्दूक की सफाई नये जोश में होने लगी, मौन में हल्के-हल्के गाना भी शुरू कर दिया—

अगर आं तुर्क शीराज़ी वदमस्त आरद दिलेमारा।
बख़ाले हिन्दुपश बख़्शम समरकंदो बुखारा रा॥

बशीरखां के मन का चोर अब पूरी तरह से काबू में आ चुका था। मुन्नी उर्फ़ दिलाराम को साफ़-साफ़ यह बतलाना ही होगा कि गो वह उसे चाहता ज़रूर है पर उसका पिछले पांच बरसों का इश्क महज़ एक फरेब था। उसके अब्बा ने जब मुन्नी को खरीदा था तब बैठक खाने में बेहोश पड़ी उस हुस्न के गुलाब की नायाब कली को देखकर कहा था, "यह हुकूमत करने के लिए पैदा हुई है, इसपर हुकूमत की नहीं जा सकती। बशीर को इसे इश्क के जादू से बांधकर राह पर लाना होगा।" शकूरखां ने अपने आला तस्वीर निगार और बड़ी-बड़ी दिलफरेब आंखों वाले बेटे को कसम दिला दी थी, "मैं तुम्हारी मर्दानगी और सआदतमन्दी का इम्तहान ले रहा हूं। आग को सर पर रखकर चलना है और वह भी दस्तार से ढककर इस तरह से चलना है कि चाहे सर जल जाए, पर पगड़ी पर आंच न आने पाए।…" पुराने लोग बात किस अन्दाज़ से कहते थे! बशीर को अपने अब्बा की याद आ गई। उन्हें मरे अभी पूरा साल भी नहीं गुज़रा।

खयालों में फिर परछाईं-सा कोई आ गया। बशीरखां की नज़रें फिर उठीं। सचमुच, मुन्नी ऊपर की सीढ़ियों से बदहवास उतर रही थी। बशीरखां ने पलक झपते अपने मन को पत्थर बना लिया, बन्दूक की सफाई में यों लग गया जैसे कि मुन्नी के आने की उसे कोई खबर ही न हो। गुनगुनाहट ज़रा ऊंची हो गई—"अगर आं तुर्क शीराज़ी बदस्त आरद दिलेमारा…।"

हुस्न की मलिका मुन्नी उर्फ़ दिलाराम बन्दूक की सफाई में लगे बशीरखां को एकटक देखती रही। उसकी कशिश-भरी काली आंखों में एकाएक ठहराव-सा आ गया था, जैसे बेतहाशा दौड़नेवाला घोड़ा मालिक के लगाम खींच लेने पर एकाएक ठिठक गया हो। इस ठिठकी हुई नज़रों से मुन्नी अपने आशिक के बदले रुख को देखती ओर पहचानती रही। बशीरखां ने जैसे उसे न देखने की कसम खा ली

हो, मानो वह डर रहा था कि मुन्नी की जादुई आंखों से आंखें चार होते ही वह अपने वश में न रह सकेगा। मुन्नी उसके इस रुख को देखकर मन-ही-मन टूट गई। उसे यकीन हो गया कि महबूबा की बात सच है, बशीर ने उसे बेच दिया। लड़-खड़ाई हुई आवाज़ में उसने कहा, "मुझे तुमसे यह उम्मीद न थी।" बशीर ने जैसे सुना ही नहीं। मुन्नी का भरोसे भरा दिल आंसुओं का समन्दर बन गया। सिस-कियां लहरों-सी उमड़ने लगीं, कांपती आवाज़ में इतना ही कह सकी कि "आखिर मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था!" फिर धम से बैठ गई, जैसे बगैर नींव की इमारत ढह पड़ी हो।

बशीरखां ने उसकी ओर देखे बगैर ही बड़े ही भोले अन्दाज़ से पूछा, "मुझसे कुछ कह रही हो दिलाराम?"

मुन्नी चिढ़ उठी, "अगर तुम पत्थर नहीं हो तो तुम्हीं से कह रही हूं।"

"और फर्ज़-कर्दम, पत्थर हूं तो।"

दिलाराम ने झटके से सिर उठाकर बशीरखां को देखा। आंसुओं का दरिया बांध तोड़कर उमड़ पड़ा। बशीरखां के पैरों पर अपना सर पटकते हुए वह बोली, "तो इस घर से निकाले जाने के वक्त मैं इन्हीं कदमों पर अपना सिर पटक-पटक कर मर जाऊंगी। मैं तुम्हें छोड़कर हरगिज़ नहीं जाऊंगी। हरगिज़ नहीं, हरगिज़ नहीं।"

बशीरखां का कलेजा हिल उठा। थोड़ी देर तक वह अपने काबू में न रहा, मुन्नी के सर को उसका हाथ बेसाख्ता थपथपा उठा। मगर वैसे ही अब्बा की कसम होश पर गोली-सी बनकर लगी; दिल बन्दूक की नली की तरह फौलाद बन गया। अपने गम को असल से नकल बनाते हुए ठंडी सांस लेकर वह बोला, "आह जाने-मन, चार-छ: रोज़ तक मैं तुम्हारे गम में ठीक तरह से खाना भी न खा सकूंगा··· मगर···मगर उसके बाद ये कारबारे दुनिया फिर से मुझे अपने में समा लेगा। ···तुम्हारा जान देना बेकार है जानेमन।"

मुन्नी पर जैसे गाज गिर गई। पानी से डूबनेवाला इन्सान एक बार तल तक जाकर फिर उछलता है वैसे ही दिलाराम का दिल टूटकर फिर उभरा और इस बार उसमें दु:ख के बजाय नफरत भर चुकी थीं। बशीर के पांवों को छोड़कर उसने अपना सिर ताना और तमतमाए हुए चेहरे से कहा, "बेवफा।"

"कौन, मैं···? तब तुम यह जानती नहीं मुन्नी, कि वफादारी कहते किसे हैं।" इतना कहकर बशीरखां ने पहली बार मुन्नी से आंखें मिलाईं, प्यार भरी आवाज़ से कहा, "तुम्हारे भले के लिए मैं खुद अपनी ज़िन्दगी को बुरा बना रहा हूं। पत्थर का बुत भी अगर तुमसे इश्क करता तो पिघल जाता, फिर भला मेरी क्या बिसात है! ···नवाब समरू के आदमी ने जब मुझसे तुम्हारी मांग की तो ···खुदा जानता है, मेरे अन्दर ज़िन्दगी की शमा जलते-जलते एकाएक भक् से बुझ गई थी···मगर···"

"मगर?' मुन्नी का सवाल कटार की तरह बशीरखां की बनावट पर हमला करने के लिए उठा, मगर बशीर की चालाकी ने उसे चट् से अपनी ढाल पर रोक लिया, जवाब दिया, "अब्बा कहते थे, यह हसीना मलिका बनने के लिए पैदा हुई है···तुम एक बहुत बड़े सिपहसालार की मलिका बन जाओगी दिलाराम! जानती हो, जर्मनी के नवाब की इस वक्त क्या हस्ती है? सुना है, आगरे में उसके

महल की सजावट के सामने इस वक्त लाल किले की सजावट भी हेच है। विलायत का सबसे बड़ा नवाब है।"

बातें सुनते-सुनते दिलाराम का चेहरा सख्त हो गया था। चिढ़कर बोली, "विलायतों के नवाब शरीफ नहीं लुटेरे होते हैं। मुझे याद है, पिछली बार जब दिल्ली में इसी समरू के आदमी तुम्हारे आदमियों की मदद मांगने आए थे तो अब्बा जन्नतमकानी ने तुमसे क्या कहा था···"

"अरी दीवानी, वह पुराने लोगों की बातें थीं। वे नये हालात को समझते नहीं थे। वे यह नहीं देख रहे थे कि वहां के लुटेरे भी इतने होशियार और चालाक हैं कि यहां आकर नवाब बन जाते हैं। यही समरू पहले फिरंगियों की फौज में एक मामूली सिपाही बनकर आया था। मगर आज क्या हैसियत है उसकी! कभी अंग्रेज़ों को छकाया, कभी फिरंगियों को चूना लगाया, फिर देशी राजे-नवाबों को उनकी अक्ल के रेगिस्तान में अपनी जादुई अक्ल की घास चराई। और अब जाटों और रुहेला सरदार झपेटाखां की किस्मत के पत्थरों पर अपने नसीब का उस्तरा सफाई से पैना कर रहा है ताकि कल किसी और को—हो सके तो खुद मुगल बादशाह शाहे-आलम को मूड़ सके। तब तुम दिल्ली के बादशाह की मलिका हो जाओगी। मैंने अपनी समझ से तुम्हारे किस्मत का कोहेनूर-सा आदमी चुना है जानेमन।"

दिलाराम के दिल का सोना असलियत की भट्ठी में तप-तपकर पिघल और ढल रहा था। कल शाम जब उसकी बांदी और सहेली महबूबा ने उसे बतलाया कि बशीरखां ने दस हजार सोने की अशर्फियों पर उसका सौदा पक्का कर लिया है तो उसकी भोली-भाली मन की दुनिया में एकाएक प्रलय-सी आ गई थी। उसका सपनों का संसार पानी के बुलबुलों की तरह एकाएक गायब हो चुका था। कल शाम से लेकर अब तक वह एक पल नहीं सोई है। बशीरखां से मिलने के लिए रात-भर बावली हवा के झोंकों-सी इधर-उधर घर भर में डोलती रही है।···

कहां तो वह सोचती थी कि शकूरखां के मरते ही वह बशीरखां की बीवी बन जाएगी। समझती थी कि शकूरखां का लालच ही बशीरखां की बेबसी है ··मगर बशीर अपने बाप से भी बड़ा लालची निकला। उफ्! पिछले पांच बरसों में इसने कितना ढोंग किया मुझसे! मैं हर पल इससे ठगी गई। मेरा हर सच झूठ निकला! दिलाराम रात-भर तप-तपकर जिस नये होश को पाती रही थी उसके पीछे एक धोखा था मगर तब भी वह अपने टूटते दिल के सहारे सांसें पालती रही थी कि बशीरखां उससे नज़रें मिलाते ही फिर उसका हो जाएगा, सोने की अशर्फियां विलायती नवाब को लौटा दी जाएंगी। मगर वह आखिरी धोखा भी अब आंखों के सामने से हट चुका। जिस बशीरखां को देखकर उसका मन हरदम हरखता रहता था, वही अब दिलाराम को फूटी आंखों नहीं सुहा रहा है। वह आदमी ही क्या जिसे दिल की कद्र न हो। इंसान का दिल दुनिया की सारी दौलत से भी कहीं ज़्यादा कीमती है। इस लालची ने मेरे दिल की कदर न की। बड़ा धोखेबाज़ निकला।

और वह धोखेबाज़ बड़ी पाक-साफ नज़रों से उसे देखते हुए कह रहा था, "मुझे यकीन है कि मैं अपनी मुन्नी को ज़रूर ही लालकिले की मलिका के रूप में देखूंगा। मुझे समरू की सियासत पर यकीन है। वह बड़ा ही हुनरमन्द है।"

"तुमसे भी बड़ा हुनरमन्द है?" मुन्नी ने ताने से पूछा। बशीर उसे ताने को

पी गया और सहज भाव से बोला, "ओह जानेमन, बहुत बड़ा। अरे, मैं तो महज़ पराई औरतों-लड़कियों को ही बेचता हूं मगर वह चुटकी बजाते खड़े-खड़े पराई जागीरें बेच डालता है। तुम यकीन मानो दिलाराम, मैं झूठ नहीं कहता। यह वाल्टर रेनहार्ड नाम का विलायती शातिर एक दिन समूचे हिन्दोस्तान को बेचकर मुनाफा अपनी जेब में न रख ले तो मेरा नाम बशीरखां नहीं।"

अपने नये मालिक के लिए दिलाराम के मन में रात-भर किसी कोने में एक कौतूहल जो बराबर पलता रहा था, एकाएक गम्भीर होकर सामने आ गया। उसने बशीरखां के मुंह से अभी-अभी अपने नये मालिक के दो नाम सुने। समरू नाम तो पिछले डेढ़-दो बरसों में, बाप-बेटे की घरेलू बातों से वह दो-तीन बार सुन चुकी थी, मगर उसीका एक नया नाम सुनकर वह सहसा पूछ बैठी, "यह समरू का असली नाम है?"

"हां, समरू तो बस यों समझ लो कि जैसे अपनी पड़ौसी नवाब सिकन्दर खां को उनकी मनहूस सूरत, डरावनी आंखों और घुन्ने-चिड़चिड़े मिज़ाज की वज़ह से लोग-बाग चोरी-छिपे लकड़बग्घा नवाब कहते हैं न, बस उसी तरह से तुम्हारे होने वाले खसम का नाम भी एक फिरंगी लफ्ज़ से बिगड़कर हिन्दुस्तानी हो गया; जैसे कि वह खुद हिन्दोस्तानी लिबास पहनने का आदी हो गया हैं। हः-हः-हः।"

"बशीर!" दिलाराम ने इस अन्दाज़ से कहा कि जैसे वह उसकी इस बनावटी हंसी और बात कहने के ढंग से तंग आ चुकी हो और बड़े लाड़ और विनय के साथ उससे फिर सदा जैसा हो जाने की मिन्नत कर रही हो। बशीर उसके साथ यह खिलवाड़ करने के लिए तैयार था, जवाब में उसने भी वही प्यार जतलाया। दिलाराम कहने लगी, "याद है मेरे यहां आने के शायद तीसरे या चौथे दिन की वो बात, मुझे ज़िद की सज़ा देने के लिए जब तुम्हारे अब्बा ने गुस्से में मारने के लिए छड़ी उठाई थी और तुम अचानक बीच में आ गए थे? और वह मार तुमने झेली थी?"

"हूं—हूं!"

"तुमने अपनी वालिदा से कहा था कि अब्बा अगर मुझे ज़िन्दा देखना चाहते हैं तो अब से मुन्नी पर ज़ोरो-जुल्म न होगा। वह मेरी होगी और मैं उसे दिलाराम कहकर पुकारूंगा; उसे हर तरह से लायक बना दूंगा। मेरी मर्ज़ी के खिलाफ वह कभी बेची न जाएगी।"

"बार-बार वही बात, छिः! तुम्हारी ज़िन्दगी को चमकाने के लिए ही मैंने अपने दिल पर यों पत्थर रखा है।" बशीर के इस चालाकी-भरे जवाब ने मुन्नी को फिर चिढ़ा दिया। तड़पकर बोली, "पत्थरों के बोझ को संभालनेवाले दिल की कैफियत ही कुछ और होती है बशीरखां, वह कम-अज़-कम दिल तो होता है। मगर तुम्हारे कलेजे में तो जानवर बैठा है। जानवर को सिर्फ किसी लालच की रस्सियों से बांधकर ही खींचा जा सकता है, बतलाओ कितनी रकम मिली?"

"नज़रे-बद्दूर, तुम्हारा यह हुस्न जानवर ही क्या बड़े-बड़ तानाशाहों को भी बेबस बनाकर अपनी ओर खींच सकता है।"

"रहने दो ये अपनी मुंहदेखी बड़ाइयां। मैं तुमसे असलियत बतलाने को कह रही हूं।"

"असलीयत यह है मुन्नी, कि तुम्हारी यह आम की फांकों जैसी बड़ी-बड़ी,

खोई-खोई, काली-काली, हिरनी जैसी मासूम निगाहें ··· (ठंडी सांस लेकर) क्या कहूं जानेमन, हुस्न के पास नज़र और दिल के ज़बान नहीं होती। देख लेना, सबको अपनी उंगलियों पर नचाने वाला यह समरू तुम्हारी नज़रों की डुगडुगी पर पालतू बन्दर-सा नाचने लगेगा।"

मुन्नी के मन से कविता कपूर की तरह उड़ चुकी थी। वह अपने-आपको आनेवाले भविष्य के लिए मन से समर्पित कर चुकी थी। सौतेले भाई के अत्याचारों से मजबूर होकर जब अपनी मां के साथ मेरठ से चली थी तब फूट-फूटकर रोई थी। अपना शहर, अपनी गली, पास-पड़ौस की हमजोलियां, वह अपने आंगन का नीम का पेड़—उस वक्त उसके किशोर मन में प्रेम और वियोग की यह परिभाषा थी। लेकिन वह सब छूटा; डाकुओं के हाथों में पड़कर मां भी किस्मत ने छुड़वा दी। मन के बड़े-बड़े मोहों से मुन्नी जब मोर्चे हार चुकी तो यह बशीरखां का बिछोह भला उनके आगे क्या है! मगर आज इसको छकाकर ही जाऊंगी। इंसान के भेस में छिपे हुए जानवर को जानवर ही साबित करके जाऊंगी। उसने और पैने होकर कहा, "हौसला अफज़ाई के लिए बहुत-बहुत शुक्रिया, मगर यह मेरी बात का जवाब न था। मैं जानना चाहती हूं कि तुम्हारे अन्दर वाले मुनाफाखोर दरिन्दे ने मेरी कितनी कीमत आंकी?"

"अपने इस चांद-से मुखड़े की कीमत खुद ही आंक लेतीं। मैं समझता हूं कि कम-अज़-कम दस हज़ार अशर्फियों से नीचे तो इसका सौदा हो ही नहीं सकता। मैंने समरू के आदमी टॉमस से आज इतनी ही अशर्फियां लेकर आने को कहा है। मेरा खयाल है, दोपहर तक वह अशर्फियां और डोला लेकर आ जाएगा।"

"खुदगरज़! दगाबाज़!"

मुन्नी का सफेद गुलाब-सा हसीन मुखड़ा क्रोध की बेबसी से अपना रंग बदलकर एकाएक लाल हो उठा। बशीरखां को वह बेहद हसीन लगी, बढ़कर उसकी ठुड्डी पर मीठी-सी चुटकी मारकर बोला, "अरे छोड़ो भी, कुछ और बातें करो। यह हमारी खुशियों का आखिरी दिन है। कल से ताउम्र तुम्हें खयालों में···"

"रहने दो ये झूठी बातें। मैंने तुम्हें अपना बेशकीमत दिल दिया था। दिल ही नहीं, तुम्हारे फरेब में आकर परसों रात मैं तुम्हें अपनी वह सबसे बड़ी दौलत भी सौंप चुकी जो औरत किसी को ज़िन्दगी में सिर्फ एक बार ही दे सकती है। तुमने कितना झूठ बोला था उस रात! आज का दिन तुमने हमारे निकाह का दिन बतलाया था। और अब निकाह हो रहा है दस हज़ार अशर्फियों से!"

"फिर वही दस हज़ार? दस हज़ार अशर्फियों की बिसात ही क्या है बहुत-सा हिस्सा तो यह टॉमस और समरू के खज़ाची-दीवान ही चट कर जाएंगे। जो थोड़ी-बहुत रकम बाकी बचेगी, वह यूं समझो कि तुम्हें पढ़ाने-लिखाने और होशियार करने में अब्बा ने जो खर्च किया था उसकी भरपाई किसी हद तक हो जाएगी। तुम्हें बेचकर हमें कोई मुनाफा थोड़े ही हुआ है। मगर तुम अपना मुनाफा क्यों नहीं देखती हो। लाखों के जेवरात, बेशुमार पोशाकें, सैकड़ों गुलाम-बांदियां, मेरठ के एक मामूली हैसियत वाले कश्मीरी सौदागर की बेटी को, जिसकी किस्मत में लिखा तो था किसी नाचनेवाली के घर में जाना, मगर जिसे एक लाभिसाल शानदार आशिक ने किस्मत से लड़कर मलिका बना दिया। तुमपर यह मेरा एहसास क्या कुछ कम है!"

"बहुत-बहुत एहसानमन्द हूं। मेरी झोली भर दी आपने—मगर दिल तोड़कर।"

बशीरखां हंसा। उसे अपनी बांहों में खींचकर भरने की कोशिश करता हुआ बोला, "दिल टूट गया। यह तुम पर मेरा आखिरी एहसान हुआ। अब तुम बखूबी दिलों को रौंद सकोगी, तोड़ सकोगी, उनपर हुकूमत कर सकोगी।"

"हुकूमत ?"

"हां, मेरे अब्बा तुम्हारे लिए यही चाहते थे। याद रखो दिलाराम, कि सियासत भी पेशेवर रक्कासा होती है। उसके पास दिल नही होता। और हुस्न की मलिका, ऐसी बेदिल सियासत को अपनी चेरी बनाए बगैर तख्तोताज की मलिका बन ही नहीं सकती।"

दिलाराम को बशीरखां की आवाज़ में इस बार नकल के बजाय असल का ऐहसास हुआ। बशीरखां उसके लिए पहेली बन गया। उसका दिल न तो बशीरखां के इस रूप पर विश्वास ही कर पाया और न अविश्वास ही। अक्ल गूंगी हो गई। और गूंगेपन को तोड़ने के लिए बड़ी विनय से उसने कहा, "एक भीख मांगती हूं, महबूबा को मेरे साथ भेज देना। नई पराई जगह में कोई तो मेरा अपना होगा। चाहोगे तो उसकी कीमत भी तुम्हें दिलवा दूंगी।"

"चलो, तुम्हारी मर्जी से यह एक और एहसान भी तुमपर लाद दूंगा। और मेरे इस एहसान को उसकी कीमत भी मान लो। आओ, अब मेरे साथ चलो, आज मैं तुम्हें अपने हाथों सजाऊं-सवारूंगा। आज आखिरी बार तुम्हें अपने आगोश में लेकर मैं भी अपने-आपको शाहंशाहे-आलम महसूस करना चाहता हूं। इसके लिए मैं तुमसे भीख मांगता हूं दिलाराम! मेरे तमाम एहसानों के बदले में तुम्हारा यह एक एहसान मुझे ज़िन्दगी-भर तुम्हारा गुलाम बनाए रख सकेगा।"

बशीर की बांहों से निकलने का जतन करती हुई मुन्नी फिर उसकी एक बात से ठिठक गई, "याद रखो मुन्नी, सियासत लेन-देन से ही काबू में आती है। उसे अपनी मर्ज़ी के मुताबिक चलानेवाले को बहुत-सी बातों में, अपनी बहुत-सी मर्ज़ियों को नज़रअंदाज भी करना होता है। अपना दिल तोड़ने के लिए तुम भले ही मुझसे नफ़रत करो, मगर दिल तोड़ने का मेरा एहसान मत भूलो। उसकी कीमत चुकाने में आनाकानी न करो, समझदार बनो।"

और मुन्नी बशीर की बांहों में बंधकर समझदार हो गई।

अजमेरी दरवाज़े के पास गाज़ीउद्दीनखां का मदरसा कुछ अरसे से उजाड़ पड़ा था। लाल पत्थर की वह शानदार इमारत दिल्ली की अस्थिर राजनीति के कारण उस कुलीन की सुहागिन के समान थी जिसे ब्याहने के बाद ही पति एक बार जुठारकर सदा के लिए छोड़ गया हो। इमारत के सामने एक सुन्दर फव्वारा बना था और दाहिनी और लाल और सफेद पत्थर की भव्य मस्जिद थी। जनरल वाल्टर रेनहार्ड उर्फ नवाब समरू के विश्वासपात्र नायब सिपेहसालार जार्ज टॉमस ने अपने मालिक की भावी बेगम के स्वागतार्थ इसी मदरसे को किराये पर लेकर उसे चार दिनों की चांदनी बख्श रखी थी।

आज दोपहर से ही यहां बड़ी चहल-पहल थी। नई बेगम की अगवानी के लिए बड़ा प्रबन्ध हो रहा था। टॉमय स्वयं हर वस्तु पर नज़र रख रहा था।

नई बेगम उसके मालिक के नीरस जीवन को सरल बनाने के साथ ही साथ उसके भी नसीब का सितारा बन सकती है। समरू को प्रसन्न करने के लिए भाग्य ही से उसे सुयोग मिला है। समरू ने लालकिले की राजनीति को अपने पक्ष में करने के लिए टॉमस को यहां भेजा था। वह चाहता था कि शाहआलम और अंग्रेज़ों के बीच किसी प्रकार का समझौता न होने पाए। टॉमस इस काम में सफल न हो सका। वह जानता था कि उसका स्वामी इस असफलता से अवश्य चिड़चिड़ा उठेगा। दो वर्ष पहले बंगाल के नवाब मीर कासिम की ओर से अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध में भाग लेते हुए पटना में धोखा देकर दावत में बुलाए गए 148 अंग्रेज़, यूरोपियन निहत्थे अफसरों और सिपाहियों को समरू ने बड़ी बेरहमी से मार डाला था। यह टॉमस तोपची अपने शुभ ग्रहों के प्रताप से समरू के दिल के दया जगाकर बच गया। यही नहीं, उसकी सेवा में नियुक्त होकर उसका विश्वासपात्र भी बन गया, मगर इस राक्षसी हत्याकांड ने अंग्रेज़ों को समरू का जानी दुश्मन बना दिया था। अंग्रेज़ों ने मीर कासिम को करारी मात दी मगर असली अपराधी समरू अपनी टोली लेकर भाग निकला। अवध के नवाब शुजाउद्दौला को अंग्रेज़ों के खिलाफ पटाकर फैजाबाद में मौज मारने लगा। पिछले बरस बक्सर की लड़ाई में हार जाने पर शुजाउद्दौला ने दुश्मन को दोस्त बनाने की नीति पर चलकर अंग्रेज़ों से सुलह करनी चाही। अंग्रेज़ों ने यह शर्त रखी कि पहले राक्षस समरू को विना शर्त उनके हवाले किया जाए। शुजाउद्दौला अंग्रेज़ों से हारने के बावजूद अपनी नैतिकता न हारा था, लेकिन समरू किसी की उच्च नैतिकता की परीक्षा लेनेके लिए रुकनेवाला व्यक्ति ही न था। चलते-चलाते वह शुजाउद्दौला की बेगमों और नवाब के शरणागत, बंगाल के पराजित मीर कासिम से भी काफी दौलत ठगकर ले गया। इस समय कुछ अरसे से आगरे में पड़ाव डाले पड़ा है। रुहेलों और जाटों से अलग-अलग अपने राजनीति कनकौवे लड़ा रहा है। हर समय आत्मरक्षा में चौकन्ना रहते-रहते वह चिड़चिड़ा हो उठा है। टॉमस को मालिक के इस भयानक चिड़-चिड़ेपन से बचने के लिए संयोग से दिलाराम का आधार मिल गया। प्रसंगवश बशीरखां से चर्चा हुई, उसने दिलाराम के गुणगान किए। दूसरे दिन अपना बनाया हुआ एक चित्र भी टॉमस को दिखलाया। उसे देखते ही टॉमस को लगा कि यह सुन्दरी मानो उसके सौभाग्य की कुंजी है। तुरन्त ही वाल्टर रेनहार्ड को वह चित्र और सुन्दरी की तारीफें लिखकर आगरे भेज दीं। वापसी डाक से मालिक का आदेश मिला, "किसी भी कीमत पर इस हसीना को जल्द से जल्द मेरे पास भेजो।"

दस हज़ार सोने की मोहरों से खरीदा गया वह हुस्न का सूरज दिन ढलते न ढलते डोले पर चढ़कर गाज़ीउद्दीन के मदरसे में पहुंच गया। शाही फाटक पर पूरे ठाठ से टॉमस ने मुन्नी उर्फ दिलाराम का स्वागत किया। नये हीरों-जड़े सोने के पिंजरे में घुसते हुए मुन्नी का कलेजा एक बार बड़ी ज़ोर से कांप उठा।

नई बेगम के स्वागत-सत्कार में जार्ज टॉमस ने कोई कसर न रखी थी। बांदियों की पूरी सेना उसकी सेवा में तैनात थी। हर एक जबान पर बस एक ही चर्चा थी, नई बेगम का हुस्न बेमिसाल है। जहांगीर की नूरजहां और शाहजहा की मुमताज महल की सुन्दरता के बारे में तो बस सुना-भर ही है, लेकिन समरू की इस नई बेगम को देखकर लगता है कि सिरजनहार इस हुस्न को रचकर फिर खुद ही ऐसा रीझ गया होगा कि उसे दीन-दुनिया की सुध ही बिसर गई होगी।

तारीफें सुन-सुनकर जाज टॉमस का जी लहरा उठा। उसने तस्वीर देखी थी। लेकिन तस्वीर आखिर तस्वीर ही है। उसे रह-रहकर हिन्दुस्तान के उस रिवाज पर झुंझलाहट आ रही थी जो औरतों को पर्दे में रखता है। नवाब समरू गो यूरोपियन है, फिर भी मुगलिया अदबो-आदाब का इतना बड़ा नक्काल है कि जार्ज टॉमस अगर नई बेगम को देख ले तो वह बुरा मान जाएगा।

टॉमस का जवान दिल लहरें ले रहा था।

काफी समय तक लौंड़ी-बादियों की भीड़ से घिरी रहकर दिलाराम ऊब उठी थी। उसे एकान्त की अभिलाषा थी। उसकी मसनद के पास ही जड़ाऊ चौकी पर वाल्टर रेनहार्ड का चित्र सजा हुआ था। उसे वह एक बार भर नज़र देखना चाहती थी, किन्तु भीड़ के कारण ऐसा करने में उसे स्वाभाविक रूप से संकोच हो रहा था। उसने महबूबा से एकान्त की कामना की। एकान्त होने पर समरू के चित्र, खास तौर से उसकी नीली आंखों को गौर से देखते हुए दिलाराम ने कहा, "नीली झील में मांद बनाकर रहनेवाले इस विलायती भेड़िये को आखिर किस तरह से मैं अपने वश करूंगी महबूबा? यह तो बशीरखां और उसके अब्बा मरहूम से भी कहीं ज़्यादा बेदिल और खूंख्वार नज़र आ रहा है।"

"हुस्न और अक्ल के जादू से हर दरिंदा वस में आ जाता है मुन्नी, फिर तुम्हें इसका खौफ क्यों हो?"

"खौफ? नहीं महबूबा, यह मेरा होश है जो नये माहौल में पूरे फैलाव के साथ अपने-आपको महसूस करना चाहता है।"

"कुछ भी कह लो, मगर यह नयेपन का डर है जो तुम्हारे नाजुक दिल में थरथराहट भर रहा है।"

"दिलाराम डरना नहीं जानती। वह सिर्फ अपने औरत होने की वजह से कहीं बेबसी ज़रूर महसूस करती है। और उसकी इस बेबसी को भांप-कर कोई उसे जोरो-जुल्म से दबाने के लिए ललच न उठे, इस सबब से वह हर वक्त खबरदार ज़रूर रहना चाहती है। यह पता लगाओ महबूबा, कि मेरा होनेवाला यह शौहर महज़ लिबास ही से हिन्दोस्तानी हुआ है या मज़हबो-मिजाज़ से भी?"

"मैं पता लगा चुकी हूं, वह कट्टर मसीही है।"

"तमीज़ से बात करो, नवाब साहब अब तुम्हारे मालिक हैं।"

"आगे इस बात का ख्याल रखूंगी, मुन्नी।"

"मुन्नी आज से छः साल पहले मर चुकी, और दिलाराम भी बशीरखां के घर ही में अपनी दास्तान दफन करके यहां आई है। आइन्दा यह दोनों नाम मुझे फिर सुनने को न मिलें।"

"हुक्म बेगम साहबा।" सर झुकाकर यह कहने के बाद महबूबा ने एक बार सहेली मालकिन को देखा। वह सचमुच नई लग रही थी।

दिलाराम ने पूछा, "तुमने किससे यह जानकारी हासिल की?"

"टॉमस साहब की खिदमतगार मेरी से।"

"उनकी कोई शादीशुदा विलायती बेगम भी है?"

"जी नहीं, बेगम साहबा! बड़ी बेगम साहबा मुसलमान हैं। नवाब साहब की उनसे बनती नहीं, लेकिन अपने वलीअहद की मां होने के सबब से वह उनका

लिहाज़ जरूर करते हैं।"

"साहबजादे की उम्र क्या होगी ?"

"हुज़ूर से साल-छः महीने छोटे-बड़े या बराबर के भी हो सकते हैं।"

"मेरी को एक बार मेरे पास ले आ महबूबा ! मेरी नई शतरंज का पहला प्याला वही बनेगी।"

महबूबा के बाहर जाते ही उसने एक दूसरी बांदी को बुलाकर बशीरखां के घर से आया हुआ अपना संदूक मंगवाया। उस संदूक में उनके दो-चार पुराने कपड़े जिन्हें पहनकर वह मेरठ से आई थी, और बशीरखां के हाथ की बनी चार तस्वीरें थीं, जो उसने बशीरखां की जानकारी में ही रखी थीं। लेकिन उसके अलावा बशीरखां की स्वर्गीय माता के गहनों का डिब्बा भी वह बड़ी चतुराई से उड़ा कर रख लाई थी। माल अधिक का नहीं था, मुश्किल से चालीस-पचास हज़ार का होगा, लेकिन बशीरखां के लिए यही रकम बहुत बड़ी थी। उसके बाप ने न जाने कहां से लूटकर, न जाने कितनी हत्याओं के बाद यह मोती माणिक और आभूषण अपनी घरवाली के लिए कमाए होंगे। बशीरखां की मां इन्हें अपनी जान से अधिक छुपाकर रखती थी। उसने दो-चार आभूषणों को छोड़कर कभी इनका इस्तेमाल भी नहीं किया था। बशीर की होनेवाली दुल्हिन के लिए उसने वह जमा-जथा सहेजकर रखा था। दिलाराम के प्रति बशीरखां के आकर्षण को देखकर तथा उनके प्रति दिलाराम की भावनिष्ठा को पहचानकर वह यही समझती कि एक न एक दिन दिलाराम ही उसकी पुत्रवधू बनेगी। मरने से पहले अपने गहने के बक्से का पता बतलाते हुए उसने कहा था, "बदकिस्मती से अगर बशीर के अब्बा तुझे कहीं बेच ही दें तो घर से जाते वक्त इसे बशीर को सौंप देना। ये उसकी दुल्हिन के लिए हैं। खुदा करे कि जो चीज़ तुझे सौंप रही हूं वह सदा तेरे पास रहे।" धोखा देने के दण्डस्वरूप उसने बशीर को यों ठगा था।

संदूक को खोलकर उसमें से दो गहनों की पेटी निकाली और कमरे में एकान्त होने की आज्ञा दी। उन गहनों में एक जड़ाऊ क्रांस लगी जंजीर भी थी जो न जाने किस परदेसिन का खून करवा के शकूरखां की बीवी के पास आई होगी। मगर आज वह क्रॉस दिलाराम की नई ज़िन्दगी का फाटक खोलने के वास्ते चाभी के रूप में काम आएगा। पेटी बन्द की, क्रॉस वाली जंज़ीर अपने गले में डाली और फिर खामोश नज़रों से अपने होने वाले शौहर की तस्वीर देखने लगी।

थोड़ी देर के बाद महबूबा मेरी के साथ हाज़िर हुई।

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरी, हुज़ूर !"

"क्या टॉमस ने तुमसे मज़हब बदलने के लिए कहा था।"

"जी नहीं, हुज़ूर ! बात यह है कि उनके पुराने खिदमतगार जोज़फ से मैंने कलीसा में जाकर निकाह पढ़वा लिया है। ईसाई मज़हब भी कबूल कर लिया है।"

"तुम्हारा शौहर विलायती है ?"

"जी नहीं, हुज़ूर! यहीं का है लेकिन टॉमस साहब की मर्जी देखकर वह ईसाई हो गया।"

"तुम्हें या तुम्हारे शौहर को अपना मज़हब बदलने का अफसोस है ?"

"जी नहीं, हुज़ूर ! खुदाबन्दे करीम के बेटे का साया-ए-रहमत पाकर किसी अफसोस के लिए गुंजाइश ही नहीं रह जाती।"

"तुम्हारे जवाब से हम खुश हुए, लो !" कहकर वह अपने गले से क्रॉस वाली जंजीर उतारने लगी।

महबूबा ताज्जुब कर रही थी कि दिलाराम के गले में यह जंज़ीर कहां से आ गई। और मेरी क्रॉस पाकर खुशी से मगन हो गई। उसे आदरपूर्वक आंखों और कलेजे से लगाकर उसने कहा, "हुज़ूर का इकबाल बढ़े। खुदा ने आपके रूप में हुज़ूर नवाब साहब को मुंहमांगी मुराद बख्शी है।"

"टॉमस साहब से जाकर कहो मेरी, कि मिल्लते-मसीही में शामिल होने की ख्वाहिश हमारी भी है। हम यह भी चाहती हैं कि हमारे शौहर के वतन की खवातीन के अदब-कायदे भी हमें बतलाएं जाएं।"

मेरी से यह बातें सुनकर टॉमस की खुशी और अचरज का ठिकाना न रहा। उसे लगा कि समरू के हरम में आनेवाली यह स्त्री आम हिन्दुस्तानी औरतों की तरह गाय नहीं है। शेर की मांद से शेरनी ही आ रही है। वह नई बेगम से बातें करने के लिए बेकल हो उठा। उसने मेरी से कहा, "हुज़ूर बेगम साहबा की खिदमत में जाकर यह अर्ज़ करो कि मैं उनकी खिदमत में अपने आदाब पेश करने की इजाजत चाहता हूं।"

थोड़ी देर बाद ही दिलाराम के कमरे में परदे के उचित प्रबन्ध के साथ टॉमस का आगमन हुआ।

"यह गुलाम हुज़ूर की खिदमत में अपने आदाब पेश करने के लिए हाज़िर हुआ है, बेगम साहब !"

"हम आगरे के लिए कब रवाना होंगे, टॉमस ?"

"हिज़ एक्सेलेन्सी का हुक्म आया है कि हम जल्द से जल्द आगरा पहुंचें। लेकिन वज़ीर नजफखां से मिलने के लिए मुझे परसों तक रुकना पड़ेगा।"

'शायद बशीरखां ने तुम्हें बतलाया होगा टॉमस, कि वह नजफखां पर अपना खास असर रखता है। उसकी इस बात पर यकीन लाने की ज़रूरत नहीं है।

"मैं हुज़ूर का शुक्रगुज़ार हूं। आपने ठीक मौके पर मुझे अगाह कर दिया।"

"बशीरखां कतई काबिले-एतबार नहीं है। यह मुमकिन है कि उसने दरबार की कुछ खबरें भी तुम्हारे हाथ बेचने की कोशिश की हो। वह आम तौर से गलत खबरें दिया करता है। झूठ बोलना उसकी आदत है।"

"गुस्ताखी मुआफ, मगर हुज़ूर के मुतल्लिक उसने जो भी कुछ कहा था वह तो इस गुलाम को गलत नहीं लगता बेगम साहबा !"

"तुम्हारी इस बात का जवाब देने की ज़रूरत हम नहीं समझती टॉमस ! बस यह समझ लो कि हकीर से हकीर आदमी भी कभी सच बोलने के लिए मजबूर हो जाता है। बहरहाल, मेरी ने शायद तुम्हें बतलाया होगा कि हम अपने होनेवाले शौहर ने मज़हब को कबूल करना चाहते हैं।"

"मिल्लते-मसीही को एक अनमोल मोती मिलेगा बेगम साहबा ! आगरा पहुंचते ही हुज़ूर की यह ख्वाहिश पूरी हो जाएगी। ओह, रेवरेंड फादर ग्रेगोरियो कितने खुश होंगे यह खबर सुनकर !"

हम यह चाहते हैं टॉमस, कि हम जब अपने आका के रूबरू पेश हों तो हमारी पोशाक उनके वतन के मुताबिक होनी चाहिए"

"जो हुक्म बेगम साहबा !"

"हम यह भी चाहते हैं टॉमस, कि हम अपने मालिक को ज़्यादा से ज़्यादा खुशोखुर्रम देखें । और इसके लिए हम चाहते हैं कि तुम एक दोस्त की हैसियत से हमें उनकी मर्ज़ी और मिज़ाज़ के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा जानकारी दो । इस मामले में तुम्हारा ही भरोसा करना मुनासिब मालूम होता है । क्या तुम्हारे लिए यह मुमकिन होगा टॉमस ?"

"हुज़ूर इस गुलाम की जांनिसारी पर पूरा भरोसा रख सकती हैं ।"

"गुलाम नहीं, दोस्त ।"

"यह आपकी ज़र्रानवाज़ी है बेगम साहबा···"

"हमने सुना है कि आप लोगों के वतन में औरतें मर्दों से पर्दा नहीं करतीं ।"

"आपने सही सुना है बेगम साहबा !"

"तब हम यह हरगिज़ पसन्द न करेंगे कि हमारे बीच किसी तरह का पर्दा हायल हो । हम दोनों अपने मालिक की बहबूदी चाहते हैं फिर हमारे बीच में यह पर्दा क्यों रहे !"

पर्दा हट गया । टॉमस ने एक बार नज़र उठाकर दिलाराम को झलकभर देखा और बाअदब कोर्निश की । दिलाराम को भी यह लगा कि उसके रूबरू खड़ा हुआ यह जवान ईमानदार है, इस पर भरोसा किया जा सकता है ।

नौकरों-चाकरों को भी यह मालूम हो गया कि उसके मालिक के हरम में यह औरत खिलौना बनकर नहीं आई, बल्कि शासन करने आई है ।

तीन बरस बाद ।

जनरल वाल्टर रेनहार्ड डीग के किले में, अपने कक्ष के सामनेवाले आंगन में बांदियों को शतरंज की मोहरें बनाकर दोहरी चालों से अपना मन बहला रहे थे । उनकी एक मुहलगी लौंडी मुश्तरी उनके कदमों के पास बैठी हुई उनकी पिंडलियां सहला रही थी । तभी सूचना मिली कि छोटी बेगम साहबा तशरीफ ला रही हैं । जनरल समरू साहब ने यह सुनते ही पैर झटककर मुश्तरी का हाथ गिरा दिया । मालिक का रुख पहचानने वाली लौंडी बाअदब उठकर उनकी कुर्सी के पीछे इस तरह से जा खड़ी हुई कि मानो वह शुरू ही से वहीं खड़ी थी ।

दाहिनी ओर के बरामदे से भूतपूर्व मुन्नी, भूतपूर्व दिलाराम और वर्तमान मैडम जुआना रेनहार्ड अपनी दो बांदियों के साथ तेज़ कदम चलकर आती हुई दिखलाई दी । मुश्तरी फौरन ही अन्दर से कुर्सी लाने के वास्ते लपकी । जनरल की सख्त आंखों में जुआना को देखते ही तरावट आ गई । सौन्दर्य की कोमलता और कठोरता, नारी का समर्पण और नर का आरोपण यदि जनरल को एक साथ कहीं दिखलाई देता है तो जुआना ही में । वह सामने चली आ रही है । जनरल को लगता है, जैसे आंगन में चमकने वाले सूरज की रोशनी इस हुस्न के आफताब के आगे मन्द हो गई हो । पिछले चार वर्षों में जुआना ने जनरल के अन्दर वाले खूंख्वार भेड़िये को कम-अज़-कम अपने वास्ते पालतू कुत्ता बना लिया ।

बाअदब कोर्निश करके जुआना कुर्सी पर बैठ गई । जनरल का बायां हाथ बड़ी कोमलता के साथ जुआना की दाईं बांह पर पड़ा । प्यार से बोले, "किस खयाल की मजबूरी इस वक्त मेरी नन्हीं जुआना को यहां खींच लाई ?"

"वाल्टर, क्या तुम अपना यह वक्त मुझे, सिर्फ मुझे दे सकते हो ?"

"मैंने अपना जानो-माल जब तुम्हारे हवाले कर दिया तब वक्त की क्या बिसात है !"

"क्या यह अच्छा न होगा कि अन्दर चलें। यह आफतब अपनी अनगिनती शुआओं से यहां हमारी बातों का भेद ले सकता है।"

जनरल मुस्कराए, "आसमान के इस अकेले तपने वाले को भी एक जुआना दिलवा दो तो फिर उसे हमारा भेद लेने की फुरसत ही न मिलेगी।"

"मुझे सिर्फ उसी आफताब की फिक्र है जो मेरे दिल की दुनिया में रोशन है। आओ चलें।"

कमरे के दरवाज़े का मोटा पर्दा गिरवा दिया गया। मुश्तरी के लिए बेगम साहबा का यह हुक्म हुआ कि दरवाज़े पर निगरानी रखे। जुआना के इन आदेशों से जनरल चौकन्ने हो गए। आवाज़ में सख्ती भी आ गई, बोले "समझ गया, तुम इस वक्त मुझे टॉमस का मन्तर पढ़ाने आई हो।"

"नहीं, मैं अपने उस्ताद से पढ़ा हुआ मन्तर ही खुद अपने उस्ताद को याद दिलाने आई हूं। मेरी इस बेअदबी को तुम्हें माफ करना होगा।"

"नादान हो जुआना, सियासत की शतरंज अभी तुम्हारी समझ में न आ सकेगी। मैं टॉमस से सख्त नाराज हूं कि उसने अपने सुझाव के लिए मुझसे इन्कार पाकर अब तुम्हें उकसाया है।"

अल्हड़ लड़की की तरह मानो बेसब्री से आगे बढ़कर जुआना अपने पति के सीने से लगकर खड़ी हो गई। उसके दोनों हाथों को अपनी बांहों की गिरफ्त में लेकर जुआना ने कहा, "तुम यह क्यों समझते हो वाल्टर, कि टॉमस मुझे यह भेज सकता है, यह क्यों न समझा कि मैंने उसे तुम्हारी खिदमत में वह सुझाव पेश करने भेजा होगा।"

"टॉमस को तुमने हमारे पास भेजा था ?"

"हां। इधर लगातार तीन-चार दिनों से मैं बराबर इस मामले पर गौर करती रही। सीधे तुमसे कहने की हिम्मत न होती थी। आज सुबह मैंने टॉमस को अपना सुझाव पेश किया। पहले सीधे तुमसे कहने की हिम्मत न होती थी। जब टॉमस कायल हो गया, तब मैंने ही उसे तुम्हारी खिदमत में भेजा। लेकिन जब उसने आकर मुझे बतलाया कि तुम सुनकर झुंझला उठे थे तो एक बार फिर मैंने गहराई से ध्यान दिया···"

"तुम चाहती हो कि शाहआलम का साथ देकर मैं खुद आपने आपको अंग्रेज़ों के हाथ में अपनी बोटियां नुचवाने के लिए सौंप दूं ?" समरू के स्वर में सख्ती और चिड़चिड़ाहट भर उठी थी।

जुआना ने पहले-जैसे ठंडेपन के साथ ही हंसकर जवाब दिया, "मेरे उस्ताद, मेरे आका और मेरे जिस्मो-दिलो-दिमाग के शाहंशाह, जो इतने बहादुर हैं कि उन्हें कभी खोफे-खुदा तक न सता सका—मगर अपने ही मन की न जाने किस परछाईं से डरकर खुद अपनी ही नसीहतों को भूल रहे हैं। देहली का बादशाह सिर्फ इस वास्ते अंग्रेज़ों से सुलह किए हुए है कि उनको ज्यादा ताकतवर और चालाक समझता है। लेकिन इसी वजह से वह उनसे नफरत भी करता है। वज़ीर नजफखां कौम इंगलिशिया का दोस्त हरगिज़-हरगिज़ नहीं है। मैं जब बशीरखां के वहां रहती थी तब से इस बात को जानती हूं।"

"मगर हमारे गोयन्दों को बशीरखां से ही यह खबर मिली है कि शाहआलम ने नजफखां की सलाह से ही अंग्रेज़ों से सुलह की थी और उसपर अंग्रेज़ों का अब भी बड़ा असर है।"

"तुमसे यह मेरी दस्तबस्ता गुज़ारिश है जानेमन, कि अपने लिए बशीरखां को काबिले ऐतबार समझने की भूल हरगिज़ मत करो, वह मुझसे शादी करना चाहता था, मगर दौलत के लालच में आकर उसने तुम्हारे हाथों बेच दिया। मेरा दिल तो पानी था वाल्टर, उसमें जो भी रंग पड़ता, पानी वैसा ही हो जाता। मगर वह जो कि अपने-आपको एक साथ और एक वक्त में दो जुदा-जुदा लालचों से बांधकर चलता है—धोखेबाज़ तो होता ही है, साथ ही साथ बड़ा जाहिल भी होता है। बशीरखां धोखेबाज़ भी है और जाहिल भी। जानते हो टॉमस से तुम्हारी भेजी अशर्फियां पा लेने के बाद तुम्हारे यहां भेजने से पहले उसने मेरी अस्मत का फूल नोचना चाहा था।"

गहरी आंखों से समरू ने जुआना को देखा, देखते रहे, फिर कहा—'तुमने आज तक मुझसे यह कहा क्यों नहीं था?"

"बगैर ज़रूरत की बातें करना हमारी आदत नहीं, तुम जानते हो। मैं टॉमस की मार्फत जुल्फिकारुद्दौला के आदमियों से इस भेद की थाह पा चुकी हूं। महज़ अंग्रेज़ों के डर से मुगल शाहंशाह के दुश्मनों को भडकाना मुनासिब बात नहीं है वाल्टर! मैं समझती हूं कि दिल्ली के तख्त को मज़बूत करना ही हमारे लिए ज़्यादा फायदेमन्द होगा। खुदा करे कि मैं अपने शौहर को एक दिन दिल्ली के तख्तोताज का मालिक बना हुआ देखूं। और यह तभी मुमकिन हो सकता है जबकि मेरे मालिक फिलहाल शाहे ज़माना का साथ दें और उसे इन मक्कार अंग्रेज़ों के चंगुल से बाहर निकालें।"

जनरल समरू चुपचाप सुनते रहे। बात खत्म होने के बाद भी थोड़ी देर आलम खामोशी में डूबे रहे, फिर गहरी आवाज़ में कहा, "सियासती शतरंज में मुझे नई चाल सिखाने वाली शख्सियत तुम्हारी ही है जुआना। मैंने अब तक अपने लिए बहुत कुछ चाहा और सोचा था, मगर देहली के तख्त का खयाल कभी मेरे मन में न आया था। हैरत है कि अंग्रेज़ यही चाहते हुए सियासत में हर कदम आगे बढ़ रहे हैं और हमने कभी गौर तक नहीं किया।"

"जो हमने सोचा, वह भी तो आखिर तुम्हारा ही खयाल है न। वादा करो जानेमन कि तुम मुझे मलिका-ए-हिन्द बनाओगे—वादा करो।"

जुआना के एक और नये जादू में बंधे हुए समरू ने उसे अपनी बांहों में कस लिया और गहरे भाव से उसके होंठों का चुम्बन लेकर उसकी आंखों में आंखें डालकर कहा, "तुम्हारी हर ख्वाहिश पूरी करूंगा प्यारी जुआना।"

रात के डेढ़ पहर बीत चुके। किले में सन्नाटा छाया हुआ है। केवल बुर्जियों के चौकीदार बीच-बीच में हांक-गुहार मचाकर अपने चौमुखी जागरण का परिचय दे देते हैं। बेगम जुआना समरू के शयनकक्ष में मद्धिम उजाला हो रहा है। महबूबा कमरे के बाईं ओर सहन में खामोश खड़ी किसी का इन्तज़ार कर रही है। सामने बन्द दरवाज़े की झिर्रियों में रोशनी कौंधी। महबूबा के जिस्म में मानो जान आ गई, दबे पांवों दरवाज़े की ओर लपकी। दरवाज़े की झिर्रियों में मोमबत्ती की

चमक फिर हिलती-डुलती-सी नज़र आई। महबूबा ने दरवाज़े से मुंह सटाकर धीमे से पूछा, "कौन ?"

दरवाज़े के पीछे से वैसी ही धीमी आवाज़ आई, "सब ठीक है न महबूबा ?"

"हां। वे आ गए ?"

"हां। बत्ती बुझा दूं।"

अंधेरा फिर घटाटोप छा गया। महबूबा दरवाज़े से ज़रा हटकर खड़ी हो गई। किवाड़ का एक पल्ला धीमे से खुला और काले लबादे में लिपटा हुआ एक इंसान गुलाब की महक के साथ-साथ सहन में आया। अपने कंधें पर उसके हाथ का मुलायम दबाव पड़ते ही महबूबा का जी भरोसे-भरी खुशी से भर गया, धीमे से बोली, "बड़ी बेसब्री से आपका इंतज़ार कर रही हैं।" आने वाले ने कुछ न कहा। सहन पार करके समरू बेगम जुआना के कमरे में दाखिल हो गया। महबूबा नीचे जानेवाले दरवाज़े की ओर गई और दरवाज़े के पल्ले पर धक्का देती हुई बोली, "मेरी !"

"साहब पहुंच गए महबूबा ?"

"हां। अब तू जा सकती है। बेचारा जोज़फ तेरे बगैर बेकल हो रहा होगा।"

"वे यहां हैं कहां ?"

"कहां गया ?"

"दिल्ली वालों के पड़ाव की तरफ।"

"जान पड़ता है दो-एक रोज़ के भीतर कुछ होने वाला है। बेगम साहबा किसी गहरी फिक्र में हैं।"

"उनकी फिक्र मेरे साहब इस समय दूर कर रहे होंगे।"

"चल, नटखट कहीं की। भला अपने मालिक के लिए ऐसी बातें कही जाती हैं।"

"ऐ मेरी, तेरे साहब के यहां से कल जो विलायती शराब बेगम साहबा के लिए आई थी वह मुझे भी दिला सकती है थोड़ी-सी ? तेरी कसम, उसके बिना आज रात मुझे नींद न आएगी।"

"जवानी से बढ़कर उम्दा शराब नहीं होती। और तू उसीको बिसारे हुए है। कारलुस न जाने कितनी बार मुझसे खुशामद कर चुका है तेरे लिए। मान क्यों नहीं जाती ?"

एक ठंडी सांस भरकर महबूबा बोली, "मैं किसी ईसाई से शादी न करूंगी।"

मेरी बुरा मान गई, कहा, "खुदा जैसा ईसाईयों का वैसा मुसलमानों का। इंसान के प्यार में खुदा का जलवा ही होता है बावली ! जोज़फ से शादी करने से पहले मुझे भी यही झिझक थी।"

"उससे भी बड़ी अड़चन यह है कि कारलुस बड़ी बेगम साहबा के यहां काम करता है। और यह भी सुनने में आता है कि वह उनका··"

"रईसों के यहां काम करनेवाले इन बातों की फिक्र नहीं किया करते महबूबा। मान ले कल को जनरल साहब तुझे···"

"मैं उस बूढ़े भेड़िये की आंखों में मिरचें झोंककर भाग जाऊंगी और कुंए में फांद पड़ूंगी। कारलुस से मुझे यही शिकायत है। उस बूढ़ी बंदरिया का साथ निभाने के बाद वह आखिर किस मुंह से मेरी खुशामद करता है !"

"महबूबा, तू बड़ी जाहिल है। यह क्यों नहीं समझती कि उस बूढ़े ढांचे की

जकड़न ही से मजबूर होकर कारलुस तेरी खुशामद करता है। अपनी मालकिन को ही देख, मेरे मालिक को आखिर वह क्यों घेरती है ?"

"तुम पूछते हो टॉमस, कि मैं तुम्हें दिन-रात इस तरह क्यों घेरती रहती हूं !"

कुर्सी पर उदास और गम्भीर बैठे हुए टॉमस ने रूखे स्वर में कहा, "सियासत के खिलाड़ी ज़रूरत पड़ने पर एक-दूसरे को क्यों और किस तरह घेरते हैं, यह मैं खूब जानता हूं जुआना। मेरा पूछना, अपने और तुम्हारे बारे में सियासत के अलावा भी और बहुत कुछ सोचना-समझना दरअसल गलत है।"

"नहीं, नहीं, नहीं प्यारे टॉमस !" उसकी कुर्सी के पीछे जाकर खड़ी होती हुई जुआना ने उसके दोनों गालों को अपने हाथों से बांधकर, अपने गाल को उसके सिर से टिकाकर आग्रह, विनय और प्यार-भरे स्वर में कहा, "इस तरह की बातें कहकर तुम मेरे ईमान और एहसास का खून-ए-नाहक न करो। औरत की मजबूरी उन आंखों की तरह से होती है जो दिन उठ आने की वजह से दुखा करती हैं और जिन्हें रात में रतौंधी सताती है। मैं या तो प्यासी मर जाऊंगी वरना अपने सामने रखे हुए आबे-कौसर के जाम को तभी अपने होंठों से लगाऊंगी जबकि मेरा नसीबा मुझपर खुश होकर उसे उठाने की इजाज़त देगा। मैं एक गरीब की सताई हुई बेटी हूं। मुझे अपने मनचाहे मर्द को खिलौना बनाना न तो आता है और न सुहाता ही है।"

टॉमस की बेरुखी अपना कसाव हल्का करने के बावजूद अभी ढीली नहीं पड़ी थी। जुआना के दोनों हाथों को हटाते हुए कुर्सी से उठकर बोला, "मेरे लिए यही बेहतर होगा कि समरू की नौकरी छोड़कर चला जाऊं।"

"बेहतर है, तुम्हारी यहां से, और मेरी दुनिया से बिदाई एक साथ होगी। फिर यह सियासत का खेल किसके लिए खेलूंगी, किसके साथ खेलूंगी ! तुम जा सकते हो टॉमस, अब मुझे तुमसे कुछ भी नहीं कहना है।" जुआना अपने सोनेवाले कमरे में जाने के लिए मुड़ी। टॉमस तेज़ी से उसकी ओर बढ़ा और उसके सामने खड़े होकर राह रोकते हुए बोला, "मुझे माफ कर दो जुआना। मेरी बेकरारी ने तुम्हें नाहक सदमा पहुंचाया। खुदा गवाह है, तुम्हारी आंखों में एक साल पहले अपने लिए चाहत की बिजलियां जब पहली बार कौंधते देखी थीं, तब से आज तक घड़ी-भर के शौक के वास्ते भी किसी और की तरफ मेरा खयाल एक डग भी कभी आगे नहीं बढ़ा। इस जिस्म की हर सांस अब उस महबूबा के लिए ही आती, जाती और सर्फ होती है जो जागने पर सुबह की पहली अंगड़ाई की तरह मेरी ज़िन्दगी में आई थी। उम्मीद के पांवों की आहट बनकर तुम हरदम मेरे दिल के कोने-कोने घूमती ही रहती हो। शिकायत यही है कि तुम सिर्फ आवाज़ हो जो सुनी तो जा सकती है, मगर देखी नहीं जा सकती है, और मैं अब बेसब्र हो उठा हूं। मेरी जवानी अब उस सुकून को पाना चाहती है जो…"

"जो मर्दानगी दिखाने पर ही हासिल है। उसी सच्चे सुकून को पाने के लिए ही मैं इस बेसुकूनी और बेअख्तियारी से जमकर जूझ रही हूं। तुम समझते हो कि जो तुम्हारे दिल का हाल है वह सिर्फ तुम्हारा ही है ? वह सुकून, जिसे हम और तुम मिलकर पाना चाहते हैं टॉमस, तब तक नहीं मिल सकता है जब तक कि यह समरू ज़िन्दा है और उसका जीना तब तक हमारे लिए अज़हद ज़रूरी है जब तक उसके सियासत की बागडोर हमारे हाथ में नहीं आ जाती और उसे हमारे हाथ में आ

जाने के लिए अब यह ज़रूरी है कि हम तख्ते-हिन्दोस्तान की हिफाज़त में लगें। मुग़लों के लिए वह अब महज़ हारे जुआरी का आखिरी दांव है। हार-जीत का फ़ैसला जब जब भी होगा, तब हमारे और अंग्रेज़ों के बीच ही होगा। लालकिले की शाहंशाहत न मराठे ही ले सकते हैं और न रुहेले, जाट, राजपूत या अवध के नवाब वज़ीर ही। मैं तुम्हें हिन्दुस्तान का शाहंशाह बनाकर एक दिन अपने इश्क का सबूत दूंगी। तुम भी वादा करो जानेमन, मुझे मलिका-ए-हिन्द बना दोगे। वादा करो।"

भावविभोर होकर एक जान बैठते हुए जुआना के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर टॉमस ने कहा, "मैं वादा करता हूं जुआना, कि तुम जो चाहोगी वह दूंगा। तुम्हारी चाहत के लिए मैं हर वक्त हर कुर्बानी देने के लिए, जब तक जीऊंगा मुस्तैद रहूंगा।"

जुआना के लिए अंधेरे के कण-कण में उजाला भर गया था। अपने प्रति पुरुष का ऐसा समर्पण पाकर उसका नारी-हृदय पिघल-पिघल उठने को हुआ, मगर ऐन मौके पर स्वानुशासन से कस उठा। मुन्नी —दिलाराम—जुआना, अब दूसरों की बेकसी से अपना श्रृंगार करेगी, उसके लिए अपनी बेकसी की झलक-पलक भी सब किसी को दिखलाना मुहाल है। औरत जब दूसरे की बन जाती है तो अपनी नहीं रह जाती। इसलिए जुआना के अन्दर वाली औरत अब दूसरों को अपना बनाएगी और अपनी ही बनी रहेगी, सिर्फ अपनी, सिर्फ अपनी।

बरस दिन और बीते। टॉमस और जुआना कभी-कभी यों ही अपने दिल हल्के करने के लिए मिलते तो रहे, पर उनके मिलन की प्यास दिल्ली के तख्त और समरू के मरने की आस में अब तक मृगतृष्णा ही बनी हुई थी। हां, इतने दिनों में जुआना बेगम ने जागीर और सेना का प्रबन्ध इस तरह से संभाल लिया था कि समरू साहब को उस ओर ध्यान तक देने की ज़रूरत न रही। वह धीरे-धीरे जुआना के आश्रित हो गए। राजनीतिक सूझबूझ के कारण एक जगह मन में ईर्ष्या करते हुए भी वे जुआना को चाहने लगे थे।

तभी एक दिन।

जनरल वाल्टर रेडहार्ड साहब क्रोध में बार-बार दांत पीसते हुए कमरे में बेचैनी से चहलकदमी कर रहे थे। बीच-बीच में आंखें यों चमक उठती थीं जैसे बरसाती आकाश में बिजली चमकती है। मेहराब के खम्भे के पीछे परदे की आड़ में खड़ी हुई मुश्तरी खामोशी से झांककर अपने स्वामी को सीधी दृष्टि से ताक रही थी। जनरल की बावली चहलकदमी काफी देर तक होती रही, मानो पिंजरे में अचानक बन्द हो जाने वाले शेर को अपनी नई स्थिति भयंकर रूप से तड़पा रही हो। मुश्तरी जानती है कि इस समय मालिक के पास कोई नहीं जा सकता। थोड़ी देर पहले गोयन्दा मुराद अली आया था। उसने जनरल साहब को कोई ऐसी खबर दी जिससे वे तड़प उठे थे। फौरन ही छोटी बेगम साहबा को बुला लाने का हुक्म दिया। खुद मुश्तरी ही इस काम के लिए गई थी। लेकिन जुआना बेगम साहबा उस वक्त गुस्ल फरमा रही थीं। उन्हें जनरल साहबा का संदेशा पहुंचा दिया गया है। जवाब सुनकर साहब ने दांत पीस लिए थे। और छोटी बेगम साहबा के लिए 'ज़हरीली नागिन', 'खूबसूरत बला' और इसी तरह का कोई घृणा भरा शब्द अपनी विलायती ज़बान में भी कहा था जिसे मुश्तरी समझ न पाई। मालिक का

यह खूंखार रूप देखकर ही मुश्तरी पर्दे के पीछे आ गई थी; बाकी खिदमतगार तो मुराद अली के आने के समय से ही कमरे के बाहर खड़े थे। काफी देर तक अपने को थका चुकने के बाद जनरल समरू ने अपने आपको मसनद पर डाल दिया। एक बेबस कराह उनके मुंह से निकल गई।

कराह सुनते ही मुश्तरी बेसाख्ता बाहर निकल आई, जैसे मां अपने बच्चे का दुःख देखकर आपे से बाहर हो गई हो। आंखें मींचे, टांगें सिकोड़े, करवट लेकर पड़े हुए समरू को देखकर मुश्तरी की ममता मानो बांध तोड़कर बाहर झरने-सी फूट पड़ी। अब तक जो उसकी नज़रों में अपने समय का सिकन्दरे-आज़म रहा, वही इस वक्त कागज़ी रावण-सा ढह पड़ा था। उससे यह देखा न गया। वह जनरल से चिपट गई और उसके ठंडे गाल को बार-बार अपने होंठों की गर्मी देकर बूढ़े शरीर को अपनी बांहों में कसने लगी। झलझलाई हुई आंखों से समरू को देखते हुए उसने कहा—"आका हुज़ूर, आपकी यह तकलीफ अब मेरी बोटियां नोच रही है। कनीज़ ने आफताब कभी यों गम की झील में गिरकर बुझते हुए नहीं देखा। मेरा कलेजा फटा जा रहा है सरकार, खुदा के वास्ते अपने दिल को यों तकलीफ न पहुंचाएं।"

समरू ने आंखें खोलीं। हुकूमत, घृणा, चालाकी, अटूट आत्मविश्वास से चमकनेवाली उन गहरी नीली आंखों में इस वक्त मसान की मनहूसियत लोट रही थी। मुश्तरी ने उनमें ऐसा बुझा-बुझापन तो कभी देखा ही न था। भय से वह कांप उठी, ज़ोर से लिपट गई, फूट-फूटकर रो पड़ी।

मुश्तरी की वेदना समरू की राहत बनी। खुलते हुए सांवले रंग की बड़ी-बड़ी आंखों वाली पन्द्रह-सोलह वर्ष की, फूलछड़ी-सी नाजुक देह वाली मुश्तरी इस समय समरू को खुद अपने दिल ही-सी प्यारी लगी। अपना दर्द पराया बनकर सामने आया तो उनके दिल में प्यार उमड़ पड़ा। उन्होंने खुलकर उसे अपनी बांहों में समेट लिया और उसकी नम आंखों को चूमने लगे।

सहानुभूति पाकर थोड़ी देर में समरू का मन स्वस्थ हो चला। शराब का घोड़ा भी उन्हें फिर से खयालों के मैदान में दौड़ाकर ले आया। कहने लगे, "यह औरत अब तो मेरे लिए एक पहेली बन गई है। एक बार शक हुआ था कि जुआना मुझे धोखा देकर टॉमस से किसी किस्म की सांठ-गांठ कर रही है। लेकिन मेरा हर गोयन्दा हर बार जांच-पड़ताल के बाद मुझे यही इतमीनान दिला जाता है कि जुआना और टॉमस की मुलाकातों में भी सिर्फ मेरा ही ज़िक्रे-खैर होता है।·· कुछ समझ में नहीं आता। आखिर यह औरत चाहती क्या है और इसकी वजह से टॉमस ने मेरी हुक्म-उदूली क्यों की।"

"हुज़ूर इतमीनान रखें, टॉमस साहब की जांनिसारी पर शक नहीं किया जा सकता। उनकी खिदमतगार मेरी सहेली है। वह बतलाती थी कि टॉमस साहब हुज़ूर छोटी बेगम साहबा के हुक्मों की तामील महज़ इसीलिए करते हैं कि उन्हें वे आपसे जुदा नहीं मानते।"

"मेरा दिल इन्हीं सफाइयों से घबराता है मुश्तरी! सियासत के खिलाड़ी के हरम में जो औरत चालाक हो और फिर भी पाकीज़ा हो, मेरे लिए वह सबसे बड़ी पहेली बन गई है। जुआना आखिर किसके लिए मेरी चालों पर यह चालें चल रही है? उसने क्या समझकर टॉमस को यह हुक्म दिया कि वह मराठों को धोखा देकर नजफखां का साथ दे? मेरी हर नक्शेबन्दी मराठों की इस हार से कच्ची

पड़ गई।" कहते-कहते एकाएक उनकी आंखों में एक बार क्रोध की ज्वाला भड़की, हुक्म दिया कि "जुआना चाहे जिस हालत में हो इसी वक्त हाज़िर हो।"

खुले बालों गाउन में लिपटी हुई जुआना मुस्कराती हुई कमरे में दाखिल हुई। उसकी यह अदा देखकर समरू का गुस्सा यों थमा जैसे आग की तेज़ लपट पर पानी की फुहार पड़ी हो। नारी के सौन्दर्य से अपने आपको यों बुझते देखकर समरू का क्रोध घटने लगा। उमड़-घुमड़कर दो-तीन बार उनकी नज़रें उठीं और हर बार उनका क्रोध रूपी भयानक पशु सौन्दर्य की देवी से सामना होते ही दुम हिलाने लगा।

जुआना की मुस्कराहट, आंखों में प्रेम का समन्दर, अपने पति की हर नज़र के साथ उमड़कर और भी जादू-भरा, सुहाना हो गया। जुआना मुस्कराकर बोली, "हुज़ूर के जरनैली हुकम की फौरन तामिल करने के लिए मुझे पर्देदार डोले में बैठकर यूं आना पड़ा।" शिकायती आंखें तरेरकर पति के सामने ही कुर्सी पर बैठते हुए अपने बालों को लापरवाही से पीछे झटकाकर जुआना सहसा गम्भीर स्वर में बोली, "वाल्टर, तुम्हारी नाराज़गी बेकार है। मैंने जो कुछ किया है उसका नतीजा बहुत अच्छा होगा।"

"खाक अच्छा होगा। तुम्हें यह गलतफहमी हो गई है कि तुम सियासती मामलों में अब मुझसे भी ज़्यादा होशियार हो गई हो।"

"हरगिज़ नहीं, जुआना ने जो कुछ सीखा है तुमसे सीखा है। वह जो कुछ भी कहती है, तुम्हारे लिए ही कहती है···आंखों में चढ़ती हुई इस गुस्से की लहर को अपने अन्दर वापस लौटा लो वाल्टर! शक और गुस्से की गुंजाइश नहीं है। खुदा चाहेगा तो आज या कल ही तुम्हें मेरी वफादारी का सच्चा सबूत भी मिल जाएगा।"

समरू चौंककर परीक्षा-भरी दृष्टि से जुआना को देखने लगा। जुआना खिलखिलाकर हंस पड़ी और कहा, "सरधना के नवाब वाल्टर रेनहार्ड साहब के गुस्से की तलवार एक नन्ही-सी चींटी की जान लेने के लिए अगर यों बेसाख्ता म्यान से निकल पड़ेगी तो ज़माना उन्हें क्या कहेगा, बताओ तो! तुम्हारी यह कनीज़ तुम्हारी नज़र के महज़ एक इशारे पर बग़ैर सोचे-समझे इस खिड़की से जमुना में कूद सकती है। तुम जब और जिस तरह चाहो मुझे आजमा सकते हो।"

लेकिन नवाब समरू की आंखें उठ-उठकर झपक-झपक गईं। उनसे कुछ जवाब देते न बना।

"मुश्तरी!" मुश्तरी ने अपनी मालकिन से आंखें मिलाईं और शराब की सुराही और प्यालियां लाकर सजा दीं। फल, मेवे और गज़क की प्लेटें भी तरतीब से लगा दीं। जुआना ने उठकर सुराही हाथ में लेते हुए उससे कहा, "तख्लिया। और देखो दीवान से कहो कि हुज़ूर नवाब जनरल साहब के सूबेदार होने की खुशी में हमारी तरफ से आज रात जश्न मनाया जाएगा। दिन ढलने तक शाही फरमान लेकर कोई आएगा। उसकी खूब खातिर की जाए। कोई शिकायत न हो और देख, पहरे पर ताकीद कर दे कि कल इसी वक्त तक यहां कोई भी न आने पाए—जफर मियां नहीं, कोई नहीं, तू भी नहीं।"

मुश्तरी ने बाहर से तो सादर अपना सिर नवाया, पर मन ही मन उसकी ईर्ष्या का सर तन गया। जिस मालिक को पिछले कई महीनों से हर पल देखा करती है, उसे एक बेवफा और चालाक औरत के हुक्म से वह पूरे चौबीस घंटों

तक न देख पाएगी। मुश्तरी का खयाल था कि एक वही है जो अपने मालिक को जी-जान से प्यार करती है बाकी सब झूठे हैं। यह जुआना बेगम तो शर्तिया झूठी और मक्कार है। भले ही इसका मक्रोफरेब अब तक किसी की निगाह में न आया हो, मगर यह दरअसल ज़हरीली नागिन ही है···हसीन मौत, शौहर के बजाय हुकूमत को प्यार करनेवाली खूबसूरत बला।

जुआना प्याले में शराब ढाल रही है और उनका तन से लिपटा हुआ लबादा भी ढलक रहा था। लामिसाल हुस्न की शराब समरू की बूढ़ी आंखों में ढलकर उन्हें रंगीन बना रही थी। जुआना ने वाल्टर के होंठ चूमे, फिर अपने हाथों से शराब पिलाई, खुद भी उसी प्याले से पी, फिर कहा, "मराठे हमें आगरे की सूबेदारी नहीं दे सकते थे। इतनी बड़ी जागीर भी ज़माना-ए-हाल में किसी को नहीं मिली।"

"मैं सूबेदारी नहीं, बादशाहत चाहता हूं। जब तक यह भूख नहीं जागी थी तब तक मेरे सोचने का तरीका कुछ और ही था लेकिन अब···"

"अब उस भूख की बेकरारी में सियासत के उस्तादुल-उस्ताद चूकने लगे हैं।"

सरधना के नवाब की नीली आंखों में शोले भड़क उठे। जुआना ने मानो उधर देखा ही नहीं, नज़रें और बायां हाथ पीछे घुमाकर बड़ी अदा से सोने की जड़ाऊ सुराही उठाई, शोख जोबन शराब के जाम-सा उठा। हुस्न के ये चढ़े तेवर देखते ही नीली आंखों की आग का रंग बदल गया। जुआना ने अब भी समरू से नज़रें न मिलाईं। देह से देह छुलाती हुई पति के बाएं बाज़ू वाली मेज़ की ओर बढी, एक नये प्याले में शराब भरकर रख दी। पहले के अधभरे प्याले को उठाया और एक घूंट पीकर बोली, "एक ओर सिंधिया के हाथ मज़बूत करोगे और दूसरी ओर बादशाहत के सपने भी देखोगे? रूठकर मुंह फुलाना और साथ ही खिलखिला कर हंसने की चाह भी करना। क्या खूब? कमीनी नाचने वालियों की अक्ल पर भरोसा रखकर चलनेवाले···"

"मैंने अपनी ज़रखरीद लौंडी-बांदियों की अक्ल के भरोसे पर कुछ यह हैसियत नहीं पाई—चाहे वह पांच सौ कीमत वाली हो या दस हज़ार वाली। वाल्टर रेनहार्ड ने अंग्रेज़ों, फिरंगियों और देशी नवाबों को जिस अक्ल से अब तक नचाया है, उसी के बूते पर वह सिंधिया की आड़ में मुगल दरबार के सरदारों को भी नेस्तनाबूद कर देगा।" समरू ने तड़पकर जवाब दिया और प्याला अपने हाथ में उठाकर एक ही सांस में खाली कर दिया।

जुआना ने इस बार पति से आंखें मिलाकर ठंडे स्वर में कहा, "खजूर से गिरकर बबूल पर अटकने की यह नादानी मेरे शौहर के आला दिमाग की हरगिज़ नहीं हो सकती, यह मैं दावे से कह सकती हूं। तुम्हें ज़रूर कोई गलत सलाह दे रहा है।"

"मुझे किसी ने यह सलाह नहीं दी।"

"तब तुम शर्तिया ही अंग्रेज़ों के हौवे से डरकर नाहक अपना होश गंवा बैठे हो। तुम्हारा सहारा लेकर शाहआलम को गद्दी से उतारने के बाद सिंधिया सबसे पहले तुम्हीं को नुकसान पहुंचाएगा, तब अंग्रेज़ उसके मददगार होंगे।"

समरू चुप; बहुत गम्भीर। जुआना फिर बोली, "सिंधिया बेहद चालाक है। उसने दिल्ली में जिस तरह से अपने पांव जमा रखे थे उसे देखकर भी क्या तुम्हें कभी यह खयाल न आया कि इसका नतीजा हमारे लिए अच्छा न होगा? महज़

अंग्रेज़ों के डर से जान-बूझकर धोखा खाना कहां तक मुनासिब होता ?"

"उसके बगैर देहली को इस वक्त कोई संभाल नहीं सकता था। या राजा परतापसिंह, अफरसियाबखां या इनमें से कोई भी···"

"देहली के तख्त को मज़बूत नहीं बना सकता, यह हकीकत है। मगर यही हमारे हक में है। हमारा साथ पा जाने की वजह से ही ये लोग अंग्रेज़ों से हाथ मिलाने के लिए नहीं बढ़े।"

"मगर शाहआलम ?"

"उन्हें मैंने तुम्हारी तरफ से यह भरोसा दिला दिया है कि इन दोनों के झगड़े में तुम उनके साथ हो। आगरे के मराठा सूबेदार को हटाकर उस किले का कब्जा तुम्हें दिया जाना चाहिए। न तो उसे सिंधिया, देशमुख और निजामुद्दीन के कब्जे में रखा जाय और न इन लोगों को ही उस पर कब्जा करने का मौका दिया जाए।"

"फिर ? क्या जवाब दिया उसने ?"

"डूबते हुए को तिनके का सहारा ही बहुत लगता है, यहां तो उसे नाव मिल रही है। बादशाह बेहद खुश है। तुम्हें कल आगरा के लिए कूच कर देना चाहिए।"

"हम समझते हैं कि ज़फर को फिलहाल वहां भेजना चाहिए। दो-चार दिनों तक दोनों तरफ के रंग-ढंग देखकर ही हमारा वहां जाना मुनासिब होगा।"

"जफर मियां नासमझी कर जाते हैं, खास तौर से मेरा कहना तो वह मुतलक नहीं मानते। ऐसे नाज़ुक मौके पर उनकी बहस हमारे हक में किसी वक्त खतरनाक भी साबित हो सकती है।"

"नवाबजादा ज़फरयाबखां की बदमिजाजी के लिए हम तुम्हें ही जिम्मेदार समझते हैं। हमने इसे टॉमस की निगरानी में···"

"वह टॉमस का कहना नहीं मानते, मेरा कहना नहीं मानते। उनकी आदतें बेहद बिगड़ चुकी हैं।"

"तुमने बिगाड़ी हैं, हम बार-बार यह कहेंगे। अगर मेरा बेटा कल हिन्दोस्तान की बादशाहत संभालने लायक न बन सका तो फिर हमारा यह तख्तोताज की ख्वाहिश करना ही बेकार है।"

"सच है, यह मैं भी मानती हूं, पर इस नाज़ुक मौके पर तुम्हारा खुद वहां जाना ही मुफीद होगा।"

"लड़ाई का नक्शा साफ हुए बगैर हमारा वहां जाना मुनासिब न होगा। क्या तुम यह समझती हो कि शाही फरमान देखते ही लाखाजी मुझे खुशी से आगरे का किला सौंप देगा ?"

"तब क्या यह सूबेदारी तुम कबूल न करोगे ?"

"क्यों नहीं करूंगा। लेकिन फिलहाल मैं खुद नहीं जाना चाहता। मुनासिब यही होगा कि सिंधिया को कुछ रोज़ धोखे में रखा जाए। अगर ये दिल्ली के दरबारी हार गए तो मैं सिंधिया से यह कह सकूंगा कि मेरी मर्ज़ी के खिलाफ मेरा बेटा और सिपहसालार टॉमस दुश्मनों के साथ मिल गया था। इन दोनों ने ही हमारे नाम से सूबेदारी के अख्तियार हासिल किए थे।"

जुआना बेगम गम्भीर हो गई। अपने सौतेले बेटे को वह हरगिज आगे बढ़ने देना नहीं चाहती थी। ज़फरयाबखां बेहद नालायक था। जुआना और टॉमस से तो उसे खास बुग्ज़ था। उसकी मां, बड़ी बेगम ने अपने सौतिया डाह में अपने बेटे

को सौतेली मां के साथ ही साथ अपने पिता के विरुद्ध भी खूब भड़का रखा था। नवाब समरू अगर कहीं अपने दिल से मज़बूत होते थे तो अपने बेटे के लिए ही होते थे। जुआना जानती थी कि समरू जान-बूझकर अपने बेटे को आगे बढ़ाना चाहता है ताकि उसकी आंखें मिचते ही उसकी कमाई हुई दौलत तीन-तेरह न हो जाय। वह खूब जानती थी कि उसके हुस्नो-हुनर का गुलाम होने के बावजूद समरू उसे दिल से नहीं चाहता और इसलिए वह यह भी नहीं चाहता कि जुआना और टॉमस की ताकत बढ़े। समरू सिर्फ इसी वजह से उसकी हर उम्दा चाल में एक पंख निकालकर उसे अपने काबू में रखना चाहता है। बेहद चालाक होने के बावजूद दीदा-ओ-दानिस्ता वह चूक करता चला जाता है, समरू थक गया है, बूढ़ा हो गया है। वह खुद नहीं जानता कि वह चाहता क्या है? लेकिन जुआना अपने बूढ़े शौहर को अपनी उंगलियों पर नचाना जानती है। वह गम्भीर होकर बोली, "यह सच है कि मैं ज़फर मियां की सौतेली मां हूं। यह भी सच है कि मैं साहबज़ादे से खुश नहीं। तुम भी उनसे खुश नहीं हो वाल्टर, मगर तुम इसलिए मजबूर हो कि वह तुम्हारी औलाद है। मैं भी इसीलिए मज़बूर हूं वाल्टर। हिन्दुस्तान के तख्तोताज का मालिक बन जाने के बाद हमें आगे के लिए सोचना ही होगा। मेरे कोई औलाद नहीं है। होने की उम्मीद भी अब नहीं है। इसलिए ज़फर मियां को तुम्हारी तरह से ही चाहना मेरी भी मजबूरी है वाल्टर। मुझे समझने में गलती न करो। तुम अगर फिलहाल आगरे नहीं जाना चाहते तो न सही, मुझे इज़ाज़त दो कि मैं नवाबज़ादे को लेकर खुद वहां जाऊं, शर्त सिर्फ यह होगी कि ज़फर वहां कुछ न बोलेंगे, हुक्म मेरा ही चलेगा। यह ज़रूरी है वाल्टर।"

"हमें यह मंजूर है। आज ही शाम को हमारी फौजों की परेड होनी चाहिए। हम खुद ही यह ऐलान करेंगे कि तुम उनके साथ जाओगी।"

"आज नहीं वाल्टर। आज अब सियासत की बातें न होंगी। जिस फरिश्ते की बदौलत मैंने आज का यह दिन देखा है और जिसकी बदौलत मेरे सपने आगे भी यकीनन पूरे होंगे, आज उस फरिश्ते को जी भरकर अपनी नज़रों से, बांहों से बांधकर रखूंगी। मुझे तो तुम्हारे सिवा इस ज़िन्दगी में और कुछ हासिल नहीं हुआ, आगे भी न होगा। मेरी जवानी को आज तुम्हारे हाथों का सिंगार चाहिए। अपने सोहाग के नशे से मखमूर होना चाहती हूं, सुख के समुन्दर में डूब जाना चाहती हूं।"

शातिर समरू नवाब अपने शक्की मिज़ाज की वजह से जुआना के शब्दों पर भरोसा तो नहीं करते, लेकिन उसके हुस्न के जादू से बेबस होकर उसकी तरफ खिंचे जा रहे हैं। उन्हें सिर्फ इसी बात का सन्तोष हैं कि ऐसा नायाब हुस्न इस समय शाहंशाहे हिन्द के हरम में भी मौजूद नहीं। जुआना का हुस्न इस वक्त उन्हें हिन्दोस्तान ही क्या, सारे जहान का एक छत्र सम्राट बना रहा है, और वे इसी खुशी के नशे में बेहोश होते चले जा रहे हैं। जुआना की गिरफ्त में खुद-ब-खुद बंधते चले जा रहे हैं।

•

मराठे आगरे का किला छोड़कर भाग गए। बेगम जुआना समरू की रणनीति और कूटनीति दोनों ही सफल सिद्ध हुईं। चारों ओर बेगम का ही यश गाया जा रहा था। लेकिन जुआना मन से सूनी और उदास थी। समन बुर्ज पर अकेली

खड़ी हुई वह चांदनी में चमकते हुए, ताजमहल को एकटक निहार रही थी—कितनी सुन्दरता, कितना वैभव, मगर फिर भी पत्थर—निरा पत्थर। जुआना को लगा, जैसे वह खुद ही पत्थर का ताजमहल है, जिसके अन्दर अरमान-भरा दिल मुर्दा बनाकर दफन किया गया है।

जुआना इस विचार ही से थक गई। नहीं, वह पत्थर नहीं, उसका दिल भी मुर्दा नहीं है। वह जीवित है और उसके अरमान एक दिन अवश्य पूरे होंगे। वह दिन अवश्य आएगा जबकि वह टॉमस से विवाह करेगी, उसके जीवन-सागर में आनन्द की हिलोरें उठेंगी। वह सन्तानवती, सुखी सद्‌गृहस्थ बनेगी, हज़ार तरीके से रीझ-रीझकर वह अपने पति परमेश्वर की पूजा करेगी।···लेकिन इस खयाल पर उसका विश्वास मानो भीतर से नहीं बंध पा रहा है। उसे लगा, जैसे वह आसमान में खेती कर रही है। ··मगर क्यों वह अपनी यह इच्छा पूरी क्यों नहीं कर पाएगी, अड़चन ही क्या है ? समरू एक न एक दिन मरेगा ही। वह छप्पन वर्ष का बूढ़ा है। आयु में वह उससे दुगने से भी अधिक बड़ा है। जुआना के सुख के लिए उसे मरना ही होगा। अगर अपनी मौत न मरा तो मारा जाएगा, घुला-घुलाकर मारा जाएगा। ···उसका मन अपने पति के लिए वज्र-कठोर हो उठा।

जुआना को फिर लगा कि वह पत्थर है, संगमरमर का सुन्दर ताजमहल, जिसके अन्दर एक कब्र उसके मुर्दा अरमानों की है और दूसरी टॉमस की। उसे लगा कि जैसे समरू, उसकी बड़ी बेगम और उसका आवारा-नालायक बेटा जफरखां उसके और टॉमस के असफल, मुर्दा अरमानों की हंसी उड़ा रहे हैं। वह हंसी बढ़ती जा रही है, बढ़ती जा रही है। जुआना उस हंसी से चिढ़ रही है। घबरा भी रही है। वह नहीं चाहती कि उसकी व्यक्तिगत सुन्दर कोमल भावनाओं पर किसी की घृणा की मूठ चले। वह नहीं चाहती कि उसकी यह स्वाभाविक इच्छा प्रतिफलित हुए बिना ही मर जाए। वह जीवन चाहती है, जीवन के लिए टॉमस को चाहती है। टॉमस···टॉमस···टॉमस ! खुदा के नाम की तरह दिल की हर धड़कन में टॉमस ही टॉमस गूंज रहा है। जुआना बेकरार हो उठी है।

"बेगम साहबा।"

"कौन ? ओह, तू है महबूबा। किसलिए आई ?"

"सुना है हुज़ूर, रात में यहां शाहजहां बादशाह की रूह भटकती है। और कहनेवालों की आंखों में राई-नोन और भटकटैया के कांटे, मगर सभी कहते हैं कि आप मुमताज महल जैसी लगती हैं। खुदा न करे, भटकती रूह को कुछ धोखा हो जाए···ना, ना मैं नहीं करने दूंगी, मुन्नी-अ-बेगम साहबा ! ख्वाबगाह में तशरीफ ले चलें, रात काफी हो चुकी है।"

"शाहजहां की रूह आज यहां न आएगी, पगली। बदनसीबों से रूहें भी कतराती हैं।" जुआना ने उदास होकर कहा और प्यार से महबूबा के कन्धे पर हाथ रखकर बुर्ज से नीचे उतरने लगी। चारों ओर सन्नाटा था, केवल कुछ तातारी औरतें पहरा दे रही थीं। किले में दूर पर शोर मच रहा था; सिपाही जश्न मना रहे थे। जुआना बेगम का पड़ाव जोधाबाई के महल में था, उसी ओर बढ़ते हुए महबूबा ने दबे स्वर में कहा, "आपसे कुछ अर्ज़ करना चाहती हूं बेगम साहबा! इजाज़त है ?"

"कहो।"

"आज बहुत दिनों बाद मुन्नी कहकर पुकार लूं आपको ?"

"पुकार लो।"

"और 'तुम' भी कहूं ?"

"जो मर्ज़ी में आए कहो। एक तेरे सिवा मेरा इस दुनिया में और है ही कौन ?"

"इसी भरोसे पर मैंने तुमसे पूछे बगैर एक आदमी को पनाह दी है मुन्नी, और तुमसे उसकी मुलाकात करा देने का वादा भी किया है। अगर नाराज़ होना तो भले ही मेरा सर कलम करवा लेना, पर मेरी बात की लाज रखना। बस, यही कहना चाहती थी।"

"कौन है वह ?"

"बशीरखां।"

ज़ुआना चलते-चलते ठिठक गई, फिर कठोर स्वर में पूछा, "क्यों आया है यहां ?"

"एक सौगात लेकर।"

"टॉमस को खबर है ?"

"उन्होंने ही मुझसे मिलाया था।"

"बीती ज़िन्दगी की सूरतों से मुझे नफरत है, बशीरखां से खास तौर पर। मैं उससे मुलाकात नहीं करूंगी।"

"वह एक मुकद्दस सौगात लेकर आया है मुन्नी। टॉमस साहब ने दस्त-ब्रस्ता यह गुज़ारिश कि है कि बशीर मियां को वह सौगात खुद ही तुम्हें नजर करने का मौका दिया जाए। साहब ने बशीर मियां के सियासी एहसानों की बात भी उठाई थी।"

"टॉमस पर किए गए एहसानों का बदला मैं क्यों चुकाऊं। लेकिन तूने उसे पनाह क्यों दी? तू जानती है कि मैं उसका ख्याल तक बर्दाश्त नहीं कर पाती!"

"पिछले नौ बरसों में तुमने हर रोज़ बशीर मियां को याद किया है मुन्नी! तुम्हारा यह गुस्सा और नफरत उनके लिए तुम्हारे प्यार की ही निशानी तो है।"

"प्यार मैं अब किसी से भी नही करती···न खुद से, न टॉमस से, और न उस बूढ़े भेड़िये से, जिसने दस हज़ार अशर्फियों में मुझे खरीदा था, और जिसे मैंने अब अपना पालतू कुत्ता बना रखा है।"

"इसी से ज़ाहिर हैं कि तुम बशीरखां से अब भी प्यार करती हो। इसीलिए लाख चाहने पर भी तुम टॉमस साहब को अब तक अपना दिल देकर भी न दे सकीं। मन की छब में अब भी बशीरखां है। मुझे सब मालूम हो चुका है मुन्नी! तुमने मुझे और मेरी को बहुत धोखे में रखना चाहा। मगर खुद साहब ही एक दिन अपने जी की घुटन में मेरी से यह कह गए। हमारे सामने इतनी बेकरारी दिखलाकर, हर बार मुलाकात के लिए हमें इत्ती-इत्ती खिदमतें महज़ लेने के बावजूद तुमने टॉमस साहब को अब तक मीठे वादों और ख्वाबों के अलावा और कुछ नही दिया।"

"मुझे टॉमस से प्यार है। उसके सिवा मेरे दिल को सुकून देने लायक अब कोई बहाना ही मेरे पास नहीं रहा।"

"हाय, बेचारा बहाना भर ही है। तुम्हारा इश्क अब भी बशीरखां की यादों में छिपकर पनाह लिए हुए है—इसे तुम मानो या न मानो।"

जुआना मौन रही। जोधाबाई का महल अब सामने था। पसरेदारों की भीड़ के पास आने से पहले जुआना ने महबूबा को अपनी बांह में भरकर, रुककर कहा, "मेरे मन के सच से खेलकर इस वक्त तूने अच्छा नहीं किया महबूबा! मैंने जिस मोम को समझा था कि अब पत्थर हो चुका है, वह तेरी बात की आंच से फिर पिघलकर अपनी सचाई पा गया···अपनी आकबत तो बिगाड़ ही चुकी हूं, तू मेरी दुनिया को भी तहस-नहस करने का सामान ले आई है। खैर, बशीरखां से मिलूंगी। मुलाकात करने के वक्त चार पहरेदार कमरे में मौजूद रहें। और तू उसके साथ नहीं आएगी।"

आधी घड़ी के बाद मुलाकात हुई। मिलने वाले कमरे में फिर से शमादान रौशन किए गए, पहरे का बन्दोबस्त हुआ, बेगम साहबा ने पोशाक बदली, बेशकीमती जवाहरात से अपना शृंगार किया, तब आई। कमरे में उनके तशरीफ लाने के बाद बशीरखां को बुलाया गया। नौ बरस बाद दोनों एक दूसरे के सामने थे। उसे देखते ही जुआना 'दिलाराम' होने लगी। अधीर मन आंखों में लपक-लपक हुआ, मगर उसने अपने-आपको ज़िद के साथ कस लिया, बेरुखी से बोली, "क्यों आए हो बशीरखां?"

"हुज़ूर की खिदमत में अपने आदाब पेश करने और हुज़ूर को मुबारकबाद देने के लिए हाज़िर हुआ हूं।"

"हम खुश हुए। अब आप जा सकते हो।"

"जी बहुत खूब। एक अर्ज भी करनी थी। गुलाम की यह नज़र कबूल फरमाई जाय।"

रूमाल में लिपटे हुए सोने के जड़ाऊ डिब्बे में पन्ने का बना हुआ, बालिश्त-भर लम्बा एक क्रॉस रखा था, उसपर महात्मा ईसा की सोने की मूर्ति जड़ी हुई थी। ईसा के सर, हाथों और पैरों में मानिक यों जड़े गए थे मानो लहू की बूंदें टपक रही हों। मूर्ति बहुत ही सुन्दर थी। उसे लेने के लिए जुआना बेगम कुर्सी छोड़कर खड़ी हो गई। मूर्ति को दोनों हाथों और छाती से लगाया। एक शमादान पास लाने की आज्ञा दी, फिर मूर्ति को देखने में तन्मय हो गई। उसके चेहरे की कठोरता गायब हो चुकी थी। कोमल स्वर में पूछा, "यह चीज तुम्हें कहां मिली बशीरखां?"

"हुज़ूर, आज से नौ साल पहले मेरी वालिदा के गहनों का बक्सा चोरी चला गया था··"

सुनते ही जुआना फिर कठोर हो गई, कहा, "हमने इस क्रॉस की बाबत पूछा था।"

"जी, वही तो अर्ज कर रहा हूं। मेरे उसी नुकसान को पूरा करने के लिए हजरत ईसामसीह खुद-ब-खुद मेरे पास चले आए।"

बशीरखां के बनावटी भोलेपन से दिए गए इस जवाब ने जुआना बेगम को और चिढ़ा दिया, तीखे स्वर में व्यंग्य करते हुए कहा, "खूनियों और लुटेरों के पास खुदा कभी सच्ची शक्ल में नहीं आया।"

"हुज़ूर बजा फरमाती हैं। सोलह बरस पहले हमारे गरीबखाने में खुदा का नूर एक दिन लूट के माल की शक्ल में ही आता था।"

जुआना का क्रोध पूरी तौर पर बाहर प्रकट न होने की वजह से खुद उसके मन को ही अपनी ज्वाला से जलाने लगा। तपकर बोली, "मुलाकात का मकसद पूरा

हो चुका। यह मुकद्दम तोहफा हमने कबूल किया। कल सुबह टॉमस से मिल लेना, तुम्हारा इनाम तुम्हें वहीं से मिल जाएगा।" फिर एक पहरेदार की तरफ देखकर कुर्सी से उठती हुई बोली, "महबूबा से कहो कि बशीरखां के आराम की फिक्र करे। हमें भी अब आराम की ज़रूरत है।"

बशीरखां ने झुककर सलाम किया और जाने के लिए तत्पर जुआना से बोला, "हुज़ूर से गुलाम की एक फरियाद है। मेरी वालिदा माजिदा के जेवर चुराने-वाली मेरी गुलाम मुन्नी इस वक्त हुज़ूर ही के यहां पनाह पाए हुए है। चाहता हूं कि सरकार उसे मेरे हवाले कर दें, ताकि मैं उसे मुनासिब सज़ा दे सकूं।"

"हम यहां किसी मुन्नी को नहीं जानते।"

"हुज़ूर अगर इज़ाजत दें तो मैं उसे अभी आपकी खिदमत में हाज़िर कर दूं। उसने मेरे ऊपर बड़ा जुल्म किया है। मेरे तमाम एहसानात को भुलाकर वह मेरे वहां चोरी करके भाग आई। मेरे वालिद ने उसे आठ सौ रुपये में खरीदा था और मैंने अपनी जान लड़ाकर उसे दस..."

"तखिलया।" जुआना बेगम ने जोर से कहा, आड़ में खड़ी हुई बांदियां और सामने कुछ दूर पर खड़े हुए पहरेदार कमरे से तुरन्त चले गए। जुआना ने बशीरखां के पास आकर धीरे-से कहा, "मुझे बेइज्ज़त करने के लिए आए हो?"

"खुदा जानता है, मेरा यह इरादा कतई नहीं था, लेकिन यह मुझे बुरा लगा कि तुम अपने नौकरों की भीड़ के साथ मुझसे मिलने के वास्ते आईं।"

"इतनी रात में तुमसे अकेले में मुलाकात करके मैं यहां लोगों को किसी शक-शुबहे में डालना नहीं चाहती थी। तुम्हें बेइज्ज़त करने का मेरा कोई इरादा न था।"

"अपने मुतल्लिक तुम्हारे हर इरादे को मैं बखूबी जानता हुं दिलाराम? तुमने अपने शौहर और टॉमस से मेरे रिश्ते करीब-करीब खत्म ही करवा दिए हैं। मुझे दोस्त बनाकर रखती तो मैं तुम्हारे बड़े काम आता।"

'एक बार दोस्त बनाया था और तुम मेरे खूब काम आए। मुझे आदमी से पत्थर बना दिया।'

"एक सलाह दूं दिलाराम! उस पत्थर से अब अपनी एक नई मूरत गढ़ डालो। अनगढ़ पत्थर सिर्फ ठोकरें खाता है, और देता भी है। और किसी का नहीं होता।"

जुआना मन ही मन टूटती जा रही थी। पिछले नौ वर्षों में किसी ने उसका सपने में भी अपमान करने का साहस नहीं किया था। नवाब समरू तक ने एक जगह पर सदा उसको भरपूर अदब दिया था। बशीरखां मानो उसके पिछले जन्म का भूत बनकर उसे डराने के लिए आ गया था लेकिन चालाक जुआना सहसा आंखों में आंसू भरकर बोली, "तुम अगर मुझे बेआबरू करने की कोशिश करोगे बशीरखां, तो मैं इसी वक्त यह अंगूठी का जहर चाट लूंगी। तुम मुझे खूब जानते हो।"

बशीरखां ने तुरन्त ही अपना रुख बदल दिया, बोला, "मैं खूब जानता हूं। बल्कि मैं ही तुम्हें जानता हूं दिलाराम! मैं तुम्हारा दोस्त हूं, दुश्मन नहीं। तुम भी अगर मुझसे दोस्त की तरह मिलतीं तो इन आंसुओं के निकलने की नौबत न आती। खैर, जाने दो। नज़रे-बद्दूर तुम्हारे ये लाखों रुपये के हीरे-मोतियों की आब मेरी 'मुन्नी' मेरी 'दिलाराम' के इन अनमोल आंसुओं के आगे फीकी पड़ गई बेगम

साहबा।···कभी-कभी सोचता हूं मैंने बड़ी गलती की जो तुम्हें समरू के हाथों सौंप दिया खैर, उससे मेरा जो कुछ बुरा हुआ सो हुआ, मगर तुम्हें जो आज इस रुतबे पर देख रहा हूं। यह सुख क्या कम है? तुम मुझे चाहे हज़ार गालियां दे लो पर यह कभी न समझना कि मैंने चन्द चांदी-सोने के टुकड़ों ही के वास्ते तुम्हें बेचा था। तुम्हारे जौहर ऐसी ही जगह में खुल सकते थे, मेरे यहां नहीं। वाह, क्या नाच कर रही हो तुम इस वक्त! सारी दुनिया को उल्लू बनाने वाले समरू को तुमने काठ का उल्लू बना दिया है। अब मेरी राय मानो जानेमन, धीरे से उस जर्मन भेड़िये को अपनी और टॉमस की राह से हटा दो। मगर ऐसी तरकीब से हटाना कि सांप मर जाए और लाठी न टूटने पाए।"

"आज मैं बेहद थक गई हूं बशीर।"

"मानता हूं, जो रात टॉमस के साथ तुम खुशी में गुजारतीं, वह मेरे आने से भारी-भारी-सी हो गई है।"

"नौ बरसों तक कोई जवान इस जिस्म को छू तक नहीं पाया। तुमने जिस बूढ़े भेड़िये की मांद में मुझे झोंक दिया वही जब-तक नाहक मेरी हड्डियां चिचोड़ता रहता है। बेगम बन गई, सियासत की शतरंज खेलने में शोहरत भी हासिल कर रही हूं, लेकिन उस दिल का क्या करूं जो तुम्हारे घर ही में छोड़कर चली आई हूं। तुमने मेरी ज़िन्दगी को सच से झूठ बना दिया बशीरखां, मेरा वह सीधा-सादा बेरौनक सच इस शानदार हसीन झूठ से करोड़ों गुना अच्छा था।"

इसके बाद पल-दो पल तक दोनों चुप रहे। बशीरखां फिर गम्भीर और प्यार-भरी मीठी आवाज़ में बोला, "बीत चुकने वाला वक्त फिर से वापस नहीं बुलाया जा सकता। इतने बरसों में मैंने भी कुछ कम नहीं सहा है दिलाराम! खैर, जाने दो, मैं जिस खास मतलब से यहां आया हूं, वह यह है कि मैं एक भोले-भाले बद-नसीब फिरंगी नौजवान को तुम्हारे यहां नौकर रखना चाहता हूं। यह क्रास उसीका है। अब वह मेरा छोटा भाई बन गया है।"

"यह काम तो तुम टॉमस से भी करवा सकते थे बशीरखां! मुझसे मिलने की ज़िद करके तुमने नाहक मुझे बेसुकून कर दिया।"

"मैं इसके लिए सच्चे दिल से माफी मांगता हूं दिलाराम! मगर उस नौजवान को मैं तुम्हारे सुपुर्द करना चाहता हूं। वह बदनसीब इस क्रॉस को चोरी करके चन्दन नगर से भागा था। फिरंगी लड़का है, अभी मुश्किल से बीस-इक्कीस साल का होगा; बहादुर, दीनदार और खूबसूरत, लाखों में एक। चन्दन नगर में उसके मुल्क से कोई बड़ा पादरी आने वाला था। वहां के आला फिरंगी हाकिम ने उसे देने के वास्ते ही यह क्रास होशियार बंगाली सुनारों से तैयार करवाया था। जब बनकर तैयार हुआ तो वह लड़का मजहबी जोश में इस पर ऐसा लट्टू हो गया कि रातों-रात अपने हाकिम की तिजोरी से इसे लेकर भाग आया। पटना में मेरी-उसकी मुलाकात हुई थी। इसे चुराकर उसकी रूह बेचैन हो गई है। वह इसे बेचना नहीं चाहता। किसी सच्चे ईसाई को सौंपकर अपने गुनाह से छुटकारा पाना चाहता है। मुझे तभी से तुम्हारा ख्याल आ रहा था। तुम्हारे यहां वह काम भी पा जाएगा और मन का चैन भी। तुम्हीं टॉमस साहब से कहकर या मुनासिब समझो तो अपने शौहर से कहकर अपनी फौज में भर्ती कर लेना।"

"ठीक है। लेकिन अब फिर मुझसे मिलने की कोशिश मत करना बशीरखां! तुम महज अब मेरे ख्वाबों की दौलत-भर रह गए हो, असलियत में नहीं रहे।"

"शुक्रगुज़ार हूं। यही क्या कम है कि तुम्हारे वर्साह दिल के एक कोने में अब तक मेरी जगह बनी हुई है। यह फिरंगी नौजवान तुम्हें मेरी याद दिलाता रहेगा। उसे मेरी सौगात समझना। महबूबा की तरह ही वह भी तुम्हारे बड़े भरोसे का आदमी साबित होगा। छः महीनों में मैंने उसे खूब परख लिया है। वह चोर होकर भी दिल का सच्चा है, हठीला होकर भी प्यार का भूखा, लचीला है। बड़ा प्यारा साथी है। अच्छा, अब इजाज़त दो। इतने अरसे के बाद तुम्हारे सामने आकर मैं खुद भी बेचैन हो उठा हूं। तकिये पर सिर रखकर उसे दोनों आंखों से भिगोए बगैर अब मुझे चैन न पड़ेगा।"

भर नज़र दोनों ने एक-दूसरे को देखा। बशीरखां ने एक आह भरकर जाने के लिए पीठ घुमाई। जुआना उसे तब तक देखती ही रही जब तक कि वह बाहर उसकी नज़रों से ओझल न हो गया।

बशीरखां के जाने के बाद जुआना एकदम निढाल हो गई, चेहरा लाश की तरह निस्तेज और निष्प्राण हो गया। अपनी ख्वाबगाह में जाकर वह टूटी मीनार-सी अपने पलंग पर गिर पड़ी। बांदियों में हलचल मच गई। उन्हें शक हुआ कि बेगम साहबा को गश आ गया है। अपनी नौकरानियों की घबराहट-भरी फुसफुस बातें सुनकर भी उसने प्रतिकार न किया। लेकिन जब उपचारस्वरूप उन्होंने गुलाब-जल के छींटे देने और उसके हाथ-पैरों को मलकर होश में लाने का प्रयत्न किया तो उसे सह न पाई। झुंझलाकर कहा, "चली जाओ तुम सब! महबूबा को भेज दो।"

बांदियां सहमकर पीछे हट गईं। एक बांदी महबूबा को खबर करने गई। उस समय वह बशीरखां से बातें कर रही थी। सुनकर कहा, "तू चल, मैं आती हूं।" बांदी के जाने के बाद बोली, "आपके मिलने का असर मुन्नी पर अच्छा नहीं हुआ। अब वह मुझे खूब-खूब नाराज़ होगी।"

"मैं समझता हूं कि इस वक्त उसने तुम्हें नाराज़ होने के लिए नहीं बल्कि सहारे के लिए बुलाया है। उसे सहारा दो महबूबन। चमकदार सितारा होकर भी वह औरत बदनसीब है। क्या किया जाय, नसीब ने जो कुछ हमारे लिए बो रखा है वही तो हम लोग काटेंगे। मेरे लिए अब्बा मरहूम की कसम आड़े आ गई थी, वर्ना इसे पाकर शायद मेरी ज़िन्दगी बदल जाती। मैं शर्तिया ही अपने वालिद के घिनौने पेशे को छोड़ देता, सिर्फ तस्वीरें बनाता और इसके साथ अपने बहिश्त में मगन रहता। खैर, जो नामुमकिन था वह सदा नामुमकिन ही रहेगा। यह औरत अपने बहिश्त के ख्वाब अब छोड़ दे तो सुखी रह सकेगी। सदा इस बात का ध्यान रखना महबूबा कि दिलाराम अब मुझसे नफरत न करे। मेरे लिए प्यार और नफरत दोनों ही बातें उसके वास्ते मुज़िर हैं।"

महबूबा उदास स्वर में बोली, "जिसके तन में सांसों का डेरा हो उससे कहा जाए कि तेरे लिए न जीना मुनासिब है और मरना ही, दोनों ही मुज़िर हैं। क्या खूब आपने हुक्म फरमाया है बशीर मियां!"

"कह तो दिया पगली, यह सब नसीब का चक्कर है। मजबूर सांसों पर ही ज़िन्दगी का किला बनाना सिर्फ मर्द का काम है। तुम्हारी सहेली के अन्दर मर्द की रूह बसती है महबूबा! यह उसकी दूसरी बदनसीबी है। दूसरी नज़र से यह बद-

नसीबी ही दरअसल दिलाराम की खुशनसीबी भी है। खैर, होगा, तू जा और देख, तुझसे भी कहे जाता हूं, मेरे फिरंगी को कोई तकलीफ न हो। वह भी मजबूर सांसों की दौलत है। उसमें और दिलाराम में बस इतना ही फर्क है कि उसने औरत के तन में मर्द का दिल पाया है और इसने मर्द के तन में औरत का या किसी नन्हें बच्चे का दिल पाया है। उसे तुम्हारी सहेली बिना वजह ठेस न पहुंचाए, इसका ख्याल रखना।" बशीरखां से बिदा लेकर महबूबा जब जुआना के कमरे में आई तो वह अकेली गम्भीर उदासी में खोई हुई अपने पलंग पर बैठी थी। उसे देखकर महबूबा ने मुस्काने की कोशिश की लेकिन होंठों पर एक फीकी लकीर-भर ही खींचकर रह गई। पास आकर बोली, "यह जेवर उतार दो, सोते में गड़ेंगे।" जुआना कुछ न बोली, एक निसांस-भर ढाल दी। गले से पन्ने का भारी कंठा और बड़े मोतियों का हार खोलते हुए महबूबा ने कहा, "अपनी सांसों की मज़बूरी को समझने वाला इन्सान ही अपनी जिन्दगी को बाबुल की मीनार बना सकता है। गम से फायदा नहीं। अभी तुम्हें बड़े-बड़े काम करने हैं मुन्नी! अच्छे-अच्छे सरदारों की अक्ल को भी तुमने घास चरा दी। बशीर मियां कहते थे कि अब दिल्ली में नवाब समरू की बजाय बेगम समरू का नाम ही गूंजता है। चार दिनों में तुम्हीं तुम चमकोगी। खुदा करे कि दूसरी रज़िया सुलताना बनो।"

"यानी कांटों का ताज पहनूं?"

"कांटो का ताज पहनकर हज़रते ईसा मसीह ने दुनिया वालों के दिल में यह जगह हासिल की थी।"

"हर शख्स ईसा नहीं बन सकता।"

"लेकिन ईसाई बन सकता है।"

जुआना हंस पड़ी, "ईसाई! वह तो मैं बन चुकी।"

"महज़ सियासी तौर पर ही बनी हो मुन्नी।"

"महज़ सियासत के सिवा और है क्या पगली! सब कुछ देख लिया इस छोटी-सी उम्र में। खुदा मुझे न मस्जिद में मिला, न कलीसा में। मजहब मन का सिर्फ एक बहाना भर है।"

"यह ज़िन्दगी ही एक बहाना है मुन्नी! तुमसे मेरी बराबरी तो हरगिज़ नहीं, लेकिन देखो न, मैं भी तो आखिर जी रही हूं, और मेरे जीने का बहाना तुम हो।"

"और कल अगर मैं न रहूं तो?"

"खुदा न करे ऐसा हो, मगर सांसों की मज़बूरी से जीना तो पड़ेगा ही और जीने के लिए बहाना भी साधना ही पड़ेगा। ज़िन्दगी ताकत और मज़बूरी दोनों ही का नाम है। इतनी ताकत दिखाकर अब मजबूर बनती हो?"

जुआना ने जवाब तो न दिया, मगर एक उसांस बेसाख्ता खिंच ही गई। महबूबा ने उसमें ही अपना जवाब पा लिया, स्वर में ताज़गी लाकर कहा, "ठहरो शराब लाती हूं। जब जीने का कोई बहाना न हो तो वही सबसे उम्दा बहाना है। अरे जब हमें जीना ही है तो किसी से हारकर क्यों जिएं। मुझे नसीब ने किसी का प्यार नहीं दिया, मगर मैं अब मांगती भी नहीं, तुम्हें प्यार करती हूं मगर तुमसे भी एवज़ में प्यार नहीं चाहती। मेरा सुख-दुःख सिर्फ मुझी में सिमटा हुआ है।"

"तू खुशकिस्मत है, कम होश और ज़्यादा जोश से तेरा काम चल जाता है, मगर मेरा होश और जोश तो एक जैसे तेज़ धार वाले झरने हैं, बल्कि होश क

झरना मेरे जोश से भी ज़्यादा ऊंचाई से गिरता है। उसकी फुहारों की बिजली कभी-कभी मेरे तन को जलाकर मेरे मन को बावला नाच नचा देती है। क्या करूं, कहां जाऊं कि सुकून मिले? ...ला, शराब ही दे। अब वही मेरा सहारा बनेगी – खुशी की शराब, हुकूमत की शराब!"

जुआना में फिर से जीवन का कसाव आ गया। अब तक बशीरखां के प्रति उसकी तीव्र घृणा ही उसकी अन्तरशक्ति बनी हुई थी। नई स्थिति में ढकेली जाने से ही उसने अपनी जीवनेच्छा के लिए जो फरेब साधा था वह अब उसे आगे नहीं ले जा सकता। अपने जीवन-पुरुष के रूप में समरू केवल एक धोखे की टट्टी थी। वह अपनी इस मजबूरी को जानती थी। टॉमस को उसने बशीरखां के घर से यहां आने के बाद नये मालिक को रिझाने के लिए सहारे के रूप में स्वीकार किया था, वह सहारा धीरे-धीरे जितना ही प्रबल बनता गया उतनी ही प्रबलता से उसे अपने से बांधने के लिए 'दिलाराम' से 'जुआना' बनने वाली उसके भीतर की होशियार औरत ने अपना प्रेम का जादू फैलाया था। उस जादू में गो वह खुद भी फंसकर अपने को छलने लगी थी, मगर पर्दा-दर-पर्दा मन की किसी तह में वह जानती थी कि वह एक छलावा भर ही है। ऊपरी तौर पर वह जिसके नाम तक से नफरत करती थी उसी बशीरखां से उसे दरअसल प्यार था। नौ बरसों के बाद देख लेने की इच्छा पूरी होते ही आज वह खूब समझ गई है कि उसे केवल बशीर खां से प्यार है, लेकिन वह प्यार उसे अब कभी मिल नहीं सकेगा। जो सुलभ है वह प्यार का नाटक-भर ही है। उसे उतने ही से सन्तोष करना होगा। मन की घृणा दूसरों को खाते-खाते अन्त में खुद अपनों को ही खा जाएगी। इसलिए अगर अपनी सुरक्षा के लिए उसने समरू के साथ वह नाटक साधा है तो काम-सुख के लिए उसे टॉमस से भी वैसा ही नाटक साध लेना चाहिए। मन में भले बशीरखां ही रहे, जैसे खुदा रहता है, मगर तन में टॉमस को अब बांध ही लेना होगा। उसके बिना अब दूसरी गति नहीं। थोड़ी ही देर में मन तेज़ी से नाचकर स्थिर हो गया। बड़े नखरे और प्यार से महबूबा के गले में बांह डालकर, उसे अपनी ओर खींचकर धीरे से नशीली आवाज़ में कहा, "किसी तरह टॉमस को छिपाकर ले आ। आज उसे वाकई खुश कर दूंगी। तुझे भी खुश करूंगी। आज मैं बहुत खुश हूं।"

दूसरे दिन सबने देखा कि बेगम साहिबा आज बेहद खुश हैं। पुरानी से पुरानी नौकर-बांदियों ने भी छोटी बेगम साहिबा को इतना प्रसन्न कभी नहीं देखा। मन के आनन्द ने तन की सुन्दरता को निर्मल और कई गुना अधिक बढ़ा दिया था। सुबह मुंह अंधेरे अपने डेरे में लौटकर आने पर मेरी और उसके पति ने अपने मालिक टॉमस साहब के चेहरे पर बरसती हुई खुशी की रौनक तो देखी ही, साथ ही उनके हाथ में पन्ने-सोने के प्रभु यीशु भी देखे। मेरी और जोज़फ ने घुटने टेककर दर्शन किए और भक्ति के आंसू बहाए। बाद में, दोपहर दिन चढ़े दो दिलों के हाल सुनने सुनाने के लिए मौका पाकर मेरी अपनी सहेली महबूबा के पास गई।

बेगम जुआना समरू उस समय दरबार में अपनी सरधना ब्रिगेड के चीफ कमांडर जार्ज टॉमस साहब के साथ आए हुए फिरंगी नौजवान लवसूल से भेंट कर

रही थी। सुनहरी कुर्सी पर विराजमान दिव्य सौन्दर्यशालिनी राजसत्ता को शरणागत लवसूल पूज्य धार्मिक भाव से मुग्ध होकर देख रहा था। उसकी सुध-बुध ही बिसर गई थी।

और जुआना बेगम ने भी अपने जीवन में पहली बार किसी पुरुष का ऐसा मादक मोहक, सौन्दर्य देखा था। टॉमस तो खैर साधारण सुन्दर ही था, किन्तु बशीरखां की आकर्षक सुन्दरता भी इसके आगे मद्धिम पड़ जाती थी। लाजवाब। अगर कोई जवाब है तो वह खुद ही है। बेगम साहबा की आंखों में हुस्न और जवानी का प्रशंसात्मक जादू चढ़ा, मगर उसके भीतर वाली हुकूमत की शक्ति ने टॉमस की उपस्थिति के कारण अपने ऊपर बा-कमाल अनुशासन साधा। लवसूल को नज़रअंदाज करके, गुप्त प्यार-भरी नज़रों से टॉमस को देखकर बोली, "हुज़ूर नवाब साहब के तशरीफ लाने तक इस नौजवान को किसी मुनासिब काम से लगा दो। हम चाहते हैं कि पहले इसकी काब्रलियत का इम्तहान लिया जाए।"

"परसों रात से शहर में जिस बदइन्तज़ामी का बोलबाला हुआ है हुज़ूर, उसे देखते हुए मैं समझता हूं कि शहर कोतवाल को हमारी मदद की सख्त ज़रूरत है। नियामतखां मातबर ज़रूर हैं, मगर मुझे लगता है कि लाखाजी सूबेदार का असर कोतवाली के सिपाहियों पर किसी ऐसी तरफ से पड़ रहा है कि बेचारे नियामतखां हरचन्द चाहकर भी कुछ नहीं कर पा रहे हैं। शहर को एक नायब कोतवाल···"

"बेअदबी माफ करें हुज़ूर, यह तमाम कारस्तानी खुद नियामतखां की है। दिल्ली वाले निजामुद्दीन और देशमुख ने उसे यह लालच दिया है कि उसे सूबेदार बना दिया जाएगा।" टॉमस की बातों की प्रतिक्रिया में लवसूल सत्य उद्घाटित करने के उत्साह में आकर उसकी बात पूरी होने के पहले ही बोल उठा।

बेगम को नये आदमी की यह वाचालता बुरी लगी, तेज होकर बोली, "बादशाह के आला अफसरों के खिलाफ बग़ैर सबूत ऐसी बातें करने वाले की जबान कलम कर ली जाती है, यह जानते हो फिरंगी नौजवान!"

लवसूल तब भी निडर रहा, संयम की मर्यादा में रहते हुए भी उसके स्वर में आवेश था, उत्तर में बोला, "यह नाचीज सिर्फ इतना ही जानता है कि फख्रे-मिल्लते-मसीही, मरयम-उल्-अस्मत् के रूबरू झूठबोलने वाला इंसान महज अपनी जबान या सर कलम कराके ही अपनी सजा से छुटकारा नहीं पा सकता, उसे दोज़ख की आग में भी जलना पड़ता है। मैं अनकरीब एक माह से इस शहर में हूं। मैंने उस्ताद बशीरख़ां के साथ यहां की हर सराय, मयखाने और हर अखाड़े का भेद जाना है। इसलिए पूरी जिम्मेदारी के साथ कह सकता हूं कि नियामतखां दगाबाज़ है। वह चूंकि लाखाजी सूबेदार को यहां से उखाड़ना चाहता था इसलिए उसने हुज़ूर का साथ दिया था।"

लवसूल जिस समय बोल रहा था, उस समय बेगम जुआना समरू पैनी नज़रों की टकटकी बांधकर उसे देख रही थी। उसे लग रहा था कि युवक झूठ नहीं बोल रहा; इतना ही नहीं वह स्वयं उसी के मन के एक खुटके को खोल रहा है। कल रात में ही एक बार यह आशंका उसके मन में हल्के तौर पर उठ चुकी थी। नौजवान की बातों से जुआना की वह आशंका इस समय पूरी तौर से सजग हो उठी। अपनी आंखों को सवालिया निशान बनाकर उसने टॉमस की ओर देखा।

अब तक लवसूल की निर्भयता और साफगोई को प्रशंसा-भरी दृष्टि से देखने

वाले टॉमस ने बेगम से नज़रें मिलाते ही एक बार नजरें झुका लीं, डुबकी मारकर उसके मन का साहस उभरा। उसने कहा, "बशीरखां ने मुझे कल कुछ गहरे सुराग दिए थे। मैंने उन पर गौर भी किया है, लेकिन शहर कोतवाल की बाबत आपके रुख को देखते हुए अब तक कहने की हिम्मत न कर सका।"

"खैर। फिरंगी नौजवान, क्या नाम है तुम्हारा, लवसूल, जिस तरह कहने की हिम्मत तुम दिखला सके, क्या उसी तरह अपने करतबों का जादू भी दिखला सकते हो?" बात कहते-कहते अनिवार्य रूप से नजरें मिलीं और जुआना के मुंह से 'हिम्मत' शब्द के बजाय 'जादू' शब्द इतने अनायास रूप से निकल पड़ा कि खुद जुआना ही अपने मन में कटकर रह गई। लवसूल की आंखें बशीरखां की आंखों की याद दिलाकर मन-ही-मन उसे श्रद्धानत बना गईं।

लवसूल जोश में आ गया; अदब से सर झुकाकर कहा, "सरकार एक मौका मुझे इनायत फरमाएं, और हुज़ूर टॉमस साहब अपने चुने हुए पचास सिपाही मुझे दे दें तो खुदा मेहरबान, फज्जे-रहमते-यीशु से मैं आज शाम, हद कल एक पहर दिन चढ़े तक शहर में मुकम्मिल अमन कर दूंगा।"

लवसूल का आत्मविश्वास जुआना और टॉमस दोनों ही के मन को छू रहा था, लेकिन जुआना अब अपने से अधिक सचेत हो गई थी। सावधान स्वर में पूछा, "तुम्हारे काम का तरीका क्या होगा लवसूल?"

"जी, शहर की फुलहट्टी में एक तोताराम माली है, बुर्दा फरोश भी है। उसका बड़ा भाई यहां के मालियों का चौधरी था। तोताराम ने उसकी हसीन लड़की को नियामतखां की नज़र करने का लालच देकर और अपने भाई को एक डकैत गिरोह का आदमी बतलाकर फांसी पर चढ़वा दिया। तब से वह नियामतखां कोतवाल की नाक का बाल हो गया है। औरतें बेचने के सबब से शहर के अमीर-उमराओं के दरबार तक उसकी बखूबी रसाई है। नियामतखां का दूसरा साथी पेशवा फौज का एक भगोड़ा सिपाही, शातिर बदमाश चिमणाजी जमादार है। पिछले दस-पन्द्रह सालों से वह इस शहर में रहता है। छोटी-मोटी महाजनी करता है और शहर के हर गिरोह पर उनका जबरदस्त असर है। उसके सियासती हथ-कंडों से यहां के बड़े-बड़े बांके सरदार भी उसके आगे झुके रहते हैं। तोताराम की मार्फत नियामतखां ने खुद सूबेदार हो जाने पर उसे कोतवाल बना देने का लालच दे रखा है। मैं आज कोतवाल के इन्हीं दोनों मोहरों को आपस में लड़ा दूंगा हुज़ूर, इन दोनों की जगह मैं आज अपने मोहरे बिठला दूंगा। कल से शहर की फिजा अपने-आप ही बदल जाएगी।"

"सिपाही तुम किसलिए चाहते हो?"

"हुज़ूर, जब उनके आदमी लड़ेंगे तब मैं अपने आदमी लेकर मौके पर पहुंच जाऊंगा और हुज़ूर के नाम पर इंतजाम संभाल लूंगा। नियामतखां को हुज़ूर से बाजाब्ता शिकायत करने का मौका न मिलेगा।"

"ठीक है. तुम्हें मौका दिया जाता है लवसूल, अगर कामयाब हुए तो हम हुज़ूर नवाब साहब से तुम्हारी सिफारिश करेंगे और तुम्हें इनाम भी देंगे। अब तुम जा सकते हो लवसूल।"

"जी बहुत अच्छा।" बड़े अदब से बेगम की बात का जवाब देकर उसने टॉमस से कहा, "सर, मैं बाहर आपका इंतज़ार करूंगा।" पूरे मुगलिया अदब के साथ कोर्निश करते हुए लवसूल उल्टे पांव पीछे-पीछे लौटने लगा। दरवाजे तक

जाकर उसने फिर अपनी श्रद्धा-भरी आंखें जुआना बेगम की ओर उठाईं। जुआना की नज़रें भी उसी समय उठीं। फिर नज़र का जादू चढ़ा और फिर उसका मन अपनी कमजोरी पर लज्जित हुआ।

बाहर चले आने के बाद टॉमस का इंतज़ार करते हुए लवसूल इसी तोताराम और चिमणाजी जमादार के बारे में सोचता रहा। बेगम साहबा ने अपने श्रीमुख से उसे अपने करतबों का जादू दिखलाने की आज्ञा दी है। लवसूल अब जादू ही दिखलाना चाहता है। बेगम जुआना समरू उसकी नज़र में इस धरती की साधारण स्त्री नहीं वरन् स्वर्ग की देवी थी। बशीरखां ने पिछले छ: महीनों में उसके सामने अपनी दिलाराम की इतनी-इतनी तारीफें की थीं कि आज से पहले लवसूल का जवान दिल उस देवी के दर्शन के लिए विकल, बावला हो रहा था। पन्ने का क्रॉस अपनी दिलाराम को दिलवाने के लिए बशीरखां ने लवसूल के सामने शुरू ही से उसकी ऐसी तस्वीर खींची थी जैसे कि वह मानुषी नहीं वरन् ईसाई धर्म की दिग्विजय कराने के लिए स्वर्ग से अवतरित देवी हो। उस देवी के प्रत्यक्ष दर्शन करके लवसूल का मन आज अपनी चोरी के पाप से मुक्त हो गया था। जुआना बेगम के दर्शन से उसके मन की पवित्रता का स्रोत फिर से फूट-फूट पड़ा था, और ऊंची धारवाले फव्वारे की तरह उड़-उड़कर बरस रहा था।

टॉमस की प्रतीक्षा वह केवल कुछ अशर्फियों के वास्ते ही कर रहा था। सिर्फ उन्हीं की मांग करने की हिम्मत वह बेगम साहबा के सामने न कर सका। अपने काम के वास्ते लोगों को खिलाने-पिलाने के लिए कम से कम दस-बीस अशर्फियां तो उसकी जेब में होनी ही चाहिएं। सबसे पहले लवसूल कालेखां खलीफा को अपने शीशे में उतारेगा। चार-छ: रोज पहले, जब यहां लड़ाई हो रही थी, वह एक दिन बशीरखां उस्ताद के साथ कालेखां के यहां गया था। वहीं उसे यह भी मालूम हुआ था कि नियामतखां ने दिल्ली में सिन्धिया के दाहिने हाथ निजामुद्दीन खां से यह समझौता कर रखा था कि आगरे के मराठा सूबेदार को हटाकर उसे वह गद्दी दिलवाई जाएगी और नियामतखां चिमणाजी को शहर कोतवाल बना देगा। मराठा सूबेदार लाखाजी ने कभी चिमणाजी के आगे घास नहीं डाली थी। इसलिए वह उनसे काट रखता था। और चिमणाजी को कोतवाली मिलने की खबर से बूढ़े खलीफा कालेखां के मन में बड़ी जलन हुई। उस दिन कालेखां के घर से लौटते हुए बशीरखां ने लवसूल से कहा था, "चिमणाजी ने अपनी अक्ल के जादू से यहां के बड़े-बड़े शेरों को अपने बस में ज़रूर कर रखा है, मगर कोतवाल होते ही वह मारा जाएगा, यह याद रखना। अपने स्वारथ की अकल भैंस में भी होती है। यह कल्लू खलीफा चिमणाजी के यहां आने से पहले यहां बेताज का बादशाह था। अब चिमनिया जादू से बंध-बंधा घुटता रहता है।" उस्ताद की यह बात ही इस समय लवसूल की तरकीब बनी। लवसूल कल्लू खलीफा को चिमणाजी के खिलाफ उकसाएगा।···एक गिरोह को तोताराम माली के घर पर डाका डालने के लिए तैयार करना चाहिए। तोता के बड़े भाई की मशहूर नमकीन रखैल बतासो नाइन पर, जिसे इस समय तोताराम रखे हुए है, चिमणाजी अरसे से दांत गड़ाए है। वह तोताराम को मुंहमांगे दाम देने को तैयार है लेकिन तोता राजी नहीं होता। बतासो को उड़ाने का अपराध चिमणाजी पर आरोपित किया

जाएगा। दो गिरोह लड़ेंगे तब लवसूल फौजी वर्दी में अपने सिपाहियों के साथ मौके पर पहुंच जाएगा। चिमणाजी और तोताराम गिरफ्तार करके सीधे किले में पहुंचा दिए जाएंगे, फिर शहर का हर बदचलन रईस और गुंडा, लवसूल और टॉमस की धमकियों के वश में आ जाएगा।

योजना का उत्साह लवसूल को काम की तीव्र स्फूर्ति दे रहा था। अपने उतावलेपन में उसे टॉमस की प्रतीक्षा करना बुरी तरह से खल रहा था। क्यों न वह सीधे जाकर बेगम साहबा से ही रुपये मांग ले। लेकिन इसके लिए मन फिर झिझका, अभी वह नया-नया आया है, अशर्फियां मांगने का बेगम साहबा पर बुरा असर भी पड़ सकता है। तब फिर वह क्या करे ?···प्रेरणा की फुहार फिर लहराई। आज सुबह जाने से पहले बशीरखां ने महबूबा से उसे मिलाया था, कहा था, "तुम अपने मन का हर दुख-सुख बेझिझक होकर इससे कह सकते हो। इसके रहते तुम्हें यहां कोई तकलीफ नहीं होगी।"···ध्यान से महबूबा का नाम टकराते ही वह उसकी तलाश में निकल पड़ा। एक खवास से पूछा, उसकी बतलाई हुई एक बांदी की खोज में निकला, और खोज पर खोज करते हुए आखिरकार महबूबा उसे मिल ही गई। उसे देखकर वह मुस्कराई, आगे बढ़कर पूछा, "इतनी बदहवासी क्यों ? क्या बात है ?"

"सुनिए, मुझे बीस-पचीस अशर्फियों की सख्त ज़रूरत आ पड़ी है।"

"क्या किसी माशूका को रिझाना है ?"

प्रशंसा-भरी मीठी आंखों से उसे देखते हुए महबूबा ने छेड़ा।

लवसूल झेंप गया, बोला, "जी नहीं, हुज़ूर बेगम साहबा को एक जादू दिखाना चाहता हूं—सियासत का जादू। बस इससे आगे अभी मुझसे कुछ न पूछें। बेगम साहबा से रुपये मांग न सका। टॉमस साहब उनके दरबार में हैं, न जाने कब तक वहां मशगूल रहें। मेरा वक्त नाहक बरबाद हो रहा है, इसीलिए आपके पास दौड़ा आया हूं।"

"बहुत खूब ! बैठो, अभी लाई। गेंदिया, साहब के वास्ते शरबत ला।" दरवाजे पर खड़ी दासी आदेश पाकर जाने लगी। लवसूल ने हड़बड़ाकर कहा, "शरबत नहीं, मुझे रुपये दे दीजिए मैं जल्दी में हूं।"

लवसूल की उतावली देखकर महबूबा मुस्कराई। कहा, "हां-हांऽ ! नन्हे-मुन्नों को ऐसी ही बेकरारी सताती है। क्यों न हो, आखिर खेल का जोश जो ठहरा।"

लवसूल को बुरा लगा, कहा, "जी खेल का जोश नही, यह फर्ज की चुस्ती है। मैं नन्हा-मुन्ना हरगिज नहीं हूं।"

महबूबा ने सुना, हंस पड़ी, फिर भीतर की कोठरी में चली गई। लवसूल कमरे में चहलकदमी करता रहा। महबूबा के नन्हा-मुन्ना कह देने से वह भुनभुना उठा था। एक तरफ से तश्तरी में सुरारी और गिलास लेकर गेंदिया, और दूसरी तरफ से महबूबा मुस्कराती हुई करीब-करीब एक ही समय में आई। शरबत को नज़रअन्दाज करके वह महबूबा की ओर हाथ फैलाकर बढ़ा। महबूबा मुस्कराकर बोली, "अरे, पहले शरबत तो नोश फरमाइए, मियां लव-वसूल।"

"जी, मेरा नाम लवसूल है। आप न पुकार सकें तो उस्ताद की तरह मुझे लब्बूखां कह लिया करें। और किसी तरह अपना नाम बिगाड़ा जाना मुझे पसन्द नहीं आएगा। और यह नन्हा-मुन्हा लफ्ज भी अपने को सख्त नापसन्द है।"

"कुछ मैं भी पसन्द कर सकती हूं मियां लब-वसूल। आखिर मैं भी इंसान ही हूं।" स्नेह और शोखी-भरी नज़रों से उसे देखकर दासी से कहा, "जा," और फिर लवसूल की ओर ढीठ बनकर देखने लगी।

लवसूल ने मूर्ति चुराने के प्रायश्चित्त-स्वरूप एक वर्ष तक अखंड ब्रह्मचर्य धारण करने का व्रत ले रखा था, शराब भी उसी व्रत के कारण उसके लिए वर्जित है। वह सुराही और महबूबा की कटीली चितवनों से चिढ़ उठा, बोला, "माफ कीजिए, मैंने आजकल शराब न पीने की कसम खा रखी है। मुझे रुपये इनायत कीजिए। बड़ी जल्दी में हूं।"

"मैं जानती हूं कि नन्हे-मुन्नों को कैसी-कैसी कसमें खाने की आदत है। बशीर मियां मुझे बतला भी गए हैं। यह सादा शरबत है साहब बहादुर! पी लो।" लवसूल इन्कार न कर पाया, गिलास हाथ में लेकर जल्दी-जल्दी घूंट भरने लगा। महबूबा फिर बोली, "बहुत जल्दबाजी अच्छी नहीं होती मियां लब-वसूल। जादू वही पुरअसर होता है जिसके पीछे करतबों के तिलिस्म होशियारी से रच-रचकर बांधे जाते हैं·· जैसे नज़रे-बद्दूर खुदा ने तुम्हें खूबसूरती के जादू से संवारा है।" महबूबा की आंखों में प्यार वैसे ही चमक रहा था जैसे गहरे कुए में चमकता है।

लवसूल को वे आखें सुहाई, उनमें कोई बुराई नहीं झलक रही थी, फिर भी अपने नाम का बार-बार बिगाड़ा जाना उसे कतई पसन्द नहीं आ रहा था, शरबत का गिलास खाली करके उसे तश्तरी में रखते हुए कहा, "इस नसीहत के लिए आपका एहसानमन्द रहूंगा। लाइए, अब रुपये दे दीजिए।"

"इन रुपयों की एवज में मैं तुमसे अगर कुछ चाहूं तो?"

"क्या चाहती हैं?"

"अरे और क्या चाहूंगी, हाथी-घोड़े-जागीर तो दे नहीं सकते तुम, बस मुझे मियां लब-वसूल कह लेने दिया करो!"

कहने की अदा पर लवसूल को हंसी आ गई। बोला, "हम फ्रांसीसी लोग किसी नायाब हसीना के शैम्पेन से गीले होठों को ही लवसूल कहते हैं!"

"और हम हिन्दुस्तानी औरतें सिर्फ नन्हे-मुन्नों के लबों को ही ऐसा कहती हैं। मर्द के होठों को चूमकर औरत बदनाम हो सकती है, लेकिन खूबसूरत बच्चे को वह जहां जी चाहे चूम ले।"

सुनकर लवसूल बुरी तरह से झेंप गया। उसकी यह झेंप देखकर महबूबा खिलखिलाकर हंस पड़ी, कहा, "ऐ मैं बलैया लूं तुम्हारी, वाकई नन्हे-मुन्ने हो तुम!"

"मुझे आपके रुपयों की अब ज़रूरत नहीं, कहीं और से इन्तजाम कर लूंगा।" कहकर लवसूल जाने लगा। महबूबा ने बांह पकड़कर उसे रोक लिया, पूछा, "किससे लोगे रुपये?"

"किसी से भी। टॉमस साहब अब शायद फुरसत पा चुके होंगे, उन्हीं से से लूंगा। मैंने गलती की जो आपके पास मांगने आया। उस्ताद ने आपके लिए कहा था कि अच्छी औरत हैं··"

"तुम तो बच्चों की तरह रूठते हो मियां। तुमने अपने उस्ताद को तो प्यार में अपना नाम बिगाड़ लेने दिया, और मुझसे बिगड़ते हो। यह भला कहां का इंसाफ है तुम्हारा?"

"वो मेरे उस्ताद हैं, उन्हें हक है।"

"तो मुझे भी वही हक हासिल है।"

"किस तरह ?"

"यहां आने से पहले मैं तुम्हारे उस्ताद की चहेती थी, समझे मेरे नन्हे-मुन्ने !"

लवसूल चिढ़ा, मगर अपने-आपको संयत करते हुए बोला, "देखिए, आपने जो कुछ अभी-अभी कहा है उसी की वजह से मैं आपकी इज़्ज़त करने को मज़बूर हूं। इसलिए साफ-साफ बतला दूं कि मुझे इस लफ्ज से चिढ़ है। आगरे में आप तीसरी औरत हैं जिसने मुझे बच्चा कहा है। मेरे अन्दर वाला मर्द भड़ककर इन्तकाम लेने के लिए मुझे बेहोश बनाने लगता है। मैं यह नहीं चाहता। एक साल के वास्ते मैंने औरत और शराब से परहेज रखने की कसम खाई है।"

"बहुत अच्छी बात है। बच्चों को इन चीज़ों से परहेज रखना ही चाहिए।"

"बड़ी हठीली हैं आप। उस्ताद जैसे शेर तबीयत के आदमी से खुदा जाने कैसे निभी होगी आपकी ? आपके बारे में उनकी राय इतनी अच्छी है···"

"बात यह है लव-वसूल कि मैं हर शेरदिल के भीतर रहनेवाले प्यारे और हसीन खरगोश को चुरा लेने में माहिर हूं, समझे। इसीलिए अब मैं तुम्हारी मुकद्दस कसम की मियाद पूरी होने तक नन्हा-मुन्ना ज़रूर कहूंगी। वह मर्द ही क्या जो तेहे के मारे अपने-आप पर काबू न रख सके। गुस्सा कमज़ोरी की निशानी है।"

"बस, अब कुछ न कहूंगा···"

"ठीक है, मेरे पास आकर तुम बस सुना ही करो। सुनने से दिमाग भरता है, कहने से खाली होता है। लो अपनी अशर्फियां।"

"इन अशर्फियों और नसीहतों का शुक्रिया। आज से आप भी मेरी उस्ताद हुईं।"

महबूबा हंस पड़ी, लवसूल की दोनों बांहें पकड़कर उससे करीब-करीब सटकर, रसीली चितवन से देखकर कहा, "लिपट जाऊं तुमसे बावले ! बोसे लूं तुम्हारे !"

"इम्तहान लेंगी ? हाज़िर हूं।"

"शाबाश ! मैं तुम्हारी इस कसम की बात बेगम साहबा से ज़रूर कहूंगी। मुमकिन है कि वे तुम्हारा इम्तहान लें।"

"मरयम-उल्-अस्मत- मेरा इम्तहान लेंगी। जहेकिस्मत, वह मौका तो आए कि मैं सुर्खरू हो सकूं। उस्ताद से उनकी तारीफें सुनता था, मगर यकीन नहीं होता था। आज देखा तो मेरी हस्ती बदल गई। अपने बचपन में, अपने वतन फ्रांस के किसी 'कान्वेंट' में, किसी 'नन' के चेहरे पर मैंने ऐसा मुकद्दस नूर नहीं देखा। हिन्दोस्तान में भी कहीं नहीं देखा। जिनके हुज़ूर में सिर्फ चन्द लम्हे हाज़िरी बजा लेने-भर से ही मेरे खयालात इतनी बुलन्दी पर पहुंच गए, उनके इम्तहान लेने के ख्याल से तो मैं यकीनन इस काबिल बन जाऊंगा कि जन्नत के दरवाज़े मेरे वास्ते आप ही आप खुल जाएं।"

भोले युवक के इस महाभाव को देखकर महबूबा का मन निर्मल प्रेम से नहा-नहा उठा। नूरजहां और मुमताजमहल के समान सुन्दरी अपनी सहेली मालकिन लवसूल के तन-मन की सुन्दरता के आगे आज पहली बार बड़ी फीकी लगीं।

सोचने लगीं कि यदि इसे अचानक मुन्नी उर्फ दिलाराम उर्फ बेगम जुआना समरू के असली चरित्र का पता लग जाए तो अनास्था का आघात खाकर इस बेचारे भोले-भाले इंसान का क्या हाल होगा! वशीरमियां ने सच ही कहा, ऐसे लोग तो उम्र-भर बच्चे ही बने रहते हैं। औरत का दिल तो जमाने की मार खाकर बदल जाता है, पर बच्चा भला बदलना क्या जाने। बड़े लाड़ से आगे बढ़कर, हथेलियां मोड़कर, अदा से उसकी आंखों की बलैयां लेके हाथों को अपने कानों से लगाती हुई, फिर दीदे मटका कर, नाक सिकोड़कर चिढ़ाती हुई बोली, "ऐ वारे मेरे नन्हे-मुन्हें, मैं सदके तुम पर, सौ जान से, हज़ार जान से! तुम्हारा जवाब नहीं है। लो अब सिधारो जहां जानेवाले थे वहां के लिए। और देखो, जल्दी का काम शैतान का होता है। मर्द हर कदम तौलकर रखा करते हैं।"

बात सुनकर लवसूल भावबद्ध हो गया, उसने महबूबा की दोनों हथेलियां अपनी दोनों मुट्ठियों में कस लीं; कहने लगा, "जिस दिन से पटने में मेरा और उस्ताद का साथ हुआ उसी दिन से तकदीर हाथ पकड़कर बढ़ती चली जा रही है। यहां मरियम-उल्-अस्मत का दरबार मिला, तुम मिल गईं। समझ में नहीं आता, किसका शुक्रिया अदा करूं, तुम्हारा या नसीब का!"

"नसीब का करो दोस्त! वही सबको तारता और मारता है। दोनों ही सूरतों में उसी का शुक्र है।"

लवसूल महबूबा को 'आप' से 'तुम' बनाकर एक नये विश्वास, नये जोश के साथ बिदा हुआ। नई जगह और पहरों की भूल-भुलैया से बचने के लिए महबूबा उसे फाटक तक छोड़ आई।

फुलहट्टी में तोताराम माली की दुकान इतनी बड़ी है कि देखने में छोटी-मोटी बगिया-सी लगती है। फूल बेचने के लिए सोलह नौकर काम करते हैं। पूजा के फूल अलग, सुहागिनों के अलग और शौकीनों, सदासुहागिनों के लिए अलग। फूल एक ही किस्म के थे पर अपनी पांतों में वे एक-दूसरे से ऊंचे-नीचे, अलग-अलग थे। तोताराम की दुकान पर मेला लगा रहता था। उसका बड़ा इकबाल था। हाकिम-हुक्काम, अमीर उमरा, सेठ-महाजन, सभी रियासती कमजोरियों के शिकार उसकी आवभगत करते थे, मगर मालियों की बिरादरी ने उसको बड़प्पन देने से इन्कार कर दिया था। बड़े भाई के हत्यारे को बड़े भाई की गद्दी न दी। तोताराम सिर पटककर रह गया, पर चौधरी का पद न पा सका। इसलिए अपने नौकरों-चाकरों और खुशामदी मुसाहबों से वह अपने आपको 'चौधरी साहब' कहलवाता है।

खलीफा कालेखां के अखाड़े की तरफ साधारण हिन्दुस्तानी लिबास में जाते हुए लवसूल चौधरी तोताराम की दुकान के सामने से गुजरा। लवसूल के दिल में चुलबुली हुई कि जिस शैतान को अभी मिट्टी में मिलाना है उसकी सूरत क्यों न एक झलक देख ली जाय। गजरे लेने के बहाने चला गया।

चौधरी तोता गद्दी पर गावतकिये का सहारा लिए हुए बैठा हुक्का गुड़-गुड़ा रहा था, दो नौकरानियां पंखा झल रही थीं, दो-एक मुसाहब बैठे थे। लवसूल कंधे पर बन्दूक डाले कमर में दो-दो कटारें खोंसे मस्त झूमता हुआ उसके सामने पहुंचा। चौधरी ज़रा चेतकर बैठ गया, मुस्करा कर कहा, "आओजी लब्बूखां,

बशीर भाई किधर रह गए आज ?"

"उस्ताद दिल्ली गये हैं, एक बड़ा सौदा हो रहा है। एक पखवारे में आ जाएंगे।"

"तुम यहीं पर रह गए ! कोई काम होगा खास ?"

"हां चौधरी, फौज में भर्ती होना चाहता हूं।"

"तो दिल्ली इसके लिए अच्छी जगै थी।"

"चौधरी, मेरा इरादा समरू साहब की फौज में जाने का है। आमदनी सुना है इनके यहां अच्छी हो जाती है।" चौधरी सुनकर चुप रहा; लवसूल उर्फ लब्बूखां ने फिर कहा, "किसी से बेगम साहिबा तक हमारी सिफारिश पहुंचा दें तो ताउम्र एहसान मानूंगा।"

"बशीर भाई ने क्यों नहीं कोशिश की तुम्हारे लिए ? उसके समरू साहेब तक से पुराने मरासिम हैं।"

"उस्ताद नहीं चाहते कि मैं उनका साथ छोड़ूं। मैं अब ज़्यादा आमदनी का काम चाहता हूं, शादी करना चाहता हूं।…कोतवाल साहब से सिफारिश कर दोगे मेरी ? ज़्यादा देने की मेरी हैसियत है नहीं, हां अशर्फी, दो अशर्फी खिलाने-पिलाने में खर्च कर दूंगा। एहसान तुम्हारा उम्रभर मानूंगा।"

तोताराम बोले, "ये नई सरकार, अपने बस में नहीं आई भइया। वहां तो फिरंगी राज हैगा, अभी कोतवाल साहेब तक नहीं फरमा सकते हैंगे कि ऊंट किस करवट पे कल को बैठेगा। बशीर भाई से कोई लड़ाई तो नहीं हो गई तुम्हारी ?"

लवसूल उर्फ़ लब्बूखां घमंड से अपनी छाती ठोंककर बोला, "चौधरी, ईरानी बच्चा अपने बाप और बात का सच्चा होता है। उस्ताद मेरे उस्ताद हैं। खाली अपना तजुरबा बढ़ाने के लिए उनसे इजाज़त लेकर ऐसा करने की सोच रहा हूं। मतलब यह है कि नई सरकार में एक प्यादा तुम्हारा भी पहुंच जायगा। मेरे उस्ताद तुमको इतना मानते हैं, तुम्हारा उनका धन्धे का ब्यौहार है, जैसे उस्ताद का, वैसे तुम्हारा भी बना रहूंगा। अरे पन्द्रह दिन में उस्ताद आ जाएंगे, वो खुद ही तुमसे मेरी सिफारिश कर देंगे।"

टांग पर टांग चढ़ाकर हथेली से अपना तलवा मलते हुए तोताराम ने सहानुभूतिपूर्वक कहा, "बसीर भाई के साथ तुम मेरी दुकान पे दो-तीन वेर आ चुके होगे, मेरे घर पे भी आए होगे। तुम्हारा और बसीर भाई का रिस्ता मेरी नजरों से कुछ छिपा-ढका नहीं रया हैगा, भइया लब्बूखां। पर कुतवाल साहेब ने अभी बेगम से अपनी गोटी भली-भली बैठाई नईं हैंगी। वैसे समरू की फौज में तेरा भरती होने का ख्याल कुछ बेजा नईं हैगा। तू ठीक ही कहवे है, कल को तेरा वांपे होना हमारे लिए अच्छा भी हो सके है।"

चौधरी के पास खिसकर धीरे से लवसूल ने कहा, "उस हरामज़ादे चिमणाजी के रहते कोतवाल साहब के सूबेदार हो जाने पर भी तुम्हें क्या मिलेगा चौधरी ? माफ करना, छोटा बनकर अदब से कह रहा हूं, मगर खरी बात मुंह पर कह रहा हूं।"

तोताराम की आंखों में कटाव आया, तलवे की मालिश में हथेली ने ज़ोर दिखलाया, हुक्के की गुड़गुड़ाहट थम गई। चौधरी का यह रुख देख, लवसूल उत्साहित होकर और उसके पास आकर कान में फुसफुसाहट घोलने लगा, "बच्चा समझ के मेरी नादानी को माफकर देना चौधरी, मगर टिक्कू के अखाड़े से अभी

सुनके आ रहा हूं कि तुम्हारी बतासो को कोतवाली की खिलअत का शुकराना बनाया जाने वाला है।"

चौधरी की आंखों में घृणा की बिजलियां कौंध उठीं। सीधा होकर बैठ गया। दाहिना हाथ भुजंग काले रोबीले चेहरे की रौनकदार मूंछ पर, और बायां हाथ उसकी जांघ पर थाप देने लगा; बहुत दबाते हुए भी आवाज़ में दहाड़ने का ढंग बराबर बना रहा। चौधरी ने कहा, "किस साले बम्हन के ने अपनी मैयो का दूध पिया हैगा कि मेरे कारखाने में अपना दखल जमावे। उस साले कढ़ी चट्टे को धूल की कढ़ी और लातों के भात का बरमभोज दे दूंगा। मेरे कान में कुछ ऐसी भनक दो-चार दिन पहले भी पड़ चुकी है लब्बूखां। तुमने मेरे साथ ये अपनपौ दिखला के मेरा दिल ले लिया। कभी मौके पे चौधरी तोताराम भी तुम्हारे ऐहसान का बदला ज़रूर चुका देवेगा।" लवसूल ने प्यार से उसकी बांह दबाकर कहा, "जब तक इस शहर में हूं चौधरी, तब तक तुम्हारा ही रहूंगा। जब चाहना खलीफा कालेखां के यहां खबर भिजवा देना। मैं मिल जाऊंगा।"

"खलीफा भी तो उस कढ़ीचट्टे के ही साथ हैंगे।"

"चौधरी साहब, दिलों का हाल तो खुदा ही जानता है, बाकी कल शाम ही को खलीफा अपने चेले-चांटों के भरे दरबार में कह रहे थे कि जो अपने शहर वालों का साथ छोड़ के बाहर वालों का साथ देता है वह शख्स अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारता है।"

"हूं।" चौधरी की गम्भीर हुंकारी पर लवसूल अपना काम समाप्त हुआ समझकर चौधरी से बिदा लेते हुए दो गजरों की फरमाइश भोले ढंग से कर बैठा। एक को दोने में बंधवाया, दूसरा गले में डाला और मगन मन झूमता हुआ चल पड़ा। ऐसी नायाब जवानी का नूर बाज़ार में जिधर से गुजरता था उधर ही 'हटो, बचो' होने लगती थी। छिदम्मी हलवाई की प्रसिद्ध दुकान से ढाई-ढाई सेर बालूशाहियों की दो चंगेर बंधवाई। एक मज़दूर के हाथों में बोझ दिया और आगे बढ़े। चिम्मो भांग वाली के यहां से भांग, अफीम और मोती वगैरह मौसमी मुकव्वियात पड़ी हुई उत्तम विधि से बनाई गई माज़ूम खरीदी और मुहल्ला छिली ईंट की घटिया में खलीफा कालेखां के अखाड़े की तरफ तेज़ कदम चल पड़े।

दिन ढले का समय था, खलीफ़ा जाग तो चुके थे, पर अभी तख्त पर करवटें ही बदल रहे थे। मुक्कियां लगानेवाले शागिर्द छुट्टी पर जा चुके थे लेकिन पंखा झलनेवाले अभी अपनी ड्यूटी पर तैनात थे। बाहर चबूतरे पर दो नौकर सिलों पर बादाम घोंट रहे थे। उन्होंने लवसूल से कह दिया कि खलीफा अभी आराम में हैं।

लवसूल बोला, "मैं किले से आ रहा हूं। यह शाही पंजा देखो। नये सूबेदार जनरल समरू साहब की बेगम साहबा ने मुझे भेजा है।"

फौरन अन्दर खबर पहुंचाई गई। खलीफा थोड़ी ही देर में झूमते हुए बाहर आए। लवसूल को देखकर कहा, "ओह! तुम हो। तुम तो बशीरखां के साथ आए थे?" खलीफा की आंखों में शंका भर गई। अदब से लवसूल ने उत्तर दिया, "जी हां, उन्होंने ही मुझे किले में नौकरी दिलवा दी हैं। ज़रूरी काम से मुलाकात के लिए हाज़िर हुआ हूं।"

बूढ़े उस्ताद की आंखों में समझ की चमक आई। लवसूल का हाथ पकड़कर कोठरी की ओर बढ़ते हुए कहा, "आओ, आओ। इस चंगेर में क्या है?"

'छिदम्मी के यहां की बालूशाहियां हैं उस्ताद, और-ये चिम्मो के यहां की 'दो आलमी अव्वल' की प्याली है उस्ताद !"

'दो आलमी अव्वल' की चमक बालूशाहियों के साथ तीन आलमों की मस्ती बनकर बूढ़े खलीफा की नज़रों में लहराई। लवसूल की बांह को दुबारा मुलायमियत से दबाकर फिर कहा, "आओ, आओ।"

प्याली शाम होने के इंतजार में संभालकर रख दी गई। एक चंगेर भी अमल के वक्त को मीठा बनाने के लिए रखवा दी गई। दूसरी चंगेर अपने पास रखकर उस्ताद बैठ गए। एक-एक बालूशाही खिंचे हाथों लवसूल और अपने शागिर्दों को देकर खलीफा खुद ही भोग लगाने लगे। लवसूल बोला, "उस्ताद बात खासगी है, आधी-पौन घड़ी के लिए तनहाई का हुक्म होना चाहिए।"

"हां-हां, चौं नईं, चौं नईं लौंडो वे, सुन लिया ना ? अबे डल्ला, तू चबूतरे पेई बैठा रइयो भला। ले एक बालूशाही और ले जा।"

एकान्त होने पर लवसूल ने कहा, "मेरे उस्ताद बशीरखां साहब आज सुबह ही दिल्ली गए हैं। एक पखवारे में आ जाएंगे। कल शाम एक बात ऐसी हुई कि मेरे उस्ताद ने मुझे आपसे मिलने का हुक्म दिया। बात यह है कि कल समरू साहब की बेगम ने उस्ताद को किले में बुलवाया था। समरू साहब और उसके सिपहसालार टॉमस साहब से मेरे उस्ताद की पुरानी जान-पहचान···।"

दो बालूशाहियों से भरे हुए मुख से भारी स्वर में खलीफा बोले, "हां-हां, वो सब तो मैं जानू हूं। तू मतलब की बात कह डाल झट्टसानी।"

"बेगम साहबा चाहती हैं कि शहर से मराठों का असर खत्म कर दिया जाए। और तोते के पर भी काट दिए जाएं। शहर के पुराने और शरीफ बाशिन्दों को ही हुकूमत से फ़ायदा मिलना चाहिए।"

"बिलकुल सही बात हैगी। वाब्बा, होशियार औरत हैगी। अरे वई तो है ये जिसे बशीरखां ने समरू के हाथ बेचा था !"

"जी हां खलीफा, इसीलिए उस्ताद बुलाए गए थे। बेगम साहबा ने कहा कि पांच सौ अशर्फियां उसे बतौर इनाम दी जाएंगी जो लाठी बगैर तोड़े ही शहर के सांपों का फन कुचल डाले। उस्ताद ने चलते-चलते मुझसे कहा था, पहले खलीफा से बात करना। मैं उन्हें अपने बाप की तरह मानता हूं। और अगर वे न मानें तो फिर टिक्कू गुरु···।"

"आरेऽ, टिक्कू-फिक्कू साले काफर के बच्चे—इन सालों को मुंह लगाना कहीं भले आदमियों का काम हैगा ! अखाड़ा तो मेराई पुराने बख्तों से सरनाम हैगा। बांके खलीफा जागीर बाश्शा के जमाने में थे।"

"मेरे उस्ताद भी यही कहते थे खलीफा।"

"ठीक है, आगे का नक्शा बतलाओ।" गपागप दो बालूशाहियां मुंह में एक के बाद एक डालकर खलीफा ने बात आगे बढ़ाने का इशारा किया।

"तोते की बतासो नाउन आज शाम तक उड़वा दो खलीफा। चौधरी तब तक दुकान न छोड़ने पाए और न ही उसे यह शुबहा होने पाए कि काम तुम्हारे आदमियों का था। बस इतना ही चाहता हूं। आपकी इतनी मेहरबानी हो जाएगी तो शायद मेरे उस्ताद शहर कोतवाल बना दिए जाएंगे।"

"ठीक है, ठीक है, यह खबर मेरे कने अशर्फियों से भी ज़्यादे अजीज होके आई हैगी। तू बस काम हुआ ही समझ लब्बू बेटा। सिकन्दरे के कंजरों का गिरोह

बुलाऊं हूं अब हाल। दस अशर्फियां तेरे पास हों तो दे दे, बाकी हिसाब-किताब काम होने पर होता रैवेगा।"

"दस नहीं पन्द्रह लो चचा। यह लो। तो अब मैं चलता हूं। चिराग जले का वक्त साधकर अगर ये काम करवा दोगे तो हमें अपनी सरकारी कार्रवाई करने में सहूलियत हो जाएगी।"

"अरे तू बेफिकर हो जा। अभी घुड़सवार दौड़ाऊं हू। मैं भी एक सहारे की तलाश में था। इत्ते बरसों से। आज दुश्मनों सालों की कज़ा का दिन आया है खुदा-खुदा करके।"

"लेकिन चचा, देखिएगा, आपके आदमी मेरी गिरफ्त में न आने पाएं। उस वक्त मैं फौजी वर्दी में रहूंगा, किसी की मुरव्वत न कर पाऊंगा।"

"बेफिकर रह। काम सफाई से होवेगा। तोते की आशना फिर कहां पौंचाई जावेगी ?"

"उसे बेहोश करके ऐसी जगह छिपाना जहां तुम्हारे इशारे पर मैं उसे बरामद कर सकूं। बरामद करवाने वाले को इनाम दिलवा दूंगा।"

"बस-बस, समझ गया। अब देखियो, तेरे और अपने नक्शे ऐसे मिलाऊंगा जैसे दो हाथों से ताली बजे हैगी।"

सूरज ढलने के थोड़ी ही देर बाद छिली ईंट की ढाल से लेकर चिड़ीमार टोले तक मुंडासों से लिपटे मुंहों की आंखे चमकाते हुए बल्लम-धनुर्धारी लोग जगह-जगह फोड़ों-से अचानक फूट पड़े। लोग उन्हें भीड़ बनकर फुलहट्टी के पीछे वाली किसी गली में अचानक जाते हुए कौतूहल और आतंकभरी दृष्टि से देखने लगे; और देखते ही देखते अचानक तोताराम के घर पर धावा हुआ। हाय-तोबा, चीख-पुकार, भगदड़ ! पूरी प्रलय-सी आई, और जैसी अचानक आई थी वैसी ही छू मंतर-सी लोप भी हो गई। जब तक चौधरी तोताराम को खबर पहुंचे और वो आएं-आएं, तब तक मैदान साफ हो चुका था। बतासो ही नहीं, उस घर की चार-पांच बुढ़ियों को छोड़कर बाकी सब औरतें उड़ाई जा चुकी थीं। तोताराम बदले की आग से बावला हो उठा था। विपत्ति में खलीफा की याद आई। कोतवाल का सहारा मन से भंग हो चुका था। वे खलीफा के यहां पहुंचे।

खलीफा उस समय 'दो आलमी अव्वल' के नशे में झूम रहे थे; बालूशाहियों की दूसरी चंगेर सामने रखी थी, खाते हुए बोले, "चौधरी, मैं उस चिमने से खुली दुश्मनायगी तो मोल लूंगा नहीं, तुमसे सफा-सफा कहूं हूं हां, कंजरों की दो टोलियां शहर में मौजूद हैंगी। दिन में चौधरी आया था विह्लों का। सौ-पचास की रकम ढीली करो तो अब हाल बुला दूं।"

"वो कढ़ीचट्टा साला अगर आज उनके हाथों दोज़ख में पौंचा दिया जावे तो पान्सौ रुपै दूंगा।"

"बस तो फिर घण्टे आध घण्टे में तेरे पास भेजूं हूं उन्हें।"

—और—थोड़ी देर में वे लोग, जो थोड़ी देर पहले तोताराम के हाथों के तोते उड़ा ले गए थे, अब तोताराम के पक्षधर होकर चिमणाजी जमादार की बगीची घेरे खड़े थे।

दोपहर से रात आठ बजे तक का समय चिमणाजी अपनी बगीची में ही बिताता था। भरी लू में खस के पर्दों पड़ी उसकी पालकी गली सड़क-बाजारों को पार करती हुई गुजरती थी। दो भिश्ती खस पर छिड़काव करते दौड़ते थे। चार

लठैत, चार बन्दूकधारी आगे-पीछे साथ चलते थे। बड़े-बड़े धन्ना सेठों पर चिमणा-जी का रुआब पड़ता था। बस यही अठारह-बीस आदमी बगीची में उसके साथ रहते थे। वहां के दो-चार माली-नौकर, और आठ-दस मुसाहब किस्म के आदमियों की भीड़ भी रहती थी। इनके अलावा कभी-कभी एकाध लौंडीतवायफ, बस। भांग-बूटी छनन्त-निपटन्त, कसरत-कुश्ती, हंसी-कहकहे, कुछ मतलब की बातें--बस यही सब बेफिक्री की मौज-बहार हर रोज़ रहती थी। आज उनपर सौ-सवा सौ कंजरों की भीड़ अचानक चढ़ दौड़ी थी। चिमणाजी क्रोध से पागल और भय से धक् रह गया था। शहर के शोहदों का शाहे-बेताज इधर कई वर्षों से अपनी कल्पना के किसी भी परदे में इन लोगों की ओर से आशंकित होना ही भूल चुका था। चौधरी तोताराम की ओर से आक्रमण होगा, इसका उसे कभी भय ही नहीं हुआ था। यह अवश्य था कि तोता के बड़े भाई की भूतपूर्व रखैल बतासो के चर्चे बहुत थे और चिमणाजी का रस उन चर्चों में कुछ अधिक हो चला था, पर अभी चिमणाजी के मन में वह स्थिति नहीं आई थी कि तोताराम से किसी प्रकार का झगड़ा मोल लेने की इच्छा करे। कहते हैं कि तन का किया हुआ पाप ही फलता है, मन का निष्क्रिय पाप नहीं, परन्तु चिमणाजी अपने पापों का फल एक बड़े ही निष्क्रिय पाप के बहाने से भोग रहा था। उसकी इनी-गिनी बन्दूकें धनु-र्धारियों की भीड़ को रोक न पाईं। कंजरों के तीर तेज़ चले। बगिया के फाटक टूटे। चिमणाजी मारा गया।

किले की पचास गोरे सिपाहियों की टुकड़ी लेकर फिरंगी लिबास में घोड़े पर सवार लवसूल पहुंच गया। हवाई बन्दूकें दागीं। कंजरों की भीड़ अपने मुखिया के संकेत पर पटापट पिछवाड़े के द्वारे से भागने लगी। फिरंगी सिपाहियों के भीतर घुसने पर दस-पांच भागते हुए कंजर ही पकड़े जा सके। हां, उनके निदेशन के लिए आए हुए चौधरी तोताराम के चारों-पांचों मुड्ढ सरगना पकड़ लिए गए। बगीची में पड़ी लाशों को कोतवाली भेजने के लिए एक सिपाही को बस्ती से ठेले वगैरह लाने के वास्ते भेजा गया। बीस आदमी कैदियों को लेकर किले की तरफ चले। चार मौके पर पहरा देने के लिए छोड़े गए, बाकी पच्चीस की टोली लेकर लवसूल आगे बढ़ा। चौधरी तोताराम गिरफ्तार हुआ। बतासो आदि औरतें बरामद हुईं, किले में पहुंचाई गईं। खलीफा कालेखां को टॉमस साहब से मिलवाया गया। उन्हें इनाम-इकराम मिला। कंजरों के चौधरी को देने के लिए भी एक धनराशि मिली। कालेखां से यह भी कह दिया गया कि जो कंजर गिरफ्तार हुए हैं वे एक बार बेगम साहिबा के सामने पेश किए जाने के बाद छोड़ दिये जाएंगे। खलीफा को साथ लेकर टॉमस और लवसूल खुद आधी रात तक बड़े-बड़े अखाड़ों में घूमे। उसी समय शहर में बेगम की फौज भी जगह-जगह गश्त लगाती हुई रात के सन्नाटे में अपना दबदबा फैलाती रही। शहर के भलेमानसों में रातोंरात बेगम समरू के इन्तजाम की शोहरत फैल गई। तोता और चिमणा के अन्त से जन-साधारण प्रसन्न हुआ।

दूसरे दिन सुबह जब बेगम जुआना समरू की आंखें खुलीं तब आगरे का किला ही नहीं, बल्कि नगर का जन-जन उनका हो चुका था। खुशखबरी सुनते ही जुआना के मन में लवसूल का जादुई आंखों वाला तेजवान स्वरूप आ गया। सचमुच ही जादू कर डाला लवसूल ने।

दरबार के समय तोताराम के जाल में फंसी हुई, और अब शाही बन्दिनी

मछलियां पेश की गईं । उन्हें देखकर जुआना को अपना जाल की मछली बनना याद आ गया । उसे लगा कि जैसे वह भी इन्हीं में गिरफ्तार होकर आई है और अब इन्साफ के हक से शोभित हो रही है । तोताराम चौधरी को फुलछट्टी के चौराहे पर उसी की दुकान के चबूतरे पर, गड्ढे में आधा गड़वाकर शिकारी कुत्तों से नोचे जाने का हुक्म दिया । बन्दियों ने बेगम का रुख देखकर अपनी भावी सुरक्षा के लिहाज से भी ईसाई होना स्वीकार किया । बतासो सबसे पहले राजी हुई ।

सारा दिन लवसूल इस प्रतीक्षा में बेकल रहा कि बेगम साहिबा के हुज़ूर में शाबाशी पाने के लिए अब बुलाया जाएगा ।

अगले दिन इतवार था । जुआना, टॉमस और तमाम यूरोपियन अफसरों के साथ प्रभु ईसा के झुंड में शामिल होने वाली नई भेड़ों का काफिला लेकर पूरे शाही ठाठ से अकबरी काल के बने उत्तर भारत के सबसे पुराने गिरजाघर में प्रार्थना के लिए चलीं । उस गिरजाघर में जुआना पहले भी कई बार जा चुकी है । यहीं उसके बपतिस्मा लिया था, दिलाराम से जुआना बनी थी और अब अपनी ही जैसी आठ-दस लड़कियों को बपतिस्मा दिलाने के वास्ते लिए जा रही है ।

सड़कों पर जय-जयकार हो रहा है । हाथी के हौदे पर बेगम साहबा के पीछे बैठी हुई महबूबा इधर-उधर भीड़ में रुपये-पैसे फेंक रही है । जो एक झलक बेगम को देखता है वही कहता है कि ऐसी सुन्दरी नहीं देखी; स्वर्ग की देवी लगती है ।

और 'स्वर्ग की देवी' का मन उस समय नये-नये कुलाबे भिड़ा रहा था । वह सोच रही थी कि बतासो को ईसाई बनाकर उसे समरू की सेवा में नियुक्त करना ठीक होगा । मुश्तरी अब ज़रूरत से ज़्यादा समरू से बंध गई है । टॉमस सुबह बतलाता था कि यह औरत बड़ी कोक-कला निपुण है । टॉमस की दासी मेरी को बहुत दिनों से वह अपनी सेवा में लेना चाहती है । जुआना अपने मन में टॉमस के लिए नई बांदी का चेहरा मन ही मन खोजती चली जा रही है । मेरी शादी-शुदा है और अपने पति को बहुत चाहती भी है । टॉमस भी सिद्धान्त वाला आदमी है । वह दूसरे की पत्नी को कभी अपनी भोग्या न बनाएगा, केवल समरू की एक पत्नी छोड़कर । वह 'एक' अपने-आपको 'सिर्फ एक' बनाए रखने के लिए व्यवस्था करना चाहती है । सुख के लिए टॉमस केवल जुआना के शरीर पर ही केन्द्रीभूत न रहेगा, वरना टॉमस का आग्रह कहीं न कहीं पर जुआना को क्रमशः विवश करता जाएगा । नहीं, जुआना ऐसा हरगिज नहीं होने देगी । वह एक नहीं, दो-दो खिलौने टॉमस को उपहार में देगी । ···और लवसूल ? 'नहीं, अभी कुछ दिनों तक उसे अपने सामने न बुलाऊंगी । उसे देखकर लगता है कि बशीरखां यहां भी मेरे पीछे-पीछे चला आया है । मुझपर एक नया एहसान लादकर मुझसे मेरा अपनापन मांग रहा है । मैं नहीं दूंगी ।'

और लवसूल गिरजाघर में भी यही एकान्त प्रार्थना करता रह गया कि "हे प्रभु, एक बार मरयम-उल्-अस्मत की नज़रे-इनायत मुझपर भी पड़ जाय," पर प्रभु ने उस दिन भी उसकी प्रार्थना नहीं सुनी, महज टॉमस से यह समाचार अवश्य पाया कि वह आगरे का नायब कोतवाल मुकर्रर किया गया है ।

अकेलापन ! आगे-पीछे की ज़िन्दगी एक निकम्मे सफर के सिवा और कुछ नहीं

रही, उसके साथ कोई भाव नहीं जुड़ता, न सुख न दुख। नवाब जनरल वाल्टर रेनहार्ड अपनी अट्ठावनवीं वर्षगांठ के दिन सवेरे से ही एकदम सूने थे। मुश्तरी ने सुबह उठते ही उन्हें देवी मरयम का चित्र, आईना और दही-मछली दिखाकर दैनिक शकुन किए, फिर जन्मदिन की मुबारकबाद दी। अपनी सालगिरह की सूचना पाते ही नवाब साहब गंभीर हो गए। थोड़ी देर चुप रहने के बाद उन्होंने कहा, "आज हम किसी से भी मिलना पसन्द नहीं करेंगे।"

"हुज़ूर छोटी बेगम···"

"कोई नहीं। सालगिरह मनाने के लिए तनहाई से ज़्यादा हसीन और पुर-सुकून शै कोई नहीं।" कहने के साथ ही नवाब साहब के कलेजे से एक आह निकली। सुनकर मुश्तरी की आंखें भर आईं।

नवाब साहब की सालगिरह का दिन त्योहार की तरह मनाया जाता था। गरीबों को खैरात बांटी जाती, फौज परेड करती, नवाब साहब सलामी लेते। दिन-भर चहल-पहल रहती, रात को जश्न मनाया जाता, नवाब साहब जुआना बेगम के साथ गिरजाघर में प्रार्थना करने जाते, मगर आज नवाब साहब के हर चलन पर अपने नादिरी हुक्म के कुफ्ल डाल दिए थे।

मुगलिया-हिन्दुस्तानी रिवाजों को अपना लेने के कारण समरू नवाब के जन्मदिन पर धन-धान्य से तुलादान बड़े उत्साह से किया करते थे। सूबेदार की हैसियत से यहां आने पर पिछले वर्ष उनकी वर्षगांठ विशेष धूमधाम से मनी थी। जुआना बेगम ने दिल्ली के कई सरदारों और वृन्दावन के महन्त को भी आमंत्रित किया था। इस बार भी अपने पति के जन्मदिन को, बेगम ने कुछ महत्त्वपूर्ण राजपुरुषों को बुलाकर, विशेष महत्त्व देने की व्यवस्था पहले ही से कर रखी है। लेकिन नवाब साहब आज यह हठ साध करके ही उठे हैं कि कोई रस्म-रिवाज न होगा, किसी से मुलाकात नहीं होगी। किले में यह खबर फैलते देर न लगी। टॉमस ने सुना; बेगम साहबा के कानों में भी भनक पड़ी। दोनों अलग-अलग चिन्ताओं में पड़े। कुछ महीनों से समरू साहब टॉमस से सीधे मुंह बात नहीं करते, दो-एक बार मातहतों के सामने तक टॉमस को झिड़क दिया था। तब से टॉमस ने उनके सामने जाना ही छोड़ दिया है। आगरे के किले में सूबेदार समरू के पदार्पण के दिन से बेगम दिन में दो बार नियमपूर्वक अपने पति की सेवा में जाती है—दिन भर राजकाज देखने के बाद एक बार इसका ब्योरा देने के लिए और दूसरी बार रात के नौ बजे पति के साथ प्रार्थना करने के लिए। बेगम कई महीनों से यह जानती है कि पति को उसके और टॉमस के सम्बन्ध की टोह लग गई है। समरू ने आज तक खुलकर जुआना से कुछ नहीं कहा; इसी तरह जुआना ने भी आज तक कोई खुली सफाई पेश नहीं की, लेकिन यह तनातनी बराबर दोनों में चली आ रही है। यह होते हुए भी अब तक जुआना अपने पति से जो चाहती है करा लेती है। एक वर्ष से जुआना का धार्मिक आडम्बर बढ़ गया है। आगरे का विदेशी ईसाई समाज, खास तौर से पादरी वर्ग बेगम को बहुत मानने लगा है। रोम के पोप तक उसकी भेंटें पहुंचने लगी हैं। जुआना के आधी रात तक के व्यस्त कार्यक्रमों में (मेरी और महबूबा को छोड़कर) उसका बड़े से बड़ा भेदिया दुश्मन भी उसके चरित्र में कहीं एक दाग अब तक नहीं ढूंढ़ पाया। दूर-दूर तक बेगम के चरित्र की धाक भी उसकी सुन्दरता और राजनीतिक कुशलता के समान ही बंधी हुई है। अपने पति के सामने सारे जगत की वाहवाही

का तेज लेकर वह उनके किसी मीठे-तीखे व्यंग्य या विरोध को बराबर निस्तेज कर देती है। इसीलिए पति के इस आकस्मिक हठ का कारण समझने के वास्ते खबर मिलते ही आई। मुश्तरी ने बाआदब उसके सामने सिर झुका लिया और दरवाज़े के बीचोंबीच में खड़ी हो गई। जुआना के लिए यह एक अनहोनी बात थी। वह एक पल के लिए ठिठकी, अपने मन के क्रोध पर काबू किया। फिर संयत स्वर में पूछा, "हमारे लिए भी यह हुक्म हुआ है?"

"सरकार ने अपनी जबाने-मुबारक से सिर्फ इतना ही फरमाया है कि वे किसी से भी मुलाकात नहीं करेंगे।"

"परे हट। मेरा शुमार 'कोई और किसी' में नहीं है।"

जुआना आगे बढ़ने लगी। मुश्तरी न तो उसे रोकने की ही हिम्मत कर सकी और न अदब की वजह से की हुई अपनी गलतबयानी को सुधारने की हिम्मत ही। और बेगम अन्दर पहुंच गई।

नवाब साहब आज सुबह से ही शराब के जाम ढालने बैठ गए थे। उन्होंने एक बार नज़र उठाकर जुआना को देखा, पूछा, "मुश्तरी ने क्या आपको मेरा हुक्म नहीं सुनाया था?"

जुआना को लगा कि आज उसके रूप का जादू नवाब साहब को पहली बार बांधने में असफल रहा है। उनके स्वर में ऐसी बेरुखी आज तक नहीं देखी थी। मुलायमियत-भरे संयत स्वर में बोली, "मैंने समझा कि वह हुक्म मेरे वास्ते नहीं है।"

"हाकिम का इन्साफ सबके लिए बराबर ही होता है। तशरीफ ले जाइए। आज के दिन हम किसी भी दगाबाज की सूरत नहीं देखना चाहते।"

जुआना मन ही मन में लड़खड़ा गई। बेबसी में जनाना हथियार इस्तेमाल किया, आंखों में आंसू भरकर बोली, "मेरे लिए मौत इस इल्जाम से बेहतर होती, आज के मुकद्दस दिन आपके मुबारक हाथों से मारी जाऊं तो मुझे जन्नत नसीब हो जाए।"

"दगाबाजों के लिए दोजख ही बेहतर मुकाम है। आप यह न भूलिए बेगम साहबा, कि वाल्टर रेनहार्ड ने इन सत्तावन बरसों में यूरोप से लेकर हिन्दुस्तान तक की खाक छानी हैं। उसे धोखा देने वाला इन्सान आज तक दुनिया में पैदा ही नहीं हुआ, हसीन कुतियों की तो फिर बिसात ही क्या है। चली जाओ यहां से, वरना ··"

"वरना हुज़ूर क्या करेंगे?" जुआना ने भय का भाव छोड़कर अब सख्ती दिखलाई। नवाब साहब की गहरी नीली आंखों में खूनी चमक आ गई। पतले-पतले होंठ भिंच गए। नफरत से जुआना को देखकर कहा, "मैं तुझको और तेरे यार को अभी पल-भर में दोज़ख की आग में जला सकता हूं।"

"मेरा यार वाल्टर रेनहार्ड नाम का एक बेवफा इन्सान ··"

"तेरा यार वह जिसके साथ तूने कल रात बिताई थी।"

"नवाब साहब बजा फरमाते है, कल रात ख्वाब में खुद हुज़ूर ही मेरे साथ थे।"

"मेरे सामने झूठ बोलने की कोशिश न करो जुआना। मैं उम्र-भर किसी-किसी पर यकीन नहीं कर सका था, खुदा जाने क्यों यह समझ बैठा कि तुम भरोसा करने के काबिल हो।"

"वाल्टर, देखती हूं कि इधर अरसे से तुम्हारे मन में एक चोर बैठा है और उसकी वजह से तुम मुझे और टॉमस को गलत समझने की ज़िद कर रहे हो।"

"गलत ?" वाल्टर कुर्सी छोड़कर तेजी से उठ खड़ा हुआ और झपटकर जुआना के गले में अपने दोनों हाथ ज़ोर से रखकर उसे दबाने की मुद्रा में दांत पीसकर बोला, "कुत्ती कहीं की, तेरे इस बेवफा हुस्न से वह वफादार बदसूरती कहीं ज्यादा अच्छी है जो मुश्तरी ने पाई है। मैंने एक बार नहीं कई बार तुझे और टॉमस को रात में एक साथ देखा है। तू समझती है कि दुनिया के नज़रों से अपनी काली हरकतों को बचा सकती है ? बोल, कल रात दो बजे तेरे कमरे में टॉमस आया था कि नहीं ?"

"जी हां, आया था, लेकिन जिस काम के लिए आप समझते हैं उस काम के लिए नहीं।"

"तब फिर किसलिए आया था ?"

"आगरे के पादरियों में कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनके साथ मिलकर अंग्रेज़ आपको मारने की तरकीब कर रहे हैं। टॉमस अक्सर खुफिया तौर पर भी मेरे पास आता है। खुद हुज़ूर ने ही इस कनीज को एक बार नसीहत दी थी कि सियासत का खेल परदा-दर-परदा सात फाटकों में बन्द होकर खेलना चाहिए, ताकि इस हाथ की खबर उस हाथ को भी न लगे।"

तू मेरी ही बातों से मुझी को झूठा बनाना चाहती है ! तेरे लामिसाल हुस्न ने अब तक मुझे मजबूर कर रखा है, वरना एक लम्हे में तेरा यह घरौंदा तोड़ देता।"

"अब भी तोड़कर देख लीजिए आली जनाब, दो कौड़ी की खरीदी हुई बांदी की अक्ल लेकर खुद हुज़ूर भी अब चाहने पर अपनी फौज को जुआना के खिलाफ नहीं ले जा सकते। अजमाना चाहें तो हुज़ूर अपने फौज वालों पर अपने हुक्म का जादू चलाकर देख लें।"

समरू चुप रहा। जुआना के गले पर उसके हाथों का कसाव ढीला पड़ गया। नवाब साहब यह जानते हैं कि उनकी सेना उनकी दूसरी पत्नी को देवी और सच्चरित्रता की सजीव मूर्ति मानकर श्रद्धा करती है। जुआना का पाप मुश्तरी ने देखा है। कल रात उसने समरू को भी दिखला दिया और अब उसी देखे हुए सत्य को जुआना एक नये सत्य से जोड़ रही है। उस पर वह अविश्वास करे या विश्वास, उसकी समझ में नहीं आया। जुआना का अप्रतिम तेजोमय सौन्दर्य उसके मन के झूठ को इस तरीके से ढके हुए था कि समरू के मन की आंखें उसे देखकर खुद अपने ही सामने प्रमाणित नहीं कर पाती थीं। उसके हाथों के ढीला पड़ते ही जुआना ने झटककर पति के दोनों हाथ गिरा दिए और कहा, हुज़ूर नवाब साहब, आपके लिए सपने सजाने की दीवानगी में जो औरत आज तक अपनी पुरसियासी चाल को संभल-संभलकर चलती रही, जिसने आपको सरधना की जागीर और यह सूबेदारी दिलवाई, खुद उसी को दाग लगाने के लिए आपने जिसके इशारे पर यह तमाशा किया है वह आज हुज़ूर के देखते ही देखते अपने किए का फल पा जाएगा।" कहकर जुआना तेज़ी से चली गई।

दस-पन्द्रह मिनटों के बाद ही तातारी पहरेदारिनों की एक टुकड़ी ने आकर नवाब समरू के निवासगृह को घेर लिया। मुश्तरी गिरफ्तार हुई। उसकी चीख सुनकर भी नवाब साहब अपने कमरे से बाहर न निकल सके, क्योंकि तातारिनों

के तमंचे कमरे के भीतर ही उनकी राह रोकने के लिए 'बा अदब' आ चुके थे। जीवन-भर दूसरों को धोखा देकर फलने-फूलनेवाला जर्मनी का आवारा, नसीब का चमकता सितारा जनरल वाल्टर रेनहार्ड उर्फ नवाब समरू साहब खुद अपने जीवन का सबसे बड़ा धोखा खा गया। दूध अपने पीनेवाले सांप को ऐसी मस्ती देने लगा कि वह खुद-ब-खुद लालच-ब-लालच दूध नांद में बेहोश होकर सरकता गया और उसी में फिसलकर डूब मरा। पिछली सारी लड़ाइयों में और राज-नीतिक दांव-पेचों में नवाब हमेशा 'खुदा' बनाकर पीछे रखे गए, बेगम आगे रही। उसकी नीतियों की सफलता के बाद नवाब ने विरोध तक करना छोड़ दिया था। अपने सारे अधिकार दूसरी पत्नी को सौंपकर निश्चिन्त मन से निष्क्रिय विलासरत हो गए थे।···स्थिति देखकर खुद समरू ही को लगा कि यही उसका अनिवार्य अंत था। तातारिनों के तने तमंचों से अपने-आपको घिरा हुआ देखते ही सोम्ब्रे हंस पड़ा, मेज से प्याला उठाते हुए चारों तरफ कमरे को अन्दर से घेरकर तातारिन की ओर मुखातिब होकर बोला, "शाहजहां आज दूसरी बार इस किले में कैद हुआ है, और इस बार उसके किसी बेटे से नहीं, बल्कि खुद मुमताज महल ने ही उसे कैद किया। हः हः।"

किले में यह अफवाह फौरन ही उड़ गई कि मुश्तरी ने नवाब साहब को अपने बस में करने के लालच में कोई ऐसा गर्म कुश्ता खिला दिया कि जिससे उनके दिमाग पर बुरा असर हुआ है। शाही हकीम बुलाए गए हैं। फिक्र की कोई बात नहीं। सालगिरह का जश्न बदस्तूर होगा।

सालगिरह की फौजी परेड की तैयारियां हो रही हैं। रात की महफिल के लिए झाड़-फानूसों की सफाई हो रही है, दीवाने-खास दुल्हन-सा सजाया जा रहा है। चारों ओर भागदौड़, चहल-पहल।

किले के एक तहखाने में एक दीवार से जकड़कर बांधी गई मुश्तरी के तीनों तरफ उसके शरीर से एकदम सटाकर एक नई दीवार बनाई जा रही है जो उसकी कमर तक पहुंच चुकी है और तेजी से ऊंचे चढ़ रही है। बेगम जुआना समरू खुद कुर्सी पर बैठकर अपने सामने यह काम करवा रही है। पंखा झलने के लिए सिर्फ महबूबा ही मौजूद है। ऊपर दरवाज़े पर बेगम के बड़े भरोसेदार पुराने नमकख्वार सिपाही चौकसी कर रहे हैं।

मुश्तरी के दीवार में चुने जाने की खबर सुनकर समरू नवाब तड़प उठे थे। पहले तो बेगम से मिलने की कोशिश की, असफल होने पर जुआना बेगम के नाम एक पत्र लिखकर बड़े ही कारुणिक ढंग से मुश्तरी के प्राणों की भीख मांगी। तातारिन पहरेदारिनों की जमादार उस पत्र को लेकर बेगम साहबा के पास आई थी। पत्र नीचे पहुंचाया गया। सिपाही भी दिल से यह नहीं चाहते थे कि मुश्तरी की जान इस तरह से ली जाए। रंग पक्का काला होते हुए नाक-नक्शा ऐसा सुडौल और मुंह ऐसा भोला-भाला-सा है कि देखने वाले को सुहाता है। फिर जानने वाले यह जानते हैं कि जी-जान से नवाब साहब की सेवा करती है और किसी छल-छंद में नहीं है। नादानी में बेगम साहबा के खिलाफ नवाब साहब से कुछ गलतबयानी इसने जरूर की होगी और उसके लिए इसे कोई सजा भी मिलनी चाहिए, पर यह

सजा सत्रह-अठारह बरस की नादान मगर वफादार लड़की के लिए बहुत सख्त है।

एक चौकीदार खत लेकर नीचे गया। थोड़ी देर ही देर में वह लौट भी आया। तातारिन जमादार और दूसरा चौकीदार हाशिमखां उत्सुक होकर आगे बढ़े। हाशिमखां ने चौकीदार कादिरबख्श से पूछा, "क्या कहा ?"

कादिरबख्श ने फीकी मुस्कान के साथ अपनी मुट्ठी खोलकर समरू के पत्र के चार फटे टुकड़े दिखला दिए, तातारिन की ओर उन्हें बढ़ाते हुए कहा, "हुक्म हुआ है कि यही खत का जवाब है, नवाब साहब को खिदमत में पेश किया जाए।"

समरू नवाब की उमरों के पुराने नमकख्वार हाशिमखां ने दुःख व अचरज के साथ कहा, "नवाब का कहना भी न माना ! उफ ! हुस्न की तहों के अन्दर से नफरत की जहरीली नाग़िन निकलेगी, यह कभी सोचा भी न था।"

चेहरे से कठोर लगने वाली तातारित भी विचार में आंखे फैलाकर अपनी छाती पर दोनों हाथ रखकर बोली, "उफ हैरत है कि जवान मासूम लड़की को यों जीते-जी दीवार में चुनवाते हुए वेगम साहबा का कलेजा नहीं फटता !···दीवार कहां तक चुन गई कादिरबख्श ?"

"मुश्तरी के सीने तक पहुंच चुकी है। घड़ी-भर में वह सलोनो चेहरा पुख्ता दीवार के पीछे छिप जाएगा।"

"चलूं। नवाब वेचारे जवाव की इन्तजारी में छटपटा रहे होंगे।"

खत के फटे टुकड़े दवाकर तातारिन चली गई। दोनों चौकीदार उदास बैठें बातें करने लगे। हाशिमखां कहने लगा, "वड़े-वड़े अमीरों-उमरा जिनकी नज़रे-इनायत के हमेशा मुश्ताक रहे वो सरधना के फिरंगी नवाब आज खुद अपने ही घर में यों बेबस हैं। तुफ है। जिस औरत को एक दिन खरीदकर लाए थे, वही आज उनकी छाती पर यों मूंग दल रही है।"

हाशिम भाई, सरधना की फौजें इस वक्त नवाब साहब नहीं बल्कि बेगम साहबा हुक्म सुनने और मानने की आदी हो चुकी हैं। शराब और औरत ने आज समरू साहब को कहीं···"

नीचे से आनेवाली नारी कंठ की मर्मांतक चीखों ने सकते का आलम पैदा कर दिया।

"क्या हुआ ? ये चीख तो मुश्तरी की ही है।"

"ज़रूर कोई और सितम ढाया जा रहा होगा।"

नीचे तहखाने में मुश्तरी की दोनों आंखें गर्म सलाखें घुसेड़कर फोड़ी जा चुकी थीं। उस पर यह इल्जाम था कि बेगम साहबा को बड़ी मगरूर आंखें दिखलाती है। आंखें दागी जाने के बाद मुश्तरी चीखकर थक गई, उसका सिर झुक गया, आंखों का लहू छाती पर बहता रहा।

जुआना ने हुक्म दिया, "दीवार चुनने का काम फिर से शुरू हो।"

महबूबा ने झुककर गिड़गिड़ाते हुए कहा, "हुज़ूर, मुश्तरी को अब मुनासिब सजा मिल चुकी। उसकी आंखों में बहते हुए लहू के धारे नादिरशाही कत्ले-आम से ज़्यादा दर्दनाक लगते हैं। अब इसे दीवार में न चुनवाइए।"

ठंडी, सधी आवाज़ में बेगम ने उत्तर दिया, "इंसाफ अंधा और बहरा होता है महबूबा ! कसूरवार को सजा मिलनी ही चाहिए। इस नमकहराम ने हमारे शौहर

को हमारे खिलाफ करने का जुर्म किया और ऊपर से हमें ही मगरूरी से आंखें दिखलाती थी।"

दर्द से कांपते किन्तु क्रोध से घृणा से, तीखे स्वर में मुश्तरी ने कहा, "वो आंखें तो अब तुम्हें न दिखा सकूंगी जुआना, लेकिन मैं तुम्हारे नाम पर थूकूंगी, तुम्हारे मुंह पर थूकूंगी और दीवार चुन जाने पर भी अपनी आखिरी सांस तक इन ईंटों से कहती रहूंगी कि जुआना दगाबाज है। इसने अपने मालिक के सिपहसालार को अपने हुस्न का लालच···"

"शेरअली, इसकी नापाक जबान पर दहकते अंगारे रखे जाएं।"

मुश्तरी की ज़बान से एक चीख दबाते-दबाते भी निकल ही गई। लेकिन मुश्तरी घमंड और शान से बोली, "यह हौसला भी निकाल लो जुआना। किसी लैला, किसी शीरीं को इश्क में आज तक क्या मरते दम तक चैन मिला है जो मुझे ही मिले! जलाओ मेरी जबान। मैं तब तक चिल्ला-चिल्लाकर कहूंगी कि मुझे नवाब समरू की दौलत से नहीं बल्कि उनसे इश्क है, उनसे इश्क है, उनसे···"

"मक्कारा, मरते वक्त तो सच बोला होता।"

"मक्कारा तू है जुआना। तुझे नवाब साहब की दौलत से इश्क था, मुझे उनसे। तूने उन्हें बस में करने के लिए ईसाई मज़हब कबूल किया था और मैं उनकी पाक मुहब्बत में हजरत ईसा की तरह अपनी जान कुर्बान कर रही हूं।"

"दीवार तेजी से चुनी जाए।" बेगम साहबा ने तड़पकर हुक्म दिया।

आधे घन्टे के बाद बेगम साहबा फौजी परेड की सलामी लेने गई। फिर उसके बाद उन्होंने अपनी सेना के ओहदेदारों को इनाम बांटे। सिपहसालार टॉमस को सोने का जड़ाऊ तमगा पहनाया, उसके बाद लवसूल का नम्बर आया।

अपने देश के फौजी लिबास में अदब और शान से कदम रखता हुआ लवसूल प्रतिक्षण जुआना के निकट और निकट आ रहा था। साल भर में अपने ओहदे की सुख-सुविधाएं और मान-सफलता आदि से उसके शरीर की पुष्टि, उसके चेहरे की कान्ति को और अधिक उभार मिल गया। लगभग डेढ वर्ष से सधा हुआ ब्रह्मचर्य और स्वानुशासन का गौरव उस कान्ति को चौबाला कर रहा है। उसके पास आते ही जुआना बेगम का दिल जैसे थम-सा गया। पिछले एक साल में लवसूल का जादू उसे इतना दहलाता रहा है कि वह उससे जहां तक होता है बचने और कतराने की कोशिश ही करती है। लवसूल की सुन्दरता और जवानी उसकी एक दबी चाहना है, उसके ऊपर उसके धर्म और चरित्र की निष्ठा का आतंक है और इससे भी ऊपर इस समय जुआना के मन में यह भय है कि समरू के बंदी बनाए जाने से लवसूल अप्रसन्न है।

लवलूस ने नजरें उठाकर देखा। उसकी जिन आंखों में जुआना को अपने प्रति अगाध श्रद्धा की स्निग्धता, भक्त की भगवान के प्रति भूखी चाहना जैसा भाव सदा मिलता था, वह आज उनमें नहीं था, आंखें दर्द-भरे सवालिया निशान जड़े एक लम्बे वाक्य जैसी जुआना को दिखलाई पड़ रही थीं। तमगा हाथ में लिए हुए जुआना इन आंखों को देखकर कांप गई। संयोग से लवसूल बोल उठा, "इस जलसे के बाद बेगमे-आलिया के मसरूफ वक्त से चन्द लम्हात अपने वास्ते लेने की इज़ाजत चाहता हूं।"

यह कहते हुए भी आंखें वैसे ही सवालिया सूनेपन से भरी रहीं। जुआना को विजय पाने के लिए अब केवल अपने नारीत्व का बल ही रह गया था। बड़े ही

स्नेह से उसे देखते हुए तमगा पहनाते हुए धीरे से कहा, "मैं खुद तुम्हें बुलाकर सब कुछ बतलाना चाहती थी। महबूबा से कह देना कि रात के जश्न से पहले वह मेरे सिगारघर में तुम्हें पहुंचा दे। जीसस की मेहरे-नज़र सदा तुम पर रहे, सदा परवान चढ़े।" बेगम ने महसूस किया कि उसकी आवाज़ से लवसूल की आंखों की सूनी गली में एक हल्की-सी चिकनाई की धार फिर से बह निकली है। जुआना के लिए इतनी-सी जीत ही इस समय बड़ी आस्था देनेवाली थी। और इसी आस्था की ठंडक में बहुत ही अच्छी तरह से यह राज़ खुल गया कि उसका मन पहले दिन ही से लवसूल पर निसार है। जो कड़ी बशीरखां के साथ टूटी थी वही लवसूल के साथ जुड़ गई है। जुआना का दिल पत्थर हो गया है। मगर उस पत्थर के अन्दर मुन्नी, दिलाराम का दिल अब भी पानी के सोते-सा बाकी बच गया है, और वह दिल अब भी किसी पर रीझा हुआ है। जुआना नहीं चाहती कि वह किसी से दिल लगाए, पर दिलाराम का दिल किसी पर आ जाए तो जुआना बेचारी क्या करे। अपने इस नये प्रेम की स्पष्ट अनुभूति से जुआना के मन की आध्यात्मिक शान्ति मिली। दिन-भर के पाप पर पर्दा डालने के लिए आत्मछलावे के रूप में प्यार आ गया।

रात का समय है। बेगम साहबा के कमरे में गुलाबी झाड़-फानूसों की रोशनी वहां की हर चीज़ को गुलाबी बना रही है। जलसे में शरीक होने के लिए जुआना नई पोशाक बदलकर तैयार हो चुकी है, सिर्फ सर के बालों को थोड़ा-बहुत संवारना अभी बाकी है। कमरे में महबूबा के सिवा और कोई नहीं है। दिलाराम ने यूरोप से खास तौर पर सालगिरह के दिन समरू को भेंट करने के लिए मंगवाई गई सोने की जड़ाऊ जेबी घड़ी मेज पर रखे मखमली डिब्बे से उठाकर खोली। पौने आठ का वक्त था। जुआना ने महबूबा से कहा, "उसे ले आ।"

महबूबा आज उदास और गम्भीर थी, बोली, "एक दिन में दो अजाब काफी हैं मुन्नी, अब तीसरा खूने-नाहक न करो।"

"तमीज से बात करो महबूबा!"

"मुश्तरी को दीवार में चुनते देख-देखकर अपने दिल का हक अब मैं पा गई हूं मुन्नी!"

"क्या आज मुझसे लड़ने का इरादा है तुम्हारा?"

"इंसान का दिल खुद अपने ही से लड़ता है बीवी दिलाराम! अपनी ही टक्करों से वह दूसरों को तोड़ता है। और उस वक्त वह यह भूल जाता है कि दूसरों को तोड़ने में वह भी खुद-ब-खुद टूटता चला जा रहा है। तुम्हारे आज में मैं तुम्हारा कल देख रही हूं। इसलिए कहती हूं, तीसरा खूने-नाहक आज न करो।"

"तू पागली हो गई है महबूबा! तू यह भूल जाती है कि बशीरखां ने मुझे बेचने से पहले मेरा दिल तोड़ दिया था। उन्होंने यह भी बतलाया था कि हुकूमत का राज दिलों को तोड़ने में ही है। मैं जो कुछ भी कर रही हूं उसके लिए कर रही हूं।"

"लब्बू मियां बहुत प्यारे और भोले हैं और तुम जिस अन्दाज में इस वक्त बैठी हुई हो वह बतलाता है कि उसकी नाराजगी को रफा करने के लिए तुम उस पर भी अपना जादू इस्तेमाल करना चाहती हो।"

"हर बचत के लिए औरत के पास यही एक हथियार होता है पगली! मेरी

जगह पर अगर नसीब ने तुझे बिठला दिया होता तो तू भी यही करती। बेफिक्र रह, तेरे नन्हें-मुन्ने की जान न लूंगी। जा, उसे बुला ला।"

लवसूल कमरे में दाखिल हुआ। महबूबा फिर से जुआना की चोटी में मोती गूंथने लगी। बड़े प्यार से मुस्कराकर जुआना ने कहा, "आओ लवसूल, बैठो, बैठो न!"

बेगम के सामने रखी हुई कुर्सी पर लवसूल तनकर बैठ गया, जुआना बोली, "मैं जानती हूं कि तुम्हें गहरा सदमा पहुंचा है और तुम्हारे मन में बहुत-से सवालात हैं।"

"सवेरे से मेरी दुनिया घूम रही है बेगम साहबा।"

"तुम्हारी ही तरह आज सुबह मेरी दुनिया भी हवा में फना हो गई थी। जानते हो, मुश्तरी ने क्या कहा था? उसने तुम्हारी मरियम-उल् अस्गत को हुजूर नवाब साहब के सामने बदचलन साबित करने की साजिश रची थी। उसने टॉमस के साथ मुझ पर यह गंदा इल्ज़ाम लगाया जिस पर कोई यकीन तक नहीं कर सकता। सब जानते हैं, तुम भी जानते हो लवसूल कि मैं टॉमस को बहुत चाहती हूं, लेकिन भाई की तरह, दोस्त की तरह। मैं तुम्हें बेहद चाहती हूं, लवसूल। यह महबूबा जानती है कि मैं तुम्हें कितना चाहती हूं। कल अगर कोई मुझ पर यह तोहमत लगाए कि तुम और मैं· · "

"कहने से पहले मैं उसका सर कलम कर दूंगा बेगमे-आलिया! आपको कौन नहीं जानता।"

"सिर्फ एक मेरे शौहर को छोड़कर। वह उस दो कौड़ी की बदजात बांदी के कहने में इस कदर आ गए थे कि अक्ल गंवा बैठे। शराब और औरत उनको इस तरह से बरबाद कर चुकी है कि अब वे खुद अपना ही भला-बुरा पहचानने के काबिल नहीं रहे। सब मेरे नसीब का ही कसूर है, क्या कहूं!" कहकर बेगम साहबा ने एक ठंडी सांस छोड़ दी।

लवसूल सिर झुकाए बैठा रहा, फिर बोला, "एक बार हुजूर नवाब साहब से मिलने की इजाजत चाहता हूं। यह नूर जो कि सारे आलम को रोशनी देने की ताकत रखता है, उनके जैसे आला दिमाग आदमी के पास आकर अंधेरा क्यों बन जाए।"

"मैं तुम्हें खुशी से मिलने की इजाजत देती हूं। यह कहते हुए जुआना ने मेज से घड़ी उठाई, फिर महबूबा की तरफ देखकर कहा, "शरबत ले आ।" जब वह चली गई तो लवसूल को अपने नजदीक बुलाकर वह घड़ी दिखलाती हुई दबे स्वर में बोली, "यह घड़ी मैंने नवाब साहब की सालगिरह पर उनकी नजर करने करने के वास्ते दिल्ली के पुर्तगाली सौदागर से खास तौर पर मगवाई थी, यह देखो!" बेगम ने निःसंकोच उस नायाब घड़ी के दोनों पल्ले खोलकर दिखलाए। एक ओर समय और दूसरी ओर मीने का मिथुन; घड़ी के चलने से वह मिथुन कामकेलि करता था। दिखलाकर घड़ी बन्द की, डिब्बा बन्द किया और उसे देते हुए बोली, "अगर तुम राजी कर सको तो मेरा यह तोहफा मेरे शौहर की नजर कर देना और अगर वे अपने हठ पर ही अड़े रहें तो यह घड़ी तुम्हारी है; अपने पास रखना। तुम्हें मेरी कसम है, किसी को न बतलाना।"

लवसूल पर जादू चल गया, और वह भोला यह जान भी न पाया कि उस पर जादू चला है। बेगम ने महबूबा को उसके साथ कर दिया, ताकि उसके मिलने में कोई अड़चन न पड़े।

किले के विस्तृत फैलाव को पार करता हुआ लवसूल अधीरतावश तेज कदम रखते हुए बीच में महबूबा का साथ देने के वास्ते रुक गया। महबूबा इस समय थके पांवों चल रही थी। उसका तन और मन दोनों ही उदास थे। लवसूल को चुप रहना अखर रहा था। उसका मन सच-झूठ के खिंचाव में था। पिछले एक बरस में उसने नवाब साहब का स्नेह पाया था और बेगम साहबा के प्रति उसकी श्रद्धा उसके मन की कुंठाओं को दबाकर सदा आगे ही बढ़ी थी। बेगम ने उसके भावुक मन की भोली आकांक्षाओं को आज तक कभी भरपूर न दुलराया, मगर इसके साथ ही उसे अपनी ओर सदा खींचे भी रहा। लवसूल केवल इतना ही चाहता था कि उसकी नमकहलाली से संतुष्ट होकर बेगम उसे भी टॉमस की तरह ही अपना अति विश्वस्त जन समझें। उसकी यह आशा बेगम साहबा से अधिक नवाब साहब ने पूरी की थी। वे उसे चाहने लगे थे। लवसूल शतरंज खेलने में कुशल था, नवाब साहब अक्सर इतवार के दिन उसे किले में बुला लेते और शतरंज खेला करते थे। बातों में जिक्र आ जाने पर टॉमस के प्रति उनकी घृणा को देखकर लवसूल के मन को सन्तोष मिलता, और इसी सन्तोष ने पिछले कुछ महीनों में लवसूल को समरू साहब के अधिक निकट ला दिया था। समरू नवाब की नज़रबन्दी के बारे में जुआना बेगम की बातों से लाजवाब हो जाने पर भी उसका धार्मिक मन इस बात से दुखी था कि ईसाई धर्म की आदर्श देवी ने राजनीति के लिए अपने पति को बन्दी करने की कुनीति अपनाई। चलते हुए महबूबा से धीमे स्वर में बोला "नवाब साहब उड़ती चिड़िया के पैर गिन सकते हैं, फिर भी एक मामूली-सी बांदी के कहे में आकर बेगम साहबा पर गलत इल्जाम लगाने की भूल आखिर क्यों की उन्होंने ?" महबूबा कुछ न बोली, लवसूल ने फिर कहा, "टॉमस साहब से वे नाराज तो किसी हद तक जरूर थे, मगर उस नाराजगी में बेगम साहबा का मुबारक नाम इस गंदे तरीके के साथ उन्होंने आखिरकार क्या सोचकर जोड़ा होगा! बेगम साहबा का बड़े से बड़ा दुश्मन भी उनपर ऐसी तोहमत नहीं लगा सकता।"

"दुश्मन इंसान का दिल नहीं देख पाते, दोस्त देख लिया करते हैं।"

"तो क्या नवाब साहब का शक सच है ?" लवसूल ने धड़कते दिल से पूछा।

महबूबा संभल गई, जवाब दिया, "हुस्न की मलिका भूखी है, हुकूमत का आफताब ढल चुका है। इन दोनों की मजबूरियों के बीच सच-झूठ की लुका-छिपी बखूबी चल सकती है। बड़े लोगों के कारनामे हैं लब्बू मियां!"

"मैं तुम्हारी बात समझ गया। बेगम साहबा मन ही मन में नवाब साहब से नाराज हैं। नवाब साहब भी दरअस्ल खुद अपने ही से नाराज हैं, मगर उस नाराजगी को वे टॉमस पर डालकर अपने को हल्का कर लेते हैं।" लवसूल के ध्यान में वह घड़ी आ गई जो बेगम साहबा ने उसे दिखलाई और दी है। वह घड़ी महबूबा की इस बात का समर्थन करती है कि हुस्न की मलिका भूखी है। इससे यह भी साबित होता है कि नवाब साहब का इल्जाम गलत है। बेगम साहबा पवित्र हैं। केवल राजनीतिक रूप से ही टॉमस उनका अति विश्वासपात्र है। और अपनी इस धारणा से उसके कलेजे को ठंडक पहुंची। वह ठंडक अपना अर्थ न समझ पाने पर बेगम साहबा के प्रति पवित्र श्रद्धा में बदल गई। समरू नवाब के

निवास तक पहुंचते हुए लवसूल का मन अपने भोले तर्कों से पुष्ट हो चुका था। महबूबा उसे महल की देखभाल करनेवाली अफसर को सौंपकर चली आई। नवाब समरू दोपहर से अपने पलंग पर खामोश लेटे थे। उन्होंने न कुछ खाया था और न शराब को जाम कबूल किए थे और न हुक्के की सटक ही हाथ में थामी थी। बगैर सूचना दिए लवसूल दबे पांव उनके पलंग के पास पहुंच गया और दरबारी कायदे से कोर्निश की। नवाब साहब ने फटी आंखों उसे देखा, कुछ देर देखते ही रहे, फिर कहा, "क्या मुझे भी इस वक्त दीवार में चुनने का हुक्म हुआ है ?"

"किसकी मजाल है बन्दापरवर, कि ऐसा हुक्म दे ! दिल्ली के बादशाह में वह ताब नहीं और यहां जो हैं वे सबके सब हुज़ूर के ज़रा-से इशारे पर अपनी जानें कुर्बान कर सकते हैं।"

नवाब साहब खामोश हो गए। लवसूल उनके पायताने की तरफ झुककर बैठ गया और उनके पांव को अपने सर से लगाकर बोला, "हुज़ूर की यह उदासी आपकी सालगिरह के मुबारक जश्न पर मुर्दनी बनकर छाई हुई है। बेगम साहबा उदास हैं, आप उदास हैं – फिर हम लोग जिएं किसके सहारे हुज़ूर ?"

"घड़ियाल, के आंसू आंसू नहीं होते मेरे बच्चे। यह आइरिश शैतान मेरे बनाए हुए बहिश्त को दोजख में बदल देगा। पन्द्रह साल पहले मैंने जिसकी जान बख्शी थी यह मेरी जान और माल का गाहक बन बैठा है।"

"किसकी मजाल है हुज़ूर, जो आपकी तरफ आंख भी उठाने की जुर्रत कर सके। मैं सीधा बेगम साहबा के पास से आ रहा हूं। खुदा और क्राइस्ट के बाद वह आप ही को पूजती हैं। मुश्तरी ने…"

"आह ! आह !" नवाब साहब बेसाख्ता कराह उठे। दोनों हाथों से उन्होंने अपना कलेजा दबा लिया। लवसूल फौरन उनके सिरहाने की ओर लपका, उनके हाथों पर अपने हाथ फेरते हुए बोला, "क्या हुआ हुज़ूर, हकीम को बुलावाऊं ?"

"मेरे हकीम अब हजरत मालिकुलमौत ही हैं। जाओ लवसूल, मेरे पास आकर तुम भी दुश्मनों के शक के शिकार हो जाओगे।"

"हुज़ूर के कदमों में रहने की लालच से मैं सारी दुनिया को अपना दुश्मन बना सकता हूं। मगर सरकार गुलाम की इस बात पर यकीन करें कि बेगम साहिबा की पाक शख्सियत हर शक व शुबहा से कोसों परे है।"

नवाब साहब हंसे, उठने की कोशिश करने लगे, लवसूल ने उन्हें सहारा देकर बैठा दिया। यमुना की ओर खुलनेवाले दरवाजों के बाहर द्वादशी का चन्द्रमा चमक रहा था। नवाब साहब ने लवसूल के कन्धे पर एक हाथ रखकर दूसरे से चन्द्रमा की ओर इशारा करते हुए कहा, "वह चांद के दाग को देख रहे हो न ?"

"जी हुज़ूर।"

"इसका दाग तो हर एक दो दिखलाई पड़ जाता है, पर क्या तुम यकीन करोगे बरखुर्दार, कि दाग सूरज में भी होते हैं। यह राज मुझे बहुत बड़े आलिम ने बताया था।"

सुनकर लवसूल के मन की विचित्र दशा हो गई। जुआना बेगम में कोई दाग है, यह वह मान नहीं पाता और नवाब साहब झूठ कह सकते हैं, इसका उसे यकीन नहीं। नवाब साहब की बात काटने की हिम्मत भी उसमें नहीं थी। मन की अड़चन टॉमस के लिए गुस्सा बनकर फूटी, बोला, "हुज़ूर, मेरे आका, मेरी इस बात में बाल बराबर भी फर्क नहीं है। आप मुझे एक हफ्ते की मोहलत दें। टॉमस

अगर वाकई गुनहगार है तो आज के आठवें दिन वह इस दुनिया से उठ जाएगा। अब मुझे भी यकीन होता है कि बेगम साहबा और आपके दरम्यान गलतफहमी की एक दीवार खड़ी करके वह जरूर कोई गहरी साजिश रच रहा होगा। बेगम साहिबा ऐसी पाक रूह वाली खातून को बदनाम करके हुज़ूर का सुकूने जिन्दगी छीनने वाले को मैं हरगिज-हरगिज जिन्दा नहीं रहने दूंगा। आप देखिए हुज़ूर, बेगम साहिबा ने बड़े इसरार के साथ यह सालगिरह का तोहफा मुझे आपकी खिदमत में पेश करने के लिए दिया है। उसे कुबूल फरमाएं।"

घड़ी देखकर समरू ने कहा, "वक्त की पल-पल की पहचान के वास्ते यह घड़ी तुम्हारी बेगम साहिबा के लिए ज्यादा जरूरी है, लवसूल ! मैं आज सुबह से सिर्फ अपना गुजरा हुआ वक्त ही देख पा रहा हूं। लगता है, आगे का वक्त मेरे लिए चुक गया है।'

"बेगम साहिबा को बड़ी तकलीफ होगी।"

"न, वक्त उनके साथ रहे, इससे बढ़कर वह औरत और कुछ भी नहीं चाहती।"

"वह आपको अजहद चाहती हैं, हुज़ूर !"

"बच्चे को लवसूल। तुम वाकई बहुत प्यारे बच्चे हो। हिन्दोस्तान में मुझे नसीब ने सब कुछ दिया, मगर बीवियां, बीवियां न रही, बेटा कभी बाप का न बना और ये फौज और रियासत ताश के पत्तों-सी मेरे हाथ में रहते हुए भी पराये दांव की जीत में शामिल हो गई। अट्ठावन बरस की जिन्दगी में यूरोप से लेकर यहां तक की खाक छानने के बाद इस वाल्टर रेनहार्ड ने आखिर पाया क्या ? टूटी चारपाई पर पैदा हुआ था और सोने के पलंग पर मरेगा, बस इतना ही तो हासिल किया !"

"मरें हुज़ूर के दुश्मन। आपका साया-ए-रहमत हम पर सदा बना रहेगा।··· यह घड़ी···"

"अगर बेगम साहिबा को लौटाने की हिम्मत न [illegible] सको तो मेरी सौगात के तौर पर इसे अपने पास रखना।···रखो, रखो, बरखुर्दार, अगर तुम्हें अपनी बेगम साहिबा की नाराजगी का खतरा हो तो मैं लिखकर देता हूं।"

"नहीं, नहीं, हुज़ूर··"

"नहीं। कागज-कलम-दवात मंगवाओ।"

कागज पर जनरल वाल्टर रेनहार्ड ने लिखा कि वह अपनी तमाम मनकूला और गैर-मनकूला जायदाद का वारिस अपने हमवतन लवसूल को बनाते हैं, उनकी दोनों बेगमों और बेटे को सिर्फ गुजारा मिलेगा। "दुनिया यह जान ले कि लवसूल मेरा गोद लिया हुआ बेटा है और मैं उसे अपना वारिस मुकर्रर करता हूं।"

महफिल में बैठी हुई बेगम साहिबा के कान में गोयन्दे ने यह भनक डाल दी कि नवाब साहब ने लवसूस को अपना वारिस मुकर्रर किया है। सुनकर बेगम साहिबा का चेहरा गंभीर हो गया और टॉमस का चेहरा बेगम साहिबा से यह खबर पाकर घृणा से कस उठा।

उसी रात में समरू साहब के महल में बन्दूक की गोली दगी। खबर यह उड़ी कि वाल्टर रेनहार्ड ने आत्महत्या कर ली है।

आगरे के रोमन कैथोलिक कब्रिस्तान में नवाब समरू की मृत्यु देह को छः गज जमीन बड़ी शान से मिली। शहर में मातम मनाया गया। बेगम गम की साक्षात् मूर्ति बन गई थी। खाना-पीना तक छोड़ दिया था। जिस कमरे में समरू की मौत हुई, उसी में आठों याम पड़ी रहती थी। राज-काज तक छोड़ दिया था। टॉमस को यह आदेश था कि वह समरू की जमा-जायदाद का प्रबध संभाले और लवसूल को कोतवली से हटाकर सेना का नायब-सिपहसालर बना दिया गया। टॉमस खुश था कि जिस जायदाद को समरू लवसूल को दे गया था वह प्रबन्ध के बहाने अलक्ष्य रूप से उनके अधिकार में आ गई थी। लवसूल को भी इस बात का सन्तोष था कि सेना की कामना बेगम ने उसके हाथों में सौंप दी है। बहुत दिनों से वह यह पद पाने की आकांक्षा मन ही मन में कर रहा था। लेकिन अपने सौभाग्य से सुखी होने पर भी वह दरअसल बेहद दुखी और बेचैन था। उसे बराबर यही खबर मिलती कि बेगम साहिबा ने अब तक मुंह में अन्न का एक दाना भी नहीं रखा।

तीन दिन गुजर गए, विधवा बेगम का अनशन न टूटा। किले में यह अफवाह फैली हुई थी कि अन्न-जल त्यागकर बेगम ने अपने पिता की शरण में जाना ही तय किया है। बेगम वहीं अपने प्राण देंगी जहां उनके पति ने आत्म-हत्या की थी। जुआना के पातिव्रत धर्म की महिमा से फौज का हर सिपाही, किले का हर कर्मचारी, और यहीं तक नहीं बल्कि नगर का जनमानस भी प्रचार के चामत्कारिक ढंग से महिमामंडित कर दिया गया था। हर एक जबान पर बस यही चर्चा थी कि बेगम परम सती-साध्वी और महादेवी हैं। बेगम के राज-काज और राजनीतिक सूझबूझ की भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही थी। बड़े-बड़े सरदार, अमीर व उमरा आगरे के किले में मातमपुर्सी के वास्ते आ रहे थे। टॉमस ही बेगम की तरफ से शोक-संवेदनाएं ग्रहण कर रहा था, स्वयं बेगम किसी को अपना मुख तक नहीं दिखलाती थीं। महबूबा और मेरी को छोड़कर कोई व्यक्ति उनके पास तक नहीं जा सकता था, आवश्यकता होने पर केवल टॉमस ही को बेगम से मिलने की छूट मिली हुई थी।

बेगम की भूख-प्यास ने लवसूल के मन में रात-दिन हलचल मचानी शुरू कर दी। उसका भी खाना-पीना तीसरे दिन छूट गया। उसे लगता था कि समरू ने व्यर्थ ही अपनी जान गंवाई। मृत मुश्तरी के प्रति उसके मन में इस समय अपार क्रोध था। उसी के कारण इस स्वर्ग की देवी को अपार कष्ट मिला है। लवसूल बेगम के आवास-गृह के बावले चक्कर लगाता था वह चाहता था किसी प्रकार उसकी भेंट महबूबा से हो जाए और वह अपनी प्रार्थना बेगम साहिबा की सेवा में पहुंचा दे, हो सके तो वह स्वयं ही उनसे मिलने और प्रार्थना करने का अवसर पा जाए। लेकिन महबूबा बेगम साहिबा को पल-भर के लिए भी अकेला नहीं छोड़ रही थी। हारकर लवसूल टॉमस के पास आ गया, यद्यपि वह उसे पसन्द नहीं करता था।

टॉमस उसे देखकर बेरुखी से बोला, "क्या काम है ?"

"मेरी आपसे यह गुजारिश है कि किसी तरह से बेगम साहिबा को मनाकर ज़िन्दगी की रोजमर्राह से फिर जोड़ दीजिए।"

"वक्त अपने-आप ही यह काम कर देगा। तुम अपनी फर्ज-अदायगी की फिर्क करो।"

इस उत्तर से लवसूल मन ही मन चिढ़ उठा। उसे लगा कि टॉमस शैतान है। तड़ककर बोला, "मैं अपनी फर्ज-अदायगी ही कर रहा हूं टॉमस साहब ! जिस जहाज पर हम सबके नसीब आगे बढ़ रहे हैं वह जहाज ही डूबा जाता है। उसे बचाना ही हमारा सबसे बड़ा फर्ज है।"

"वह फर्ज मेरा है। तुम सिर्फ एक ही काम करके हुजूर बेगम साहिबा के दुखी दिल को थोड़ा-बहुत आराम पहुंचा सकते हो। जन्नत-मकानी नवाब साहब का वसीयतनामा मेरे हाथों में सौंप दो, ताकि बेगम साहिबा के दिल की दूसरी दलहन को मैं मिटा सकूं।"

लवसूल तन गया, बोला, "देना होगा तो वह कागज़ मैं खुद बेगम साहिबा की नज़र करूंगा।"

"वह कागज़ तुम्हें मुझे देना होगा।' टॉमस अफसरी दंभ से बोला।

लवसूल क्रोध के मारे लाल हो उठा। बोला, "वह कागज़ उन हाथों में हरगिज नहीं सौंपा जा सकता जिन पर अपने आखिरी वक्त में नवाब साहब को तनिक भी भरोसा नहीं रह गया था।"

"खामोश, अपनी हैसियत समझकर बात करो ! यह मत समझो कि समरू के दिए हुए उस कागज़ के टुकड़े से तुम जागीरे-सरधना के मालिक बन गए हो।"

"जिनके मन में असली चोर होता है वही दूसरों के दिलों में उसकी तलाश करने का ढोंग भी रचता है।"

"चोर तुम हो लवसूल···"

"मैंने चोरी जरूर की थी लेकिन अपना ईमान कभी नहीं छोड़ा था, और आपको तो समरू साहब ने मेरे मुंह पर दस बार बेईमान कहा था।"

टॉमस तनकर खड़ा हो गया। गुस्से से उसका चेहरा लाल हो उठा। बोला, "निकल जाओ ! मैं तुम्हें नौकरी से बरखास्त करता हूं।"

"यह हक सिर्फ बेगम साहिबा ही को है। अपनी बकवास बन्द करो टॉमस ! मेरा गर्म खून सिर्फ अदब के लिहाज से अपनी उबलन थाम रहा है, वरन्···"

तमंचा पेटी से निकलकर उसके हाथ में आ गया। घृणा और क्रोध से बावले हो रहे जार्ज टॉमस के अनुभव और विचारशीलता ने अन्तिम क्षण पर अपना संयम साधा। उसने कहा, "तमंचे का जवाब तमंचे से दिया जा सकता है लवसूल, मगर यह काम शराफत से होना चाहिए। हम इसी वक्त 'डुएल' के लिए मुकर्रर कर सकते हैं।"

"वक्त खुदा और ईमान की तरह हमेशा मेरे साथ और मेरी तरफ रहता है। तुम अपनी मौत का वक्त और हथियार चुन सकते हो।"

"चार बजे। और मैं समझाता हूं कि पिस्तौल की एक गोली ही तुम्हारे बदकारियों का किस्सः पाक करने के लिए काफी होगी।"

यह खबर फैलते देर न लगी कि टॉमस और लवसूल में आज जोरों की ठन गई है, और गजब होने वाला है। सब तरफ एक सनसनी-सी फैल गई। खबरें रुक न सकीं। मेरी और महबूबा तक भी पहुंची। बेगम साहिबा ने टॉमस को बुलवा भेजा। कमरे में सिर्फ चार ही थे, मेरी और महबूबा दरवाज़े पर खड़ी की गईं। ताकि पूरी निगरानी रहे। निश्चिन्त होते ही जुआना बेगम के चेहरे से शोक का

मुखौटा उतर गया। उसने टॉमस से सारी बातें पूछीं। सुनकर उसे लगा कि टॉमस ने ज्यादती की है। पहली बार उसके मन में यह खटका कि टॉमस से रिश्ता बांधने में उसने ज़रा जल्दबाजी कर दी। आगरे का किला फतह करने के इनाम में टॉमस को अपना रूपदान करने के एक महीने पहले भी अगर लवसूल उसे मिल गया होता तब फिर वह हरगिज यह चूक न करती। टॉमस बेगम के सामने था और लवसूल उसकी कल्पना में। दोनों की समानता नहीं हो सकती। लवसूल बहुत सुन्दर है, जुआना के मन को परास्त कर देता है, जबकि टॉमस खुद जुआना के आगे परास्त हो जाता है। बेगम को इस बात ने भी बहुत छुआ कि लवसूल उसके लिए परेशान है। उसे लगा कि टॉमस का प्रेम लोक-व्यवहार से बधा एक जगह पर निष्प्राण हो जाता है जबकि लवसूल अलौकिक प्रेमी आत्मा है। जुआना का मन लवसूल के ध्यान ने गुपचुप में बहुत मोह लिया और इसीलिए सब सुनकर जवाब देते समय उसके मन में बेरुखी आ गई। बोली, "टॉमस, यह मत भूलो कि मुझे नवाब समरू के हत्यारे का नाम मालूम है। तुमने वह गुनाह किया जो मैं ख्वाब में भी नहीं कर सकती थी, फिर भी तुम्हें माफ किया। तुम्हें अपने शौहर की जगह दी है। क्या मेरे होने वाले शौहर को यह जेब देता है कि वह हमारे एक निहायत की सआदतमन्द भोले और बहादुर नमकख्वार से इस तरह झगड़ा मोल ले?"

"मैं उस बेवकूफ चोर की बदतमीजियां हरगिज-हरगिज बर्दाश्त नहीं करूंगा जुआना।"

"वह तुम्हीं तो थे, जिसने कहा था कि मुझ पर बशीरखां का एहसान है। इसे नौकर रख लो।"

"मैंने गलती की थी।"

"लेकिन मैं गलत काम करने की आदी नहीं हूं टॉमस! उस वक्त तुमने बेवकूफी की या नहीं, यह सवाल बहसतलब हो सकता है। मगर इस वक्त तुमने जो गलती की है वह जुआना के होने वाले शौहर को ख्वाब में भी नहीं करनी चाहिए थी। तुमने मेरा सारा खेल ही बरबाद कर दिया। समरू ने लवसूल को वसीयत लिख दी, समरू लवसूल को अपने बेटे की तरह से चाहता था इसकी तुम्हें जलन थी। तुमने यह क्यों नहीं सोचा कि समरू जैसे होशियार दुश्मन को इस वक्त जिन्दा रहने की कितनी जरूरत थी? कैद के बाद उसकी मौत ने मुझे और तुम्हें दुनिया की नजरों में किसी हद तक शक व शुबहे का बाइस बना दिया है। वह क्या इस वक्त हमारे लिए मुफीद हुआ? इतनी बेरहमी से मुश्तरी की जान लेकर मैंने एक तीर से दो शिकार किए थे, एक तरफ लोगों में उभरते शक की निगाहें फोड़ी थीं और दूसरी ओर समरू को खुद-ब-खुद बुझने के लिए निकम्मा बनाकर हुकूमत हर तरफ से तुम्हारे हाथों में ऐलानिया सौंप देने की तरकीब साधी थी। लोगों को लगता कि जुआना बेगम अपने होशियार सिपहसालार की कद्र करती है, उनके चाहने का मतलब कुछ और न समझा जाए।"

"मैं पूछता हूं कि अगर समझा भी जाए तो हर्ज क्या है, सियासी दुनिया में ऐसे बहुत-से खेल हुआ ही करते हैं।"

"खेल! (मुस्कराकर) बस यही तो मुझमें और तुममें फर्क है। मेरे लिए सियासत के खेल से ज़िन्दगी का खेल बड़ा है। सियासत के खेल को ज़िन्दगी में इस तरह से समा लें कि ज़िन्दगी का खेल अपने-आपमें एक फन बन जाए। ज़िन्दगी हुनरमन्दों का खेल है और हुनर मन की खूबसूरती की किरनों से ढलता है।

जाओ टॉमस, वाल्टर तुम्हें आइरिश बुद्धू कहा करता था। लगता है वह बात सच है। अब मुझे मजबूर होकर उस लड़के को बुलाना पड़ेगा। तुमने देखा, मैंने कितनी सफाई से तुम्हें समरू की तमाम जायदाद का जिम्मा सौंपकर लवसूल के उस कागज़ को निकम्मा बना दिया था। तुम्हें लवसूल से जलन करने की ज़रूरत ही नहीं थी। उस बेचारे की वफादारी का यह सबूत क्या कुछ कम है कि वसीयत की रूह से समरू की जायदाद का मालिक बनकर उसने फौज को और सारी दुनिया को मेरे खिलाफ न भड़काया! और इससे भी ज़्यादा यह कि मुझसे मिलने की इजाज़त लेने के लिए आला अफसर बनकर वह तुम्हारे पास आया!"

टॉमस गर्दन झुकाए सुन रहा था। जुआना बहुत तेज होकर उसे फटकार रही थी। फुसफुसाहट के स्वर में बातें होने पर भी वह तेजी टॉमस की आत्म-ग्लानि को बढ़ा रही थी और उसकी वह ग्लानि अपने चरम बिन्दु पर तब पहुंची जबकि जुआना ने अपनी बात के अन्त में फटकारकर कहा, "उस लड़के को खुद जाकर मुझसे मिलने का हुक्म दीजिए कि आज शाम को चार बजे वह मुझसे मुलाकात करे। और सुनिए, आज शाम को चार बजे आप अपने कमरे में रहेंगे, मेरी और जोजफ की निगरानी में।" टॉमस स्तब्ध-नत था। जुआना बेगम की फटकारों से वह अनुशासित मनुष्य बनकर बाहर लौटा।

जुआना अब अपने हसीन चेहरे पर तीसरे भाव का मुखौटा चढ़ाने बैठी। दिल की सात तहों के भीतर जुआना अब भी ईमान और इन्सानियत के हुस्न पर मरती है, मगर हठीली होने की वजह से बशीरखां से धोखा खाने के बाद उसने अपने-आपको पत्थर की तरह सख्त बनाना शुरू किया। बहुत ही सतर्कता से उसने अपने व्यक्तित्व की मूर्ति गढ़ी थी। किसी की न बनकर सिर्फ अपनी ही बने रहने के लिए उसके सब काम इस खूबी से होते थे कि दुनिया यह समझे कि वह सबकी है। अपने इसी जीवन-नाटक को इस समय खूब सतर्कता से साधने के लिए जुआना अन्दर से सचेष्ट हो उठी। वह जानती है पिछले तेरह वर्षों के अनेक झूठे भावों को सतर्कतापूर्वक साधने के बाद लवसूल को अपना सच्चा भाव स्वयं अपने से विवश होकर दिया। अपनी इस विवशता से वह मन ही मन दहल रही है। वह लवसूल को अपनी ओर अधिक से अधिक आकर्षित तो करना चाहती है पर वह यह हरगिज नहीं चाहती कि उसके प्रति अपने आकर्षण भाव को वह तनिक भी उसके सामने प्रकट करे। इन दोनों ही चुम्बकों से खिंचकर उसके मन का लोहा लवसूल की रूह का पिंजरा बनने के लिए विचारों की भट्ठी में तपने लगा।

शाम के चार जुआना के लिए आज बड़ी देर से बजनेवाले हैं। जुआना की घड़ी उसके लिए बड़ी बेरहम हो गई है। लवसूल सारे दिन उसकी पलकों में घुलता रहा है। लवसूल के सामने अपने-आपको शोकमूर्ति बनाए रखने के वास्ते उसने आज सचमुच दिन में फलाहार नहीं किया। सचमुच ही दिनभर पड़ी रही। मेरी और महबूबा से भी कोई खास बात न की। मेरी और उसका पति जोजफ अफवाहों के माध्यम से उसके कुशलतम प्रचारक हैं और बहुत ही नमकहलाल भी हैं। और महबूबा दासी से अधिक उसका दूसरा आत्म रूप ही है इन दोनों को जुआना एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ती लेकिन आज दिनभर वे भी उसके होश से छूटी रहीं; सिर्फ लवसूल का ख्याल ही रहा। एक बार अपने बचाव की बारीक तरकीबों का बाड़ा लगा चुकने के बाद उसने अपने मन को तमाम दिन प्रेमी के

ध्यान की निर्मल गंगा में तैरने, डुबकियां लगाने और तरावट लेने की भरपूर छूट दे दी।

आख़िरकार चार बजे। जुआना ने महबूबा से पूछा, "वह आया है?"

"जी, वह तो काफी देर से बैठा हुआ आपके बुलावे की राह देख रहा है।"

महबूबा बाहर गई। जुआना उदासी ओढ़कर लेटगई। लवसूल कमरे में आहिस्ता कदम दाखिल हुआ। जुआना की बन्द आंखों में उसकी परछाईं आ गई, पर वह वैसे ही पड़ी रही। वह अपने उदास चेहरे का जादू डाल रही थी। लवसूल उस गहरे उदास चेहरे को देखता, और अधिक न देख पाने की मज़बूरी में आंखें झुका लेता; फिर पलक-झलक देखता और दुख-भार से नजरें झुक जातीं; बाहर न निकल पाने की वजह से आह कलेजे में तेजी से धंस जाती।

थोड़ी देर तक यह असर डालकर जुआना ने आंखें खोलीं। गहरी उदासी की फीकी मुस्कान होंठों पर खींचकर सूनी आंखों से देखते हुए कहा, "आ गए मेरे हमदम!" कहते हुए आंखें कटोरी-सी भर आईं। लवसूल अपने-आपको संभाल न पाया, उसकी भी आंखें भर आईं। एक क्षण तक आंसू आंसुओं को देखते रहे, जुआना बिलखकर बोली, "हमारा और तुम्हारा सरपरस्त चला गया लवसूल! हम यतीम हो गए।" कहकर जुआना तकिये पर सिर डालकर फूट-फूटकर रो पड़ी।

"हुज़ूर!..." एक डग आगे बढ़कर बस इतना ही कह पाया, फिर गला रुंध गया, बड़ी कठिनाई से अपना स्वर साधकर बोला, "धरती अगर यों जलजलों से भर उठेगी तो उस पर रहने वालों का क्या हश्र होगा! ...आपके आंसू हमें डुबोए दे रहे हैं बेगमे-आलिया।"

"अब जीने की तमन्ना नहीं रही लवसूल। जिसने हाथ पकड़कर एक दिन मुझे दलदल से उबारा था वही अब कुएं में ढकेलकर चला गया। मुझसे नाराज थे तो जान भी मेरी ही लेते, खुदकुशी क्यों की?" कहकर जुआना फिर बिलख-बिलखकर रो पड़ी।

"पछतावे में हुज़ूर, पछतावे में। उस बदकार औरत ने यकीनन किसी दुश्मन की शह पाकर नवाब साहब के मन में आपके खिलाफ जहर घोला था। मेरा दिल कहता है कि यह काम बड़ी बेगम और उसके साहबजादे का है। हुज़ूर नवाब साहब यकीनन अपनी भूल समझ गए थे, और इसी वजह से उन्होंने मेरे नाम वसीयत लिखने की दूसरी भूल की।"

"वह उनकी भूल नहीं थी लवसूल। अपनी गलती को सुधारने का एक शानदार तरीका था। नवाब साहब मुझ यतीम को तुम्हारे ही सहारे छोड़ गए हैं।"

जेब से वसीयतनामा निकालकर जुआना बेगम के कदमों में उसे रखते हुए लवसूल ने कहा, "मेरी नादानी माफ करें बेगमे-आलिया। मिस्टर जार्ज टॉमस के मांगने पर भी मैं यह चीज उनके हाथों में न दे सका। इसके लिए हुज़ूर मुझे जो मुनासिब सजा देना चाहें, दे सकती हैं।"

अकेलापन रहते हुए भी बेगम साहिबा ने अपनी आवाज़ को और भी दबाकर लवसूल से कहा, "तुमने सही काम किया। और यह वसीयतनामा अपने ही पास रखो।"

"नहीं हुज़ूर, यह आपका है।"

"हां-हां, मेरा ही है और तुम भी मेरे ही हो लवसूल। लो, और इसके साथ ही साथ मेरा हाथ भी थाम लो मेरे हमदम। खुदा और यीशू के बाद अब तुम्हीं मेरा सहारा हो।"

लवसूल भावावेश में जाकर सामने घुटनों के बल बैठ गया और विलायती तरीके से बाअदब उसका हाथ चूमकर उसकी उंगलियों को अपनी आंखों से लगा कर बोला, "आपके इस काम को कभी नहीं भूलूंगा हुज़ूर। आपने अपना भरोसा देकर मुझे वह दौलत दी है जिसके आगे दुनिया की हर मिल्कियत हेच है। लेकिन हुज़ूर का यह हुक्म तभी मानूंगा जब कि हुज़ूर मेरी अर्जी कबूल फरमाकर दस्तरख्वान पर अपनी जूठन गिराएंगी।"

"नहीं लवसूल, ऐसे किसी काम के लिए इसरार न करो जिसे मैं कर न सकूं।"

"बजा है हुज़ूर! आपके कदमों पर चलकर मैंने भी आज कुछ नहीं खाया और आगे के लिए भी यही रास्ता अख्तियार करूंगा।"

"मेरे दुख में और दुख न बढ़ाओ, तुम्हें मेरी कसम है लवसूल। महबूबा!" उसके पास आने पर बेगम ने कहा, "समझा अपने नन्हे-मुन्ने को, इसने खाना नहीं खाया है।"

"नन्हे को समझाऊं कि मुन्नी को? माफ करना लब्बू मियां, अकेले में मैं इन्हें मुन्नी ही कहती हूं। यह मेरी मालिका भी है और अजीजुल अजीज गुइयां भी। गम का बोझ खुदा जिस पर डाल दे, उसे सहना ही पड़ता है। तीन दिन हो गए बगैर खाए-पीए इन्हें। मेरी लाख कहीं भी ये नहीं मान रही हैं। अच्छा है, नवाब साहब तो चले ही गए, हम दोनों भी जाने की तैयारी ही कर रही हैं, चलो अब तुम भी हमारे साथ हो गए लब्बू मियां।...खुदा जो दिखलाएगा वह तो देखना ही पड़ेगा।"

"महबूबा बातों में वक्त न गंवा। इनके वास्ते खाने को कुछ ले आ। वरना इस सदमे से तो मेरा दम ही निकल जाएगा।"

"जैसे तुम कह रही हो, वैसे ही लब्बू मियां भी कहेंगे। दो हठीलों को मुझे सौंपकर बशीर मियां मेरे गले में अच्छी फांसी डाल गए हैं, हां नहीं तो! मैं लाती हूं लब्बू मियां। इन्हें खिलाने का जिम्मा तुम्हारा है।"

महबूबा चली गई। बेगम साहिबा पलंग से उतरीं और लवसूल के गाल पर एक मीठी चपत मारकर प्यार में देखते हुए मुस्कराकर कहा, "यह महबूबा के नन्हे-मुन्ने, तू बड़ा जालिम है।"

लवसूल के लिए यह नजर और यह प्यार बड़ा ही रूहानी था। उसे लग रहा था कि जैसे उसे ईसा की मां का दुलार मिल रहा हो। भावुक होकर उसने कहा, "हुज़ूर की वह मेहरे-नजर सारी उमर मुझे मिलती रहे। मेरी बात की लाज रखकर आज आपने मुझे इस दुःख में भी सबसे बड़ा सुख दिया है।" लवसूल की आंखें कहते हुए छलछला उठीं।

महबूबा कुछ फल और मेवे लेकर आ गई। जुआना बेगम ने बड़े नाज और इसरार के साथ संतरे की एक फांक नमक लगाकर पहले महबूबा को अपने हाथ से खिलाने का नाटक साधकर फिर लवसूल को भी अपने ही हाथों बड़े प्यार से खिलाया, इसके बाद आप खाया। इस खाने-पीने के माहौल में तीनों एक कुटुम्ब हो गए। लवसूल का जीवन धन्य-धन्य हो उठा।

बेगम साहबा को फिर से दैनिक जीवन के क्रम की ओर मोड़कर लवसूल को अपने भीतर एक अलौकिक आस्था मिल गई थी। इसी बीच में जुआना बेगम ने आगरा छोड़कर सरधना वापस जाने के लिए दिल्ली-दरबार से आज्ञा मांगी। नवाब समरू के साथ ही आगरे की सूबेदारी समाप्त हो चुकी थी। बेगम ने पूर्व प्रबन्ध करने के लिए लवसूल ही को सरधना भेजा। उसे यह भी आदेश दिया था कि समरू का बेटा जफरयाब यदि उसके प्रबन्ध में कोई विशेष अड़चन डाले तो वह समरू के दत्तक पुत्र की हैसियत से उसे कैद भी कर सकता है। बेगम ने दिल्ली दरबार के प्रभावशाली व्यक्तियों को भी अपने स्वर्गीय पति की वसीयत के सम्बन्ध में सूचना भेज दी थी जिसमें लवसूल की स्वामिभक्ति और योग्यता की बड़ी बड़ाइयां भी बखानी गई थीं।

लेकिन लवसूल को समरू की वसीयत का तनिक भी लोभ न था। पिछले डेढ़ वर्षों में उसने जुआना बेगम का विश्वास पाने की जो एकान्त कामना की थी वह प्रतिफलित हो चुकी थी। टॉमस के प्रति अब उसकी घृणा और भी बढ़ गई थी। जुआना बेगम उसकी दृष्टि में सदा ही सत्य, धर्म और पतिव्रत की साक्षात् प्रतिमा रही थी। अब अपने शोक-प्रदर्शन और विश्वासदान के बाद तो वह उसकी नजरों में और भी अधिक ऊंची उठ गई थीं। जिस 'नन्हे-मुन्ने' शब्द से वह महबूबा पर नाराज हो जाया करता था वह सम्बोधन बेगम साहबा के श्रीमुख द्वारा होने पर लवसूल सचमुच ही खुद अपनी नजरों में भी 'नन्हा-मुन्ना' बन गया था, और यह नन्हा मुन्नापन उसकी जिम्मेदारी के बोध को बालिग बना रहा था। वह नवाब और बेगम की जागीर-जायदाद की रक्षा यक्ष की भांति करेगा। नवाब समरू की विधर्मी पत्नी और पुत्र तथा दुष्ट टॉमस को वह इस पर अपने दांत हरगिज-हरगिज नहीं गड़ाने देगा। यह सम्पदा पवित्र है। भारत में ईसाई साम्राज्य की स्थापना का पहला चरण है। धर्म का साम्राज्य जुआना बेगम के द्वारा ही स्थापित होगा, और वह बेगम साहिबा के प्रमुख सहयोगी के रूप में सारे ईसाई जगत् में विख्यात हो जायेगा। टॉमस यह महत्व हरगिज न पा सकेगा— लवसूल उसे हरगिज पाने न देगा।

लवसूल के मन में जार्ज टॉमस के प्रति ईर्ष्या का भाव पिछले कई महीनों से सकारण ही उत्पन्न हुआ था। जुआना बेगम टॉमस पर अत्यधिक विश्वास करती थी। राजनीति के सारे सूत्र टॉमस के हाथ में थे। टॉमस के प्रति समरू नवाब की घृणा ने उसके ईर्ष्या भाव को और भी पुष्ट किया था। समरू की वसीयत तथा जुआना बेगम के प्रेमपूर्ण व्यवहार ने लवसूल की हीन भावना को एकदम गायब कर दिया। उसके मन में कभी-कभी यह विचार भी जोर से उठ आता था कि स्वर्गीय नवाब साहब उसे अपना धर्मपुत्र घोषित कर गए हैं, उसके सामने टॉमस की कोई हस्ती नहीं है। समय आने पर एक दिन टॉमस को निकाल बाहर करेगा। उसे द्वन्द्व-युद्ध की चुनौती देने के बाद बेगम साहिबा की लताड़ से टॉमस को मुंह की खानी पड़ी, इस बात की खुशी लवसूल को मन ही मन हिंसक बना रही है। उस दिन के बाद से उसने टॉमस से बात करना तक छोड़ दिया था, उसे देखकर वह अपना मुंह फेर लेता था।

जुआना बेगम का काफिला सरधना पहुंच गया। बेगम ने टॉमस को अपनी

जागीर का दफ्तर संभालने का आदेश दिया। जफरयाबखां अपनी सौतेली मां से मिलने तक न आया। लवसूल से तो वह बेहद चिढ़ा हुआ था। एक दिन पूरे उत्पात की मुद्रा में आकर उसने टॉमस से कहा कि औरस पुत्र होने के नाते अपने पिता की गद्दी पर उसे प्रतिष्ठित करने का प्रबन्ध जल्द-से-जल्द होना चाहिए।

टॉमस ने कहा, "आप हुजूर बेगम साहिबा से इसकी निस्बत बात कर लेते तो ज्यादा मुनासिब होता।"

"हम हर किसी से बात नहीं कर सकते। तुम हमारे सिपहसालार हो। लिहाजा तुम्हें अपनी गद्दीनशीनी के माकूल और शानदार इन्तजाम करने का हुक्म देता हूं।"

टॉमस ने अदब का पूरा नाटक साधकर उत्तर दिया, "मैं आपका नमकख्वार हूं, लेकिन दिक्कत यह है कि जन्नतमकानी हुजूर नवाब साहब ने हमारे नायब सिपहसालार लवसूल को अपना वारिस मुकर्रर किया है। देहली के दरबार में यह खबर पहुंचाई जा चुकी है। हम अब मजबूर हैं। बादशाह सलामत ही इसका फैसला कर सकते हैं।"

जफरयाबखां यह सुनकर गुस्से से आगबबूला हो उठा और एक जबान से कहनी न कहनी हजार बातें बक चला। टॉमस कमरा छोड़कर चला गया।

पूरे महल में जफरयाबखां गुस्से में यह बकता फिरा कि वह समरू नवाब का असली बेटा और वारिस है। वह अपने हर दुश्मन का सर कलम करवा देगा। सेना के सिपाहियों के बीच में जाकर वह बगावत करने के लिए भड़काता था और बेगम तथा टॉमस के इशारे पर सिपाही उसका मजाक उड़ाते थे। तमाम दिन वह बावला बना डोलता रहा, हर किसी के मजाक का पात्र बना रहा। किसी ने एक बूंद पानी तक के लिए न पूछा। शाम के वक्त जब वह थककर एकदम निढाल हो चुका और मन के क्रोध ने उसे तपा-तपाकर खुद अपनी ही नजरों में पस्त कर दिया तब बेगम साहिबा के आदेश से लवसूल उसके सामने आया। दस सिपाही उसके साथ थे। लवसूल ने उससे कहा "अगर आप अपनी जबान बन्द न करेंगे तो नवाब जनरल वाल्टर रेनहार्ड के गोद लिए बेटे और उसके वारिस की हैसियत से मैं आप को मुनासिब सजा देने में हरगिज गुरेज न करूंगा।"

सुनते ही जफरयाबखां उछलकर खड़ा हो गया और भेड़िये की तरह गुर्राकर बोला, "विलायती बदमाश, मैं तेरा खून पी लूंगा।" उसके लवसूल की तरफ झपटते ही सिपाहियों ने बढ़कर उसे पकड़ लिया। बिगड़े बच्चे की तरह सिपाहियों की बांहों पर उठा लिया हुआ बेबस जफरयाबखां हाथ-पैर पटकता रहा। एक छोटे-से सजे हुए कमरे में, उसे पहुंचाया गया और गुदगुदे पलंग पर पटक दिया गया। सिपाही लवसूल के साथ बाहर चले गए। लवसूल ने उसे धमकी दी, कहा, "अगर बाइज्जत जिन्दा रहना चाहते हो तो खामोशी अख्तियार करो। वरना मेरे सिपाही तुम्हें उठाकर नीचे खाई में फेंक देंगे। सुन लिया? सुना कि नहीं?" कहते हुए लवसूल ने तमंचा निकालकर उसकी छाती पर अड़ा दिया। डर से पागल होकर वह चीखने लगा और चीखता ही चला गया। लवसूल बाहर निकल आया। थोड़ी देर कमरे में सन्नाटा रहा। जफरयाबखां में उठने की ताब तक नहीं रही। दिनभर की भूख-प्यास और निकम्मा अपमान सहते-सहते वह अब अपने मन ही मन में टूट चुका था।

कमरे में खूबसूरत बांदियां शराब और गजक लेकर आईं। मेरी उनके साथ

थी। जफरयाबखां उन्हें देखकर अपनी आंखें मींच और मुर्दे के मानिन्द पड़ा रहा। यह देखकर मेरी ने फुसफुसाहट-भरे अंदाज से कहा, "नवाब साहब आराम फरमा रहे हैं, देखना इन्हें किसी किस्म की तकलीफ न होने पाए और कोई फौजी अफ़सर हुजूर के आराम में खलल डालने के लिए यहां हरगिज-हरगिज न आने पाए। हुजूर जब जागें तो उनकी पूरी खातिर की जाय, घर के मालिक की तरह, समझीं तुम लोग!"

जफरयाबखां ने फिर भी आंखें न खोलीं। मेरी ने फिर कहा, "किसी फौजी अफसर की तरफ से अगर कोई खाने-पीने की चीज आए तो उसे लेकर फेंक देना। यह शराब जब खत्म हो जाए तो मुझीसे मांगना। मैं जाती हूं। नवाब साहब जागें तो बदला देना कि उनकी एक पुरानी नमकख्वार उनकी खिदमत में हाजिर हुई थी। नवाब साहब अगर मुझसे निकाह पढ़वाने को राजी हो जाएं तो मैं जन्नतमकानी नवाब साहब का वसीयतनामा चुराकर उनकी खिदमत में पेश कर दूंगी। जैसे हुजूर बेगम जुआना ने बड़े नवाब साहब की खिदमत की थी वैसे ही मैं उनकी खिदमत करूंगी और सूबेदारी उन्हें दिलवाकर ही दम लूंगी।"

जफरयाबखां आंखें मींचे सुनता रहा। दिनभर का भूखा-प्यासा था और गद्दीनशीनी की भूख के लिए भी उसे एक सहारे की जरूरत थी। उनकी तबीयत हुई कि आंखें खोलकर अपने ऊपर दया करने वाली स्त्री को देखे, पर मन के मान के कारण वह ऐसा न कर सका। मेरी उसका रुख देखकर मुस्कराई। पलंग के पास से हटते समय उसने एक दासी के कान में कुछ कहा और बाहर चली गई। निर्देश पाई हुई दासी ने पलंग पर लेटकर नवाबजादे पर शोखी से लदकर अपने चुम्बनों से उसका उपचार आरम्भ किया। सभी दासियां आपस में जफरयाबखां के लिए अपनी जानें तक कुर्बान कर देने की कसमें खाने लगीं। भोले नवाबजादे के लिए यह मन को तरावट देनेवाला धोखा उम्दा जाल साबित हुआ। थोड़ी ही देर के बाद वह बहकने लगा।

बेगम जुआना समरू का काम बन चुका था। उसकी सेना की दृष्टि में जफरयाबखां नये सिरे से निकम्मा पागल सिद्ध किया जा चुका था। बेचारा शराब के नशे में बार-बार उन बांदियों से यह पूछता ही रहा कि उन सब को लेकर आने वाली औरत कौन थी? मगर सही उत्तर वह न पा सका, झूठों से वह बहलाया जा रहा था।

रात के समय बेगम साहिबा ने टॉमस और लवसूल दोनों ही को खाने पर बुलाया था। कमरे के बाहर सख्त पहरे का इन्तजाम था। कमरे के अन्दर केवल अति विश्वस्त दास-दासियों को ही सेवार्थ आने-जाने की आज्ञा मिली थी। बेगम ने कहा, "हमारे सामने इस वक्त दो अहम सवाल दर पेश हैं। एक तो जफरयाबखां को काबू में रखना और दूसरे, हिन्दुस्तान की सियासत को अहमदशाह अब्दाली के जबर्दस्त शिकंजे से बाहर निकाल कर उसे अपने हाथों में लेना।"

टॉमस बोला, "हुजूर की राय से मैं इत्तफाक रखता हूं।"

"लेकिन इसके पहले यह अजहद जरूरी है टॉमस, कि तुम दोनों आपस में इत्तफाक रखो। घर की यह फूट हमारे हाथ-पांव ढीले किए डाल रही है। (निःश्वास) और हिन्दोस्तान के मौजूदा हालत पर हम जितना ही गौर करती

हैं, हमारी रूहानी तकलीफ दिन-ब-दिन उतनी ही बढ़ती चली जाती है। हिन्दोस्तान का शहंशाह दर हकीकत आज अब्दाली ही है। वह लुटेरा विदेशी हमारी आपसी फूट का फायदा उठाने के लिए ही आता है। पानीपत के मैदान में नवाब शुजाउद्दौला ने हिन्दू मराठों को पस्त करने के लिए हिंदू बैरागियों की फौज से काम लिया था। मुगल दरबार के मुसलमान सरदार आपस ही में कटे मरते हैं। बूढ़ा बादशाह शाहआलम अपने तैमूरी जोश और बहादुरी के बावजूद निकम्मा साबित हुआ। इधर अंग्रेज़ भी हमारे बड़े लोगों की आपसी फूट का फायदा उठा रहे हैं। ऐसी हालत में तुम दोनों आपस में रंजिश रखकर मुझे और साथ ही साथ हिन्दोस्तान को भी खाक में मिला दोगे। हमारा ईसाई हुकूमत करने का ख्याल सिर्फ ख्वाब ही रह जायगा, तब तुम लोगों की बहादूरी फिर किस काम आएगी लवसूल ? इससे अच्छा होगा कि तुम लोग चूड़ियां पहनकर हरम में बैठो और औरतों की तरह आपस में लड़ो। वक्त आने पर हम ही मर्द बनकर तलवार उठाएंगी।"

टॉमस गर्दन झुकाए सुन रहा था, बोला, "कसूर मेरा नहीं बेगम साहिबा ! आप जो हुक्म फरमाएंगी उसे बसरोचश्म बजाने में अपनी जान तक कुर्बान करने के लिए यह गुलाम हर वक्त हाजिर रहा है और आगे भी रहेगा। मुझे लवसूल से भी निजी तौर पर कोई शिकायत नहीं है। यह जहीन है और वफादार भी, मगर इसे यह भी तो समझना चाहिए कि मैं उम्र और ओहदे में इससे बड़ा हूं।"

लवसूल कुछ कहने ही जा रहा था कि जुआना बोल उठी, "सहारनपुर के नवाब गुलाम कादिरखां का आदमी आज दिन में मेरे पास आया था, यह तो तुम्हें मालूम ही होगा लवसूल ?"

"जी हां, बेगमे आलिया।"

"क्या तुमने यह भी सोचा लवसूल, कि गुलाम कादिर के आदमी का इस मौके पर आना बेमानी न होगा ?"

लवसूल चुप होकर उसकी ओर देखता रहा। जुआना बोली, "जानते हो उसने क्या पैगाम भिजवाया था ? गुलाम कादिर चाहता है कि मैं उसे बेटे की तरह से मानूं और दरबारे-देहली की मौजूदा सियासत को खत्म करके मुल्क का इन्तजाम अपने हाथों में ले लूं। इस काम में गुलाम कादिरखां मेरी पूरी मदद करेगा।"

"लेकिन हुजूरे-आलिया, मुझे लगता है कि यह उसकी एक चाल है।"

लवसूल की इस बात पर मुस्कराकर बेगम ने कहा, "ठीक वैसी ही जैसे कि मेरे जन्नतमकानी शौहर ने तुम्हें अपना बेटा और वारिस बनाकर हमें और टॉमस को मुफ्त ही में फंसाने की बनाई थी। वह तो कहो, तुम्हारी वफादारी ने तमाशा खड़ा न करने दिया, वरना आज हम मुश्किलों से गुजर रहे होते। टॉमस को इससे नसीहत लेनी चाहिए थी, मगर हमें इस बात का सख्त अफसोस है कि इतने होशियार, तजुर्बेकार और बहादुर होकर भी वे तुम से नाहक जलते हैं।"

टॉमस कुछ न बोला। गर्दन झुकाए सुनता रहा। लवसूल को इस बात की बेहद खुशी थी कि टॉमस को फटकारा जा रहा है। उसे और भी अधिक खुशी होती अगर यह फटकार मीठी न होकर सख्त होती। लेकिन उसी समय टॉमस संयत स्वर में बोला, "योर हाईनेस, इस मसले को तूल न देकर मैं यह अर्ज करूंगा कि गुलाम कादिरखां की बात को हर पहलू से देख लिया जाए। जहां तक

मेरे और लवसूल के बीच का सवाल है मैं यकीन दिलाता हूं कि मेरी तरफ से आपको कोई भी शिकायत करने का मौका आइन्दा नहीं मिलेगा। लवसूल को मैं अपने छोटे भाई की तरह मानता हूं और आगे भी मानूंगा।"

जुआना की आंखों में खुशी की चमक आ गई, बोली, 'तुमने यह कहकर मेरा दिल ले लिया टॉमस, बस अब तुम मेरी राय में कल सुबह ही फौज लेकर लाल किले की हिफाजत के लिए दिल्ली चले जाओ। गुलाम कादिरखां का आदमी कल दोपहर तक यहां खातिरदारियों से बहलाया जाता रहेगा। जब तक यह रुहेला मेरे जवाब के इन्तज़ार में रहेगा तब तक तुम देहली की हिफाजत का इन्तजाम बखूबी कर लोगे।"

लवसूल को यह अच्छा न लगा। बेगम अगर उसे फौज लेकर देहली जाने का हुक्म देतीं तो बात कुछ और होती, मगर यों तो उसे अपनी कारगुजारी दिखाने का मौका ही न मिल सकेगा। ईर्ष्या के झोंके में एक घूंट शैम्पेन का लेकर वह कहने लगा, "क्या यह मुनासिब न होगा कि हम रुहेलों के इस दावतनामे को मंजूर कर लें। हम इससे इन्कार नहीं कर सकते कि देहली का बादशाह अब महज खेतों में खड़ा किया जाने वाला धोखा भर ही रह गया है। हिन्दोस्तान में मुकद्दस ईसाई हुकूमत कायम करने के लिए यह एक सुनहरा मौका आया है।"

"लेकिन यह न भूलो लवसूल, कि अंग्रेज़ तुम्हारे ख्वाब पर खुद भी घात लगाए बैठे हैं। वह बादशाह की मदद को दौड़े चले आएंगे।" टॉमस ने कहा।

"और अहमदशाह अब्दाली भी इस मौके पर उनकी मदद करने से न चूकेगा। देहली को कमजोर बनाए रखकर अपना उल्लू सीधा करने में ही उसे भी सहूलियत होगी।"

"अब्दाली कुछ नहीं कर सकता हुजूरे-आलिया, और अंग्रेजों को भी बखूबी शिकस्त दी जा सकती है। हिन्दोस्तान के अमीरो-उमरा···"

"कमजोर, नाकाबिले-एतबार हैं।" बेग़म ने फौरन लवसूल की बात काटकर कहा, "और फर्ज़कर्दम, हम यह भी मान लें कि गुलाम कादिर हमें धोखा नहीं दे रहा है, तब भी वह कम-अक्ल तो साबित हो ही जाता है। वह यह नहीं समझता कि तख्ते-तैमूर के उलटते ही हिन्दोस्तान की हुकूमत फिर किसी हिन्दोस्तानी के हाथ में नहीं आएगी। या तो अब्दाली उसे हड़प जाएगा या फिर अंग्रेज़। हम अपने ही हाथों से अपने मुल्क को दुश्मनों के हाथों में सौंपने को हरगिज तैयार नहीं। टॉमस, कल सुबह पौ फटने से पहले ही तुम देहली की ओर कूच कर देना।"

लवसूल मन ही मन कुण्ठित हो गया। नया यश पाने का यह मौका भी टॉमस ही को दिया जा रहा है, जबकि लवसूल सेना का कमाण्डर नियुक्त किया जा चुका है। रूखे स्वर में बोला, "और मेरे लिए क्या हुक्म होता है योर हाईनेस?"

"तुम्हारा यहीं रहना जरूरी है। मुझे और आगरे को लावारिस छोड़कर तुम नहीं जा सकते हो।" बेगम लवसूल की गुप्त ईर्ष्या को भांप गई थी। वह उसे खुश करना चाहती थी। लेकिन बड़ी जिम्मेदारी का काम केवल जार्ज टॉमस ही को सौंपना चाहती थी। उसके मन में एक चोर ख्याल यह भी आ गया था कि टॉमस के आगरे में न मौजूद रहने पर वह लवसूल के साथ अपना मन बहलाने का मौका भी शायद पा जाए। एक तीर से दो शिकार करने की चतुराई साधकर उसने कहा, "टॉमस देहली में अपने जादू का कमाल दिखाएंगे और तुम यहां पर

मुझसे सियासत का जादू सीखोगे लवसूल। तुम्हारी वफादारी को अभी तजुर्बे की आंखें नहीं मिल सकीं। बल्कि···टॉमस, जाओ अब आराम करो। मैं लवसूल के मन से डाह के उस भूत को इस वक्त झाड़कर ही रहूंगी जो इसे सही ढंग से सोचने भी नहीं देता। नादान कहीं का।" कहकर उसने बेसाख्ता तेज प्यार-भरी कनखी से लवसूल को देखा। वह नजर टॉमस के मन में डाह पैदा कर कर गई और होशियार बेगम को तुरन्त ही अपनी चूक का एहसास भी करा गई। जुआना ने तुरन्त ही अपनी बात पर और गहरा रंग चढ़ाया, बड़े प्यार से टॉमस की तरफ देखकर कहा, "तुम्हें मालूम है टॉमस, महबूबा इसे क्या कहती है—नन्हा-मुन्ना। मैं इस नन्ने-मुन्ने को जरा बालिग बनाऊंगी ताकि वह मेरे टॉमस की कद्र कर सके।"

टॉमस के दिल पर मरहम लग गया। लेकिन लवसूल से मिलने की बात पर उसकी ईर्ष्या कामना बनकर भड़की। उसकी भी तबीयत हो आई कि वह जुआना के साथ सुखद प्यार की रात बिताकर ही देहली जाए। कुर्सी से उठते हुए अदब से झुककर उसने कहा, तो फिर मैं आपसे इजाजत लूं योर हाईनेस।"

"सिधारो और सुर्खरू होकर लौटो।"

"गुस्ताखी मुआफ, एक बात अर्ज कहना चाहता हूं। प्यारे लवसल, बगैर बुरा माने क्या तुम हुजूर की खिदमत में एक दरख्वास्त पेश करने का मौका मुझे दे दोगे ?"

"हां-हां, बड़े शौक से।" कहकर वह कमरे से बाहर जाने लगा। जुआना ने उसे रोककर कहा, "बाहर जाने की जरूरत नहीं नन्ने-मुन्ने। तुम जमुना में चांद की परछाई को नहाते देखकर तब तक अपना मन बहलाओ।"

लवसूल के पीछे मुड़ते ही टॉमस ने झुककर जुआना से कहा, "क्या अपने इस भिखारी को आज रात···"

"नहीं, अभी नहीं प्यारे, लौटकर आओगे तब। जाओ, वह शक करेगा।"

टॉमस एक ठंडी सांस लेकर चला गया।

अष्टमी का आधा चांद जमुना के ऊपर मानो लटक रहा है। टॉमस के जाने पर लवसूल ने जुआना की ओर मुड़कर देखा तो उसके मुख का निचला भाग कमरे के प्रकाश में अष्टमी के चन्द्रमा जैसे ही आधा झलक रहा था। जुआना के मन का खेल भी वैसा ही अधूरा था। शोक की काला पोशाक में जुआना का सौंदर्य और अधिक खिल उठा था। बड़े अन्दाज से वह कुर्सी छोड़कर उठी और लवसूल की ओर बढ़ने लगी। लवसूल भी अदब से उसकी ओर बढ़ा। जुआना का चेहरा एकान्त में अपने प्रिय के मुख को चाहना-भरी दृष्टि से देखकर अपने अन्दर की खुशी से बेपनाह-बेहोश होकर खिल उठा। मन का जोश यह तय कर उठा कि आज इस अधूरे चांद को पूरे तौर पर अपना बनाकर जुआना अपने दिल की दुनिया में हर तरफ सुख की चांदनी फैलाएगी। प्यार से उसकी पीठ पर हाथ रखकर अपने साथ ही साथ उसे भी जमुना की तरफ वाले दरवाजे की ओर बढ़ाने लगी। देह का स्पर्श उसे नशीला बनाता चला जा रहा था। लवसूल को उसी तरह पकड़े हुए वह एक मिनट मौन होकर बाहर का दृश्य देखती रही, फिर बड़े भाव से उसकी पीठ दबाते हुए बोली, "तुम्हारे पास रहने से मेरी रूहानी दुनिया इतनी पुर-सुकून, इतनी हसीन हो जाती है कि खुद मुझे ही अपने अन्दरवाली जुआना से हसद होने लगती है। तुम्हें पाकर लगता है कि अब मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए···"

कहते-कहते होश आया, मन सावधान हुआ, तुरन्त ही बात को घुमाकर आगे बढ़ाया, बोली "एक वफादार जांनिसार बहादुर का सहारा औरत को मुकम्मिल मर्द बना देता है—जैसे मेरी महबूबा के इस नन्ने-मुन्ने ने मुझे बना दिया है।" कहते हुए लवसूल की पीठ पर रखा हुआ जुआना का हाथ सरकते हुए उसकी गर्दन पर पहुंच गया और 'नन्हे-मुन्ने' कहते समय उसकी गर्दन अपनी ओर मोड़कर वह आनन्द से खिलखिला गई।

लवसूल के लिए यह स्पर्श, ये नजरें अब कुछ-कुछ कहने लगी थीं, और इससे उसके दिल की धड़कनें बढ़ गई थीं, लेकिन लवसूल अपने मन में अभी यह ठीक-ठीक समझ नहीं पाया था कि बेगम के इस व्यवहार का अर्थ क्या है। यह कल्पना वह अब भी नहीं कर सकता था कि जुआना बेगम को उससे इश्क हो गया है। जुआना के प्रति उसकी भक्ति उसे यह विश्वास नहीं करने देती थी। हां, यह आशंका अवश्य हुई कि बेगम साहिबा उसकी परीक्षा ले रही हैं और वह मन ही मन सचेत हो गया। शब्द तौल-तौल-कर उसने कहा, "बेअदबी मुआफ, अभी तो इब्तदा ही है, हुज़ूर को मल्लिका-ए-आलम होना अभी बाकी है।"

लवसूल की गर्दन मे अपना हाथ हटाकर बेगम ने अर्ध गम्भीर भाव से हंसते हुए कहा, "इन्सान के दिल में एक पूरा आलम होता है। तुम्हें पाकर मैं सचमुच ही मलिकाए-आलम हो गई हूं।"

लवसूल के मन का शक पक्का हो गया कि बेगम साहिबा सचमुच ही उसके चरित्र की परीक्षा ले रही हैं। यह आशंका उसके संयम को कठोर बनाने लगी और उस कठोरता में टॉमस के प्रति उसकी ईर्ष्या जागी, बोला, "हुजूर ने अपनी वफादारी का सबूत पेश करने के लिए अभी मुझे मौका ही कहां दिया है? खुशनसीब तो टॉमस हैं, जिसे…"

"पागल हो तुम मेरे नन्हे-मुन्ने, तुम औरत के दिल की मजबूरी को नहीं समझ सकते।"

"हुज़ूर की मजबूरी को मैं समझता हूं। टॉमस ने हुज़ूर के मन का भरोसा पा लिया है और वह भरोसा ही उसे नई से नई कामयाबियां भी दे देता है। पुराने लोग सच ही कह गए हैं कि फरिश्ता अगर गधे को भी पुचकार दे तो वह रुस्तमे जमां बन जाता है। मैं बदनसीब तो टॉमस से भी गया-गुजरा हूं।"

जुआना अदा से हंस पड़ी, कहा "तुम्हारी इन भोली बातों ने कई हफ़्तों के बाद आज मेरा दिल फिर हरा-भरा कर दिया। नींद तो नहीं आ रही है लवसूल?"

"नमकहलाल सिपाही नींद और ख्वाब भला क्या जाने हुज़ूर! मेरे लिए यह तसल्ली ही क्या कम है कि हुज़ूर ने अगरचे इस नाचीज को देहली की हिफाजत करने लायक सिपाही न माना तो भी अपना दिल खुश करने वाला भांड़ की जगह मुझ पर इनायत करके बख्श दी।"

लवसूल का यह तानामेज लहज़ा जुआना बेगम को ख़ुश कर रहा था। उसे भरोसा हो रहा था कि इस रूठे हुए भोले बालम को वह यकीनन जीत लेगी। उसका हाथ पकड़कर बोली, "आओ नूरे-हुस्न, घड़ी-आध घड़ी मेरी ख्वाबगाह में चलकर बैठो। आज मैं तुम्हें सब कुछ समझा दूंगी—सब कुछ, और वह गधा, या तुम्हें खुश करने के लिए कहूं कि टॉमस के न होते हुए भी मेरा मुकम्मिल भरोसा पाकर रुस्तमे-जमां ही नहीं रुस्तमे-दो आलम बन जाओगे। आओ।" उसके पंजे में

अपना पंजा डालकर उंगलियों से उंगलियां फंसाकर कसती हुई वह ख्वाबगाह की ओर बढ़ी। लवसूल के लिए यह स्पर्श बड़ा मादक था। ख्वाबगाह के दरवाजे पर पहुंचकर उसने धीरे से कहा, "सुनो, मेज पर से वह शैम्पेन उठा लाओ। और देखो, महबूबा बाहर बैठी होगी, उससे कहना कि टॉमस का ध्यान रखे। हो सकता है कि जलन के मारे वह इस वक्त फिर अचानक मुझसे मिलने की कोशिश करे। महबूबा उसे अब यहां आने न दे।"

प्यासी आँखों से लवसूल को देखती हुई जुआना पर्दा उठाकर भीतर चली गई। लवसूल का दिल और जोर-जोर से धड़कने लगा। बेगम साहिबा का आशक क्या है ? कितनी कठिन परीक्षा लेंगी ? टॉमस को अभी उन्होंने गधा कह दिया, यह उसे अच्छा लगा। उसे यहां न आने देने की ताकीद भी उसे अच्छी लगी। उसके मन में यह सच भी झलका कि बेगम कहीं उसे सचमुच ही अपना प्यार न दे रही हों, मगर यह ख्याल उठते-उठते दब गया। श्रद्धा, लौकिक प्रेम के दायरे में आकर अपना यथार्थ रूप पाने से स्वाभाविक रूप में चूक गई। अपना पहेली जैसा मुंह लिए वह बाहर दरवाजे की ओर बढ़ा। महबूबा परदा हटाते ही दिखलाई पड़ गई। खम्भे की टेक लगाए वह बैठी कुछ-कुछ ऊंघ-सी रही थी। लवसूल ने आवाज दी, "महबूबा !"

"जी हुज़ूर— ओह तुम हो लव्वू मियां ?" कहकर उठ बैठी और कमरे के अन्दर आ गई। दरवाजे के पास ही खड़े होकर दोनों हाथों से उसके कन्धे पकड़कर दबाते हुए लवसूल ने घबराए स्वर में धीरे से कहा, "महबूबी, आज तुम्हारे सहारे की मुझे सख्त जरूरत है। बेगमे-आलिया मेरा कठिन इम्तहान ले रही है। समझ में नहीं आता कि उनका मंशा क्या है। मुझे रोशनी दो।"

"किस बात की ?"

"यही कि···यही कि, मरियम-उल्-अस्मत अगर प्यार की बातों से मेरा इम्तहान लें तो मैं क्या करूं ?"

लवसूल की घबराहट-भरी बात सुनकर वह हल्के से हंस पड़ी, कहा, "और क्या करोगे, इम्तहान में कामयाबी हासिल करो।"

"मगर किस तरह ?"

"क्या यह भी तुम्हें बतलाना होगा कि इम्तहान-ए-इश्क किस तरह अन्जाम दिया जाता हैं ? क्या कभी किसी से तुमने इश्क नहीं किया लव्वू मियां ?"

"मगर यह तो मामूली इम्तहान नहीं है महबूबा। उनकी प्यार-भरी नजरें देखकर मैं कांप-कांप उठताहूं। मुझे उनका मन्शा समझ में नहीं आता।"

"सब कुछ समझ में आ जाएगा नन्हे-मुन्हे, अपने दिल पर नजर रखना। वह जो कहे उसे ही सुनना। दिल ही दिल को समझता है। बेहोशी का होश गूंगे का गुड़ है जो खानेवाला चख तो लेता है पर बखान नहीं पाता। जाओ, हमारी बेगम साहिबा के लिए तुम्हारी मौजूदगी खुद भी एक इम्तहान बन जाती है।"

लवसूल कुछ न समझ पाया। उसने कहा, "खैर हुजूर ने कहा है कि टॉमस को न आने देना।"

"हुजूर से कह देना कि उसके लिए मैंने पहले ही से इन्तजाम कर रखा है। और देखो, अब मैं यहीं रहूंगी। और बेगम साहिबा के काम से फुरसत पा लेने के बाद तुम वापस अपने डेरे पर नहीं जाओगे।"

"क्यों ?"

"हुज़ूरे-आलिया का मुंशी दिन में जिस जगह पर बैठकर काम करता है वहीं आज तुम्हारे सोने का इन्तजाम भी किया गया है। शमाएं वहां रातभर जलती रहेंगी। हमारे और बाहर वालों के लिए तुम रात-भर दफ्तरी कामकाज में मशमूल रहोगे। समझे ?"

गूंगी हलचलों की सनसनी से भरा मन और सागरो-मीना लेकर लवसूल ख्वाबगाह में पहुंचा। मद्धिम चांदनी वाला अंधेरा था; सिर्फ एक ही शमा रोशन थी। जुआना बेगम का चेहरा ही चमक रहा था। पलंग पर तकियों का सहारा लिए बैठी थी। सुनहरे बाल चमक रहे थे। लवसूल ठिठका, आवाज आई, "आ जाओ।"

लवसूल संभल-संभलकर सिरहाने के पास आ खड़ा हुआ, मीठी आवाज आई, "मेज पर रख दो और मेरे नजदीक आओ।"

लवसूल ने सुराही और प्यालों का सुनहरा थाल सिरहाने की एक संगमर्मर की मेज पर रख दिया और फिर उसी तरह खड़ा हो गया। जुआना ने करवट लेकर बाहें बढ़ाईं और लवसूल की बाहों को अपनी ओर खींच लाई। नजदीक आने पर दोनों हाथों से उसके दोनों गाल थामकर, उसे झुका और आप उठकर उसकी आंखों में आंखें डालकर मस्त आवाज में फुसफुसाई, "मैं देखना चाहती थी, अंधेरे में तुम कितना चमकते हो। कोहेनूर हो तुम, महबूबा सच ही कहती है तुम्हारी और वशीरखां की आंखों में बस यही फर्क है कि वह मर्द की खूंख्वार आंखें हैं और ये भोले नन्हे-मुन्हे की।"

"यह नन्हा-मुन्ना लफ्ज अब पागल बना डालेगा हुजूर।"

"मेरे कहने से यह तुम्हें बालिग बना देगा। तुम देखते चलो, जो कहूं करते चलो। हर सवाल का जवाब तुम्हें सिर्फ अपने मन से ही मिलेगा लवसूल।··· आओ, अपने प्यारे हाथों से एक जाम मुझे दो।"

बेगम ने पी, उसी प्याले से लवसूल को पिलाया। पास त्रिठाकर उसके गाल से गाल सटाकर कुछ अस्फुट ध्वनियों और चुम्बनों के बहाने से उसके गाल पर अपने होंठों की रेखाओं की हल्की-सी छुअन दे-देकर उसकी काया में भूडोल लाती रही। फिर सहसा उठकर बैठते हुए, लवसूल की पीठ से सटकर उठते हुए, बैठकर बोली, "आओ, रात की दुआ हम एक साथ पढ़ेंगे।"

दोनों ने साथ-साथ ईसाई धर्म की रात्रि प्रार्थना पढ़ी। उठे; एक-दूसरे के आमने-सामने हुए; जुआना ने उसे बांहों में कस लिया और होंठों ने होंठों को, दिल ने दिल को आलमे-खामोशी में अमृतदान दे दिया। फिर सहसा अलग होकर मीठी-मीठी बोली, "अच्छा, अब आराम करो। महबूबा तुम्हारे आराम का माकूल इन्तजाम कर देगी। खुदा तुम्हें एक-दिन शाहंशाहे-हिन्द बनाए, मेरे नन्हे-मासूम की उम्र दराज करे!" लवसूल पहेली-सी बाहर निकला और रात-भर बावला बना रहा। जुआना चैन से सो गई थी।

सहारनपुर के नवाब गुलाम कादिरखां को जब यह सूचना मिली कि बेगम समरू ने उन्हें धोखे में रखकर देहली के बादशाह की सुरक्षा के लिए अपनी सेनाएं भेज दी हैं तो गुस्से में आगबबूला हो उठे। उनकी सारी योजना ही बिगड़ गई। गुलाम कादिरखां का ख्याल था कि समरू चूंकि उनके पुरखों का नमकख्वार

रह चुका था, इसीलिए बेगम उन्हीं का साथ देंगी। उन्हें विश्वास था कि हिन्द की मलिका बनने के लालच में आकर बेगम समरू उनके जाल में फंस जाएगी। किन्तु परिणाम उल्टा निकलने पर वे खुल्लम-खुल्ला बादशाह शाहआलम के विरोधी हो गए। क्रोध में आकर उन्होंने शाहआलम के पास यह संदेशा भिजवाया कि समरू की 'रखैल रक्कासा' को कैद करके फौरन ही सहारनपुर दरबार के हवाले कर दिया जाए, वरना उनके गुस्से की लपटें शाहंशाहे-हिन्द को जलाकर खाक कर देंगी। अपनी धमकी को प्रभावशाली बनाने के लिए उन्होंने अपनी सेना को देहली का लाल किला घेरने का आदेश भी दे दिया।

बूढ़ा शाहआलम घबरा उठा। राज-खजाने की स्थिति बहुत ही शोचनीय थी। सम्राट की साख राजधानी तक में गिर चुकी थी। लाल किले की चहार-दीवारी के बाहर सम्राट का प्रभाव नष्ट हो चुका था। दरबार से सम्बद्ध बड़े-बड़े अमीरो-उमरा अपनी-अपनी गोटी सर करने के लिए अलग-अलग स्वार्थ चक्रों में नाच रहे थे। देहली से बेगम समरू को यह सूचना मिली कि शाहआलम को इस समय नींद में भी सहारनपुरी रुहेलों का डर सता रहा है और मुमकिन हो सकता है कि बादशाह किसी भी समय नवाब गुलाम कादिरखां के आगे झुक जाएगा। बेगम समझती थी कि यह स्थिति उसके लिए घातक होगी। वह चिन्तित हो उठी। उसने स्वयं मौके पर—दिल्ली पहुंचकर सूत्रसंचालन करने का निश्चय किया।

लेकिन अपने शासकीय जीवन में पहली बार बेगम जुआना समरू को अपने निश्चय के पीछे एक बाधा सता रही थी। सहारनपुर के नवाब ने जिस तरह से इस समय लाल किले को घेर रखा था उसी तरह लवसूल बेगम के दिल पर घेरा डाले हुए था। पिछले छः-सात दिनों में जुआना बेगम ने हर रात खाने को उसे बुलाया, मीठी-मीठी बातों से उसे लुभाया और खुद भी उसके लोभ में दिन-ब-दिन अधिक से अधिक फंसती ही चली गई। चार ही दिनों में उसकी यह हालत हो गई कि अगर लवसूल सामने न हो तो वह सही ढंग से कुछ सोच भी न पाती थी। पिछली रात साथ-साथ प्रार्थना कर चुकने के बाद जब वह उसका आलिंगन चुम्बन करने के लिए आगे बढ़ी तो लवसूल छिटक गया, बोला, "मैं पत्थर का बेजान पुतला नहीं हूं हुजूर। मेरे सीने में भी एक अरमान-भरा दिल धड़कता है। पिछले चार रोज से हर वक्त बावले सवाल उठा करते हैं। अब इम्तहाने-वफा न दे पाऊंगा। अपनी जान दे देना इससे कहीं ज्यादा आसान काम है।"

"इम्तहान अकेले तुम्हारे लिए ही नहीं, मेरे वास्ते भी है। मैं भी पत्थर की बनी नहीं हूं प्यारे लवसूल।"

"आखिर हुजूर आप मुझसे चाहती क्या हैं?"

"क्या चाहती हूं, सुनोगे? मैं तुम्हें अपने-आपको पूरी तरह से सौंप देना चाहती हूं। दिलो-जान से तुम पर निसार हूं और तुम्हारी हो जाना चाहती हूं।"

"यह आप सच फरमा रही हैं बेगम साहिबा?"

"जुआना कहो प्यारे। तुम्हारे सामने अब मैं बेपनाह हूं। यह लुकाछिपी का खेल अब मुझसे खेला नहीं जाता।"

बेगम से प्रेम की स्पष्ट स्वीकारोक्ति पाकर लवसूल एकदम से दीवाना हो उठा। उसे अपनी बांहों में कसकर उसके होंठों पर बेसाख्ता चुम्बनों की झड़ी लगा दी। प्यासी काम-वेदना से जुआना कराह उठी। विनय करते हुए उससे

क़हा, "बस-बस, मुझे इससे ज्यादा मजबूर न करो मेरे सरताज। तुम्हारी खूबसूरती और जवानी आंधी बनकर कहीं मेरी आंखों में धूल न झोंक दे। मुझे तुमसे डर लगता है, तुमसे ज्यादा खुद अपने से डर लगता है।·· जाओ, जाओ फिरंगी जादूगर। इस वक्त कारेजहां दराज है इश्कोहुस्न के मयासल बवक्ते सुकून हल किए जाएंगे।"

लेकिन लवसूल में भला इतनी ताव अब रह कहां गई थी! उसके बावले उतावलेपन ने बेगम को बेबस कर दिया। आत्मदान करने के बाद यह बेबसी और भी बढ़ गई। लवसूल बशीरखां और जार्ज टॉमस से कहीं अधिक बड़ा जादूगर सिद्ध हुआ वह लुट-लुट गई।

और आज सवेरे से वह खुद अपने से बेहद परेशान थी। देहली की ताजा खबरें आने के बाद लवसूल ने हठपूर्वक उससे यह मांग की थी कि उसे भी देहली भेजा जाए—"यह आयरिश गधा इस नाजुक घड़ी में यकीनन नाकामयाब साबित होगा। मुझे उसके ऊपर जरा भरोसा भी नहीं है।"

जुआना अपने प्यार से पूरी तरह मजबूर होकर भी देहली की राजनीति में इस समय लवसूल को नहीं झोंकना चाहती थी। उसे अपने अत्यधिक प्रेम के बावजूद अभी लवसूल की राजनीतिक योग्यता पर पूरा विश्वास नहीं था। वह यह भी जानती थी कि लवसूल इस समय दुश्मनों से सामरिक विजय प्राप्त करने से भी कहीं अधिक टॉमस पर अपनी नैतिक विजय पाने के लिए जोश-भरी हठधर्मी साधकर निश्चय ही कोई ऐसी नादानी कर बैठेगा कि उसका बना बनाया खेल ही बिगड़ जाएगा। लेकिन··यह 'लेकिन' ही जुआना बेगम के लिए बड़ा कठिन हो उठा था। भावनाएं बुद्धि के विपरीत जाकर अपना हठ साध रही थी। जुआना को अब घड़ी भर के लिए भी लवसूल को अपनी नजरों से दूर रखना बड़ा ही कठिन प्रतीत हो रहा था। आज दिन-भर उसका यही तमाशा रहा कि किसी न किसी बहाने से लवसूल को बुला लेती थी और अवसर के अनुसार खुली या छिपी गहरी रीझ-भरी दृष्टि से उसे देखती रहती थी। लवसूल आज अपने-आपको तीनों लोकों का अधीश्वर मान रहा था। उसने दिन भर अपने मातहत अफसरों यहां तक कि जुआना बेगम के सामने भी जार्ज टॉमस को ठीक स्वर्गीय नवाब समरू की तरह आयरिश बुद्धू और गधा कह-कहकर उसका मजाक उड़ाया। दो बार जुआना बेगम ने उसे टोका और दोनों बार अपने ओहदेदारों के रहते हुए ही उसने दरबारी अदब-क़ायदे निभाने का नाटक करते हुए भी बड़े उद्धत भाव से जुआना बेगम को यह चेतावनी दी कि टॉमस उनका काम बिगाड़ करके ही रहेगा। जुआना बेगम के भीतर वाले प्रशासकीय व्यक्तित्व को लवसूल का यह औद्धत्य बहुत अखरा, पर वह बिना नख-दांतवाले शिथिल सिंह और बिना विषदंत-वाले विवश नाग की तरह ही केवल फन फैला-फैलाकर रह गया, उसके अन्दर वाली नारी की रीझ ही जीती। जुआना बेगम के देहली जाने के निश्चय को देह की राजनीति ने देश क़ी राजनीति पर इस रूप में विजय पाने की धमकी दे रखी थी। लवसूल को ले जाऊं—पर कैसे? लवसूल को छोड़ जाऊं—पर हाय, कैसे? अपने भीतर की खींचतान से ऊब और हारकर उसने महबूबा को बुलाया।

महबूबा रात ही में समझ गई थी कि जुआना अपने-आपसे हार चुकी है और लवसूल का आकर्षण उस पर विजय पा चुका है। जब रात करीब-करीब बीतने

को आई और लवसूल ख्वाबगाह से बाहर न आया, तो महबूबा को एकाएक बड़े-बड़े शक होने लगे थे। बेगमसाहिबा को दो बार पुकार कर उसने उन दोनों की सुख-निंदिया तोड़ी। शमा के हल्के उजाले में जिस अलसाई, नींद भरी, मगन मस्त चाल से लवसूल बाहर आया और महबूबा को देखकर मुस्कराते हुए जोर से उसके कंधे पर एक थाप देकर झूमता हुआ मुंशी के दफ्तर में सोने चला गया, उसे देखकर ही महबूबा को लगा था कि 'नन्हा-मुन्ना' अब बदल गया है। सुबह जागने के सब रियासती शकुनों की रस्म-अदायगी होने पर जुआना ने जिस तरह दूसरी बांदियों के सामने अलसाई बांहें महबूबा के गले में डालकर खींचते हुए उसे बड़े भाव से चूमा था, वह देखकर ही महबूबा समझ गई थी कि आज बेगम बावली हो गई है। महबूबा को लगा कि यह उसकी सहेली-मालकिन का चारित्रिक पतन है। बेगम का टॉमस से सम्बन्ध होने पर उसे यह महसूस नहीं हुआ था क्योंकि बेगम तब भी बेगम थी, सबकी मालकिन, अपने प्रेमी टॉमस की भी। लेकिन आज उसे लगा कि उसकी सखी-स्वामिनी अब लवसूल की विजित दासी हो गई है। उसे इसका गहरा दुःख हुआ। लवसूल के लिए उसके सारे उदार भाव कठोर हो गए। बशीरखां के लिए भी मन में शंका जागी, शायद वह दिलाराम की उन्नति से पीड़ित होकर उसे पराजित करने की इच्छा से ही लवसूल को यहां छोड़ गया है और अब उसके कलेजे को ठंडक पड़ेगी।

बेगम के बुलाने पर महबूबा सामने पहुंची। आंखों से आंखें मिलीं। मुन्नी जानती थी कि उसकी महबूबी को यह सब अच्छा नहीं लगा। बेगम बनने के बाद उसे पहली बार किसी के सामने अपने-आपको अपराधी महसूस करने का अनुभव हुआ, विवशता भी अनुभव हुई मगर परिस्थिति की आवश्यकता को समझते हुए अपनी बालसखी के सामने भिखारी की मुद्रा में आने से उसके मन को संकोच नहीं हुआ, प्यार से कहा, "महबूबिया ?"

"बेगमे-आलिया !"

"आह, आह बेगमे-आलिया ! मेरे अन्दर की औरत पर इस लफ्ज की दीवार बराबर चुनती चली आ रही है ··मेरा दम घुट रहा है···उस···उस मुश्तरी की तरह जिसे मैंने महबूबा, मेरी बहिन, मैं यह सब छोड़-छोड़कर कहीं भागना चाहती हूं।" उसका स्वर अपने अन्तर की घुटन और भय से जड़ीभूत हो रहा था।

"इस वक्त तुम्हें पुराने नाम से पुकारूं मुन्नी ? मेरा सर तो कलम न करवाओगी ?"

"सता मत महबूबा··मैं आप ही दुखियारी हूं।" मुन्नी के स्वर में आंसू छलछला आए थे, गो उसकी नजरों में न झलके।

महबूबा गम्भीर होकर बोली, "मैं हैरान हूं मुन्नी, कि जो शख्सियत अठारह कोस लम्बी और बारह कोस चौड़ी रियासत के पत्ते-पत्ते को अपने काबू में रख सकती है, मराठे, रुहेले, बादशाह, कम्पनी बहादुर··हिन्दोस्तान में आज ऐसी कौन-सी ताकत है जो बेगम जुआना समरू के आगे अदब से अपना सर नहीं झुकाती ? मैं पूछती हूं, जिसके काबू में जमाना हो वह खुद भी अपने काबू में क्यों नहीं ? एक ही दिन में एक खूबसूरत चेहरे के पीछे यों दीवानी बनोगी तो बताओ भला, हथेली से चांद कितने रोज छिपेगा ?और फिर वह उम्र में भी तुमसे आठ-नौ साल छोटा है।"

खोई आवाज में जुआना ने उत्तर दिया, "इश्क उम्र नहीं दिल देखता है।"

"मुश्तरी ने भी यही कहा था। इसी के लिए बेचारी दीवार में चिनवाई गई।"

सत्य से आंख मिलाकर जुआना कठोर हो गई, बोली, "वह वक्त और था। तब बशीर मियां की आखिरी नसीहत का भूत हम पर सवार रहता था···।" रुककर, फिर ठंडी सांस लेकर कहा, "हमारा दिल तब नादान था।"

"और अब दाना दिल फिर से नई नादानियां करने लगा है। टॉमस जैसा वफादार और समझदार साथी तुम्हें ढूंढे न मिलेगा।"

"हां मगर वह वफा की कीमत चाहता है। शादी करना चाहता है।"

महबूबा तीखी पड़ी, बोली, "क्यों न चाहे, खुद तुमने ही उसके लिए चारा बिखेरा था।"

एक आह भरकर जुआना बोली, "क्या करूं महबूबी मेरा नसीब मुझे दगा दे गया। तब क्या जानती थी कि लवसूल मेरी जिन्दगी में यों अचानक आ जाएगा!"

महबूबा के मन में सखी के लिए सहानुभूति जागी, कहा, "लब्बू मियां बहादुर है, जवांमर्द है और बला का खबसूरत है, मगर यह क्यों भूलती हो कि वह बेहद जज्बाती और जिद्दी भी है। नादान दोस्त से दाना दुश्मन भला होता है मुन्नी! तुम हुस्न में छिपे हुए एक बन्दर को पाल रही हो।"

यह हकीकत बड़ी तेजी से परम चतुरा और कुशाग्रबुद्धि जुआना की नजरों में आ गई। लेकिन वे नजरें इस समय ऐसी रीझ भरी थीं कि खुद अपने मन का सच भी तेज छुरी-सा काट गया। बड़ी वेदना के साथ उसने कहा, "अपनी बात जरूर कहो गुइयां, पर यों मेरे कलेजे के छिलके तो न उतारो। कुछ भी हो, मैं अब लवसूल को हरगिज-हरगिज नहीं छोड़ सकती। बड़ी देर से अपने मन को समझा रही हूं कि तेरे नन्हे-मुन्ने को इस ताजा जोश में अपने साथ देहली ले जाना खतरे से खाली नहीं है। वह प्यारा नादान किसी न किसी तरह टॉमस पर अपनी जीत जाहिर करने से न चूकेगा।"

"बिल्कुल सही है। उसे मत ले जाओ।"

जवाब देने से पहले जुआना दिल ही दिल में घुटती गई। मन की घुटन उसके खूबसूरत चेहरे पर साफ झलक रही थी। इस बार आंख तक छलछला उठी, बोली, "पर अब मैं उसे देखे बिना पल-भर भी जिन्दा नहीं रह सकती महबूबा! मैं सही ढंग से सोच भी न पाऊंगी। वहां काम में मेरा जी न लगेगा, जो और भी बुरा होगा। तू मेरा एक काम कर दे महबूबिया, किसी तरह अपने नन्ने-मुन्ने को समझा-बुझाकर तू उससे यह कसम ले ले कि वह किसी भी हालत में टॉमस की हुक्म उदूली नहीं करेगा।"

"तुम्हीं क्यों नहीं उससे यह भरोसा लेतीं?"

सुनकर जुआना उदास हो गई, बोली, "में बेबस हूं। तेरा नन्ना-मुन्ना अब मेरा शेर है, मैं बेचारी गाय हो गई।" जुआना के एक-एक शब्द में उसके अन्दर वाले सत्तात्मक अहम् की विवश घुटन एक निर्मम सत्य बनकर बोल रही थी।

महबूबा अपने भीतर ही भीतर उलट-पुलट गई; दबाते-दबाते भी सिसकियां मुंह से निकल पड़ी। पल्ले से अपने आंसू पोंछते हुए उसने कहा, "मुझसे जो कुछ भी हो सकेगा करूंगी।"

जुआना एक बार फिर निश्चिन्त हो गई।

लवसूल, महबूबा, मेरी और जोजेफ को लेकर बेगम दिल्ली के लिए रातों-रात रवाना हो गई। जोजेफ उसका प्रचारक और भेदिया था; मेरी उसकी विश्वास और परम चतुर बांदी थी; महबूबा दासी होते हुए भी उसका आत्मरूप थी, और लवसूल ?—वह उसकी सांस था, दिल की धड़कन था, उसके आगे वह कुछ भी नहीं थी, वही उसका सब कुछ था। बेगम समरू चतुर्भुजा होकर भी कमजोर थी। उसकी तीव्र संचेतना इसे महसूस कर रही थी। यह पहला ही अवसर था जब कठिन राजनीतिक परिस्थितियों से मोर्चा लेते समय उसका ध्यान काम-काज की बातों से बिछलकर प्रेम की बातों में रम जाता था। उसके भीतर यह परिवर्तन उसके अब तक के स्वभाव के विपरीत और असंभव न होते हुए भी अचानक आया था। जुआना इसके कारण खुद अपने-आपसे तो जरूर नाराज थी, पर लवसूल से हरगिज नहीं। बीच-बीच में चलती पालकी का पर्दा उठाकर पालकी के साथ-साथ घोड़े पर चलते हुए अपने 'बांके सिपहिया' को देख वह अपनी आंखें जुड़ा लेती थी। हाय रे इश्क, हाय रे मजबूरी ! लड़ाई के मोर्चे पर जाते हुए बेगम का दिल दीवाने आशिकों के अदाज और शायरों की तर्ज पर चल रहा था।

पालकी कहारों की ऊंचार वाला 'रामा हो' की गुहारें, दौड़ते घोड़ों की खबड़-खबड़ के बीच में भी अपनी अखंड प्रेम-समाधि में निर्विघ्न रूप से लवलीन बेगम की सखी-दासी महबूबा अपनी प्रिय मित्र मेरी के साथ अपनी पालकी में लेटी हुई बातें कर रही थी। मेरी की नजरों से भी बेगम और लवसूल का नया नाता छिपा न रहा था, यद्यपि वह सुनियोजित रूप से हर रात बेगम के शयन-कक्ष से दूर रखी गई थी। मेरी के खोद-खोद-कर पूछने पर महबूबा उससे कुछ भी न छिपा सकी। अपनी स्वामिनी के प्रति मेरी की अटूट श्रद्धा ठक् से टूट गई। उसका और उसके पति का पहला नाता अपने 'असली' मालिक टॉमस से था। महबूबा इसे समझती थी, और उसकी 'मुन्नी' के प्रति उनकी निष्ठा कम न हो, उसकी कर्त्तव्य-शीलता शिथिल न पड़ जाय, इसलिए समझाते हुए बोली, "अपने शौहर से अभी कुछ न कहना, मेरी। सांड़ और शेरनी का यह गैर-कुदरतीं साथ ज्यादा दिनों तक निभ न पाएगा। शेरनी एक दिन सांड़ को मारकर खा जाएगी। टॉमस साहब ही मेरी मुन्नी के शौहर बनेंगे, तुम देख लेना।"

हर कोस पर पालकी-कहार बदलते चलते थे। इसलिए पालकियां बराबर घोड़ों से होड़ लेकर दौड़ रही थीं। एक जगह पड़ाव पर बेगम ने पालकियां रोकने का आदेश लवसूल को दिया। बेगम थक गई थी। मेरी और महबूबा हुक्का, शराब और गजक लेकर आ गई। लवसूल भला उस नियामत से कैसे दूर रखा जा सकता था। बेगम की पालकी के भीतर ही बुला लिया गया। मेरी और महबूबा बेगम की पालकी के दोनों ओर खड़ी हुई थीं। मशालची उससे दूर खड़े थे। सिपाहियों के घोड़े खड़े-खड़े अपनी टापें पटक रहे थे; सिपाहियों के तमाखू के बटुवे खुल गये थे।

लवसूल ने बेगम से धीमे स्वर में कहा, "तुमने महबूबा से क्यों कहलवाया जुआना, और मुझे इतना नादान क्यों समझा कि मैं ऐसे नाजुक मौके पर उस आयरिश बुड्ढ़े को नाराज करके तुम्हारा नुकसान करूंगा ?"

पालकी के दोनों पर्दे पड़े हुए थे। खाने-पीने के लिए एक छोटी कपूरी बत्ती पालकी में जलाकर रख दी गई थी, उसीके प्रकाश में रीझी हुई दृष्टि में अपने

पिया का मुख निहारती हुई जुआना ने कहा, "अपने होनेवाले शौहर का अदब रखने के लिहाज ही से मैंने महबूबा से तुम्हें कहलवाया था। मैं जानती हूं कि तुम नादान नहीं हो, मगर मह भी कैसे भूलती कि एक जंगल में दो शेरों का गुज़ारा बड़ी मुश्किल से होता है।"

"मैं कर लेता जुआना, अगर उस गधे की जगह कोई समझदार अफसर होता।"

"तुमने हमारी वो हिन्दोस्तानी कहावत सुनी है ना, कि मौके पर गधे को भी बाप बनाना पड़ता है। जब तक तुम सियासती शतरंज के पक्के खिलाड़ी नहीं बन जाते और दरबारे-देहली में अपने लिए वैसे जगह नहीं बना लेते जैसी कि उस गधे ने अपने वास्ते बना रखी है, तब तक तुम्हें उसके साथ बखूबी निभाव करना ही पड़ेगा। हिन्दोस्तानी सियासत इस वक्त दलदल में है। हम अगर अपने हाथ-पांव बचाकर नहीं चलेंगे तो हमारी ईसाई शाहंशाही का बेड़ा ही गर्क हो जायगा।

"जुआना! दिल्लीवालों की नजरों में मेरा मरतबा बढ़ाने के लिए यह एकदम जरूरी है कि दिल्ली पहुंचते ही मुझे उस गधे से कहकर कोई ऐसा मोर्चा जरूर दिलवाना जिस पर मैं अपने अपने फौजी हुनर का कमाल दिखला सकूं। वह दो दिन में लड़ाई जीतेगा तो मैं घड़ी में जीतकर दिखला दूंगा।"

और किसी ने यों शेखी हांकी होती जो जुआना यकीनन नफरत के साथ उसपर नाराज हुई होती, मगर अपने नन्ने-मुन्ने का यह बड़बोलापन भी मुन्नी को रिझा गया, बोली, "तुम फिक्र मत करो। लेकिन अपनी वह कसम हरगिज न भूलना जो तुम्हें महबूबा ने दिलाई होगी।"

आध-पौन घड़ी विश्राम लेकर जुआना बेगम की पालकी फिर दिल्ली की ओर सरपट दौड़ चली। लवसूल के साथ क्षण-भर का एकान्त बिता लेने से बेगम का मन काबू में आ गया था। देह की राजनीतिक चालों से संतुष्ट होकर उसका ध्यान अब देश की राजनीतिक चलों में रमने लगा था।

दिल्ली की दशा बड़ी दिगरदूं हो रही थी। लाल किले का खजाना खाली था। रुहेलों ने किले पर जबरदस्त घेराव डाल रखा था। बेगम ने जाते ही सारी सूचनाओं के सूत्र अपने हाथ में लेने के लिए अपने दिल्ली स्थित विश्वस्त अधिकारी रहमतखां को बुलवाया, पूछा, "क्या खबरें हैं रहमतखां?"

"हुजूर नजीर साहब इस वक्त बादशाह के सबसे बड़े खरख्वाह बनकर उन्हें दगा दे रहे हैं। शाही महलों पर गोलाबारी करनेवाला बागी गुलाम कादिर उनकी चलते यक़ीनन जीत जायगा। बादशाह के साथ-साथ हमें भी धोखा दिया जा रहा है।"

बेगम चिढ़ गई, कहा, "रहमतखां सांसें खुदा की देन होती हैं, फिजूल बातों में दम भरकर उन्हें जाया न करो। बात क्या हुई?"

"नजीर की बेईमानी से मेरा दिल भड़क उठा है बेगमे-आलिया। वह बादशाह को यह कहकर दहला रहा है कि खाली खजाना ज्यादा दिन तक लड़ाई को न चलने देगा और वह हार जाएगा।"

"शाही खजाना क्या बिलकुल खाली हो चुका है रहमतखां?"

"इस वक्त तो हुजूर शाही बेगम के जेवर व दीगर असबाब बेच-बेचकर यह लड़ाई चलाई जा रही है और बदकिस्मती से वह रकम भी अब करीब-करीब चुक गई।"

जुआना गम्भीर चिन्ता में पड़ गई, फिर ठसक से हुक्का गुड़गुड़ाकर कहा, "हूं ! तो गुलाम कादिर नादिरशाह और अब्दाली की तरह से शाहंशाहेहिन्द का मालिक बनकर लाल किले में शान से कदम रखने का ख्वाब देख रहा है ? — लेकिन बेगम समरू के रहते हुए यह नामुमकिन है, रहमतखां !"

"सरकार !"

"टॉमस को इन बतकहियों की खबर नहीं मिलनी चाहिए। उसका हौसला इस वक्त बुलन्दी पर है। लड़ाई का सारा खर्च हम बर्दाश्त करेंगे।" "हुजूर के हुक्म की तामील होगी।"

रुहेलों के गोले दम नहीं ले रहे थे। दिनभर घमासान लड़ाई हुई और इसके साथ ही साथ लवसूल और टॉमस में भी आपसी तौर पर थोड़ी-बहुत ठन गई। लवसूल टॉमस के साथ नई मोर्चेबन्दियों के नक्शे को लेकर आखिरकार उलझ ही पड़ा और हठीले टॉमस ने नाराज होकर उसे हुक्म दिया कि वह इसी दम सरधना वापस लौट जाए। जुआना के लिए गनीमत इतनी ही हुई कि लवसूल ने अपने वचन की लाज निबाही। वह सिपहसालार साहब के खेमे से बिना कुछ कहे ही बाहर निकल आया और अपना वचन निबाहने के जोश और गुस्से में बेगम से मिले बगैर ही बशीरखां के यहां चला गया। बेगम ने यह खबर पाई तो घबरा उठी। महबूबा से कहा कि फौरन ही एक आदमी लवसूल के पीछे दौड़ाया जाए और उसे लौटा लिया जाय। इसके साथ ही टॉमस से मिलने के लिए भी उत्सुक हो उठी। इस समय देह की राजनीति के लिए वह देश की राजनीति को बिसार न सकी। यदि लवसूल के बिना वह शांति न पा सकी तो टॉमस के बिना विजय भी उसके लिए असम्भव हो जाएगी। इसके अलावा उसका मन प्रेमासक्त होते हुए भी इस बात से इन्कार नहीं कर सकता था कि नादानी लवसूल ने की है। लवसूल से झड़प हो जाने के बाद भी टॉमस अपनी ही योजना के अनुसार मोर्चे संभालता रहा जिससे कि कठिन युद्ध के बावजूद उसकी सामरिक स्थिति डिग न पाई। युद्ध के बाद रात के समय टॉमस और जुआना की भेंट हुई। युद्ध के सारे हाल सुनकर जुआना काफी हद तक सनसना उठी। चिन्ता भरे, खुशामद-भरे स्वर में बोली, "टॉमस, तख्ते-हिन्दोस्तान की लाज इस वक्त तुम्हारे ही हाथ में है। तुम्हारी हार हमारी मौत का बायस होगी।"

"क्या बेकार की फिक्र करती हो जुआना, दुनिया की तमाम ताकतें मिलकर भी उस समय तक जार्ज टॉमस का मुकाबला नहीं कर सकतीं जब तक कि तुम उसका हौसला-अफजाई करती रहोगी।"

टॉमस का हाथ अपने हाथों के बीच में लेकर जुआना ने बड़े भाव से कहा, "खुदा के बाद हमें तुम पर ही भरोसा है टॉमस। तुम वह ज़मीर हो टॉमस, जिस पर कि हमारे पांव टिके हैं; तुम वह जमीर हो जो लड़खड़ाने पर मुझे थाम लेता है। मैं तुम्हारी बहुत-बहुत एहसानमन्द हूं।"

"एक दूसरे के लिए हम अब कहां तक एहसानमन्द होंगे जुआना। मातम का यह साल बीतते हुए देर न लगेगी, फिर हम और तुम सदा के लिए दुनिया की नज़रों में एक हो जाएंगे और यह हसीन ख्वाब हर दुश्मन को नेस्तनाबूद करने का हौसला बराबर मुझे देता रहेगा।"

जुआना चोर की तरह चुपचाप सुनती रही। फिर बात को पलटते हुए उसके और लवसूल के मतभेद वाले प्रसंग को उठाते हुए बोली, "हमने सुना है कि लवसूल तुम्हारे सामने गुस्ताखी से पेश आया था।"

"मैंने उसे सजा दे दी है। उसे वापस सरधना भेज दिया है।"

जुआना बेगम ने चुपचाप सुन लिया, फिर दो पल चुप रहकर झिझकते स्वर से खुशामदी लहजे में कहा, "वह बड़ा नादान है टॉमस!"

"नादानी सिर्फ बच्चों की किसी हद तक बर्दाश्त की जा सकती है..."

बात काटकर जुआना बोली, "उसका दिल एकदम बच्चे जैसा ही है टॉमस। समरू यही कहा करते थे, महबूबा भी यही कहती है।"

"मगर उसकी नादानी हुजूर के लिए कभी परेशानियों का बायस भी बन सकती है।"

जुआना के दिल ने इस हकीकत को तस्लीम तो किया मगर इस कटु सत्य को झटपट आंख से ओझल करने के अन्दाज से उसने कहा, "खैर, इस मसले पर भी कभी गौर किया जाएगा। इस वक्त तो गुलाम कादिरखां के बोल हमारे कलेजे में बर्छी की अनी-से चुभ रहे हैं।"

"उसकी बदजबानी का जवाब देने की ताकत हमारी तोपों में है, मगर लवसूल की बदजबान..."

"आह टॉमस! तुम समझते क्यों नहीं? तुम्हारे लिए हमारे दिल में बड़ी इज्जत है।"

सुनकर टॉमस की ईर्ष्या ने व्यंग्य में कहा, "मेरे लिए इज्जत और खूबसूरत बला से शायद तुम्हारे दिल में प्यार..."

अपना चेहरा गम्भीर बनाकर, ठंडे-मीठे उपदेश भरे शब्दों में जुआना ने कहा, "शक व सुबहों के तहखाने में बड़ी सीलन होती है टॉमस! उसमें रहने से दिल अकड़ जाता है और उसके जोश का चिराग बुझ जाता है।" यह कहकर जुआना उठी और दोनों हाथों से टॉमस के दोनों गाल थामकर धीमे जोशीले स्वर में बोली, "इधर देखो टॉमस, तुम्हारी बहादुरी और जॉनिसारी की तस्वीर हमारी आंखों में नक्स है।"

इतने जादू से ही टॉमस बंध गया, बोला, "वादा करो प्यारी जुआना, कि समरू के मातम का साल पूरा होते ही दो-चार दिन के भीतर फौरन हमारी शादी हो जाएगी। इस रुहेले का फन कुचलते ही जीत की खुशी के साथ ही साथ मैं अपने सिपाहियों में इस खुशखबरी की लहर भी दौड़ा देना चाहता हूं। फौज में नया जोश आ जाएगा।"

सुनकर बेगम ने चतुराई से कन्नी काटी, बोली, "इतनी बात का फैसला हम लड़ाई जीतकर ही करेंगे। यकीन रखो, अपने वक्त पर सब कुछ होगा और बख़ूबी होगा। इस वक्त तो, बहादुर टॉमस, तुम्हारी फ़ौलादी शेरों की दहाड़ें सुनने के लिए हमारा दिल बेताब है।"

दोनों ने साथ खाना खाया। चलने से पहले प्रेमी ने प्रेमिका को अपने प्यार का सबूत देना चाहा, लेकिन जुआना का एक हाथ अपने और उसके होठों के बीच में आ गया और दूसरा उसके और अपने शरीर की सीमा रेखा बनकर अड़ गया। जुआना नीति को मान देते हुए भी इस समय सत्य पर आसक्त थी। उसकी देह,

उसके मन-प्राण अब केवल लवसूल को ही समर्पित थे, किसी स्वार्थ के लिए झूठी खुशामद में अब वह टॉमस को उसे छूने भी नहीं दे सकती थी।

अपने चेले लवसूल से बशीरखां सब कुछ जान गया। सुनकर वह हंस पड़ा था, कहा था, "अक्ल बहुत दूर तक जिस्मानी हुस्न पर ज्यादा अरसे तक लट्टू नहीं हुआ करती बरखुर्दार। अक्ल को अक्लिया हुस्न से ही रिझाया जा सकता है, समझे! यह बड़ा नाजुक मौका हैं। मेरी मानो और दिलाराम से जाकर कहो कि वह तुम्हें शाहजादा जवांबख्त के नाम एक खत देकर बिन्दराबन भेजे। सियासते-देहली से दु:खी होकर वह आजकल वहीं राजा हिम्मतबहादुर के मेहमान हैं। राजा की फौज लेकर उनके यहां तशरीफ लाने से बड़े बादशाह का दिल एक बार फिर तैमूरी जोश से भर उठेगा। लाल किले की खबरें बहुत अच्छी नहीं हैं लब्बूखां। बादशाह इस वक्त इतने डरे हुए हैं कि किसी भी वक्त अपना फैसला बदलकर गुलाम कादिरखां से समझौता कर सकते हैं। वह समझौता मेरी दिलाराम और तुम्हारी जुआना के हक में बहुत ही बुरा साबित होगा।"

अपने गुरु और बड़े भाई के समान बशीरखां की सलाहों से प्रेरणा लेकर लवसूल रात में जुआना बेगम के डेरे पर पहुंचा। महबूबा ने उसे देखकर भावहीन स्वर में पूछा, "तुम कहां चले गए थे लब्बू मियां? बेगम साहिबा तुम्हारे लिए बेहद परेशान हैं। उन्हें तुम्हारे आने की खबर दे दी है।"

कुछ ही पलों के बाद लवसूल अपनी शासिका-प्रियतमा के सामने था। मान और क्रोध से उसका चेहरा अब भी कसा हुआ था। उसे देखते ही भिखारिन जुआना के दिल की झोली भर गई। झपटकर आगे बढ़ी और बड़ी अधीरता से उसे अपने आलिंगन-पाश में बांध लिया, बोली, "आह लवसूल! तुम्हारे बगैर मेरी दुनिया ही खो गई थी!"

"जार्ज टॉमस के रहते हुए भी!"

जुआना तड़प उठी। उसके गाल पर एक मीठी-सी चपत लगाकर बोली, "जालिम हमारी मजबूरी का यूं मज़ाक न उड़ाओ। तुम्हारे सामने आते ही हमको ध्यान हो आता है कि खुदाबन्दे करीम ने हमें औरत बनाया है। तुम्हारे बगैर अब हम पल-भर भी नहीं रह सकते।"

"औरत!" लवसूल सनक-भरी हंसी से अपनी प्रियतमा को निस्तेज करता हुआ बोला, "कुछ रोज़ पहले सरधना में तुम्हारे किस्सागो ने मुझे उस परी की कहानी सुनाई थी जो अपनी तबीयत बहला लेने के बाद अपने आशिक को जादू की छड़ी से छूकर मुर्दा बना दिया करती थी।"

"मगर मैं तो तुम्हें जिन्दगी बख्शना चाहती हूं प्यारे।"

"टॉमस की जूतियां चूमने का नाम जिन्दगी नहीं। मैं उससे किस बात में कम हूं जो उस गधे की गुलामी करने के लिए मजबूर किया जाऊं? और अगर तुम्हें यही मंजूर है जुआना, तो अपने हाथों मुझे ज़हर दे दो।"

"तुमसे पहले खुद मुझे वह ज़हर पीना पड़ेगा। मेरी बात मानो। मेरी मज़बूरी को समझो। सियासत हर काम के लिए सबूत मांगती है। तुम्हारी लियाकत और बहादुरी फिलहाल उस कली के मानिन्द है जिसकी महक और खबसूरती का राज अभी खुलने को है।"

"मैं समझता हूं कि उसकी नौबत ही न आने पाएगी, क्योंकि तुम्हारा बड़ा अजीज सिपहसालार टॉमस यह नहीं होने देना चाहता। मैंने बिन्दराबन जाकर शाहजादा जवांबख्त को समझा-बुझाकर यहां जाने की बात कही थी। मगर वह गधा बिगड़ गया। तुम्हीं इन्साफ़ करो कि रुहेले अगर दो चक्की के पाटों के बीच में फंसा दिए जाएं तो क्या हमें उनसे फायदा न पहुंचेगा ?"

जुआना की प्रेम-मदिर आंखों की रीझ चौबाला हो गई, बोली, "तुमने टॉमस को यह सलाह दी थी ?"

"जी हां, बेगमे-आलिया !"

"तब उसने मुझसे झूठ बोला। तुम्हारी सलाह अनमोल है प्यारे, और ताज्जुब इस बात का है कि खुद हम भी इस वक्त यही सोच रही थीं। मैं तुम्हें इसी वक्त दो खत लिखकर देती हूं। पहले बिन्दराबन जाकर शाहजादा सलामत और महन्त जी से मिलना, उसके बाद आगरे जाकर मिर्जा इस्माइल बेग से मुलाकात करो। परसों सुबह तक इन दोनों की फौजें अगर यहां आ जाएं तो फिर इंशा-अल्लाह फतह हमारी होगी।"

"मैं इसी वक्त जाने के लिए तैयार हूं।"

जुआना चट स्वयं पत्र लिखने बैठ गई।

दूसरे दिन घमासान लड़ाई हुई। रुहेलों ने टॉमस को लोहे के चने चबवा दिए। अपनी सेना का हौसला बुलन्द करने के लिए जुआना बेगम स्वयं रणक्षेत्र में इधर-उधर डोलती रहीं। फिर भी रात के समय उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। जुआना बेगम ने टॉमस को हौसला तो तरह-तरह से दिया, मगर यह न बतलाया कि लवसूल सहायता पाने के लिए वृन्दावन और आगरे भेजा गया है।

तीसरे दिन लड़ाई को गरमाए हुए एक घड़ी भी न गुजरी थी कि शहर में शोर मच गया, बेगम समरू का होशियार फिरंगी नायब सिपहसालार शाहजादा जवांबख्त और मिर्जा इस्माइल बेग की फौजें लेकर आ गया है। बेगम और उनके दोनों सिपहसालारों की तारीफों के पुल जगह-जगह बांधे जाने लगे। जोजेफ की प्रचार मशीन बड़ी तेजी से घूम रही थी। शहरवालों का हौसला बुलन्दी पर था। रुहेलों की सेना में भी इस संबंध में बड़ी-बड़ी अफवाहें पहुंचाई जा चुकी थीं। शाहजादा जवांबख्त, महन्त हिम्मतबहादुर और मिर्जा इस्माइल बेग के मैदान में आ जाने से लड़ाई का नक्शा ही बदल चुका था। गुलाम कादिरखां को अपनी गिरफ्तारी के भय से मजबूर होकर बादशाह की शरण में जाना पड़ा और दंडस्वरूप शाही खजाने में एक बड़ी लम्बी रकम जमा करनी पड़ी। जीत की खुशी में तमाम शहर में जश्न मनाए गए। दरबार हुआ। बूढ़े शाहआलम ने जुआना बेगम को 'जेबुन्निसा' और 'दुख्तरेखास' के खिताब दिए। वह अपने दोनों सिपहसालारों को लेकर दरबार में गई थी। उसने बादशाह से टॉमस की बड़ी प्रशंसा की, लेकिन युद्ध में विजय दिलाने का श्रेय लवसूल ही को दिया। टॉमस ने इसका बहुत बुरा माना। टॉमस और लवसूल में जमकर ठन गई। सरधना लौट आने पर दोनों का आपसी मनमुटाव यहां तक बढ़ा कि बेगम के सिपाहियों से उसके प्रेम की बात छिपी न रह सकी। सेना को लवसूल के पक्ष में करने के वास्ते जुआना खुले हाथों से रुपये लुटा रही थी। टॉमस अंत में बेगम साहिबा के दर्शन

तक करने से वंचित कर दिया गया। इसका प्रतिशोध लेने के लिए टॉमस ने बशीरखां की मार्फत ही एक सुन्दर युवती को खरीद कर अपना विवाह एक दिन गिरजाघर में जाकर कर लिया और इस खुशी के मौके पर बेगम की सेना में खूब मिठाई बंटवाई। मेरी और जोजेफ अब खुल्लम-खुल्ला टॉमस के पक्षधर हो गए। मेरी और जोजेफ के जादुई प्रचार ने बेगम की सेना में इस बात के हल्ले बांध दिए कि टॉमस की औरत जुआना बेगम से अधिक सुन्दर है।

संयोगवश उसी समय बेगम के घर की फूट का लाभ उठाने के लिए सिंधिया का एक सरदार अप्पाखण्डेराव टॉमस को अपनी ओर मिलाने के वास्ते छिपकर आया था। सरधना से कुछ दूरी पर एक स्थान में दोनों का गुप्त मिलन हो रहा था। जुआना बेगम को अपने भेदियों से टोह लग गई और क्रोध में आकर उसकी नवविवाहिता पत्नी को कैद कर लिया, टॉमस और बेगम में खुल्लमखुल्ला युद्ध ठन गया। लवसूल के सितारे उस समय बुलन्दी पर थे। उसने टॉमस को हराकर ब्रिटिश राज्य की सीमा में खदेड़ दिया।

समरू की सेना जार्ज टॉमस को बहुत चाहती थी। उसके निकाले जाने से सेना में दबा-दबा असन्तोष फैलने लगा। ऐसी नाजुक घड़ी में बशीरखां जुआना बेगम से मुलाकात करने के लिए सरधना आया। पहले गुपचुप महबूबा से मिला। लोगों की नजरों से बचाने के लिए महबूबा उसे अपने निजी कमरे में ले गई। कमरे में एक खूबसूरत नक्काशीदार दीवालगीरी पर हाथीदांत पर बनी हुई उसकी मुन्नी की एक तस्वीर रखी हुई थी। बशीरखां उसे देखने लगा। एकाएक खुद-ब-खुद बोला, "दुख्तरे-खास, शाहंशाहेहिन्द, जेबुन्निसा फख्र-मिल्लते-मसीहा, जागीरदार-ए सल्तनत-ए मुगलिया, जनाब-ए-आलिया, नवाब जुआना समरू बेगम साहिबा···ओफ्फो! क्या लम्बा-चौड़ा नाम हासिल किया है हमारी मुन्नी, हमारी दिलाराम ने!"

फल तराशते हुए महबूबा बोली, "दुनिया अब मुन्नी और दिलाराम को भूल चुकी बशीर मियां। अब तो चारों तरफ बेगम समरू साहिबा का नाम ही रोशन हो रहा है। भरे दरबार में बादशाह ने खुद अपने दस्तमुबारक से हमारी मुन्नी को खिलअत अता फ़रमाई और दुख्तर-ए-खास का खिताब दिया। हमारी बेगम साहिबा न होती तो आज गुलाम कादिरखां रुहेलाशाहे-आलम को अपनी उगलियों पर नचा रहा होता।"

"दरीचे शक। मरहबा, मरहबा, मैं अपनी प्यारी शागिर्दा को मुबारकबाद ही देने आया हूं।"

"वह वाकई इस काबिल है, इसमें ताना देने की क्या जरूरत थी?"

"नहीं, मैं तो आलमे-इश्क में उसकी फतहयाबी पर मुबारकबाद देने आया हूं। रईस के मनबहलाव का खिलौना बनाते हुए मैंने दिलाराम की आंखों में आंखें डालकर इश्क के रंगों पेच उसे समझाए थे। सुना है कि शाहे-हिन्द की इश्क-ए-खास ने उस हुनर में भी पूरा कमाल हासिल कर लिया है। वह फिरंगी लौंडा लब्बूखां बड़ा किस्मत वाला निकला।"

यह व्यंग्य करके बशीरखां ने महबूबा के कलेजे के घाव पर मानों नमक छिड़क दिया। फलों की तश्तरी उसके सामने रखते हुए वह चिढ़ कर बोली, "ये सारी बातें सोचकर ही तो लब्बू मियां को तुम यहां नौकरी दिला गए थे। क्या

कहूं बशीरमियां, मेरे मालिक रह चुके हो तुम, मगर ईमान से कहती हूं, यह अच्छा नहीं किया तुमने।"

"बुरा क्या किया मैंने ? रईस को हुक्के और शराब की तरह ही शौक के लिए एक माशूक भी तो अजहद जरूरी था। मेरा इन्साफ देखो कि एक फिरंगी की दौलत मैं दूसरे फिरंगी को दिलवाने का इंतजाम कर गया। बूढ़े समरू से तो कोई औलाद हमारी दिलाराम को हो नहीं सकती थी, अब इससे फज्ले-खुदा से उसके दस-बीस बच्चे होंगे। समरू की लूटी हुई दौलत ठिकाने से लग जाएगी।"

"दौलत ही का सवाल तो इस वक्त हमारी मुन्नी को चैन नहीं लेने दे रहा है।"

"क्यों ?"

"ऐसे पूछते हो कि मानो तुम्हें दिल्ली में पता ही न चला होगा।"

"किस बात का ?"

"मेरे सामने ज्यादा बनो मत बशीर मियां। दिल्ली की लड़ाई का खर्च उठाया किसने ? हमारी बेगम साहिबा ही ने तो ! शाही खजाने में तो तांबे का एक टका भी नहीं था। मगर बादशाह का भला करने जाकर मुन्नी ने खुद अपने ही लिए इस वक्त मुसीबत मोल ले ली है।"

"क्या हुआ ?"

"अरे चक्कर ही चक्कर है इस वक्त। टॉमस साहब से बिगाड़ करके हमारी मुन्नी ने अपने हक में अच्छा नहीं किया। उनके जाने से फौज यों ही बिगड़ी हुई थी। अब उनकी तनख्वाहें चुकाने के वास्ते खजाने में पैसा नही रहा तो इधर हफ्ते-दस रोज़ में सिपाहियों का गुस्सा बराबर बढ़ता ही जा रहा है। सुनने में आया है कि कल तो फौजवालों ने खुल्लमखुल्ला हमारी मुन्नी और लब्बू मियां पर फब्तियां कसी थीं। मैं तुम्हारे पांवों पड़ूं बशीर मियां, फिरंगी नौजवान के भेस में लाए हुए मेरी मुन्नी के इस बदनसीब को तुम किसी तरह अपने आप ही अब वापस ले जाओ। बहुत से अजाबात किए हैं तुमने, इसके खून का एक पाप अपने सिर पर और न चढ़ाओ। तुम्हीं फायदे में रहोगे बशीर मियां। मुन्नी और यह जागीर फिर तुम्हारे हाथों में आ जाएगी।"

"रईस औरतों को इश्क में फंसाकर लूटने वाले आम तौर से बड़े छोटे दिल के, लालची और बुजदिल हुआ करते हैं महबूबा। बशीरखां औरतों का सौदागर जरूर है मगर औरत की दी हुई रोटी खानेवाला ओछा इन्सान नहीं। फिर इसके लिए तो अब्बा मरहूम मुझे कसम दिला गए थे। अपनी ही जूठन को अब दुबारा क्या खाऊंगा जानेमन, और अगर शादी करनी होगी तो तुम्हें यहां से उड़ा ले जाऊंगा।"

महबूबा का मुख लाज से लाल हो उठा। दबी खुशी और लाजभरी आवाज में मुलायमियत से बोली, "मैं भी तुम्हारी जूठन ही हूं बशीर मियां।"

"मेरी ही हो। किसी और ने तुम्हें फिर नहीं जुठारा। दिलाराम तन की खूबसूरत है लेकिन तुम्हारे मन के हुस्न के आगे उसके तन का जादू फीका पड़ जाता है।"

अपनी प्रशंसा भी महबूबा के मन का कटु सत्य न दबा सकी, बोली, "तुम्हीं ने उसे ऐसा बना दिया, वरना मुन्नी ऐसी न होती। मैं तुम्हारे पांव छूती हूं, तुम लब्बू मियां को जैसे मुन्नी की जिन्दगी में लाए थे वैसे ही फौरन वापस ले जाओ।

तुम्हारे इस एहसान के लिए मैं उम्र-भर तुम्हें अपने दिल में खुदा कि तरह पूजूंगी ।"

बशीरखां चुप रहा, खाता रहा, फिर बोला, "अपनी मुन्नी से मेरी मुलाकात करवा दोगी महबूबा ?" जवाब देने से पहले ही दीवार में जड़ा आईना दरवाजे की तरह खुल गया । चोर दरवाजे के भीतर जुआना खड़ी थी । पहली नजर बशीरखां ही की पड़ी । चट से आगे बढ़कर बाकायदा कोर्निश करते हुए बशीरखां ने कहा, "बन्दा खिदमत में आदाब बजा लाता है सरकारे-आलिया ।"

सरकारे-आलिया के मुखचन्द्र पर चिन्ता का ग्रहण लगा हुआ था; आंखों में गहरी उदासी, चेहरे पर उड़ती हवाइयां । बोली, "तुम बशीर मियां! एक मुद्दत के बाद देखा तुम्हें ।"

बदनसीब हूं और क्या कहूं । औरतों का सौदागर ठहरा और हुजूरे आलिया खुद ही औरत हैं । मेरे···"

बशीरखां की बात काटकर, बात की प्रक्रिया में चेहरे पर क्षण-भर के लिए अपना नैसर्गिक तेज और दर्प लाकर जुआना बोली, "हम किस मर्द से कम हैं बशीरखां ? हिन्दोस्तान की मौजूदा तवारीख पर हमसे ज्यादा भला किस मर्द ने इतना असर डाला ?"

"मरहबा' मरहबा ! मगर मर्द रईसों से आप एक बात में कम हैं ही नवाब दिलाराम साहिबा ।"

दिलाराम के मन का चोर सहमा । मगर उसी दर्प के साथ अपने भोलेपन को साधकर पूछा, "किस बात में ?"

"अरे, यही कि मर्द के दो-चार निकाही बीवियां होती हैं और सौ-पचास दिल बहलानेवाली खूबसूरत गुडियां भी वह हरम में रखता है । मगर हुजूर ने तो अभी एक गुड्डा और एक शौहर ही अपने हरम में आबाद किया है । गुड्डा भाग गया, शौहर मर गया और हुजूर बेगम साहिबा फिर भी अपने वास्ते सिर्फ एक ही शौहर चुन रही हैं, और वह भी ऐसा जो कि खिलौना भी हो और शौहर भी ।"

जुआना चुप रही । उसके चेहरे का पानी फिर ढल गया । बशीरखां एक नजर उस पर डालकर बोला, "मैं तो तुम्हें मुबारकबाद देने आया था दिलाराम ?"

"किस बात की ? बादशाह ने मुझे खिलअत अता फरमाई, इसीलिए ?"

"अमां नहीं । वह तो चार-पांच महीने पुरानी बात हो चुकी । मैं तो आज रात लब्बूखां के साथ तुम्हारी होनेवाली शादी की मुबारकबाद देने आया हूं ।"

"शादी ? आज रात में ? " आश्चर्य से उभचुभ होकर महबूबा ने बशीरखां से पूछा और मुन्नी की ओर देखने लगी । मुन्नी अपराधिनी-सी आंखें झुकाए बैठी थी । बशीरखां कहने लगा, "मर्दाने और जनाने रईस में यही फर्क होता है महबूबा मर्द गुनाह भी करता है तो खुलकर । औरत भला यह हिम्मत क्योंकर दिखला सकती है !"

"यह फैसला तुमने कब किया मुन्नी ?" महबूबा ने पूछा ।

हंसकर बशीरखां बोला, "यह फैसला तुम्हारी मुन्नी ने नहीं किया महबूबा । यह तो उस लौंडे की जिद और इनकी बदनसीबी ने किया है ।"

"मैं अपनी निजी जिन्दगी के मुतल्लिक किसी से भी बात करना पसन्द नहीं करती ।"

"बेहतर है। तुम भले ही बात न करो, मगर दुनिया का मुंह कैसे रोक सकोगी ?"

"पादरी के सिवा कोई इस खबर को नहीं जानता। तुम्हें कैसे पता चल गया बशीरखां ?"

"तुम्हारे पादरी का खत लेकर जो शख्स टॉमस के पास जा रहा था उसे चांदपुर की सराय में बेहोश बनाकर छोड़ आया हूं। मौके की बात थी कि वह आदमी मुझी से टकरा गया। साले को शराब पिला-पिलाकर औंधा कर आया हूं। लीजिए यह खत जो आपके मातबर पादरी ने टॉमस के पास भेजना चाहा था।" कहकर बशीरखां ने जेब से खरीता निकालकर जुआना के कदमों में फेंक दिया! जुआना वैसी ही बैठी रही, न हिली न डुली। महबूबा तो तब से पत्थर की पुतली बनी बैठी थी। बशीरखां सख्त आवाज में बोला, "आपसे उस आदमी की सोगवारी का रस्मिया एक साल भी न गुजारा जा सका हुजूर बेगम साहिबा, जिसने दस हजार अशर्फियां मुझे देकर आपको खरीदा और इस मर्तबे पर पहुंचाया था ? जमाना तुम्हारे मुंह पर किस तरह से थूकेगा, यह भी मुतलक न सोचा ? और इसी अक्ल पर हिन्दोस्तान की रियासत की बागडोर संभालोगी ? मैं तुम्हें आगाह करने आया हूं दिलाराम, वक्त रहते चेत जाओ, यह तुम्हारे उरूज का वक्त है। तुम्हारी शोहरत और लियाकत का आफताब इस वक्त ऊंचे आसमान पर है—आखिर में तुम कर क्या रही हो दिलाराम ? सिन्धिया और शाहआलम को वश में कर सकीं, मगर अपना ही नादान दिल तुम्हारे वश में न हुआ ?"

गहरी उदासी तोड़कर दर्द में खोए हुए स्वर से जुआना बोली' "दिल न सिन्धिया है न शाहे-आलम, दिल आखिर दिल ही है और वह भी एक औरत का दिल !"

महबूबा चोट खाई नागिन-सी तड़प उठी, सारा अदब बिसारकर क्रोध और घृणा के साथ हाथ बढ़ाकर जुआना से तीखे व्यंग्य में बोली, "मुश्तरी की मौत पर अब तो दो आंसू गिरा दो मुन्नी। इसी दिल के पीछे तुमने उस बेचारी की जान ली थी।"

"और दिल ही से मजबूर होकर मैं भी आज उस फिरंगी लौंडे की जान ले लूंगा जिसकी नादानी मेरी दिलाराम को यों बरबाद करने जा रही है।"

बशीरखां की बात सुनकर आशंका मात्र से जुआना उस शेरनी की तरह खूंखार हो उठी जिसके नर या बच्चे को किसीने गोली मार दी हो। तड़ककर कुर्सी से उठते हुए उसने कहा, "किसी जी मजाल नहीं कि मेरे लवसूल को एक कंकड़ी भी उठाकर मार सके। उसकी हिफाजत के लिए मैं अपने बशीरखां और अपनी महबूबा तक की बोटी-बोटी कुत्तों से नुचवाने में गुरेज न करूंगी।"

उसके गुस्से की आग पर बशीरखां की ठंडी हंसी का पानी पड़ा, सहज स्वर में बोला, "तुम्हारी रियासत अब महज तुम्हारा दिल भर ही है दिलाराम। जब उसपर ही तुम्हारा काबू नहीं, तो यह समझ लो कि नवाब समरू की दी हुई रियासत के किसी आदमी पर भी अब तुम्हारा वह काबू नहीं रह गया। दिल के काबू में रहने ही से आलम काबू में रहता है।"

जुआना बेगम का गुस्सा ठंडा पड़ गया। वह चुप हो गई। उसकी खोई हुई आंखें कहीं पर टंग गईं, फिर गम्भीर स्वर में कहने लगी, "मैं हकीकत को जानती हूं, मगर उसपर अमल नहीं कर सकती, "मैं अपनी नादानी को भी पहचानती हूं,

मगर उससे बच नहीं सकती। मेरा भोला-भाला दिल तोड़कर तुमने उस खाली जगह में जिस खुदगरज और खुद्दार औरत को बिठाकर मुझे यहां भेजा था वह अब अपनी मौत मरना चाहती है। टूटा हुआ दिल फिर से जुड़कर मुकम्मिल होना चाहता है। मैं अब अपने-आपसे पूरी तौर पर मजबूर हूं बशीरखां और मुझे मेरे ही हाल पर छोड़ दो।"

बशीरखां ने तैश में कहा, "देखो जी, मैं तुम्हारा उस्ताद हूं और तुम्हारा पहला आशिक भी। मैं अपने जीते-जी यह तमाशा हरगिज न होने दूंगा। तुम दोनों में से एक की जान आज जरूर लेकर जाऊंगा। बोलो किसको सजा दूं?"

जुआना ने रूखी हंसी-हंसकर जवाब दिया, "मैं मरना नहीं चाहती और लवसूल को अब तुम न मार सकोगे। जाओ बशीरखां, तुम्हारी मौजूदगी मेरे ज़मीर के भूत को बार-बार सामने लाकर मुझे डरा देती है। मैं तुमसे कह चुकी न! मेरे नसीब का लिखा अब टल नहीं सकता। लवसूल को पिछले एक माह से समझा-समझा कर हार गई कि 'सोगवारी का यह साल पूरा हो जाने दो' मगर टॉमस ने अपने भेदिए उस जलील कुत्ते जोजेफ की मार्फत मुझे और लवसूल को मेरी फौज में इस तरह से बदनाम किया है और हमारे नाम को हल्के मजाकों का बायन बना दिया है कि उनसे चिढ़-चिढ़ाकर वह शादी की हठ ठान चुका है। वह कहता है कि उस बदनामी से यह बदनामी लाख दर्जे बेहतर है। मुझे भी उसकी यह बात सही लगी और···"

"बात वाकई सही है दिलाराम, लेकिन यह न भूलो कि फौज में और भी बलवा मच जाएगा। पहले सबको तनख्वाह दे लो, पैसे-वैसे खूब बांट लो, लोग-बाग जब खुश हों तो भले ही यह नादानी कर लेना।"

"खुदा ख्वाह है, मैं यही समझती थी कि बशीरखां पर वह नादान नन्हा-मुन्ना तो यह समझता ही नहीं।"

सुनकर महबूबा ने कहा, "तब फिर एक इज़ाज़त चाहती हूं बेगमे-आलिया! मैं बशीर मियां के घर से आपकी मांगी हुई यहां उधार आई थी, अब मुझे फिर से बशीर मियां को लौटा देने का करम फरमाइए।"

बशीरखां बोला, "ठीक है, तुम मेरी ही मिल्कियत हो। तुम्हें किसी समरू या उसकी बेगम ने मुझसे नहीं खरीदा था। जिस भरोसे के लिए तुम्हें मैंने यहां आने दिया था उसकी जरूरत अब नवाब जुआना समरू साहिबा को नहीं रही। ले जाऊं न इसे हुजूर?"

'हुजूर' शब्द के व्यंग्य पर जुआना की आंखें कटोरियों-सी भर उठीं, रुंधे गल से बोली, "ले जाओ, मेरा किसी पर क्या जोर है। अपने सिर पड़ी आप ही निपटूंगी। अच्छा दोस्तो, अलविदा! महबूबा मैं एक खास काम से तुम्हारे पास आई थी मगर जाने दो, अब तुम भी मेरी न रहीं। कोई न रहा, खैर अलविदा, अलविदा!" जुआना तेजी से अपनी आंखें पोंछती हुई चोर दरवाजे में घुस गई। बशीरखां और महबूबा खड़े देखते ही रह गए।

बशीरखां के जाने के बाद जुआना का पहला काम हुआ पादरी को बुला कर कैद करना! धमकियों से डराकर उसे अपने और लवसूल के विवाह का पुरोहित बनाया, उसके बाद भी उसको कैद में ही रखा।

सेना में यह अफवाह उड़ा दी गई कि पादरी से नाराज होकर लवसूल ने उसे दीवार में चिनवा दिया है। सेना बावली हो गई। जहां-तहां यह आवाजें उठने लगीं कि दुश्मन लवसूल को दीवार में चिनवा दिया जाए। टॉमस से बेगम की लड़ाई और अपने वेतन के अदा न होने का कारण लवसूल को बतलाया जा रहा था। सेना सरधना का महल घेरने के लिए बढ़ी आ रही थी। रात चढ़ रही थी। बाहर का शोर बेगम को आतंकित कर रहा था। वह लवसूल को खोज रही थी कि थोड़ी देर में वह घबराता हुआ आया,बोला, "जुआना मेरी जिन्दगी खतरे में है। पूरी फौज बागी हो गई है। वो लोग मेरी जान लेना चाहते हैं। मुझे दीवार में जिन्दा चुनने की बातें कर रहे हैं।"

सुनकर जुआना का चेहरा भय से शव की तरह निस्तेज हो गया, वह भय से आप ही आप बड़बड़ा उठी, "दीवार में चुनेगें? मुश्तरी···मुश्तरी की रूह··· नहीं! मैं किसी को तुम्हारे साथ ऐसा बर्ताव हरगिज न करने दूंगी। मैं एक-एक की जान ले लूंगी।"

"सिपाही कहते हैं कि अगर तुम मुझे बचाने की कोशिश करोगी तो वे तुम्हें भी मेरे साथ हलाक कर देंगे।"

शोर बढ़ता ही जा रहा था। बेगम के प्रभावशाली व्यक्तित्व के विरुद्ध एक बार गुस्से-भरी अनर्गल बातें फटते ही उसके महल के नौकर और बांदियां तक उससे कन्नी काटने लगे थे। जुआना को अब किसी पर भी भरोसा नहीं रह गया था। वह लवसूल को लेकर चोर दरवाजे से भागी। अस्तबल के दारोगा को कीमती मोतियों की एक माला देकर एक उम्दा घोड़ा लिया और लवसूल को लेकर भाग निकली।

लेकिन सेना उनके पीछे पड़ चुकी थी। लवसूल के लिए लोगों के मनों में भयंकर क्रोध जाग चुका था। कुछ का यह भी खयाल था कि लवसूल ने किसी से जादू करवाकर बेगम को अपने वश में कर रखा है। उस जादू को अपने क्रोध की आग में भस्म करने के लिए लोग उनके पीछे-पीछे दौड़ पड़े। जुआना और लवसूल मुश्किल से डेढ़-दो कोस ही बढ़ पाए थे कि अनगिनत घोड़ों की टाप और बावला शोर निकट आने लगा। जुआना घबराकर बोली, ':अब हम बच नही सकते। वे लोग कुत्तों की तरह हमारी जानें लेंगे।"

"इन जलील दरिन्दों के हाथ से मरने के वास्ते मैं पैदा नहीं हुआ था जुआना। अगर मेरी जिन्दगी को इसी वक्त खत्म होना है तो वह मेरे ही हाथों से होगी।" लवसूल घोड़ा रोककर कूद पड़ा। जुआना को सहारा देकर उतारा। उसके दोनों गालों पर अपने हाथ रखकर आंखों में आंखें डालकर वह बोला, "दुनिया से जाने से पहले एक बार तुम्हें जी भरकर देख लूं, जी भर कर प्यार कर लूं, जी भरकर···"

शोर अब और भी पास आ चुका था। आलिंगन-पाश से छूटकर लवसूल ने तमंचा निकाला, उसे जुआना के होठों के पास लाते हुए कहा, "इसे चूम लो जाने-मन, इसकी गोली जुआना बन कर मेरे दिल में समाएगी।" शोर निकट था। जुआना पत्थर की तरह खड़ी थी। लवसूल ने खुद ही तमंचे को उसके होठों की लकीर का स्पर्श देते हुए बिजली की फुर्ती से अपने दिल पर रख लिया। धांय-धांय! लवसूल लाश बन कर गिर पड़ा। जुआना वैसी ही खड़ी रही। मशालें, घोड़े और बागी सिपाही अब एकदम उनके सामने ही आ चुके थे। "ये आकर मुझे

झिंझोड़ेंगे। नहीं, वह हरगिज न होगा। जानेमन, मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे आ रही हूं।" कहकर जुआना झुकी, लवसूल के निर्जीव हाथ से तमंचा लिया और धांय से अपनी करपटी के पास दागा।

तमंचे की आवाज उसके बागी फौजियों को उसके पास ले आई, परन्तु उसकी जान न ले सकी। गोली कनपटी को छीलनी हुई निकल गई थी। वह बेहोश होकर गिर पड़ी। सैनिकों ने दोनों को घेर लिया। लवसूल को मृत देखकर सिपाहियों ने उसकी लाश से ही बदला लिया। निर्ममता से उसकी बोटी-बोटी काटकर और बेहोश जुआना के शरीर पर उसके कटे अंगों को डाल-डालकर गन्दे से गन्दे उद्‌गार प्रकट करने लगे। फिर जुआना को उठाकर उसके महल में ले आए।

विशाल महल के सामने तोपगाड़ी पर रस्सियों से बांधकर जुआना को सिपाही भद्दी-भद्दी बातें सुनाते रहें। उसके महल में घुस-घुसकर उसी के सिपाहियों ने बहुत सा माल नष्ट किया, बहुत सा लूट लिया।

जुआना होश आने पर भी बराबर आंखें मीचे पड़ी रही।

अठारह घंटे बीते। भूख-प्यास, देह की आवश्यकताएं, चिलचिलाती धूप बावले बागियों की गालियां और तरह-तरह की बातें—जुआना पर अब किसी चीज का असर बाकी नहीं रह गया था। उसका सोचना ही बंद हो गया था। परिस्थितियों और भावनाओं के घूंघट-दर-घूंघट उठते-उठते जुआना के सम्मुख यह सत्य स्पष्ट हो गया था कि मनुष्य की इच्छा केवल एक ही होती है, उसे दोहरे-तिहरे अनेक रूप देने की क्रिया गलत नहीं, लेकिन उस अनेकता की एकरूपता अनिवार्य शर्त है। प्रेम, विलास और राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा दो अलग-अलग इच्छाएं हैं इन्हें एक में बांधने का प्रयत्न निष्फल होना चाहिए था। जुआना अब एक की होकर रहेगी, एक ही से लौ लगाएगी और वह 'एक' अब खुदा का बेटा जीजस क्राइस्ट ही होगा।जीजस!

दोपहर ढलते-न-ढलते तक महबूबा और बशीरखां टॉमस और उनके सिपाहियों को साथ लेकर आ गए। टॉमस को देखते ही बागी उसके अंकुश में आ गए। टॉमस ने सिपाहियों को खूब-खूब फटकारा, कहा, "जिस औरत ने हिन्दुस्तानी सियासत की हजार गलतियों को सुधारा, उसकी एक छोटी-सी गलती पर यह तूफान उठा रहे हो? जिसका नमक खाया उसीको यूं जलील कर रहे हो? तुम्हें शर्म नहीं आती···! अपने आपको सिपाही कहते हो, बड़े मर्द और बहादुर बनते हो···!"

महबूबा ने टॉमस और बशीरखां के साथ रस्सियों के बन्धन काटे और बेगम को मुक्त किया। बशीरखां और महबूबा को उसने गहरी आस्था-भरी दृष्टि से देखा, पर टॉमस से आंखें न मिला सकी। सिर्फ इतना ही कहा, "शुक्रगुजार हूं, पर मुझे मरने दिया होता तो तुम्हारी और भी ज्यादा मशकूर होती।"

"इस मुल्क में अभी और बहुत से दुश्मन हैं, मौत को जिनकी तलाश है। आपकी जान अपने मुल्क के लिए बेशकीमत हैं।"

"मुल्क! हां, यही मैं भूल गई थी।···मैंने अपने दिल को अपने मुल्क और फर्ज से बड़ा मान लिया। मैंने मुनासिब सजा पा ली। लेकिन एक बात साफ-साफ कहती हूं टॉमस, जो ख्वाब हमने कभी साथ-साथ देखा था वह अब हमारे बीच में

नहीं रहा है। उसे दुबारा देखने की कोशिश न करना। जिन्दगी का रुख अब हकीकत की ओर मुड़ चुका।"

एक सप्ताह तक बेगम की फौज को फिर से व्यवस्थित करने के बाद टॉमस चला गया। उसके बाद बशीरखां ने भी इजाजत मांगी। करुणा-स्नेहभरी दृष्टि से उसे देखते हुए जुआना बोली, "तुम्हारे घर से अम्मी जान के जेवर चुरा लाई थी। अब वापस कर दूं?"

बशीरखां मुस्कुराकर बोला, "उन्हें अपने पास ही रखो। खुदा न करे, कभी फिर तुम्हारी रूह के जेवरात लुटने का आदेश हो, तब उन जेवरों को देख लिया करना। मेरी अम्मी ने वह मेरी बीवी के लिए रखे थे। उसी के पास उन्हें रहना भी चाहिए। बहरहाल, इस जिन्दगी में तो तुम फिर से मेरी बनोगी नहीं। वक्त-जरूरत, मुसीबत आने पर तुम उसी तरह से मेरा सहारा मांग सकती हो जिस तरह बीवी अपने शौहर से मांगती है। महबूबा को फिर से तुम्हारे पास छोड़े जाता हूं। दिल को राहत मिलेगी! अलविदा! खुदा हाफिज़।"

जुआना की दीन-दुनिया अब बदल चुकी थी।

□□□

मुद्रक : सोहन प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली

88102

अमृतलाल नागर
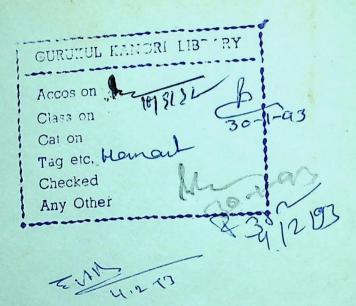
आगरा में 17 अगस्त 1916 को एक गुजराती परिवार में जन्मे नागरजी की लेखनी 13 वर्ष की उम्र में ही चल पड़ी थी। उनकी पहली कहानी "प्रायश्चित" मात्र 15 वर्ष की उम्र में लिखी गई। तब से अब तक उनकी लेखनी हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि करती रही। उनके सिर से पिता का साया 19 वर्ष की अवस्था में ही उठ गया। संघर्षों का सिलसिला यहीं से चल पड़ा। पढ़ाई हाईस्कूल तक रह गई। परंतु धुन के धनी नागरजी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल पर हिंदी के साथ-साथ बंगला, गुजराती, मराठी तथा अंग्रेजी भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। साहित्य के गंभीर अध्ययन के साथ-साथ समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, पुराण, पुरातत्व आदि विषयों में इनकी गहरी पैठ थी। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी इस कुशल साहित्यकार की लेखनी कहानी, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, व्यंग्य रचनाओं आदि के क्षेत्र में कालजयी कृतियां हिंदी जगत को दे गए हैं। उनके व्यक्तित्व में 'व्यक्ति और साक्षात्कार' का मेल देखते ही बनता है।

जीवन को मुक्त हृदय और मुक्त मन से जीने वाले साहित्यकारों में उनका नाम अग्रणी रहेगा। उनकी लेखनी की विशेषता सदा यह रही कि वह जिस विषय से भी जुड़ी उससे एकाकार हो गई। कोरी कल्पना का सहारा न लेकर जैसा देखा, सुना या भोगा उसी को वाणी दी और अभिव्यक्ति सामर्थ्य की इस विलक्षण प्रतिभा ने उन्हें पात्रों, घटनाओं, स्थितियों, चरित्रों और अवस्थाओं के साथ समरस कर दिया। बोली-भाषा, उक्तियां, लहज़ा सब कुछ यथार्थ के सांचे में ढला हुआ। सब कुछ जीवन के निकट, हृदय की गहराइयों को छूने वाला। समाज के विभिन्न रूप और रंग। जीवन के विविध स्वरूप और चित्र। सब कुछ साकार होकर बोलता-सा जान पड़ता है।

एक सुप्रसिद्ध कथाकार, उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार और संस्मरण विधा के विशेषज्ञ के रूप में तो नागरजी आने वाली पीढ़ियों को याद रहेंगे, परंतु एक सहज निष्कपट, सहृदय व्यक्ति नागरजी को साहित्यकार नागरजी से अलग नहीं किया जा सकता। व्यक्तित्व और कृतित्व का यह सामजस्य उनके सिद्धांतों पर चलने वाले साहित्य सेवियों को निरंतर प्रेरणा देता रहेगा।

सरस्वती के वरद-पुत्र नागरजी का निधन 23 फरवरी 1990 को हुआ।

अमृतलाल नागर रचनावली

हिंदी के शीर्षस्थ साहित्यकारों में अमृतलाल नागर का नाम प्रमुख है। उन्होंने हिंदी के भंडार की जितनी श्रीवृद्धि की है और वह भी प्रायः सभी विधाओं में — उपन्यास, कहानी, हास्य-व्यंग्य, नाटक, साहित्यिक निबंध आदि — वह अपने में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

पिछले दिनों बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा श्री अमृतलाल नागर को राज्य के सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान ''डा. राजेन्द्र प्रसाद शिखर सम्मान'' प्रदान किये जाने के तुरंत बाद उत्तर प्रदेश शासन ने भी अपने राज्य से सर्वोच्च सम्मान ''भारत-भारती'' से उन्हें सम्मानित किया है। इसमें भी एक लाख रुपया नकद तथा प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जाता है।

पाठकों की निरंतर मांग रही है कि नागर जी के सम्पूर्ण रचना-संसार को सुनियोजित रचनावली के रूप में प्रकाशित किया जाए। यह रचनावली अब आपके सम्मुख 12 खंडों में प्रस्तुत है। इसके संयोजन और संपादन में स्वयं श्री अमृतलाल नागर एवं उनके सुयोग्य सुपुत्र डा. शरद नागर ने सक्रिय सहयोग दिया है।

राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरीगेट, दिल्ली